भारतीय विद्या

बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

वर्ष १] नवम्बर, ई० स० १९३९ * कार्तिक, संवत् १९९६ [अंक १



संपादक
श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय विद्या भवन
अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-० * वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

इंग्रेजी षाण्मासिक] ❀ [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक

*

लेखानुक्रम

हिन्दी लेख

गुजराती लेख

चित्रसूची

भारतीय विद्या

वर्ष १] कार्तिक, सं० १९९६ [अंक १

लेखानुक्रमणिका

BHĀRATĪYA VIDYĀ

Journal of the Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.

[Published Twice a Year]

Editor—MANILAL PATEL, Ph. D. (Marburg)

Vol. I, Part I November 1939

CONTENTS

भारतीय विद्या

[हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

नियमावली

(अ) 'भारतीय विद्या' त्रैमासिकके वर्षभरमें ४ अंक प्रकाशित होते हैं। उनका प्रकाशन क्रमशः कार्तिक, माघ, वैशाख, और श्रावण मासके अन्तमें होता है।

(आ) 'भारतीय विद्या'में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषामें लिखे हुए लेख–निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं। गुजराती लेख, लेखकोंकी इच्छानुसार गुजराती लिपि अगर देवनागरी लिपिमें भी छापे जा सकते हैं।

(इ) 'भारतीय विद्या'में भारत वर्षके प्राचीन इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, तत्त्वज्ञान इत्यादि सभी विषयोंके परिचायक और विवेचक लेख–निबन्ध–टीका–टिप्पणी आदि प्रकाशित किये जाते हैं।

(ई) 'भारतीय विद्या'की अनुपूर्तिके रूपमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश और प्राचीन देश्य भाषामें प्रथित कुछ प्रकीर्णक कृतियोंके, मूलरूपमें भी प्रकाशित किये जानेकी योजना है।

(उ) 'भारतीय विद्या' में प्रकाशित होनेके लिये लेखादि भेजने वाले लेखक-विद्वानोंको, उनके लेखकी (यदि वह लेख कमसे कम ४ पृष्ठसे छोटा न हो तो) २५ प्रतियां अधिक छपवा कर उन्हें भेंट दी जायगी।

(ऊ) लेखके साथ यदि कोई चित्रादि देनेकी योजना होगी तो उसके दिये जानेका भी प्रबन्ध किया जायगा; पर उन चित्रादिके भेजनेका कार्य लेखकको करना होगा।

(ए) विद्वानोंको विज्ञप्ति है कि–'भारतीय विद्या'में प्रकट होनेके लिये जो लेखादि भेजे जाँय वे स्पष्ट और सुवाच्य लिपिमें लिखे होने चाहिए। कागजके एक ही पार्श्वमें लिखान रहना चाहिए। टिप्पणी आदिके संकेत सुबोध्य और सुव्यवस्थित हों।

(ऐ) छपनेके लिये भेजे हुए लेखोंकी योग्यायोग्यताका निर्णय करनेका अधिकार संपादकको है।

(ओ) संपादनकार्यके साथ संबन्ध रखने वाला सब प्रकारका पत्र-व्यवहार– '**संपादक – भारतीय विद्या**' इस नामसे करना चाहिए और ग्राहक वगैरह होनेके विषयका पत्र-व्यवहार – '**मंत्री, भारतीय विद्या भवन**' इस नामसे करना चाहिए।

*

(औ) 'भारतीय विद्या'– BHARATIYA VIDYA –इसी नामका एक पत्र, इंग्रेजी भाषामें भी भवन प्रकाशित करता है जो षाण्मासिक है। उसके वर्षमें दो अंक प्रकाशित होते हैं। उसका वार्षिक मूल्य ४–०–० है।

आगामी – द्वितीय अंककी कुछ लेख सामग्री

*

(१) 'सं० १४८२ नी सालमां लखाएली, पद्यानुकारी, गुजराती अनुप्रासपूर्ण गद्यमय एक जैन गुर्वावली'.
संग्राहक – श्रीयुत मोहनलाल दलीचंद देशाई.
बी. ए. एलएल. बी. एडवोकेट.

*

(२) सं० १७९५में लिखी हुई 'कुतबुदीन शाहजादाकी शृंगारु वात' संग्राहक – श्री मुनि कांतिसागरजी.

*

(३) कवि समय सुन्दर रचित–'सं० १६८७ के भयंकर दुष्कालकी गुजराती-राजस्थानी भाषामिश्रित स्वानुभव कविता'
संग्राहक – श्रीयुत अगरचंदजी नाहटा.

*

(४) ग्रीक संघर्ष पहेलानुं आर्य ज्योतिष
ले० – प्रो० अमृतलाल सवचंद गोपाणि, एम्. ए.

*

(५) गुजराती नाटकोमां संस्कृत रूपकादीनां तत्त्वो
ले० – प्रो० भानुशंकर बा० व्यास, एम्. ए.

*

(६) च्यवनाख्यायिका – ले० श्रीयुत गौरीप्रसाद चु० झाला.

*

(७) जूनी अने मध्यकालीन गुजराती भाषा
ले० – श्रीयुत शंकरप्रसाद छगनलाल रावल.



भारतीय विद्या

प्रथम वर्ष, प्रथम अंक]  [कार्तिक, वि० सं० १९९६

भारती-सरस्वती-इळादेवी आह्वान मंत्र

आनो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥

—ऋग्वेद संहिता, १-६-९



भारती, सरस्वती और इळा ये तीनों सुकर्मा देवियां, हमारे यहां [इस विद्याध्ययनरूप] यज्ञमें, मनुष्यकी तरह [अपना कर्तव्य] जानती हुई शीघ्र आवें और सुखकर इस [ज्ञानाञ्जलिरूप] बर्हि (कुश) को ग्रहण करें।



[ऋग्वेदकी यह ऋचा 'भारतीय विद्या' के प्रारंभमें एक अत्युत्तम मंगल स्तुतिरूप प्रतीत होगी। इसमें आहूत भारती, सरस्वती और इळा ये तीनों देवियां क्रमशः दिव्य, मध्य और मर्त्य स्थानकी अधिष्ठात्रीं मानी गई हैं। वेदकालमें यज्ञके समय इनका आह्वान किया जाता था। हम भी आज इस 'भारतीय विद्या भवन'में किये जानेवाले स्वाध्याय स्वरूप यज्ञ कार्यमें, इन देवियोंका आह्वान करते हैं और कुशके प्रतीकस्वरूप जो ये हमारे लेख-निबन्धादि हैं, इन्हें समर्पित करते हैं।]

किंचित् प्रास्ताविक

*

भारतीय विद्याका अनन्य आदर्श अमृतत्वकी प्राप्ति करना है। भारतीय महाजनोंकी समग्र जीवन-साधना अमृतत्वकी सिद्धिके लिये थी। मानव जातिके जीवन प्रभातमें, सबसे प्रथम जागृत और प्रबुद्ध होनेवाले भारतीय महर्षि, विश्वके अन्धकारको अपसारित करनेवाले विश्वज्योतिस्वरूप अपने उपास्यदेव आदित्य = ईशसे यही प्रथम प्रार्थना करते थे कि **'मृत्योर्मा अमृतं गमय'** मृत्युसे = मर्त्यभावसे = आत्माके अवनतरूपसे मुझे अमृतकी ओर = अनन्तके अक्षय धामकी ओर = आत्मविकासके उन्नत आकाशकी ओर ले चलो। अमृतत्वकी ओर प्रस्थान और प्रगमन करनेकी पावन कामना-ही-से, उन पुरातन भारतीय श्रेष्ठ सन्तानोंकी प्रतिप्रभात यह प्रार्थना होती रहती थी। संसारमें सबसे पहले इस अमृतत्वके अगम्य स्वरूपका गूढ ज्ञान और प्रकट प्रतिभान उन्हीं भारतीय सन्तानोंका हुआ था और उन्होंने जाना था कि –

'मृत्युर्वासत् सदमृतं' मर्त्यभाव असत् है और अमृत सत् है।

'शान्तिसमृद्धममृतं' अमृत शांतिसे समृद्ध – परिपूर्ण है।

'अमृतो हिरण्मयः' अमृत ज्योतिर्मय है।

'प्राणो वा अमृतं' अमृत प्राणस्वरूप है।

'अचलममृतमच्युतं' अमृत अचल और अच्युत है।

और इस लिये उन्होंने इस अमृतकी प्राप्तिकी कामना और साधना-ही-में अपनी समग्र आत्मशक्ति समर्पित कर दी थी।

*

उन भारतीय महर्षियोंकी कण्ठध्वनिसे अहर्निश **'कथं तेनामृता स्याम्'** – किस प्रकार हम अमृत हों' – यह चिन्तनामंत्र उद्गीर्ण होता था। इस सतत चिन्तनारूप साधनाके प्रभावसे उनको ज्ञात हुआ था कि –

'ईशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति' – उस ईशको ज्ञात करलेनेसे अमृत हो जाते हैं। अपनी तपस्या द्वारा उन्होंने उस ईशको ज्ञात किया और फिर वे उसमें तन्मय हो गये। श्रुति कहती है कि –

'ते तन्मया अमृता वै बभूवुः' – वे तन्मय हो जानेसे अमृत बन गये। उनको अमृतत्वकी प्राप्ति हो गई।

जिस अमृतकी यह स्तुति है और जिसके लिये भारतीय महर्षियोंने ऐसी कामना और चिन्तना की वह अमृत कहीं विश्वके बहार – जगत्के परपार नहीं है। वह तो अपने आत्मा-ही-में अन्तर्निहित है – आत्मस्वरूप ही है। श्रुतिका उपदेश है कि–'**आत्मस्थममृतं**'। जो ब्रह्म है वही अमृत है– '**तद् ब्रह्म तदेवामृतम्।**' जो हमारी आत्मा है वही ब्रह्म है और वही अमृत है–'**तद् ब्रह्म तदमृतं स आत्मा**'। जिसने अपना आत्मस्वरूप जान लिया उसने उस अमृतको प्राप्त कर लिया।

*

उन भारतीय उपासकोंने, इस अमृतकी प्राप्तिका परम साधन विद्याको बतलाया है। विद्याद्वारा ही इस अमृतकी प्राप्ति होती है। '**विद्यया विन्दते अमृतम्**'–'**विद्ययामृतमश्नुते**' इत्यादि सुप्रसिद्ध श्रुतिवाक्य इसके उपदेशक हैं। इस विद्याकी व्याख्या बहुत विस्तृत और सूक्ष्म है। स्थूल विचारसे, यों विद्या साधन है और अमृत साध्य है – परंतु सूक्ष्म विचारसे विद्या साध्य और साधन दोनों है। विद्या स्वयं आत्मज्योति भी है और आत्मज्योतिकी स्वरूपदर्शक भी है। जिस अर्थमें विद्या आत्म-विज्ञान स्वरूप है उस अर्थमें विद्या स्वयं अमृतस्वरूप है – और इस लिये विद्या को ही अमृत भी कहा गया है – '**अमृतं तु विद्या।**' जो विद्या है वही अमृत है।

*

इस अमृतस्वरूप विद्याको प्राप्त करना यही भारतीय संस्कृतिका सनातन ध्येय है। स्मरणातीत कालसे इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये भारतीय महापुरुष प्रयत्न करते आ रहे हैं और वे उसमें यथेष्ट सफल भी होते रहे हैं। भारतके वर्त्तमान महापुरुष महात्मा मोहनदास गांधी, भारतीय संस्कृतिके इस ध्येयके अनन्य प्रतीक हैं। महात्माजीकी संपूर्ण जीवन-साधना इसी अमृतस्वरूप विद्याकी प्राप्तिके निमित्त हुई है और हो रही है। अहिंसा और सत्यका जो अचल आदर्श महात्माजीने प्राप्त किया है वह इसी विद्याका फल है। इस विद्याके बलसे महात्माजीका जीवन शांतिसमृद्ध बन रहा है और जगत्को इस जीवनके जीनेका वे सदुपदेश दे रहे हैं। जिसका जीवन शांतिसमृद्ध है उसने अमृत पा लिया है। भारतीय विद्याका यह परम आदर्श, इस प्रकार महात्माजीमें आज मूर्तिमान् हो कर भारतीय जनताको उस अमृतत्वकी ओर अग्रसर होनेका आदेश दे रहा है।

अमृतत्वकी प्राप्ति करना यह जो भारतीय विद्याका आदर्श है वह आध्यात्मिक है। लेकिन विना लौकिक आदर्शका ठीक परिचय प्राप्त किये, आध्यात्मिक आदर्शका वास्तवदर्शन नहीं हो सकता। इसलिये लौकिक आदर्शका सम्यक् परिचय प्राप्त करना यह हमारे इस सामाजिक जीवनके लिये परम कर्तव्य है। लौकिक आदर्शका सम्यग् ज्ञान लौकिक विद्याकी विशिष्ट प्राप्तिसे होता है। यह लौकिक विद्या नाना प्रकारकी है। भारतीय विद्याविदोंने इसका अत्यन्त विस्तार किया है। एक मनुष्यकी बुद्धिके लिये तो इसकी समग्रताका पार पाना भी अशक्य है। काव्यमीमांसामें कवि राजशेखरने एक प्राचीन उक्ति उद्धृत की है, जो कहती है कि—

विद्यास्थानानां गन्तुमन्तं न शक्तो
जीवेद् वर्षाणां योऽपि साग्रं सहस्रम्।

अर्थात्—जो कोई मनुष्य एक हजारसे भी अधिक वर्ष जीए और विद्याध्ययन करता रहे तो भी वह इन विद्यास्थानोंके अन्तको पहुंच नहीं सकता—ऐसा अपार इस भारतीय विद्याका विस्तार है। तो भी, हमारे प्राचीन भारतीय विद्याकोविदोंने, संक्षेपमें इनका विशिष्ट स्वरूप जान लेनेके लिये, प्रधान प्रधान विद्यास्थानोंका और विद्याके भेदों-उपभेदोंका, निरूपण करनेका समुचित प्रयत्न किया है। कौटिल्यके अर्थशास्त्रके विद्यासमुद्देश प्रकरणमें और इसी तरह राजशेखरकी काव्यमीमांसाके शास्त्रनिर्देश नामक अध्यायमें, भारतीय विद्याके इन भेद-प्रभेदोंकी उपयुक्त नामावली प्राप्त होती है। इस नामावलीके पाठसे हमें यह ज्ञात होता है कि अपने इस लौकिक जीवनके स्वरूपको ठीक ठीक समझनेके लिये और जगत्का हमारे इस जीवनके साथ क्या संबंध है इसको जाननेके लिये, हमें कितना विद्योपासक बनना चाहिए—कितनी विद्याकी साधना करनी चाहिए। यथार्थमें मनुष्य-जीवनकी सच्ची समृद्धि विद्या ही है और विद्या ही जीवनकी महती विभूति है।

*

कहा जाता है कि वर्तमान समयमें संसारमें विद्याकी वृद्धि बहुत अधिक हुई है और हो रही है। मनुष्य जातिने अपने लाखों वर्षोंके भूत-जीवनमें जितनी विद्यावृद्धि की थी उससे कहीं शतगुण-सहस्रगुण अधिक विद्यावृद्धि इस वर्तमान एक ही शताब्दीमें कर ली है। वर्तमान विद्यासिद्ध मनुष्यगणने वह भौतिक

सिद्धि प्राप्त की है जिसकी कल्पना भी उन पूर्वज मनुष्योंको होनी अशक्य थी। क्या पृथ्वी, क्या समुद्र और क्या आकाश – वर्तमान विद्याधर मनुष्योंको एक प्रकारसे अब बहुत संकीर्ण और बहुत सामान्य पदार्थ माल्रम दे रहे हैं। इन मनुष्योंने प्रकृतिके पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांचों प्रधान भूतोंको अपना अनुचरसा बना लिया है और इनसे ये अपना इच्छित कार्य करा रहें हैं। इन मनुष्योंको इस प्रकार विद्याकी यह महती विभूति प्राप्त हो रही है।

*

पर भारतीय विद्याकी दृष्टिसे, संसारकी यह विद्यावृद्धि हेय कोटीकी है। यह विद्यावृद्धि मनुष्य जातिको उन्नत बनानेकी अपेक्षा अवनत बनाती हुई दिखाई दे रही है। इस विद्यालाभसे मानवसमूहको सुख और शांतिकी अपेक्षा दुःख और उद्वेग ही अधिक प्राप्त होते प्रतीत हो रहे हैं। यह आसुरी कुविद्या है। इस कुविद्याके प्रभावसे, मनुष्यके अंतःकरणके किसी एक निम्नतर भागमें जो अहंकाररूप अधम असुर छिपा हुआ सोया रहता है वह जागृत हो उठता है और उसकी हुंकारशक्ति प्रबल हो उठती है। इस शक्तिके वश हो कर मनुष्य मदोन्मत्त हो जाता है और फिर परस्पर एक दूसरेका तिरस्कार, धिक्कार और संहार करनेको उद्यत हो जाता है। वर्तमान संसारके श्रेष्ठ समझे जानेवाले विद्यापारंगत मनुष्य, आज परस्पर एक दूसरेके भयंकर संहारकार्यमें जो अनन्यमनस्क हो गये हैं और वे अपनी सारी बुद्धि, सारी शक्ति और सारी संपत्तिको इस संहारक कार्यमें स्वाहा करनेको कृतनिश्चय हो गये हैं, वह इसी आसुरी विद्याका प्रताप है। अतएव भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिमें यह विद्या हेय है।

*

अभिमानो ययाभिनिवर्तते सा विद्या – 'जिससे अभिमान – अहंकारकी निवृत्ति हो वह विद्या है' – यह भारतीय संस्कृतिका विद्याका एकमात्र लक्षण है। जिस मनुष्यमें, जितने अंशमें, निरभिमानताका – निरहंकारताका विकास हुआ है, उसमें उतने अंशमें, विद्याका विकास और विद्याकी वृद्धि हुई है – यह भारतीय दृष्टिमें विद्याविषयक परीक्षाका सिद्धान्त है। निरभिमान – निरहंकार मनुष्य ही मानवताकी उच्चताको प्राप्त कर सकता है – यह भारतीय सनातन

अनुभूति है। लेकिन, वर्तमानकालीन विश्वकी इस आसुरी विद्यावृद्धिके उग्र तेजमें, हम अपनी वह सनातन सौम्य अनुभूति और वह सांस्कृतिक सम्यग् दृष्टि खो बैठे हैं, और गतानुगतिकताके प्रवाहमें पतित हो कर भारतीय विद्याके महत्त्वको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे हैं।

*

भारतके लिये वर्तमान काल संक्रमण काल है। इस कालमें हम अपनी उस प्राचीन विद्याज्योतिकी कुछ समय तक उपेक्षा करते रहे तो वह ज्योति क्षीण हो कर नष्ट हो जायगी और हमारे आध्यात्मिक और जातीय जीवनमें भयानक अंधकार फैल जायगा। देशके महापुरुष इस विषयमें सजग हो चुके हैं और वे इस ज्योतिकी रक्षामें यथेष्ट प्रयत्नशील है। भारतके क्रान्तदर्शी कवीन्द्र, गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस कार्यके प्रथम पुरस्कर्ता हैं। शान्तिनिकेतनमें विश्वभारतीकी स्थापना कर 'भारतीय विद्या' की ज्योतिको अखण्डित ही नहीं बल्कि अधिक प्रदीप्त करनेकी प्राणवान् प्रेरणा उन्होंने देशको दी है। महामना मालवीजीका हिन्दु विश्वविद्यालय, और महात्मा गांधीजीके प्रभावसे देशके अनेक केन्द्रोंमें प्रस्थापित राष्ट्रीय विद्यापीठ, तथा और भी अनेक ऐसे जातीय विद्या भवन, इस विषयमें प्रोत्साहक प्रयत्न कर रहे हैं।

*

बंबई भारतवर्षका एक प्रधान प्रवृत्तिमय नगर है। आधुनिक विद्या-विषयक शिक्षा-संस्थाओंका यह एक बडा प्रसिद्ध केन्द्र है। बंबई विश्वविद्यालय आधुनिक विद्या-शिक्षाका यथेष्ट प्रचारक और पोषक है लेकिन भारतकी प्राचीन विद्या और संस्कृतिसे उसको कुछ प्रेम नहीं है। इस विषयके अध्ययन–अध्यापनमें उसका कोई उत्साह नहीं है। कलकत्ता, मद्रास, पंजाब आदिके विश्वविद्यालयोंने जिस तरह भारतीय विद्याके अध्ययन-अध्यापनका उचित प्रबन्ध किया है ऐसा कोई नाममात्रका प्रबन्ध भी बंबई विश्वविद्यालयने नहीं किया। बंबईकी राष्ट्रीय राजसत्ताके एक अग्रणी सूत्रधार और सामाजिक प्रवृत्तियोंके प्रमुख पुरस्कर्ता, मान्यवर गृहसचिव, श्रीमान् कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशीको, बंबई जैसे व्यापारिक, सामाजिक, सांस्कारिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तिके सर्वाग्र नगरमें, भारतीय विद्याकी चर्चा-वार्ताका किंचित् भी कोई स्थान और साधन न देख कर वर्षोंसे बडी खटक लग रही थी। ई० स० १९२२ में 'गुजराती साहित्य संसद्'की स्थापना कर, इन्होंने इस प्रवृत्तिके एक

अंगका प्रारंभ किया था और तभीसे इसके विकास और विस्तारका सतत स्वप्न देखा करते थे। गत वर्षमें सेठजी श्री मुंगालालजी के अकल्पित और अमोघ दानने इनके इस स्वप्नको सफल किया और इस मूलनिधिके आधार पर, भारतकी प्राचीन विद्याका आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिसे अध्ययन, अन्वेषण, अवलोकन और आलोचन आदि कार्य करनेके साधन निमित्त इस

भारतीय विद्या भवन

का इन्होंने यह सुसंघटित प्रतिष्ठान किया।

*

श्रीमान् मुंशीजी भारतीय विद्याके एक उत्कृष्ट प्रेमी, गुजराती भाषाके लब्धप्रतिष्ठ लेखक, जातीय संस्कारिता और अस्मिताके उत्कट प्रचारक, अग्रगामी राष्ट्रभक्त, प्रखर प्रतिभावान् न्यायविद्य और अतिकुशल कार्यकर हैं। इन्हींके एकमात्र अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह और व्यापक प्रभावसे इस संस्थाका ऐसा दृढमूल यह प्रादुर्भाव हुआ है और आशा है कि निकट भविष्यमें, बंबई नगरमें, यह अपने विषयकी एक सुप्रतिष्ठित और सुव्यवस्थित विशाल ज्ञानप्रपा बनेगी।

*

यों तों इस विद्या भवनकी पुण्यप्रतिष्ठा करनेमें अनेक विद्याप्रेमी सज्जनों और सद्गृहस्थोंने, उचित धनदानादि द्वारा प्रशंसनीय सहयोगिता और सहानुभूति प्रदान की है और कर रहे हैं—और एतदर्थ भवन इन सबका पूर्ण कृतज्ञताके साथ सदैव उपकृत बना रहेगा। पर इन सबमें, भवनके जन्म लेनेमें जिनका दान सबसे प्रधान और प्रथम निमित्तभूत हुआ है और जो जो दान भवनका एक अक्षयनिधि समान है—उस दानके निष्काम और निरभिमान दाता

श्रीमान् सेठ मुंगालालजी गोएनका

अनेकशः अभिनन्दनीय और अभिवादनीय है। सेठ मुंगालालजी जैसे मूकप्रकृतिके महादानी देशदुर्लभ पुरुष होते हैं। राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ८–९ लाख जितने रूपयोंका भारी दान दे कर भी, इन्होंने न कभी किसी प्रकारके नाम पानेकी इच्छा की और न कभी किसी प्रकारके मान पानेकी अभिलाषा की। सेठजीका यह विद्याप्रेम इन्हें उसी अमृतकी प्राप्ति करानेवाला बनो, जिसका निदर्शन हमने ऊपरके कुछ वाक्योंमें कराया है।

भारतीय विद्या भवनकी प्रवृत्तिके परिचायक रूप इस त्रैमासिक पत्रका यह प्रथम अंक, भवनके प्रथम वार्षिकोत्सव प्रसंग पर प्रकाशित हो रहा है। द्वितीय अंक माघ मासमें प्रकाशित होगा। इसी तरह तृतीय अंक वैशाख मासमें और चतुर्थ अंक श्रावण मासमें। 'भारतीय विद्या' के प्रेमी और अभ्यासी विद्वान् इस कार्यमें अपने लेखादिद्वारा सहयोग प्रदान कर हमें अनुग्रहीत करें यह सविनय विज्ञप्ति है।

हेमचन्द्राचार्यकी प्रमाणमीमांसा

*

लेखक–पंडित श्रीसुखलालजी शास्त्री

[मुख्याध्यापक–जैनदर्शनशास्त्र, हिंदुयुनिवर्सिटी, बनारस ।]

§ १. ग्रन्थका आभ्यन्तर स्वरूप ।

हेमचन्द्राचार्यके बनाये हुए प्रमाणमीमांसा नामक ग्रंथका – जो कि अपूर्ण स्वरूपमें ही वर्तमानमें उपलब्ध होता है – ठीक-ठीक और वास्तविक परिचय पानेके लिये यह अनिवार्य रूपसे जरूरी है कि उसके आभ्यन्तर और बाह्य स्वरूपका स्पष्ट विश्लेपण किया जाय तथा जैन तर्क-साहित्यमें और तद्द्वारा तार्किक दर्शन-साहित्यमें प्रमाणमीमांसाका क्या स्थान है, यह भी देखा जाय।

आचार्यने जिस दृष्टिको ले कर प्रमाणमीमांसाका प्रणयन किया है और उसमें प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय आदि जिन तत्त्वोंका निरूपण किया है उस दृष्टि और उन तत्त्वोंके हार्दका स्पष्टीकरण करना यही उस ग्रन्थके आभ्यन्तर स्वरूपका वर्णन करना है। इसके वास्ते यहां नीचे लिखे चार मुख्य मुद्दों पर तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाता है – (१) जैन दृष्टिका स्वरूप, (२) जैन दृष्टिकी अपरिवर्तिष्णुता, (३) प्रमाण-शक्तिकी मर्यादा, (४) प्रमेय प्रदेशका विस्तार।

(१) जैन दृष्टिका स्वरूप

भारतीय दर्शन मुख्यतया दो विभागोंमें विभाजित हो जाते हैं जिनमें कुछ तो हैं वास्तववादी और कुछ हैं अवास्तववादी। जो स्थूल अर्थात् लौकिक प्रमाणगम्य जगत्‌को भी वैसा ही वास्तविक मानते हैं जैसा सूक्ष्म लोकोत्तर प्रमाणगम्य जगतको – अर्थात् जिनके मतानुसार व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्यमें कोई भेद नहीं; सत्य सब एक कोटिका है; चाहे मात्रा न्यूनाधिक हो – अर्थात् जिनके मतानुसार भान चाहे न्यूनाधिक और स्पष्ट-अस्पष्ट हो पर प्रमाण मात्रमें भासित होने वाले सभी स्वरूप वास्तविक हैं; तथा जिनके मतानुसार वास्तविक रूप भी वाणीप्रकाश्य हो सकते हैं; – वे दर्शन वास्तववादी हैं। इन्हें विधिमुख, इदमित्थवादी या एवंवादी भी

कह सकते हैं—जैसे चार्वाक, न्याय-वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, सांख्य-योग, वैभाषिक-सौत्रान्तिक बौद्ध और माध्वादि वेदान्त।

जिनके मतानुसार बाह्य दृश्य जगत् मिथ्या है और आन्तरिक जगत् ही परम सत्य है;—अर्थात् जो दर्शन सत्यके व्यावहारिक और पारमार्थिक अथवा सांवृतिक और वास्तविक ऐसे दो भेद करके लौकिक प्रमाणगम्य और वाणीप्रकाश्य भावको अवास्तविक मानते हैं;—वे अवास्तववादी हैं। इन्हें निषेध-मुख या अनेवंवादी भी कह सकते हैं। जैसे शून्यवादी-विज्ञानवादी बौद्ध और शाङ्कर वेदान्त आदि दर्शन।

प्रकृतिसे अनेकान्तवादी होते हुए भी जैन दृष्टिका स्वरूप एकान्ततः वास्तववादी ही है। क्यों कि उसके मतानुसार भी इन्द्रिजन्य मतिज्ञान आदिमें भासित होने वाले भावोंके सत्यत्व का वही स्थान है जो पारमार्थिक केवलज्ञान में भासित होने वाले भावोंके सत्यत्वका स्थान है—अर्थात् जैनमतानुसार दोनों सत्योंकी मात्रामें अन्तर है, योग्यता और गुणमें नहीं। केवलज्ञानमें द्रव्य और उनके अनन्त पर्याय जिस यथार्थतासे और जिस रूपसे भासित होते हैं उसी यथार्थता और उसी रूपसे कुछ द्रव्य और उनके कुछ ही पर्याय मति आदि ज्ञानमें भी भासित हो सकते हैं। इसीसे जैन दर्शन अनेक सूक्ष्मतम भावोंकी अनिर्वचनीयताको मानता हुआ भी निर्वचनीय भावोंको यथार्थ मानता है। जब कि शून्यवादी और शाङ्कर वेदान्त आदि ऐसा नहीं मानते।

(२) जैन दृष्टिकी अपरिवर्तिष्णुता

जैन दृष्टिका जो वास्तववादित्व स्वरूप ऊपर बतलाया गया वह, इतिहासके प्रारम्भसे अब तक एक ही रूपमें रहा है या उसमें कभी किसीके द्वारा थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है, यह एक बडे महत्त्वका प्रश्न है। इसके साथ ही दूसरा प्रश्न यह होता है कि अगर जैन दृष्टि सदा एकसी स्थितिशील रही और बौद्ध व वेदान्त दृष्टिकी तरह उसमें परिवर्तन या चिन्तन विकास नहीं हुआ तो इसका क्या कारण ?।

भगवान महावीरके पूर्व समयसे—जबसे थोड़ा बहुत भी जैन परम्पराका इतिहास पाया जाता है तबसे—ले कर आज तक जैन दृष्टिका वास्तववादित्व स्वरूप बिलकुल अपरिवर्तिष्णु या ध्रुव ही रहा है। जैसा कि न्याय-वैशेषिक, पूर्व मीमांसक, सांख्य-योग आदि दर्शनोंका भी वास्तववादित्व अपरिवर्तिष्णु

रहा है। बेशक, न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनोंकी तरह जैन दर्शनके साहित्यमें भी प्रमाण प्रमेय आदि सब पदार्थोंकी व्याख्याओंमें, लक्षणप्रणयनमें और उनकी उपपत्तिमें उत्तरोत्तर सूक्ष्म और सूक्ष्मतर विकास तथा स्पष्टता हुई हैं, यहां तक कि नव्यन्यायके परिष्कारका आश्रय ले कर भी यशोविजयजी जैसे जैन विद्वानोंने व्याख्या एवं लक्षणोंका विश्लेषण किया है; फिर भी इस सारे ऐतिहासिक समयमें जैन दृष्टिके वास्तववादित्व स्वरूपमें एक अंश भी फर्क नहीं पड़ा है—जैसा कि बौद्ध और वेदान्त परंपरामें हम पाते हैं।

बौद्ध परंपरा शुरूमें वास्तववादी ही रही। पर महायानकी विज्ञानवादी और शून्यवादी शाखाने उसमें आमूल परिवर्तन कर डाला। उसका वास्तववादित्व ऐकान्तिक अवास्तववादित्वमें बदल गया। यही है बौद्ध परंपराका दृष्टि परिवर्तन। वेदान्तीय परम्परामें भी ऐसा ही हुआ। उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रमें जो अवास्तववादित्व के अस्पष्ट बीज थे और जो वास्तववादित्व के स्पष्ट सूचन थे उन सबका एक मात्र अवास्तववादित्व अर्थमें तात्पर्य बतला कर शङ्कराचार्यने वेदान्तमें अवास्तववादित्वकी स्पष्ट स्थापना की जिसके ऊपर आगे जा कर दृष्टि-सृष्टिवाद आदि अनेक रूपोंमें और भी दृष्टिपरिवर्तन व विकास हुआ। इस तरह एक तरफ बौद्ध और वेदान्त दो परम्पराओंकी दृष्टि-परिवर्तिष्णुता और बाकीके सब दर्शनोंकी यह दृष्टि-अपरिवर्तिष्णुता हमें इस भेदके कारणोंकी खोजकी ओर प्रेरित करती है।

स्थूल जगत्को असत्य या व्यावहारिक सत्य मान कर उससे भिन्न आन्तरिक जगत्को ही परम सत्य मानने वाले अवास्तववादका उद्गम सिर्फ तभी संभव है जब कि विश्लेषण क्रियाकी पराकाष्ठा—आत्यन्तिकता हो या समन्वयकी पराकाष्ठा हो। हम देखते हैं कि यह योग्यता बौद्ध परंपरा और वेदान्त परंपराके सिवाय अन्य किसी दार्शनिक परम्परामें नहीं है। बुद्ध देवने प्रत्येक स्थूल या सूक्ष्म भावका विश्लेषण यहां तक किया कि उसमें कोई स्थायी द्रव्य जैसा तत्त्व ही शेष न रहा। उपनिषदोंमें भी सब भेदोंका=विविधताओंका समन्वय एक ही ब्रह्म=स्थिर तत्त्वमें विश्रान्त हुआ। भगवान बुद्धके विश्लेषणको आगे जा कर उनके सूक्ष्मप्रज्ञ शिष्योंने यहां तक विस्तृत किया कि अन्तमें व्यवहारमें उपयोगी होने वाले अखण्ड द्रव्य या द्रव्यभेद सर्वथा नाम शेष हो गए; और क्षणिक किन्तु अनिर्वचनीय परम सत्य ही शेष रह गया। दूसरी

और शङ्कराचार्यने औपनिषद परम ब्रह्मकी समन्वय भावनाको यहां तक विस्तृत किया कि अन्तमें भेदप्रधान व्यवहार जगत् नामशेष या मायिक ही हो कर रह गया। बेशक, नागार्जुन और शङ्कराचार्य जैसे ऐकान्तिक विश्लेषणकारी या ऐकान्तिक समन्वयकर्ता न होते तो इन दोनों परम्पराओंमें व्यावहारिक और परम सत्यके भेदका आविष्कार ही न होता। फिर भी हमें यह भूलना न चाहिए कि अवास्तववादी दृष्टिकी योग्यता बौद्ध और वेदान्त परंपराकी भूमिकामें ही निहित रही जो न्याय वैशेषिक आदि वास्तववादी दर्शनोंकी भूमिकामें बिलकुल नहीं है। न्याय-वैशेषिक, मीमांसक और सांख्य-योग दर्शन केवल विश्लेषण ही नहीं करते बल्कि समन्वय भी करते हैं। उनमें विश्लेषण और समन्वय दोनोंका सम प्राधान्य तथा समान बलत्व होनेके कारण दोनोंमेंसे कोई एक ही सत्य नहीं है; अत एव उन दर्शनोंमें अवास्तववादके प्रवेशकी न योग्यता है और न संभव ही है। अत एव उनमें नागार्जुन शङ्कराचार्य आदि जैसे अनेक सूक्ष्मप्रज्ञ विचारक होते हुए भी वे दर्शन वास्तववादी ही रहे। यही स्थिति जैन दर्शनकी भी है। जैन दर्शन द्रव्य द्रव्यके बीच विश्लेषण करते करते अन्तमें सूक्ष्मतम पर्यायोंके विश्लेषण तक पहुँचता है सही, पर यह विश्लेषणके अन्तिम परिणाम स्वरूप पर्यायोंको वास्तविक मान कर भी द्रव्यकी वास्तविकताका परित्याग, बौद्ध दर्शनकी तरह नहीं करता। इसी तरह वह पर्यायों और द्रव्योंका समन्वय करते करते एक सत् तत्त्व तक पहुँचता है और उसकी वास्तविकताका स्वीकार करके भी विश्लेषणके परिणाम स्वरूप द्रव्यभेदों और पर्यायोंकी वास्तविकताका परित्याग, ब्रह्मवादी दर्शनकी तरह नहीं करता। क्यों कि वह पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक दोनों दृष्टिओंको सापेक्ष भावसे तुल्य बल और समान सत्य मानता है। यही सबब है कि उसमें भी न बौद्ध परंपराकी तरह आत्यन्तिक विश्लेषण हुआ और न वेदान्त परंपराकी तरह आत्यन्तिक समन्वय। इसीसे जैन दृष्टिका वास्तववादित्व स्वरूप स्थिर ही रहा।

(३) प्रमाणशक्तिकी मर्यादा

विश्व क्या वस्तु है, वह कैसा है, उसमें कौन-कौनसे और कैसे-कैसे तत्त्व हैं, इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर तत्त्वचिन्तकोंने एक ही प्रकारका नहीं दिया। इसका सबब यही है कि इस उत्तरका आधार प्रमाणकी शक्तिपर निर्भर है; और तत्त्वचिन्तकोंमें प्रमाणकी शक्तिके बारेमें नाना मतामत हैं। भारतीय

तत्त्वचिन्तकोंका प्रमाणशक्तिके तारतम्य संबंधी मतभेद संक्षेपमें पांच पक्षोंमें विभक्त हो जाता है – १. इन्द्रियाधिपत्य, २. अनिन्द्रियाधिपत्य, ३. उभयाधिपत्य, ४. आगमाधिपत्य और ५. प्रमाणोपप्लव – ऐसे पांच पक्ष हैं।

१. जिस पक्षका मन्तव्य यह है कि प्रमाणकी सारी शक्ति इन्द्रियोंके ऊपर ही अवलम्बित है; मन खुद इन्द्रियोंका अनुगमन कर सकता है पर वह इन्द्रियोंकी मददके सिवाय कहीं भी अर्थात् जहाँ इन्द्रियोंकी पहुँच न हो वहाँ कभी प्रवृत्त हो कर सच्चा ज्ञान पैदा कर ही नहीं सकता। सच्चे ज्ञानका अगर संभव है तो इन्द्रियोंके द्वारा ही – यह है इन्द्रियाधिपत्य पक्ष। इस पक्षमें चार्वाक दर्शन ही समाविष्ट है। यह नहीं कि चार्वाक अनुमान या शब्दव्यवहाररूप आगम आदि प्रमाणोंको, जो प्रतिदिन सर्वसिद्ध व्यवहारकी वस्तु है, उसे न मानता हो; फिर भी चार्वाक जो अपनेको प्रत्यक्षमात्रवादी=इन्द्रियप्रत्यक्षमात्रवादी कहता है, इसका अर्थ इतना ही है कि अनुमान, शब्द आदि कोई भी लौकिक प्रमाण क्यों न हो, पर उसका प्रामाण्य इन्द्रियप्रत्यक्षके संवादके सिवाय कभी संभव नहीं। अर्थात् इन्द्रियप्रत्यक्षसे बाधित नहीं ऐसा कोई भी ज्ञानव्यापार अगर प्रमाण कहा जाय तो इसमें चार्वाकको आपत्ति नहीं।

२. अनिन्द्रियके अन्तःकरण=मन, चित्त और आत्मा ऐसे तीन अर्थ फलित होते हैं, जिनमेंसे चित्तरूप अनिन्द्रियका आधिपत्य मानने वाला अनिन्द्रियाधिपत्य पक्ष है। इस पक्षमें विज्ञानवाद, शून्यवाद और शाङ्कर वेदान्तका समावेश है। इस पक्षके अनुसार यथार्थ ज्ञानका संभव विशुद्ध चित्तके द्वारा ही माना जाता है। यह पक्ष इन्द्रियोंकी सत्यज्ञानजननशक्तिका सर्वथा इन्कार करता है और कहता है कि इन्द्रियाँ वास्तविक ज्ञान करानेमें पंगु ही नहीं बल्कि धोखेबाज भी अवश्य हैं। इसके मन्तव्य का निष्कर्ष इतना ही है, कि चित्त–खास कर ध्यानशुद्ध सात्त्विक चित्त–से बाधित या उसका संवाद प्राप्त न कर सकने वाला कोई ज्ञान प्रमाण हो ही नहीं सकता; फिर चाहे वह भले ही लोकव्यवहारमें प्रमाणरूपसे माना जाता हो।

३. उभयाधिपत्य पक्ष वह है जो न चार्वाककी तरह इन्द्रियोंको ही सब कुछ मान कर इन्द्रियनिरपेक्ष मनका असामर्थ्य स्वीकार करता है और नाही

इन्द्रियोंको पंगु या धोखेबाज मान कर केवल अनिन्द्रिय या चित्तका ही सामर्थ्य स्वीकार करता है। यह पक्ष मानता है कि चाहे मनकी मददसे ही सही, पर इन्द्रियाँ गुणसंपन्न हो सकती हैं और वास्तविक ज्ञान पैदा कर सकती हैं। इसी तरह यह पक्ष मानता है कि इन्द्रियोंकी मदद जहाँ नहीं है वहाँ भी अनिन्द्रिय चित्त यथार्थ ज्ञान करा सकता है। इसीसे इसे उभयाधिपत्य पक्ष कहा है। इसमें सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, मीमांसक आदि दर्शनोंका समावेश है। सांख्य-योग इन्द्रियोंका सादूगुण्य मान कर भी अन्तःकरणकी स्वतन्त्र यथार्थशक्ति मानता है। न्याय-वैशेषिक आदि भी मनकी वैसी ही शक्ति मानते हैं पर फर्क यह है कि सांख्य-योग आत्माका स्वतन्त्र प्रमाण-सामर्थ्य नहीं मानते क्यों कि वे प्रमाणसामर्थ्य बुद्धिमें ही मान कर पुरुष या चेतनको निरतिशय मानते हैं। जब कि न्याय-वैशेषिक आदि, चाहे ईश्वरके आत्माका ही सही, पर आत्माका स्वतन्त्र प्रमाणसामर्थ्य मानते हैं। अर्थात् वे, शरीर तथा मनका अभाव होने पर भी, ईश्वरमें ज्ञानशक्ति मानते हैं। वैभाषिक और सौत्रान्तिक भी इसी पक्षके अन्तर्गत हैं, क्यों कि वे भी इन्द्रिय और मन दोनोंका प्रमाणसामर्थ्य मानते हैं।

४. आगमाधिपत्य पक्ष वह है—जो किसी न किसी विषयमें आगमके सिवाय किसी इन्द्रिय या अनिन्द्रियका प्रमाणसामर्थ्य स्वीकार नहीं करता। यह पक्ष केवल पूर्वमीमांसकका ही है। यद्यपि वह अन्य विषयोंमें सांख्य-योगादिकी तरह उभयाधिपत्य पक्षका ही अनुगामी है, फिर भी धर्म और अधर्म इन दो विषयोंमें वह आगम मात्रका ही सामर्थ्य मानता है। यद्यपि वेदान्तके अनुसार ब्रह्मके विषयमें आगमका ही प्राधान्य है, फिर भी वह आगमाधिपत्य पक्षमें इसलिये नहीं आ सकता कि ब्रह्म विषयमें ध्यानशुद्ध अन्तः करणका भी सामर्थ्य उसे मान्य है।

५. प्रमाणोपप्लव पक्ष वह है—जो इन्द्रिय, अनिन्द्रिय या आगम किसीका सादूगुण्य या सामर्थ्य स्वीकार नहीं करता। वह मानता है कि ऐसा कोई साधन गुणसंपन्न है ही नहीं जो अबाधित ज्ञानकी शक्ति रखता हो। सभी साधन उसके मतसे या पंगु हैं या विप्रलम्भक हैं। इसका अनुगामी तत्त्वोपप्लववादी कहलाता है जो आखिरी हदका चार्वाक ही है। यह पक्ष जयराशिकृत तत्त्वोपप्लवमें स्पष्टतया प्रतिपादित हुआ है।

उक्त पाँचमेंसे तीसरा उभयाधिपत्य पक्ष ही जैन दर्शनका है। क्यों कि वह जिस तरह इन्द्रियोंका स्वतन्त्र सामर्थ्य मानता है, उसी तरह वह अनिन्द्रिय अर्थात् मन और आत्मा दोनोंका अलग अलग भी स्वतन्त्र सामर्थ्य मानता है। आत्माके स्वतन्त्र सामर्थ्यके विषयमें न्याय-वैशेषिक आदिके मन्तव्यसे जैन दर्शनके मन्तव्यमें फर्क यह है कि जैन दर्शन सभी आत्माओंका स्वतन्त्र प्रमाण-सामर्थ्य वैसा ही मानता है जैसा न्याय आदि ईश्वर मात्रका मानते हैं। जैन दर्शन प्रमाणोपप्लव पक्षका निराकरण इसलिये करता है कि उसे प्रमाणसामर्थ्य अवश्य इष्ट है। वह चार्वाकके प्रत्यक्षमात्र वादका विरोध इसलिये करता है कि उसे अनिन्द्रियका भी प्रमाणसामर्थ्य इष्ट है। वह विज्ञान, शून्य और ब्रह्म इन तीनों वादोंका निरसन इसलिये करता है कि उसे इन्द्रियोंका प्रमाणसामर्थ्य भी मान्य है। वह आगमाधिपत्य पक्षका भी विरोधी है, सो इसलिये कि धर्माधर्मके विषयमें अनिन्द्रिय अर्थात् मन और आत्मा दोनोंका प्रमाणसामर्थ्य इष्ट है।

(४) प्रमेयप्रदेशका विस्तार

जैसी प्रमाणशक्तिकी मर्यादा वैसा ही प्रमेयका क्षेत्र विस्तार; अतएव मात्र इन्द्रियसामर्थ्य मानने वाले चार्वाकके सामने सिर्फ स्थूल या दृश्य विश्वका ही प्रमेय क्षेत्र रहा, जो एक या दूसरे रूपमें अनिन्द्रिय प्रमाणका सामर्थ्य मानने वालोंकी दृष्टिमें अनेकधा विस्तीर्ण हुआ। अनिन्द्रिय सामर्थ्यवादी कोई क्यों न हो पर सबको स्थूल विश्वके अलावा एक सूक्ष्म विश्व भी नजर आया। सूक्ष्म विश्वका दर्शन उन सबका बराबर होने पर भी उनकी अपनी जुदी-जुदी कल्पनाओंके तथा परंपरागत भिन्न-भिन्न कल्पनाओंके आधार पर सूक्ष्म प्रमेयके क्षेत्रमें भी अनेक मत व संप्रदाय स्थिर हुए जिनको हम अति संक्षेपमें दो विभागोमें बाँट कर समझ सकते हैं। इनमें एक विभाग तो वह जिसमें जड और चेतन दोनों प्रकारके सूक्ष्म तत्त्वोंको मानने वालोंका समावेश होता है। दूसरा वह जिसमें केवल चेतन या चैतन्य रूप ही सूक्ष्म तत्त्वको मानने वालोंका समावेश होता है। पाश्चात्य तत्त्वज्ञानकी अपेक्षा भारतीय तत्त्वज्ञानमें यह एक ध्यान देने योग्य भेद है कि इसमें सूक्ष्म-प्रमेयतत्त्व मानने वाला अभी तक ऐसा कोई नहीं हुआ जो स्थूल भौतिक विश्वकी तहमें एक मात्र सूक्ष्म जड-तत्त्व ही मानता हो और सूक्ष्म जगत्में चेतन तत्त्वका अस्तित्व ही न मानता हो। इसके विरुद्ध ऐसे तत्त्वज्ञ भारतमें होते आये हैं जो स्थूल विश्वके

अन्तस्तलमें एक मात्र चेतन तत्त्वका सूक्ष्म जगत मानते हैं। इसी अर्थमें भारतको चैतन्यवादी समझना चाहिए। भारतीय तत्त्वज्ञानके साथ पुनर्जन्म, कर्मवाद और बन्ध-मोक्ष की धार्मिक या आचरणलक्षी कल्पना भी मिली हुई है जो सूक्ष्म विश्व मानने वाले सभीको निर्विवाद मान्य है और सभीने अपने-अपने तत्त्वज्ञानके ढांचेके अनुसार चेतन तत्त्वके साथ उसका मेल बिठाया है। इन सूक्ष्म तत्त्वदर्शी परंपराओंमें मुख्यतया चार वाद ऐसे देखे जाते हैं, जिनके बल पर उस-उस परंपराके आचार्यों ने स्थूल और सूक्ष्म विश्वका संबंध बतलाया है या कार्य-कारणका मेल बिठाया है। वे वाद ये हैं – १. आरंभवाद; २. परिणामवाद; ३. प्रतीत्यसमुत्पादवाद; और ४. विवर्तवाद।

१. आरम्भवाद के संक्षेपमें चार लक्षण हैं – (अ) परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त मूल कारणोंका स्वीकार, (इ) कार्य और कारणका आत्यन्तिक भेद, (उ) कारण नित्य हो या अनित्य पर कार्योत्पत्तिमें उसका अपरिणामी ही रहना, (ऋ) अपूर्व अर्थात् उत्पत्तिके पहिले असत् ऐसे कार्यकी उत्पत्ति या किञ्चित्कालीन सत्ता।

२. परिणामवाद के लक्षण ठीक आरंभवाद से उलटे हैं – (अ) एक ही मूल कारणका स्वीकार, (इ) कार्यकारणका वास्तविक अभेद, (उ) नित्य कारणका भी परिणामी हो कर ही रहना तथा प्रवृत्त होना, (ऋ) कार्य मात्रका अपने-अपने कारणमें और सब कार्योंका मूल कारणमें तीनों कालमें अस्तित्व अर्थात् अपूर्व वस्तुकी उत्पत्तिका सर्वथा इन्कार।

३. प्रतीत्यसमुत्पाद वादके तीन लक्षण हैं – (अ) कारण और कार्यका आत्यन्तिक भेद, (इ) किसी भी नित्य या परिणामी कारण का सर्वथा अस्वीकार, (उ) और प्रथमसे असत् ऐसे कार्यमात्रका उत्पाद।

४. विवर्तवाद के तीन लक्षण ये हैं – (अ) किसी एक पारमार्थिक सत्यका स्वीकार जो न उत्पादक है और न परिणामी, (इ) स्थूल या सूक्ष्म भासमान जगत्की उत्पत्तिका या उसे परिणाम माननेका सर्वथा निषेध, (उ) स्थूल जगत्का अवास्तविक या काल्पनिक अस्तित्व अर्थात् मायिक भासमात्र।

१ आरंभवाद – इसका मन्तव्य यह है कि परमाणुरूप अनन्त सूक्ष्म तत्त्व जुदे-जुदे हैं जिनके पारस्परिक संबंधोंसे स्थूल भौतिक जगत्का नया ही निर्माण होता है और जो फिर सर्वथा नष्ट भी हो जाता है। इसके अनुसार वे

सूक्ष्म आरंभक तत्त्व अनादि-निधन हैं, अपरिणामी हैं। अगर फेर-फार होता है तो उनके गुणधर्मोंमें ही होता है। इस वादने स्थूल भौतिक जगत् का संबंध सूक्ष्म भूतके साथ लगा कर फिर सूक्ष्म चेतनतत्त्वका भी अस्तित्व माना है। उसने परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त चेतन तत्त्व माने जो अनादि-निधन एवं अपरिणामी ही हैं। इस वादने जैसे सूक्ष्म भूत तत्त्वोंको अपरिणामी ही मान कर उनमें उत्पन्न और नष्ट होने वाले गुणधर्मोंके अस्तित्वकी अलग कल्पना की; वैसे ही चेतन तत्त्वोंको अपरिणामी मान कर भी उनमें उत्पाद-विनाशशाली गुणधर्मोंका अलग ही अस्तित्व स्वीकार किया है। इस मतके अनुसार स्थूल भौतिक विश्वका सूक्ष्म भूतके साथ तो उपादानोपादेयभाव संबंध है पर सूक्ष्म-चेतन तत्त्वके साथ सिर्फ संयोग संबंध है।

२. परिणामवाद—इसके मुख्य दो भेद हैं–(अ) प्रधानपरिणामवाद और (आ) ब्रह्मपरिणामवाद ।

(अ) प्रधानपरिणामवादके अनुसार स्थूल विश्वके अन्तस्तलमें एक सूक्ष्म प्रधान नामक ऐसा तत्त्व है जो जुदे जुदे अनन्त परमाणु रूप न हो कर उनसे भी सूक्ष्मतम स्वरूपमें अखण्ड रूपसे वर्तमान है और जो खुद ही परमाणुओंकी तरह अपरिणामी न रह कर अनादि अनन्त होते हुए भी नाना परिणामोंमें परिणत होता रहता है। इस वादके अनुसार यह स्थूल भौतिक विश्व इस सूक्ष्मतत्त्वके दृश्य परिणामोंके सिवाय और कुछ नहीं। इस वाद में परमाणुवादकी तरह सूक्ष्म तत्त्व अपरिणामी रह कर उसमेंसे स्थूल भौतिक विश्वका नूतन निर्माण नहीं होता। पर वह सूक्ष्म प्रधानतत्त्व जो स्वयं परमाणुकी तरह जड़ ही है, नाना दृश्य भौतिक रूपमें बदलता रहता है। इस प्रधान-परिणामवादने स्थूल विश्वका, सूक्ष्म पर जड़ ऐसे, एक मात्र प्रधान तत्त्वके साथ अभेद संबंध लगा कर सूक्ष्म जगत्में चेतन तत्त्वोंका भी अस्तित्व स्वीकार किया। इस वादके चेतन तत्त्व आरंभवाद की तरह अनन्त ही हैं पर फर्क दोनोंका यह है कि आरंभवादके चेतन तत्त्व अपरिणामी होते हुए भी उत्पाद-विनाशवाले गुणधर्म युक्त हैं; जब कि प्रधामपरिणामवादके चेतन तत्त्व ऐसे गुणधर्मोंसे युक्त नहीं। वे स्वयं भी कूटस्थ होनेसे अपरिणामी हैं और निर्धर्मक होनेसे किसी उत्पाद-विनाशशाली गुणधर्मको भी धारण नहीं करते। उसका कहना यह है कि उत्पाद-विनाश-

वाले गुणधर्म जब सूक्ष्म भूतमें देखे जाते हैं तब सूक्ष्म चेतन कुछ विलक्षण ही होना चाहिए। अगर सूक्ष्म चेतन, चेतन हो कर भी वैसे गुणधर्मयुक्त हों, तब जड सूक्ष्मसे उनका वैलक्षण्य क्या रहा? अतएव वह कहता है कि अगर सूक्ष्म चेतनका अस्तित्व मानना ही है तब तो सूक्ष्म भूतकी अपेक्षा विलक्षणता लानेके लिये उन्हें न केवल निर्धर्मक ही मानना उचित है बल्कि अपरिणामी भी मानना जरूरी है। इस तरह प्रधानपरिणामवादमें चेतन तत्त्व आये सही पर वे निर्धर्मक और अपरिणामी ही माने गए।

(आ) ब्रह्म-परिणामवाद जो प्रधान-परिणामवादका ही विकसित रूप जान पड़ता है, उसने यह तो मान लिया कि स्थूल विश्वके मूलमें कोई सूक्ष्म तत्त्व है जो स्थूल विश्वका कारण है पर उसने कहा कि ऐसा सूक्ष्म कारण जडप्रधान तत्त्व मान कर उससे भिन्न सूक्ष्म चेतन तत्त्व भी मानना, और वह भी ऐसा कि जो अजागलस्तन की तरह सर्वथा अकिञ्चित्कर, सो युक्तिसंगत नहीं। उसने प्रधानवादमें चेतन तत्त्वके अस्तित्वकी अनुपयोगिताको ही नहीं देखा बल्कि चेतन तत्त्वमें अनन्त संख्याकी कल्पनाको भी अनावश्यक समझा। इसी समझसे उसने सूक्ष्म जगत्की कल्पना ऐसी की जिससे स्थूल जगतकी रचना भी घट सके और अकिञ्चित्कर ऐसे अनन्त चेतन तत्त्वोंकी निष्प्रयोजन कल्पनाका दोष भी न रहे। इसीसे इस वादने स्थूल विश्वके अन्तस्तलमें जड चेतन ऐसे परस्पर विरोधी दो तत्त्व न मान कर केवल एक ब्रह्म नामक चेतन तत्त्व ही स्वीकार किया और उसका प्रधानपरिणाम की तरह परिणाम मान लिया जिससे उसी एक चेतन ब्रह्म तत्त्वमेंसे दूसरे जड चेतनमय स्थूल विश्वका आविर्भाव-तिरोभाव घट सके। प्रधान-परिणामवाद और ब्रह्म-परिणामवादमें फर्क इतना ही है कि पहिलेमें जड परिणामी ही है और चेतन अपरिणामी ही है; जब दूसरे में अन्तिम सूक्ष्म तत्त्व एक मात्र चेतन ही है जो स्वयं ही परिणामी है और उसी चेतनमेंसे आगेके जड चेतन ऐसे दो परिणामप्रवाह चले।

३ प्रतीत्यसमुत्पादवाद—यह भी स्थूल भूतके नीचे जड और चेतन ऐसे दो सूक्ष्म तत्त्व मानता है जो क्रमशः रूप और नाम कहलाते हैं। इस वादके जड और चेतन दोनों सूक्ष्म तत्त्व परमाणु रूप हैं; आरंभवाद की तरह केवल जड तत्त्व ही परमाणु रूप नहीं। इस वादमें परमाणुका स्वीकार होते हुए भी उसका स्वरूप आरंभवादके परमाणुसे बिल्कुल भिन्न

माना गया है। आरंभवादमें परमाणु अपरिणामी होते हुए भी उनमें गुणधर्मोंकी उत्पाद-विनाशपरंपरा अलग मानी जाती है। जब कि यह प्रतीत्यसमुत्पादवाद उस गुणधर्मोंकी उत्पाद-विनाशपरंपराको ही अपने मतमें विशिष्ट रूपसे ढाल कर, उसके आधारभूत स्थायी परमाणु द्रव्योंको बिलकुल नहीं मानता। इसी तरह चेतन तत्त्वके विषयमें भी यह वाद कहता है कि स्थायी ऐसे एक या अनेक कोई चेतन तत्त्व नहीं। अलबत्ता सूक्ष्म जड उत्पाद-विनाशशाली परंपराकी तरह दूसरी चैतन्यरूप उत्पाद-विनाशशाली परंपरा भी मूलमें, जडसे भिन्न ही, सूक्ष्म जगत्में विद्यमान है, जिसका कोई स्थायी आधार नहीं। इस वादके परमाणु इसलिये परमाणु कहलाते हैं कि वे सबसे अतिसूक्ष्म और अविभाज्य मात्र हैं। पर इसलिये परमाणु नहीं कहलाते कि वे कोई अविभाज्य स्थायी द्रव्य हों। यह वाद कहता है कि गुणधर्मरहित कूटस्थ चेतन तत्त्व जैसे अनुपयोगी हैं वैसे ही गुणधर्मों का उत्पाद-विनाश मान लेने पर उसके आधार रूपसे फिर स्थायी द्रव्यकी कल्पना करना भी निरर्थक है। अतएव इस वादके अनुसार सूक्ष्म जगत्में दो धाराएँ फलित होती हैं, जो परस्पर बिलकुल भिन्न हो कर भी, एक दूसरेके असरसे खाली नहीं। प्रधानपरिणाम या ब्रह्मपरिणाम वादसे इस वादमें फर्क यह है कि इसमें उक्त दोनों वादोंकी तरह किसी भी स्थायी द्रव्यका अस्तित्व नहीं माना जाता। ऐसा शंकु या कीलक स्थानीय स्थायी द्रव्य न होते हुए भी पूर्व परिणामक्षणका यह स्वभाव है कि वह नष्ट होते होते दूसरे परिणाम-क्षणको पैदा करता ही जायगा। अर्थात् उत्तर परिणामक्षण विनाशोन्मुख पूर्व परिणामके अस्तित्व मात्रके आश्रयसे आप ही निराधार उत्पन्न हो जाता है। इसी मान्यताके कारण यह प्रतीत्यसमुत्पाद वाद कहलाता है। वस्तुतः प्रतीत्यसमुत्पादवाद परमाणुवाद भी है और परिणामवाद भी। फिर भी तात्त्विकरूपमें वह दोनोंसे भिन्न है।

४ विवर्तवाद—विवर्तवादके मुख्य दो भेद हैं (अ) नित्यब्रह्मविवर्त और (आ) क्षणिकविज्ञानविवर्त। दोनों विवर्तवादोंके अनुसार स्थूल विश्व यह निरा भासमात्र या कल्पनामात्र है, जो माया या वासनाजनित है। विवर्त्तवादका अभिप्राय यह है, कि जगत् या विश्व कोई ऐसी वस्तु नहीं हो सकती, जिसमें बाह्य और आन्तरिक या स्थूल और सूक्ष्म तत्त्व अलग और खण्डित हों।

विश्वमें जो कुछ वास्तविक सत्य हो सकता है वह एक ही हो सकता है क्यों कि विश्व वस्तुतः अखण्ड और अविभाज्य ही है। ऐसी दशामें जो बाह्यत्व-आन्तरत्व, ह्रस्वत्व-दीर्घत्व, दूरत्व-समीपत्व आदि धर्मद्वन्द्व मालूम होते हैं वे मात्र काल्पनिक हैं। अतएव इस वादके अनुसार लोकसिद्ध स्थूल विश्व केवल काल्पनिक और प्रातिभासिक सत्य है। पारमार्थिक सत्य उसकी तहमें निहित है जो विशुद्ध ध्यानगम्य होने के कारण अपने असली स्वरूपमें प्राकृत जनोंके द्वारा ग्राह्य नहीं।

न्याय-वैशेषिक और पूर्वमीमांसक आरंभवादी हैं। प्रधानपरिणामवाद सांख्य-योग और चरकका है। ब्रह्मपरिणामवादके समर्थक भर्तृप्रपञ्च आदि प्राचीन वेदान्ती और आधुनिक वल्लभाचार्य हैं। प्रतीत्यसमुत्पादवाद बौद्धोंका है और विवर्तवादके समर्थक शाङ्कर वेदान्ती, विज्ञानवादी और शून्यवादी हैं।

ऊपर जिन वादोंका वर्णन किया है उनके उपादानरूप विचारोंका ऐतिहासिक क्रम संभवतः ऐसा जान पड़ता है – शुरूमें वास्तविक कार्यकारणभाव की खोज जड़ जगत तक ही सीमित रही। वहीं तक वह परिमित रहा। क्रमशः स्थूलके उस पार चेतन तत्त्वकी शोध अर्थात् कल्पना होते ही, दृश्य और जड़ जगतमें प्रथमसे ही सिद्ध उस कार्यकारणभावकी परिणामिनित्यता रूपसे चेतन तत्त्व तक पहुँच हुई। चेतन भी जड़की तरह अगर परिणामिनित्य हो तो फिर दोनोंमें अन्तर ही क्या रहा? इस प्रश्नने फिर चेतनको कायम रख कर उसमें कूटस्थ नित्यता माननेकी ओर तथा परिणामिनित्यता या कार्यकारणभावको जड जगत तक ही परिमित रखनेकी ओर विचारकोंको प्रेरित किया। चेतनमें मानी जाने वाली कूटस्थ नित्यताका परीक्षण फिर शुरू हुवा। जिसमेंसे अन्ततो गत्वा केवल कूटस्थ नित्यता ही नहीं बल्कि जडगत परिणामिनित्यता भी लुप्त हो कर मात्र परिणमनधारा ही शेष रह गई। इस प्रकार, एक तरफ आत्यन्तिक विश्लेषणने मात्र परिणाम या क्षणिकत्व विचारको जन्म दिया, तब दूसरी ओर आत्यन्तिक समन्वय बुद्धिने चैतन्यमात्र पारमार्थिकवादको जन्माया। समन्वय बुद्धिने अन्तमें चैतन्य तक पहुँच कर सोचा कि जब सर्व व्यापक चैतन्य तत्त्व है तब उससे भिन्न जड़ तत्त्वकी वास्तविकता क्यों मानी जाय? और जब कोई जड़ तत्त्व अलग नहीं तब यह दृश्यमान परिणमनधारा भी वास्तविक क्यों? इस विचारने सारे भेद

और जड़ जगत्को मात्र काल्पनिक मनवा कर पारमार्थिक चैतन्यमात्र वादकी स्थापना कराई ।

उक्त विचारक्रमके सोपान इस तरह रखे जा सकते हैं—

१ जड़ मात्रमें परिणामिनित्यता ।

२ जड़ चेतन दोनोंमें परिणामिनित्यता ।

३ जड़में परिणामिनित्यता और चेतनमें कूटस्थनित्यताका विवेक ।

४ (अ) कूटस्थ और परिणामि दोनों नित्यताओंका लोप और मात्र परिणामप्रवाहकी सत्यता ।

(आ) केवल कूटस्थ चैतन्यकी ही या चैतन्यमात्रकी सत्यता और तद्भिन्न सबकी काल्पनिकता या असत्यता ।

जैन परम्परा दृश्य विश्वके अलावा परस्पर अत्यन्त भिन्न ऐसे जड और चेतन अनन्त सूक्ष्म तत्त्वोंको मानती है । वह स्थूल जगतको सूक्ष्म जड़ तत्त्वोंका ही कार्य या रूपान्तर मानती है । जैन परंपराके सूक्ष्म जड तत्त्व परमाणुरूप हैं । पर वे आरम्भवादके परमाणुकी अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म माने गये हैं । परमाणुवादी हो कर भी जैन दर्शन परिणामवादकी तरह परमाणुओंको परिणामी मान कर स्थूल जगतको उन्हींका रूपान्तर या परिणाम मानता है । वस्तुतः जैन दर्शन परिणामवादी है । पर सांख्य, योग तथा प्राचीन वेदान्त आदि के परिणामवादसे जैन परिणामवादका खास अन्तर है । वह अन्तर यह है कि सांख्य-योगका परिणामवाद चेतन तत्त्वसे अस्पृष्ट होनेके कारण जड़ तक ही परिमित है और भर्तृप्रपञ्च आदिका परिणामवाद मात्र चेतनतत्त्वस्पर्शी है । जब कि जैन परिणामवाद जड-चेतन, स्थूल-सूक्ष्म समग्र वस्तुस्पर्शी है अतएव जैन परिणामवादको सर्व व्यापक परिणामवाद समझना चाहिए । भर्तृप्रपञ्चका परिणामवाद भी सर्व व्यापक कहा जा सकता है; फिर भी उसके और जैनके परिणामवादमें अन्तर यह है कि भर्तृप्रपञ्चका 'सर्व' चेतन ब्रह्ममात्र है — तद्भिन्न और कुछ नहीं । जब कि जैनका 'सर्व' अनन्त जड और चेतन तत्त्वोंका है । इस तरह आरम्भ और परिणाम दोनों वादोंका जैन दर्शनमें व्यापकरूपमें पूरा स्थान तथा समन्वय है । पर उसमें प्रतीत्यसमुत्पाद तथा विवर्तवादका कोई स्थान नहीं है । वस्तुमात्रको परिणामी नित्य और समानरूपसे वास्तविक सत्य माननेके कारण जैनदर्शन प्रतीत्यसमुत्पाद तथा विवर्तवादका

सर्वथा विरोध ही करता है; जैसा कि न्याय-वैशेषिक सांख्य-योग आदि भी करते हैं। न्याय-वैशेषिक सांख्य-योग आदिकी तरह जैन दर्शन चेतनबहुत्ववादी है सही, पर उसके चेतन तत्त्व अनेक दृष्टिसे भिन्न स्वरूप वाले हैं। जैन दर्शन, न्याय सांख्य आदिकी तरह चेतनको न सर्वव्यापक द्रव्य मानता है और न विशिष्टाद्वैत आदिकी तरह अणु मात्र ही मानता है। और ना ही बौद्ध दर्शनकी तरह ज्ञानकी निर्द्रव्यकधारा मात्र। जैनाभिमत समग्र चेतन तत्त्व मध्यम परिमाण वाले और संकोच-विस्तारशील होनेके कारण इस विषयमें वे जड द्रव्योंसे अत्यन्त विलक्षण नहीं हैं। न्याय-वैशेषिक और योगदर्शन मानते हैं कि आत्मत्व या चेतनत्व समान होने पर भी जीवात्मा और परमात्माके बीच मौलिक भेद है – अर्थात् जीवात्मा कभी परमात्मा या ईश्वर नहीं; और परमात्मा, सदासे ही परमात्मा या ईश्वर है; कभी जीव – बन्धवान नहीं होता। जैन दर्शन इससे बिलकुल उल्टा मानता है – जैसा कि वेदान्त आदि मानते हैं। वह कहता है कि जीवात्मा और ईश्वरका कोई सहज भेद नहीं है। सब जीवात्माओं में परमात्मशक्ति एक-सी है जो साधन पा कर व्यक्त हो सकती है और होती भी रहती है। अलबत्ता जैन और वेदान्तका इस विषयमें इतना अन्तर अवश्य है कि वेदान्त एक-परमात्मवादी है जब जैनदर्शन चेतनबहुत्ववादी होनेके कारण-तात्त्विकरूपसे बहु-परमात्मवादी है।

जैन परम्पराके तत्त्वप्रतिपादक प्राचीन, अर्वाचीन, प्राकृत, संस्कृत कोई भी ग्रन्थ क्यों न हो और उन सबमें परस्पर निरूपण और वर्गीकरणका प्रकार कुछ भिन्न भी क्यों न हो, पर उनमें प्रतिपादक दृष्टि और प्रतिपाद्य प्रमेय, प्रमाता आदिका स्वरूप वही है जो संक्षेपमें ऊपर स्पष्ट किया गया है। यह 'प्रमाणमीमांसा' भी उसी जैन दृष्टिसे उन्हीं जैन मन्तव्योंका हार्द अपने ढंग से प्रगट करती है।

*

§ २. बाह्य स्वरूप।

हेमचन्द्रकृत इस 'प्रमाणमीमांसा' के बाह्य स्वरूपका परिचय निम्न लिखित मुद्दोंके वर्णनसे हो सकेगा – शैली, विभाग, परिमाण, और भाषा।

प्रमाणमीमांसा सूत्रशैलीका ग्रन्थ है। वह कणाद सूत्रों या तत्त्वार्थ सूत्रोंकी तरह न दश अध्यायोंमें, और न जैमिनीय सूत्रोंकी तरह बारह अध्यायोंमें है।

बादरायण सूत्रोंकी तरह इसके चार अध्याय भी नहीं और पातञ्जल सूत्रोंकी तरह मात्र चार पाद भी नहीं। यह अक्षपादके सूत्रोंकी तरह पांच अध्यायोंमें विभक्त है और प्रत्येक अध्याय कणाद या अक्षपादके अध्यायकी तरह दो दो आह्निकोंमें परिसमाप्त है। हेमचन्द्रने अपने जुदे जुदे विषयके ग्रन्थोंमें विभागके जुदे जुदे क्रमका अवलम्बन करके, अपने समय तकमें प्रसिद्ध, संस्कृत वाङ्मयके प्रतिष्ठित सभी शाखाओंके ग्रन्थोंके विभाग क्रमको अपने साहित्यमें अपनाया है। किसीमें उन्होंने अध्याय और पादका विभाग रखा; कहीं अध्याय-मात्रका; और कहीं पर्व, सर्ग, काण्ड आदिका। प्रमाणमीमांसा तर्क ग्रन्थ होनेके कारण इसमें उन्होंने अक्षपादके प्रसिद्ध न्यायसूत्रोंके अध्याय-आह्निकका ही विभाग रखा, जो हेमचन्द्रके पूर्व अकलङ्कने जैन वाङ्मयमें शुरू किया था।

प्रमाणमीमांसा पूर्ण उपलब्ध नहीं। इसके मूलसूत्र भी उतने ही मिलते हैं जितनोंकी वृत्ति लभ्य है। अतएव अगर उन्होंने सब मूलसूत्र रचे भी हों तब भी पता नहीं चल सकता कि उनकी कुल संख्या कितनी होगी। उपलब्ध सूत्रोंकी संख्या १०० है और उतने ही सूत्रोंकी वृत्ति भी है। अन्तिम उपलब्ध सूत्र २. १. ३५ की वृत्ति पूर्ण होनेके बाद, एक नये सूत्रका उत्थान उन्होंने शुरू किया है और उस अधूरे उत्थानमें ही खण्डित लभ्य ग्रन्थ पूर्ण हो जाता है। माळूम नहीं कि इसके आगे कितने सूत्रोंसे वह आह्निक पूरा होता होगा। जो कुछ हो पर उपलब्ध ग्रन्थ, दो अध्याय तीन आह्निक मात्र है, जो स्वोपज्ञ वृति सहित है।

यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं कि प्रमाणमीमांसा किस भाषामें है, पर उसकी भाषा विषयक योग्यताके बारेमें थोडा जान लेना जरूरी है। इसमें सन्देह नहीं कि जैन वाङ्मयमें संस्कृत भाषाके प्रवेशके बाद उत्तरोत्तर संस्कृत भाषाका वैशारद्य और प्राञ्जल लेखपाटव बढता ही आ रहा था फिर भी हेमचन्द्रसूरिका लेखवैशारद्य, कमसे कम जैन वाङ्मयमें तो, मूर्धन्य स्थान रखता है। वैयाकरण, आलङ्कारिक, कवि और कोषकार रूपसे हेम-चन्द्रका स्थान न केवल समग्र जैन परंपरामें बल्कि भारतीय विद्वत्परंपरामें भी असाधारण रहा। यही उनकी असाधारणता और व्यवहारदक्षता प्रमाण-मीमांसाकी भाषा व रचनामें भी स्पष्ट होती है। भाषा उनकी वाचस्पति मिश्र की तरह नपी-तूली और शब्दाडंबर शून्य सहज प्रसन्न है। वर्णन न उतना

संक्षेपमें है जिससे वक्तव्य अस्पष्ट रहे; और न इतना विस्तीर्ण है जिससे ग्रन्थ केवल शोभाकी वस्तु बना रहे ।

*

§ ३. जैन तर्कसाहित्यमें प्रमाणमीमांसाका स्थान ।

जैन तर्क साहित्यमें प्रमाणमीमांसाका स्थान क्या है इसे समझनेके लिये जैन साहित्यके परिवर्तन या विकास संबधी युगोंका कुछ ऐतिहासिक अवलोकन करना जरूरी है । ऐसे युग संक्षेपमें तीन हैं–१ आगमयुग, २ संस्कृतप्रवेश या अनेकान्तस्थापन युग, ३ न्यायप्रमाणस्थापन युग ।

पहला युग भगवान महावीर या उनके पूर्ववर्ती भगवान पार्श्वनाथसे ले कर आगम संकलना पर्यन्तका – विक्रमीय पञ्चम-षष्ठ शताब्दी तकका – करीब हजार-बारह सौ वर्षका है । दूसरा युग करीब दो शताब्दियोंका है जो अनुमानतः विक्रमीय छठी शताब्दीसे शुरू हो कर सातवीं शताब्दीके अन्तमें पूर्ण होता है । तीसरा युग विक्रमीय आठवीं शताब्दीसे ले कर अठारहवीं शताब्दी तकका करीब एक हजार वर्षका है ।

सांप्रदायिक संघर्ष और दार्शनिक तथा दूसरी विविध विद्याओंके विकास–विस्तारके प्रभावके सबबसे जैन परंपराकी साहित्यकी अन्तर्मुख या बहिर्मुख प्रवृत्तिमें कितना ही युगान्तर जैसा स्वरूपभेद या परिवर्तन क्यों न हुआ हो, पर जैसा हमने पहिले सूचित किया है वैसा ही, अथ से इति तक देखने पर भी हमें न जैन दृष्टिमें और न उसके बाह्य-आभ्यन्तर तात्त्विक मन्तव्योंमें परिवर्तन हुआ मालूम होता है ।

१. **आगमयुग** – इस युगमें भाषाकी दृष्टिसे प्राकृत या लोक भाषाओंकी ही प्रतिष्ठा रही जिससे संस्कृत भाषा और उसके वाङ्मयके परिशीलनकी ओर आत्यन्तिक उपेक्षाका होना सहज था, जैसा कि बौद्ध परंपरा में भी हुआ था । इस युगका प्रमेयनिरूपण आचारलक्षी होनेके कारण उसमें मुख्यतया स्वमतप्रदर्शन का ही भाव है । राजसभाओं और इतर वादगोष्ठिओंमें विजयकी भावनासे प्रेरित हो कर शास्त्रार्थ करनेकी तथा खण्डनप्रधान ग्रन्थनिर्माणकी प्रवृत्तिका भी इस युगमें अभाव सा है । इस युगका प्रधान लक्षण जड-चेतनके भेद-प्रभेदोंका विस्तृत वर्णन तथा अहिंसा-संयम-तप आदि आचारोंका निरूपण करना है ।

आगम युग और संस्कृत युगके साहित्यका पारस्परिक अन्तर, संक्षेपमे इतने-ही-में कहा जा सकता है कि पहिले युगका जैन साहित्य, बौद्ध साहित्यकी तरह अपने मूल उद्देशके अनुसार लोकभोग्य ही रहा है। जब कि संस्कृत भाषा और उसमें निबद्ध तर्क साहित्यके अध्ययनकी व्यापक प्रवृत्तिके बाद, उसका निरूपण सूक्ष्म और विशद होता गया है सही पर साथ ही साथ वह इतना जटिल भी होता गया कि अन्तमें संस्कृतकालीन साहित्य लोकभोग्यताके मूल उद्देशसे च्युत हो कर केवल विद्वद्भोग्य ही बनता गया।

२. संस्कृतप्रवेश या अनेकान्तस्थापन युग

संभवतः वाचक उमास्वाति या तत्सदृश अन्य आचार्योंके द्वारा, जैन वाङ्मयमें संस्कृत भाषाका प्रवेश होते ही दूसरे युगका परिवर्तनकारी लक्षण शुरू होता है, जो कि बौद्ध परंपरामें अनेक शताब्दी पहिले ही शुरू हो गया था। इस युगमें संस्कृत भाषाके अभ्यासकी तथा उसमें ग्रन्थ-प्रणयनकी प्रतिष्ठा स्थिर होती है। इसमें राजसभाप्रवेश, परवादियोंके साथ वादगोष्ठी और परमतखण्डनकी प्रधान दृष्टिसे स्वमत स्थापक ग्रन्थोंकी रचना—ये कार्य प्रधानतया नजर आते हैं। इस युगमें सिद्धसेन जैसे एक-आध आचार्यने जैन न्यायकी व्यवस्था दर्शाने वाला एक-आध ग्रन्थ भले ही रचा हो, पर अब तक इस युगमें जैन न्याय या प्रमाण शास्त्रोंकी न तो पूरी व्यवस्था हुई जान पड़ती है और न तद्विषयक तार्किक साहित्यका निर्माण ही देखा जाता है। इस युगके जैन तार्किकोंकी प्रवृत्तिकी प्रधान दिशा दार्शनिक क्षेत्रोंमें एक ऐसे जैन मन्तव्यके स्थापनकी ओर रही है जिसके बिखरे हुए और कुछ स्पष्ट-अस्पष्ट बीज आगममें थे; और जो मन्तव्य आगे जा कर सभी भारतीय दर्शनपरंपरामें एक मात्र जैन परंपराका ही समझा जाने लगा, तथा जिस मन्तव्यके नाम पर आज तक सारे जैन दर्शनका व्यवहार किया जाता है। यह मन्तव्य है अनेकान्तवादका। दूसरे युगमें सिद्धसेन हो या समन्तभद्र, मल्लवादी हो या जिनभद्र—सभीने दर्शनान्तरोंके सामने, अपने जैनमतकी अनेकान्त दृष्टि, तार्किक शैलीसे तथा परमत खण्डनके अभिप्रायसे इस तरह रखी है कि जिससे इस युगको अनेकान्तस्थापन युग ही कहना समुचित होगा। हम देखते हैं कि उक्त आचार्योंके पूर्ववर्ती किसीके प्राकृत या संस्कृत

ग्रन्थमें न तो वैसी अनेकान्तकी तार्किक स्थापना है, और न अनेकान्त मूलक सप्तभङ्गी और नयवादका वैसा तार्किक विश्लेषण है, जैसा हम सन्मति, द्वात्रिंशत्‌द्वित्रिंशिका, न्यायावतार, स्वयंभूस्तोत्र, आप्त-मीमांसा, युक्त्यनुशासन, नयचक्र और विशेषावश्यक भाष्यमें पाते हैं। इस युगके तर्क-दर्शन निष्णात जैन आचार्योंने नयवाद, सप्तभङ्गी और अनेकान्तवाद की प्रबल और स्पष्ट स्थापना की; और इतना अधिक पुरुषार्थ किया कि जिसके कारण जैन और जैनेतर परंपराओंमें जैन दर्शन अनेकान्त दर्शनके नामसे ही प्रतिष्ठित हो गया और बौद्ध तथा ब्राह्मण दार्शनिक पण्डितोंका लक्ष्य अनेकान्त खण्डनकी ओर गया। तथा, वे किसी-न-किसी प्रकारसे अपने ग्रन्थोंमें मात्र अनेकान्त या सप्तभङ्गीका खण्डन करके ही जैन दर्शनके मन्तव्योंके खण्डनकी इतिश्री समझने लगे। इस युगमें अनेकान्त और तन्मूलक वादोंकी स्थापना इतनी गहरी हुई कि जिसपर उत्तरवर्ती अनेक जैनाचार्योंने अनेकधा पल्लवन किया, लेकिन फिर भी उसमें नई मौलिक युक्तियोंका शायद ही समावेश हुआ है। दो सौ वर्षके इस युगकी साहित्यिक प्रवृत्तिमें जैन न्याय और प्रमाण शास्त्रकी पूर्वभूमिका तो तैयार हुई जान पड़ती है पर इसमें उस शास्त्रका व्यवस्थित निर्माण देखा नहीं जाता। इस युगकी परमतोंके सयुक्तिक खण्डन तथा दर्शनान्तरीय समर्थ विद्वानोंके सामने स्वमतके प्रतिष्ठित स्थापनकी भावनाने जैन परंपरामें संस्कृत भाषाके तथा संस्कृतनिबद्ध दर्शनान्तरीय प्रतिष्ठित ग्रन्थोंके परिशीलनकी प्रबल जिज्ञासा पैदा कर दी और उसीने समर्थ जैन आचार्योंका लक्ष्य अपने निजी न्याय तथा प्रमाण शास्त्रके निर्माणकी ओर खींचा, कि जिसकी कमी बहुत ही अखर रही थी।

३. न्याय-प्रमाणस्थापन युग

इसी परिस्थितिमेंसे अकलङ्क जैसे धुरंधर व्यवस्थापकका जन्म हुआ। संभवतः अकलङ्कने ही पहिले-पहल सोचा कि जैन परंपराके ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता आदि सभी पदार्थोंका निरूपण तार्किक शैलीसे संस्कृत भाषामें वैसा ही शास्त्रबद्ध करना आवश्यक है जैसा ब्राह्मण और बौद्ध परंपराके साहित्यमें बहुत पहिलेसे हो गया है और जिसका अध्ययन अनिवार्य रूपसे जैन तार्किक करने लगे हैं। इस विचारसे अकलङ्कने द्विमुखी प्रवृत्ति शुरू की। एक

ओर तो बौद्ध और ब्राह्मण परंपराके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका सूक्ष्म परिशीलन किया और दूसरी ओर समस्त जैन मन्तव्योंका तार्किक विश्लेषण किया। केवल परमतोंका निरास करने ही से अकलङ्कका उद्देश्य सिद्ध हो नहीं सकता था; अतएव दर्शनान्तरीय शास्त्रोंके सूक्ष्म परिशीलनमेंसे और जैन मतके तलस्पर्शी ज्ञानसे उन्होंने छोटे-छोटे, पर समस्त जैन तर्क और प्रमाण शास्त्रके आधारस्तम्भभूत, अनेक न्याय-प्रमाण विषयक प्रकरण रचे जो दिङ्नाग और खास कर धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध तार्किकोंके तथा उद्योतकर, कुमारिल आदि जैसे ब्राह्मण तार्किकोंके प्रभावसे भरे हुवे होने पर भी, जैन मन्तव्योंकी, बिलकुल नये ढंग और स्वतन्त्रभावसे स्थापना करते हैं। अकलङ्कने न्याय-प्रमाण शास्त्रका जैन परंपरामें जो प्राथमिक निर्माण किया, जो परिभाषाएँ बनाईं, जो लक्षण व परीक्षण किया, जो प्रमाण-प्रमेय आदिका वर्गीकरण किया और परार्थानुमान तथा वादकथा आदि परमतप्रसिद्ध वस्तुओं के संबंधमें जो जैन प्रणाली स्थिर की, संक्षेपमें तबतक जैन परंपरामें नहीं पर अन्य परंपराओंमें प्रसिद्ध ऐसे तर्क शास्त्रके अनेक पदार्थोंका जैन दृष्टिसे जैन परंपरामें जो सात्मीभाव किया तथा आगम सिद्ध अपने मन्तव्योंको जिस तरह दार्शनिकोंके सामने रखने योग्य बनाया, वह सब उनके छोटे-छोटे ग्रन्थोंमें विद्यमान उनके असाधारण पाण्डित्यका तथा न्यायप्रमाणस्थापन युगका द्योतक है।

अकलङ्कके द्वारा प्रारब्ध इस युगमें साक्षात् या परंपरासे अकलङ्कके शिष्य-प्रशिष्योंने ही उनके सूत्रस्थानीय ग्रन्थोंको बड़े-बड़े टीकाग्रन्थोंसे वैसे ही अलङ्कृत किया जैसे धर्मकीर्तिके ग्रन्थोंको उनके शिष्योंने।

अनेकान्त युगकी मात्र पद्यप्रधान रचनाको अकलङ्कने गद्य-पद्यमें परिवर्तित किया था पर उनके उत्तरवर्ती अनुगामियोंने उस रचनाको नानारूपोंमें परिवर्तित किया, जो रूप बौद्ध और ब्राह्मण परंपरामें प्रतिष्ठित हो चुके थे। माणिक्यनन्दी अकलङ्कके ही विचार दोहनमेंसे सूत्रोंका निर्माण करते हैं। विद्यानन्द अकलङ्कके ही सूक्तों पर या तो भाष्य रचते हैं या तो पद्यवार्तिक बनाते हैं या दूसरे छोटे छोटे अनेक प्रकरण बनाते हैं। अनन्तवीर्य, प्रभाचन्द्र और वादिराज जैसे तो अकलङ्कके संक्षिप्त सूक्तों पर इतने बड़े और विशद तथा जटिल भाष्य व विवरण कर डालते हैं कि जिससे तब तकमें

विकसित दर्शनान्तरीय विचार परंपराओंका एक तरहसे जैन वाङ्मयमें पूरा समावेश हो जाता है। दूसरी तरफ श्वेताम्बर परंपराके आचार्य भी उसी अकलङ्क स्थापित प्रणालीकी ओर झुकते है। हरिभद्र जैसे आगमिक और तार्किक ग्रन्थकारने तो सिद्धसेन और समन्तभद्र आदिके मार्गका प्रधानतया अनेकान्तजयपताका आदिमें अनुसरण किया पर धीरे-धीरे न्याय-प्रमाण विषयक स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रणयनकी प्रवृत्ति भी श्वेताम्बर परंपरामें शुरू हुई। श्वेताम्बराचार्य सिद्धसेनने न्यायावतार रचा था। पर वह निरा प्रारंभ मात्र था। अकलङ्कने जैन न्यायकी सारी व्यवस्था स्थिर कर दी। हरिभद्रने दर्शनान्तरीय सब वार्ताओंका समुच्चय भी कर दिया। इस भूमिकाको ले कर शान्त्याचार्य जैसे श्वेतांबर तार्किकने तर्कवार्तिक जैसा छोटा किन्तु सारगर्भ ग्रन्थ रचा। इसके बाद तो श्वेताम्बर परंपरामें न्याय और प्रमाण ग्रन्थोंके संग्रहका, परिशीलनका और नये-नये ग्रन्थ निर्माणका ऐसा पूर आया कि मानों समाजमें तबतक ऐसा कोई प्रतिष्ठित विद्वान् ही न समझा जाने लगा, जिसने संस्कृत भाषामें खास कर तर्क या प्रमाण पर मूल या टीका रूपसे कुछ न कुछ लिखा न हो। इस भावनामेंसे ही अभयदेवका वादार्णव तैयार हुआ जो संभवतः तब तकके जैन संस्कृत ग्रन्थोंमें सबसे बड़ा है। पर जैन परंपरा पोषक गूजरात गत सामाजिक-राजकीय सभी बलोंका सबसे अधिक उपयोग वादीदेवसूरिने किया। उन्होंने अपने ग्रन्थका स्याद्वादरत्नाकर यथार्थ ही नाम रखा। क्यों कि उन्होंने अपने समय तकमें प्रसिद्ध सभी श्वेताम्बर दिगम्बर तार्किकोंके विचारोंका दोहन अपने ग्रन्थमें रख दिया जो स्याद्वाद ही था। और साथ ही उन्होंने अपनी जानीबसे ब्राह्मण और बौद्ध परंपराकी किसी भी शाखाके मन्तव्योंकी विस्तृत चर्चा अपने ग्रन्थमें न छोड़ी। चाहे विस्तारके कारण वह ग्रन्थ पाठ्य रहा न हो पर तर्क शास्त्रके निर्माणमें और विस्तृत निर्माणमें प्रतिष्ठा मानने वाले जैनमतकी बदौलत एक रत्नाकर जैसा समग्र मन्तव्यरत्नोंका संग्रह बन गया, जो न केवल तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे ही उपयोगी है, पर ऐतिहासिक दृष्टिसे भी बड़े महत्त्व का है।

आगमिक साहित्यके प्राचीन और अति विशाल खजानेके उपरान्त तत्त्वार्थसे ले कर स्याद्वादरत्नाकर तकके संस्कृत व तार्किक जैन साहित्यकी भी बहुत बडी राशि हेमचन्द्रके परिशीलन पथमें आई जिससे हेमचन्द्रका सर्वाङ्गीण सर्जक

व्यक्तित्व सन्तुष्ट होनेके बजाय एक ऐसे नये सर्जनकी ओर प्रवृत्त हुवा जो तब तकके जैन वाङ्मयमें अपूर्व स्थान रख सके।

दिङ्नागके न्यायमुख, न्यायप्रवेश आदिसे प्रेरित हो कर सिद्धसेनने जैन परंपरामें न्याय–परार्थानुमानका अवतार कर ही दिया था। समन्तभद्रने, अक्ष-पादके प्रावादुकोंके (अध्याय चतुर्थ) मतनिरासकी तरह, आप्तकी मीमांसाके बहाने सप्तभङ्गीकी स्थापनामें पर प्रवादियोंका निरास कर ही दिया था। तथा उन्होंने जैनेतर शासनोंसे जैन शासनकी विशेष सयुक्तिकताका अनुशासन भी युक्त्यनुशासनमें कर ही दिया था। धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिक, प्रमाणवि-निश्चय आदिसे बल पा कर तीक्ष्णदृष्टि अकलङ्कने जैन न्यायका विशेष निश्चय–व्यवस्थापन तथा जैन प्रमाणोंका संग्रह अर्थात् विभाग, लक्षण आदि द्वारा निरूपण अनेक तरहसे कर दिया था। अकलङ्कने सर्वज्ञत्व, जीवत्व आदिकी सिद्धिके द्वारा धर्मकीर्ति जैसे प्राज्ञ बौद्धोंको जवाब भी दिया था। सूक्ष्मप्रज्ञ विद्यानन्दने आप्तकी, पत्रकी और प्रमाणोंकी परीक्षा द्वारा धर्मकीर्तिकी तथा शान्तरक्षितकी विविध परीक्षाओंका जैन परंपरामें सूत्रपात भी कर ही दिया था। माणिक्यनन्दीने परीक्षामुखके द्वारा न्यायबिन्दुकेसे सूत्र ग्रन्थकी कमी को दूर कर ही दिया था। जैसे धर्मकीर्तिके अनुगामी विनीतदेव, धर्मोत्तर, प्रज्ञा-कर, अर्चट आदि प्रखर तार्किकोंने उनके सभी मूल ग्रन्थों पर छोटे बड़े भाष्य या विवरण लिख कर उनके ग्रन्थोंको पठनीय तथा विचारणीय बना कर बौद्ध न्यायशास्त्रको प्रकर्षकी भूमिका पर पहुँचाया था; वैसे ही एक तरफ से दिगम्बर परंपरामें अकलङ्कके संक्षिप्त पर गहन सूक्तों पर उनके अनुगामी अनन्तवीर्य, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र और वादिराज जैसे विशारद तथा पुरुषार्थी तार्किकोंने विस्तृत व गहन भाष्य-विवरण आदि रच कर जैन न्याय शास्त्रको अतिसमृद्ध बनानेका सिलसिला भी जारी कर ही दिया था और दूसरी तरफसे श्वेताम्बर परंपरामें सिद्धसेनके संस्कृत तथा प्राकृत तर्क प्रकरणोंको उनके अनु-गामिओंने टीका ग्रन्थोंसे भूषित करके उन्हें विशेष सुगम तथा प्रचारणीय बनानेका भी प्रयत्न इसी युगमें शुरू किया था। इसी सिलसिलेमेंसे प्रभाचन्द्र के द्वारा प्रमेयोंके कमल पर मार्तण्डका प्रखर प्रकाश तथा न्यायके कुमुदों पर चन्द्रका सौम्य प्रकाश डाला गया था। अभयदेवके द्वारा तत्त्वबोधविधा-यिनी टीका या वादार्णव रचा जा कर तत्त्वसंग्रह तथा प्रमाणवार्तिकालङ्कार जैसे

बड़े ग्रन्थोंके अभावकी पूर्ति की गई थी। वादि देवसूरिने रत्नाकर रच कर उसमें सभी पूर्ववर्ती जैन ग्रन्थरत्नोंका पूर्णतया संग्रह कर दिया था। यह सब हेमचन्द्रके सामने था। पर उन्हें मालूम हुआ कि उस न्याय-प्रमाण विषयक साहित्यमें कुछ भाग तो ऐसा है जो अति महत्त्वका होते हुए भी एक एक विषयकी ही चर्चा करता है या बहुत ही संक्षिप्त है। दूसरा भाग ऐसा है कि जो है तो सर्वविषयसंग्राही पर वह उत्तरोत्तर इतना अधिक विस्तृत तथा शब्दक्लिष्ट है कि जो सर्व साधारणके अभ्यासका विषय बन नहीं सकता। इस विचारसे हेमचन्द्रने एक ऐसा प्रमाण विषयक ग्रन्थ बनाना चाहा जो कि उनके समय तक चर्चित एक भी दार्शनिक विषयकी चर्चासे खाली न रहे और फिर भी वह पाठ्यक्रम योग्य मध्यम कदका हो। 'प्रमाणमीमांसा' का जन्म इसी दृष्टिसे हुआ। इसमें हेमचन्द्रने पूर्ववर्ती आगमिक--तार्किक सभी जैन मन्तव्योंको विचार व मननसे पचा कर अपने ढंगकी विशद व अपुनरुक्त सूत्रशैलीमें तथा सर्वसंग्राहिणी विशदतम स्वोपज्ञ वृत्तिमें सन्निविष्ट किया। यद्यपि पूर्ववर्ती अनेक जैन ग्रन्थोंका सुसंबद्ध दोहन इस मीमांसामें है जो हमारे टिप्पणोंमें की गई तुलनासे स्पष्ट हो जाता है; फिर भी उसी अधूरी तुलनाके आधारसे यहाँ यह भी कह देना समुचित है कि प्रस्तुत ग्रन्थके निर्माणमें हेमचन्द्रने प्रधानतया किन किन ग्रन्थों या ग्रन्थकारोंका आश्रय लिया है। निर्युक्ति, विशेषावश्यक भाष्य और तत्त्वार्थ जैसे आगमिक ग्रन्थ, तथा सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलङ्क, माणिक्यनन्दी और विद्यानन्दकी प्रायः समस्त कृतियाँ इसकी उपादान सामग्री बनी हैं। प्रभाचन्द्रके मार्तण्डका भी इसमें पूरा असर है। अगर अनन्तवीर्य सचमुच हेमचन्द्रके पूर्ववर्ती या समकालीन वृद्ध रहे होंगे तो यह भी सुनिश्चित है कि इस ग्रन्थकी रचनामें उनकी छोटीसी प्रमेयरत्नमालाका भी यथेष्ट उपयोग हुआ है। वादी देवसूरिकी कृतिका भी उपयोग इसमें स्पष्ट है; फिर भी जैन तार्किकोंमेंसे अकलङ्क और माणिक्यनन्दीका ही मार्गानुगमन प्रधानतया देखा जाता है। उपर्युक्त जैनग्रन्थोंमें आए हुए ब्राह्मण व बौद्ध ग्रन्थोंका उपयोग हो जाना तो स्वाभाविक ही था; तदुपरांत प्रमाणमीमांसाके सूक्ष्म अवलोकन तथा तुलनात्मक अभ्याससे यह भी पता चल जाता है कि हेमचन्द्रने बौद्ध व ब्राह्मण परंपराके किन किन विद्वानोंकी कृतिओंका अध्ययन व परिशीलन विशेषरूपसे किया था जो प्रमाणमीमांसामें उपयुक्त हुआ हो। दिङ्नाग, खास कर धर्म-

कीर्ति, धर्मोत्तर, अर्चट और शान्तरक्षित ये बौद्ध तार्किक इनके अध्ययनके विषय अवश्य रहे हैं। कणाद, भासर्वज्ञ, व्योमशिव, श्रीधर, अक्षपाद, वात्स्यायन, उद्द्योतकर, जयन्त, वाचस्पति मिश्र, शबर, प्रभाकर, कुमारिल आदि जुदी जुदी वैदिक परंपराओंके प्रसिद्ध विद्वानोंकी सब कृतियाँ प्रायः इनके अध्ययनकी विषय रहीं। चार्वाक एकदेशीय जयराशि भट्टका तत्त्वोपप्लव भी इनकी दृष्टिके बाहर नहीं था। यह सब होते हुए भी हेमचन्द्रकी भाषा तथा निरूपण शैली पर धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, अर्चट, भासर्वज्ञ, वात्स्यायन, जयन्त, वाचस्पति, कुमारिल आदिका ही आकर्षक प्रभाव पड़ा हुआ जान पड़ता है। अतएव यह अधूरे रूपमें उपलब्ध प्रमाणमीमांसा भी ऐतिहासिक दृष्टिसे जैन तर्कसाहित्यमें तथा भारतीय दर्शनसाहित्यमें एक विशिष्ट स्थान रखती है।

*

§४. भारतीय प्रमाणशास्त्रमें प्रमाणमीमांसाका स्थान।

भारतीय प्रमाणशास्त्रमें प्रमाणमीमांसाका तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे क्या स्थान है इसे ठीक ठीक समझनेके लिये मुख्यतया दो प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक होगा– १. जैन तार्किकोंकी भारतीय प्रमाणशास्त्रको क्या देन है, जो प्रमाणमीमांसा में सन्निविष्ट हुई हो और जिसको विना जाने किसी तरह भारतीय प्रमाणशास्त्रका पूरा अध्ययन हो नहीं सकता हो। २. पूर्वाचार्योंकी उस देनमें हेमचन्द्र ने अपनी ओरसे कुछ भी विशेष अर्पण किया है या नहीं और किया है तो किन मुद्दों पर?

१. जैनाचार्योंकी भारतीय प्रमाणशास्त्रको देन

१. अनेकान्तवाद–सबसे पहली और सबसे श्रेष्ठ सब देनोंकी चाबी रूप जैनाचार्योंकी मुख्य देन है अनेकान्त तथा नयवादका शास्त्रीय निरूपण।

विश्वका विचार करने वाली परस्पर भिन्न ऐसी मुख्य दो दृष्टियाँ हैं। एक है सामान्यगामिनी और दूसरी है विशेषगामिनी। पहली दृष्टि शुरूमें तो सारे विश्वमें समानता ही देखती है पर वह धीरे-धीरे अभेदकी ओर झुकते झुकते अंतमें सारे विश्वको एक ही मूलमें देखती है और फलतः निश्चय करती है कि जो कुछ प्रतीतिका विषय है वह तत्त्व वास्तवमें एक ही है। इस तरह समानताकी प्राथमिक भूमिकासे उतर कर अंतमें वह दृष्टि तात्त्विक एकताकी भूमिका पर आ कर ठहरती है। उस दृष्टिमें जो एक मात्र विषय स्थिर होता

है, वही सत् है । सत् तत्त्वमें आत्यंतिक रूपसे निमग्न होनेके कारण वह दृष्टि या तो भेदोंको देख ही नहीं पाती या उन्हें देख कर भी वास्तविक न समझनेके कारण व्यावहारिक या अपारमार्थिक या बाधित कह कर छोड़ ही देती है । चाहे फिर वे प्रतीतिगोचर होने वाले भेद कालकृत हों अर्थात् कालपट पर फैले हुए हों, जैसे पूर्वापररूप बीज, अंकुर आदि; या देशकृत हों अर्थात देशपट पर वितत हों, जैसे समकालीन घट, पट आदि प्रकृतिके परिणाम; या द्रव्यगत अर्थात् देशकाल-निरपेक्ष साहजिक हों, जैसे प्रकृति, पुरुष तथा अनेक पुरुष ।

इसके विरुद्ध दूसरी दृष्टि सारे विश्वमें असमानता ही असमानता देखती है और धीरे-धीरे उस असमानताकी जड़की खोज करने करते अंतमें वह विश्लेषणकी ऐसी भूमिका पर पहुँच जाती है, जहाँ उसे एकताकी तो बात ही क्या, समानता भी कृत्रिम मालूम होती है । फलतः वह निश्चय कर लेती है कि विश्व एक दूसरेसे अत्यंत भिन्न ऐसे भेदोंका पुंज मात्र है । वस्तुतः उसमें न कोई वास्तविक एक तत्त्व है और न साम्य ही । चाहे वह एक तत्त्व समग्र देशकाल-व्यापी समझा जाता हो, जैसे प्रकृति; या द्रव्यभेद होने पर भी मात्र काल व्यापी एक समझा जाता हो, जैसे परमाणु ।

उपर्युक्त दोनों दृष्टियाँ मूलमें ही भिन्न हैं । क्यों कि एकका आधार समन्वय मात्र है और दूसरीका आधार विश्लेषण मात्र । इन मूलभूत दो विचार सरणियोंके कारण तथा उनमेंसे प्रस्फुटित होने वाली दूसरी वैसी ही अवान्तर विचारसरणियोंके कारण अनेक मुद्दों पर अनेक विरोधी वाद आप ही आप खड़े हो जाते हैं । हम देखते हैं कि सामान्यगामिनी पहली दृष्टिमेंसे समग्र देश-काल-व्यापी तथा देश-काल-विनिर्मुक्त ऐसे एक मात्र सत्-तत्त्व या ब्रह्माद्वैतका वाद स्थापित हुआ; जिसने एक तरफसे सकल भेदोंको और तद्ग्राहक प्रमाणोंको मिथ्या बतलाया और साथ ही सत्-तत्त्वको वाणी तथा तर्ककी प्रवृत्तिसे शून्य कह कर मात्र अनुभवगम्य कहा । दूसरी विशेषगामिनी दृष्टिमेंसे भी केवल देश और काल भेदसे ही भिन्न नहीं बल्कि स्वरूपसे भी भिन्न ऐसे अनंत भेदोंका वाद स्थापित हुआ; जिसने एक ओरसे सब प्रकारके अभेदोंको मिथ्या बतलाया और दूसरी तरफसे अंतिम भेदोंको वाणी तथा तर्ककी प्रवृत्तिसे शून्य कह कर मात्र अनुभवगम्य बतलाया । ये दोनों वाद अंतमें

शून्यताके तथा स्वानुभवगम्यताके परिणाम पर पहुँचे सही, पर दोनोंका लक्ष्य अत्यंत भिन्न होनेके कारण वे आपसमें बिलकुल ही टकराने और परस्पर विरुद्ध दिखाई देने लगे।

उक्त मूलभूत दो विचारधाराओंमेंसे फूटने वाली या उनसे सम्बन्ध रखने वाली भी अनेक विचारधाराएँ प्रवाहित हुईं। किसीने अभेदको तो अपनाया, पर उसकी व्याप्ति काल और देश पट तक अथवा मात्र कालपट तक रखी। स्वरूप या द्रव्य तक उसे नहीं बढ़ाया। इस विचारधारामेंसे अनेक द्रव्योंको मानने पर भी उन द्रव्योंकी कालिक नित्यता तथा दैशिक व्यापकताके वाद का जन्म हुआ जैसे सांख्यका प्रकृति-पुरुषवाद। दूसरी विचारधाराने उसकी अपेक्षा भेदका क्षेत्र बढ़ाया। जिससे उसने कालिक नित्यता तथा दैशिक व्यापकता मान कर भी स्वरूपतः जड़ द्रव्योंको अधिक संख्यामें स्थान दिया जैसे परमाणु, विभुद्रव्यवाद।

अद्वैतमात्रको या सन्मात्रको स्पर्श करने वाली दृष्टि किसी विषयमें भेद सहन न कर सकनेके कारण अभेदमूलक अनेकवादोंका स्थापन करे, यह स्वाभाविक ही है। हुआ भी ऐसा ही। इसी दृष्टिमेंसे कार्य-कारणके अभेदमूलक मात्र सत्कार्यवादका जन्म हुआ। धर्म-धर्मी, गुण-गुणी, आधार-आधेय आदि द्वंद्वोंके अभेदवाद भी उसीमेंसे फलित हुए। जब कि द्वैत और भेदको स्पर्श करने वाली दृष्टिने अनेक विषयोंमें भेदमूलक ही नाना वाद स्थापित किये। उसने कार्य-कारणके भेदमूलक मात्र असत्कार्यवादको जन्म दिया तथा धर्म-धर्मी, गुण-गुणी, आधार-आधेय आदि अनेक द्वंद्वोंके भेदोंको भी मान लिया। इस तरह हम भारतीय तत्त्वचिंतनमें देखते हैं कि मौलिक सामान्य और विशेष दृष्टि तथा उनकी अवान्तर सामान्य और विशेष दृष्टियोंमेंसे परस्पर विरुद्ध ऐसे अनेक मतों – दर्शनोंका जन्म हुआ, जो अपने विरोधिवादकी आधारभूत भूमिकाकी सत्यताकी कुछ भी परवा न करनेके कारण एक दूसरेके प्रहारमें ही चरितार्थता मानने लगे।

सद्वाद अद्वैतगामी हो या द्वैतगामी जैसा कि सांख्यादिका, पर वह कार्य-कारणके अभेद मूलक सत्कार्यवादको विना माने अपना मूल लक्ष्य सिद्ध ही नहीं कर सकता; जब कि असद्वाद क्षणिकगामी हो जैसे बौद्धोंका, स्थिरगामी

हो या नित्यगामी हो जैसे वैशेषिक आदिका – पर वह असत्कार्यवादका स्थापन बिना किये अपना लक्ष्य स्थिर कर ही नहीं सकता। अतएव सत्कार्यवाद और असत्कार्यवादकी पारस्परिक टक्कर हुई। अद्वैतगामी और द्वैतगामी सद्वादमेंसे जन्मी हुई कूटस्थता जो कालिक नित्यता रूप है और विभुता जो दैशिक व्यापकतारूप है उनकी – देश और कालकृत निरंश अंशवाद अर्थात् निरंश क्षणवादके साथ टक्कर हुई; जो कि वस्तुतः सद्दर्शनके विरोधी दर्शनमेंसे फलित होता है। एक तरफसे सारे विश्वको अखण्ड और एक तत्त्वरूप मानने वाले और दूसरी तरफसे उसे निरंश अंशपुंज मानने वाले अपने-अपने लक्ष्यकी सिद्धि तभी कर सकते थे जब वे अपने अभीष्ट तत्त्वको अनिर्वचनीय अर्थात् अनभिलाप्य – शब्दागोचर मानें। क्यों कि शब्दके द्वारा निर्वचन मानने पर न तो अखण्ड सत् तत्त्वकी सिद्धि हो सकती है और न निरंश भेदतत्त्वकी। निर्वचन करना ही मानों अखण्डता या निरंशताका लोप कर देना है। इस तरह अखण्ड और निरंशवादमेंसे अनिर्वचनीयत्ववाद आप ही आप फलित हुआ। पर उस वादके सामने लक्षणवादी वैशेषिक आदि तार्किक हुए, जो ऐसा मानते हैं कि वस्तुमात्रका निर्वचन करना या लक्षण बनाना शक्य ही नहीं बल्कि वास्तविक भी हो सकता है। इसमेंसे निर्वचनीयत्ववादका जन्म हुआ और वे – अनिर्वचनीय तथा निर्वचनीयवाद आपसमें टकराने लगे।

इसी प्रकार कोई मानते थे कि प्रमाण चाहे जो हो पर हेतु अर्थात् तर्कके सिवाय किसीसे अन्तिम निश्चय करना भयास्पद है। जब दूसरे कोई मानते थे कि हेतुवाद स्वतंत्र बल नहीं रखता। ऐसा बल आगममें ही होने से वही मूर्धन्य प्रमाण है। इसीसे वे दोनों वाद परस्पर टकराते थे। दैवज्ञ कहता था कि सब कुछ दैवाधीन है; पौरुष स्वतन्त्ररूपसे कुछ कर नहीं सकता। पौरुषवादी ठीक इससे उलटा कहता था कि पौरुष ही स्वतन्त्रभाव से कार्यकर है। अतएव वे दोनों वाद एक दूसरेको असत्य ही मानते रहे। अर्थनय – पदार्थवादी शब्दकी और शब्दनय – शाब्दिक अर्थकी परवा न करके परस्पर खण्डन करनेमें प्रवृत्त थे। कोई अभावको भावसे पृथक् ही मानता, तो दूसरा कोई उसे भाव स्वरूप ही मानता था और वे दोनों भावसे अभावको पृथक् मानने न माननेके बारेमें परस्पर प्रतिपक्षभाव धारण करते रहे। कोई प्रमातासे प्रमाण और प्रमितिको अत्यन्त भिन्न मानते, तो दूसरे कोई

उससे उन्हें अभिन्न मानते थे। कोई वर्णाश्रम विहित कर्म मात्र पर भार दे कर उसीसे इष्ट प्राप्ति बतलाते, तो कोई ज्ञानमात्रसे आनन्दाप्ति प्रतिपादन करते; जब तीसरे कोई भक्तिको ही परम पदका साधन मानते रहे और वे सभी एक दूसरेका आवेशपूर्वक खण्डन करते रहे। इस तरह तत्त्वज्ञानके व आचारके छोटे-बड़े अनेक मुद्दों पर परस्पर बिल्कुल विरोधी ऐसे अनेक एकान्त मत प्रचलित हुए।

उन एकान्तोंकी पारस्परिक वाद-लीला देख कर अनेकान्तदृष्टिके उत्तराधिकारी आचार्योंको विचार आया कि असलमें ये सब वाद, जो कि अपनी अपनी सत्यता का दावा करते हैं, आपसमें इतने लड़ते हैं क्यों? क्या उन सबमें कोई तथ्यांश ही नहीं है, या सबमें तथ्यांश है, या किसी किसीमें तथ्यांश है, या सभी पूर्ण सत्य है! इस प्रश्नके अन्तर्मुख जबाबमेंसे उन्हें एक चाबी मिल गई जिसके द्वारा उन्हें सब विरोधोंका समाधान हो गया और पूरे सत्यका दर्शन हुआ। वही चाबी अनेकान्तवादकी भूमिका रूप अनेकान्तदृष्टि है। इस दृष्टिके द्वारा उन्होंने देखा कि प्रत्येक सयुक्तिक वाद अमुक अमुक दृष्टिसे अमुक अमुक सीमा तक सत्य है। फिर भी जब कोई एक वाद दूसरे वादकी आधारभूत विचार-सरणी और उस वादकी सीमाका विचार नहीं करता और अपनी आधारभूत दृष्टि तथा अपने विषयकी सीमामें ही सब कुछ मान लेता है, तब उसे किसी भी तरह दूसरे वादकी सत्यता मालूम ही नहीं हो पाती। यही हालत दूसरे विरोधी वादकी भी होती है। ऐसी दशामें न्याय इसीमें है कि प्रत्येक वादको उसीकी विचार-सरणीसे उसीकी विषय-सीमा तक ही जाँचा जाय और इस जाँचमें वह ठीक निकले तो उसे सत्यका एक भाग मान कर ऐसे सब सत्यांशरूप मणियोंको एक पूर्ण सत्यरूप विचार-सूत्रमें पिरो कर अविरोधी माला बनाई जाय। इस विचारने जैनाचार्योंको अनेकान्तदृष्टिके आधार पर तत्कालीन सब वादोंका समन्वय करनेकी ओर प्रेरित किया। उन्होंने सोचा कि जब शुद्ध और निःस्वार्थ चित्त वालोंमेंसे किन्हींको एकत्वपर्यवसायी साम्यप्रतीति होती है और किन्हींको निरंश अंश पर्यवसायी भेदप्रतीति होती है; तब यह कैसे कहा जाय कि अमुक एक ही प्रतीति प्रमाण है और दूसरी नहीं। किसी एक को अप्रमाण मानने पर तुल्य युक्तिसे दोनों प्रतीतियाँ अप्रमाण ही सिद्ध होंगी। इसके सिवाय किसी एक प्रतीतिको

प्रमाण और दूसरीको अप्रमाण मानने वालोंको भी अन्तमें अप्रमाण मानी हुई प्रतीतिके विषयरूप सामान्य या विशेषके सार्वजनिक व्यवहारोंकी उपपत्ति तो किसी न किसी तरह करनी ही पड़ती है। यह नहीं कि अपनी इष्ट प्रतीतिको प्रमाण कहने मात्र से सब शास्त्रीय और लौकिक व्यवहारोंकी उपपत्ति भी हो जाय। यह भी नहीं कि ऐसे व्यवहारोंको उपपन्न विना किये ही छोड़ दिया जाय। ब्रह्मैकत्ववादी भेदोंको व उनकी प्रतीतिको अविद्यामूलक ही कह कर उनकी उपपत्ति करेगा; जब कि क्षणिकत्ववादी साम्य या एकत्वको व उसकी प्रतीतिको ही अविद्यामूलक कह कर ऐसे व्यवहारोंकी उपपत्ति करेगा।

ऐसा सोचने पर अनेकान्तके प्रकाशमें अनेकान्तवादियोंको मालूम हुआ कि प्रतीति अभेदगामिनी हो या भेदगामिनी, हैं तो सभी वास्तविक। प्रत्येक प्रतीतिकी वास्तविकता उसके अपने विषय तक तो है, पर जब वह विरुद्ध दिखाई देनेवाली दूसरी प्रतीतिके विषयकी अयथार्थता दिखाने लगती है तब वह खुद भी अवास्तविक बन जाती है। अभेद और भेदकी प्रतीतियाँ विरुद्ध इसीसे जान पड़ती हैं कि प्रत्येकको पूर्ण प्रमाण मान लिया जाता है। सामान्य और विशेषकी प्रत्येक प्रतीति स्वविषयमें यथार्थ होने पर भी पूर्ण प्रमाण नहीं। वह प्रमाणका अंश अवश्य है। वस्तुका पूर्ण स्वरूप तो ऐसा ही होना चाहिए, जिससे कि वे विरुद्ध दिखाई देनेवाली प्रतीतियाँ भी अपने स्थानमें रह कर उसे अविरोधीभावसे प्रकाशित कर सकें और वे सब मिल कर वस्तुका पूर्ण स्वरूप प्रकाशित करनेके कारण प्रमाण मानी जा सकें। इस समन्वय या व्यवस्था-गर्भित विचारके बल पर उन्होंने समझाया कि सद्-अद्वैत और सद्-द्वैतके बीच कोई विरोध नहीं, क्यों कि वस्तुका पूर्ण स्वरूप ही अभेद और भेद या सामान्य और विशेषात्मक ही है। जैसे हम स्थान, समय, रंग, रस, परिमाण आदिका विचार किये बिना ही विशाल जलराशि मात्रका विचार करते हैं तब हमें एक ही एक समुद्र प्रतीत होता है। पर उसी जलराशिके विचारमें जब स्थान, समय आदिका विचार दाखिल होता है तब हमें एक अखण्ड समुद्रके स्थानमें अनेक छोटे बड़े समुद्र नजर आते हैं; यहाँ तक कि अन्तमें हमारे ध्यानमें जलकण तक नहीं रहता उसमें केवल कोई अविभाज्य रूप या रस आदिका अंश ही रह जाता है और अन्तमें वह भी शून्यवत् भासित होता है। जल-राशिमें अखण्ड एक समुद्रकी बुद्धि भी वास्तविक है और अन्तिम अंशकी

बुद्धि भी। एक इसलिए वास्तविक है कि वह भेदोंको अलग अलग रूपसे स्पर्श न करके सबको एक साथ सामान्यरूपसे देखती है। स्थान, समय आदि कृत भेद जो एक दूसरेसे व्यावृत्त हैं उनको अलग अलग रूपसे विषय करनेवाली बुद्धि भी वास्तविक है। क्यों कि वे भेद वैसे ही हैं। जलराशि एक और अनेक उभयरूप होनेके कारण उसमें होने वाली समुद्रबुद्धि और अंशबुद्धि अपने अपने स्थानमें यथार्थ हो कर भी कोई एक बुद्धि पूर्ण स्वरूपको विषय न करनेके कारण पूर्ण प्रमाण नहीं है। फिर भी दोनों मिल कर पूर्ण प्रमाण है। वैसे ही जब हम सारे विश्वको एक मात्र सत्-रूपसे देखें अथवा यों कहिए कि जब हम समस्त भेदोंके अन्तर्गत एक मात्र अनुगमक सत्ता स्वरूपका विचार करें तब हम कहते हैं कि एकमात्र सत् ही है; क्यों कि उस सर्वग्राही सत्ताके विचारके समय कोई ऐसे भेद भासित नहीं होते जो परस्परमें व्यावृत्त हों। उस समय तो सारे भेद समष्टिरूपमें या एक मात्र सत्तारूपमें ही भासित होते हैं। और तभी सद्-अद्वैत कहलाता है। एकमात्र सामान्यकी प्रतीतिके समय सत् शब्दका अर्थ भी उतना विशाल हो जाता है कि जिसमें कोई शेष नहीं बचता। पर हम जब उसी विश्वको गुणधर्म कृत भेदोंमें जो कि परस्पर व्यावृत्त हैं, विभाजित करते हैं, तब वह विश्व एक सत् रूपसे मिट कर अनेक सत् रूप प्रतीत होता है। उस समय सत् शब्दका अर्थ भी उतना ही छोटा हो जाता है। हम कभी कहते हैं कि कोई सत् जड़ भी है और कोई चेतन भी। हम और अधिक भेदोंकी ओर झुक कर फिर यह भी कहते हैं कि जडसत् भी अनेक हैं और चेतनसत् भी अनेक हैं। इस तरह जब सर्वग्राही सामान्यको व्यावर्तक भेदोंमें विभाजित करके देखते हैं तब हमें नाना सत् माल्म होते हैं और वही सत्-द्वैत है। इस प्रकार एक ही विश्वमें प्रवृत्त होनेवाली सद्-अद्वैत बुद्धि और सद्-द्वैत बुद्धि दोनों अपने अपने विषयमें यथार्थ हो कर भी पूर्ण प्रमाण तभी कही जायँगी जब वे दोनों सापेक्ष रूपसे मिलें। यही सद्-अद्वैत और सद्-द्वैत वाद जो परस्पर विरुद्ध समझे जाते हैं उनका अनेकान्त दृष्टिके अनुसार समन्वय हुआ।

इसे वृक्ष और वनके दृष्टान्तसे भी स्पष्ट किया जा सकता है। जब अनेक परस्पर भिन्न वृक्ष व्यक्तियोंको उस उस व्यक्ति रूपसे ग्रहण न करके सामूहिक या सामान्य रूपमें वन रूपसे ग्रहण करते हैं; तब उन सब विशेषोंका

अभाव नहीं हो जाता। पर वे सब विशेष सामान्य रूपसे सामान्यग्रहणमें ही ऐसे लीन हो जाते हैं मानो वे हैं ही नहीं। एक मात्र वन ही वन नज़र आता है यही एक प्रकारका अद्वैत हुआ। फिर कभी हम जब एक-एक वृक्षको विशेष रूपसे समझते हैं तब हमें परस्पर भिन्न व्यक्तियाँ ही व्यक्तियाँ नज़र आती हैं, उस समय विशेष प्रतीतिमें सामान्य इतना अन्तर्लीन हो जाता है कि मानों वह है ही नहीं। अब इन दोनों अनुभवोंका विश्लेषण करके देखा जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि कोई एक ही सत्य है और दूसरा असत्य। अपने अपने विषयमें दोनोंकी सत्यता होते हुए भी किसी एकका पूर्ण सत्य दोनों अनुभवोंका समुचित समन्वय ही है। क्यों कि इसीमें सामान्य और विशेषात्मक वन-वृक्षोंका अबाधित अनुभव समा सकता है। यही स्थिति विश्वके सम्बन्धमें सद्-अद्वैत किंवा सद्-द्वैत दृष्टिकी भी है।

कालिक, दैशिक और देश-कालातीत सामान्य-विशेषके उपर्युक्त अद्वैत-द्वैतवादसे आगे बढ़ कर एक कालिक सामान्य-विशेषके सूचक नित्यत्ववाद और क्षणिकत्ववाद भी हैं। ये दोनों वाद एक दूसरेके विरुद्ध ही जान पड़ते हैं; पर अनेकान्त दृष्टि कहती है कि वस्तुतः उनमें कोई विरोध नहीं। जब हम किसी तत्त्वको तीनों कालोंमें अखण्डरूपसे अर्थात् अनादि-अनंतरूपसे देखेंगे तब वह अखण्ड प्रवाह रूपमें आदि अंत रहित होनेके कारण नित्य ही है। पर हम जब उस अखण्ड प्रवाह पतित तत्त्वको छोटे बड़े आपेक्षिक काल भेदोंमें विभाजित कर लेते हैं, तब उस उस काल पर्यंत स्थायी ऐसा परिमित रूप ही नज़र आता है, जो सादि भी है और सान्त भी। अगर विवक्षित काल इतना छोटा हो जिसका दूसरा हिस्सा बुद्धिशस्त्र कर न सके तो उस कालसे परिच्छिन्न वह तत्त्वगत प्रावाहिक अंश सबसे छोटा होनेके कारण क्षणिक कहलाता है। नित्य और क्षणिक ये दोनों शब्द ठीक एक दूसरेके विरुद्धार्थक हैं। एक अनादि-अनन्तका और दूसरा सादि-सान्तका भाव दरसाता है। फिर भी हम अनेकान्तदृष्टिके अनुसार समझ सकते हैं कि जो तत्त्व अखण्ड प्रवाहकी अपेक्षासे नित्य कहा जा सकता है वही तत्त्व खण्ड खण्ड क्षणपरिमित परिवर्तनों व पर्यायोंकी अपेक्षासे क्षणिक भी कहा जा सकता है। एक वादकी आधार-दृष्टि है अनादि-अनंतताकी दृष्टि। जब दूसरेकी आधार है सादि-सान्तताकी दृष्टि। वस्तुका कालिक पूर्ण स्वरूप अनादि-अनंतता और सादि-सान्तता इन

दो अंशोंसे बनता है। अतएव दोनों दृष्टियाँ अपने अपने विषयमें यथार्थ होने पर भी पूर्ण प्रमाण तभी बनती हैं जब वे समन्वित हों।

इस समन्वयको दृष्टान्तसे भी इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। किसी एक वृक्षका जीवन-व्यापार मूलसे ले कर फल तकमें कालक्रमसे होने वाली बीज, मूल, अंकुर, स्कन्ध, शाखा-प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प और फल आदि विविध अवस्थाओंमें हो कर ही प्रवाहित और पूर्ण होता है। जब हम अमुक वस्तुको वृक्षरूपसे समझते हैं तब उपर्युक्त सब अवस्थाओंमें प्रवाहित होने वाला पूर्ण जीवन-व्यापार ही अखण्डरूपसे मनमें आता है; पर जब हम उसी जीवन-व्यापारके परस्पर भिन्न ऐसे क्रमभावी मूल, अंकुर, स्कन्ध आदि एक एक अंशको ग्रहण करते हैं तब वे परिमित काल लक्षित अंश ही हमारे मनमें आते हैं। इस प्रकार हमारा मन कभी तो उस समूचे जीवन-व्यापारको अखण्ड रूपमें स्पर्श करता है और कभी उसे खण्डित रूपमें एक-एक अंशके द्वारा। परीक्षण करके देखते हैं तो साफ जान पड़ता है कि न तो अखण्ड जीवन-व्यापार ही एक-मात्र पूर्ण वस्तु है या काल्पनिक मात्र है और न खण्डित अंश ही पूर्ण वस्तु है या काल्पनिक। भले ही उस अखण्डमें सारे खण्ड और सारे खण्डोंमें वह एक मात्र अखण्ड समा जाता हो फिर भी वस्तुका पूर्ण स्वरूप तो अखण्ड और खण्ड दोनोंमें ही पर्यवसित होनेके कारण दोनों पहलुओंसे गृहीत होता है। जैसे वे दोनों पहलू अपनी-अपनी कक्षामें यथार्थ हो कर भी पूर्ण तभी बनते हैं जब समन्वित किये जाएँ। वैसे ही अनादि-अनन्त कालप्रवाह रूप वृक्षका ग्रहण नित्यत्वका व्यञ्जक है और उसके घटक अंशोंका ग्रहण अनित्यत्व या क्षणिकत्वका द्योतक है। आधारभूत नित्य-प्रवाहके सिवाय न तो अनित्य घटक सम्भव हैं और न अनित्य घटकोंके सिवाय वैसा नित्य प्रवाह ही। अतएव एकमात्र नित्यत्वको या एकमात्र अनित्यत्वको वास्तविक कह कर दूसरे विरोधी अंशको अवास्तविक कहना ही नित्य अनित्यवादोंकी टक्करका बीज है जिसे अनेकान्तदृष्टि हटाती है।

अनेकान्तदृष्टि अनिर्वचनीयत्व और निर्वचनीयत्व वादकी पारस्परिक टक्करको भी मिटाती है। वह कहती है कि वस्तुका वही रूप प्रतिपाद्य हो सकता है जो संकेतका विषय बन सके। सूक्ष्मतम बुद्धिके द्वारा किया जाने वाला संकेत भी स्थूल अंशको ही विषय कर सकता है। वस्तुके ऐसे अपरिमित भाव हैं जिन्हें

संकेतके द्वारा शब्दसे प्रतिपादन करना संभव नहीं। इस अर्थमें अखण्ड सत् या निरंश क्षण अनिर्वचनीय ही हैं जब कि मध्यवर्ती स्थूल भाव निर्वचनीय भी हो सकते हैं। अतएव समग्र विश्वके या उसके किसी एक तत्त्वके बारेमें जो अनिर्वचनीयत्व और निर्वचनीयत्वके विरोधी प्रवाद हैं वे वस्तुतः अपनी-अपनी कक्षामें यथार्थ होने पर भी प्रमाण तो समूचे रूपमें ही हैं।

एक ही वस्तुकी भावरूपता और अभावरूपता भी विरुद्ध नहीं। मात्र विधि-मुखसे या मात्र निषेधमुख से ही वस्तु प्रतीत नहीं होती। दूध, दूध रूपसे भी प्रतीत होता है और अदधि या दधिभिन्न रूपसे भी। ऐसी दशामें वह भाव-अभाव उभय रूप सिद्ध हो जाता है और एक ही वस्तुमें भावत्व या अभावत्वका विरोध प्रतीतिके स्वरूप भेदसे हट जाता है। इसी तरह धर्म-धर्मी, गुण-गुणी, कार्य-कारण, आधार-आधेय आदि द्वन्द्वोंके अभेद और भेदके विरोधका परिहार भी अनेकान्त दृष्टि कर देती है।

जहाँ आप्तत्व और उसके मूलके प्रामाण्यमें संदेह हो वहाँ हेतुवादके द्वारा परीक्षा पूर्वक ही निर्णय करना क्षेमंकर है; पर जहाँ आप्तत्वमें कोई संदेह नहीं वहाँ हेतुवादका प्रयोग अनवस्थाकारक होनेसे त्याज्य है। ऐसे स्थानमें आगम-वाद ही मार्गदर्शक हो सकता है। इस तरह विषयभेदसे या एक ही विषयमें प्रतिपाद्य भेदसे हेतुवाद और आगमवाद दोनोंको अवकाश है। उनमें कोई विरोध नहीं। यही स्थिति दैव और पौरुषवादकी भी है। उनमें कोई विरोध नहीं। जहाँ बुद्धि-पूर्वक पौरुष नहीं, वहाँकी समस्याओंका हल दैववाद कर सकता है; पर पौरुषके बुद्धिपूर्वक प्रयोगस्थलमें पौरुषवाद ही स्थान पाता है। इस तरह जुदे जुदे पहलूकी अपेक्षा एक ही जीवनमें दैव और पौरुष दोनों वाद समन्वित किये जा सकते हैं।

कारणमें कार्यको केवल सत् या केवल असत् माननेवाले वादोंके विरोधका भी परिहार अनेकान्त दृष्टि सरलतासे कर देती है। वह कहती है कि कार्य उपादानमें सत् भी है और असत् भी, कटक बननेके पहले भी सुवर्णमें बननेकी शक्ति है इसलिए उत्पत्तिके पहले भी शक्ति रूपसे या कारणभेददृष्टिसे कार्य सत् कहा जा सकता है। शक्ति रूपसे सत् होने पर भी उत्पादक सामग्रीके अभावमें वह कार्य आविर्भूत या उत्पन्न न होनेके कारण उपलब्ध नहीं होता, इसलिए वह असत् भी है। तिरोभाव दशामें जब कि कटक उपलब्ध नहीं होता

तब भी कुण्डलाकारधारी सुवर्ण कटक रूप बननेकी योग्यता रखता है इसलिए उस दशामें असत् भी कटक योग्यताकी दृष्टिसे सुवर्णमें सत् कहा जा सकता है।

बौद्धोंका केवल परमाणु-पुञ्ज-वाद और नैयायिकोंका अपूर्वावयवी वाद ये दोनों आपसमें टकराते हैं। पर अनेकान्तदृष्टिने स्कन्धका — जो कि न केवल परमाणु-पुञ्ज है और न अनुभवबाधित अवयवोंसे भिन्न अपूर्व अवयवी रूप है— स्वीकार करके विरोधका समुचित रूपसे परिहार व दोनों वादोंका निर्दोष समन्वय कर दिया है। इसी तरह अनेकान्तदृष्टिने, अनेक विषयोंमें प्रवर्तमान विरोधी वादोंका समन्वय, मध्यस्थ भावसे किया है। ऐसा करते समय अनेकान्त-वादके आसपास नयवाद और भंगवाद आप ही आप फलित हो जाते हैं; क्यों कि जुदे जुदे पहलू या दृष्टिबिन्दुका पृथक्करण, उनकी विषयमर्यादाका विभाग और उनका एक विषयमें यथोचित विन्यास करने-ही-से अनेकान्त सिद्ध होता है।

मकान किसी एक कोनेमें पूरा नहीं होता। उसके अनेक कोने भी किसी एक ही दिशामें नहीं होते। पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, आदि परस्पर विरुद्ध दिशावाले एक-एक कोने पर खड़े रह कर किया जाने वाला उस मकानका अव-लोकन पूर्ण तो नहीं होता, पर वह अयथार्थ भी नहीं। जुदे जुदे संभवित सभी कोनों पर खड़े रह कर किये जाने वाले सभी संभवित अवलोकनोंका सार समु-च्चय ही उस मकानका पूरा अवलोकन है। प्रत्येक कोणसंभवी प्रत्येक अवलोकन उस पूर्ण अवलोकनके अनिवार्य अंग हैं। वैसे ही किसी एक वस्तु या समग्र विश्वका तात्त्विक चिंतन-दर्शन भी अनेक अपेक्षाओंसे निष्पन्न होता है। मनकी सहज रचना, उस पर पड़ने वाले आगन्तुक संस्कार और चिन्त्य वस्तुका स्वरूप इत्यादिके सम्मेलनसे ही अपेक्षा बनती है। ऐसी अपेक्षाएँ अनेक होती हैं; जिनका आश्रय ले कर वस्तुका विचार किया जाता है। विचारको सहारा देनेके कारण या विचार स्रोतके उद्गमका आधार बननेके कारण वे ही अपेक्षाएँ दृष्टिकोण या दृष्टिबिन्दु भी कही जाती हैं। संभवित सभी अपेक्षाओंसे—चाहे वे विरुद्ध ही क्यों न दिखाई देती हों—किये जाने वाले चिंतन व दर्शनोंका सार समुच्चय ही उस विषयका पूर्ण—अनेकान्त दर्शन है। प्रत्येक अपेक्षासंभवी दर्शन, उस पूर्ण दर्शनका एक एक अङ्ग है, जो परस्पर विरुद्ध हो कर भी पूर्ण दर्शनमें समन्वय पानेके कारण वस्तुतः अविरुद्ध ही है।

जब किसीकी मनोवृत्ति विश्वके अन्तर्गत सभी भेदोंको–चाहे वे गुण धर्म या स्वरूप कृत हों या व्यक्तित्व कृत हों–भुला कर अर्थात् उनकी ओर झुके बिना ही एक मात्र अखण्डताका ही विचार करती है, तब उसे अखण्ड या एक ही विश्वका दर्शन होता है। अभेदकी उस भूमिका परसे निष्पन्न होने वाला 'सत्' शब्दके एक मात्र अखण्ड अर्थका दर्शन ही संग्रहनय है। गुणधर्म कृत या व्यक्तित्व कृत भेदोंकी ओर झुकने वाली मनोवृत्तिसे किया जाने वाला उसी विश्वका दर्शन व्यवहारनय कहलाता है; क्यों कि उसमें लोकसिद्ध व्यवहारोंकी भूमिका रूप भेदोंका खास स्थान है। इस दर्शनमें 'सत्' शब्दकी अर्थ मर्यादा अखण्डित न रह कर अनेक खण्डोंमें विभाजित हो जाती है। वही भेदगामिनी मनोवृत्ति या अपेक्षा सिर्फ कालकृत भेदोंकी ओर झुक कर सिर्फ वर्तमानको ही कार्यक्षम होनेके कारण जब सत् रूपसे देखती है और अतीत अनागतको 'सत्' शब्दकी अर्थ मर्यादामेंसे हटा देती है तब उसके द्वारा फलित होने वाला विश्वका दर्शन ऋजुसूत्र नय है। क्यों कि वह अतीत-अनागतके चक्रव्यूहको छोड़ कर सिर्फ वर्तमानकी सीधी रेखा पर चलता है।

उपर्युक्त तीनों मनोवृत्तियाँ ऐसी हैं जो शब्दका या शब्दके गुण-धर्मोंका आश्रय बिना लिये ही किसी भी वस्तुका चिंतन करती हैं। अतएव वे तीनों प्रकारके चिंतन अर्थनय हैं। पर ऐसी भी मनोवृत्ति होती है जो शब्दके गुण-धर्मोंका आश्रय ले कर ही अर्थका विचार करती है। अतएव ऐसी मनोवृत्तिसे फलित अर्थचिंतन शब्दनय कहे जाते हैं। शाब्दिक लोग ही मुख्यता शब्द-नयके अधिकारी हैं; क्यों कि उन्हींके विविध दृष्टि बिन्दुओंसे शब्दनयमें विविधता आई है।

जो शाब्दिक सभी शब्दोंको अखण्ड अर्थात् अव्युत्पन्न मानते हैं वे व्युत्पत्ति भेदसे अर्थ भेद न मानने पर भी लिंग, पुरुष, काल आदि अन्य प्रकारके शब्द धर्मोंके भेदके आधार पर अर्थका वैविध्य बतलाते हैं। उनका वह अर्थ-भेदका दर्शन शब्दनय या साम्प्रतनय है। प्रत्येक शब्दको व्युत्पत्ति सिद्ध ही मानने वाली मनोवृत्तिसे विचार करने वाले शाब्दिक पर्याय अर्थात् एकार्थक समझे जाने वाले शब्दोंके अर्थमें भी व्युत्पत्ति भेदसे भेद बतलाते हैं। उनका वह शक्र–इन्द्र आदि जैसे पर्याय शब्दोंके अर्थभेदका दर्शन समभिरूढनय कहलाता है। व्युत्पत्तिके भेदसे ही नहीं, बल्कि एक ही व्युत्पत्तिसे फलित होने वाले

अर्थकी मौजूदगी और गैर-मौजूदगीके भेदके कारणसे भी जो दर्शन अर्थभेद मानता है वह एवंभूतनय कहलाता है। इन तार्किक छः नयोंके अलावा एक नैगम नामका नय भी है। जिसमें निगम अर्थात् देश रूढ़िके अनुसार अभेदगामी और भेदगामी सब प्रकारके विचारोंका समावेश माना गया है। प्रधानतया ये ही सात नय हैं। पर किसी एक अंशको अर्थात् दृष्टिकोणको अवलंबित करके प्रवृत्त होने वाले सब प्रकारके विचार उस उस अपेक्षाके सूचक नय ही हैं।

शास्त्रमें द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ऐसे दो नय भी प्रसिद्ध हैं; पर वे नय उपर्युक्त सात नयोंसे अलग नहीं हैं किन्तु उन्हींका संक्षिप्त वर्गीकरण या भूमिकामात्र हैं। द्रव्य अर्थात् सामान्य, अन्वय, अभेद या एकत्वको विषय करने वाला विचारमार्ग द्रव्यार्थिकनय है। नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीनों द्रव्यार्थिक ही हैं। इनमेंसे संग्रह तो शुद्ध अभेदका विचारक होनेसे शुद्ध या मूल ही द्रव्यार्थिक है जब कि व्यवहार और नैगमकी प्रवृत्ति भेदगामी हो कर भी किसी न किसी प्रकारके अभेदको भी अवलंबित करके ही चलती है। इसलिये वे भी द्रव्यार्थिक ही माने गए हैं। अलबत्ता वे संग्रहकी तरह शुद्ध न हो कर अशुद्ध मिश्रित ही द्रव्यार्थिक हैं।

पर्याय अर्थात् विशेष, व्यावृत्ति या भेदको ही लक्ष्य करके प्रवृत्त होने वाला विचारपथ पर्यायार्थिक नय है। ऋजुसूत्र आदि बाकीके चारों नय पर्यायार्थिक ही माने गये हैं। अभेदको छोड़ कर मात्र भेदका विचार ऋजुसूत्रसे शुरू होता है इसलिये उसीको शास्त्रमें पर्यायार्थिक नयकी प्रकृति या मूल आधार कहा है। पिछले शब्दादि तीन नय उसी मूलभूत पर्यायार्थिकके एक प्रकारसे विस्तारमात्र हैं।

मात्र ज्ञानको उपयोगी मान कर उसके आश्रयसे प्रवृत्त विचारधारा ज्ञान-नय है, तो मात्र क्रियाके आश्रयसे प्रवृत्त विचारधारा क्रियानय है। नयरूप आधार-स्तम्भोंके अपरिमित होनेके कारण विश्वका पूर्णदर्शन – अनेकान्त भी निस्सीम है।

भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं, दृष्टिकोणों या मनोवृत्तियोंसे जो एक ही तत्त्वके नाना दर्शन फलित होते हैं उन्हींके आधार पर भङ्गवादकी सृष्टि खड़ी होती है। जिन दो दर्शनोंके विषय ठीक एक दूसरेके बिलकुल विरोधी पड़ते हों ऐसे दर्शनोंका समन्वय बतलानेकी दृष्टिसे उनके विषयभूत भाव-अभावात्मक दोनों

अंशोंको ले कर उन पर जो संभवित वाक्य-भङ्ग बनाये जाते हैं वही सप्तभङ्गी है। सप्तभङ्गीका आधार नयवाद है। और उसका ध्येय तो समन्वय अर्थात् अनेकान्त कोटिका व्यापक दर्शन कराना है। जैसे किसी भी प्रमाणसे जाने हुए पदार्थका बोध दूसरेको करानेके लिए परार्थ अनुमान अर्थात् अनुमान वाक्यकी रचना की जाती है; वैसे ही विरुद्ध अंशोंका समन्वय श्रोताको समझानेकी दृष्टिसे भङ्ग-वाक्यकी रचना भी की जाती है। इस तरह नयवाद और भङ्गवाद अनेकान्तदृष्टिके क्षेत्रमें आप ही आप फलित हो जाते हैं।

यह ठीक है कि वैदिक परंपराके न्याय, वेदान्त आदि दर्शनोंमें तथा बौद्ध दर्शनमें किसी एक वस्तुका विविध दृष्टिओंसे निरूपणकी पद्धति तथा अनेक पक्षोंके समन्वयकी दृष्टि भी[1] देखी जाती है फिर भी प्रत्येक वस्तु और उसके प्रत्येक पहलू पर संभवित समग्र दृष्टिबिन्दुओंसे विचार करनेका आत्यन्तिक आग्रह तथा उन समग्र दृष्टिबिन्दुओंके एक मात्र समन्वयमें ही विचारकी परिपूर्णता माननेका दृढ आग्रह जैन परंपराके सिवाय अन्यत्र कहीं देखा नहीं जाता। इसी आग्रहमेंसे जैन तार्किकोंने अनेकान्त, नय और सप्तभङ्गी वादका बिलकुल स्वतन्त्र और व्यवस्थित शास्त्र निर्माण किया जो प्रमाण शास्त्रका एक भाग ही बन गया और जिसकी जोड़का ऐसा छोटा भी ग्रन्थ इतर परंपराओंमें नहीं बना। विभज्यवाद और मध्यम मार्ग होते हुए भी बौद्ध परंपरा किसी भी वस्तुमें वास्तविक स्थायी अंश देख न सकी, उसे मात्र क्षणभंग ही नजर आया। अनेकान्त शब्दसे[2] ही अनेकान्त दृष्टिका आश्रय करने पर भी नैयायिक परमाणु, आत्मा आदिको सर्वथा अपरिणामी ही मानने मनवानेकी धुनसे बच न सके। व्यावहारिक-पारमार्थिक आदि अनेक दृष्टिओंका अवलम्बन करते हुए भी वेदान्ती अन्य सब दृष्टिओंको ब्रह्मदृष्टिसे कम दरजेकी या बिलकुल ही असत्य मानने मनवानेसे बच न सके। इसका एक मात्र कारण यही जान पड़ता है कि उन दर्शनोंमें व्यापकरूपसे अनेकान्त भावनाका स्थान न रहा जैसा कि जैनदर्शनमें रहा। इसी कारणसे जैनदर्शन सब दृष्टिओंका समन्वय भी करता है और सभी दृष्टिओंको अपने अपने विषयमें तुल्य बल व यथार्थ मानता है। भेद-अभेद, सामान्य-विशेष, नित्यत्व-अनित्यत्व आदि तत्त्वज्ञानके प्राचीन मुद्दों

---

१ उदाहरणार्थ देखो सांख्यप्रवचनभाष्य पृ० २। सिद्धान्तबिन्दु पृ० ११९। वेदान्तसार पृ० २५। तर्कसंग्रहदीपिका पृ० १७५। महावग्ग ६. ३१। २ न्यायभाष्य २. १. १८

पर ही सीमित रहनेके कारण वह अनेकान्त दृष्टि और तन्मूलक अनेकान्त व्यवस्थापक शास्त्र, पुनरुक्त चर्वितचर्वण या नवीनता शून्य जान पड़नेका आपाततः संभव है, फिर भी उस दृष्टि और उस शास्त्र निर्माणके पीछे जो अखण्ड और सजीव सर्वांश सत्यको अपनानेकी भावना जैन परंपरामें रही और जो प्रमाण शास्त्रमें अवतीर्ण हुई, उसका जीवनके समग्र क्षेत्रोंमें, सफल उपयोग होनेकी पूर्ण योग्यता होनेके कारण ही उसे प्रमाणशास्त्रको जैनाचार्योंकी देन कहना अनुपयुक्त नहीं।

तत्त्वचिन्तनमें अनेकान्त दृष्टिका व्यापक उपयोग करके जैन तार्किकोंने अपने आगमिक प्रमेयों तथा सर्वसाधारण न्यायके प्रमेयोंमेंसे जो जो मन्तव्य तार्किक दृष्टिसे स्थिर किये और प्रमाण शास्त्रमें जिनका निरूपण किया, उनमेंसे थोड़े मन्तव्योंका भी निर्देश, उदाहरणके तौर पर यहां कर देना जरूरी है, जो एक मात्र जैन तार्किकोंकी विशेषता दरसाने वाले हैं—प्रमाणविभाग, प्रत्यक्षका तात्त्विकत्व, इन्द्रियज्ञानका व्यापारक्रम, परोक्षके प्रकार, हेतुका रूप, अवयवोंकी प्रायोगिक व्यवस्था, कथाका स्वरूप, निग्रहस्थान या जय-पराजय व्यवस्था, प्रमेय और प्रमाताका स्वरूप, सर्वज्ञत्वसमर्थन आदि।

१. **प्रमाणविभाग**—जैन परंपराका प्रमाण विषयक मुख्य विभाग[1] दो दृष्टिओंसे अन्य परंपराओंकी अपेक्षा विशेष महत्त्व रखता है। एक तो यह कि ऐसे सर्वानुभवसिद्ध वैलक्षण्य पर मुख्य विभाग अवलंबित है जिससे एक विभागमें आने वाले प्रमाण दूसरे विभागसे असंकीर्ण रूपमें अलग हो जाते हैं जैसा कि इतर परंपराओंके प्रमाण विभागमें नहीं हो पाता। दूसरी दृष्टि यह है कि चाहे किसी दर्शनकी न्यून या अधिक प्रमाण संख्या क्यों न हो पर वह सब बिना खींचतानके इस विभागमें समा जाती है। कोई भी ज्ञान या तो सीधे तौरसे साक्षात्कारात्मक हो सकता है या असाक्षात्कारात्मक, यही प्राकृत-पंडित जनसाधारण अनुभव है। इसी अनुभवको सामने रख कर जैन चिन्तकोंने प्रमाणके प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो मुख्य विभाग किये जो एक दूसरेसे बिलकुल विलक्षण हैं। दूसरी इसकी खूबी यह है कि इसमें न तो चार्वाककी तरह परोक्षानुभवका अपलाप है, न बौद्धदर्शन संमत प्रत्यक्ष-अनुमान द्वैविध्यकी तरह आगम आदि इतर प्रमाण व्यापारोंका अपलाप है या खींचा-

१ प्रमाणमीमांसा १. १. १० तथा टिप्पण पृ० १९. पं० २९

तानींसे अनुमानमें समावेश करना पड़ता है। और, न त्रिविध प्रमाणवादी सांख्य तथा प्राचीन वैशेषिक, चतुर्विध प्रमाणवादी नैयायिक, पंचविध प्रमाणवादी प्रभाकर, षड्विध प्रमाणवादी मीमांसक, सप्तविध या अष्टविध प्रमाणवादी पौराणिक आदिकी तरह अपनी अपनी अभिमत प्रमाण संख्याको स्थिर बनाये रखनेके लिए इतर संख्याका अपलाप या उसे तोड़ मरोड़ करके अपनेमें समावेश करना पड़ता है। चाहे जितने प्रमाण मान लो पर वे सीधे तौर पर या तो प्रत्यक्ष होंगे या परोक्ष। इसी सादी किन्तु उपयोगी समझ पर जैनोंका मुख्य प्रमाण विभाग कायम हुआ जान पड़ता है।

२. प्रत्यक्षका तात्त्विकत्व–प्रत्येक चिन्तक इन्द्रियजन्य ज्ञानको प्रत्यक्ष मानता है। जैन दृष्टिका कहना है कि दूसरे किसी भी ज्ञानसे प्रत्यक्षका ही स्थान ऊँचा व प्राथमिक है। इन्द्रियाँ जो परिमित प्रदेशमें अतिस्थूल वस्तुओंसे आगे जा नहीं सकतीं, उनसे पैदा होने वाले ज्ञानको परोक्षसे ऊँचा स्थान देना इन्द्रियोंका अति मूल्य आँकनेके बराबर है। इन्द्रियाँ कितनी ही पटु क्यों न हों पर वे अन्ततः हैं तो परतन्त्र ही। अतएव परतन्त्रजनित ज्ञानको सर्वश्रेष्ठ प्रत्यक्ष माननेकी अपेक्षा स्वतन्त्रजनित ज्ञानको ही प्रत्यक्ष मानना न्यायसंगत है। इसी विचारसे जैन चिन्तकोंने उसी ज्ञानको वस्तुतः प्रत्यक्ष माना है जो स्वतन्त्र आत्माके आश्रित है। यह जैन विचार तत्त्वचिन्तनमें मौलिक है। ऐसा होते हुए भी लोकसिद्ध प्रत्यक्षको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कह कर उन्होंने अनेकान्त दृष्टिका उपयोग कर लिया है[1]।

३. इन्द्रियज्ञानका व्यापारक्रम–सब दर्शनोंमें एक या दूसरे रूपमें थोड़े या बहुत परिमाणमें ज्ञानव्यापारका क्रम देखा जाता है। इसमें ऐन्द्रियक ज्ञानके व्यापारक्रमका भी स्थान है। परंतु जैन परंपरामें सन्निपातरूप प्राथमिक इन्द्रिय व्यापारसे ले कर अंतिम इन्द्रिय व्यापार तकका, जिस विश्लेषण और जिस स्पष्टताके साथ अनुभव सिद्ध, अतिविस्तृत वर्णन है वैसा दूसरे दर्शनोंमें नहीं देखा जाता। यह जैन वर्णन है तो अतिपुराना और विज्ञानयुगके पहिलेका, फिर भी आधुनिक मानस शास्त्र तथा इन्द्रियव्यापार शास्त्रके वैज्ञानिक अभ्यासियोंके वास्ते भी बहुत महत्त्वका है[2]।

१ टिप्पण पृ० १९ पं० २९ तथा पृ० २३ पं० २४। २ टिप्पण पृ० ४५ पं० १६।

४. परोक्षके प्रकार – केवल स्मृति, प्रत्यभिज्ञान और आगमके ही प्रामाण्य-अप्रामाण्य माननेमें मतभेदोंका जंगल न था; बल्कि अनुमान तकके प्रामाण्य-अप्रामाण्यमें विप्रतिपत्ति रही। जैन तार्किकोंने देखा कि प्रत्येक पक्षकार अपने पक्षको आत्यन्तिक खींचनेमें दूसरे पक्षकारका सत्य देख नहीं पाता। इस विचारमेंसे उन्होंने उन सब प्रकारके ज्ञानोंको प्रमाणकोटिमें दाखिल किया जिनके बल पर वास्तविक व्यवहार चलता है और जिनमेंसे किसी एकका अपलाप करने पर तुल्य युक्तिसे दूसरेका अपलाप करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसे सभी प्रमाण प्रकारोंको उन्होंने परोक्षमें डाल कर अपनी समन्वय-दृष्टिका परिचय कराया[१]।

५. हेतुका रूप – हेतुके स्वरूपके विषयमें मतभेदोंके अनेक अखाड़े कायम हो गये थे। इस युगमें जैन तार्किकोंने यह सोचा कि क्या हेतुका एक ही रूप ऐसा मिल सकता है या नहीं, जिस पर सब मतभेदोंका समन्वय भी हो सके और जो वास्तविक भी हो। इस चिन्तनमेंसे उन्होंने हेतुका एक मात्र अन्यथानुपपत्ति रूप निश्चित किया जो उसका निर्दोष लक्षण भी हो सके और सब मतोंके समन्वयके साथ जो सर्वमान्य भी हो। जहाँ तक देखा गया है हेतुके ऐसे एकमात्र तात्त्विक रूपके निश्चित करनेका तथा उसके द्वारा तीन, चार, पाँच और छः, पूर्वप्रसिद्ध हेतु रूपोंके यथासंभव स्वीकारका श्रेय जैन तार्किकोंको ही है[२]।

६. अवयवोंकी प्रायोगिक व्यवस्था – परार्थानुमानके अवयवोंकी संख्याके विषयमें भी प्रतिद्वन्द्वीभाव प्रमाण क्षेत्रमें कायम हो गया था। जैन तार्किकोंने उस विषयके पक्षभेदकी यथार्थता-अयथार्थताका निर्णय श्रोताकी योग्यताके आधार पर ही किया, जो वस्तुतः सच्ची कसौटी हो सकती है। इस कसौटीमेंसे उन्हें अवयव प्रयोगकी व्यवस्था ठीक ठिक सूझ आई जो वस्तुतः अनेकान्तदृष्टि मूलक हो कर सर्वसंग्राहिणी है और वैसी स्पष्ट अन्य परंपराओंमें शायद ही देखी जाती है[३]।

७. कथाका स्वरूप – आध्यात्मिकता-मिश्रित तत्त्वचिंतनमें भी साम्प्रदायिक बुद्धि दाखिल होते ही उसमेंसे आध्यात्मिकताके साथ असंगत ऐसी चर्चाएँ

---

१ प्रमाणमीमांसा १. २. २। टिप्पण पृ० ७२ पं० २१। पृ० ७५ पं० ३। पृ० ७६ पं० २५। २ टिप्पण पृ० ८० पं० ३०। ३ टिप्पण पृ० ९४ पं० १४।

जोरोंसे चलने लगीं, जिनके फल स्वरूप जल्प और वितंडा कथाका चलाना भी प्रतिष्ठित समझा जाने लगा – जो छल, जाति आदिके असत्य दाव-पेचों पर ही निर्भर था। जैन तार्किक साम्प्रदायिकतासे मुक्त तो न थे, फिर भी उनकी परम्परागत अहिंसा व वीतरागत्वकी प्रकृतिने उन्हें वह असंगति सुझाई जिससे प्रेरित हो कर उन्होंने अपने तर्कशास्त्रमें कथाका एक वादात्मक रूप ही स्थिर किया; जिसमें छल आदि किसी भी चालबाजीका प्रयोग वर्ज्य है और जो एक-मात्र तत्त्वजिज्ञासाकी दृष्टिसे चलाई जाती है। अहिंसाकी आत्यंतिक समर्थक तो, जैन परंपराकी तरह बौद्ध परम्परा भी रही, फिर भी छल आदिके प्रयोगोंमें हिंसा देख कर निंद्य ठहरानेका तथा एक मात्र वादकथाको ही प्रतिष्ठित बनानेका मार्ग तो जैन तार्किकोंने ही प्रशस्त किया, जिसकी ओर तत्त्व-चिंतकोंका लक्ष्य जाना जरूरी है[1]।

८. निग्रहस्थान या जय-पराजय व्यवस्था – वैदिक और बौद्ध परम्पराके संघर्षने निग्रह-स्थानके स्वरूपके विषयमें विकास सूचक बड़ी ही भारी प्रगति सिद्ध की थी; फिर भी उस क्षेत्रमें जैन तार्किकोंने प्रवेश करते ही एक ऐसी नई बात सुझाई जो न्यायविकासके समग्र इतिहासमें बड़े मार्केकी और अब तक सबसे अंतिम है। वह बात है जय-पराजय व्यवस्थाका नया निर्माण करनेकी। यह नया निर्माण सत्य और अहिंसा दोनों तत्त्वों पर प्रतिष्ठित हुआ जो पहलेकी जय-पराजय व्यवस्थामें न थे[2]।

९. प्रमेय और प्रमाताका स्वरूप – प्रमेय जड़ हो या चेतन, पर सबका स्वरूप जैन तार्किकोंने अनेकान्त-दृष्टिका उपयोग करके ही स्थापित किया और सर्व व्यापक रूपसे कह दिया कि वस्तुमात्र परिणामी नित्य है। नित्यताके ऐकान्तिक आग्रहकी धुनमें अनुभव-सिद्ध अनित्यताका इनकार करनेकी अशक्यता देख कर कुछ तत्त्वचिंतक गुण, धर्म आदिमें अनित्यता घटाकर उसका जो मेल नित्यद्रव्यके साथ खींचातानीसे बिठा रहे थे और कुछ तत्त्वचिंतक अनित्यताके एकान्तिक आग्रहकी धुनमें अनुभव सिद्ध नित्यताको जो कल्पना मात्र बतला रहे थे, उन दोनोंमें जैन तार्किकोंने स्पष्टतया अनुभवकी आंशिक असंगति देखी और पूरे विश्वासके साथ बलपूर्वक प्रतिपादन कर दिया कि जब अनुभव न केवल नित्यताका है और न केवल अनित्यताका तब किसी

१ टिप्पण पृ० १०८ पृ० १५। पृ० ११५ पं० २८। २ टिप्पण पृ० ११९ पं० १४।

एक अंशको मान कर दूसरे अंशका बलात् मेल बैठानेकी अपेक्षा दोनों अंशोंको तुल्य सत्य-रूपमें स्वीकार करना ही न्यायसंगत है। इस प्रतिपादनमें दिखाई देने वाले विरोधका परिहार उन्होंने द्रव्य और पर्याय या सामान्य और विशेष ग्राहिणी दो दृष्टियोंके स्पष्ट पृथक्करणसे कर दिया। द्रव्य-पर्यायकी व्यापक दृष्टिका यह विकास जैन परम्पराकी ही देन है[1]।

जीवात्मा, परमात्मा और ईश्वरके संबन्धमें सद्गुण-विकास या आचरणसाफल्यकी दृष्टिसे असंगत ऐसी अनेक कल्पनाएँ तत्त्व-चिंतनके प्रदेशमें प्रचलित थीं। एकमात्र परमात्मा ही चेतन है अथवा उससे भिन्न अनेक जीवात्मा भी चेतन हैं, पर तत्त्वतः वे सभी कूटस्थ निर्विकार और निर्लेप ही हैं। जो कुछ दोष या बन्धन है वह या तो निरा भ्रान्ति मात्र है या जड़प्रकृतिगत है। एक ओर तो इस मतलबका तत्त्व-चिंतन था। दूसरी ओर ऐसा भी चिंतन था जो कहता कि चैतन्य तो अवश्य है, और उसमें दोष, वासना आदिका लगाव तथा उससे अलग होनेकी योग्यता भी है; पर उस चैतन्यकी प्रवाह-बद्ध धारामें कोई स्थिर तत्त्व नहीं है। इन दोनों प्रकारके तत्त्व-चिंतनोंमें सद्गुण-विकास और सदाचार-साफल्यकी संगति सरलतासे नहीं बैठ पाती। वैयक्तिक या सामूहिक जीवनमें सद्गुण विकास और सदाचारके निर्माणके सिवाय और किसी प्रकारसे सामंजस्य जम नहीं सकता। यह सोच कर जैन चिंतकोंने आत्माका स्वरूप ऐसा माना जिसमें एक-सी परमात्म-शक्ति भी रहे और साथ दोप, वासना आदिके निवारण द्वारा जीवन-शुद्धिकी वास्तविक जवाबदेही भी रहे। आत्मविषयक जैन चिंतनमे वास्तविक परमात्म-शक्ति या ईश्वर-भावका तुल्य रूपसे स्थान है, अनुभव सिद्ध आगन्तुक दोषोंके निवारणार्थ तथा सहजशुद्धिके आविर्भावार्थ प्रयत्नका पूरा अवकाश है। इसी व्यवहार-सिद्ध बुद्धिमेंसे जीवभेदवाद तथा देहप्रमाणवाद स्थापित हुए जो संमिलित रूपसे एक मात्र जैन परम्परामें ही हैं[2]।

१०. **सर्वज्ञत्व समर्थन**—प्रमाण-शास्त्रमें जैन सर्वज्ञवाद दो दृष्टियोंसे अपना खास स्थान रखता है। एक दृष्टि तो वह जीव-सर्वज्ञ वादकी है, जिसमें हर कोई अधिकारीकी सर्वज्ञत्व पानेकी शक्ति मानी गई है; और दूसरी दृष्टि यह है कि, जैन पक्ष निरपवाद रूपसे सर्वज्ञवादी ही रहा है, जैसा न बौद्ध

---

१. पृ० ५३. पं० ६। पृ० ५४. पं० १७। पृ० ५७. पं० २१। २. पृ० ७० पं० ८। पृ० १३६. पं० ११।

परम्परामें हुआ है और न वैदिक परम्परामें । इस कारणसे काल्पनिक, अकाल्पनिक, एवं मिश्रित आदि सर्वज्ञत्व समर्थक यावत् युक्तियोंका संग्रह अकेले जैन प्रमाणशास्त्रमें ही मिल जाता है, जो सर्वज्ञत्वके सम्बन्धमें होने वाले विचारविमर्श का, भूतकालीन बुद्धिविषयक ऐतिहासिक अवलोकन करनेके इच्छुक गवेषक अभ्यासियोंके लिये तथा साम्प्रदायिक भावना वालोंके वास्ते कामकी चीज है।

२. भारतीय प्रमाणशास्त्रमें हेमचंद्रका अर्पण

परम्परा प्राप्त उपर्युक्त तथा दूसरे अनेक छोटे बड़े तत्त्वज्ञानके मुद्दों पर हेमचन्द्रने ऐसा कोई विशिष्ट चिंतन किया है या नहीं, और किया है तो वह किस किस मुद्दे पर किस प्रकारका है जो जैन तर्क शास्त्रके अलावा भारतीय प्रमाणशास्त्र मात्रको उनकी देन कही जा सके। इसका जवाब हमने अपने हिंदी टिप्पणोंमें उस उस स्थान पर ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक दृष्टि द्वारा विस्तारसे दिया है। विशेष जिज्ञासु जन हमारे उन टिप्पणोंको देखें* ।

---

* **'सिंघी जैन ग्रन्थ माला'**में प्रकाशित हेमचन्द्राचार्यकृत प्रमाणमीमांसा नामक ग्रन्थके उपोद्घातरूप यह विशिष्ट निबन्ध लेखक महोदयने लिखा, और इस को, उक्त ग्रंथके प्रकट होने के पूर्व ही **भारतीय विद्या** में प्रकाशित होनेके लिये भेज दिया था। पंडितजीके इस सौहार्द कृत्यके हम पूर्ण कृतज्ञ हैं। – **संपादक**

उन्नीसवीं शतीकी

कुछ आर्थिक – राजनीतिक संस्थायें †

*

लेखक – पं० श्रीयुत जयचंद्रजी विद्यालंकार

[इतिहासाध्यापक, भारतीयविद्याभवन, बंबई]

हमारे प्राचीन इतिहासकी आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओंकी खोज अनेक बुजुर्गोंने की है। मध्य कालमें उन संस्थाओंका क्रम-परिपाक कैसे होता रहा इसकी खोज अभी तक बहुत कुछ बाकी है। उनमेंसे अनेक संस्थायें किसी न किसी रूपमें आधुनिक काल तक चलती आई हैं। उनके इस अंतिम रूप पर विचार करनेसे उनके पिछले इतिहासके मार्ग पर भी प्रकाश पड़ सकता है। इसी दृष्टिसे पिछली शताब्दी की कुछ आर्थिक – राजनीतिक संस्थाओंकी यहां आलोचना की जाती है।

हम यह पाते हैं कि

(१) ब्रिटिश शासनके आरम्भ-कालमें भारतके प्रायः सब राज्योंमें राजा और प्रजाके बीच जागीरदार, जमींदार, पाळयगार, सरंजामदार, सरदार, इनामदार, गिरासिये, ठाकुर, मालगुजार, तालुकेदार आदि नामके किसी न किसी किस्मके सामन्त थे। अनेक जगह कृषक प्रजा इन सामन्तोंकी "रै य त" थी। ये सामन्त अत्यन्त उच्छृंखल थे, और प्रायः सभी जगह इन्हींको इनके राजाओं और इनके देशके खिलाफ फोड़ कर अंग्रेजोंने भारतके राज्योंको जीता।

(२) करकी वसूली और स्थानीय शासनका काम प्रायः इन सामन्तोंके हाथोंमें था, पर जमीनके मालिक किसान ही माने जाते थे।

(३) कुछ प्रान्तों या जिलोंमें – जैसे तामिलनाडके बारामहाल अर्थात् सेलम और कृष्णागिरि जिलोंमें और महाराष्ट्रके मुख्य भागमें – राजा और किसानोंके बीच किसी किस्मके सामन्त नहीं थे।

---

† 'भारतीय विद्याभवन' की तरफसे, बम्बई युनिवर्सिटीके हॉलमें श्री पं० जयचंद्र विद्यालङ्कार द्वारा गत ४ एप्रिलको दिया गया व्याख्यान।

(४) भारतीय शिल्पी और कारीगर प्रायः सब जगह महाजनोंके पंजेमें थे। वे महाजनोंसे अगाऊ रकम पाते और उसकी चुकाईमें माल देते रहते थे। इन शिल्पियोंकी कारीगरी कमालकी थी, शताब्दियोंकी साधना उन्होंने घुट्टीमें पाई थी। लेकिन यूरोपमें शिल्पकी जो नई प्रक्रियायें तभी निकल रहीं थीं उन्हें अपनाने लायक जागरूकता न तो हमारे इन शिल्पियोंमें और न हमारे राष्ट्रके नेताओंमें ही थी। हम सभी एक अत्यन्त अद्भुत मोहनिद्रामें सोये हुए थे।

(५) समूचे भारतमें ग्रामोंकी पंचायतें थीं जो कर-वसूली, शान्ति-रक्षा आदिके लिए जिम्मेदार थीं।

इनमेंसे एक एक बात पर अब हम विचार करते हैं।

सामन्तशाही

सामन्तशाही मध्य कालका खास चिह्न है। मध्यकालीन युरोपमें भी वह थी; पर आधुनिक कालके शुरूमें आवाजाहीके साधन उन्नत होनेसे तथा सेनाका केन्द्रीकरण होनेसे राज्योंकी केन्द्रिक शक्ति प्रबल हुई; तब राजाओंने सामन्तोंके कोटले ढहा कर उन्हें काबू कर लिया। भारतके राज्य इस अंशमें युरोपसे पिछड़े रहे, इसीसे अंग्रेजोंको उनमें दखल देनेका मौका मिला। अंग्रेजोंने अनेक जगह तो इन सामन्तोंको बिलकुल कुचल दिया और जहां रहने भी दिया वहां इनकी सामरिक और राजनीतिक शक्ति बिलकुल तोड़ दी। दक्खिन भारतके अनेक पाळयगार, जो कि आरम्भिक मध्य कालसे चोळ, होयशल और विजयनगर साम्राज्योंके भीतर बने रहे, जिनको काबू करनेकी समस्या बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतानों, मुगल बादशाह और उसके सूबेदारों तथा शिवाजी और उसके उत्तराधिकारियोंको बराबर परेशान करती रही, अंग्रेजोंके हाथ कैसे मच्छरोंकी तरह मारे गये! सर टामस मुनरोने क्या हलकेपनसे लिखा था—"मैंने विठ्ठल हेगाडे, उसके युवराज और उसके खास खास कारिन्दोंको फांसी चढ़ा दिया है; और मुझे जरा भी शक नहीं कि दूसरा कोई भी आवारागिर्द राजा बलवा करेगा तो उसकी भी वैसी ही गत बना सकूँगा।"[१]

---

१. बसु, राइज ऑव दि क्रिश्चियन पावर इन इंडिया' पृ० ७३४ पर उद्धृत।

प्रश्न यह होता है कि प्राचीन कालमें भी तो आवाजाहीके साधन बहुत घटिया थे, तब युद्धकला मध्य कालकी युद्धकलासे भी निचले दर्जेकी थी, तब प्राचीन इतिहासमें सामन्तशाही क्यों न थी? इसका उत्तर यह है कि उस समय जनतामें सामूहिक जीवन उत्कट था; स्थानीय शासन सब जनताकी संस्थाओंके हाथोंमें था। उस समयके साम्राज्य या चातुरन्त राज्य संघटित और सजीव ग्रामों, श्रेणियों, पौरों, जानपदों और गणोंकी परिषदोंके थंभों पर खड़े होते थे। मौर्य और सातवाहन साम्राज्योंकी बुनियादें वही थीं; गुप्त साम्राज्यमें भी वे मौजूद थीं, पर शायद उनके साथ साथ कुछ सामन्तपद्धतिका भी बीज पड़ गया हो। पहले (हिन्दू) मध्यकालीन राज्योंके भूमि-दान-सम्बन्धी और अन्य जो हजारों लेख पाये गये हैं, तथा पिछले (मुस्लिम) मध्य कालकी जो इतिहास-सामग्री उपस्थित है, उसकी खोजसे इस सामन्तशाहीके क्रमविकासका पूरा इतिहास मिल सकना चाहिए।

जमीनकी मिलकियत

ये जागीरदार जमीनके मालिक नहीं थे; इनकी जागीरका अर्थ यह था कि ये राज्यकी तरफसे अपने इलाकेका कर वसूलते और प्रबन्ध करते थे। उस करको यदि वे खुद खर्च करते थे तो वह इनके शासन-प्रबन्ध-सम्बन्धी और सेना-सम्बन्धी कार्यका वेतन था। अंग्रेजोंने इनकी शासन और सेना-सम्बन्धी जिम्मेदारी सब छीन ली, पर अनेक जगह करकी वसूलीके लिए इन्हें जमींदार बना रहने दिया। जमीनकी आमदनीमेंसे जो अंश अंग्रेज सरकार इनके पास छोड़ने लगी वह वसूलीका कमीशन था। कार्नवालिसके बन्दोबस्तका यही अर्थ था। यह बात तथा बादमें ये लोग जमीनके मालिक कैसे बन गये सो भी लॉर्ड हेस्टिंग्सके सन् १८१९के इस लेखसे प्रकट है—

"बंगालमें जमीन-मिलकियतकी विद्यमान अवस्था उतनी गवर्नमेंटके अर्थनीतिक विधानोंसे पैदा हुई नहीं जान पड़ती जितनी कानूनी फैसलोंके चरितार्थ किये जानेसे हुई है। ठेका खरीदने वालोंने जो सब शक्तियाँ हथिया ली हैं, उससे किसानोंके पास किसी अधिकारकी परछाँही भी नहीं बची; और एक समृद्ध और खुशहाल जनता सर्वथा दरिद्र और भिखारी बन गई है।"[२]

---

२. बसु, वहीं, पृ० ८०५ पर उद्धृत।

ध्यान देनेकी बात है कि आज जिन्हें जमीनका मालिक कहा जाता है, हेस्टिंग्स उन्हें ठेका खरीदने वाले – अर्थात् गवर्न्मेण्टकी खातिर कर वसूलनेका ठेका लेने वाले और उसके बदलेमें कमीशन पाने वाले – कहता है। कार्नवालिसके समय वास्तवमें यही दशा थी। लॉर्ड रिपनने भी अपने शासन कालमें करीब करीब वही बात लिखी है –

"मुगल सरकारके अधीन भूमिकरको ठेकेदार या राजा लोग वसूलते थे, जो कई बार शासकों द्वारा सीधे नियुक्त किये होते थे और जिन्हें कई बार पहलेके और अधिकार भी होते थे। ब्रिटिश सरकारने इस मध्यस्थ वर्गको स्थायी बन्दोबस्तका जमींदार बना दिया और मुगलोंके भूमिकरको जमींदारी जागीरोंका लगान बना दिया। जमींदारोंको चाहे जमीनका असल मालिक कहा गया, पर वे रैयतोंके मुकाबलेमें पूरे मालिक न थे... ।"[१]

लॉर्ड हेस्टिंग्सके उक्त उद्धरणमें यह बात सबसे अधिक ध्यान देने लायक है कि किसानोंके हाथसे जमीनकी मिलकियत छिन कर जो जागीरदारोंके हाथमें चली गई, सो ब्रिटिश शासनके किसी अर्थनीतिक विधानसे नहीं हुआ, प्रत्युत अंग्रेजी कचहरियोंके फैसलोंके लागू होनेसे धीरे धीरे होता गया। इस बातको समझना आवश्यक है।

इंग्लैण्डमें अठारहवीं शताब्दीमें व्यावसायिक क्रान्ति शुरू होनेसे पहले एक "कृषि-क्रान्ति" हो चुकी थी, जिसमें जागीरदारोंने कृषकोंके सब अधिकार जब्त कर अपनी जमीनोंकी हदबन्दी कर ली थी और उस जमीनके पूरे मालिक बन बैठे थे। इस प्रकार उन्नीसवीं सदीके अंग्रेजी कानूनकी दृष्टिमें जो राज्यको जमीनका कर देता था वही जमीनका पूरा पूरा मालिक था और असल खेती करने वाले उसके निरे मुजेरे थे। भारतवर्षमें कार्नवालिसने जमीनके असल मालिक किसानोंसे कर वसूलने का ठेका जिन लोगोंको दिया, अंग्रेज जजोंने उन्हें अपने देशके नमूने पर जमीनका मालिक समझा, और उन जजोंके फैसलोंसे वे सचमुच मालिक बनते गये! एक तरफ करोड़ों जनताकी ठोस सम्पत्ति और उनकी जीविका और स्वतन्त्र हैसियतके प्रत्यक्ष आधार थे, दूसरी तरफ मुट्ठी भर विदेशी शासकोंका एक दृष्टि-विभ्रम था। दोनोंका सम्पर्क होने पर उस विभ्रमकी जीत हुई, क्यों कि हिन्दुस्तानी प्रजा

१. बसु, इंडिया अण्डर दि क्राउन, पृ० २२५।

अपने जीवनके ठोस अधिकारोंके विषयमें भी मूक थी, और अंग्रेजोंके वहम भी गरज कर बोलते थे। समाजशास्त्रकी दृष्टिसे यह एक अत्यन्त मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद नमूना है। अमेरिकन समाजशास्त्री सोरोकिनने सांस्कृतिक समास बनने (cultural integration) के चार तरीके बताये हैं। उनमें से दूसरा यह है कि विभिन्न सांस्कृतिक तत्त्व परस्पर-सान्निध्य होने पर किसी बाहरी शक्ति द्वारा मिलकर एक नई चीज बना डालते हैं (indirect association through a common external factor)[४]। यह उस प्रकारके समासका एक अच्छा नमूना है। उन्नीसवीं शतीमें भारतीय संस्कृति-तत्त्वकी अत्यन्त क्षीणता और अंग्रेजी संस्कृति-तत्त्वकी उत्कट सजीवता भी इससे प्रकट है।

परन्तु भारतीय किसानोंमें चेतनाके कुछ कण बाकी थे, और जब उन्होंने छटपटाना शुरू किया तो अंग्रेज मालिकोंने देखा कि उन्होंने बिना चाहे बिना समझे उन पर कितना बड़ा जुल्म ढा दिया है। कैनिंग, लारेंस, रिपन आदिके टिनैंसी-कानून उस भूलको सुधारनेकी कोशिशें थीं। किसानोंसे मिलकियत छिन गई थी, अब उन्हें "दखीलकारी" (occupancy) हक दे कर सन्तुष्ट करनेकी कोशिश की गई। ब्रिटिश वहमकी पहली चोटोंने भारतीय कृषिकी पेंदी छेद डाली थी; गदरके बादके सब टिनैंसी-कानून उन छेदोंमें टांके लगानेकी कोशिशें हैं। लेकिन एक टांका लग नहीं पाता कि दूसरा उखड़ जाता है। जमींदारीका वह समास जो भारतीय भू-स्वामित्व-पद्धतिमें ब्रिटिश कल्पनाका प्रभाव होनेसे बना है, अस्वाभाविक है। भारतीय कृषकमें ज्यों ज्यों गर्मी आयगी वह उस कल्पनाको ठोकरें लगा कर दूर गिरा देगा—दोनों तभी तक जुड़े रह सकते थे जब तक भारतीय कृषक ठंडा था। आज भारतके अनेक प्रान्त इस प्रक्रियामेंसे गुजर रहे हैं, और इसे न समझनेके कारण उनके शासक परेशान हैं।

इस विवेचनासे हमें अपने पिछले सांस्कृतिक इतिहासके लिए यह महत्त्वकी बात मिली कि इंग्लैण्डमें सत्रहवीं शती तक जागीरदारोंके आर्थिक अधिकारोंका जितना विकास हो गया था, भारतमें मध्य कालके अन्त तक भी उतना नहीं हुआ था। यहां किसान अन्त तक जमीनके मालिक बने रहे, और ब्रिटिश युगमें आ कर ही उनकी दुर्गति हुई।

---

४. 'सोशल ऐंड कल्चरल डिनैमिक्स, न्यूयार्क, १९३७, जि० १, पृ०

कृषक-भूस्वामित्व

हमारे बारामहालमें तथा महाराष्ट्र और पंजाबके अनेक हिस्सोंमें जैसे किसानोंने अपने ऊपर किन्हीं जागीरदारोंको स्थापित नहीं होने दिया, वैसी ही बात युरोपमें भी स्विज़रलैण्डके इतिहासमें हुई है। जैसे स्विज़रलैण्डमें यह अवस्था वहांकी जनताके उत्कट स्वाधीनताप्रेमके कारण बनी रह सकी, वैसा ही भारतके इन प्रान्तोंमें भी हुआ होगा। महाराष्ट्र और पंजाबमें मुस्लिम शासनकालमें वस्तुतः जागीरदार स्थापित थे; पर मराठों और सिक्खोंके उत्थानमें वे उखड़ गये। शिवाजीका निश्चित ध्येय पुराने जागीरदारोंको उखाड़ देना और नयोंको न स्थापित होने देना था। लेकिन बादके मराठा और सिक्ख शासकोंने अपने कुछ प्रदेशोंमें नये जागीरदार पैदा कर दिये। इसका अर्थ यह है कि अपने चारों तरफकी राजसंस्थासे मराठे और सिक्ख बहुत समय तक प्रभावित हुए विना न रह सके। मराठा और सिक्ख इतिहासका यह आर्थिक और संस्था-सम्बन्धी पहलू अभी तक उपेक्षित है।

परन्तु उन्नीसवीं शतीके शुरूमें इन प्रदेशोंके स्वतंत्र कृषकोंमें भी विशेष जान न थी। इसीसे अंग्रेजोंने उन्हें आसानीसे अपना खेत-मजदूर बना लिया। इन प्रान्तोंमें रैयतवारी बन्दोबस्त किया गया। रैयतवारी बन्दोबस्तमें जमींदार नहीं थे, पर किसान जमींदारोंकी रैयतोंसे भी बुरी दशामें थे। कारण कि यहां ईस्ट इंडिया कंपनी खुद जमींदार बन बैठी। जमीनके मालिकको आमदनीमेंसे जो मुनाफा या लगान अंग्रेजी कल्पनाके अनुसार मिलना चाहिए, उसे कम्पनी खुद लेने लगी, और इस प्रकार महाराष्ट्रके मिराशदार (कृषक भूस्वामी) कम्पनीके निरे खेत-मजदूर बन गये। और क्यों कि रैयतवारी बन्दोबस्तमें जमीनकी मालिक परदेशी कम्पनी थी, और उस मालिककी तरफसे एक एक कलक्टर डेढ़ डेढ़ लाख किसानोंके साथ बन्दोबस्त करता था, इसलिए इन प्रदेशोंकी जनताकी इज्जत तुच्छ कारिन्दोंके हाथों लुटने लगी और इस जनता का जीना केवल कम्पनीका मुनाफा पैदा करनेके लिए रह गया। सन् १९०१ में जब लॉर्ड कर्ज़नने दक्खिनके किसानोंके जमीन बेचनेके अधिकारको भी परिमित कर दिया तब उनकी गुलामी पर अन्तिम मुहर लग गई। देखना है कि इन अन्यायोंको हमारी जनताकी सरकारें कैसे दूर करती हैं।

ब्रिटिश शासनके शुरूमें रैयवतवारी प्रदेशोंमें भी किसानोंमें जान न होनेका एक और उदाहरण यह है कि आंध्रतटके "उत्तरी सरकारों"के जिन हिस्सोंमें जमींदार नहीं थे, वहां भी अंग्रेजोंने कर वसूलीके ठेके नीलाम कर नये जमींदार खड़े कर दिये।[५]

आठवीं शताब्दी ई० तक भारतीय किसानोंका अपनी जमीन पर स्वत्व कितना पूरा और पक्का बना हुआ था सो राजा चन्द्रापीड और कश्मीरके एक चमारकी कहानीसे प्रकट है[६]। आठवींसे अठारहवीं शताब्दी तक भारतीय किसानोंका मानव चैतन्य और सामूहिक चेष्टा कैसे मन्द होते गये, सो मध्य-कालीन इतिहासकी खोजके लिए एक प्रश्न है।

शिल्पियोंकी अवस्था

शिल्पियोंके महाजनोंके पंजोंमें फंसे होनेकी बात बहुत ही गम्भीर है। कहां तो सातवाहन युगमें वह अवस्था कि जुलाहोंकी श्रेणिके पास राजा अपनी स्थायी निधिको धरोहर रखता है[७], और कहां यह हालत कि वही जुलाहे अब महाजनोंके ऋणग्रस्त हैं, और विदेशी महाजन भी हमारे देशमें आ कर उन्हें दबोच लें तो हमारे राज्योंको कोई चिन्ता नहीं होती! यह परिवर्त्तन कब और कैसे हुआ? उसकी लम्बी प्रक्रिया कई मंजिलें पार कर पूरी हुई होगी और वह समूची टटोली जानी चाहिए। युरोपमें भी इस समय प्रायः कारीगरोंकी यही दशा थी। उनकी श्रेणियां या गिल्ड आधुनिक कारखाने शुरू होनेसे पहले ही टूट चुकीं थीं, और श्रेणि-पद्धति तथा आधुनिक कारखाना-पद्धतिके बीच एक ऐसा परिवर्त्तन-काल बीता जब पूंजीपति शिल्पियोंको कच्चा माल मुहय्या कर देते और उनसे तैयार माल ले लेते थे। यह घरेलू कारखाना-पद्धति (domestic system) या "माल देने" ("putting out") की पद्धति थी। बड़ी मशीनोंका प्रयोग अभी शुरू नहीं हुआ था, तो भी शिल्पी सिर्फ भृति ले कर पूंजीपतिके नफेके लिए काम करने लगे थे। कच्चे मालको थोक रूपसे पूंजीपति मुहय्या करता और वही तैयार सामानको बेचता था।

---

५. रमेश दत्त—इकनामिक हिस्टरी आव इंडिया, अर्ली ब्रिटिश रूल ४, पृ० ११७।

६. इतिहास प्रवेश, पृ. २४०। ७ भारतीय इति० की रूपरेखा, पृ० ९४९-५०

किन्तु भारतमें भी शिल्पियोंकी श्रेणियां इसी प्रकार सत्रहवीं शतीसे कुछ ही पहले टूटी हों सो नहीं सोचा जा सकता। कारण कि इस अंशमें भारतीय और युरोपीय इतिहासमें एक स्पष्ट भेद है। युरोपमें श्रेणियों या गिल्डोंका अभ्युदय मध्य कालमें ही हुआ – मध्य कालकी गुलामीके अंधियारे जमानेमें शिल्पियोंकी श्रेणियोंमें ही मानव स्वतंत्रताके दीपक टिमटिमाते रहे; परन्तु भारतमें श्रेणियोंका अभ्युदय प्राचीन कालमें हुआ था – यहां छठी शती ई० पू०से छठी शती ई० तक स्वाधीन सुसंगठित शिल्पियोंकी श्रेणियां थीं जो स्वतंत्रताके वातावरणमें ही पनपीं और फूलीं-फलीं। प्राचीन भारतीय राज्य-संस्था ग्रामों और श्रेणियों पर निर्भर थी – वह ग्रामों और श्रेणियोंका संघ ही थी। जनताका धन्दोंके अनुसार संघटन उस राज्यसंस्थाकी बुनियाद थी। इस अंशमें उसकी तुलना रूसी सोवियत-संघटनसे की जा सकती है।

भारतमें शिल्पियोंकी ये श्रेणियां छठी शती ई० तक परिपक्व अवस्था तक पहुंच चुकी थीं, और सत्रहवीं शती तक उनके सदस्य पूरी तरह पूंजीपतियोंके गुलाम बन चुके थे। प्रकट है कि उनका ह्रास और पतन बहुत धीरे धीरे लम्बी अवधिमें हुआ। श्रेणियां धीरे धीरे पथरा कर जातें बन गईं, उनका काम अपने सदस्यों पर सामाजिक बन्धन लगाना और सामाजिक रिवाजोंको बनाये रखना मात्र रह गया, और जो उनकी असल आर्थिक शक्तियां थीं वे सब महाजनोंके हाथों गिरवी रक्खी गई। यही मध्य-कालीन ह्रासकी प्रक्रिया है जिसका बारीकीसे टटोला जाना आवश्यक है। किन्तु इस ह्रास का सबसे करुण पहलू यह है कि हमारे शिल्पी और हमारा समूचा राष्ट्र बाहरी दुनियांकी तई बिलकुल बेहोश रहे। यदि वह सहज चौकन्नापन उनमें होता जो प्रत्येक जीवित सत्तामें होता है तो युरोपकी नई प्रक्रियाओंको उन्होंने झट अपना लिया होता और अपने दो हजार बरसके अगुआपनको कभी हाथसे न जाने दिया होता।

पर इस बेहोशीकी दशामें भी हमारे शिल्प आसानीसे मरने वाले नहीं थे यदि इंग्लैण्डने अपनी राजनीतिक शक्ति उन्हें कुचलनेको न लगाई होती। यह मानी हुई बात है और इससे यह प्रकट है कि हमारी कारीगरी कितनी परिपक्व थी। हमारे कारीगरोंका वह हस्त-कौशल आज भी मिट नहीं गया है। इस दृष्टिसे यह खोज बड़े महत्त्वकी होगी कि उन्नीसवीं शतीमें अथवा

आज भी हमारे मरते शिल्पोंमेंसे प्रत्येककी प्रक्रिया और कार्यशैली क्या थी। उन प्रक्रियाओंका क्रमविकास हमारे समूचे पिछले इतिहासमें हुआ था; इसलिए उनके मालूम होनेसे हमारे सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश पड़ेगा। मेरे आदरणीय मित्र राय कृष्णदासने बनारसके कुछ शिल्पों, उनके औजारों, उनकी प्रक्रियाओं और शैलियों और उनकी परिभाषाओंका अध्ययन इस दृष्टिसे किया है।

आज हमारे उन ग्राम्य शिल्पोंके पुनरुद्धारकी चेष्टा हमारे सबसे बड़े नेताकी ओरसे की जा रही है। इस पुनरुद्धारके लिए भी सबसे पहला काम होना चाहिए था उन शिल्पोंकी अवस्था और उनकी प्रक्रियाओंकी पूरी सिलसिलेवार जाँच (सर्वे)। आश्चर्य है कि अनेक प्रान्तोंकी राजकीय शक्ति हाथमें आने पर भी हमारे नेताओंको आज तक यह बात नहीं सूझी!

ग्राम संस्थायें

ग्राम-संस्थायें अंग्रेजी शासनके शुरूमें समूचे भारतमें थीं; वे हिमालय और सह्याद्रिके समान पुरानी मानी जाती थीं, पर अंग्रेजी शासनने उनके हाथोंसे सब शक्ति खींच ली, जिससे वे निर्जीव हो कर सूख गईं, सूख कर गिर पड़ीं और गिर कर धूलमें मिल गईं। इस प्रसंग पर हमारे महान् पथ-दर्शी ऐतिहासिक स्व० रमेशचन्द्र दत्तने यों लिखा है—

"राष्ट्रीय संस्थायें राष्ट्रीय आवश्यकताओंकी अभिव्यक्ति और परिणाम होती हैं। भारतके लोगोंने ग्राम-समूहोंका विकास किया; वे पाळयगारों और जमींदारों, जागीरदारों और ताल्लुकेदारों, सरदारों और पंचायतोंके अधीन रहते थे;

८ भारतके कई इलाकोंसे अंग्रेजोने जो जागीरदारों आदिको समूल उखाड़ दिया, रमेश दत्त उनके लिए भी आहें भरते हैं। उनके समयमें उनकी यह बात ठीक थी, क्यों कि एक तो किसानोंकी कमाईका कुछ अंश जब दूसरोंके हाथमें जाना ही है तो विदेशी कम्पनीके बजाय वह स्वदेशी जमीदारोंको ही क्यों न मिले; दूसरे, रैयतवारीमें किसानोंकी बहुत ही दुर्गति थी; जमींदारी इलाकोंमें तब तक जमींदार पुरानी परम्पराके अनुसार किसानोंके बीच रहते, खेतीको उन्नत करनेके लिए पूंजी लगाते, समय पड़ने पर किसानोंको पूंजी आदिसे मदद करते तथा उनके सुख दुःखमें भाग लेते थे। पर बादमें वह परम्परा टूटती गई, जमींदार अपनी स्थायी आमदनीसे निश्चिन्त हो शहरोंमें आ बसे, जमीनोंकी सुध लेना उन्होंने छोड दिया। रमेश दत्तके समय तक यह बात पूरी न हो पाई थी; तब तक किसानोंमें भी यह जागृति न हुई थी कि वे अपनी पूरी कमाई पर अपना हक समझें। रमेश दत्त यह देखते थे कि विदेशी शासकोंके तुच्छ अमलोंसे पददलित रैयतवारी इलाकोंकी अपेक्षा जमींदारी इलाकोंमें किसान अपेक्षया कम दुखी हैं, इसीसे वे जमींदारीका पक्ष करते हैं। आज वे होते तो शायद दूसरे ढंगसे ही लिखते।

क्यों कि उन्हें उनकी जरूरत थी। उनका सामाजिक संघटन उनकी अपनी सामाजिक आवश्यकताओंके अनुसार खड़ा हुआ था; वे अपनेको अपने सहज नेताओंके अधीन या अपने ग्राम्य-संघोंके बीच अधिक सुरक्षित और अधिक प्रसन्न अनुभव करते थे। किन्हीं भी शासकोंके लिए ऐसी योजनाओंमें फेरफार करना सयाना काम नहीं है; विदेशी शासकोंके लिए तो जनताकी संघटित संस्थाओंकी उपेक्षा करना मूर्खताका काम है।"[९]

फिर, "यह शोककी बात है कि इन प्राचीन स्व-शासन-संस्थाओंका ब्रिटिश शासकोंके अत्यन्त केन्द्रीकृत प्रबन्धके अधीन ह्रास और लोप हो गया। यदि गांवोंके नेताओं पर कुछ भरोसा किया जाता; मालगुजारी, फौजदारी और पुलिसके प्रबन्धमें उन्हें कुछ शक्तियां दी जातीं; और (उनमें) बुराइयोंका पैदा होना रोकनेके लिए सावधानीसे पर सहानुभूतिके साथ उन पर देखरेख रक्खी जाती, तो यह हो सकता था कि ये समूह आज तक भी अच्छी सेवा कर रहे होते।"[१०]

रमेश दत्तके समय घाव ताजा था, इस लिए उनका यों आंसू बहाना ठीक था। आज हम आँसू थाम कर और वेदनाके लम्बे अनुभवके फलस्वरूप चित्तको शान्त करके विचार सकते हैं। यदि राष्ट्रीय संस्थायें राष्ट्रीय आवश्यकताओंसे अभिव्यक्त होती हैं तो उन्नीसवीं शतीमें इन संस्थाओंका मिट जाना भी क्या उस समयकी राष्ट्रीय आवश्यकताओंका परिणाम न था? क्या वे इसी कारण नहीं गिरीं कि वे जीर्ण थीं? अंग्रेज भारतीय राज्योंको इस कारण ढा सके कि वे थोथे थे, उन्हें जनताका जीवित सहयोग प्राप्त न था। लेकिन जनताकी इन संस्थाओंको वे क्यों ढा सकते यदि इनके अन्दर जीवन होता? भारतवर्षकी लाखों ग्राम-संस्थाओंसे लड़ाई करनेकी जिदमें क्या ब्रिटिश साम्राज्य धूलमें न मिल जाता यदि इनमें जान होती? और यदि वे इतनी थोथी, इतनी दीमककी खाई हुई थीं कि विदेशीके चार ठुड्डोंसे गिर पड़ीं, तो क्या एक ऐतिहासिककी सिफारिश और दयाप्रार्थनासे वे बच जातीं? रमेश दत्त उन पंचायतोंको मालगुजारी, फौजदारी और

---

९. इंडिया इन विक्टोरियन एज", पृ० ८९।

१०. वही, पृ० १९७।

पुलिस-प्रबन्धका कुछ अंश सौंपवाना चाहते थे। ग्राम-पंचायतोंके हाथमें ये शक्तियाँ हों तो स्वराज्यकी सच्ची नींव पड़ जाय। पर आज कांग्रेसी सरकारें अपने डेढ़ बरसके शासनमें भी अपने गांवोंको इतने अधिकार क्यों नहीं सौंप सकीं? उन्हें यह क्यों नहीं सूझा कि जब तक अंग्रेजी सरकारसे समझौता है उस अरसेमें अपना ग्राम-संघटन खड़ा कर लें और अगली लड़ाई आनेके पहले पहले उसे इतना मजबूत बना लें कि अगली लड़ाइयोंमें वही हमारी रीढ़का काम दे? और यदि हमारे नेताओंको यह नहीं सूझा तो गांवोंकी जनताने खुद ही संघटित हो कर इन अधिकारोंका दायित्व लेना क्यों नहीं शुरू किया? जिन्दा जातियां लड़ाईके बीच ही अपना संघटन खड़ा कर लेती हैं; हमें समझौतेसे दम लेनेका मौका मिला है तो भी हम उस अंशमें बहुत ही कम कर पाये हैं। इसका अर्थ यही है; कि पिछले चालीस सालके पुनरुत्थान तथा महात्मा गांधीके नेतृत्वमें किये हुए बीस बरसके प्रयत्नोंके बावजूद भी अभी तक हमारा सामूहिक चैतन्य बहुत मन्द है; उन्नीसवीं शताब्दीमें तो वह करीब करीब न के बराबर ही था। इसलिए उस समय इन संस्थाओंका टूट जाना सर्वथा स्वाभाविक था। हम स्वयं इनमें समयानुकूल परिवर्त्तन न कर पाते। अंग्रेजोंने इन्हें मिटा कर साफ कर दिया तो नई रचनाके लिए मैदान तैयार हो गया।

इस विवेचनासे यह पता चला कि ये संस्थायें अपने अन्तिम जीवन-कालमें ठीक किस अवस्था तक पहुँच चुकीं थीं। एक बात इनके सम्बन्धमें और समझनेकी है। ये ग्रामसंघ सजात समूह न थे, ये जनमूलक (tribal)—कबीलों पर निर्भर न थे। यह हो सकता है कि कुछ गांवोंमें एक ही वंशके लोग बसे रहे हों, और कहीं कहीं उनकी संयुक्त संपत्ति भी रही हो। यह इस लिए कि आरम्भमें—वैदिक कालमें—हमारे ग्राम वस्तुतः जनकी टुकड़ियां ही थे। लेकिन भारतमें जनमूलक या साजात्यमूलक समाज छठी शताब्दी ई० पू०में ही समाप्त हो चुका था—जनके साजात्य और जनपदकी भक्तिमें पाणिनि स्पष्ट भेद करते हैं। और उसके बादसे हमारी संस्थाओंकी बुनियाद साजात्य पर खड़ी न थी। इस विशाल देशके कुछ पिछड़े लोगोंमें सजात समूह फिर भी बने रहे, पर कौटिल्यके समान हमारे राजनेता उनके तथा चेतनापूर्वक बनाये हुए समूहोंके अन्तरको स्पष्ट सम-

झते थे[११]। समूचे प्राचीन कालमें हमारे ग्राम चेतन समूह थे – अर्थात् उनकी मिल कर काम करनेकी प्रेरणा इस कारण न थी कि वे अपनेको सगोत्र मानते थे, प्रत्युत इस कारण कि वे उस सामूहिकताका लाभ देखते-समझते थे। सजात या सगोत्र हुए बिना भी वे मिल कर काम कर सकते थे।

लेकिन अनेक ग्रामोंकी बस्तियां शुरूमें साजात्यमूलक थीं ही; उनमें एक वंशके लोग बसे हुए थे ही; और जब बादमें उनका सामूहिक चैतन्य मन्द हो गया तब फिर केवल साजात्यका भाव बाकी रह गया और फिरसे जाग उठा। जिस प्रकार श्रेणियोंसे जातें बन गईं, वैसे ही कई जगह ग्राम फिर सजात समूहसे दिखाई देने लगे। उनके लोग अपने अन्दर जिस एकता-का अनुभव करते वह साजात्यकी एकता मात्र रह गई। और इस ह्रास और पतनके कालमें अनेक विदेशी या सरहद्दी आक्रान्ता भी भारतमें आ कर बसे। इनमेंसे अनेक कबीलेबन्दीकी दशामें थे। जहां जहां इनकी बस्तियां बसीं वहां वहां कबीले या जन वाला साजात्यका भाव रहा और उसने पड़ो-सियों पर भी प्रभाव किया। किन्तु उन्नीसवीं शतीके भारतीय ग्रामोंमें यदि कहीं साजात्यका भाव था तो वह सामाजिक संघटनकी प्रारम्भिक (primitive) दशाका सूचक न था, प्रत्युत एक बारके पूरे अभ्युदयके बाद परिपक्व हो कर जीर्ण हुए समाजकी जीर्णताका सूचक था – वह सभ्यताके आरम्भका द्योतक न था प्रत्युत सभ्यताके पतनके बाद उमड़े हुए वहशीपनका द्योतक था।

अनेक अंग्रेज निरीक्षकोंने इस भेदको नहीं समझा, और सर हेन्री मेनकी विचारधारामें यही त्रुटि रही है। लेकिन हमारे पास इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि उन्नीसवीं शतीमें भी हमारे ग्रामोंकी सामूहिकताकी बुनियाद साजात्य नहीं थी। विंगेट और गोल्ड्समिडने, जिनसे बढ़ कर हमारी संस्थाओंको देखने-समझनेका मौका शायद ही किसी अंग्रेजको मिला हो, स्पष्ट लिखा है – "माल-गुजारी-अदायगीकी साझी जिम्मेदारी और ग्रामका साझा प्रबन्ध दक्खिनमें शायद सार्वत्रिक थे, पर हम संयुक्त मिलकियतके कोई चिह्न कहीं नहीं पाते।"[१२]

---

११. भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, पृ० ६४१।

१२. रमेश दत्त – इंडिया इन वि० एज़', पृ० ५८ पर उद्धृत।

लेकिन कुछ अंग्रेजोंको इस सम्बन्धमें जो भ्रम हुआ और उन्होंने इस सामूहिकताको साजात्य समझ लिया, इससे भी यही परिणाम निकलता है कि यह सामूहिकता बहुत जीर्ण थी। और उसकी जीर्णताका परिपाक समूचे मध्य कालमें हुआ था।

इतनी बात स्पष्ट करनेके बाद यह प्रश्न आता है कि जागीरदार और ग्रामसंस्थायें दोनों साथ साथ कैसे थीं? दोनों-ही-का काम तो स्थानीय शासन था? एक म्यानमें ये दो तलवारें इकट्ठी कैसे रहतीं थीं? इसका उत्तर यही होना चाहिए कि ग्राम-संस्थाओंके साथ साथ सामन्तोंका रहना ही इस बातका सूचक है कि उन संस्थाओंका जीवन मन्द था। जिस अंशमें वे अपने दायित्वको छोड़ती गईं उसी अंश तक शासन-शक्ति सामन्तोंके हाथ जाती गई। उदाहरणके लिए हम कौटिलीयमें श्रेणियोंकी सेनाकी तथा ग्रामोंके ऊपर सड़कोंकी मरम्मतकी जिम्मेदारीकी बात सुनते हैं। सामन्त-शाहीके जमानेमें राजाओंकी सेनायें सामन्तोंकी टुकड़ियोंसे बनती थीं। प्रकट है कि जब ग्राम, श्रेणि आदि छोटे समूहोंने अपने दायित्वको निभाना छोड़ दिया तब राजाओंने सामन्तोंसे काम लेना शुरू किया। आज भी हमारे किसानोंमें जैसे जैसे सामूहिक जीवन जाग रहा है वैसे वैसे उन्हें जमींदारीकी संस्थासे लड़ना पड़ रहा है। महात्मा गान्धीका कहना है कि जमींदारोंका जमींदारीका हक एक तरहकी थाती है। एककी थाती तभी दूसरेको सौंपी जाती है जब पहला नाबालिग हो या नाबालिगकी तरह बर्त्तता हो। और जब वह बालिग हो जाय या अपने बालिगपनको अनुभव करने लगे, या जब थातीदार अमानतमें खयानत करने लगे तब थाती देर तक नहीं टिक सकती।

फलतः मध्य कालमें जागीरदारोंके पास जो भी शासनसम्बन्धी अधिकार थे, या उनके पास आज जो आर्थिक अधिकार हैं, वे सब वही अधिकार थे जो प्रजाने या प्रजाकी संस्थाओंने अपनी उपेक्षाके कारण उनके हाथोंमें जाने दिये थे। लेकिन किस किस प्रदेशमें, कब कब ग्रामसंस्थाओं और सामन्तोंके अधिकारोंकी ठीक हदबन्दी कैसे होती रही, यह मध्यकालीन इतिहासमें बड़ा खोजका विषय है।

ऊपरकी विवेचनामें अतीतका रास्ता टटोलते टटोलते कहीं कहीं मैं वर्त्तमान तक भी पहुँच गया हूं, और वर्त्तमानकी खिड़कीमेंसे भविष्यकी ओर झांकनेकी भी कोशिश की है। इस हिमाकतके लिए मेरी यही सफाई है कि यदि इतिहास हमारे भविष्य पर प्रकाश न डाल सके तो उसका लाभ ही क्या है।

बर्बर और म्लेच्छ

*

लेखक—श्रीयुत वासुदेवशरण एम्. ए.

[क्युरेटर, एन्टिकेरियन् म्युजियम, मथुरा]

§१. बर्बर

बर्बर शब्द भारतीय साहित्यमें अत्यन्त प्राचीन है। इसकी निरुक्तिका संस्कृत भाषामें ठीक पता नहीं चलता। जान पड़ता है यह शब्द किसी दूसरी भाषासे लिया गया है। आधुनिक हिन्दी भाषामें 'बड़बड़ाना' एक धातु है। इस समय इसका प्रयोग क्रोधपूर्ण अस्पष्ट भाषणके लिए होता है। व्याकरणकी दृष्टिसे यह 'बर्बर' शब्दकी नामधातु प्रतीत होती है, अर्थात् 'बर्बर' की तरह बोलनेका नाम 'बर्बराना' या 'बड़बड़ाना' हो सकता है। यदि यह व्युत्पत्ति ठीक है, जैसी कि सम्भावना प्रतीत होती है, तो यह धातु हमारे प्राचीन इतिहासके एक युग पर विशेष प्रकाश डालती है।

भारतीय साहित्यमें सबसे पहले ऋक्प्रातिशाख्यमें बर्बर शब्दका प्रयोग मिलता है। १४ वें पटलके २६ वें सूत्रमें कहा है—

अतिस्पर्शो बर्बरता च रेफे।

इस प्रकरणमें उच्चारणसम्बन्धी दोष गिनाये गये हैं। उनमें रेफका अतिस्पर्श या कड़ा उच्चारण बर्बरता दोष माना गया है। ज्ञात होता है कि बर्बरोंकी भाषा 'र'कार बहुल थी और उसमें भी 'र'कारका उच्चारण कड़ा (अमुकुमार) था। उसीकी अनुकृति जहां आर्य भाषाके उच्चारणमें पाई गई, तो उसको 'बर्बरता' दोष गिना गया। बर्बरता शब्दके हमारे भाषामें स्वीकार किये जानेसे पूर्व ही बर्बर जातिके साथ भारतवासियोंका परिचय हो चुका होगा।

पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें भी बर्बर शब्द कई गणोंमें पढ़ा है, यथा 'कडारादि' (२।२।३८), 'काशादि' (४।२।८०), 'कृशाश्वादि' (४।२।८०), 'तक्षशिलादि' (४।३।९३), और 'धूमादि' (४।२।१२७)। इनमें तक्षशिलादि गणवाला पाठ असली जान पड़ता है। इस गणमें सभी शब्द देशवाची हैं। और 'सोऽस्याभिजनः' इस अर्थमें गणस्थित शब्दोंसे प्रत्ययका

विधान किया गया है। निवास और अभिजन इन दो अर्थोंमें पाणिनिने प्रत्यय किये हैं। इनका भेद टीकाकारोंने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

यत्र संप्रति उष्यते स निवासः।
यत्र पूर्वैरुषितं सोऽभिजनः। (काशिका)

अर्थात् वर्तमान कालमें रहनेकी जगहकी संज्ञा निवास है; जहां पूर्वज रहते थे, वह देश अभिजन कहलाता है। बर्बर देश जिनका अभिजन हो वे लोग इस कालमें 'बार्बर' कहलाते थे। सम्भवतः भारतवर्षमें बर्बर लोग बर्बर देशसे आ कर बसे थे और उनके अभिजनके नाम पर उनको यहां 'बार्बर' कहा जाता होगा। महाभारत हमारी सभ्यताका विश्वकोष है। उसमें भी कई स्थानों पर बर्बर जातिका उल्लेख है*। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण उल्लेख सभापर्वके नकुलके पश्चिम दिग्विजय पर्वमें आया है—

ततः सागरकुक्षिस्थान् म्लेच्छान् परमदारुणान्।
पह्लवान् बर्बरांश्चैव किरातान् यवनान् शकान्॥ ३२।१७

इस वर्णनमें बर्बरोंको परमदारुण म्लेच्छ कहा गया है। द्रोणपर्व ११८।१५, २१ में भी बर्बर म्लेच्छ कहे गये हैं। एवं शान्तिपर्व ६५।१३ में बर्बरोंको दस्यु कहा है। म्लेच्छ शब्द भी हमारी भाषामें बाहरसे आया हुआ है। पश्चिमकी सामी जातियोंके लिए भारतीय शब्द म्लेच्छ था। बर्बर भी सामी (Semitic) वर्गमेंसे थे, अतएव भारतीय आचार्योंने उनकी गणना म्लेच्छोंमें ही की।

दूसरी बात जो महाभारतके ऊपर लिखे वर्णनसे ज्ञात होती है वह यह कि बर्बर जाति भारतवर्षमें समुद्रके किनारे बसी हुई थी। 'सागरकुक्षिस्थ' पद विशेष महत्त्वका है। प्राचीन सौवीर राष्ट्र और सिन्धु नदीके सागरसे संगमका प्रदेश 'सागरकुक्षिस्थ' पदसे समझा जा सकता है†। प्राचीन 'सिन्धु' देश तो

* सभापर्व ३२।१७; ५१।२२ (युधिष्ठिरको उपहार लाने वालोंमें)। वनपर्व ५१।२३ (युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भाग लेने वाले लोगोंमें); २५३।१८ (कर्णदिग्विजयमें)। द्रोणपर्व ११९।१५, २१, ४५। शान्तिपर्व ६५।१३। अनुशासनपर्व ३५।१७, १८।

† "नकुलके पश्चिम-दिग्विजयमें जिन **'सागरकुक्षिस्थ'** (समुद्रकी कोखमें रहने वाले) शकोंका उल्लेख है, वे सिन्धु नदीके मुहानेके समुद्र पर नहीं, प्रत्युत कास्पियन समुद्र पर रहने वाले शक थे, [दे० ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ, विभाग ८, पृ० ९] 'सागर कुक्षिस्थ शक' ये शब्द दारय बहुके अभिलेखके **'सका तर दरया'** का स्पष्ट अनुवाद हैं। (—'सका तर दरया' कास्पियन पर ही रहते थे। —भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, पृ० ४०६) इसके

सौवीरके उत्तरमें था जिसे अब सिन्धसागर दोआब कहते हैं [देखिए–भारतभूमि० पृ० ३७]।

समुद्र किनारेके एक प्रदेशमें बर्बरोंका उपनिवेश रहा जान पड़ता है। यूनानी लेखकोंने भी इसी स्थान पर एक नामका उल्लेख किया है जो सभापर्व वाले वर्णनका समर्थन करता है। प्रसिद्ध भूवृत्त-लेखक तोलमि (Ptolemy) ने लिखा है–

"And in the island formed by the river (Indus) are these towns: – Patala, Barberi."

[मैक्रिंडलकृत अंग्रेज़ी अनुवाद, 'एन्श्यन्ट इन्डिया बाइ टॉलमी, पृ. १४६]

अर्थात् सिन्धुनद और सागर संगमके बीचके एक द्वीप पर बर्बेरी नगर था। 'पेरीप्लस' नामक ग्रन्थमें सिन्धुके विचले मुहाने पर स्थित 'बर्बरीकन' (Barbarikon) नगरका नाम आया है। हमारी सम्मतिमें यही बर्बर जातिका प्राचीन भारतीय उपनिवेश था*। बर्बर जातिने व्यापारके लिए भारतवर्षमें समुद्रके पास अपना एक उपनिवेश बनाया मालूम होता है। भारतीय

अलावा नकुलके रास्तेमें उनसे पहले जिन देशोंके नाम हैं उनके क्रमके अनुसार इन शकोंका देश कास्पियन पर ही आता है।

तीसरे, सभा पर्वके अन्तर्गत दिग्विजय पर्वका भूवर्णन दूसरी शताब्दी ई० पू०का है और उस समय तक भारतमें शक न आये थे। तोलमि दूसरी शताब्दी ई०का लेखक है और '**पेरिप्लस**' का लेखक लगभग ८० ई० का। उस समय तक शक लोग भारतमें आ चुके थे। शायद उनके साथ ही बर्बरोंका कोई दल भी आया हो। लेखककी मुख्य स्थापना यह है कि **बर्बर** और **म्लेच्छ**का अर्थ **हामी** और **सामी** है। मुझे यह ठीक जान पड़ती है।"—**जयचन्द्र विद्यालंकार**

*** संपादकीय—वराहमिहिरकी बृहत्संहिता [अध्याय १४ श्लोक १८] में 'बर्बर–किरातखण्ड' का नैऋत्य दिशामें होना सूचित किया है। राजशेखरने काव्यमीमांसा [अध्याय ७, पृ० ९४, गायकवाड ग्रंथमाला]में उत्तरापथके जिन देशोंके नाम गिनाये हैं उनमें, –'तुषार–तुरुष्क–बर्बर'–इस प्रकार तुखारा और तुर्कके साथ बर्बर देशका भी नाम गिनाया है। विनयचन्द्र कविने अपने कविशिक्षा नामक ग्रन्थमें भारतवर्षके चक्रवर्ती सम्राट्के ८४ देश बतलाये हैं जिनमें 'बर्बर' का भी समावेश किया गया है 'नेपाल–टक्क–तुरुष्क–ताइकार–बर्बर–जर्जर' इत्यादि। इससे मालूम होता है कि यह 'बर्बर' उपनिवेश सिन्धुके मुहानेसे पर पश्चिमकी ओर कहीं ब्लुचीस्थानके प्रदेशान्तर्गत था। जैन ग्रन्थोंमें, कई जगह बर्बरकूलके नामसे भी इसका उल्लेख किया हुआ मिलता है जिससे यह सूचित होता है कि यह समुद्रतीरवर्ती प्रदेश था। जैन साहित्यमें–**

व्यापारियोंसे यहां उनका मेल होता होगा। यह भी सम्भव है कि कुछ बर्बर लोग प्राचीन सिन्धु और त क्ष शि ला तक व्यापारके सम्बन्धसे जाते हों। त क्ष-शि ला उस समय विद्याका विश्वव्यापी केन्द्र था। वहांसे बर्बरोंका परिचय उनकी भाषा और उच्चारणकी विशेषताके कारण सम्भवतः उत्तरापथके और लोगोंको भी प्राप्त हुआ। उच्चारणकी जिस विशेषताका उल्लेख ऋक्-प्राति-शाख्यमें आया है, उसके कारण कालान्तरके संस्कृत साहित्यमें बर्बर शब्द अपढ, मूढ, गंवारके अर्थमें प्रयुक्त होने लगा। सुहृद्भेदकी प्रसिद्ध कर्पूरपट रजकके गर्दभकी कथामें गधेने कुत्तेको सम्बोधन करते हुए बर्बर शब्दका प्रयोग किया है–

गर्दभो ब्रूते – 'शृणु रे बर्बर!'।

सम्भव है अन्य साहित्यकारोंने भी इसका प्रयोग इसी विकृत अर्थमें किया हो। विशेषतः बाणभट्टमें इसका प्रयोग मिल जाना सम्भव है।

वस्तुतः बर्बरोंका अपना देश उत्तरी अफ्रीकामें सहारा और भूमध्यसागरके बीच वाला वह प्रदेश था जो मिश्रसे लेकर अतलान्तिक समुद्रके किनारे तक

आगम और कथा ग्रन्थोंमें–यह नाम वारंवार मिलता है। बर्बरा या बर्बरिका जाति-की दासियोंका भी उल्लेख मिलता है, जो भारतीय नृपतियोंके अन्तःपुरोंमें रहती थीं। हे म च न्द्र सू रि ने दे शी ना म मा ला में एक 'बब्बरी' शब्द दिया है जो एक प्रकारकी केशरचनाका वाचक है। गुजरातमें आज भी यह शब्द इस अर्थमें सर्वत्र प्रचलित है। कोळी आदि जैसी कुछ कनिष्ठ जातियोंमें कई मनुष्योंका नाम भी 'बाबर' ऐसा रखा जाता है। इससे प्रतीत होता है कि बर्बर लोक बहुत प्राचीन कालसे भारतके पश्चिमीय समुद्रतीर पर अच्छी संख्यामें बसे हुए थे। काठियावाडके दक्षिणके एक विभागका नाम बा ब रि या वा ड है जिसका नामकरण भी इसी बर्बर जातिके संबन्धसे हुआ है। चालुक्य वंशीय चक्रवर्ती नृपति सिद्धराजका एक बिरुद 'बर्बरकजिष्णु' है जिसका कुछ इतिहास सिद्धराजके जीवनमें दिया गया है। सिद्धराजके प्रबन्धोंमें यद्यपि इसका वर्णन कुछ चमत्कारपूर्ण ढंगसे किया गया है और जिस बर्बरको उसने अपने वशमें किया था उसको एक अमानुषिक शक्ति धारण करने वाला राक्षस बतलाया गया है। लेकिन उस कथाका रहस्य यह बतलाता है कि वह बर्बर एक बलवान् शक्तिशाली और कुछ जादूगिरी जानने वाला विदेशी मनुष्य था जो अपनी टोलीका नायक था और शायद सिद्धराजके समयमें ब र्ब र कू ल से उत्तर गुजरातमें चला आया था और अम्बा और तारंगाके समीपके पहाडी प्रदेशमें छिप कर सिद्धपुरके समीपके सारस्वत मंडलमें उपद्रव मचाये करता था। सिद्धराजने उस पर आक्रमण कर उसको अपना अनुचर बनाया और फिर उसकी सहायतासे राजाने कई कार्य सिद्ध किये। –जि० वि०

फैला हुआ था। उत्तरी अफ्रीकाकी लिबियन जाति आज तक 'बर्बर' कहलाती है। इस शब्दकी ठीक ठीक व्युत्पत्ति अनिश्चित है। यूनानी लोग असभ्य लोगोंको इसी प्रकार बर्बर (Barbaroi) कहते थे जैसे हम लोग कालान्तरमें म्लेच्छ और बर्बर शब्दोंका प्रयोग करने लगे। मिश्रके प्राचीन लेखोंमें (१७०० ई० पू०–१३०० ई० पू०) 'बरबर' यह जातीय उपाधि पाई जाती है। बर्बर जाति पर इस समय अरबोंका अधिक प्रभाव पड़ा है, परन्तु वह सदासे एक पृथक् जाति रही है। बर्बर भाषा आज तक एक जीवित भाषा है जिसका क्षेत्र मिश्रसे अतलान्तिक तक एवं भूमध्यसागरसे सूडान तक विस्तृत है। यह भाषा अफ्रीका महाद्वीपकी भाषाओं [Hamitic]* में गिनी जाती है। यद्यपि बर्बर भाषा म्लेच्छ भाषासे कुछ कुछ समता रखती है पर है उससे भिन्न। उत्तरी अफ्रीकामें बर्बर भाषाके अनेक प्राचीन शिलालेख पाये जाते हैं।

§२. म्लेच्छ

महाभारतकारने बर्बरोंको सामान्य रीत्या म्लेच्छ कहा है। वस्तुतः म्लेच्छ बर्बरोंसे पृथक् थे। वैदिक साहित्यमें बर्बर शब्दका कहीं प्रयोग नहीं हुआ। म्लेच्छ शब्दका प्रयोग केवल एक बार शतपथ ब्राह्मणमें आया है—

तेऽसुरा आत्तवचसो हेऽलवो हेऽलव इति वदन्तः पराबभूवुः। तत्रैतामपि वाचमूदुः। उपजिज्ञास्या॰ स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेदसुर्या हैषा वाक्। श० ३।२।१।२३–२४

अर्थात् 'हेलवः हेलवः' कहते हुए असुर हार गये। यह असुरोंकी बोली थी। ब्राह्मण म्लेच्छोंकी तरह न बोले। काण्वशाखाके शतपथमें 'हैलो हैलः' यह पाठ है। महाभाष्यमें 'हेलयो हेलयः' यह पाठ है। वहां स्पष्ट कहा है कि यह अपशब्द म्लेच्छ है अर्थात् म्लेच्छ भाषाका है†। स्वर्गीय श्रीकाशीप्रसादजी जायसवालने म्लेच्छ शब्दके सम्बन्धमें लिखा था—

---

* अफ्रीकाकी हॅमेटिक वर्गकी भाषाओंको हमने 'बर्बर' भाषा कहा है, और सेमेटिक वर्गकी भाषाओं जैसे हिब्रू, अरबी आदिको संस्कृतमें 'म्लेच्छ' भाषाकी संज्ञा दी जा सकती हैं।

† तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः। तस्माद्ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः। म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्।–महाभाष्य पस्पशाह्निक।

'म्लेच्छ is not a Sanskrit but a Semitic word: *melekh*, 'king'; the Pali form of the same word is *milakkha*, (Childers) and the Jaina Prakrit, *malikkhu* (also *milukkha*, *milekkha*, *milikkha*, *milakkha*, and Hindi *malichchha*). *Heleva* is *h* (Semitic article, or Semitic vocative, *he*)-*ellu* "holy" (Assyrian), "elowah", "God".' [JBORS, 1920, p 196.]

अर्थात् म्लेच्छ शब्द असुर (असीरिअन्) भाषाका है। ब्राह्मणमें जो हेलव शब्द है, उसमें भी एलु शब्द आसुरी भाषाका है जिसका अर्थ ईश्वर है।

इस प्रकार म्लेच्छ भाषाका परिचय शतपथब्राह्मणके समयसे ही भारत-वासियोंको था। महाभारतमें लिखा है कि विदुरने युधिष्ठिरसे म्लेच्छ भाषामें लाक्षागृहके आगसे जलनेकी बात कह दी थी–

विदुरेण कृतो यत्र हितार्थं म्लेच्छभाषया। आदि २।१०३

उस संभाषणका अर्थ कुन्तीकी समझमें कुछ न आया था [आदि० १४७। ३०–३२] इसलिए युधिष्ठिरने उस म्लेच्छ भाषाका अर्थ संस्कृतमें समझाया। यह सम्भव माळूम होता है कि असुरोंके साथ परिचय होनेके कारण विशिष्ट व्यक्ति महाभारत कालमें असुरोंकी म्लेच्छ भाषाका ज्ञान भी रखते थे। प्राचीन असुर (असीरिअन), फिनीशिअन व हिब्रू भाषाओंके अध्ययनसे सम्भव है कि और भी उन भाषाओंके शब्द संस्कृतमें मिलें। जैसा जायसवालजीने लिखा है मलिक्खु या मिलक्ख शब्द हमारी प्राकृतोंमें उसी भाषासे आ गये थे। इस प्रकार प्राचीन भारतवासी अपने व्यापार अथवा साम्राज्य विस्तारके कारण म्लेच्छ और बर्बर (सेमेटिक और हॅमिटिक) इन दो बड़ी जातियोंके संपर्कमें आ चुके थे। उनका प्रभाव प्राचीन आर्यभाषाके कुछ शब्दों पर पडा हो, यह भी एक अनुसन्धानके योग्य विषय है। इस प्रकारके एक शब्दकी चर्चा हम अगले लेखमें करेंगे।

मीर खुसरोके चित्र

*

लेखक — श्रीयुत राय कृष्णदासजी

बोस्टन ललितकला म्यूज़ियममें एक मोटे व्यक्तिकी लेटी हुई शवीह है (सं० २१. १६७४), जिस पर उसका नाम मीर खुसरो लिखा है (देखिए प्लेट १)। डाक्तर कुमार स्वामीने इस शवीहको जहांगीरके अभागे पुत्र शाहजादा खुसरो (१५८७–१६२२ ई०) की माना है (बोस्टन म्यूज़ियम् कैटलाग जिल्द ६, पृ० ३६, ३७)। किन्तु उन्होंने ऐसा करनेका कोई कारण नहीं दिया है। इसी व्यक्तिकी पलथी मार कर बैठी हुई एक शवीह इंडिया आफिस लाइब्ररीके सुप्रसिद्ध जानसन संग्रहके ६४ वें मुरक्केके चौंतीसवें चित्रमें है, जिसे इवान चुकिनने अपनी मुगल कालीन भारतीय चित्रकला नामक प्रामाणिक पुस्तकमें[1] प्रकाशित किया है (देखिए प्लेट २)।

मेरी रायमें यह किसी और ही मीर खुसरोका चित्र है। इसके कई कारण हैं —

(१) मुगल शाहजादोंकी पदवी मीर नहीं मिरज़ा होती थी।

(२) इस व्यक्तिका मुगलवंशसे ज़रा भी रूप-सादृश्य नहीं है, हालां कि उस कुलमें ऐसा सादृश्य बहुत अधिक था।

(३) इसकी आकृति सुन्दर नहीं है। शाहजादा के विषयमें सर टॉमस रोके पादरीका लेख मिलता है कि वह बड़ा सुन्दर जवान था[2]।

(४) इस व्यक्तिके तन पर आभूषणोंका सर्वथा अभाव है जो मुगल राजवंशकी मर्यादाके सर्वथा विरुद्ध है।

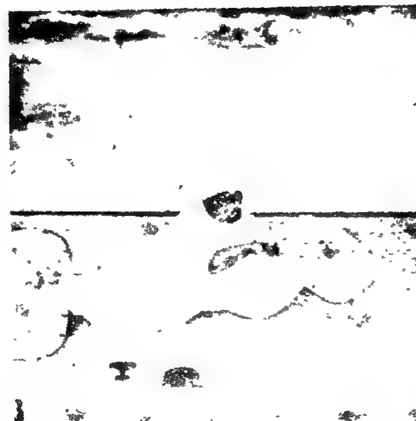
---

१. ला पेंतियर इंदिएन आ लेपोक दे ग्रां मोगोल, इवान चुकिन, पारी। (La Peintiore Indienne a L'Epoque Des Grands Moghols, Ivan Stchoukine, Paris) २. कुमार स्वामी, उक्त कैटलॉग, उक्त पृष्ठ।

(५) इसकी पगड़ी मुगल पगड़ीसे बिलकुल भिन्न है। ऐसी पगड़ी अकसर उन व्यक्तियोंके सिर पर मिलती है जो भारतके बाहरसे आ कर मुगल दरबारमें स्थान पाते थे। अर्थात् यह विदेशी पगड़ी है।

उक्त कारण काफी प्रबल हैं। इनके सिवा एक बात और है—ल्वूत्र (फ्रांस) के संग्रहमें मुहम्मद नादिर समर-कन्दीकी अंकित एक एकचश्म शबीह है जो इसी व्यक्तिकी जान पड़ती है (प्लेट ३)। इसका मुटापा, ठुड्डी दाढ़ी और विदेशी पगड़ी उक्त शबीहसे ज्यों की त्यों मिलती है। समर-कन्दी शाहजहाँ कालीन चित्रकार है और उसकी यह शबीह १६४०–५० की बनी होनी चाहिए। क्यों कि जैसा बूटादार ओर ओछे पल्लेका पटका इस व्यक्तिकी कमरमें बँधा है वैसा पिछले शाहजहां कालसे चलता है। ऐसी अवस्थामें इस मीर खुसरोका काल मिरजा खुसरोसे बीसों बरस इधर आ जाता है।

अब खोज इस बातकी होनी चाहिए कि यह मीर खुसरो कौन था। लोकमें एक खुसरोकी कहानी चलती है जो अकबर बादशाहका साला कहा जाता है और बीरबलको नीचा दिखानेके फेरमें स्वयं उपहासास्पद बना करता है। इन चित्रोंका व्यक्ति भी अपने मुटापे और शराहतके कारण उपहासकी मूर्ति है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसीकी भूली भटकी स्मृति अकबर–बीरबलसे सम्बद्ध कर दी गई हो?



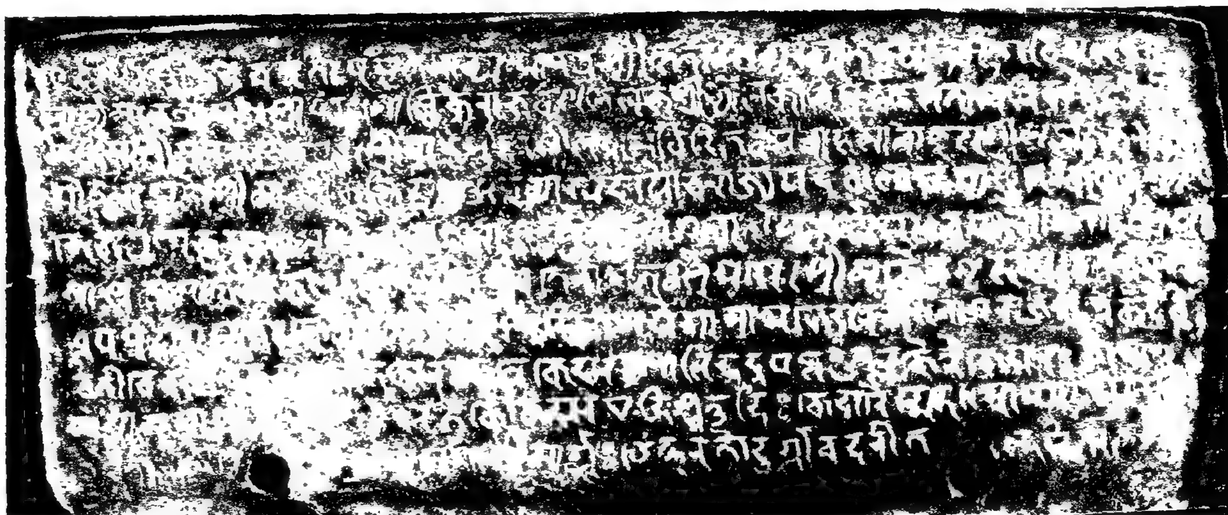
१



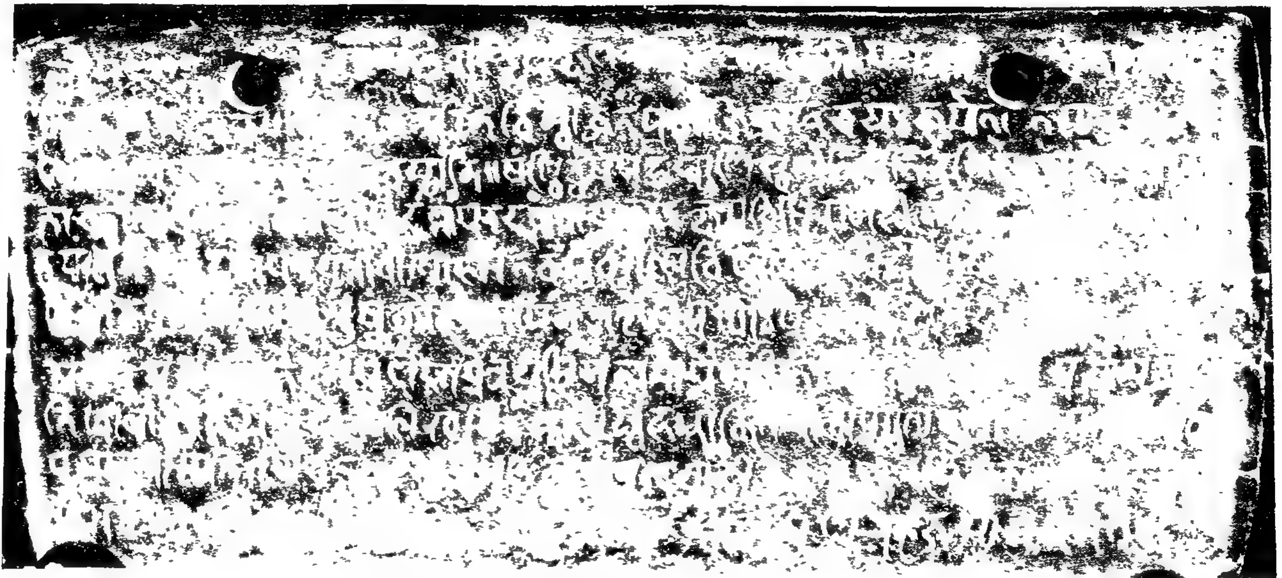
२



३



चामुण्डराज चौलुक्यनुं ताम्रपत्र — प्रथम पत्र



चामुण्डराज चौलुक्यनुं ताम्रपत्र — द्वितीय पत्र

दिवंगत साक्षररत्न श्रीकेशवलाल ध्रुववाळुं

चामुंडराज चौलुक्यनुं संवत् १०३३ नुं ताम्रपत्र

[संपादकीय लेख]

તામ્રપત્રની પ્રાપ્તિ

અહિ પ્રકટ કરવામાં આવતા તામ્રપત્રની પ્રથમ ફોટોકૉપી, સન્ ૧૯૩૩ના ઉનાળામાં, સ્વર્ગસ્થ સાક્ષરરત્ન દીવાન બહાદુર શ્રીકેશવલાલ હર્ષદરાય ધ્રુવતરફથી મને અમદાબાદમાં આપવામાં આવી હતી. અસ્સલ તામ્રપત્ર, એ અગાઉ તેમની પાસે આવેલું, ત્યારે તેમણે એના માલીક પાસેથી, જો તે આપે તો પોતે રાખી લેવાની ઇચ્છા પ્રદર્શિત કરી, પરંતુ માલીકે આપવાની અનિચ્છા બતાવતાં તેમણે એની એક ફોટોકૉપી કરાવી લીધી અને અસ્સલ તામ્રપત્ર એના માલીકને પાછું આપી દીધું. પછી તેમણે એ કૉપી ઉપરથી એ અનુશાસનની પોતાના હાથે નક્કલ કરી અને એમાં પોતાને કેટલાક અક્ષરો શંકિત અને સંદિગ્ધ લાગ્યા તેથી તેમણે એ ફોટોકૉપી અને જાતે ઉતારેલી નકલ મને જોઈ જવા આપી. તેમની આજ્ઞાનુસાર મેં એની શુદ્ધ પ્રતિલિપિ કરી આપી અને એના વિષયમાં મેં મારો અભિપ્રાય જણાવ્યો. તેમનો વિચાર જાતે જ એ તામ્રપત્રને, કોઈ માસિક કે ત્રૈમાસિક પત્રમાં પ્રકટ કરી દેવાનો થઈ રહ્યો હતો અને તેથી એમાં સૂચવેલાં સ્થળ વિગેરેની કેટલીક માહીતી પણ મેળવી લેવાનો તેમણે પ્રયત્ન કર્યો હતો; પણ મારી પ્રતિલિપિ જોઈ તેમણે, પોતાની હમેશની અસામાન્ય સુજનતાની નીતિ પ્રમાણે, મને જ એ અનુશાસનનું સંપાદન કરી પ્રકાશિત કરવાની અનુજ્ઞા આપી, અને એ સંબંધમાં પોતે સ્થળાદિ સબંધે જે કાંઈ માહીતી મેળવી હતી તે પણ સાથે આપી. મેં તેમની આજ્ઞાને શિરોધાર્ય કરી અને અવકાશ લઈ થોડા જ સમયમાં એ અનુશાસનને ક્યાંક પ્રકટ કરવા મોકલી આપવાનું સ્વીકાર્યું. એ અસ્સલ તામ્રપત્ર કોની પાસે છે એ વિષે મેં તેમને તે વખતે કાંઈક પૂછ્યું, પણ પોતે 'એ પછી જણાવીશ' એટલું કહીને મૌન રહ્યા. મને તો અસ્સલની ચોખ્ખી ફોટોકૉપી જ મળી ગઈ હતી તેથી એ મૂળ તામ્રપત્ર જોવાની તેવી કશી વિશેષ ઉત્કંઠા પણ હતી નહિ.

તે પછી તરત જ, ગ્રીષ્મકાળનો વિશ્રાન્તિસમય પૂર્ણ થઈ જવાથી હું મારા કાર્યસ્થાને (શાન્તિનિકેતન) ચાલ્યો ગયો અને એ અનુશાસનની પ્રતિલિપિ વિગેરે પણ સાથે લેતો ગયો. તે વખતે જ **सिंघी जैन ग्रंथ माला**નું કાર્ય શુરુ કરવામાં આવ્યું હતું અને **प्रबन्धचिन्तामणि** વિગેરે ૩-૪ ગ્રંથોના સંપાદનનું કાર્ય એક સાથે હાથમાં લીધું હતું; એટલે તત્કાળ હું એ અનુશાસન તરફ લક્ષ્ય આપી શક્યો નહિ. પછી ફરી રજાઓ દરમ્યાન મારે અમદાબાદ તરફ આવવાનું થયું અને તે વખતે એ ફોટોકૉપી વિગેરેનાં કાગળો, સરતચૂકથી કોઈ એક પુસ્તકમાં મૂકાઈ ગયાં જેથી બે-ત્રણ વર્ષ સુધી મને જડ્યાં જ નહિ. મુરબ્બી શ્રીકેશુભાઈ જ્યારે જ્યારે પ્રસંગ

આવતો ત્યારે ત્યારે એ સંબંધમાં પૂછ-પરછ કરતા અને હું તેમને મારી એ ગફલતની વાત જણાવી ક્ષમા માંગતો. શાન્તિનિકેતન અને અમદાવાદ એમ બે સ્થાનો વચ્ચે મારાં પુસ્તકો અને કાગળો આદિ વારંવાર ફેરવાતાં હતાં, તેથી એ બધાં એકેએક કરીને ફરી જોવા અને તેમાંથી તે ખોવાયેલા કાગળો શોધી કાઢવાં અશક્ય થઈ પડ્યાં. દરમ્યાન મેં શાન્તિનિકેતન છોડ્યું અને તે સાથે મારાં બધાં પુસ્તકો આદિ, એક જ ઠેકાણે, અમદાવાદમાં ભેગાં થયાં અને ધીમે ધીમે અવકાશાનુસાર એ પુસ્તકો અને કાગળો અનુક્રમે તપાસાવ્યાં. પણ તો પણ એ કાગળીયાં હાથ ન લાગ્યાં અને એથી સદૈવ નિરાશ થઈને આશા છોડી દેવી પડી. શ્રીકેશવલાલભાઈને એ અસ્સલ તામ્રપત્ર કોની પાસે છે તે વિષે મેં પૂછાવ્યું પણ તેના જવાબમાં તેમણે જણાવ્યું કે એ માણસ હવે મારા પાસે આવતો નથી અને તેનો કાંઈ પત્તો પણ મળતો નથી વિગેરે. હું આથી મનમાં બહુ ખિન્ન થયો અને મારા હાથમાં આવેલી એ તામ્રપત્રની નકલ આવી રીતે જ અદૃશ્ય થઈ ગઈ તેથી દિલ બહુ દિલગીર થયું. હાથમાં આવેલું કોઈ અમૂલ્ય રત્ન જાણે ખોવાઈ ગયું હોય તેમ મને તે વખતે લાગ્યું.

એવામાં, અચાનક, એક દિવસ, એક ભાઈ મારી ભાળ કાઢતા કાઢતા, ભારતી નિવાસવાળા મારા સ્થાને આવી ચઢ્યા. તેમણે કેટલીક પ્રાસંગિક વાતચીત કર્યા પછી, ધીમે રહી, એક રૂમાલમાં વીંટેલા બે તામ્રપત્રો કાઢ્યાં અને મને જોવા આપ્યા. એ જોતાંની સાથે જ મને પારાવાર આશ્ચર્ય થયું અને ક્ષણભર તો જાણે હું અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિમાં લીન થઈ ગયો હોઉં તેમ ભાસ્યું. બીજી જ ક્ષણે ભાનમાં આવી મેં પૂર્ણપણે જાણી લીધું કે આ તો તે જ અસ્સલ અનુશાસન છે જેની કોપી કાળથી મારા હાથમાંથી અજબરીતે અદૃશ્ય થઈ ગઈ છે અને જેની શોધ કરી કરીને હું થાકી ગયો છું. સ્વપ્નમાં પણ જેને જોવાની આશા ન રહી હતી તે આ તામ્રપત્ર, આમ અકસ્માત્ આજે સ્વયં ઉપસ્થિત થયું છે. મને અંતરમાં અત્યંત આનંદ થઈ રહ્યો હતો. જેમ, અકસ્માત્ નિર્ધન થઈ ગએલા અને અનેક ઉપાયો કરવા છતા પણ કશું ય દ્રવ્ય પ્રાપ્ત નહિ કરી શકનારા કોઈ કૃપણશેખર ધનદાસ શેઠને અચાનક પોતાના ઘરમાંથી જ કોઈક અપૂર્વ નિધિ મળી આવે અને તેથી તેને જેટલો આનદ થાય તે કરતાં પણ, કદાચ વધારે આનંદ, મને તે વખતે, એ અસ્સલ તામ્રપત્ર જોવાથી થઈ આવ્યો

મેં એ ભાઈને, એ તામ્રપત્રમાંની હકીકતની મતલબ જણાવી અને કહ્યું કે એની નક્કલ મારી પાસે ઘણા વખતથી આવી ગએલી છે અને હું એને થોડા જ સમયમાં પ્રકટ કરવા ઇચ્છું છું. જો એમને હરકત ન હોય તો થોડા દિવસ હું એ તામ્રપત્રને પોતાની પાસે રાખવા ઇચ્છું છું. એ ભાઈએ બહુ જ શ્રદ્ધા અને સૌજન્યપૂર્વક મારી પાસે એ તામ્રપત્રો મૂકી જવાની અને એમનો યથેષ્ટ ઉપયોગ કરવાની પોતાની ઉદારતા બતાવી. એ ભાઈ તે શ્રીયુત માણેકલાલ ચકુલાલ દવે. ગુજરાતના ઇતિહાસના એ ખૂબ પ્રેમી અને ઉત્સાહી અભ્યાસી છે. ગાયકવાડ સરકારના કડી પ્રાંતના એક ગામડાની નાનકડી નીશાળમાં અબુદ્ધ ગ્રામબાળકોને પ્રાથમિક કેળવણી આપવાનું પુણ્યતમ કાર્ય એ કર્યા કરે છે; અને તે ઉપરાંત જે કાંઈ વખત મળે તેમાં, કાં તો ગૂર્જર ભૂમિના જૂના ખંડીએરો ખોળતા ફરે છે અને કાં તો જૂના ઇતિહાસનાં ઉદ્ધરણો અને

અવતરણો એકઠાં કર્યા કરે છે; અને તે બધુ જોઈ જોઈ, પોતાની શક્તિ અનુસાર માતૃભાષાના ચરણે, લેખાદિદ્વારા જે કાંઈ અલ્પ-સ્વલ્પ ભેટ ધરી શકાય તે ધરવા સતત પ્રયત્નવાન્ રહે છે. કૉલેજોમાં અને તેવા બીજા સરકારી શોધખોળના ખાતાઓમાં વર્ષે દહાડે હજારોના પગારો ખાનારા આપણા પ્રોફેસરો અને મહાસાક્ષરોને જે કરવાની યત્કિંચિત્ પણ આવશ્યકતા લાગતી નથી અને જેના માટે શનિવારનો અડધો દિવસ પણ ગુમાવવા ઇચ્છતા નથી, તેવા કામ માટે, એક બહુ જ સામાન્ય ગણાતા અને માંડ માંડ જેનાથી પોતાની ઉદરપૂર્તિ થાય તેટલુ પણ પૂરૂં વેતન પ્રાપ્ત નહિ કરનારા, આ મહેતાજી અનેક ઉજાગરાઓ કર્યા કરે છે. દિવસો સુધી ભૂખ્યા તરસ્યા ગામડાઓમાં રખડ્યાં કરે છે, અને મહિનામાં અમુક દિવસ ઉપવાસ કરીને પણ જે અમુક પૈસા બચાવી શકાતા હોય અને તેનાથી અમુક ચોપડીઓ કે ચોપાનીઆઓ ખરીદી શકાતા હોય તો તે ખરીદવા, કાયાને કસ્યાં કરે છે. ભાઈ દવે જેવાનું એ તપ તે જ ભગવદ્ગીતામાં ભગવાને કહેલુ સાચુ वाङ्मयतप છે.

ભાઈ દવેએ એ તામ્રપત્ર ક્યાંથી અને કેવીરીતે મેળવ્યું એ વિષે પૂછતાં તેમણે એનો કેટલોક ઇતિહાસ કહી બતાવ્યો અને એ મેળવવા માટે પોતે કેટલો શ્રમ ઉઠાવ્યો છે તે જણાવ્યું. મને તો એ તામ્રપત્ર, ખોવાઈ ગએલું રત્ન પાછુ હાથમાં આવ્યું હોય તેના જેવું, અત્યંત પ્રિયદર્શન લાગ્યું અને તેથી ભાઈ દવેને એના દર્શન કરાવવા માટે હાર્દિક ધન્યવાદ આપ્યો.

ભાઈ દવે ઉઠીને ગયા અને હું તરત જ એ તામ્રપત્રની નક્કલ કરવા બેઠો. નક્કલ કરી રહ્યા પછી રાત્રે પથારીમાં સૂતો સૂતો એ વિષે કાંઈક વિચારણા કરવા લાગ્યો. લગભગ રાત્રિના બારેક વાગ્યા હશે. ઇન્ડીઅન એન્ટીકવેરીના ૬ ઠા પુસ્તકમાં મૂળરાજ વિગેરેનાં કેટલાંક તામ્રપત્રો પ્રકટ થયાં છે તેમની સાથે આ અનુશાસનની સરખામણી કરવાની મનમાં ઉત્કંઠા થઈ આવી. હું પથારીમાંથી ઉઠ્યો અને કબાટ ઉઘાડી એ ૬ ઠું વૉલ્યુમ શોધી કાઢ્યું. પુસ્તક ઉઘાડીને જોઉં છું તો એમાં, જે પાનાઓમાં ચૌલુક્યોનાં તામ્રપત્રો મુદ્રિત થએલાં છે તેમની વચ્ચે એ ખોવાએલી ફોટો-કૉપી અને ઉતારેલી પ્રતિલિપિ વગેરે કાગળો મૂકેલાં નજરે પડ્યાં! ઉપરથી દેખાતી અતિ ક્ષુદ્ર જેવી આ વસ્તુ, મને તે વખતે મહાન્ ચમત્કાર જેવી લાગી!

અમદાબાદમાં ભરાએલા બારમા ગુજરાતી સાહિત્યસંમેલનના, ઇતિહાસ વિભાગના પ્રમુખ તરીકેના મારા ભાષણમાં, મેં આ તામ્રપત્ર વિષે ઉલ્લેખ કર્યો હતો અને પ્રમાદને લઇને એને પ્રકાશમાં ન મૂકી શકયો તે માટે શ્રીકેશવલાલભાઇની-જેઓ તે વખતે વિદ્યમાન હતા-પ્રકટ ક્ષમા માંગી હતી. તે વખતે જ એવો મનમાં નિર્ધાર કર્યો હતો કે હવે એ તામ્રપત્રને જલ્દી જ કયાંયે પ્રકટ કરી દેવું પરંતુ એ નિર્ધાર પણ તરત સફળ ન થયો. વિધિનો સંકેત આ 'ભારતીયવિદ્યા' દ્વારા જ એને પ્રકાશમાં મૂકવાનો હશે એમ લાગે છે.

આ તામ્રપત્ર પ્રથમ શ્રીકેશવલાલભાઇને પ્રાપ્ત થયું હતું અને તેમણે જ મને એને પ્રકાશિત કરવાની પ્રેરણા કરી અને એની નક્કલ આપી તેથી આને હું એ સ્વર્ગસ્થના સુગૃહીત નામ સાથે અંકિત કરૂં છું અને મારો પોતાનો કૃતજ્ઞભાવ પ્રકટ કરૂં છું.

ચામુડરાજના પિતા મૂળરાજનું સૌથી પહેલું તામ્રપત્ર જે સં૦ ૧૦૩૦નું જાણવામાં આવ્યું છે તેની પ્રાપ્તિ શ્રીકેશવલાલભાઇના બંધુ શ્રીહરિલાલ ધ્રુવને થઈ હતી, પણ તેઓ પોતે તેની મૂળ નકલ પ્રસિદ્ધિમાં મૂકી ન શકયા; તે જ રીતે મૂળરાજના પુત્ર ચામુંડરાજનું આ તામ્રપત્ર—જે ઉક્ત તામ્રપત્ર કરતાં માત્ર ત્રણ જ વર્ષ પછી લખવામાં આવ્યું છે—તેમના જ બંધુદ્વારા પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ એ પણ પોતે એને પ્રસિદ્ધિમાં ન મૂકી શક્યા. ગુજરાતની એકતા અને મહત્તાના મહાલયનો પાયો ચણનારા ચૌલુકય પિતા–પુત્રના સૌથી જૂના શાસનલેખોનો પ્રથમ પરિચય કરાવવાનું માન, એ દિવંગત બંને ધ્રુવબંધુઓને મળે છે અને એમનાં શુભનામો એ લેખોનાં સ્મરણ સાથે સદા ય સંયોજાએલાં રહેશે. કાંઈક અંગત, પણ પ્રસ્તુત તામ્રપત્રની પ્રાપ્તિના પૂર્વ ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ આવશ્યક એવી હકીકત જણાવી હવે મૂળ વસ્તુનો વિચાર કરીએ.

તામ્રપત્રોની સ્થિતિ

આ અનુશાસન બે પત્રાં ઉપર લખેલું છે. દરેક પત્રની લબાઈ લગભગ ૮ ઇંચની અને પહોળાઈ ૩$\frac{3}{8}$ ઇંચ જેટલી છે. દરેક પત્ર ઉપર એકેક જ બાજુએ લખાણ કોતરેલું છે. પ્રથમ પત્રની બીજી બાજુ ઉપર અને બીજા પત્રની પ્રથમ બાજુ ઉપર. દરેક પત્રમાં ૧૦–૧૦ પંક્તિઓ કોતરેલી હોઈ આખો લેખ ૨૦ પક્તિનો છે. તામ્રપત્રોની સ્થિતિ હજી સુધી સારી છે અને લખાણ સ્પષ્ટતાપૂર્વક વાંચી શકાય છે. બન્ને પત્રાંને એક સાથે કડીઓમાં ભેરવી રાખવા માટે, દરેકમાં બબ્બે છિદ્રો પાડેલાં છે. પ્રથમ પત્રમાં એ છિદ્રો લખાણની છેલ્લી પંક્તિની વચ્ચે અને બીજા પત્રમાં પહેલી પંક્તિની વચ્ચે આવેલાં છે. બીજા પત્રમાનાં છિદ્રો લગભગ ગોળાકાર છે ત્યારે પ્રથમ પત્રમાંનું જમણી બાજુનું છિદ્ર કાંઈક લંબગોળ છે. પત્રાં ઘડનારની બેકાળજીથી જ આ છિદ્ર વિષમાકાર બન્યું છે. પત્રાં અત્યારે તો છૂટાં જ છે—કડીઓમાં ભેરવેલાં નથી. બન્ને પત્રાંની લખાણવાળી બાજુની ફરતી કિનારો, ટીપીને ઠીક ઠીક ઉપસેલી બનાવવામાં આવી છે, જેથી કાળક્રમે પતરાંની સપાટી ઘસાઈ લખાણ જલ્દી ન ભુંસાઈ જાય. કેટલાંક તામ્રપત્રો એવાં જોવા મળે છે જેમાં ફરતી કિનારો આવી રીતે ઉપસેલી બનાવેલી નથી હોતી અને તેથી પતરાની સપાટી ઘસાતાં તે ઉપરનું લખાણ પણ ઘસાઈ ગએલું હોય છે. આમાંનું પહેલું પતરૂં જરા વધારે બેકાળજીથી ઘડવામાં આવેલું છે જેના લીધે વચ્ચ વચ્ચે નાનાં નાનાં છિદ્રો રહી ગએલા જોવામાં આવે છે. બીજા પતરામાં આ જાતનું એકે છિદ્ર દેખાતું નથી.

અનુશાસનની લિપિ

જેને પુરાવિદો ૧૦ મા શતકની ઉત્તરનાગરી લિપિ કહે છે તે લિપિમાં આ અનુશાસન લખવામાં આવ્યું છે. મૂળરાજના તામ્રપત્રોની લિપિ અને પ્રસ્તુત તામ્રપત્રની લિપિ એક જ પ્રકારની છે. લખનાર કે કોતરનાર બહુ ચોકસ નથી તેથી લિપિની દૃષ્ટિએ કેટલીક સામાન્ય ભૂલો થવા પામી છે.

લેખની ભાષા

આખો લેખ સંસ્કૃતમાં છે અને રચના મુખ્યતઃ પદ્યબદ્ધ છે (મૂળરાજના ઉપલબ્ધ તામ્રપત્રો મુખ્યરીતે ગદ્યબદ્ધ છે.) વચ્ચેની ૩–૪ પંક્તિઓ જેમાં દાન કરવામાં આવેલા

ક્ષેત્રની સીમાઓ બતાવવામાં આવી છે, ગદ્યમાં છે. છેવટમાં સંવત્ સૂચક નિર્દેશ અને ચામુંડરાજના હસ્તાક્ષર સૂચવતું વાક્ય પણ ગદ્યમાં છે. પદ્યો બધાં મળીને ૧૦ છે. તેમાં, પ્રથમના ૩ શાર્દૂલવિક્રીડિત છંદનાં છે, ૪ થું પદ્ય આર્યા છંદનું છે, ૫ થી ૮ સુધીનાં ૪ અનુષ્ટુપ્ છંદનાં છે. તે પછીનું ૯ મું પદ્ય ફરી શાર્દૂલવિક્રીડિત છે, અને છેવટનું ૧૦ મું પદ્ય અનુષ્ટુપમય છે. પદ્યભાગમાં, દરેક પદ્યના બીજા અને ચોથા પાદના અંતે '।' આવો એક દંડાત્મક પૂર્ણવિરામ મૂકવામાં આવ્યો છે. ૩ જા પદ્યના અંતે–જે પછી ગદ્ય લખાણ શુરુ થાય છે–'॥' આવો બે દંડવાળો પૂર્ણવિરામ આપવામાં આવ્યો છે. દાન કરવામાં આવેલા ક્ષેત્રના પરિચય પછી પાછો બે દંડવાળો પૂર્ણવિરામ છે. ક્ષેત્રની આઘાટસીમા બતાવનારા કથનમાં વચ્ચે વચ્ચે એક દંડાત્મક અને છેવટે બે દંડવાળો વિરામ છે. પછીના પદ્યોમાં, બીજા પાદના અંતે એક દંડાત્મક અને ૪ થા પાદના અંતે દરેક ઠેકાણે દ્વિદંડાત્મક વિરામરેખા છે. એટલે લખનારે વિરામ રેખાઓ કરવામાં બરાબર કાળજી રાખી છે એ સ્પષ્ટ જોઈ શકાય છે.

માતૃકાસંયોજના

અક્ષરજોડણીની દૃષ્ટિએ જોતાં–'ર' પછી આવનારાં વ્યંજનો લગભગ બધાં જ દ્વિત્વભાવવાળાં (બેવડાં) લખવામાં આવ્યાં છે. નાસિકાસ્થાનીય વ્યંજનને કેટલીક જગ્યાએ પરસવર્ણ કર્યું છે અને કેટલીક જગ્યાએ અનુસ્વારરૂપે મૂકયું છે. દા. ત. પ્રથમ જ પંક્તિમાંના स्वाङ्ग° અને °त्तमांग° આ બે શબ્દો તથા બીજી પંક્તિમાંના °संताने° અને °दशेन्द्र° આ બે શબ્દો લઈ શકાય. આવી રીતે બીજી પણ પંક્તિઓમાં આ પરસવર્ણની વૈકલ્પિક પદ્ધતિ સ્વીકારેલી નજરે પડે છે. 'श' 'स' અને 'ष' વિષે ઠીક કાળજી લેવામાં આવી છે. માત્ર પંક્તિ ૧૩ માં षष्टिर्व्वर्षसहस्राणि એ પાદમાં षष्ठिर्व्वर्ष આ પ્રમાણે કોતરેલું છે જે કોતરનારની સરતચૂકથી षની વચ્ચેની રેખા કોતરવી રહી ગઈ છે અને તેથી તે प्ठ–प વંચાય છે. કોઈ કોઈ ઠેકાણે त અને न માં પણ ભૂલ થએલી છે જે કદાચ કોતરનારના કીલક (ટાંકણા)ને લીધે થવા પામી હોય. દા. ત. પંક્તિ ૯માં છેવટે °स्थानानि°ના બદલે स्थातानि અને પં૦ ૧૨ માં અંતે नरामर°ના બદલે तरामर કોતરવામાં આવ્યું છે. પં૦ ૯માં दक्षिणના બદલે दकिण છે તે લખનારના ભાષારાહસ્યને આભારી છે. પં૦ ૧૧માં ग्राम° ને બદલે पाम° વંચાય છે તે પણ કોતરનારની ગફલતને લીધે થવા પામ્યું છે. પં૦ ૧૮ માં हस्तांकित° માં 'स्ता' ઉપર અનુસ્વાર કોતરવો રહી ગયો છે. પં૦ ૧૦ માં लांगणइज्य અને પં. ૧૧ માં लांगणइज्ज આમ એક જ નામનાં બે રૂપો આપેલાં મળે છે. એમાં પ્રથમરૂપ એ સંસ્કૃતમય છે અને બીજું દેશ્ય છે, એ સ્પષ્ટ સમજાય તેવું છે. પ૦ ૧૧ માં क्षेत्राणि પછી च અક્ષર લેખકના હાથે જ પ્રથમ લખવો રહી ગયો હતો તે પાછળથી णि અક્ષરની નીચે બારીક રેખામાં કોતરી કાઢવામાં આવ્યો છે અને તેની આગળ '।' આવો એક દંડ પણ પૂર્ણવિરામ બતાવવા માટે મૂકયો છે. એ અક્ષરે મને ઠીક ભ્રમમાં નાંખ્યો અને પોતાનું સ્વરૂપ સમજવામાં સારી પેઠે શ્રમ આપ્યો.

તામ્રપટમાંની મુખ્ય હકીકત સંવત્ ૧૦૩૩ ના માર્ગશિર માસની વદિ ૯ મીના દિવસે, વરુણશર્મ ગ્રામમાં આવેલા જૈન મંદિરમાં ધૂપ, દીપ, અને પુષ્પ ચઢાવવા માટેના નિયમિત ખર્ચ નિમિત્તે યુવરાજ ચામુંડરાજે એક ખેતર દાન તરીકે આપ્યું, તે માટે આ અનુશાસનલેખ કરી આપવામાં આવ્યો છે. ઉપર જેમ જણાવવામાં આવ્યું છે તેમ, આ અનુશાસનમાં કુલ ૧૦ પદ્યો છે; તેમાં પ્રથમનાં ૩ પદ્યોમાં ભૂમિદાતા ચામુંડરાજનો સ્વલ્પ પરિચય આપવામાં આવ્યો છે. પહેલા પદ્યમાં યુવરાજના પિતા મૂળરાજનો નિર્દેશ છે. એમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે–'શૌલિકક' નામના રાજવંશમાં તિલક સમાન વ્યાલકાંચિ નામે પૂર્વે રાજા થઈ ગયો, જેના સંતાન એટલે કે વંશમાં ત્રિદશેન્દ્ર એટલે દેવોના ઇન્દ્ર જેવો મહિમાવાળો મૂલરાજ નૃપતિ છે. એ મૂળરાજના ચરણકમળ, પ્રસિદ્ધ એવા અનેક નૃપતિઓના ગળામાં રહેલી પુષ્પમાળાઓથી અર્ચિત થાય છે, જે નૃપતિઓને મૂળરાજે, પોતાના જ અંગથી ઉત્પન્ન થએલ પ્રતાપરૂપી સૈન્યવડે વશ કર્યા છે. બીજા પદ્યમાં ચામુડરાજનો પોતાનો ગુણપરિચય કરાવવામાં આવ્યો છે. એ યુવરાજ, આહમાનવશીય રાજા ભોજની પુત્રી માધવીનો પુત્ર છે. અનેક ગુણોના આકર જેવો છે. સુંદર શીલ (સ્વભાવ અને સદાચાર) દ્વારા એ ખૂબ પ્રસિદ્ધ છે અને ઔદ્ધત્યના સ્થાનસમા ગણાતા યુવરાજપદની પ્રાપ્તિ થયાં છતાં પણ એ ગર્વરહિત છે. ત્રીજા પદ્યમાં કહેવામાં આવ્યું છે, કે ભોગનો ત્યાગ કરી સધર્મનું સાધન કરવું એ જ માત્ર જેનું ફળ ગણાય એવી લક્ષ્મી પણ સ્થિર નથી એમ જાણી, એ યુવરાજે પોતાના આત્માના શ્રેયાર્થે, વરુણશર્મ ગામમાંના જૈન મંદિરને ધૂપ, દીપ અને પુષ્પના સાધન માટે, ઉત્તરદિશામાં આવેલું એક સામાન્ય જાતિનું ક્ષેત્ર દાન તરીકે અર્પણ કર્યું છે.

એ કથન પછી ગદ્ય લખાણ આવે છે, જેમાં એ ખેતરમાં કેટલી જમીનનો સમાવેશ થાય છે તે બતાવવામાં આવ્યું છે. તેની વિગત આ પ્રમાણે છે. નાગરાજના ખેતરમાં ગણાતી કદંબવાલી કેદારી, ચંદ્રરાજ લુહારના ખેતરમાંનો એક કેદાર, શાલિભદ્ર પટ્ટકિલના ખેતરમાંનો કેદાર, જોનણઘ ગામના રસ્તાની દક્ષિણ બાજુએ આવેલા ગોચરમાંનો એક કેદાર. આ રીતે ચ્યાર કેદાર સાથેનું એ દાતવ્ય ક્ષેત્ર છે. એ ક્ષેત્રની ચતુઃસીમા આ પ્રમાણે છે. પૂર્વમાં લાંગણઇજ્જ ગામે જવાનો માર્ગ છે. ઉત્તરમાં બોરડીના ઝાડનીચે આવેલી દુર્ગા (દેવીનું સ્થાન) છે, અને લાંગણઈજ્જ ગ્રામનાં ખેતરો છે. દક્ષિણમાં વરુણશર્મ ગામના પાદરદેવતાનું ખેતર છે.

આ ગદ્ય લખાણ પછી દાનનું ફળ બતાવનારી એક આર્યા આપવામાં આવી છે, તેમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે–જે મનુષ્ય જિનમંદિર, જિનમૂર્ત્તિ, જિનપૂજા અને જિનમતનાં કાર્યો કરે છે તેને માટે મનુષ્યનાં, દેવનાં અને મોક્ષનાં સુખો હાથમાં રહેલાં જેવાં હોય છે.† એ પછી ૪ પદ્યો છે તે પુરાણગત સુપ્રસિદ્ધ શ્લોકો છે.

† આ શ્લોક જૈન ગ્રંથોમાં સુપ્રસિદ્ધ છે અને અનેક ગ્રંથોમાં ઉદ્ધૃત થએલો જોવામા આવે છે. મારા જોવામાં આવેલા ગ્રંથોમાંના, સૌથી જૂના જે ગ્રન્થમાં આનું અવતરણ જાણવામાં આવ્યું છે તે જિનેશ્વરસૂરિકૃત કથાકોષ છે. એ જિનેશ્વરસૂરિ ચામુંડરાજના પુત્ર દુર્લભરાજના સમકાલીન હતા.

એ શ્લોકો વધતી ઓછી સંખ્યામાં આ જાતનાં બધાં ય દાનપત્રોમાં આપવામાં આવેલા હોય છે. આ શ્લોકોમાં ભૂમિદાનના અપહારના પાતકનું વર્ણન કરેલું હોય છે. દા. ત. ૫ માં શ્લોકમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે—જે મનુષ્ય ભૂમિનું દાન કરે છે તે ૬૦ હજાર વર્ષ સુધી સ્વર્ગના સુખો ભોગવે છે અને જે મનુષ્ય ભૂમિના દાનને ખૂંચવી લે છે, તે તેટલાં જ વર્ષ નરકમાં જઇને વસે છે. ૬ ઠા શ્લોકમાં–પુરાણકાર યુધિષ્ઠિરને ઉદ્દેશીને ઉપદેશ કરે છે કે–રાજાઓમાં શ્રેષ્ઠ એવા હે યુધિષ્ઠિર! પોતે આપેલી કે બીજાએ આપેલી ભૂમિ [ના દાન]નું યત્નપૂર્વક રક્ષણ કર. [નવું] દાન કરવા કરતાંયે કરેલા દાનનું અનુપાલન કરવામાં વધારે શ્રેય રહેલું છે. ૭ મા શ્લોકમાં–પોતે આપેલી કે અન્યે આપેલી જમીનને જે મનુષ્ય લઈ લે છે તે પોતાના પિતૃઓ સાથે કીડાનો અવતાર પામી વિષ્ઠામાં ગરક થાય છે. ૮ મા શ્લોકમાં કથન છે કે–જે જનો ભૂમિદાનનો અપહાર કરે છે તેઓ મરીને વિંધ્યાચલની પાણી વગરની અટવીના વેરાન કોટરોમાં કાળા સર્પનો અવતાર પામે છે.

પછીના ૯ મા પદ્યમાં દાનપત્ર આપ્યાની મિતિ વિગેરે આપી છે. તે આ પ્રમાણે છે–ગુપ્તસમયના દશસોને તેત્રીસમા વર્ષના માર્ગશિરમાસમાં, વદિ પક્ષની ૯ મી તિથિ અને શનિવારના દિવસે, પોતાના સ્વામિના સ્વહસ્તાક્ષરથી અંકિત એવું આ અનુશાસન બાલાર્ક નામના લેખકે લખીને તૈયાર કર્યું. જે કોઈ પુરુષ આ અનુશાસનનો લોપ કરશે તે આખા જગત્‌ના પાપને પ્રાપ્ત કરશે એ પછી 'સંવત્ ૧૦૩૩' આવો અંકમાં ફરી ઉલ્લેખ કર્યો છે, અને એ પછી પાછો એક શ્લોક આપેલો છે. એ શ્લોકમાં જણાવ્યું છે કે–આંબા, આમ્ર, દેપા, જજ્જ, સુંડન અને સિદ્ધુક આદિ શ્રાવકોને પંચની સાક્ષીએ આ અનુશાસન સંભળાવવામાં આવ્યું છે, અને તે પછી 'મંગલ' શબ્દ લખી છેવટે '**श्री चामुण्डराजस्य मम मतं**–આ મને શ્રી ચામુંડરાજને સંમત છે' એ વાક્યથી ચામુંડરાજે પોતાની સહી કરી છે. આ છેલ્લા શ્લોકમાં જે નામો આપેલાં છે તે વરુણશર્મ ગામના સ્થાનિક શ્રાવકો હોય એમ લાગે છે.

સ્થાનપરિચય

આ લેખમાં ૩ ગ્રામોનો ઉલ્લેખ આવેલો છે. વરુણશર્મ, લાંગણઇજ્જ અને જોનણઘ. તપાસ કરતાં આ ત્રણે ગામોનો પત્તો કડીપ્રાંતના મહેસાણાતાલુકામાં મળી આવે છે. એ તાલુકાના નકાશામાં વડસમા કરીને એક ગામ આપેલું છે તે જ આ લેખમાંનું વરુણશર્મ ગ્રામ છે. લાંગણઇજ્જ તે હાલનું લાંઘણજ છે જે આંબલીયાસણ–વીજાપુરરેલ્વેનું સ્ટેશન પણ છે. વડસમાથી એ ગામ ઉત્તર-દિશામાં છે જે લેખમાં બતાવ્યા પ્રમાણે બરાબર મળી રહે છે. જોનણઘ ગામ તે હાલનું જોરણંગ છે જેની દક્ષિણ બાજુએ વડસમાના ખેતરો આવેલાં છે. વડસમામાં અત્યારે એક સાધારણ જૈન મંદિર છે ખરું પણ તેની કશી એવી વિશેષ પ્રાચીનતા જણાતી નથી, જેથી તેના વિષે કાંઈ શોધખોળ કરી શકાય. સ્થાનિક લોકોને એ જૂના ભૂમિદાન વિગેરેની કશી જ માહિતી નથી.

अनुशासननी प्रतिलिपि

प्रथम पत्र

[१] ९ स्वस्ति स्वाङ्गभवप्रतापपृतनाव्यापारवश्यीकृतासंख्य-
ख्यातनृपोत्तमांगविगलदूमा-

[२] लार्च्यमानक्रमः। श्लाघ्यः शौल्किकराजवंशतिलकश्री-
व्यालकांचिप्रभोः संताने त्रिदशेन्द्रतुल्य-

[३] महिमा श्रीमूलराजो नृपः। [१] श्रीमान् सुन्दरशी-
लताप्रविदितः सचाहमानान्वयश्रीमद्भोजनराधि-

[४] पोत्तमसुनाश्रीमाधवीकुक्षिभूः। औद्धत्यास्पदयौवरा-
ज्यपदवीलाभेप्यनुत्सेकवान् तस्या-

[५] नेकगुणाकरः समभवच्चामुण्डराजः सुतः। [२] भोग-
त्यागसुधर्म्मसाधनफला नैताः श्रियः

[६] शाश्वता मत्वैवं वरुणादिशर्म्मकपुरे तेनात्मनः श्रेयसे।
श्रीमज्जैनगृहाय वेतनकृते

[७] धूपप्रदीपस्रजां क्षेत्रं दत्तमुदग्दिशिस्थितमदो(दः) सा-
मान्यकेदारकम् ॥ [३] नागराजक्षेत्रकदंब-

[८] वली केदारी चंद्रराजलोहकारक्षेत्रे केदारः शालिभद्र-
पट्टइल्लक्षेत्रे केदारः जोनण-

[९] घग्राममार्ग्गादकि(क्षि)णतः चरहके केदार ग़भिश्चतु-
[रु]भिःकेदारैस्सह ॥ आघाटस्थाता(ना)नि

[१०] पूर्व्वतो लांगणइज्यग्रामगामी मार्ग्गः। उत्तरतो दुर्गा
बदरीतलस्थिता।

द्वितीय पत्र

[११] लांगणइज्जपा(ग्रा)मक्षेत्राणि च। दक्षिणतो वरुण-
शर्म्मकीयपद्रदेवताक्षेत्रमि-

[१२] ति। दानफलं च ॥ जिनभवनं जिनबिम्बं जिनपूजां
जिनमतं च यः कुर्यात्। तस्य नरामर-

[१३] शिवसुखफलानि करपल्लवस्थानि ॥ [४] षष्ठि(ष्ठि)र्वर्ष
(र्ष)सहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः । आक्षेप्ताचानुमं-
[१४] ता च तान्येव नरकं वसेत् ॥ [५] स्वदत्तां परदत्तां वा
यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर । महीं महीभृतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो-
[१५] नुपालनं ॥ [६] स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधरां ।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥ [७]
[१६] विंध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः । कृष्णसर्प्पाः
प्रजायंते भूमिदानापहारकाः ॥ [८]
[१७] याते गुप्तसमाशते दशगुणे साग्रे त्रयस्त्रिंशता मार्ग्गे
मासि तमिस्रपक्षनवमीं सूर्यात्मजे भुंज-
[१८] ति । वालार्क्काह्वयलेखको लिखदिदं स्वामिस्वहस्ता(स्तां)-
कितं यो लोप्स्यत्यनुशासनं य जगतां पापं
[१९] पुमान् लास्यति ॥ [९] संवत् १०३३ सहृकाम्बाम्रदे-
वादीं(दीन्) जेज्ञमुण्डनसिद्धुकान् । स्वमतं श्राव-
[२०] यित्वैतान् समक्षान् पंच साक्षिणः ॥ [१०] मंगलं ॥
श्रीचामुण्डराजस्य मम मतं ॥

*

केटलीक आनुषंगिक ऐतिहासिक चर्चा

*

ચૌલુક્યવંશનું પ્રથમ અનુશાસન

પ્રસ્તુત તામ્રપત્ર, ગૂર્જરપ્રજા–પિતામહ મૂળરાજના શાસનસૂર્યના મધ્યાહ્નસમયમાં લખાએલું હોઈ એના પોતાના તથા એના પુત્ર યુવરાજ ચામુંડરાજના પ્રભાવનો કાંઈક પ્રત્યક્ષ પરિચય આપનાર એક મૌલિક સાધનરૂપ છે. ચૌલુક્યવંશીય પ્રથમ યુવરાજના હસ્તાક્ષરથી અંકિત થએલું આ શાસનપત્ર, ગુજરાતની ઐતિહાસિક સાધનસંપત્તિની દૃષ્ટિએ મળી આવેલો એક મૂલ્યવાન્ મણિ છે. ચામુંડરાજના શાસનનો કે સમયનો નિર્દેશક તત્કાલીન એવો કોઈ લેખ અદ્યાવધિ ઉપલબ્ધ થયો જ ન હતો તેથી તેના સમયના મૌલિક દસ્તાવેજ તરીકે તો આપણે એને, આપણા ઐતિહાસિક ભંડોળના ભંડારમાં એક કિંમતી વસ્તુના ઉમેરા તરીકે લેખવું જોઈએ. ખરી રીતે, મૂળરાજના સમયનો પણ, આ પ્રથમ જ દસ્તાવેજ આપણી પાસે વિદ્યમાન છે એમ કહેવું જોઈએ. મૂળરાજનું સૌથી પહેલું તામ્રપત્ર જે જાણવામાં આવ્યું છે તે સં. ૧૦૩૦ ની સાલનું છે, પણ તે અત્યારે મૂળરૂપે કે તેના પ્રતિલેખરૂપે આપણને ઉપલબ્ધ નથી.

તેની સંપૂર્ણ નક્કલ અદ્યાપિ પ્રસિદ્ધ થઈ નથી અને તે મૂળપત્ર ક્યાં છે તેની કશી ખબર મળતી નથી. એ તામ્રપટવિષે એક માત્ર ટૂંકી નોંધ સ્વર્ગસ્થ શ્રીહરિલાલ હ૦ ધ્રુવ તરફથી, ડૉ૦ બ્યુલ્હરના સંપાદકત્વ નીચે પ્રકટ થનારા વીએના ઓરિએન્ટલ જર્નલના પાંચમા પુસ્તકમાં (પૃ૦ ૩૦૦–૩૦૧) પ્રકટ કરવામાં આવી હતી. તેમના કથન પ્રમાણે, એ અસ્સલ તામ્રપત્ર તેમણે પાટણના ગોસાઈ નારાયણભારતી યશવંતભારતી પાસે જોયું હતું. તેમણે પોતાની એ નોંધમાં, તે અનુશાસનના મૂળ લેખની સંપૂર્ણ પ્રતિલિપિ ન આપતાં માત્ર તેનો સાર જ આપ્યો હતો. શા કારણથી તેમણે લેખની પૂરી પ્રતિલિપિ ન આપી તેની કશી માહિતી આપણી પાસે નથી. તે પછી એ તામ્રપત્રનો કોઈને પત્તો લાગ્યો જણાતો નથી. એથી, આપણને મૂળરાજના શાસન સમયનો પણ, અત્યારે તો, આ પ્રથમ જ લેખ હસ્તગત થએલો છે એમ કહી શકાય. અને એ રીતે, અણહિલપુરના ચૌલુક્યોના જેટલા તામ્રપટો કે શિલાલેખો આજપર્યંત ઉપલબ્ધ થયા છે તે સૌમાં આ જૂનો અને પ્રથમ લેખ છે.

મૂળરાજનાં ત્રણ તામ્રપત્રો

અત્યાર સુધીમાં મૂળરાજનાં ૩ તામ્રપત્રો પ્રસિદ્ધિમાં આવ્યાં છે, જેમાં પહેલું સંવત્ ૧૦૩૦નું, ઉપર જણાવેલી હકીકતવાળું છે. શ્રીહરિલાલ હ૦ ધ્રુવની નોંધપ્રમાણે તેની મિતિ, સં૦ ૧૦૩૦ના ભાદ્રપદ સુદિ પંચમી સોમવારની છે. ગંભૂતા[1] વિષયના પાલઈજ્જ ગામના નિવાસી બ્રાહ્મણ વચ્છકાચાર્યને એક હલવાહ જેટલી જમીન દાનમાં આપવાની તેમાં હકીત છે. તેનો લેખક કેલા અને દૂતક મહાસાંધિવિગ્રહિક શ્રીજય છે. મૂળરાજને તેમાં **समस्तराजावलिसमलंकृत महाराजाधिराज** એવા વિશેષણોથી સંબોધવામાં આવ્યો છે.

બીજું તામ્રપત્ર, સં૦ ૧૦૪૩નું છે જે વડોદરા રાજ્યના કડી ગામમાંથી મળી આવ્યાનું સમજાય છે. ડૉ૦ બ્યુલ્હરે, ઇન્ડીઅન એન્ટીકવેરીના ૬ઠા પુસ્તકમાં તેની પ્રથમ સંપૂર્ણ પ્રતિલિપિ પ્રકટ કરી હતી. તેના લેખનો સાર એ છેઃ—સં૦ ૧૦૪૩ના માઘવદિ અમાવસ્યાના દિવસે સૂર્યગ્રહણ થયું તે નિમિત્તે મહારાજાધિરાજ શ્રીમૂળરાજે શ્રીસ્થળ—એટલે વર્તમાન સિદ્ધપુર સ્થાનમાં—પ્રાચી સરસ્વતીમાં સ્નાન કરી, તત્રસ્થ રુદ્રમહાલયમાં શંકર ભગવાનની પૂજા કરી, માતા–પિતા તથા પોતાના પુણ્યાર્થે, વર્દ્ધિ વિષયના મંડલી ગામમાં સ્થાપિત મૂલનાથ મહાદેવના ઉપભોગ માટે, મોઢેરકીય અર્દ્ધાષ્ટમ પ્રદેશમાં આવેલું કંબોઇકા નામનું ગામ દાન તરીકે અર્પણ કર્યું. તેનો લેખક કાયસ્થ જેજ્જનો પુત્ર કાંચણ હતો. એ અનુશાસનમાં મૂળરાજને નિમ્ન પ્રકારનાં વિશેષણો આપવામાં આવ્યાં છે.

राजहंस इव विमलोभयपक्षः ।
कमलयोनिरिव विततकमलाश्रयः ।
विष्णुरिव विक्रमाक्रान्तभूतलः ।
त्र्यंबक इव विहिताचलाश्रयः ।

---

૧ આ ગંભૂતા તે પાટણની પાસે આવેલું ગાંભુ ગામ છે.

शतमख इव विबुधानन्दजनकः ।
कल्पवृक्ष इव वांछितार्थफलप्रदः ।
मेरुरिव सर्वथामध्यस्थः ।
तोयधिरिव बहुसत्त्वाश्रयः ।
जलद इव सर्वसत्त्वानुकंपी ।
सुरेन्द्रद्विप इव सदा दानतोयार्द्रीकृतकरः ।
चौलुकिकान्वयो महाराजाधिराजश्रीमूलराजः ।
महाराजाधिराजश्रीराजिसुतः ।
निजभुजोपार्जितसारस्वतमंडलः ।

આ બધાં વિશેષણો ઉપરથી મૂલરાજનાં સત્તા, સામર્થ્ય અને સદ્‌ગુણોની વિશિષ્ટતા સમજવા જેવી છે. બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, શંકર અને ઇન્દ્ર જેવા મોટા દેવો ઉપરાંત, રાજહંસ, ઐરાવણ ગજ, કલ્પવૃક્ષ, મેરુપર્વત, સમુદ્ર અને મેઘ જેવા મહાવિભૂતિમાન્ પદાર્થોની તેને ઉપમા આપવામાં આવી છે. ધ્યાનમાં રાખવું જોઇએ કે આ બધા એક રાજકીય શાસનલેખમાં પ્રયોજાયેલા બિરુદો છે. રાજાના આવા શાસનલેખોક્ત વિશિષ્ટ બિરુદો પાછળ કાંઇક વિશિષ્ટ નિમિત્ત રહેલું હોય છે. કોઈ–ન–કોઈ ખાસ વસ્તુ ઘટનાને અનુલક્ષીને આવા બિરુદોની યોજના કરવામાં આવી હોય છે. માત્ર કાવ્યની દૃષ્ટિએ કલ્પી કાઢેલા કોરા અલંકારો રૂપે જ આ વિશેષણોને ન સમજવાં જોઈએ. મૂળરાજને બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને શંકરની ઉપમા, હેમચંદ્રસૂરિએ પણ સિદ્ધહેમના પ્રથમ પાદના અંતે મુકેલા પ્રશસ્ત્યાત્મક પ્રથમ પદ્યમાં આપેલી છે.[1] આ વિશેષણો અને બિરુદોને સાર્થક કરે એવું મૂળરાજનું કર્તૃત્વ હતું એ એના જીવન કાર્યના ફળ ઉપરથી આપણે તારવી શકીએ છીએ.

ત્રીજું તામ્રપત્ર, સં૦ ૧૦૫૧નું, મારવાડ રાજ્યના સાચોર પ્રાંતના બાલેરા નામના ગામમાં એક બ્રાહ્મણ પાસેથી મળી આવ્યું છે. તેની પણ પ્રથમ જાહેરાત, ઘણું કરીને, શ્રીહરિલાલ હ૦ ધ્રુવે જ ઉક્ત વીએના ઓરિએન્ટલ જર્નલમાં કરી હતી. એપિગ્રાફિઆ ઈન્ડીકાના ૧૦ મા પુસ્તકમાં, પ્રો૦ સ્ટેન કોનોએ, આવશ્યક પરિચય સાથે તેની સંપૂર્ણ પ્રતિલિપિ પ્રકટ કરી છે. તેમાંની હકીકત આ પ્રમાણે છેઃ— સંવત્ ૧૦૫૧ના માઘસુદિ પૂર્ણિમાના દિવસે ચંદ્રગ્રહણ થયું તે નિમિત્તે શ્રીમૂલરાજદેવે, માતા–પિતા, તથા પોતાના પુણ્યાર્થે અંબિકાપતિ ભગવાન્ શંકરની પૂજા–અર્ચા કરી, પોતાના આધિપત્યમાં આવેલા સત્યપુર (વર્તમાન સાચોર) મંડલમાંનું વરણક નામે ગામ, તેની સઘળી સીમાઓ સાથે, કાન્યકુબ્જથી આવેલા અશેષવિદ્યાના પારગામી અને તપોનિધિ એવા શ્રીદુર્લભાચાર્યના પુત્ર શ્રીદીર્ઘાચાર્યને યાવચ્ચંદ્ર-દિવાકરૌ સુધી દાનતરીકે અર્પણ કર્યું. તેનો લેખક કાયસ્થ કાંચન અને દૂતક શ્રીશિવરાજ છે. તેમાં મૂળરાજના ઉક્ત બીજાં કશાં વિશેષણો નથી આપવામાં આવ્યાં અને સંક્ષેપમાં માત્ર परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर

---

१ हरिरिव बलिबन्धकरस्त्रिशक्तियुक्तः पिनाकपाणिरिव ।
कमलाश्रयश्च विधिरिव जयति श्रीमूलराजनृपः ॥

श्रीमूलराजदेव આ જાતના ઉલ્લેખ દ્વારા એક માત્ર સાર્વભૌમત્વસૂચક બિરૂદનો જ નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. આ તામ્રપત્ર મૂળરાજના જીવનના અંતિમ વર્ષોનું કહી શકાય. તે પછી બે'ક વર્ષમાં જ એનું મૃત્યુ થયું હતું.

પ્રસ્તુત તામ્રપત્ર, મૂળરાજના શાસનસમયનું ૪ થું ગણી શકાય. આ શાસનનો દાતા ચામુંડરાજ છે. પણ એ પોતે પોતાની જાતને યુવરાજ તરીકે ઓળખાવે છે અને રાજા તરીકે પોતાના પિતાનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ કરે છે. આ તામ્રપત્રનાં લખાણ ઉપરથી સમજાય છે કે–રાજા તરીકે જો કે મૂળરાજની આજ્ઞા સર્વોપરિ લેખાતી હતી છતાં તે વખતે ચાંમુંડરાજ પણ રાજાની જેટલી જ સત્તા ધરાવતો હતો અને તેના સ્વહસ્તાક્ષરોવાળાં શાસનપત્રો રાજાનાં શાસનપત્રો જેટલાં જ માન્ય ગણાતાં હતાં એમ સ્પષ્ટ દેખાઈ આવે છે.

મૂળરાજવિષે કેટલીક પ્રાસંગિક વિચારણા

મૂળરાજનો વિસ્તૃત ઇતિહાસ રાસમાળા, મુંબઈ ગેઝેટિઅર વિગેરે ગ્રંથોમાં લખેલો મળે છે. જૂના ગ્રંથોમાં—હેમાચાર્યના દ્વ્યાશ્રય કાવ્ય, પ્રબંધચિંતામણી અને કુમારપાલ-ચરિત્ર આદિ ગ્રંથોમાં—એના વિષેની કેટલીક ત્રુટક ત્રુટક હકીકતો લખેલી મળી આવે છે. એ બધી હકીકતોની વિગતોમાં ઉતરવાનો કે એમની તથ્યાતથ્યતા વિષેની મીમાંસા કરવાનો અહિ પ્રસંગ નથી. જેમને એ વિષે વધુ જાણવા ઇચ્છા હોય તેમને, ગુજરાતના પ્રસિદ્ધ ઇતિહાસમર્મજ્ઞ અને લેખક સાક્ષર શ્રીદુર્ગાશંકર કેવળરામ-શાસ્ત્રીજીએ તાજે જ લખેલો **ગુજરાતનો મધ્યકાલીન રાજપૂત ઇતિહાસ, ભાગ ૧ લો** જોઈ જવાની ભલામણ છે. શાસ્ત્રીજીએ એ ઇતિહાસમાં, મૂળરાજવિષેની ખૂબ વિસ્તૃત અને સપ્રમાણ અદ્યયાવત્ વિચારણા કરી છે. હું અહિં, પ્રસ્તુત તામ્ર-પત્ર સાથે સંબંધ ધરાવતી અને તે ઉપરથી સ્ફુરિત થતી કેટલીક બાબતોની વાર્તિક જેવી વિપ્રકીર્ણ વિચારણા કરવા ઇચ્છું છું.

અત્યાર સુધી, આપણને મૂળરાજની પટ્ટરાણીનું નામ કોઈ પ્રબંધ કે ચરિત્ર આદિમાંથી મળી આવ્યું ન હતું તે નામ આ તામ્રપટમાંથી મળે છે. આમાં ઉપર આપણે જોયું તેમ, એ રાણીનું નામ માધવી આપવામાં આવ્યું છે અને તે ચાહમાન રાજા ભોજની પુત્રી હતી એમ પણ એમાં સાથે જણાવ્યું છે. ચામુંડ-રાજ એનો જ પુત્ર થાય. આ ચાહમાન રાજા ભોજ ક્યાંનો હતો તે વિષે આમાં કશું કહેવામાં આવ્યું નથી. ચાહમાનોની મુખ્યશાખાનું મૂળ રાજ્ય સપાદલક્ષ દેશની શાકંભરી નગરીમાં હતું અને પાછળથી તેમણે અજયમેરુ નગર વસાવી તેને પોતાની રાજધાનીનું સ્થાન બનાવ્યું. મૂળરાજના સમયમાં એ રાજ્યનો સ્વામી વિગ્રહરાજ હતો અને તે તેનો એક પ્રતિસ્પર્દ્ધી રાજા હતો. પ્રબંધચિંતામણીમાં વર્ણવ્યા પ્રમાણે તેણે મૂળરાજ ઉપર ચઢાઈ પણ કરી હતી. એ વિગ્રહરાજના પિતાનું નામ સિંહરાજ હતું. તેથી ભોજરાજ નામનો એ ચાહમાન રાજા એ વંશનો તો નથી જ. સંભવ છે કે ચાહમાનોનું, બીજું પણ કોઈ નાનું મોટું રાજ્ય, બીજે ઠેકાણે હોય અને ત્યાંની કુમારી માધવી સાથે મૂળરાજના લગ્ન થયાં હોય. ચાહમાનો અને ચૌલુક્યોની વચ્ચે પરસ્પર લગ્ન સંબંધ સારી પેઠે ચાલુ હતો, તેનાં બેચાર

ઉદાહરણો મળી આવે છે. મૂળરાજના પૌત્ર દુર્લભરાજ અને નાગરાજે નાડોળના ચાહમાન વિગ્રહપાલની કુમરીઓ સાથે લગ્ન કર્યાં હતાં. સિદ્ધરાજે પોતાની પુત્રી અજમેરના ચાહમાન રાજા અર્ણોરાજને પરણાવી હતી અને અર્ણોરાજે પોતાની બ્હેન કુમારપાલને આપી હતી. વિગેરે. ચામુંડરાજ પોતાના માતામહ ભોજને નરાધિપના વિશેષણથી ઉલ્લેખે છે તેથી એ કોઈક મોટા સ્થાનનો સ્વામી હતો એટલું તો ચોક્કસ માની શકાય તેમ છે.

મૂળરાજના પૂર્વજો વિષે કેટલીક નવી માહિતી

આ તામ્રલેખમાં મૂળરાજના એક પૂર્વજનો વિશિષ્ટરીતે નામોલ્લેખ કરેલો મળી આવે છે, જે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ વધારે અગત્યનો છે. એ ઉલ્લેખ તે—જેમાં મૂળરાજને, ચૌલિક્ક રાજવંશના તિલક જેવા વ્યાલકાંચિ નામના રાજાના સંતાનોમાં ઇન્દ્રના જેવો મહિમાવાળો થયો બતાવ્યો છે—તે છે. મૂળરાજનો કોઈ નિકટનો પૂર્વજ વ્યાલકાંચિ નામે રાજા હતો, એ આ ઉલ્લેખથી સૂચિત થાય છે.

મૂળરાજના પિતાનું નામ રાજિ હતું, એ તો ચરિત્રો, પ્રબંધો અને ખુદ મૂળરાજના પોતાના તામ્રલેખથી પણ સિદ્ધ થાય છે. પરંતુ માત્ર એ એકલા નામોલ્લેખ સિવાય, રાજિનું મૂળ વતન ક્યાં હતું અને તેના પૂર્વજો કોણ હતા એ વિષે કશી ચોક્કસ માહિતી હજી મળી નથી. હેમચંદ્રસૂરિ દ્વયાશ્રયમાં એ વિષે કશુંય સૂચન કરતા નથી. તેમના કાવ્યમાંથી માત્ર એટલું જ જાણી શકાય છે કે એ ચૌલુક્યો સોમવંશીય ક્ષત્રિય હતા અને ભારદ્વાજ તેમનું ગોત્ર હતું.* પ્રબંધાત્મક ગ્રંથોમાં એમના પૂર્વજોના સંબંધમાં ત્રણ જુદી જુદી પરંપરાઓ નોંધેલી મળી આવે છે. પ્રબંધચિંતામણીમાં જણાવ્યા પ્રમાણે, મૂળરાજના પિતાના પૂર્વજો કાન્યકુબ્જ દેશની કલ્યાણકટક નામે રાજધાનીમાં રાજ્યકર્તા હતા. એ પૂર્વજોમાં પ્રથમ ભૂયડ કે ભૂયદેવ નામે પ્રસિદ્ધ રાજા થઈ ગયો જેણે પોતાના ઇષ્ટદેવ ઉજ્જયિનીના મહાકાલેશ્વરને આખો માલવદેશ દાન કરી દીધો હતો અને તેની રક્ષામાટે પરમાર રાજપુત્રોને નિયુક્ત કર્યા હતા. એ ભૂયડના વંશમાં, કેટલીક પેઢીએ, મુંજાલદેવ થયો જેનો પુત્ર મૂળરાજનો પિતા રાજિ કે રાજ થયો. એ રાજિને બીજ અને દંડક નામના બીજા પણ બે નાના ભાઈ હતા. જિનમંડનના કુમારપાલ પ્રબંધ અને તેની પૂર્વે રચાએલા તેવાજ એક જૂના પ્રબોધ પ્રબંધમાં, ભૂયડ પછી તેનો પુત્ર કર્ણાદિત્ય, તેનો ચંદ્રાદિત્ય, તેનો સોમાદિત્ય, તેનો ભુવનાદિત્ય અને તેનો પુત્ર રાજિ એમ વંશાવળી આપવામાં આવી છે. એમાં મુંજાલ નામ નથી. આ વંશાવળી શા આધારે આપવામાં આવી છે તે જાણવાનું આપણને કશું સાધન પ્રાપ્ત નથી અને તેથી એની સિદ્ધાસિદ્ધતા સ્થાપન કરવાની કશી શક્યતા નથી. અણહિલપુરમાં એક મુંજાલસ્વામીના નામથી ઓળખાતો શિવપ્રાસાદ હતો જેનો ઉલ્લેખ, પ્ર૦ ચિં૦ માં સિદ્ધ-

---

* सुगूर्जरं हेतुरनेकभारद्वाजं वरो गीतगुणस्त्रिगक्रम् । —द्व्याश्रय, सर्ग ६, श्लो० ७
આ અવતરણમાં જે भारद्वाज શબ્દ છે તેના ઉપર ટીકાકારે અર્થ સ્ફોટ કરતાં કહ્યું છે કે—'भारद्वाजा हि चौलुक्यानामाद्याः प्रवर्तयितारो धर्मगुरवश्च इति श्रुतिः ।' આ ઉપરથી ચૌલુક્યોનુ ગોત્ર ભારદ્વાજ છે એ સ્પષ્ટ જણાય છે.

† આ પ્રબંધ सिंघी जैन ग्रन्थ माळामां છપાય છે, જે થોડા જ સમયમાં પ્રકટ થશે.

રાજના વર્ણનમાં મળે છે. એ પ્રાસાદ ચૌલુક્યો તરફથી બનાવવામાં આવ્યો હોય એમ લાગે છે; કારણ કે એમાં કેટલીક વખતે મહત્ત્વની રાજમંત્રણાઓ થતી હોવાની નોંધો મળી આવે છે. આ પરથી માનવાને કારણ મળે છે કે એમના પૂર્વજોમાં કોઈ મુંજાલ નામની મહત્ત્વની વ્યક્તિ થઈ ગએલી હશે. કુમારપાલ પ્રબંધમાં જણાવેલા કર્ણાદિત્ય વિગેરે નામોને થોડી ઘણી પણ પુષ્ટિ આપે તેવો કોઈ બીજો જૂનો ઉલ્લેખ મળતો નથી. આ બે પરંપરાઓ કરતાં એક ત્રીજી જાતની જુદી જ પરંપરા જયસિંહસૂરિના કુમારપાલચરિત્રમાં મળી આવે છે. તેમાં રાજિના પિતાનું નામ કાંચિક વ્યાલ એવું આપેલું છે. જયસિંહસૂરિએ આપેલી આ આખીય પરંપરા જુદા જ પ્રકારની છે અને તે જરા જાણવા જેવી હોવાથી અહિં ઉદ્ધૃત કરવી ઉપયોગી જણાશે.

चौलुक्यवंशोत्तंसोऽभूत् कुमारक्ष्मापतिस्ततः ।
ऐतिह्यतस्तदुत्पत्तिः प्रथमं प्रथ्यते पृथुः ॥
पुरा मुरारिवद्विश्वविश्वोद्धारधुरन्धरः ।
चुलुक्य इति विख्यातः संजातः क्षत्रियोत्तमः ॥
धैर्यगांभीर्यचातुर्यौदार्यशौर्यादयो गुणाः ।
श्रांता इव जगद्भ्रांत्या यत्राश्रांता विशश्रमुः ॥
यः सांग्रामिककर्मकर्मठमतिर्दैत्यानिव प्राणिनां
रौद्रोपद्रवकारिणोऽरिनिकरानुज्जास्य तीक्ष्णासिना ।
निर्माप्याकुतोभयं कुवलयं स्वाराज्यवैहासिक-
श्रीकं राज्यमतिष्ठिपत् किल मधूपघ्ना(घ्ना?)भिधे पत्तने ॥
चौलुक्य इति वंशोऽभूत् तन्नाम्ना विश्वविश्रुतः ।
आकरो नररत्नानां सुपर्वश्रेणिसंकुलः ॥
तद्वंश्या विश्वशस्याभा बभूवुर्भूधना घनाः ।
वल्गत्त्रिवर्गसंसर्गप्रियं भावुकवैभवाः ॥
श्रीसिंहविक्रमइति क्षितिभृत् क्रमेण जज्ञे महेश्वरवितीर्णसुवर्णसिद्धिः ।
यः क्षोणिचक्रमनृणं विरचय्य दानैः संवत्सरं निजमचीकृतदासमुद्रम् ॥
पुस्फोर वीरकोटीरस्तत्पुत्रो हरिविक्रमः ।
स्वकीर्तिकेतकैर्येन सुरभीचक्रिरे दिशः ॥
पंचाशीतिर्नृपास्तस्माद् विस्मापकविभा बभुः ।
न सेहे यत्प्रतापाग्निः शकवंशैर्दृढैरपि ॥
तदन्वयेऽभवत् क्षुण्णखरवेदूषणवैभवः ।
रामो राम इव न्यायसदनं मेदिनीश्वरः ॥
ततः सहजरामोऽभाद् योऽश्वलक्षत्रयेश्वरम् ।
हत्वा शकपतिं पत्तिमिव विश्वेऽप्यभूद् भटः ॥
अदीप्यत श्रिया श्रीदः श्रीदडकस्तदात्मजः ।
यः पिपासाख्यराष्ट्रेशं गजं सिंह इवाजयत् ॥

भूपालः कांचिकव्यालस्तद्राज्यमथ भेजिवान् ।
यद्दानैरर्थिनोऽप्यासन् दानशौंडा सुरद्रुवत् ॥
राजा राजिरथाजिराजिविजयी राजेव रेजे शुचि-
र्यो यात्रां विरचय्य देवनगरे श्रीसोमनाथोक्तितः ।
वव्यां गूर्जरशासनस्य भगिनीं सामंतसिंहप्रभो-
र्लीलाख्यां जगदेकवीरजननीं लक्ष्मीमिव व्यूढवान् ॥
तयोः सूनुरनूनश्रीर्मूलराज इति श्रुतः ।
अयोनिसंभवत्वेन सच्चमत्कारकारणम् ॥
सामंतसिंहमातुलं निजमातुलं यः शक्त्या निहत्य किल गूर्जरराज्य माप ।
लक्षं तथा समरकर्मणि बद्धकक्षं सोमेशवैभववशाद् दलयां बभूव ॥
रेजे चामुंडराजोऽथ यश्चामुण्डावरोद्धुरः ।
सिंधुरेन्द्रमिवोन्मत्तं सिंधुराजं मृधेऽवधीत् ॥

—कुमारपाल चरित्र, सर्ग १, श्लोक १५–३१

આ શ્લોકોનો સાર એ છે કે—પુરાકાળમાં વસુંધરાનો ઉદ્ધાર કરનાર એવો એક 'ચુલુકય' નામે ક્ષત્રિયોત્તમ વીર પુરુષ થયો. તેણે સંગ્રામમાં, દૈત્યોની માફક મનુષ્યોને કષ્ટ આપનાર દુષ્ટ શત્રુઓનો, પોતાની તલવારની તીક્ષ્ણ ધારવડે સંહાર કરી, મધૂપદ્મ (કે મધૂપઘ્ન ?) નામના પત્તન (નગર)માં પોતાનું સ્વરાજ્ય સ્થાપ્યું. તેનો વંશ 'ચૌલુકય' એવા નામે વિશ્વવિખ્યાત થયો. એ વંશમાં તે પછી અનેક પ્રસિદ્ધ રાજાઓ થઈ ગયા જેમાં સિંહવિક્રમ નામે એક વધારે પ્રતાપી રાજા થયો જેણે મહેશ્વરની કૃપાથી સુવર્ણસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી અને તેનાવડે પૃથ્વીને ઋણમુક્ત બનાવી, પોતાના નામનો નવીન સંવત્સર પ્રવર્તાવ્યો. એનો પુત્ર હરિવિક્રમ થયો. તે પછી બીજા ૮૫ રાજા થઈ ગયા જેમાંના કેટલાકનો પ્રતાપ તો દૃઢશક્તિવાળા શકવંશી રાજાઓથી પણ સહન થઈ શકયો ન હતો. તેઓમાં, રામચંદ્ર જેવો ન્યાયવાન્ રામ નામનો રાજા થયો જેનો પુત્ર ભૂભટ સહજરામ થયો. જેણે ૩ લાખ અશ્વોના સ્વામી એવા શકપતિને હણ્યો. તેનો પુત્ર દડ્ડક કે દંડક્ક નામે થયો. તેણે પિપાસાના રાજાને, સિંહ જેમ હાથીને જીતી લે તેમ, જીતી લીધો. તેનો પુત્ર કાંચિકવ્યાલ ભૂપાલ થયો જે કલ્પવૃક્ષની જેમ અર્થિજનોને ખૂબ દાન આપતો. તેનો પુત્ર રાજિ થયો. તેણે દેવનગર (દેવપત્તન–સોમનાથ પાટણ)ની યાત્રા કરી અને સોમેશ્વરના કથનથી ગૂર્જર શાસક સામંતસિંહની ભગિની લીલાદેવી સાથે લગ્ન કર્યું. તેમનો પુત્ર મૂળરાજ થયો. એ અયોનિજન્મા હોવાથી લોકોમાં એક ચમત્કારનું કારણ બન્યો. એણે પોતાના મામા સામંતસિંહને મારી પોતાની શક્તિવડે ગૂર્જરરાજ્ય પ્રાપ્ત કર્યું. સોમેશ્વરની કૃપાથી સંગ્રામમાં એણે લક્ષરાજ (લાખા)નો સંહાર કર્યો. તેનો પુત્ર ચામુંડરાજ થયો જે ચામુંડાના વરથી બલિષ્ઠ બનેલો હતો અને જેણે યુદ્ધમાં, ઉન્મત્ત હાથીની જેવા સિંધુરાજનો વધ કર્યો. ઇત્યાદિ.

જયસિંહસૂરિએ આપેલા આ વર્ણનમાં, ચૌલુક્ય વંશના સ્થાપક મૂળ પુરુષ ચુલુકની ઉત્પત્તિના વિષયમાં–જેમ પ્રબંધચિંતામણી આદિમાં સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે તેમ–બ્રહ્માના ચુલુકમાંથી થઇ હોવાની કલ્પનાનું કશું સૂચન નથી. પુરાતન કાળમાં ચુલુક્ય નામનો કોઈ ક્ષત્રિય વીર પુરુષ થયો અને તેણે પોતાના પરાક્રમથી શત્રુઓનો સંહાર કરી, પોતાનું નવું સ્વરાજ્ય સ્થાપન કર્યું. તેની જે સંતાન થઈ તે ચૌલુક્યોના નામે પ્રસિદ્ધ થઈ, એટલોજ અર્થ આ વર્ણનમાં ઉદ્દિષ્ટ છે અને તે તદ્દન સંગત લાગે છે. યદુના સંતાનો જેમ યાદવ, પાંડુના સંતાનો જેમ પાંડવ, કુરુના સંતાનો જેમ કૌરવ તેમ ચુલુકના સંતાનો ચૌલુક્ય કહેવાય એ અર્થાત્ જ સિદ્ધ છે. પણ મહાપુરુષોની ઉત્પત્તિ કોઈ દૈવી અને ચમત્કારપૂર્ણરીતે થવી જોઈએ એવી આપણા દેશની રૂઢ માન્યતા થઈ જવાને લીધે, કવિઓ અને કુલગુરુઓ એવા પુરુષોની જન્મકથાઓ અજબ રીતે પોતાની કલ્પનાથી જોડી કાઢે છે અને એ પુરુષોના નામાક્ષરો પરથી વિલક્ષણ વ્યુત્પત્તિઓ ઉપજાવી કાઢે છે. ચૌલુક્ય વંશના મૂળ પુરુષનું નામ ચુલુક જેવું કાંઈક હતું અને તેથી એ ચુલુક શબ્દના અક્ષરાર્થ કે વ્યંજનાર્થનો મેળ એ પુરુષના જન્મવૃત્તાંતમાં બેસાડવા માટે, પાછળથી એ વંશના કોઈ કીર્તનકારોએ, બ્રહ્માના ચુલુકમાંથી એની ઉત્પત્તિની આખી કથા ઉપજાવી કાઢી છે. જયસિંહસૂરિના ઉપરોક્ત કથનમાં એ કથાનું સૂચન નથી તે નોંધવા જેવું છે.

એ ચુલુક ક્ષત્રિય વીરે મધૂપદ્મ ને પોતાની રાજધાની બનાવી હતી એવો આહિં ઉલ્લેખ છે. આ નામ વિષે મને શંકા છે. એ ચરિત્રની પ્રતોમાં આ ઠેકાણે પાઠભેદો મળે છે. મુંબઈના ગોડીજીના ઉપાશ્રય તરફથી પ્રકટ કરવામાં આવેલી એ ગ્રંથની પ્રતિમાં **मधूपद्म** એવો પાઠ છાપવામાં આવ્યો છે પણ મારી પાસેની નોંધોમાં–જે જુદી જુદી પ્રતો ઉપરથી કરવામાં આવેલી છે—**मधूपघ्न** એવો પાઠ મળે છે. એમાં જો **मधूपघ्न**ના સ્થાને **मधूपद्म** એવો પાઠ ઠીક હોય તો આપણે એ સ્થાનની શોધ કરવી જોઈએ. પણ જો **मधूपघ्न** એ પાઠ બરાબર હોય તો એ **मथुरा**નું બીજું નામ છે અને તેથી મથુરા એ એની રાજધાની હોય એમ કલ્પના થઇ શકે. એના વંશજોને શકલોકો સાથે યુદ્ધો કરવા પડયાં હતાં એવું જે કથન આ વર્ણનમાં કરવામાં આવ્યું છે તે પણ મથુરાસાથે એમનો સંબંધ સૂચવતું હોય એમ લાગે છે. મથુરાનો પ્રદેશ અમુક સમય સુધી શકોના અધિકાર નીચે હતો એ કુશાનવંશના લેખો ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે. રામ નામના રાજાએ ૩ લાખ ઘોડેસ્વારોના સ્વામી એવા શકપતિને માર્યો તથા દડક્ક નામના રાજાએ પિપાસાના રાજા ઉપર વિજય મેળવ્યો, એ બાબતના ઉલ્લેખો પણ, જો તેમાં કાંઇ ઐતિહાસિક તથ્ય રહેલું હોય તો, એ વંશનો મૂળ સંબંધ મથુરા અને તેની ઉત્તરના પ્રદેશ સાથે રહેલો હોવાનું સૂચવે છે.

જયસિંહસૂરિએ આપેલી આ પરંપરા પ્ર૦ ચિં૦ કથિત પરંપરાથી તદ્દન જુદી છે. પ્રબંધચિંતામણીમાંની હકીકત જાણે કોઈ લોકકથા જેવી કિંવદંતીના આધારે લખાએલી હોય તેવી લાગે છે ત્યારે જયસિંહસૂરિની આ હકીકત કોઈ પુરાતન લિખિત સાધનના આધારે આલેખાયેલી હોય એવી દેખાય છે. ગ્રન્થકાર પોતે એ ચૌલુક્યવંશની ઉત્પત્તિ **ऐतिह्यतः** એટલે કે ઇતિહાસના કથનના આધાર ઉપરથી કહે

છે–એમ જણાવે છે, એટલે એમ માનવાને કારણ રહે છે કે તેમણે આ હકીકત કોઇ જુની શિલાપ્રશસ્તિ કે કાવ્યકૃતિના આધારે લખેલી હોવી જોઇએ. એમની એ વર્ણનની શૈલી અને ભાષાનું જો સૂક્ષ્મતાપૂર્વક અવલોકન કરવામાં આવે તો તેનાથી પણ એ જ વસ્તુ વધારે સિદ્ધ થતી દેખાય તેમ છે. ૨૮ મા પદ્યમાં જે વસ્તુનું સૂચન કરવામાં આવ્યું છે તેનું સમર્થક વર્ણન પ્રબંધચિંતામણીની મારી આવૃત્તિ ના પૃ. ૧૬ ઉપર આપેલા પદ્ય ૧૨–૧૩ માં મળી આવે છે. એ પદ્યો પણ પ્રબંધચિંતામણીના લિપિકારે કોઇ પુરાતન પ્રશસ્તિમાંથી ઉદ્ધૃત કરેલાં હોય તેમ સ્પષ્ટ લાગે છે.

જયસિંહસૂરિના આ કથનમાંના એક ઉલ્લેખને સ્પષ્ટ પુષ્ટિ આપનારૂં પ્રમાણ, આપણને ચામુંડરાજના પ્રસ્તુત તામ્રપટમાં મળી આવે છે, જે ઘણું અગત્યનું છે. જયસિંહસૂરિની કૃતિમાંથી ઉપર જે શ્લોકો ઉતાર્યા છે તેમાંના ૨૭ મા શ્લોકમાં જણાવ્યા પ્રમાણે મૂળરાજના પિતા રાજિના પિતાનું નામ 'કાંચિકવ્યાલ' હતું. પ્રબંધચિંતામણી વિગેરે પ્રબંધોમાં આ નામ બિલકુલ નથી મળતું; ત્યારે પ્રસ્તુત તામ્રપટમાં એ નામ મળી આવે છે. જોકે તામ્રપટમાં એ નામ 'વ્યાલકાંચિ' એવા રૂપમાં લખેલું છે અને ચરિત્રમાં 'કાંચિકવ્યાલ' એવા રૂપમાં આપેલું છે. પણ તે તો માત્ર શબ્દવ્યત્યય છે; નામાંતર જેવું કશું નથી. સંસ્કૃત લેખકો ઘણીક વખત, પદ્યાદિમાં બંધબેસતું કરવાની દૃષ્ટિએ, નામોમાં આવી જાતનું શબ્દોનું પૌર્વાપર્ય કરી નાંખે છે. આ તેનું જ એક ઉદાહરણ હોઈ શકે. પ્રસ્તુત તામ્રપટમાં મૂળરાજને વ્યાલકાંચિના સંતાનરૂપે ઓળખાવ્યો છે; એટલે તે ઉપરથી એમ સ્પષ્ટ નથી થતું કે તે મૂળરાજનો પિતામહ જ હતો કે અન્ય કોઈ પૂર્વજ. પણ જયસિંહસૂરિ તેને સીધો રાજિનો જ પિતા કહે છે તેથી તે એનો પિતામહ જ હતો એમ માનવામાં કાંઈ વિરોધ આવતો નથી. પ્રબંધચિન્તામણીમાં, એની જગ્યાએ 'મુંજાલ' એ નામ આપેલું છે. ચૌલુક્યોના પૂર્વ પુરૂષોમાં કોઈ મુંજાલ નામે પ્રસિદ્ધ વ્યક્તિ થઈ ગઈ હોવાનું આપણે ઉપર અનુમાન કર્યું છે; તેથી મને એમ લાગે છે કે એના પિતામહનું મૂળ નામ મુંજાલ એવું હશે અને વ્યાલકાંચિ કે કાંચિકવ્યાલ એ તેનો બિરુદ હશે અને તેથી તે લોકોમાં મૂળ અને બિરુદવાચક એમ બન્ને નામે પ્રસિદ્ધિ પામ્યો હશે. જેમ સિદ્ધરાજ, પોતાના મૂળનામ જયસિંહદેવ અને ઉપનામ અર્થાત્ બિરુદનામ સિદ્ધરાજ એમ બન્ને નામે સુપ્રખ્યાત થયો તેમ એ પણ કદાચ થયો હોય. અર્થદૃષ્ટિએ વિચાર કરતાં વ્યાલકાંચિ કે કાંચિકવ્યાલ એ મૂળનામ ન હોઈ ઉપનામ કે બિરુદ જ હોવાનું વધારે સંભવિત લાગે છે. કાંચિવ્યાલનો પર્યાયશબ્દ કાંચિભુજંગ[1] થાય છે અને એનો અર્થ 'કાંચિનો સ્વામી' અથવા 'કાંચિમાટે નાગ જેવો ભયજનક' એમ કરી શકાય. કાંચી એ દક્ષિણની સુપ્રસિદ્ધ પ્રાચીન નગરી છે જેને અત્યારે કાંજિવરમ્ કહેવામાં આવે છે. પલ્લવરાજવંશની કાંચી એ રાજધાની હતી. દક્ષિણના ચાલુક્યો અને

૧ કાંચિભુજંગ એ બિરુદ દક્ષિણના પણ કોઈ એક રાજાનો હતો જેના નામથી અંકિત કાંચિભુજંગેશ્વર નામનું એક શિવમંદિર દક્ષિણ (મદરાસ)ના સાલેમ જીલ્લામાં આવેલા ધર્મપુરી નામના ગામમાં હોવાના જુના ઉલ્લેખો મળી આવે છે. જુઓ, એપિ૦ ઇન્ડિ૦ પુ૦ ૧૯, પૃ૦ ६४.

કાંચીના પલ્લવો વચ્ચે કેટલીય વાર યુદ્ધો થયાના ઉલ્લેખો દક્ષિણના ઇતિહાસમાં મળી આવે છે. સંભવ છે કે મૂળરાજના પિતામહે પણ કાંચીસાથે આવો કોઈ વિગ્રહ ખેલ્યો હોય અને તેની સ્મૃતિ તરીકે તેણે એ બિરુદ ધારણ કર્યું હોય.

કાંચિવ્યાલ અને રાજિરાજ આ બન્ને નામો પોતાનું દાક્ષિણાત્ય પણું સૂચિત કરે છે. દક્ષિણમાં રાજિરાજ કે રાજરાજ એ નામ બહુ પ્રચલિત હતું. તેથી શંકા થાય છે કે મૂળરાજના આ બાપ–દાદાઓ દક્ષિણનિવાસી તો નહિં હોય ? ગૂર્જરભૂમિ ઉપર થતા આવતા દાક્ષિણાત્યોના આધિપત્યના દાખલાઓ ગુજરાતના ઇતિહાસમાં ડગલે ને પગલે નજરે પડે છે. એ ચૌલુક્યો પણ દક્ષિણી તરીકે આવ્યા હોય તો તેમાં અસંભવિતતા જેવું કાંઈ નથી.

મૂળરાજ વિષે, બીજી કશી વિશેષ હકીકત પ્રસ્તુત તામ્રપટમાં આપેલી નથી. માત્ર એવો સામાન્ય જ નિર્દેશ કરેલો છે કે એણે પોતાના અંગત પ્રતાપથી અનેક પ્રસિદ્ધ એવા રાજાઓને પોતાના ચરણમાં મસ્તક નમાતા બનાવ્યા. આ ઉલ્લેખ સામાન્ય હોવા છતાં, મૂળરાજના સામર્થ્ય અને સામ્રાજ્ય વિષે કાંઈક સૂચક છે ખરો. મૂળરાજે અણહિલપુરમાંની ચાવડાઓની રાજસત્તાનો નાશ કરી, પોતાનાં જ પરાક્રમવડે પોતાનું નવું રાજ્ય સ્થાપ્યું હતું એ તો સુવિદિત અને સર્વ સમ્મત હકીકત છે. સં० ૧૦૪૩ વાળા એના પોતાના જ દાનપત્રમાં **स्वभुजोपार्जितसारस्वतमंडलः** –પોતાના જ ભુજબળથી જેણે સારસ્વતમંડળ પ્રાપ્ત કર્યું–એવા વિશિષ્ટ વિશેષણથી એ વસ્તુનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. પણ એ સારસ્વતમંડળ ઉપરાંત બીજા ક્યા પ્રદેશો ઉપર એણે પોતાની સત્તા પ્રસ્થાપિત કરી અને કયા કયા રાજાઓને એણે પોતાના સામંતો કે આજ્ઞાવર્તી બનાવ્યા એ બાબત વિવાદાસ્પદ અને શંકાગ્રસ્ત છે. **वसन्तविलास** કાવ્યનો કર્તા કવિ બાલચંદ્ર તો કહે છે કે મૂળરાજના બાહુરૂપી રાહુ એ યુદ્ધમાં ૮૪ એવા રાજમંડળોને ગ્રસી લીધા હતા.[1] આ તો કવિની અતિશયાલંકારવાળી એક ઉક્તિ માત્ર છે એમ આપણે એની શબ્દાવલીથી જ સમજી શકીએ છીએ. પણ આના ભાવાર્થને મળતું કાંઈક કથન આપણા પ્રસ્તુત તામ્રપટમાં પણ મળે છે, તો તેમાં પણ કાંઈક ઐતિહાસિક વસ્તુસૂચન છે કે માત્ર તે પણ કેવળ શબ્દાલંકાર જ છે એ વસ્તુ જરા વિચારણીય લાગે છે. તામ્રલેખમાં 'અસંખ્યાત નૃપતિઓને પોતાના ચરણમાં નમાવ્યા' આવો જે ઉલ્લેખ કરેલો છે તે શું સર્વથા મિથ્યાસ્તુતિ છે કે તેમાં કાંઈક સત્યાંશ પણ રહેલો હશે ખરો ? સમકાલીન રાજશાસનોમાં આવા સર્વથા મિથ્યા ઉલ્લેખો કરાય એ સંભવિત લાગતું નથી તેથી મૂળરાજે અસંખ્ય રાજાઓ સાથે યુદ્ધો કર્યાના ઉલ્લેખને અલંકારરૂપે માનીએ પણ તે સાથે બે પાંચ એવા નામાંકિત રાજાઓ સાથે અને કદાચ તેથી વધારે નાના મોટા સામંતો સાથે તેણે યુદ્ધો અવશ્ય કરેલા હશે અને એ રાજાઓ ઉપર એણે પોતાની ધાક બેસાડી હશે – એટલું તો એ કથનમાંથી ફલિત થતું સત્ય આપણને સ્વીકારવું પડે તેમ છે.

---

१ चतुर्युताशीतिमितानि भूपतेर्यत्र शीतद्युतिमण्डलानि ।
यद्बाहुराहुस्तरलासिपट्टजिह्वः समित्पर्वणि चर्वति स्म ॥
वसन्तविलासकाव्य, सर्ग ३, श्लोक ६.

ચામુંડરાજ, જે પ્રસ્તુત તામ્રપત્રનો દાતા છે તેના વિષે, કશી વિશેષ હકીકત આમાંથી મળતી નથી. એના શીલ અને સ્વભાવ વિષે જે સંક્ષિપ્ત ગુણાત્મક કથન આમાં કરવામાં આવ્યું છે, તે હેમચંદ્રાચાર્યે દ્વ્યાશ્રયમાં આપેલા એના ગુણવર્ણનસાથે પ્રાયઃ શબ્દશઃ મળતું આવે છે. એ ઉપરથી એ યુવાવસ્થામાં એક સુશીલ, સંયમી અને સદ્ગુણી રાજકુમાર તરીકે સારી પ્રસિદ્ધિ પામ્યો હશે એમ માની શકાય. તામ્રશાસનમાંની

औद्धत्यास्पदयौवराज्यपदवीलाभेऽप्यनुत्सेकवान्

આ પંક્તિના કથનને દ્વ્યાશ્રયમાંના

'शक्ति क्षमे यौवनसंयमित्वे युते न दृष्टे इतरेतरां हि' તથા 'नोत्सुकायत स क्वापि' ઇત્યાદિ કથનો સાથે સરખાવી જોવાથી આ કથનની પ્રતીતિ થઈ શકે તેમ છે.

ચામુંડરાજ, આ તામ્રશાસન, સ્વતંત્રરીતે, વરુણશર્મે ગામના લોકોને સાક્ષી બનાવીને આપે છે. એમાં રાજધાનીનું નામ આપવામાં આવ્યું નથી, તેથી એમ લાગે છે કે યુવરાજ ફરતો ફરતો કોઈ વખતે એ વરુણશર્મે ગામમાં જઈ ચઢેલો હોવો જોઇએ અને તે વખતે ગામના લોકોની – જૈન શ્રાવકોની વિનંતીથી–ત્યાંના જૈન મંદિરની સેવા-પૂજામાટે આમાં વર્ણવેલું ક્ષેત્રદાન કરી આપ્યું હોવું જોઇએ. એથી એમ પણ લાગે છે કે યુવરાજ એ વખતે સારી પેઠે મોટી ઉમરનો હોવો જોઇએ–પિતાને પૂછ્યા વગર સ્વતંત્રરીતે પોતે ગ્રાસ આદિ આપી શકે એટલી સત્તા એને મળેલી હોવી જોઇએ. અને એટલી સત્તા ભોગવનાર યુવરાજની ઉમર લગભગ ઓછામાં ઓછી ૨૫ થી ૩૦ વર્ષ જેટલી તો હશે જ. એ દૃષ્ટિએ ગણતરી કરતાં એનો જન્મ વિ૦ સં૦ ૧૦૦૦ થી ૧૦૦૫ ની આસપાસ થયેલો કલ્પી શકાય. અર્થાત્ મૂળરાજે અણહિલપુરની ગાદી કબ્જે કર્યા પછી ૫–૭ વર્ષની અંદર જ ચામુંડરાજનો જન્મ થયો હશે એમ અનુમાન કરી શકાય.

મૂળરાજે અણહિલપુરની રાજગાદી કયારે મેળવી એ એક જરા મતભેદનો પ્રશ્ન બનેલો છે. મેરુતુંગાચાર્યે પ્રબંધચિંતામણીમાં એ માટે વિ૦ સ૦ ૯૯૮ ની સાલ આપેલી છે, અને ૫૫ વર્ષસુધી રાજ્ય કરી, સં૦ ૧૦૫૩માં એ મૃત્યુ પામ્યો એમ સ્પષ્ટ લખેલું છે. મેરુતુંગ પછીના બીજા ઘણા ખરા પ્રબંધકારોએ એ જ ઉલ્લેખને માન્ય રાખ્યો છે અને પોતપોતાના લખાણોમાં એનો સ્વીકાર કર્યો છે, પરંતુ વિચારશ્રેણીના સંકલન કર્તા–કે જેમનું નામ પણ મેરુતુંગસૂરિ છે પણ જે પ્રબંધચિંતામણીના કર્તાથી તદ્દન જુદા ગચ્છના અને તેમના પછી લગભગ ૫૦–૬૦ વર્ષે થયા છે,–તેમણે એ સાલ જુદી રીતે આપી છે. તેમના ઉલ્લેખ પ્રમાણે મૂળરાજે સં૦ ૧૦૧૮માં ગાદી લીધી હતી અને તે પછી ૩૫ વર્ષસુધી તેણે રાજ્ય કર્યું હતું. મુંબઈ ગેઝેટીઅર વિગેરેના લેખકો આ કથનને વધારે પ્રમાણભૂત ગણે છે. મૂળરાજે ૫૫ વર્ષ જેટલા દીર્ઘકાળ સુધી રાજ્ય કર્યું હોય તેના બદલે ૩૫ વર્ષવાળું કથન વધારે સંભવિત માને છે. ૫૦–૫૦, ૬૦–૬૦ વર્ષ સુધી રાજ્ય કરનારા રાજાઓના દાખલાઓ, આપણા દેશના ઇતિહાસમાં અનેક જડી આવે એમ છે તેથી એ દલીલમાં તો કાંઈ વિશેષ વજુદ નથી લાગતું; પણ વિચારશ્રેણીના કર્તાએ ૯૯૮ના બદલે

૧૦૧૮ની સાલ કયા આધારે આપી છે તે પ્રશ્ન ખાસ વિચારણીય રહે છે ખરો. મૂળરાજે ૯૯૮માં ગાદી લીધી એ પ્રબંધચિંતામણીના કથનને તેના કરતાં ય વધારે જૂના એવા એક શિલાલેખથી સ્પષ્ટ પુષ્ટિ મળે છે. મારવાડના સાંભર નામના ગામમાંથી સિદ્ધરાજના સમયનો એક શિલાલેખ મળી આવ્યો છે જેમાં મૂળરાજદેવે સં૦ ૯૯૮માં અણહિલપુરની ગાદી લીધી હોવાનો નિર્દેશ કરેલો છે. તેથી હવે પ્રબંધચિંતામણીના કથનમાં તો શંકાને અવકાશ નથી રહેતો. આ ઉપરથી, કાં તો આપણે વિચારશ્રેણીના ઉલ્લેખને ભ્રમાત્મક માનવો જોઇએ અને કાં તો તેમાં કાંઇક ઐતિહાસિક સૂચન સમાએલું હોવાનું કલ્પવું જોઇએ. મારી કલ્પના આ બીજા વિકલ્પ તરફ દોરાય છે પણ એ વિષય જરા વિસ્તારથી ચર્ચવો પડે તેમ છે તેથી કોઈ બીજા પ્રસંગે એની ચર્ચા કરવી ઠીક થઈ પડશે.

આ તામ્રશાસન કયા પ્રસંગે આપવામાં આવ્યું હતું તે એમાં કાંઈ સૂચવેલું નથી. સામાન્ય રીતે બ્રાહ્મણોને કે શૈવમંદિરોને, કોઈ સૂર્યગ્રહણ કે તેવા ખાસ પર્વદિવસના નિમિત્તે એવાં ભૂમિદાનો આપવામાં આવે છે. જૈન લોકો એવા લૌકિક પર્વવિશેષમાં માનતા ન હોવાથી, જૈન મંદિરોને આપવામાં આવતા આવા દાન માટે તેવા પર્વવિશેષની કશી અપેક્ષા રહેતી નથી. જૈન મંદિરોને દાન કાં તો તે નવા બંધાઇને તૈયાર થયા હોય અને તેમની પ્રતિષ્ઠા વિગેરેના ઉત્સવો ઉજવાતા હોય તેવે વખતે આપવામાં આવે છે, અથવા તો પછી ગમે તે કારણે કોઇક પ્રસંગ ઉપસ્થિત થતાં તે આપવામાં આવે છે. એથી એમ કલ્પના કરાય કે કાંતો એ વરુણશર્મ ગામનું જૈન મંદિર તે વખતે નવીન જ તૈયાર થયું હશે અને તેથી યુવરાજે તેની પૂજા-અર્ચાના નિર્વાહ નિમિત્તે એ દાનપત્ર કરી આપ્યું હશે; અથવા તો, યુવરાજ દેશભુક્તિના નિરીક્ષણ અર્થે પ્રવાસે નીકળ્યો હોય અને ફરતો ફરતો એ ગામમાં આવ્યો હોય તે વખતે ત્યાંના જૈન શ્રાવકોએ સ્થાનિક મંદિરના નિર્વાહ અર્થે ભૂમિદાનની પ્રાર્થના કરી હોય અને તેથી યુવરાજે આ દાનપત્ર કરી આપ્યું હોય. સામાન્ય નિયમ પ્રમાણે આવા દાનપત્રોમાં ખુદ રાજાની આજ્ઞા અને તેના હસ્તાક્ષરોવાળી સહીની જરૂર હોય છે; પરંતુ જેમ મેં ઉપર કલ્પના કરી છે તેમ, ચામુંડરાજ તે વખતે એટલી પુખ્ત ઉમરનો અને સર્વાધિકાર પામેલો હોવો જોઇએ કે જેથી સાક્ષાત્ રાજાની જેમ જ તેની આજ્ઞા અને સહી માન્ય થતી હતી.

ચામુંડરાજનું આ તામ્રશાસન, તેની ધર્મભાવના વિષેની કાંઇકિ વિચારણા માંગી લે છે. આ તામ્રશાસન જૈન મંદિરને લગતું છે. ચૌલુક્યોના અત્યારસુધી જેટલાં તામ્રપત્રો મળ્યાં છે તે બધા બ્રાહ્મણોને કે શૈવ મંદિરોને અપાયેલાં દાનવિષેનાં છે. જૈનમંદિરને દાન આપવા બાબતનું આ પ્રથમ જ દાનપત્ર પ્રાપ્ત થાય છે. સિદ્ધરાજ વિગેરેએ શત્રુંજય આદિ તીર્થોના જૈન મંદિરોને ગામના ગામ દાન કરી આપ્યાના ઉલ્લેખો જૂના પ્રબંધોમાં વારંવાર વાંચવામાં આવે છે, પણ એ જાતનું એકેય દાનપત્ર હજી સુધી મળી આવ્યું નથી. (–જો કે સિદ્ધરાજનું તો બીજું પણ કોઈ જાતનું એકેય તામ્રપત્ર હજી સુધી મળ્યું નથી!) તેથી જૈન સમાજના ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ આ તામ્રપત્ર ઘણું મૂલ્યવાન્ ગણી શકાય.

આ તામ્રપત્ર સંપૂર્ણ અર્થમાં જૈન તામ્રપત્ર છે. આનું લખાણ અને વર્ણન તદ્દન જૈન શૈલીનાં છે. દાનના ફળનું માહાત્મ્ય બતાવનારો જે શ્લોક (આર્યા છંદ) ટાંકવામાં આવ્યો છે તે જૈન સાહિત્યમાં એક સુપ્રસિદ્ધ ઉક્તિરૂપે વપરાતો આવ્યો છે. જૈન ધર્મમાં દાનનું માહાત્મ્ય ઘણા ભારપૂર્વક વર્ણવામાં આવ્યું છે. સંપત્તિશાલી પુરુષોએ લક્ષ્મીનો વિનિયોગ ધર્મકાર્યોમાં કરવો જોઇએ–એ ઉપદેશ ઉપર જેટલો ભાર જૈન ગ્રંથોમાં આપવામાં આવેલો જોવામાં આવે છે તેટલો ભાર અન્ય ધર્મગ્રંથોમાં આપેલો નથી જોવાતો; અને તેથી જૈનોમાં ધર્મકાર્ય નિમિત્તે કરવામાં આવતો લક્ષ્મીનો વ્યય, આજે પણ વિપુલ પ્રમાણમાં આપણે જોઈ શકીએ છીએ. એ ઉપદેશના પરિણામે જૈનોએ આજ સુધીમાં અસંખ્ય જૈન મંદિરો બંધાવ્યાં અને અનંત જિનમૂર્તિઓ કરાવી. પૂજા, ઉત્સવ, ઉદ્યાપન, સંઘયાત્રા આદિ કાર્યોમાં અઢળક લક્ષ્મી ખર્ચી અને તેમ કરી લોકોમાં જૈન ધર્મનો મહિમા વધાર્યો. ગુજરાતના જૈનોનો લગભગ છેલ્લા ૧૫૦૦ વર્ષનો ઇતિહાસ આ વિષયમાં અદ્ભુતરીતે ઉજજ્વલ અને એ સમાજને યથેષ્ટ અભિમાન લેવા લાયક છે. ચામુંડરાજના આ તામ્રશાસન પરથી જણાય છે કે જૈન ધર્મના આ જાતના ઉપદેશથી તે ખૂબ પરિચિત અને પ્રભાવિત થએલો છે અને જિનમંદિર, જિનમૂર્તિ, જિનપૂજા આદિ જૈનમતના કાર્યો કરવાથી, મનુષ્યલોક, સ્વર્ગલોક અને મોક્ષનાં સુખો પણ કરતલગત જેવાં થઈ રહે છે–એમ માની પોતાના આત્માના શ્રેયાર્થે તે આ ભૂમિદાન કરી આપે છે.

આ ઉપરથી આપણે શું એમ સમજવું જોઇએ કે ચામુંડરાજ જૈન ધર્મ માનનારો હતો ? ધાર્મિક પક્ષપાતની ભાવનાવાળા જૈનવર્ગને એવી કલ્પના કે માન્યતા ધરાવવામાટે આ તામ્રપત્ર યથેષ્ટ સાધનરૂપ થઈ શકે તેમ છે. પરંતુ, જૈન પ્રબંધો આદિના અવલોકન અને ઐતિહાસિક અન્વેષણના આધારે હું એમ માનું છું કે જે અર્થમાં કુમારપાલ જૈન ધર્મ માનનારો થયો હતો તે અર્થમાં અણહિલપુરના ચૌલુકયોમાંથી બીજો કોઈ રાજા થયો હોય તેમ લાગતું નથી. અણહિલપુરના ચાવડાઓ અને ચૌલુકયો, જૈન ધર્મ અને જૈન સમાજ સાથે ઘણો ગાઢ પરિચય ધરાવતા હતા એમાં શંકા નથી જ. અણહિલપુર પ્રારંભથી જ જૈનધર્મનું મોટું કેન્દ્ર સ્થાન બન્યું હતું અને તે છેક સુધી તેવું જ ચાલુ રહ્યું હતું. જૈનધર્મનો જેટલો અને જેવો ઉત્કર્ષ અણહિલપુરના રાજ્યછત્રનીચે થયો, તેટલો અને તેવો બીજે કયાંએ થયો જણાતો નથી; અને તેની સાથે અણહિલપુરના સામ્રાજ્યના ઉત્કર્ષમાં પણ જૈનોએ એટલો અને એવો જ અદ્વિતીય ભાગ ભજવ્યો હતો, અને એથી અણહિલપુરના રાજ્યશાસનમાં જૈનોની સર્વાધિક વિશિષ્ટતા કે પ્રચંડ બહુમતી હતી એમ જો કહેવામાં આવે તો તેમાં કિંચિત્ પણ અતિશયોક્તિ નથી. જૈન પ્રબંધો ઉપરથી એમ પણ સ્પષ્ટ જણાય છે કે એ રાજકુટુંબસાથે કૌટુમ્બિક સંબંધ ધરાવતી કોઈ કોઈ વ્યક્તિએ જૈનધર્મની યતિદીક્ષા પણ લીધી હતી. એવી પરિસ્થિતિમાં, રાજકર્તા કુટુંબનો એ ધર્મસાથે પ્રગાઢ સંબંધ હોય એ સ્વાભાવિક જ છે. એ સંબંધને લઇને એ વંશના લગભગ બધા જ રાજાઓએ–જો અપવાદરૂપે ગણીએ તો એક અજયપાલને છોડીને–જૈનધર્મ તરફ પોતાના કુલધર્મ જેટલો જ મમત્વભાવ બતાવ્યો હતો. એ રાજાઓ અવાર–નવાર

જૈન મંદિરોમાં જતા અને જિનદેવતાની શ્રદ્ધાપૂર્વક પૂજા–ભક્તિ કરતા. પ્રસંગવશ, જૈન આચાર્યો પાસે જતા અને તેમનો ધર્મોપદેશ પણ સાંભળતા. જૈન વિદ્વાન્ યતિઓને રાજદરબારમાં આદરપૂર્વક સ્થાન આપતા અને રાજસભાના અગ્રણી પંડિત બનાવતા. પરંતુ, એમનો કુલધર્મ શૈવ હતો. એમના ઉપાસ્ય દેવતા સોમેશ્વર હતા અને રાજધર્મ તરીકે શૈવધર્મની પ્રતિષ્ઠા હતી. એક માત્ર કુમારપાલ રાજાએ પોતાની પાછલી જીંદગીમાં વ્યક્તિગત રીતે જૈનધર્મનો વિશિષ્ટરૂપે સ્વીકાર કર્યો અને હેમચંદ્રસૂરિને પોતાના ધર્મગુરુ સ્વીકારી, તેમની પાસેથી જૈનધર્મના ગૃહસ્થોચિત વ્રત–નિયમોના પાલનમાટેની શ્રદ્ધાપૂર્વક શ્રાવક ધર્મની દીક્ષા લીધી. એ દીક્ષાની પ્રસિદ્ધિ અર્થે અને પોતે સ્વીકારેલા જૈન ધર્મના પ્રચાર માટે તેણે ઠેકઠેકાણે અનેક જૈન મંદિરો બંધાવ્યાં અને રાજસાહી ઠાટ સાથે મોટો સંઘ કાઢી શત્રુંજય અને ગિરનાર જેવા જૈન તીર્થોની ખાસ મહાયાત્રા કરી. પોતાના આખા ય રાજ્યમાં, અહિંસાનું પાલન થાય તે માટે અમારિની ઉદ્‌ઘોષણા કરાવી અને ધર્મ નિમિત્તે થતી જીવહિંસા–પશુ બલિ બંધ કરાવી. ખાસ કરીને રાજધાનીમાં મદ્ય, માંસ, જુગાર અને શિકાર ઉપર સખ્ત પ્રતિબંધ મુકયો. એ નિયમિત જિનમંદિરમાં જતો અને જિનમૂર્તિની સેવા–ઉપાસના કરતો. ધાર્મિક પર્વવિશેષના દિવસોમાં શ્રાવક ધર્મના નિયમાનુસાર સામાયિક કે પોષધવ્રત પણ એ લેતો. એ રીતે એણે જૈનધર્મ ઉપરની પોતાની સંપૂર્ણ શ્રદ્ધા પ્રકટ કરી હતી.

કુમારપાલના આ રીતના જૈન ધર્મના સ્વીકારવિષે કેટલાક વિદ્વાનોનો મતભેદ દેખાય છે; પરંતુ અમારા વિચાર પ્રમાણે એ મતભેદ ઐતિહાસિક સત્યની સંદિગ્ધતા કરતાં ધાર્મિક ભાવનાની સંકુચિતતા ઉપર રચાએલો જણાય છે અને તેથી અમને એમાં પ્રામાણિક ઐતિહાસિકની જિજ્ઞાસા દૃષ્ટિગોચર થતી નથી. કુમારપાલ સિવાય, એ વંશના બીજા કોઈ રાજાએ જૈન ધર્મનો એ અર્થમાં સ્વીકાર કર્યો હોય તેમ જૈન પ્રબંધો ઉપરથી તેમ જ અન્ય ઐતિહાસિક પ્રમાણોથી પણ જણાતું નથી. એટલે ચામુંડરાજના પ્રસ્તુત તામ્રશાસન ઉપરથી, તે જૈન ધર્મનો અનુયાયી હતો એમ માનવાને કશું કારણ નથી. જૈન ધર્મ તરફ તેનો સંપૂર્ણ સદ્‌ભાવ હતો અને જૈન સમાજ સાથે રાજકીય અને સામાજિક દરેક રીતે અતિનિકટતા ભરેલો સંબંધ હતો તેથી જૈન મંદિરને પણ શ્રદ્ધાપૂર્વક તે ભૂમિદાન કરે એ તદ્દન સ્વાભાવિક છે. હિંદુ રાજાઓ સામાન્ય પણે વ્યક્તિગતરીતે શિવ, વિષ્ણુ, બુદ્ધ કે જિન–ગમે તે દેવને પોતાના ઈષ્ટદેવ તરીકે પૂજતા-માનતા હોય, પણ રાજ્યના બધા ધર્મો અને બધા વર્ગોના દેવી-દેવતાઓ તરફ પોતાનો સમાન આદરભાવ પ્રકટ કરવાનો અને રાજ્ય તરફથી તે તે દેવસ્થાનોનાં નિર્વાહ આદિ માટે યથાયોગ્ય ભૂમિદાન કે અન્ય કોઈ જાતના વર્ષાસન જેવા કર અને લાગા બાંધી આપવાનો તેમનો ઉદાર રાજધર્મ મનાતો અને એ રાજધર્મનો ઘણા ભાગે બધા સારા રાજાઓ યોગ્યરીતે પાલન કરતા.

ચામુંડરાજ વિષે વિશેષ ઐતિહાસિક વિગતો કશી મળતી નથી. દ્વયાશ્રયકાવ્યમાં એના યુવરાજ કાળમાં જ લાટના દંડનાયક બારપ ઉપર એ ચઢાઈ લઈ ગયો અને તેનો નાશ કર્યો એ હકીકત વિસ્તારથી આપવામાં આવી છે. રાજગાદીએ બેઠા

પછી એના રાજ્યની કોઈ ખાસ કારકીર્દીનું તેમાં કશુંય સૂચન નથી. ઉત્તરાવસ્થામાં એણે પોતાના પાટવી કુમાર વલ્લભરાજને માલવાના રાજા ઉપર સૈન્ય લઇને મોકલ્યો, જેમાં રસ્તામાં જ અકસ્માત્ વલ્લભરાજને શીતલાનો અસાધ્ય રોગ થઈ આવ્યો અને તેના લીધે તેનું મૃત્યુ થયું. શોકગ્રસ્ત થઈ સૈન્ય પાછું રાજધાનીમાં આવ્યું અને ચામુંડરાજ પોતાના બીજા પુત્ર દુર્લભરાજને રાજગાદી આપી, નર્મદાતીરે શુકલતીર્થમાં જઈ રહ્યો અને ત્યાં તીર્થોપાસના કરતો મૃત્યુ પામ્યો.

ચામુંડરાજે, શા માટે આ પ્રમાણે માલવાના રાજા ઉપર સૈન્ય લઇને પોતાના પાટવી કુમારને મોકલ્યો તેનું કશું કારણ હેમાચાર્ય નથી આપતા; પણ ટીકાકારે એ ઠેકાણે ખાસ નોંધ કરી છે અને તે ચામુંડરાજના ચરિત્રમાં દૂષણ બતાવનારી છે. પોતાના વર્ણ્યનાયકની ચરિત્રહીનતા સૂચવનારી હોવાથી એ હકીકતનો હેમાચાર્યે નિર્દેશ નથી કર્યો એમ પણ સાથે ટીકાકારે ટકોર કરી છે. ટીકાકારની એ નોંધનો સાર આ પ્રમાણે છે—'ચામુડરાજ' [પાછલી અવસ્થામાં] અતિકામાસક્ત થઈ વિકલ બની ગયો હતો, તેથી તેની બ્હેન ચાચિણી (અગર વાચિણી) દેવીએ તેને રાજ્યગાદી ઉપરથી ઉઠાડી મુક્યો અને તેના પુત્ર વલ્લભને ગાદીએ બેસાડ્યો. તેથી રાજા અભિમાનવશ થઈ, પોતાનું આત્મસાધન કરવા માટે બનારસ જવા નીકળ્યો. રસ્તામાં માલવા વાળાઓએ તેને લુંટ્યો અને તેનાં છત્ર-ચામરાદિ રાજચિહ્ન ખોસી લીધાં. એથી તે ક્રોધે ભરાઇ પાછો પાટણ આવ્યો અને પોતાના પુત્ર વલ્લભને કહ્યું કે જો તું મારો પુત્ર હોય તો માલવા વાળાઓ પાસેથી મારાં છત્ર-ચામરાદિ પાછાં છીનવી લાવ, ઇત્યાદિ.—ટીકાકાર કહે છે કે, ખરી હકીકત આવી છે. પણ વર્ણ્યનાયકના વિષયની આ હકીકત કાવ્યમાં જણાવવી અનુચિત લાગવાથી કાવ્યકારે (હેમાચાર્યે) એનું કશું સૂચન નથી કર્યું અને મોઘમરીતે જ 'રાજાએ માલવા ઉપર ચઢાઈ કરવાની આજ્ઞા આપી' એમ કથન કર્યું છે.*

ચામુંડરાજ વિષે ટીકાકારે નોંધેલી આ હકીકત બીજા કોઈ પ્રબંધોમાં નથી મળતી પરંતુ તે નિર્મૂલ હોય એમ નથી લાગતી. ટીકાકાર સામે એ બાબતની કોઈ વિશ્વાસભૂત શ્રુતપરંપરા રહેલી હોય તેમ ચોક્કસ લાગે છે, અને તેથી તેની વિશ્વસનીયતા માની શકાય તેમ છે. પ્રબંધચિંતામણીમાં આ હકીકતને મળતી હકીકત છે, તેમાં જણાવ્યું છે કે—દુર્લભરાજને બનારસ જતાં રસ્તામાં માલવાના રાજા મુંજે અપમાનિત કરી તેનાં છત્રચામરાદિ લઈ લીધાં અને તેથી તે સંન્યાસીના વેષે તીર્થયાત્રાએ ગયો અને તેની ખબર પોતાના ભત્રીજા ભીમને આપી તેનો બદલો લેવાનું કહી મોકલ્યું ઇત્યાદિ. આમાં દુર્લભરાજનો સમકાલીન મુજ જણાવ્યો છે તે અસંગત છે કારણ કે મુજનું મૃત્યુ તો, ઘણું કરીને મૂલરાજની હયાતીમાં જ અગર તો મૂળરાજન મૃત્યુથી ૬–૧૨ મહિના આગળ–પાછળ જેટલા અલ્પ સમયમાંજ થઈ ગયું હતું અને તેની ગાદીએ સિંધુરાજ આવ્યો હતો, જે ચામુડનો લગભગ સમકાલીન હતો.

* चामुण्डराजः किलातिकामाद् विकलीभूतः सन् भगिन्या चा (वा ?) चिणिदेव्या राज्यात् स्फेटयित्वा तत्पुत्रो वल्लभो राज्ये प्रतिष्ठितः। चामुण्डराजेन चाभिमानवशादात्मसाधनार्थं वाराणस्यां गच्छता मालविकैर्विलुण्ठितछत्रादिराजचिह्नकेन पत्तन आगत्य वल्लभस्याज्ञा दत्ता यदि मदीयः पुत्रस्तदा मालविकेभ्यो मदीयच्छत्रादीन् मोचयेति वस्तुस्वरूपम्। एतच्च वर्ण्यत्वेनाधिकृतस्योपनिबध्यमानमनुचितमिति '**पित्राज्ञामाददानं**' इत्यनेन सूचितः। —द्व्याश्रयकाव्य, सर्ग ७, श्लो० ३१,

સિંધુરાજ અને ચામુંડરાજ વચ્ચે યુદ્ધ થયાનો ઉલ્લેખ વડનગરવાળા કુમારપાલના સં૦ ૧૨૦૮ના શિલાલેખમાં તથા ઉપર ઉદ્ધરેલા જયસિંહસૂરિના કુમારપાલચરિત્રમાં મળે છે. કુમારપાલના પ્રશસ્તિલેખમાં ચામુંડરાજ સાથેના યુદ્ધમાં સિંધુરાજ નષ્ટ થયો (नष्टः)' એમ મોઘમ જણાવ્યું છે; ત્યારે જયસિંહસૂરિએ 'ચામુંડરાજે, સિંધુરાજને યુદ્ધમાં, ઉન્મત્ત હાથીની જેમ મારી નાંખ્યો (अवधीत्)' એમ સ્પષ્ટ કહ્યું છે. મ૦ મ૦ પંડિતશ્રી ગૌ૦ હી૦ ઓઝા જયસિંહસૂરિના કથનને વિશ્વસનીય માને છે (—જુઓ, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ભાગ ૩, પૃ૦ ૫; તથા राजपूतानेका इतिहास, ભાગ ૧, પૃ૦ ૨૧૦) ત્યારે શાસ્ત્રીજી શ્રી દુ૦ કે૦ પોતાના ગુ૦ મ૦ રા૦ ઇ૦ માં 'જયસિંહસૂરિના કથનમાં કશું ઐતિહાસિક સત્ય નથી' (પૃ૦ ૧૭૪, ભાગ ૧) એવો પોતાનો મત જણાવે છે. શાસ્ત્રીજી, એ વડનગરના પ્રશસ્તિલેખમાં આવેલા 'નષ્ટ' શબ્દ ઉપરથી જે અર્થ કાઢે છે અને તેના આધારે જયસિંહસૂરિના કથનની જે અનૈતિહાસિકતા માને છે તેમાં તો મને તેટલી યુક્તિસંગતતા જણાતી નથી. કારણ સંસ્કૃતમાં 'नष्ट' એ શબ્દપ્રયોગના અનેક અર્થ થાય છે. નષ્ટનો અર્થ જેમ નાશવું-ભાગવું એવો થાય છે તેમ તેનો અર્થ નાશ પામવું – મરણ પામવું એવો પણ થાય છે. **'भट्टिर्नष्टो भारविश्चापि नष्टो'** ઇત્યાદિ શબ્દપ્રયોગોમાં 'મૃત્યુ પામ્યો' એવો જ અર્થ ઉદ્દિષ્ટ રહેલો છે. પણ જયસિંહસૂરિના કથનમાં મને એક બીજી રીતે સંદિગ્ધતા લાગે છે. તે એ છે કે પ્રબંધચિન્તામણી વિગેરે પ્રબંધોના ઉલ્લેખ પ્રમાણે, સિંધુરાજ નેત્રથી અન્ધ હતો* અને અન્ધ રાજા યુદ્ધમાં પ્રત્યક્ષ ભાગ લઈ શકે એ સંભવિત નથી જણાતું. તેથી ચામુંડરાજના હાથે લઢાઈમાં તેનું મૃત્યુ થયું હોય એ, શાસ્ત્રીજીની જેમ મને પણ, સત્ય લાગતું નથી.

સિંધુરાજના રાજકવિ પરિમલે બનાવેલા नवसाहसाङ्क चरित्रમાં † વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે કે સિંધુરાજે લાટ, વાગડ અને અપરાંત જેવા ગુજરાતના અંતઃસીમાપ્રદેશો ઉપર પોતાનાં સૈન્યો મોકલ્યાં હતાં અને એ પ્રદેશો ઉપર પોતાનું પ્રભુત્વ સ્થાપ્યું હતું. આ ઉપરથી જણાય છે કે ચામુંડરાજના કેટલાક રાજ્યપ્રદેશ ઉપર સિંધુરાજે આક્રમણ કરેલું હોવાથી તેના પ્રતિવારણ માટે ચામુંડરાજે તે ઉપર ચઢાઈ કરી હોવી જોઈએ અને તેમાં સિંધુરાજની સખ્ત હાર થએલી હોવી જોઇએ જેનું સૂચન ઉક્ત વડનગરવાળા પ્રશસ્તિલેખમાં અને કુમારપાલચરિત્રમાં કરવામાં આવ્યું છે.

આ ઘટનાને લીધે સિંધુરાજ, ચામુંડરાજ ઉપર વૈરભાવ ધારણ કરી રહ્યો હશે અને પાછળથી જ્યારે ચામુંડરાજ, ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે રાજ્યભ્રષ્ટ થઈ તીર્થયાત્રા કરવા નીકળ્યો હશે, તે વખતે સિંધુરાજે, પોતાની હદમાંથી પસાર થતાં તેના ઉપર હલ્લો લઈ જઈ તેનાં છત્ર ચામરાદિ રાજચિહ્નો ઝુંટવી લીધાં હશે. આથી ચામું-

---

* જો કે સિંધુરાજના અંધત્વવિષે પણ વિદ્વાનોમાં મતભેદ છે અને પ્રબંધકારોની ઉપજાવી કાઢેલી તે એક કલ્પના માત્ર જ માનવામાં આવે છે; પણ મને તેમાં બીજાં કેટલાંક પ્રમાણોના આધારે સત્યતા લાગે છે, અને એ વિષે પ્રબંધચિન્તામણીની મારી આવૃત્તિની ટિપ્પણીમાં ચર્ચા કરવામાં આવી છે.

† જુઓ नवसाहसाङ्क चरित्र, सर्ग १०, श्लोक १५, १७, १९.

ડરાજ પાછો વળી અણુહિલ્લપુરમાં આવ્યો હશે અને એ અપમાનનો બદલો લેવા તેણે પોતાના પુત્રને માલવા ઉપર ચઢાઈ લઈ જવા કહ્યું હશે, એટલે આ રીતે ટીકાકારે લખેલી હકીકત સંગત લાગે છે.

ચામુંડરાજના ચારિત્ર્ય વિષેના આ ઉલ્લેખમાં, ચાચિણીવિષેની હકીકત ખાસ ધ્યાન ખેંચે તેવી છે. એક રાજાની બ્હેન પાસે એટલી બધી સત્તા ક્યાંથી આવી ગઈ હોય કે જેથી તે ચામુંડરાજ જેવા પ્રભાવશાલી અને પરાક્રમી રાજાને આમ ગાદીએથી ઉઠાડી મુકે અને તેને દેશાંતરમાં ચાલ્યા જવાની ફરજ પાડી શકે. રાજાઓ તો એવા ઘણાય કામાસક્ત થતા આવ્યા છે અને થયાં કરે છે. એવા વિકલ રાજાઓને, તેમના મંત્રીઓ, ભાયાતો કે પ્રજાજનો વિગેરેના સંઘટિત તંત્રો ગાદીએથી ઉઠાડી મુકી તેમની જગ્યાએ બીજા લાયક વારસદારોને રાજ્ય આપવા–અપાવવાના દાખલાઓ તો ઇતિહાસોમાંથી કેટલાક મળી આવે છે; પણ કોઈ બ્હેન જેવી સ્ત્રીવ્યક્તિ આવું કાર્ય કરવા જેટલી ક્ષમતા મેળવે એ એક ઇતિહાસદુર્લભ ઘટના ગણી શકાય. દુર્ભાગ્યે ચાચિણીવિષે આપણને બીજે ક્યાંયથી કશો ઉલ્લેખ મળતો નથી. પ્રબંધચિંતામણીમાં એક ઉલ્લેખ આવે છે,[1] જેમાં જણાવવામાં આવ્યું છે, કે પાટણમાં ચામુંડરાજે ચંદનાથ-દેવ અને ચાચિણેશ્વરદેવ નામના બે શિવપ્રાસાદ બંધાવ્યા હતા. આમાં ચંદનાથદેવ તે કદાચ ચામુંડરાજના પોતાના સ્મારકરૂપે હશે અને ચાચિણેશ્વરદેવ તે એની બ્હેન ચાચિણીના સ્મારક રૂપે હશે.

*

પ્રભાવક ચરિત્ર નામના ગ્રંથમાંના વીરસૂરિચરિત નામના પ્રબંધમાં, ચામુંડરાજવિષે થોડોક ઉલ્લેખ મળી આવે છે, જેની નોંધ અન્યત્ર ક્યાંએ લેવામાં નથી આવી. વીરસૂરિ નામના એક વિદ્યાસિદ્ધ જૈન યતિ મારવાડ તરફથી ફરતા ફરતા અણહિલ્લપુરમાં આવીને વસ્યા હતા. તેમના ઉપદેશને માન આપી ચામુંડરાજે, થિરા નામના ગ્રામમાં આવેલા વિરૂપનાથ યક્ષના મંદિરમાં બલિદાન નિમિત્તે જે પશુહિંસા થતી હતી તે ન કરવા માટે, એક શાસનપત્ર કરી આપ્યું હતું. એ રાજાને કેટલાય સમય સુધી કોઈ સંતતિ થઈ ન હતી તેથી તેણે પોતાના પ્રધાન મંત્રી વીર દ્વારા એ યતિવરને વિનંતિ કરી. યતિવરે મંત્રસાધનપૂર્વક સુગંધી ચૂર્ણ મંત્રીને રાજાની રાણીના મસ્તક ઉપર તેનો નિક્ષેપ કરાવ્યો જેના પ્રભાવે તેને વલ્લભરાજ આદિ પુત્રોની પ્રાપ્તિ થઈ, ઇત્યાદિ.*

*

ગુપ્ત સંવત્ અને વિક્રમ સંવત્ સંબંધી એક નવીન સમસ્યા

*

આ તામ્રપત્રમાં એક અન્ય નવી વસ્તુ ઉપલબ્ધ થાય છે જે ઐતિહાસિક અન્વે-ષણ અને સંશોધનની દૃષ્ટિએ બહુ મહત્ત્વની અને કેટલેક અંશે ક્રાંતિ સૂચવનારી ગણી શકાય. એ વસ્તુ તે આ લેખમાં કરવામાં આવેલો સંવત્ વિષેનો વિલક્ષણ નિર્દેશ છે.

---

૧ જુઓ પ્ર૦ ચિં૦ સિંઘી જૈનગ્રંથમાલામાં પ્રકાશિત, આવૃત્તિ પૃ૦ ૨૦.

* પ્રભાવકચરિત્ર [સિંઘી જૈનગ્રંથમાલા] પૃ૦ ૧૨૦–૨૧.

આપણે અન્યાન્ય એવાં અનેક પ્રમાણો અને લેખોના આધારે નિશ્ચિતરૂપે જાણીએ છીએ કે પ્રસ્તુત શાસનનો દાતા ચામુંડરાજ વિક્રમના ૧૧ મા સૈકાના મધ્યભાગમાં વિદ્યમાન હતો. વિ૦ સં૦ ૧૦૫૩ માં એ ગાદીએ બેઠો અને ૧૦૬૬ માં એ મૃત્યુ પામ્યો. તેથી આ તામ્રપત્રમાં જે સંવત્ ૧૦૩૩ નો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે તે વિક્રમીય સંવત્ જ છે એ અસંદિગ્ધરીતે માની શકાય તેવું છે. પણ આ શાસનલેખમાં એ સંવત્‌ને સ્પષ્ટરીતે ગુપ્ત સંવત્ કહેવામાં આવ્યો છે. **याते गुप्तसमाशते** એ શબ્દો પદ્યમાં ગુંથેલા છે અને તેથી એ કથનમાં લખનારની ભ્રાંતિ વિગેરે થઈ હોવાની કલ્પનાને કશોય અવકાશ રહેતો નથી. આ શાસનના ઉલ્લેખથી આપણને એમ માનવાની ફરજ પડે છે કે ચામુંડરાજના વખતમાં સુપ્રસિદ્ધ વિક્રમ સંવત્, એ ગુપ્ત સંવત્ તરીકે પણ ઓળખાતો હોવો જોઇએ. અર્થાત્ વિક્રમ સંવત્ અને ગુપ્ત સંવત્ બંને એક જ વર્ષગણનાના સૂચક છે એમ તે વખતે લખાતું અને મનાતું હોવું જોઇએ.

ગુપ્ત સંવત્ વિષે પુરાવિદોના મોટા ભાગની જે કલ્પના અને ગણના અત્યારે રૂઢ થઈ ગએલી છે અને જેના આધારે આપણા પ્રાચીન ઇતિહાસના એ કાલની સમગ્ર ક્રમ-ઘટનાઓનું આલેખન અને પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે, તેમાં આ ઉલ્લેખ એક મોટી ક્રાંતિ–કહો કે પછી તેને ભ્રાંતિ કહો–ઉત્પન્ન કરે તેવો છે.

ગુપ્ત સંવત્‌નો પ્રારંભ ક્યારે અને કોનાથી થયો એ વિષે અનેક વિદ્વાનોએ અનેક કલ્પનાઓ કરી છે, પણ એ વિષે નિર્ણાયક મત સ્થાપન કરવાનું માન ડૉ૦ જે૦ એફ૦ ફ્લીટના ભાગે જાય છે. ગુપ્તકાલીન શિલાલેખોના સંગ્રહ-ગ્રંથનું સંપાદન કરતી વખતે, એ પ્રખર પુરાવેત્તાએ, આ વિષયમાં અત્યંત શ્રમ લઈ, ભિન્ન ભિન્ન દૃષ્ટિએ ઘણો સૂક્ષ્મ ઊહાપોહ કર્યો અને અનેક પ્રમાણોના અસ્તવ્યસ્ત અંકોડા જોડી નિર્ણીત કર્યું કે વિ૦ સં૦ ૩૭૬ અને ઇ૦ સ૦ ૩૧૯–૨૦ માં ગુપ્તવંશીય પ્રથમ ચંદ્રગુપ્તના રાજ્યારંભ સાથે એ સંવત્‌નો પ્રારંભ થયો હતો. વિદ્વાનોના મોટા ભાગે ડૉ૦ ફ્લીટના એ નિર્ણયને ઘણા આદર સાથે વધાવી લીધો અને એ નિર્ણયાનુસાર, શિલાલેખો, તામ્રપત્રો, મુદ્રાઓ, અને સાહિત્ય ગત ઉલ્લેખો–અવતરણો ઇત્યાદિકમાં નિર્દિષ્ટ અનેક ઐતિહાસિક વ્યક્તિઓ અને ઘટનાઓનો કાલક્રમ ગોઠવવાનો સિદ્ધાંત નિશ્ચિત કરવામાં આવ્યો. ભારતીય ઇતિહાસના સુમર્મજ્ઞ અને સુવ્યવસ્થાપક ડૉ૦ વીન્સેન્ટ એ૦ સ્મીથે, પોતાના 'અર્લી હિસ્ટરી ઑફ ઇન્ડિઆ' નામના સુપ્રતિષ્ઠિત પુસ્તકમાં ડૉ૦ ફ્લીટના એ નિર્ણયને, નીચે આપેલા પ્રોત્સાહક શબ્દોવડે, અસંદિગ્ધભાવે માન્ય કરી લીધો.

"અનેક અસંબદ્ધ કલ્પનાઓનો જે વિષય બની રહ્યો હતો તે ગુપ્ત સંવત્‌ના સંબંધમાં ડૉ૦ ફ્લીટે કરેલા નિર્ણયથી પ્રગતિના પથમાં એક મોટું પગલું ઉમેરાણું છે. એ સંવત્‌નું પ્રથમ વર્ષ ઇ૦ સ૦ ૩૧૯–૨૦ ની બરાબર છે એ પ્રકારના એમના સંવિધાને એક સૌથી અગત્યના રાજવંશના કાલક્રમનું સ્થાન નિશ્ચિત કરી દીધું છે અને એ અનવસ્થાને વ્યવસ્થિત ક્રમમાં ગોઠવી દીધી છે."[1]

---

૧ અર્લી હિસ્ટરી ઑફ ઈન્ડિઆ. પૃ૦ ૨૦

ડૉ૦ ફ્લીટે આ વિષયનો ઉકેલ લાવવા માટે જે અસાધારણ અન્વેષક બુદ્ધિ અને અથક પરિશ્રમશીલતા દાખવી છે, તે માટે ભારતીય ઇતિહાસનો પ્રત્યેક અભ્યાસી વિદ્વાન્ તેમનો પૂર્ણ કૃતજ્ઞ છે. પરંતુ, જેમ જેમ એ વિષયમાં વધારે અન્વેષણ કરવામાં આવે છે તેમ તેમ એ નિર્ણયમાં કેટલીક વિશિષ્ટ ભ્રાંતિઓ જણાતી જાય છે અને તેથી આપણા દેશના પ્રાચીન ઇતિહાસની કેટલીય આંટીઓનો ઉકેલ બિલ્કુલ થતો નથી, એ વાત પણ આપણે ભૂલવી જોઇતી નથી. તેમના કરેલા નિર્ણય પ્રમાણે ગણતરી કરતાં, કેટલીક અગત્યની ઐતિહાસિક કાલક્રમની વિગતો તેથી બહુ વિરુદ્ધ જાય છે અને કેટલીક અવનવી ભ્રાંતિઓ ઉત્પન્ન થાય છે. એટલે તેમનો એ નિર્ણય સર્વથા નિર્ભ્રાંત નથી એવું આપણે પ્રામાણિકપણે પ્રકટ કરવું પડે છે.

ગુપ્ત સંવત્, ગુપ્ત રાજવંશ સાથે સંબંધ ધરાવે છે એ તો સ્વતઃ સિદ્ધ છે; પણ એ વંશના કયા રાજાએ, કયે સમયે, એ સંવત્નું આદિ પ્રવર્તન કર્યું તે વિષેનો કોઈ લેખગત કે ગ્રંથગત પુરાવો હજી સુધી ઉપલબ્ધ થયો નથી. આને લગતો સમય-નિર્દેશક જે કાંઈ એકમાત્ર ઉલ્લેખ મળી આવે છે તે પ્રસિદ્ધ આરબ ગ્રંથકાર અલ્બે-રુનીનો છે. એ વિદેશી વિચક્ષણ ગ્રંથકારે પોતાના સુપ્રસિદ્ધ 'ભારત' ઉપરના ગ્રંથમાં, વલભી અને ગુપ્ત સંવતના પ્રારંભસમય માટે આ પ્રમાણે એક ટુંકી નોંધ કરેલી છે–

"વલભી પુરના રાજા વલભના નામથી વલભી સંવત્ પ્રચારમાં આવ્યો, જેની શુરુ-આત શક સં૦ ૨૪૧ પછી થઈ હતી. ગુપ્ત સંવતના વિષયમાં લોકોનું કહેવું છે કે ગુપ્ત લોકો દુષ્ટ તેમ જ પરાક્રમી હતા અને તેમનો નાશ થઈ ગયા પછી પણ લોકો તેમના ચલાવેલા સંવતનો વ્યવહાર કરતા રહ્યા હતા. અનુમાન થાય છે કે એમાંનો જ વલભ એ નામનો અંતિમ રાજા હશે. કારણ કે વલભી સંવત્ની માફક ગુપ્ત સંવત્ પણ, શક સંવત્ ૨૪૧ પછી શુરુ થયો હતો. વિક્રમ સંવત્ ૧૦૮૮, શક સંવત્ ૯૫૩ અને વલભી તથા ગુપ્ત સંવત્ ૭૧૨ એ બધા પરસ્પર સમાન વર્ષ થાય છે." (અલ્બેરુની રચિત 'ઇન્ડિયા' નામનું પુસ્તક, ઇંગ્રેજી ભાષાંતર, ભાગ ૨, પૃ૦ ૭.)

અલ્બેરૂનીના આ ઉલ્લેખના આધારે જ ગુપ્ત સંવત્નો પ્રારંભ, વિ૦ સં૦ ૩૭૬ તથા ઈ૦ સ૦ ૩૧૯–૨૦ માં નિર્ણીત કરવામાં આવ્યો છે, એ આપણે સ્પષ્ટ જોઈ શકીએ છીએ. અલ્બેરુનીના લેખથી એ પણ જણાય છે કે, વલભી નામનો જે સંવત્, કાઠીયાવાડના કેટલાક ભાગમાં એક કાળે પ્રચલિત હતો અને જેનો નિર્દેશ વેરાવલમાં મળેલા અર્જુનદેવના સમયના વિ૦ સં૦ ૧૩૨૦ ના લેખમાં મળી પણ આવે છે, તે ૧૧ મા સૈકામાં પણ સુપ્રસિદ્ધ હતો. વેરાવલવાળા એ લેખમાં "રસૂલ મહંમદ સંવત્ ૬૬૨, વિ૦ સં૦ ૧૩૨૦, વલભી સંવત્ ૯૪૫ અને સિંહ સંવત્ ૧૫૧" એમ એક સાથે ૪ સંવતોનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે જેથી એ ચ્યારે સંવતો વચ્ચે પરસ્પર કેટલાં વર્ષોનું અંતર છે તે પણ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે, એમાં જણાવેલો રસૂલ મહંમદ સંવત્ તે ઇસ્લામી હીજરી સન્ છે; અને સિંહ સંવત્ તે સિદ્ધરાજ જયસિંહનો ચલાવેલો સંવત્ છે. વલભી સંવત્ માટે અલ્બેરુનીએ જે કહ્યું છે કે શક સંવત્ ૨૪૧ (અર્થાત્ વિક્રમ સંવત્ ૩૭૬) વર્ષે એનો પ્રારંભ થાય છે, તે કથન વેરાવલવાળા એ

લેખથી સત્ય ઠરે છે. અલ્બેરુનીના કથનના આધારે જ એ પણ ચોક્કસ માનવામાં આવ્યું કે—વલભી સંવત્ અને ગુપ્ત સંવત્ બંને એક જ સમયમાનના નિર્દેશક છે અને તેથી તેમનું મૂળ પણ એક જ હોવું જોઈએ. એ ઉપરથી વિદ્વાનોએ એવી કલ્પના કરી કે—વલભીના મૈત્રકો પ્રથમ ગુપ્તોના સામંતો હતા અને તેથી તેમણે પોતાના લેખોમાં એ ગુપ્ત સંવત્‌નો વ્યવહાર ચાલુ કર્યો હતો. ગુપ્ત સામ્રાજ્યનું પતન થયાં પછી, પાછળથી તેઓ સ્વતંત્ર બન્યા, પણ વ્યવહારરૂઢ બનેલા એ સંવત્‌નો તેમણે ઠેઠ સુધી પૂર્વની માફક જ ઉપયોગ ચાલુ રાખ્યો. તેમના રાજ્યકારભારમાં ચાલુ રહેલો એ સંવત્ તેમના રાજ્યના નાશ થયાં પછી પણ લોકોમાં તદ્વત્ પ્રચલિત રહ્યો અને તેથી લોકો એને પાછળથી વલભી સંવત્‌ના નામે ઓળખવા લાગ્યા. આ કલ્પનાના આધારે વલભી સંવત્ અને ગુપ્ત સંવત્ બંને એક જ છે એમ સિદ્ધ કરવામાં આવ્યું અને તેથી ગુપ્ત સંવત્‌નો પ્રારંભ વિ૦ સં૦ ૩૭૬ માં નિર્ધારિત કરવામાં આવ્યો. પરંતુ, આપણે ઉપર જોયું તેમ, આપણા આ પ્રસ્તુત તામ્રપત્રમાં તો વિક્રમ સંવત્‌ની જગ્યાએ જ ગુપ્ત સંવત્ લખવામાં આવ્યો છે, અને તેથી આ બંને સંવતો એક જ કાલમાનના નિર્દેશક હોવાથી બંને એક જ છે એ સ્વતઃ સિદ્ધ થાય છે. આ ઉલ્લેખ અલ્બેરુનીના ગ્રંથ પહેલાં લગભગ ૫૫ વર્ષ જેટલો જૂનો છે અને તેના કથનનો સ્પષ્ટ બાધક છે. આથી તેણે એ બે સંવતો વચ્ચે જે ૩૭૬ વર્ષનું અંતર બતાવ્યું છે તે ચિંતનીય ઠરે છે. ડૉ૦ ફ્લીટની ગુપ્ત સંવત્‌ની બધી સ્થાપના અલ્બેરુનીના કથનના આધારે જ કરવામાં આવેલી હોવાથી એ બધી સ્થાપના પણ આ રીતે ચિંતનીય ઠરે છે અને તે સાંગોપાંગ પુનર્વિચારણા માંગી લે છે.

ગુપ્ત સંવત્ વિષે પ્રાપ્ત થએલા પ્રસ્તુત ઉલ્લેખના સબબે આ આખો વિષય બહુ જટિલ બની જાય છે, અને એના અંગે અનેક નવીન સમસ્યાઓ અને નવીન કલ્પનાઓ ઉત્પન્ન થાય છે. આ વિષયના મર્મજ્ઞ વિદ્વાનોને આ પ્રશ્ન ઉપર ગંભીર લક્ષ્ય આપવા હું સાગ્રહ નિવેદન કરું છું.

साहित्य समालोचन

*

राजस्थानी – राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, का त्रैमासिक मुखपत्र

[संपादक – शम्भूदयाल सकसेना, साहित्यरत्न; अगरचन्द नाहटा । प्रकाशक – रघुनाथप्रसाद सिंहानिया, विद्याभूषण, विशारद, मंत्री राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता । आकार क्राउन साईज़ (२०×३०) अष्टपत्री । वार्षिक मूल्य, सर्वसाधारणके लिये ४ रूपया,– सार्वजनिक संस्थाओंके लिये ३ रूपया ।]

राजस्थान अर्थात् **राजपूताना** भारतवर्षका एक रत्नभूत प्रदेश है । वह सब तरहसे रत्नोंकी एक अपूर्व खान है । उसका भूगर्भ सोना, चांदी, तांबा, लोहा, हीरा, माणिक आदि सभी मूल्यवान् धातुओंसे भरा पडा है । उसके पहाड और जंगल असंख्य तरहकी अमूल्य वनस्पतियां, औषधियां, जडी-बूटियां और सब प्रकारके वृक्षोंसे आच्छादित हैं । उसके मैदान सब जातके धानोंके उत्कृष्ट उत्पादक और रस-कस परिपूर्ण हैं । उसके जल-वायु जीवनपोषक, स्वास्थ्य-वर्द्धक और बलदायक हैं । राजस्थानका पशुधन सारे भारतमें एक उत्तम कोटिका और आदर्शरूप माना जाता है । भारतीय आर्य जनताकी दृष्टिमें साक्षात् देवस्वरूप समझे जाने वाले और देवता-ही-के-समान पूजे जाने वाले गौ-वृषभ, जैसी श्रेष्ठ आकृति और प्रकृति वाले राजस्थानमें देखे जाते हैं वैसी जातिके भारतमें अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देते । हमारे प्रतापी पूर्वज युगातीत कालसे, मरुस्थलके धोरी वृषभकी महती प्रशंसा करते चले आये हैं । यह वृषभ हमारे राष्ट्रके कल्याणकर देव 'शिव' का वाहन है – यह हमारे राष्ट्रका 'नन्दी' (मंगल कर) राष्ट्रवाहक है ।

और राजस्थानके निवासी मनुष्योंका तो कहनाही क्या – उन्होंने तो अपने सद्गुणोंके कारण संसारके इतिहासमें एक विशिष्ट नाम प्राप्त किया है । भारतकी अभिजातीय महत्ता और आर्यत्वकी स्वाभिमानिताका जैसा रक्षण, इस निकटपूर्व इतिहास कालमें, राजस्थानियोंने किया है वैसा और किसीने नहीं किया । अपने स्वधर्म और स्वदेशकी रक्षाके निमित्त जैसा महान् उत्सर्ग राजस्थानके वीरोंने किया वैसा संसारमें शायद ही अन्य किसीने किया हो । भारतके और सब प्रधान प्रदेश जब शता-

ब्दियां पूर्व ही अपनी स्वतंत्रता संपूर्णतः खो बैठे हैं; तब, राजस्थानकी सन्तान, उस स्वतंत्रताको, अब तक भी किसी-न-किसी स्वरूपमें निभा रही है। यह राजस्थान-ही-के सत्पुत्रोंके सर्वस्व त्यागका सुफल है कि आज भी हम राजपूतानेके गाँव-गाँवमें, उन प्राचीन देव मन्दिरोंको, अखंड रूपमें खडे देख रहे हैं, जो हमारी संस्कारिताके केन्द्र और कलाके अद्वितीय स्मारक हैं। इन देवमन्दिरोंके दिव्य दर्शन कर, हम अपने उन पूर्वजोंकी लोकोत्तर धर्मप्रवणता और दानशीलताका कुछ निदर्शन कर पाते हैं। शैवोंके एकलिंगेश्वर, वैष्णवोंके श्रीनाथजी और जैनोंके ऋषभदेव, जो विधर्मि म्लेच्छोंके पाप स्पर्शसे अद्यापि अस्पृष्ट रह सके, वह राजस्थान-ही-की सुकर्मी सन्तानोंके स्वर्गीय बलिदानका परिणाम है। काशीके विश्वेश्वरकी, सोरठके सोमेश्वरकी और उज्जयिनीके महाकालेश्वरकी दीपक-ज्योति, इस पिछले एक हजार वर्षोंमें, म्लेच्छोंके दुष्ट आक्रमणोंके कारण अनेकों वार बुझ चुकी; परंतु, राजस्थानके राष्ट्रदेव एकलिंगेश्वरकी वह ज्योति, आज कमसे कम तेरह सौ वर्षसे तो, अखंड रूपमें जल रही है। इस दुनियामें इतनी पुरानी अखंड देवज्योति और कहीं नहीं जलती होगी। इस ज्योतिको खण्डित न होने देनेके लिये राजस्थानके कितने किशोर, युवा और वृद्ध वीरवरोंने, हँसते हँसते, युद्धकी वेदीमें अपने प्राणोंकी आहुती दे दी; और उन वीरोंकी कितनी सती मातायें, बहिनें, पुत्रियां और पत्नियां इसके लिये मंगल गीत गाती हुई अग्निकी भयंकर ज्वालामें स्वाहा हो गई – इसकी गिनती कौन कर सकता है।

राजस्थान निवासियोंका वह जातीय–राष्ट्रीय–जीवन इस प्रकार केवल वीररससे ही परिपूर्ण मात्र न था। वह जीवन तो उसी तरह स्नेह, प्रेम, हास्य, करुण, वत्सल और शान्त आदि अन्यान्य उत्तम रसोंसे भी परिपूर्ण था। राजस्थानके वीरजीवनकी इस अद्भुत गाथाकी तरह, उसके स्नेहजीवन, शान्तजीवन, करुणजीवन आदिकी गाथायें भी वैसी ही अद्भुत और रोमांचक हैं। राजस्थानके महाजनोंमें वीर, धीर, उदात्त और ललित आदि सभी प्रकारके उत्तम जीवनके आदर्शभूत, अनेक पुरुषपुंगव हो गये हैं। इनमेंसे, राजस्थानके वीरजीवनका कुछ परिचय तो, संसारको महामति इंग्रेज कर्नल जेम्स टॉडके 'राजस्थान' इतिहासके प्रकट होनेके प्रारंभसे ही होना शुरु हो चुका था; और वह अब विशेषरूपमें, राजस्थानके अद्वितीय इतिहासज्ञ और विद्वद्रत्न म० म०

पंडितप्रवर श्रीयुत गौरीशंकरजी ओझा लिखित **'राजपूतानेका इतिहास'** नामक महान् ग्रंथरत्नके प्रकाशनसे हो रहा है। लेकिन इस वीरजीवनकी कथाओंके सिवा, राजस्थानियोंके उक्त अन्यान्य रसपरिपूर्ण जीवनकी जो जातीय कथायें हैं उनका परिचय करने-करानेका अभी तक कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं हुआ है। विद्वानोंका लक्ष्य, अभी तक, खास करके, राजवंशोंसे संबद्ध राजकीय इतिहासका संकलन और संशोधन करने तक ही सीमित है। समग्र प्रजाजीवनसे संबद्ध व्यापक इतिहासका अनुसन्धान कर, प्रजाकीय सामाजिक संस्कारों और सामूहिक व्यवहारोंके इतिहासके विषयमें व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करनेकी तरफ अभी तक हमारा कोई प्रयत्न नहीं है। जातीय और राष्ट्रीय जीवनका ठीक ठीक स्वरूप जाननेके लिये, प्रजासमूहके विविध धार्मिकभाव, सामाजिक संस्कार, लौकिक व्यवहार और वैयक्तिक कार्यकलाप इत्यादिके विषयमें हमें खूब अन्वेषण और पर्यालोचन करना चाहिए। राजस्थानमें इस विषयकी साधन-सामग्री अब भी यथेष्ट प्रमाणमें उपलब्ध हो सकती है। राजस्थान इस संपत्तिसे अब भी बहुत कुछ समृद्ध है। लेकिन उसकी यह संपत्ति न उन राजा-महाराजाओंके बड़े बड़े महालयोंमें रक्षित है और न श्रीमान् सेठ-साहुकारोंकी हवेलियों और हाटोंमें संचित है। यह तो दबी पडी है उज्जडप्राय बने हुए गाँवोंके टूटे-फूटे पुराने क्षुद्र घरोंमें। इस संपत्तिका बहुतसा भाग या तो उन घरोंमें रहने वाले अज्ञान और गरीब दीखाई देते वृद्ध नरनारियोंकी लूखी-सूकी जीभमें भरा हुआ है या दुरवस्थ यतियों, ब्राह्मणों और चारणों जैसे भिक्षोपजीवी जनोंके पास, फटे-कटे कपडेके बस्तेमें बन्धे हुए, सडे-गले कागजों और पोथियोंमें लिखा पडा है। इन लोगोंने, चाहे अज्ञानवश ही, आज तक इस संपत्तिको कुछ कामकी समझ कर अंधेरेकी ओटमें जैसे वैसे संभाल रखा। लेकिन हम शिक्षित और संपन्न समझे जाने वाले लोगोंने तो इसको कौडीकी भी किमतकी नहीं समझा और इसकी रक्षाका किंचित् भी प्रयत्न नहीं किया। विदेशीय विभुता, विक्रम, विद्या और विचारोंकी चकाचौन्धमें आ कर हम अपने जातीय जीवनके गौरवको खो बैठे; और हम कौन है और किस दशामें पडे हुए हैं इसका भी हमें ठीक होश नहीं रहा। पर, अब कुछ कुछ हमारी यह मोहनिद्रा दूर होती दिखाई दे रही है और हमें अपनी दशाका कुछ कुछ मार्मिक भान हो रहा है। हम अपनी बेहोशीमें क्या क्या

खो बैठे हैं और हमारी कौन संपत्ति किस तरह नष्ट हो गई है इसका थोडा बहुत खयाल हमें आ रहा है। हमारा प्रथम कर्तव्य अब यह है कि – हम शीघ्र ही अपनी इस जातीय और राष्ट्रीय जीवनसंपत्तिको, जो नाशोन्मुख हो रही है, गाँव गाँवमें भटक कर खोज निकालें और उसका रक्षण करें।

यों तो राजस्थाननिवासी धन – संपत्तिका उपार्जन करनेमें बडे कुशल और साहसी है। इस विषयमें सारे भारतमें इनकी खूब ख्याति है। भारतवर्षके कौने कौनेमें ये इस कामके लिये पहुंचे हुए हैं और सब कहींसे ये सोना-चांदीरूप जड धन संग्रह करके अपने देशमें लाया करते हैं। लेकिन इनको अपने इस सांस्कृतिक जीवनधनकी कोई किंमत नहीं माळूम देती और इस लिये अपने ही घरमें, इस अमोल धनका प्रतिक्षण नाश होते देख, उसके रक्षणका कुछ प्रयत्न नहीं करते। सोना-चांदी जैसी मिट्टीमय धन – संपत्ति तो बिल्कुल मिट्टीके घडे जैसी क्षुद्रस्वरूप और क्षणस्थायी वस्तु है। उद्यमी कुंभार, मिट्टीमेंसे एक दिनमें जैसे सैंकडों घडे बना सकता है, वैसे ही उद्योगी व्यापारी एक दिनमें हजारों-लाखों रूपये पैदा कर सकता है। परंतु जातिके इस संस्कारस्वरूप जीवन-धनके एक-एक कणके सर्जन होनेमें कई युगोंका समय और अनेक आदर्श साधकोंका स्वार्पण अपेक्षित होता है। सोना-चांदी पैदा करने वाले तो रोज हजारों जन्म लेते हैं, लेकिन इस जातीय जीवन-धनका उत्पादन करने वाला तो वर्षोंमें कोई एक ही जन्म लेता है। यह ठीक है कि हमारी परवशताके कारण हमारा सोना-चांदी जैसा क्षुद्र धन भी हमारे देशमेंसे लुप्तप्राय हो गया है और हम आज संसारकी जातियोंमें निर्धनतम दिखाई देते हैं; एवं हमारी यह बाह्य आर्थिक दरिद्रता हमें उस जातीय संपत्तिका रक्षण करनेमें भी असमर्थ बना रही है। तब भी हमें इस संपत्तिका तो प्राणार्पण करके भी रक्षण करना परम आवश्यक है। हमारे जातीय जीवनका प्राणाधार तो यही धन है। इसके नष्ट हो जाने पर फिर हमारे जीवनमें कोई सत्त्व ही क्या रहेगा। जिस दिन हमारे देशमें – हमारी जातिमें हेस्टींग्स् और क्लाइवकी प्रतिमूर्तिसा, कोई कौटिलीय राजनीतिका कुशल ज्ञाता पुरुष पैदा होगा, उसी दिन, हमारा देश सोना-चांदीकी ईंटोंसे फिर भर जायगा। एक प्रताप, एक शिवाजी, एक रणजीतसिंहके अवतार लेते ही, सात समुद्र पार गया हुआ हमारा वह सब सोना-चांदी, मय सूदके, वापस आ सकता है। लेकिन नष्ट हुए इस संस्कार धनको कौन कहांसे वापस

ला सकता है? । अगर हमारे पास हमारा यह जातीय धन विद्यमान है और इसके संरक्षणकी हमने यथेष्ट सावचेती रखी तो – वह दिन अब दूर नहीं है, जिसमें हमारा इस आर्थिक दरिद्रता और राजकीय परवशतासे उद्धार होने वाला है । हमारी दृष्टिमें तो देशके वे ही पुरुष सच्चे रक्षक और उद्धारक हैं जो प्रजाकी इस जीवन-संपत्तिकी यथाशक्ति रक्षा करते रहते हैं ।

*

हमें यह देख कर हर्ष होता है कि राजस्थानके इस जातीय जीवनधनके बिखरे हुए अणु-परमाणुओंका संचयन और संगठन करनेकी इच्छासे, कुछ संस्कृतिप्रिय सज्जनों द्वारा कलकत्तेमें, **'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी'** नामक एक संस्थाकी स्थापना की गई है और उसके प्रयत्नके फलस्वरूप यह समालोच्य **'रा ज स्था नी'** नामक त्रैमासिक मुखपत्र प्रकाशित किया जाता है । इस पत्रके नियममें लिख गया है कि – "**राजस्थानी**में राजस्थानी भाषा, साहित्य, पुरातत्त्व, इतिहास, कला एवं संस्कृतिसे संबंध रखने वाली रचनाएँ प्रकाशित होंगीं । आधुनिक राजस्थानी भाषामें लिखी हुई नवीन रचनाओंको भी स्थान दिया जायगा ।" इस पत्रके तीसरे वर्षका पहला अंक हमारे सामने हैं, जिसमें पत्रके बतलाए हुए उक्त उद्देशके समर्थक और परिचायक विविध प्रकारके उत्तम लेख – निबन्धादि हैं ।

लेखादिके विभाग इस प्रकार किये गये हैं –

(१) निबन्धमाला – इस शीर्षक वाले विभागमें कुछ स्वतंत्र लेख – निबन्ध दिये गये हैं ।

(२) प्रकीर्णिका – इस शीर्षकमें कुछ छोटे छोटे टिप्पण (नोटस्) जैसे लघु लेख दिये गये हैं ।

(३) आधुनिक राजस्थानी साहित्य – इस विभागमें राजस्थानके आधुनिक कवियोंकी वैसी कृतियां दी गई हैं जो पुरानी कृतियोंका आदर्श रखती है ।

(४) प्राचीन राजस्थानी साहित्य – इस खंडमें मीरांके कुछ अप्रकाशित पद्य, वीर रसके दोहे, आबू रास जैसी प्राचीन पद्य कृतियां प्रकाशित की गई हैं ।

(५) लोक साहित्य – इस शीर्षकके साथ कुछ गीत, दूहा, कहावतां आदिका संग्रह किया गया है ।

(६) अभिलेख – इसमें कुछ प्राचीन मंदिर और मूर्तियों पर खुदे हुए लेख प्रकाशित किये गये हैं ।

(७) हस्तलिखित ग्रंथोंका विवरण – इसमें 'जैतसी रौ रासौ' का संक्षिप्त परिचय लिखा गया है ।

(८) राजस्थानके रत्न – इसमें म० म० श्रीमान् ओझाजीका जीवनचरित्र आलेखित है ।

इनके उपरांत आलोचना, संपादकीय निवेदन इत्यादि कुछ शीर्षक हैं ।

मुख्य निबन्धोंमें, साहित्यवाचस्पति, महामहोपाध्याय, रायबहादुर, डाक्टर श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा डी. लिट्. अजमेरका, लिखा हुआ **"मध्य-कालीन भारतका एक अज्ञात राजवंश"**; श्री नरोत्तमदास स्वामी एम्. ए. विशारद, विद्यामहोदधि, बीकानेर लिखित **"राजस्थानी भाषा और साहित्य"**, श्रीदशरथ शर्मा एम्. ए. बीकानेर लिखित **"देवानां प्रिय इति च मूर्खे"** इस पर एक टिप्पणक; श्रीजगदीशसिंह गहलोत, इतिहासज्ञ, जोधपुर, लिखित **"राजपूतानेके वातालार्थ"** आदि प्रबन्ध विशेष पठनीय हैं ।

प्राचीन कृतिसंग्रहमें श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा संगृहीत **'आबूरास'** विशेष महत्त्वका है । वि० सं० १२८९ में इस रासकी रचना की गई थी । इसमें, महामात्य वस्तुपाल–तेजपालने आबू पहाड़ पर, शिल्पकलाका अद्भुत निदर्शक, जो जैन मंदिर बनवाया है उसके बनानेका बहुत कुछ दृष्टि-गोचर किया हुआ वर्णन दिया मालूम देता है । ऐतिहासिक वृत्तांतकी दृष्टिके सिवा, भाषाकी दृष्टिसे भी यह कृति बहुत अच्छी है । इसकी भाषा वह प्राचीन [पश्चिमीय] राजस्थानी है, जो उस समय, गुजरात और राजपूतानेके बहुतसे भागमें एकसी बोली और समझी जाती थी ।

इस पत्रके एक संपादक श्रीयुत नाहटाजी इस विषयके बडे प्रेमी, उत्साही और अध्यवसायी हैं । स्वयं बहुत बडे कारोबारवाले व्यवसायी हो कर भी, इतिहास संशोधनमें खूब व्यस्त रहते हैं और सतत साहित्यसेवा किया करते हैं । इन्होंने अपने घर पर बडा भारी प्राचीन साहित्य संग्रह किया है । जैन

ग्रन्थभंडारोंके साथ घनिष्ठ संपर्क होनेके कारण, इनको इस संशोधन कार्यमें और भी बहुतसी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हो कसती है, जो औरोंके लिये प्रायः दुष्प्राप्यसी है। हमको भी ये पुराने ग्रंथादि भेज कर सदैव सौहार्दपूर्ण सहायता देते रहते हैं – जिसके लिये हम इनके बहुत कृतज्ञ हैं।

हमारी कामना है कि, इन सुयोग्य संपादकोंके समुचित प्रयत्नसे, यह 'राजस्थानी' भविष्यमें राजस्थानके इस अमूल्य जीवनधनका अच्छा संचय कर उसका लोकभोग्यके रूपमें प्रसार करे और अपना उद्देश सफल करे।

– जिन विजय मुनि

*

प्रमाण-मीमांसाः—(स्वोपज्ञवृत्तिसहित) મૂળકાર કલિકાલ સર્વજ્ઞ શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય, વિસ્તૃત હિન્દી ટિપ્પણો સાથે સંપાદન કરનાર પંડિત સુખલાલજી સંઘવી. પ્રધાનાધ્યાપક: જૈનશાસ્ત્રપીઠ–હિન્દુ વિશ્વવિદ્યાલય, બનારસ. સહસંપાદક–પંડિત મહેન્દ્ર કુમાર, ન્યાયશાસ્ત્રી, જૈનદર્શનાધ્યાપક સ્યાદ્વાદ વિદ્યાલય, બનારસ; તથા પંડિત દલસુખ માલવણિયા, ન્યાયતીર્થ, જૈનાગમ અધ્યાપક–હિન્દુ વિશ્વવિદ્યાલય, બનારસ. પ્રકાશનકર્ત્તા–સંચાલક–સિંઘી જૈન ગ્રન્થમાલા. અમદાબાદ–કલકત્તા. મૂલ્ય રુ૦ ૫–૦–૦

સિંઘી જૈન ગ્રન્થમાલાના સમર્થ સંચાલક અને સિદ્ધ હસ્ત વિદ્વાન મુનિશ્રી જિન વિજયજી દ્વારા, પંડિત પ્રવર સુખલાલજીના પ્રાંજળ અને મૌલિક વિદ્વત્તા ભર્યા ટિપ્પણ સાથે અને પંડિત મહેન્દ્રકુમાર ન્યાયશાસ્ત્રી તથા પંડિત દલસુખ ભાઈ માલવણિયા ન્યાયતીર્થના સહયોગથી બહાર પડેલી, આચાર્યશ્રી હેમચંદ્રની પ્રમાણ મીમાંસા નામની અંતિમ કૃતિને વધાવતાં અમને ઘણું ગૌરવ અને હર્ષ થાય છે. ન્યાયશાસ્ત્રમાં આ ગ્રંથ મહત્ત્વનું સ્થાન ભોગવે છે. મૂળ તો આ ગ્રન્થ પાંચ અધ્યાયમાં હતો, અને એ પ્રત્યેક અધ્યાયમાં એકાધિક આહ્નિક હતાં. એ બધાં ઉપર આચાર્યની સ્વોપજ્ઞવૃત્તિ હતી. કમભાગ્યે આ ગ્રન્થ આજે આપણને સંપૂર્ણ સ્વરૂપમાં નથી મળતો. બે આહ્નિક વાળો પ્રથમ અધ્યાય અને એક આહ્નિક જેટલો બીજો અધ્યાય—એટલો ભાગ માત્ર જ આ ગ્રંથનો અત્યારે ઉપલબ્ધ થાય છે. "अनुहेमचन्द्राः संग्रहितारः" એ સૂચનાનુસાર આચાર્ય હેમચંદ્રની સંગ્રહ કરવાની અદ્દ્ભુત શક્તિ, વિષયને અસન્દિગ્ધપણે રજુ કરવાની અમોઘ શૈલી અને વસ્તુને ટુંકવી લાક્ષણિક રીતે મૂકવાની એમની વિશિષ્ટતા આ ગ્રન્થમાં પણ ખાસ તરી આવે છે. આચાર્ય હેમચંદ્રની જૈનન્યાય ઉપરની બે બત્રીશીઓ અને પ્રમાણમીમાંસા નામની બે જ કૃતિઓ અદ્યાવધિ જાણવામાં આવી છે. વિસ્તૃત ગ્રન્થ વાંચવાનો જેને કંટાળો હોય તેને માટે આ ગ્રંથો ખૂબ જ માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. પ્રમાણમીમાંસાની સ્વોપજ્ઞવૃત્તિમાં સૂત્રનું જે લક્ષણ પોતે બાંધ્યું છે તે આચાર્યના સૂત્રોને તો ખાસ લાગૂ પડે છે. "अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवत् विश्वतो मुखम्। अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥" ગૌતમના ન્યાયસૂત્રનું આછું પ્રતિબિંબ આ

સૂત્રોમાં આપણને જરૂર સાંપડે છે પરંતુ તે આંધળું અનુકરણ નથી. એ સૂત્રોમાં વૈલક્ષણ્ય પણ છે. ગૌતમે ન લીધેલાં એવાં પ્રમાણ, અનધ્યવસાયાદિ ઘણા ઘણા વિષયો આચાર્ય હેમચંદ્રે પોતાના આ ગ્રંથમાં ચર્ચ્યા છે. ગૌતમના મતે હેત્વાભાસ પાંચ છે. આ૦ હેમચંદ્ર તે પાંચેયનો ત્રણમાં અંતર્ભાવ કરે છે. સમાસરૂપે કહેવાની આ પદ્ધતિ આચાર્ય હેમચંદ્રની પોતીકી જ છે. વાદ, તર્કના લક્ષણ ઇત્યાદિમાં ન્યાયસૂત્રકારથી સહેતુક જૂદા પડવાની હિંમતપણ આચાર્ય હેમચંદ્રમાં છે. ટૂંકમાં મૂળકારવિષે એટલું જ કહેવું બસ થશે કે અતિઅલ્પ મહેનતે અગાધ જ્ઞાનનો પરિચય કરાવનાર આ ગ્રન્થ વાદિદેવસૂરિના પ્રમાણનયતત્ત્વલોકાલંકાર પછી બીજે નંબરે આવે તેમ છે.

આ પ્રમાણમીમાંસાના પ્રધાન સંપાદક પંડિતવર્ય સુખલાલજીના પ્રગાઢ પાંડિત્ય વિષે હું શું અભિપ્રાય ઉચ્ચારૂં? "હાથ કંકણકો આરસીકી ક્યા જરૂરત?" એ હિન્દી કથનાનુસાર અભ્યાસી પોતે જ પુસ્તકદ્વારા નિર્ણય કરી લેશે. પંડિતજીનું જૈનદર્શન વિષયક જ્ઞાન જેટલું ઊંડું છે તેટલું જ વેધક અને વિશાળ છે. તેઓ શ્રીની સમન્વયાત્મક દૃષ્ટિ તો વિરળને જ સાંપડે છે. તેમના તુલનાત્મક જ્ઞાન, ગંભીર ચિંતન અને તલસ્પર્શી અભ્યાસનો પરિચય "સન્મતિ તર્ક"ના સંપાદન દ્વારા આપણને થઈ ચૂક્યો છે. છતાં આ સંપાદનમાં મને જે વસ્તુ ખાસ આકર્ષી રહી છે તે એઓશ્રીએ એમાં અખત્યાર કરેલી મૌલિક પદ્ધતિ છે. આ ગ્રન્થ ઉપર પંડિતજીએ જે ટિપ્પણ લખ્યું છે તે તો મારા નમ્ર મત પ્રમાણે આચાર્ય હેમચંદ્રના મૂળ ગ્રંથ કરતાં પણ ચ્હડી જાય તેવું છે. આ ટિપ્પણોમાં સૂત્રને સમજાવવાની જ માત્ર ચેષ્ટા કરવામાં આવી હોય એમ નથી; પરંતુ આ વિચાર મૂળ કોનો, એની ઉત્પત્તિ, વિકાસ–હ્રાસ, ખંડન–મંડન વગેરેનો જે ઐતિહાસિક પરિચય એમણે કરાવ્યો છે, તે તો અત્યાર સુધી કોઇએ કરાવ્યો હોય એવું મારી જાણમાં નથી (સરખાવો પૃષ્ઠ ૨. પંક્તિ ૨૦; પૃષ્ઠ ૪. પંક્તિ ૧૬; પૃષ્ઠ ૬. પં. ૧; પૃષ્ઠ ૭. પં. ૭; પૃષ્ઠ ૧૦. પં. ૧૪; પૃષ્ઠ ૧૪. પં. ૫; પૃષ્ઠ ૪૫. પં. ૨૦; પૃષ્ઠ ૫૩ પં. ૬; પૃષ્ઠ ૬૪. પં. ૨૬; ઉપર મૌલિક ભાષા ટિપ્પણી. આ તો માત્ર નમુના જ આપ્યા છે. બાકી તો આખો ગ્રન્થ મૌલિક ભાષા ટિપ્પણીઓથી ભરપૂર છે). આ સંપાદન પોતાના જ ઢંગનું, નિરાળું, અને ઘણું જ પાંડિત્યપૂર્ણ છે. અને તેથી વિદ્વદ્વર્ગમાં યથેષ્ટ આદરને પાત્ર થશે, એવી આશા રાખવી એ વધારે પડતું નથી. તદુપરાંત, પંડિતજીએ આ ગ્રન્થના સંપાદનમાં, પ્રમાણભૂત અને અંતિમવચન ગણાતા શેર બૅટ્સ્કી જેવા વિદ્વાનોના "બુદ્ધિસ્ટ લૉજીક" જેવા ગહન ગ્રન્થોના પણ આધારો ટાંકયા છે. (જુઓ પૃષ્ઠ ૨. પંક્તિ ૨૦ ઉપરનું ભાષાટિપ્પણ). ઉત્તરાવસ્થામાં પ્રવેશી ચુકેલા પંડિતજી પોતાના અગાધ જ્ઞાન અને અણમોલ અનુભવના, પં. મહેન્દ્રકુમાર શાસ્ત્રી અને પંડિત દલસુખભાઈ માલવણિયા જેવા જિજ્ઞાસુ યુવાનોને વારસદાર બનાવવા જે સમયોચિત દીર્ઘદૃષ્ટિ બતાવી છે, તે પણ આવકારદાયક છે.

સુંદર છપાઈ અને સારા ગેટ–અપ માટે સંચાલક મહોદયને જેટલાં અભિનંદન આપીએ તેટલાં થોડાં છે. અને એમ છતાં પાંચ રૂપીયા જેટલી સ્વલ્પ કિંમત રાખી છે તે અન્ય ગ્રન્થમાળાઓ માટે ખાસ ઉદાહરણ લેવા લાયક છે.

અ૦ સ૦ ગોપાણિ, એમ. એ.

भारतीय विद्या भवन

*

योजना, स्थापना अने कार्यप्रवृत्ति

*

[प्रथम वार्षिक वृत्तान्त]

भारतीय विद्या भवन

*

वर्तमान कार्यवाहक समिति

[નવેંબર ૧૯૩૮ થી ઑક્ટોબર ૧૯૪૦]

સ્થાપક-પ્રમુખ

શ્રી **કૅ૦ મા૦ મુનશી** બી.એ એલએલ. બી.: એમ.એલ એ.
ભૂતપૂર્વ ગૃહસચિવ-મુંબઈ; સીન્ડીકેટ-મુંબઈ યુનિવર્સિટી; પ્રમુખ-ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ્, મુંબઈ

ઉપપ્રમુખ

નામદાર, **ન્યાયમૂર્તિ શ્રી હ૦ વ૦ દિવેટીયા,** એમ.એ એલએલ.બી.
જજ, હાઇકોર્ટ, (મુંબઈ); ફેલો, મુંબઈ યુનિવર્સિટી.

મંત્રીઓ

શ્રી **ત્રિકમદાસ દ્વારકાદાસ,** સોલીસીટર, મુંબઈ

શ્રી **ડૉ: મણિલાલ પટેલ** પીએચ.ડી. (માર્બુર્ગ) ભૂતપૂર્વ અધ્યાપક-વિશ્વભારતી શાંતિનિકેતન; ડિરેક્ટર અને સંસ્કૃત તથા તુલનાત્મક ભાષાશાસ્ત્રના અધ્યાપક-મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ, મુંબઈ.

કોષાધ્યક્ષો

શ્રી **પ્રાણલાલ દેવકરણ નાનજી,** મુંબઈ

શ્રી **વસંતરામ જમીઅતરામ.** બી.એ એલએલ.બી., મુંબઈ.

સભ્યો

દિ૦ બા૦ **કૃષ્ણલાલ મોહનલાલ** ઝવેરી. એમ.એ: એલએલ.બી
ભૂતપૂર્વ જજ-હાઈકોર્ટ, મુંબઈ; સીન્ડીકેટ-મુંબઈ યુનિવર્સિટી.

ડૉ૦ **આનંદશંકર બાપુભાઈ ધ્રુવ.** એમ.એ; એલએલ બી; ડી. લીટ્
ભૂતપૂર્વ પ્રો વાઈસ ચેન્સેલર કાશી હિન્દુ વિશ્વવિદ્યાલય. (અમદાબાદ)

રાવ બહાદુર **ચુનીલાલ હરિલાલ સેતલવડ** સી આઈ ઈ; બાર-એટ-લો;
ભૂતપૂર્વ ચીફ પ્રેસીડેન્સી મેજીસ્ટ્રેટ, મુંબઈ

શ્રી **મુંગાલાલ ગોએન્કા,** મુંબઈ.

શ્રી **ઉમાદત્ત નેમાણી.** મુંબઈ.

શ્રી **મથુરાદાસ વિસનજી,** મુંબઈ

શ્રી **ચુનીલાલ ભાઈચંદ મહેતા,** ભૂતપૂર્વ શેરીફ, મુંબઈ.

શ્રી **લક્ષ્મીદાસ ગોવર્ધનદાસ,** ગોકુળદાસ તેજપાળ, મુંબઈ.

શ્રી **સંગજી સુંદરજી,** મુંબઈ.

શેઠ **ચત્રભૂજ ગોરધનદાસ.** જે.પી, મુંબઈ.

શ્રી **મુનિ જિનવિજયજી**—ભૂતપૂર્વ આચાર્ય-પુરાતત્ત્વમંદિર, ગુજરાત વિદ્યાપીઠ; સિંઘી જૈન જ્ઞાનપીઠ, વિશ્વભારતી, શાંતિનિકેતન; પ્રાકૃત તથા હિન્દી ભાષાના અધ્યાપક-શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ, મુંબઈ.

શ્રી **ડૉ૦ ઈ. જ. તારાપોરવાલા,** બી. એ; પીએચ.ડી.; બાર-એટ-લો;
આચાર્ય-શ્રી એમ એફ કામા એથોર્નન ઇન્સ્ટીટ્યૂટ. અંધેરી.

શ્રી **ઠાકોરદાસ નાનાભાઈ** મર્ચન્ટ એમ.એ.; એલએલ.બી. સોલીસીટર, મુંબઈ.

શ્રી **કાશ્મીરા સિંઘ** એમ.એ.; આચાર્ય-ખાલસા કોલેજ, મુંબઈ.

શ્રી **હરગોવિંદદાસ જીવણદાસ.** જે. પી., મુંબઈ

भारतीय विद्या भवन

*

योजना, स्थापना अने कार्यप्रवृत्ति

[ભવનના ડિરેક્ટર તરફથી, ભવને કરેલી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓની ટૂંકી વાર્ષિક નોંધ]

*

પ્રથમ સત્ર (નવેંબર ૧૯૩૮–માર્ચ ૧૯૩૯)

ભારતીય વિદ્યા ભવનની સ્થાપના મુંબઇમાં વિ૦ સં૦ ૧૯૯૫, કાર્તિક સુદિ પૂર્ણિમાને રોજ (નવેંબર ૭, ૧૯૩૮) થઈ હતી. ભવનના હેતુઓનું સવિસ્તર વર્ણન, એના કાર્યાલય તરફથી, યોજના અને સ્થાપનાના પ્રકાશન પામેલા "મેમોરેન્ડમ્"માં કરવામાં આવ્યું છે.

ટૂંકમાં, એના ઉદ્દેશો આ પ્રમાણે જણાવી શકાય.

(૧) ભારતીય ભાષાઓ અને સંસ્કૃતિના દરેક અંગ–પ્રત્યંગને લગતી પદ્ધતિસર શોધ ખોળ કરવી અને કરાવવી.

(૨) ભારતવર્ષની પ્રાચીન અને અર્વાચીન ભાષાઓ–દા૦ ત૦ સંસ્કૃત, પાલી, અર્ધમાગધી, પ્રાકૃત–મહારાષ્ટ્રી, અપભ્રંશ, રાજસ્થાની, જૂની અને નવી ગુજરાતી, હિન્દી અને અન્ય સંબદ્ધ ભાષાઓ–નાં અધ્યયન, અધ્યાપન અને અન્વેષણ માટે સમુચિત પ્રબંધ કરવો.

(૩) ભારતવર્ષની ઉપર્યુક્ત ભાષાઓનું જે જે સંસ્થાઓ તથા પાઠશાળાઓ, પ્રાચીન પરંપરાથી ચાલતી આવેલી શાસ્ત્રીય પદ્ધતિ અનુસાર અધ્યયન, અધ્યાપન કરાવતી હોય તેમની, યોગ્ય શર્તો સાથે સંચાલના અને વ્યવસ્થા કરવાનું સ્વીકારવું.

(૪) ભારતવર્ષના સાહિત્ય, ઇતિહાસ તથા સંસ્કૃતિનો સંશોધનાત્મક અભ્યાસ કરાવવો તેમ જ તદ્વિષયક પ્રકાશનો બહાર પાડવાં.

(૫) ઉક્ત પ્રકાશનો તેમ જ તદ્વિષયક સ્વતંત્ર મૌલિક ગ્રંથોદ્વારા ગુજરાતી, હિન્દી અને એવી એવી અન્ય ભાષાઓ સમૃદ્ધ બનાવવી.

(૬) ભારતીય સાહિત્ય અને સંસ્કૃતિને લગતાં પુસ્તકોનો સંગ્રહ કરી સંશોધનમાં કામ આવે એવું એક પુસ્તકાલય સંગઠિત કરવું.

(૭) અંગ્રેજી, ગુજરાતી, હિન્દી વગેરે ભાષાઓમાં પુસ્તકો, જર્નલો, અને સામયિકો બહાર પાડવા.

*

ભવનની સ્થાપનાવિધિ શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય સ્મારક ઉત્સવ પ્રસંગે કરવામાં આવી હતી. એ ઉત્સવના અધ્યક્ષસ્થાને ભવનના સંસ્થાપક–પ્રમુખ માન્યવર શ્રી મુનશીજી જ હતા. એમણે પોતાના એ પ્રસંગના વ્યાખ્યાનમાં, નીચે આપેલા ઉદ્દ્ગારોમાં, ભવનના ઉદ્દ્ભવના અને ભાવિ વિકાસના મનોરથો પ્રકટ કર્યા હતા.

*

"જ્યારે કલિકાલસર્વજ્ઞની જન્મતિથિ આપણે ઉજવીએ છીએ ત્યારે શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠનું ઉદ્‌ઘાટન કરીએ છીએ અને **'ભારતીય વિદ્યા ભવન'**ની સ્થાપના પણ કરીએ છીએ. જ્યાં પ્રાચીન ભારતીય વિદ્યા અને આપણાં અર્વાચીન આદર્શોનો સમન્વય થાય અને નવું સાહિત્ય, નવો ઇતિહાસ, અને નવા સંસ્કાર પ્રગટાવવાના પ્રયત્ન થાય એવું એક કેન્દ્ર સ્થાપવાનાં સ્વપ્નો ઘણા વર્ષ થયાં સંસદ સેવી રહી હતી. આ સ્વપ્નની સિદ્ધિને માર્ગે જે આજે આપણે પગ દઈ રહ્યા છીએ તેનું કારણ શેઠ મુંગાલાલ ગોએન્કાનું ઔદાર્ય ને કેટલાક ટ્રસ્ટોના ટ્રસ્ટીઓનો સહકાર છે. શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠમાં આજે પ્રાકૃત માટે મુનિ શ્રી જિનવિજયજી, સંસ્કૃત અને ભાષાશાસ્ત્ર માટે શાંતિનિકેતનના ભૂતપૂર્વ અધ્યાપક ડૉ. મણિલાલ પટેલ, ગુજરાતી માટે પ્રો. ભાનુશંકર વ્યાસ અને અંબાલાલ જાની જેવાના સહકાર મેળવવા આપણે ભાગ્યશાળી થયા છીએ. હિંદીને માટે પણ વ્યવસ્થા થઇ રહી છે

પણ શેઠ મુંગાલાલની સખાવત નસીબની ચાવી જેવી ફલદાયી થઇ પડી છે. એની સાથે બીજું ઘણું આવ્યું છે કેટલાક ટ્રસ્ટ અને ટ્રસ્ટીઓ અને સર જદુનાથ સરકાર જેવા ભારતીય ઇતિહાસ પરિષદના સંચાલકો પણ આપણી સાથે આ ભવનની સ્થાપના કરવામાં ભેગા મળ્યા છે.

આ ભવનનો ઉદ્દેશ પ્રાચીન આર્ય સંસ્કૃતિનો અભ્યાસ કરે અને અર્વાચીન હીંદી સંસ્કૃતિને ઐતિહાસિક સાતત્યનું ભાન કરાવે એવું એક કેન્દ્ર સ્થાપવાનો છે. પણ એ ઉદ્દેશને અનુરૂપ સાધનો નથી. મુંગાલાલ ગોએન્કા શિક્ષાપીઠ, એક પાઠશાળા, અને 'ભારતીય વિદ્યા' નામક ત્રૈમાસિક એ ત્રણ પ્રવૃત્તિની શરુઆત તો તરતમાં જ થશે પ્રકાશન પ્રવૃત્તિ પણ હાથમાં લેવાશે. આ શહેરમા કાર્ય કરતી બીજી પાઠશાળાઓનો પણ સહકાર મળશે પણ ભવનને ભવન-મકાન તો જોઇશે જ, પુસ્તકાલય ને વિદ્યાર્થી-ગૃહ પણ જોઇશે. ભાગવત ધર્મ (વૈષ્ણવ ધર્મ) ની એક પીઠ; જુના ગુજરાતીની એક પીઠ; અને હીંદી ઇતિહાસની પીઠ સ્થાપવાની પણ અગત્ય છે. અત્યારે ભારતનો રાષ્ટ્રીય ઇતિહાસ લખાવાની જરૂર છે. અને ભારતીય ઇતિહાસ પરિષદ્ સાથ આપે તો આ નેમ પણ સધાય

પણ આજે તો આ બધી આશાઓ છે. સાધન વિના ફલિત નહીં થાય ૧૯૨૨ માં **સાહિત્ય સંસદ**, ગુજરાતી સાહિત્ય ને સંસ્કારનો વિકાસ ને વિસ્તાર સાધવાના હેતુથી જન્મી. ૧૯૨૫ માં તેણે પોતાનું વ્યક્તિત્વ છોડયા વિના, સાહિત્ય પરિષદ્‌ની–સમસ્ત ગુજરાતની–પ્રવૃત્તિઓ સાથે તાદાત્મ્ય સાધ્યુ. અને આજે અખિલ ભારતીય પ્રવૃત્તિ તરફ પગલું માંડે છે. આર્યાવર્તની મહત્તર એકતાસાથે તાદાત્મ્ય સાધવામાં જ ગુજરાતને આત્મસિદ્ધિ પ્રાપ્ત થશે; તે વિના એને આશા નથી ને આત્મસાફલ્ય નથી તમારી રજાથી અત્યારે હું મુંગાલાલ ગોએન્કા શિક્ષાપીઠનું ઉદ્‌ઘાટન અને ભારતી વિદ્યા ભવનની સ્થાપનાની સફલતા ઇચ્છું, અને આ ભવન સ્થાપી તમે જે પ્રયાણ આરંભ્યું છે તેને કણ્વ મુનિના શબ્દોમાં આશીર્વાદ આપું કે. **"શિવાસ્તે પન્થાનઃ સન્તુ"**

*

હૈમજયન્તી ઉજવવાની યોજના કરાંચીમાં ભરાયેલા ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષત્ સંમેલને એક ખાસ ઠરાવદ્વારા કરી હતી. તદનુસાર, મુંબઇમાં પણ એ ધુરંધર વિદ્યાનિધિ ગૂર્જરપુત્ર કલિકાલસર્વજ્ઞ હેમચન્દ્રસૂરિની જન્મતિથી ઉજવવા વિ૦ સં૦ ૧૯૯૫ના કાર્તિક સુદિ પૂર્ણિમાને રોજ એક વિરાટ અને વિશિષ્ટ સભા ભરવામાં આવી હતી. એ જ શુભપ્રસંગે, ઊપર સૂચવ્યા મુજબ માનનીય શ્રી મુનશીજીએ **ભારતીય વિદ્યા ભવનની** સ્થાપના, અને તેના જ એક પ્રધાન અંગરૂપ **શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠની ઉદ્‌ઘાટના પણ કરી હતી.**

ભવનના સંસ્થાપક સભ્યોની નામાવલી, પરિશિષ્ટ નં૦ ૧ માં આપી છે. સંસ્થાપક સભ્યોની પ્રથમ સભા ૧૯૩૮ ના નવેંબરની સાતમી તારીખે મળી હતી અને પહેલી કાર્યવાહક સમિતિની, બે વર્ષ માટે (નવેંબર ૧૯૩૮થી ઓકટોબર ૧૯૩૯), નીમણુંક કરવામાં આવી હતી.

*

ભવનમાં વિવિધ પ્રકારના શિક્ષાપીઠો અને વિભાગો ખોલવામાં તેમ જ પ્રકાશનાદિ પ્રવૃત્તિઓ ચલાવવામાં આર્થિક સાહાય્યની સ્વાભાવિક જરૂર રહે જ. તે માટે ભવનના સ્થાપક–પ્રમુખ નામદાર શ્રી ક૦ મા૦ મુનશીજીએ અપીલ કરી હતી, જેનો સુંદર જવાબ મુંબઈનાં કેટલાંક ટ્રસ્ટો,–જેવાં કે મુંબાદેવી ટેમ્પલ ટ્રસ્ટ, શેઠ ગોરધનદાસ સુંદરદાસ ચૅરીટીઝ, શેઠ નારણદાસ આસનમલ અને જેઠાનંદ આસનમલ ટ્રસ્ટ, રૂઘનાથદાસ ગોપાળદાસ ટ્રસ્ટ, પારપીયા પ્રધાન ટ્રસ્ટ, અને ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ્–ઇત્યાદિએ વાળ્યો હતો. તે ઉપરાંત શ્રી રામેશ્વરપ્રસાદ બિરલા, સંસ્થાન વડતાળના ભગવાન્ આચાર્ય શ્રી શ્રીઆનંદપ્રસાદજી શ્રી શ્રીપતપ્રસાદજી મહારાજ, સર ઠીકાભાઈ પ્રેમચંદ, શ્રી પ્રાણલાલ દેવકરણ નાનજી, હિઝ હાઇનેસ ધી મહારાજા ઓફ પોરબંદર, હિઝ હાઇનેસ ધી ઠાકોરસાહેબ ઓફ લીંબડી, શ્રી માધવલાલ મકનજી ભટ્ટ, શેઠ મોતીલાલ માણેકચંદ વલ્દ પ્રતાપશેઠ, શ્રી પ્રભાશંકર રામચંદ્ર ભટ્ટ, શ્રી ચુનીલાલ ભાઈચંદ મહેતા, શેઠ હરગોવિદદાસ જીવનદાસ; અને અન્ય સંભાવિત ગૃહસ્થોએ ઉદાર આર્થિક સાહાય્ય આપી છે, જેની સાભાર નોંધ લઇએ છીએ.

*

નિમ્નલિખિત વિભાગો સ્થાપી ભવને પોતાના કામનો શુભારંભ કર્યો હતોઃ–(૧) સંસ્કૃત અને તુલનાત્મક ભાષાશાસ્ત્રઃ—અધ્યાપક ડૉ: મણિલાલ પટેલ. પી. એચ. ડી. (૨) પ્રાકૃત ભાષાઓઃ—અધ્યાપક મુનિ શ્રી જિનવિજયજી, (૩) ગુજરાતી—અધ્યાપક શ્રી ભાનુશંકર વ્યાસ એમ. એ. અને શ્રી અંબાલાલ બી. જાની. બી. એ. હિન્દી વિભાગ પણ તરત જ ખોલવામાં આવ્યો હતો અને તેને માટે શ્રી રામાશ્રય રૉય એમ. એ. એલ્એલ. બી.ની ઑનરરી લેકચરર તરીકે નીમણુંક કરવામાં આવી હતી. શેઠ શ્રી રામેશ્વરદાસજી બિરલાનો આ સ્થળે અમે અત્યંત આભાર માનીએ છીએ કે જેમની સ્તુત્ય આર્થિક મદદથી ૧૯૩૮ના ડિસેબરની પહેલી તારીખે અમે "ભારતીય ઇતિહાસ"નો વિભાગ પણ ખોલવા શક્તિશાલી થયા અને તે વિભાગ માટે પંડિત જયચંદ્ર વિદ્યાલંકારની પ્રૉફેસર તરીકે નીમણુંક કરવામાં આવી. ભાગવત ધર્મનો એક નવો વિભાગ ૧૯૩૯ના જાન્યુઆરીની પહેલી તારીખે ઉઘાડવામાં આવ્યો અને તે શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રી (ઑનરરી પ્રૉફેસર)ને સોંપવામાં આવ્યો. આ જ વિભાગમાં કુમારી સુશીલા મહેતા એમ. એ. એલ્એલ. બી.ને રીસર્ચ ફેલોશીપ આપીને ફેલો નીમવામાં આવેલ છે. આ વિભાગ માટે શેઠ શ્રી ગોરધનદાસ સુંદરદાસ ચૅરીટીઝના ટ્રસ્ટીઓએ સારી એવી વાર્ષિક સાહાય્ય મંજુર કરી છે.

*

ભવનના આ બધા વિભાગો અને ઓફીસ શરૂઆતમાં ખાલસા કોલેજ (માટુંગા)ના ભવ્ય મકાનમાં રાખવામાં આવ્યાં હતાં.

૧૯૩૯ના જાન્યુઆરીની સાતમી તારીખથી ભા૦ વિ૦ ભવને, ભારતીય સંસ્કૃતિ ઉપર જ્ઞાનવર્ધક વ્યાખ્યાન માળા આપવી શરૂ કરી. મુંબઈ યુનીવર્સિટીના મકાનમાં દરેક શનિવારે બપોર પછી વ્યાખ્યાનો અપાતાં અને તેમાં સૌ કોઇને આવવા આમંત્રણ હતું. "ભારતીય સંસ્કૃતિના મૂળભૂત તત્ત્વો" ઉપર સુંદર વિદ્વત્તાપૂર્ણ વ્યાખ્યાન, અંગ્રેજીમાં આપી ભા૦ વિ૦ ભવનના સંસ્થાપક–પ્રમુખ નામદાર ક૦ મા૦ મુનશીજીએ આ વ્યાખ્યાનમાળાની શુભ શરૂઆત કરી હતી. તત્કાલીન વડા પ્રધાન, નામદાર બી. જી. ખેર પ્રમુખસ્થાને હતા. જનતાએ સારા પ્રમાણમાં હાજરી આપી હતી. આમ વર્ગમાં અને વિદ્વદ્વર્ગમાં આ વ્યાખ્યાન ખૂબ સત્કાર પામ્યું હતું. ૧૯૩૯ના માર્ચની અઢારમી તારીખસુધી આ પ્રમાણે દરેક શનિવારે બપોર પછી વ્યાખ્યાનો (બધાં મળી અગિયાર) અપાયાં હતાં. તેમાંનાં કેટલાંક ભવનના અંગ્રેજી જર્નલમાં છપાયાં છે.

*

૧૯૩૯ના જાન્યુઆરીની નવમીથી માર્ચની પંદરમી સુધી, "શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ" તરફથી સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, ગુજરાતી, એન્શ્યન્ટ ઈન્ડીયન કલ્ચર વગેરે વિષયોમાં મુંબઈ યુનિવર્સિટીની એમ. એ.ની ડીગ્રી માટે તૈયારી કરતા વિદ્યાર્થિઓને મદદ કરવા માટે વર્ગો ખોલવામાં આવ્યા હતા, જેનો લાભ ઘણા વિદ્યાર્થીઓએ ઉઠાવ્યો હતો.

*

સંસ્કૃતનો અભ્યાસ વિશેષ આવકારપાત્ર અને વ્યાપક બને એ હેતુથી તેમ જ આર્યસંસ્કૃતિનો જનતાને સુપરિચય થાય તે માટે ભા૦ વિ૦ ભવને ગોવાલીઆ ટેંક રોડ ઉપર આવેલ "ફેલોશીપ સ્કુલ"ના મકાનમાં સંસ્કૃત શિક્ષણમંદિરની શરૂઆત કરી હતી. તેમાં ગુજરાતી તથા હિન્દીમાં આર્યસંસ્કૃતિના રૂપ–રૂપાંતરો ઉપર લોકપ્રિય વ્યાખ્યાનો આપવાની વ્યવસ્થા કરવામાં આવી હતી. ભા૦ વિ૦ ભવનના પ્રમુખ સાહેબનું પ્રારંભિક વ્યાખ્યાન ૧૯૩૯ના જાન્યુઆરીની ૧૧મી તારીખે થયું હતું. ત્યારબાદ તેમણે જ દરેક રવિવારે એકેક એમ ચાર વ્યાખ્યાનો શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતા ઉપર આપ્યાં હતાં. પંડિત શ્રી મોતીરામ શાસ્ત્રી મંદિરમાં સવારમાં સંસ્કૃતના વર્ગો લેતા હતા.

*

કરાંચી ખાતે ભરાયેલા છેલ્લા ગુજરાતી સાહિત્ય સંમેલનમાં, ઉપર જોયું તેમ, પાટણ મુકામે **હૈમસારસ્વત સત્ર** ઉજવવાનો એક ઠરાવ પસાર કરવામાં આવ્યો હતો. તે અનુસારે, ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ્‌ની મધ્યસ્થ સભાએ, ગયા ઈસ્ટરના તહેવારો—એટલે કે તા. ૭–૮ એપ્રીલ ૧૯૩૯–સંવત્ ૧૯૯૫ ના ચૈત્ર વદ ૩ અને ૪ ના દિવસોમાં એ સત્રોત્સવ ઉજવવાનો નિર્ધાર કરી ગુજરાતી સાહિત્ય સંમેલનની એક ખાસ બેઠક પાટણ ખાતે બોલાવી હતી. પ્રમુખસ્થાને માનનીય શ્રી ક૦ મા૦ મુનશીજી વિરાજ્યા હતા. પરિષદ્‌ના મંત્રીઓના નિમંત્રણને માન આપી, ભવને પોતાના પ્રતિનિધિઓ ઉક્ત સંમેલનમાં ભાગ લેવા મોકલ્યા હતા. એમણે સંમેલનની ચર્ચાઓ તથા નિબંધાદિ–વાંચનમાં, અને તે દિવસોમાં પાટણમાં યોજાયેલા અન્ય સમારંભોમાં પોતાનો યોગ્ય ફાળો આપ્યો હતો.

શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યનું એક સ્મારક પાટણમાં કાયમનું રહે એ હેતુથી સદ્ગત મોહનલાલ ઝવેરીના સુપુત્રોએ **શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય જૈન જ્ઞાનમંદિર** ત્યાં બંધાવ્યું છે. એ સુંદર અને આલિશાન મકાનની ઉદ્ઘાટન-ક્રિયા પણ શ્રી મુનશીજીના શુભ હસ્તે એ જ અવસરે કરવામાં આવી હતી. એ સમારંભમાં ભાગ લેવા ગુજરાત ભરમાંથી સાક્ષરો અને સાહિત્યરસિકો સારી સંખ્યામાં પાટણમાં એકત્ર થયા હતા અને એ સૌનું સુંદર આતિથ્ય કરવામાં શ્રી હેમચંદ મોહનલાલ ઝવેરી અને એમના ભાઇઓએ ખૂબ જ ઉત્સાહ અને ઔદાર્ય દાખવ્યાં હતાં જેની અમારે આભારપૂર્વક નોંધ લેવી જોઇએ.

*

શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યનું એક કાયમનું સ્મારક મુંબઈમાં પણ થવું જોઇએ એવી અપીલ ભવનના પ્રમુખ શ્રીમાન્ મુનશીજીએ કરી છે. એટલે કેટલાક આગેવાન ને ઉદાર જૈન શહેરીઓ એક સારૂં સરખું ફંડ એકઠું કરવાનો પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે. આ પ્રયત્નનું શુભ પરિણામ સત્વર આવશે એવી આશા ભવન રાખે છે.

*

બીજું સત્ર (૧૯૩૯ જૂનથી–ઓક્ટોબર)

પ્રતિદિન વધતી જતી પ્રગતિને લીધે ભવનના વિભાગોને વિશાળ મકાનમાં ખસેડવાની જરૂર હતી. તેથી ૧૯૩૯ના જૂનની પહેલી તારીખે અંધેરીમાં આવેલ "વસંતવિલા" નામના આલિશાન બંગલામાં ભવનનું સ્થળાંતર કરવામાં આવ્યું.

*

સર કીકાભાઈ પ્રેમચંદની સખાવતનો, આ સ્થળે સાભાર ઉલ્લેખ કરતાં અમને હર્ષ થાય છે. તેમની ઔદાર્યપૂર્ણ આર્થિક સહાયતાને લીધે, ભવનમાં ૧૯૩૯ના જૂનની પહેલી તારીખથી "જૈનશાસ્ત્ર" વિભાગ ખોલવામાં આવ્યો અને પ્રોફેસર અમૃતલાલ સ૦ ગોપાણિ. એમ. એ.ને આ વિભાગના અધ્યાપક તરીકે નીમ્યા. ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ્‌ના બહુમૂલ્ય સહકારને લીધે, ગુજરાતી વિભાગનું પુનર્નિર્માણ કરવામાં આવ્યું અને તેનું નામ "શ્રીનર્મદ ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષત્ શિક્ષાપીઠ" રાખવામાં આવ્યું. આ વિભાગ માટે શ્રી વિશ્વનાથ મ૦ ભટ્ટ બી. એ. ની "રીડર" તરીકે નિયુક્તિ કરવામાં આવી. ૧૯૩૯ના જૂનની પાંચમીએ શ્રી અચ્યુત દ૦ પુસાલકર એમ. એ., એલ્એલ. બી., ની લેકચરર તરીકે નીમણુંક કરી "ભાગવત ધર્મ" વિભાગને વિસ્તૃત કરવામાં આવ્યો. શ્રી રામાશ્રય રોયે મુબઈ છોડયું હોવાથી હિન્દી વિભાગ ૧૯૩૯ના જૂનની પહેલી તારીખથી મુનિ શ્રી જિનવિજયજીની દેખરેખ નીચે મુકવામાં આવ્યો.

*

આ સત્રમાં પણ "ભારતીય સંસ્કૃતિ" ઉપરની જ્ઞાનવર્ધક વ્યાખ્યાનમાળા ચાલુ રાખવામાં આવી હતી. કુલ ૧૧ વ્યાખ્યાનો તેમાં અપાયાં હતાં.

*

મુંબઈ યુનિવર્સિટીના પોસ્ટ ગ્રેજ્યુએટ અધ્યાપકોના સહકારી તરીકે ભા૦ વિ૦ ભવનના અધ્યાપકો તરફથી સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, ગુજરાતી અને એન્શ્યન્ટ

ઇન્ડીયન કલ્ચર વગેરેમાં એમ. એ. ની પરીક્ષા માટે તૈયારી કરતા વિદ્યાર્થીઓના આ સત્રમાં પણ યુનિવર્સિટીના મકાનમાં વર્ગો લેવામાં આવ્યા હતા.

*

આ વખતે વિશિષ્ટતા એ હતી કે કેટલાક વિદ્યાર્થીઓએ ભવનમાં આવીને અધ્યાપકો પાસેથી પોતપોતાના વિષયોમાં માર્ગદર્શન અને મદદ મેળવી હતી જે વિના સંકોચે આપવામાં આવી હતી.

*

સંસ્કૃત, ઇંડિયન હિસ્ટરી, અને ગુજરાતીનાં " પોસ્ટ–ગ્રેજ્યુએટ અધ્યાપક " તરીકે ક્રમશઃ ડૉ. મણિલાલ પટેલ, પંડિત જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર, અને વિ૦ મ૦ ભટ્ટને ૧૯૩૯ના જૂનની પહેલી તારીખથી, બે વર્ષ માટે, મુબઇ યુનિવર્સિટીએ સ્વીકૃતિ આપી છે.

*

શ્રી મુંબાદેવી સંસ્કૃત પાઠશાળા ૧૯૩૯ના સપ્ટેમ્બરની પહેલી તારીખથી ભા૦ વિ૦ ભવનની સીધી દેખરેખ નીચે મુકવામાં આવી. પાઠશાળામાં હાલ બાર વિદ્યાર્થીઓ છે. પંડિત મોતીરામ શાસ્ત્રી મુખ્યાધ્યાપક તરીકે અને પંડિત બી. એલ. શાનભોગ સુપરીન્ટેન્ડેન્ટ તરીકે કામ કરે છે. વિદ્યાર્થીઓને નિઃશુલ્ક રાખવામાં આવે છે અને પૂનાના મીમાંસા વિદ્યાલયની તથા બનારસમાં આવેલ ગવર્નમેન્ટ સંસ્કૃત કોલેજની તીર્થ પરીક્ષાઓ માટે તૈયારી કરાવવા ઉપરાંત અંગ્રેજી તથા હિન્દીનું પણ શિક્ષણ આપવામાં આવે છે. પાઠશાળાના પુનર્વિધાન અને વિકાસની યોજના વિચારાઈ રહી છે.

*

પુસ્તકાલય માટે ભારતીય વિદ્યાને લગતાં પુસ્તકોનો સારો એવો સંગ્રહ ભવને કરવા માંડ્યો છે. સુવિખ્યાત ગ્રન્થમાલાઓનાં પ્રકાશનો ઉપરાંત દેશ પરદેશથી હજારો રૂપીયાના પુસ્તકો મંગાવવામાં આવ્યાં છે. પ્રમુખ સાહેબે ભવનને એક હજાર જેટલાં પુસ્તકો તથા સાત સુંદર કબાટો, હાલ તુરત માટે, ઉપયોગ કરવા આપ્યાં છે. સામયિકો, સમાચાર પત્રો અને સાપ્તાહિકો પણ મંગાવવામાં આવે છે. ભવનના અધ્યાપકગણ તરફથી વિવિધ ગ્રન્થોનું સંપાદન અને સંશોધન કાર્ય પણ હાથ ધરવામાં આવ્યું છે જે યથાવસરે ભવન તરફથી પ્રકાશિત કરવામાં આવશે. તેની નામાવલિ આ ત્રૈમાસિકના પૂંઠા ઉપર આપવામાં આવી છે. "**ભારતીય વિદ્યા**" નામનું છમાસિક અંગ્રેજીમાં અને બીજું ત્રૈમાસિક હિન્દી–ગુજરાતીમાં, એમ બે મુખપત્રો (જર્નલો)ની શરૂઆત પણ ચાલુ સત્રમાં કરવામાં આવી છે.

*

થોડા સમયમાં જ્યોતિષ્ શિક્ષાપીઠ ખોલવાનો વિચાર પણ ચાલે છે અને તેનું નામ શેઠ નાગરદાસ રૂઘનાથદાસ જ્યોતિષ શિક્ષાપીઠ રાખવામાં આવનાર છે.

ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ્ અને સાહિત્ય સંસદ્ નામની બન્ને સંસ્થાઓ સાથે ભવન સંનિયુક્ત સભાસદ (એસોશિયેટેડ મેમ્બર) તરીકે સંબદ્ધ થએલ છે. અને એથી ભવનતરફથી, ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ્‌ના પ્રતિનિધિ તરીકે, છ સભ્યોની વરણી કરવામાં આવી છે. સાહિત્ય સંસદ્ તરફથી યોજાએલી અનેકવિધ પ્રવૃત્તિઓમાં ભવને ચાલુ સાલમાં રસપૂર્વક ભાગ લીધો હતો. ગત ઇસ્ટરના તહેવારોમાં પાટણમાં ભરવામાં આવેલ ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષત્ સમ્મેલનની ખાસ બેઠકમાં ભવન તરફથી પ્રતિનિધિઓ મોકલવામાં આવ્યા હતા. હૈદ્રાબાદ (દક્ષિણ) ખાતે મળનાર અખિલ ભારતવર્ષીય ઓરીએન્ટલ કોન્ફરન્સના આવતા અધિવેશનમાં પ્રતિનિધિઓ મોકલવાનો ભવન ઈરાદો રાખે છે.

*

ભા૦ વિ૦ ભવને મુંબઈ સરકાર પાસેથી અંધેરીમાં લગભગ અગિયાર એકર જેટલી જમીન ખરીદી છે અને યોગ્ય આર્થિક અનુકૂળતા પ્રાપ્ત થતાં જ ભવનનાં મકાનો બાંધવાનું કાર્ય શરૂ કરવામાં આવશે.

પરિશિષ્ટ નં૦ ૧

*

ભારતીય વિદ્યા ભવનના સંસ્થાપક સભ્યોની સંપૂર્ણ નામાવલી

*

૧. શ્રીમાન્ **કનૈયાલાલ મા૦ મુનશી,** બી. એ., એલએલ. બી., એમ. એલ. એ., નિવૃત્ત ગૃહસચિવ, મુંબઈ; સિન્ડીક મુંબઈ યુનિવર્સિટી; પ્રમુખ ગૂજરાતી સાહિત્ય પરિષદ, મુંબઈ.

૨. ન્યાયમૂર્તિ શ્રી **હરસિદ્ધભાઈ વ૦ દિવેટીયા,** એમ. એ., એલએલ. બી., જજ હાઈકોર્ટ, મુંબઈ; સિન્ડીક, મુંબઈ યુનિવર્સિટી, મુંબઈ.

૩. નામદાર શ્રી **મંગળદાસ એમ. પકવાસા,** બી. એ. એલએલ. બી.; પ્રેસિડેન્ટ લેજીસ્લેટીવ કૌન્સિલ, મુંબઈ.

૪. ડૉ. **રાજેન્દ્રપ્રસાદ,** એમ. એ.; એલએલ. બી; ડી. લિટ્., પટણા.

૫. સર **ચીમનલાલ હ૦ સેતલવાડ,** કે. સી આઈ. ઈ.; એલએલ ડી.; ભૂતપૂર્વ વાઈસ-ચેન્સેલર, મુંબઈ યુનિવર્સિટી. મુંબઈ.

૬. સર **જદુનાથ સરકાર,** એમ. એ.; ડી. લિટ્; સી આઈ. ઈ.; ભૂતપૂર્વ વાઈસ-ચેન્સેલર કલકત્તા યુનિવર્સિટી, કલકત્તા.

૭. ડૉ. **આનંદશંકર બા૦ ધ્રુવ,** ડી. લિ ટ્. ભૂતપૂર્વ પ્રોવાઈસ-ચેન્સેલર બનારસ હિન્દુ યુનિવર્સિટી, અમદાવાદ.

૮. ધર્મધુરંધર આચાર્ય મહારાજ શ્રી **આનંદપ્રસાદજી શ્રીપતિપ્રસાદજી મહારાજ,** સસ્થાન વડતાલ

૯. હિઝ હાઇનેસ શ્રી સર **નટવરસિંહજી બહાદુર,** કે. સી. એસ. આઈ; મહારાજા સાહેબ ઑફ પોરબંદર.

૧૦. લેફ્ટે. હિઝ હાઇનેસ મહારાણા શ્રી **વીરભદ્રસિંહજી,** રાનાજી સાહેબ ઑફ લુણાવાડા.

૧૧. મહારાણા શ્રી સર **દોલતસિંહજી,** કે. સી એસ આઈ., કે. સી. આઈ. ઈ., ઠાકોર સાહેબ ઑફ લીંબડી.

૧૨. મહારાજ કુમાર શ્રી ડૉ **રઘુવીર સિંહજી,** એમ. એ; એલએલ. બી.; ડી. લિ.ટ્. સીતામઉ.

૧૩. દિ. બ. **કૃષ્ણલાલ મો. ઝવેરી,** એમ. એ.; એલએલ. બી.; ભૂતપૂર્વ જજ. હાઈકોર્ટ, મુંબઈ. સિન્ડીક મુંબઈ યુનિવર્સિટી, મુંબઈ.

૧૪ શ્રી **જિનવિજયજી મુનિ,** ભૂતપૂર્વ આચાર્ય, પુરાતત્ત્વ મન્દિર, ગૂજરાત વિદ્યાપીઠ; સિંઘી જૈન જ્ઞાનપીઠ, વિશ્વભારતી, શાંતિનિકેતન; પ્રોફેસર ઑફ પ્રાકૃતિક લેંગ્વેજીજ-શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ, મુંબઈ.

૧૫. સર **ચુનીલાલ બી. મહેતા,** નાઈટ, કે. સી. એસ. આઈ., એમ. એ., એલએલ. બી., મુંબઈ.

૧૬. **શ્રીમતી લીલાવતી કે. મુનશી,** એમ. એલ. એ., ફેલો મુંબઈ યુનિવર્સિટી, મુંબઈ.

૧૭. સર **કીકાભાઈ પ્રેમચંદ રાયચંદ** નાઈટ, મુંબઈ.

૧૮. રાવ બહાદુર **ચુનીલાલ હ. સેતલવાડ,** સી. આઈ. ઈ. બાર-એટ-લૉ; ભૂતપૂર્વ ચીફ પ્રેસિડેન્સી મેજીસ્ટ્રેટ, મુંબઈ.

૧૯. શ્રી **મથુરાદાસ વિસનજી,** મુંબઈ.
૨૦. શ્રી **રામેશ્વરદાસ બિરલા,** મુંબઈ.
૨૧. શ્રી **મુંગાલાલ ગોએન્કા,** મુંબઈ.
૨૨. શ્રી **ચત્રભુજ ગોરધનદાસ સુંદરદાસ,** મુંબઈ.
૨૩. શ્રી **ઉમાદત્ત નેમાણી,** મુંબઈ.
૨૪. શ્રી **ચુનીલાલ ભા૦ મેહતા,** ભૂતપૂર્વ શેરીફ, મુંબઈ.
૨૫. શ્રી **પ્રાણલાલ દેવકરણ નાનજી,** મુંબઈ.
૨૬. શ્રી **માણેકલાલ પ્રેમચંદ રાયચંદ,** મુંબઈ.
૨૭. શ્રી **મટુભાઈ કસનભાઈ,** બી. એ., એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૨૮. શ્રી **ત્રિકમદાસ દ્વારકાદાસ,** સોલીસીટર, મુંબઈ.
૨૯. શ્રી **મણિલાલ કે. નાણાવટી,** બી. એ. એલએલ. બી , સોલીસીટર, મુંબઈ.
૩૦. શ્રી **મંગળદાસ બી. મેહતા,** બી. એ. એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૩૧. શ્રી **ઠાકોરદાસ નાનાભાઈ મર્ચંટ,** બી. એ. એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૩૨. શ્રી **એ. બી. વૈદ્ય,** બી. એ. એલએલ. બી., સોલીસીટર, મુંબઈ.
૩૩. શ્રી **વસંતરામ જમીયતરામ,** બી. એ. એલએલ. બી., મુંબઈ.
૩૪. શ્રી મહામહોપાધ્યાય રાયબહાદુર ડૉ. **ગૌરીશંકર હી૦ ઓઝા,** ડી. લિટ્. અજમેર.
૩૫. પ્રીન્સીપાલ **કાશ્મીરા સિંઘ,** એમ. એ. ખાલસા કોલેજ, મુંબઈ.
૩૬. પ્રીન્સીપાલ ડૉ **ઈરાચ જે. એસ. તારાપોરવાલા** બી. એ. પીએચ. ડી. બાર-એટ-લૉ પ્રીન્સીપાલ, ધી એમ. એફ. એથોરનન ઈન્સ્ટીટયુટ. અંધેરી.
૩૭. પ્રો. **બી. જી. રાવ,** બાર-એટ-લૉ, મુંબઈ.
૩૮. ડૉ. **વી. એસ. સુકથનકર.** પી. એચ. ડી. ભાંડારકર ઓરીએન્ટલ ઇન્સ્ટીટયુટ, પુના.
૩૯ પ્રો ડૉ. **મણિલાલ પટેલ.** પી. એચ. ડી. (મારબર્ગ) પ્રોફેસર ઓફ સંસ્કૃત એન્ડ કમ્પેરેટીવ ફાઇલોલોજી, શ્રી મુંગાલાલ ગોએન્કા ઉચ્ચતર સંસ્કૃત શિક્ષાપીઠ, મુંબઈ.
૪૦. રાવબહાદુર **જી. એસ. સરદેસાઈ.** કામશેટ.
૪૧. પંડિત **જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર,** કાશી વિદ્યાપીઠ, બનારસ.
૪૨. શ્રી **લક્ષ્મીદાસ ગો. ગોકુલદાસ તેજપાળ,** મુંબઈ.
૪૩. શ્રી **નાનાલાલ સી. મહેતા,** બી. એ. (કેન્ટબ), આઈ. સી. એસ. નૈનીતાલ.
૪૪. શ્રી **સંગજી સુંદરજી,** મુંબઈ.
૪૫. શ્રી **મનહરરામ હ. મહેતા,** બી. એ. રીટાયર્ડ ચીફ ટ્રાન્સલેટર, હાઈકોર્ટ, મુંબઈ.
૪૬. શ્રી **તારાચંદ નવલચંદ ઝવેરી,** મુંબઈ.
૪૭. શ્રી **હેમચંદ મોહનલાલ ઝવેરી,** મુંબઈ
૪૮. શ્રી **ભોગીલાલ લહેરચંદ ઝવેરી,** મુંબઈ.
૪૯. શ્રી **મથુરાદાસ ત્રિકમજી,** મુંબઈ
૫૦. શ્રી **દુર્ગાશંકર કે૦ શાસ્ત્રી,** મુંબઈ.
૫૧. શ્રી **મોતીલાલ માણેકચંદ** ઉર્ફે **પ્રતાપશેઠ,** અમલનેર
૫૨. શ્રી **બહાદુરસિંહજી સિંઘી.** એફ. આર. એસ. એ. (લંડન), એફ. એ. જી. એસ. (ન્યુયોર્ક), કલકત્તા.
૫૩. શ્રી **માધવલાલ મકનજી ભટ્ટ,** મુંબઈ.
૫૪. શ્રી **પ્રભાશંકર રામચંદ્ર ભટ્ટ,** મુંબઈ.



भारतीय विद्या भवन

अध्यापकमण्डल

संस्कृत वाङ्मय और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

१. डॉ० मणिलाल पटेल, पीएच्. डी. नियामक; तथा श्रीमुंगालाल गोयनका अध्यापक-संस्कृत साहित्य और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

२. पं० मोतीराम शास्त्री-मुख्याध्यापक मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला

३. पण्डित बी. एल्. शाम्भोग

प्राकृत भाषावर्ग और हिन्दी वाङ्मय

श्री जिन विजयजी मुनि

गुजराती वाङ्मय

श्री विश्वनाथ भट्ट बी. ए.

अध्यापक-श्रीनर्मद गुजराती साहित्य परिषद् शिक्षापीठ

भागवत धर्मशास्त्र

१. श्रीदुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री
अवैतनिक अध्यापक भागवत धर्मसाहित्य

२ श्री ए० डी० पुसालकर, एम्. ए., एलएल्. बी.
श्रीस्वामीनारायण व्याख्याता, भागवत धर्म

३ श्रीमती कुमारी सुशीला महेता एम्. ए., एलएल्. बी.
श्रीगोवर्धनदास सुन्दरदास भागवतधर्म रीसर्च फेलॉ

जैन वाङ्मय

श्री अ० स० गोपाणी एम्. ए.
सर् कीकाभाई प्रेमचंद अध्यापक-जैनशास्त्र

भारतीय इतिहास

पण्डित श्री जयचंद्रजी विद्यालंकार

श्रीरामेश्वरदास बिडला अध्यापक-भारतीय इतिहास

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भारतीय विद्या – ग्रन्थावली

*

उक्तिव्यक्तिप्रकरण [संस्कृत] पं० दामोदरकृत. सं० श्री जिन विजयजी मुनि

प्राचीन गुजराती गद्यनिदर्शन -:- तरुणप्रभाचार्यग्रन्थोद्धृत

सं० श्री जिन विजयजी मुनि

ऋग्वेद-संहिता, षष्ठ मण्डल; सं० डॉ० मणिलाल पटेल

विसुद्धिमग्ग [बुद्धघोषकृत पालीभाषाग्रंथ] सं० श्री धर्मानन्द कोसंबी

नाणपंचमीकहा – [महेश्वरसूरिकृत प्राकृत भाषामय]

सं० श्री अ० स० गोपाणी

साहित्यपरिषद् निबन्धमाला [गुजराती] सं० श्री विश्वनाथ भट्ट

*

भारतीय विद्या [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका] सं० श्री जि० वि० मुनि

JACOBI'S ESSAYS ON THE APABHRAMSHA
by Dr. Manilal Patel

STUDIES IN ANCIENT INDIAN GEOGRAPHY
by Pandit Jayachandra Vidyalankar

VAISHNAVISM: A HISTORICAL RETROSPECT
by Shri Durgashanker K. Shastri
assisted by Miss Sushila Mehta, M. A., LL. B.

BIOGRAPHY IN GUJARATI LITERATURE
by Shri Vishvanath M. Bhatt

COMPARATIVE STUDIES IN THE PURANAS
by Shri A. D. Pusalkar

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
26-28, Kolbhat Street, Bombay.

Published by Dr. Manilal Patel, Director, Bharatiya Vidya Bhavan,
Andheri, Bombay.

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

वर्ष १] मार्च, ई० स० १९४० * माघ, संवत् १९९६ [अंक २



संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-० * वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक] ❀ [इंग्रेजी षाण्मासिक

*

गत अंकमें हिन्दी भाषाके लेख अधिक दिये जानेके कारण, प्रस्तुत अंकमें गुजराती भाषाके लेख अधिक दिये गये हैं।



भारतीय विद्या

वर्ष १] माघ, सं० १९९६ [अंक २

भारतीय विद्या

[हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

नियमावली

(अ) 'भारतीय विद्या' त्रैमासिकके वर्षभरमें ४ अंक प्रकाशित होते हैं। उनका प्रकाशन क्रमशः कार्तिक, माघ, वैशाख और श्रावण मासके अन्तमें होता है।

(आ) 'भारतीय विद्या'में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषामें लिखे हुए लेख-निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं। गुजराती लेख, लेखकोंकी इच्छानुसार गुजराती लिपि अगर देवनागरी लिपिमें भी छापे जा सकते हैं।

(इ) 'भारतीय विद्या'में भारत वर्षके प्राचीन इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, तत्त्वज्ञान इत्यादि सभी विषयोंके परिचायक और विवेचक लेख-निबन्ध-टीका-टिप्पणी आदि प्रकाशित किये जाते हैं।

(ई) 'भारतीय विद्या'की अनुपूर्तिके रूपमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश और प्राचीन देश्य भाषामें ग्रथित कुछ प्रकीर्णक कृतियोंके मूलरूपमें भी प्रकाशित किये जानेकी योजना है।

(उ) 'भारतीय विद्या'में प्रकाशित होनेके लिये लेखादि भेजने वाले लेखक-विद्वानोंको, उनके लेखकी (यदि वह लेख कमसे कम ४ पृष्ठसे छोटा न हो तो) २५ प्रतियां अधिक छपवा कर उन्हें भेंट दी जायगी।

(ऊ) लेखके साथ यदि कोई चित्रादि देनेकी योजना होगी तो उसके दिये जानेका भी प्रबन्ध किया जायगा; पर उन चित्रादिके भेजनेका कार्य लेखकको करना होगा।

(ए) विद्वानोंको विज्ञप्ति है कि-'भारतीय विद्या'में प्रकट होनेके लिये जो लेखादि भेजे जायँ वे स्पष्ट और सुवाच्य लिपिमें लिखे होने चाहिए। कागजके एक ही पार्श्वमें लिखान रहना चाहिए। टिप्पणी आदिके संकेत सुबोध्य और सुव्यवस्थित हों।

(ऐ) छपनेके लिये भेजे हुए लेखोंकी योग्यायोग्यताका निर्णय करनेका अधिकार संपादकको है।

(ओ) संपादनकार्यके साथ संबन्ध रखने वाला सब प्रकारका पत्र-व्यवहार-'संपादक-भारतीय विद्या' इस नामसे करना चाहिए और ग्राहक वगैरह होनेके विषयका पत्र-व्यवहार-'मंत्री, भारतीय विद्या भवन' इस नामसे करना चाहिए।

*

(औ) 'भारतीय विद्या'-**BHARATIYA VIDYA**-इसी नामका एक पत्र, इंग्रेजी भाषामें भी भवन प्रकाशित करता है जो षाण्मासिक है। उसके वर्षमें दो अंक प्रकाशित होते हैं। उसका वार्षिक मूल्य ४-०-० है।

भारतीय विद्या भवन

કાર્યપ્રવૃત્તિ

[ભવનના ડિરેક્ટર તરફથી, ભવને કરેલી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓની ટૂંકી સત્રવાર નોંધ]

તૃતીય સત્ર (નવેંબર ૧૯૩૯–માર્ચ ૧૯૪૦)

તૃતીય સત્રનો પ્રારંભ નવેંબર ૧૬, ૧૯૩૯ થી કરવામાં આવ્યો હતો. નવેંબર તા૦ ૧૯ મી એ ભવનના સંસ્થાપક—પ્રમુખ શ્રી ક૦ મા૦ મુનશી તથા શ્રીમતી લીલાવતી મુનશીએ ભવનના સંસ્થાપક-સભ્યો અને અન્ય મુરબ્બીઓ તથા મિત્રોને એક "એટ હોમ" પાર્ટી ભવનના કાર્યાલયમાં આપી હતી. ભવનના મંત્રીઓએ આ પ્રસંગે ભવનની પ્રવૃત્તિઓનો હેવાલ રજુ કર્યો હતો ને પ્રમુખ મહાશયે ભવિષ્યના કાર્યક્રમની રૂપરેખા દોરી હતી.

*

"ગૂજરાત સંશોધન મંડળ"ના ઉપક્રમથી ડૉ૦ ભગવાનલાલ ઇંદ્રજી શતાબ્દિની ઉજવણી નવેંબર તા૦ ૧૮ મીને રોજ થઈ હતી. આ સમારંભમાં ભવને પૂરતો સહકાર આપ્યો હતો અને ગૂજરાતના એ સમર્થ પુરાતત્ત્વવિદને પોતાની શ્રદ્ધાંજલિ અર્પી હતી.

*

વિ૦ સં૦ ૧૯૯૬ કાર્તિકી પૂર્ણિમા (તા૦ ૨૬–૧૧–૧૯૩૯)ને રોજ ભવનની સંસ્થાપનાને એક વર્ષ પૂરૂં થયું હોવાથી ભવનનો વાર્ષિક મહોત્સવ તથા સાહિત્ય સંસદનો શરદુત્સવ સુંદરરીતે ઉજવાયો હતો. ભવનનાં અંગ્રેજી તથા હિન્દી ગૂજરાતી જર્નલોના પ્રથમ અંકો તે પ્રસંગે પ્રસિદ્ધ થયેલાં જાહેર કરવામાં આવ્યા હતા. બંને જર્નલોને સુપ્રતિષ્ઠિત વિદ્વાનો અને સામયિકો તરફથી પ્રેરક આવકાર મળ્યો છે.

*

આ સત્ર દરમ્યાન પણ ભવનના અધ્યાપકોએ મુંબઈ યુનીવર્સિટીની એમ. એ. ની પરીક્ષા માટે તૈયારી કરતા વિદ્યાર્થીઓના વર્ગો ચાલુ રાખ્યા હતા.

*

ભારતીય વિદ્યાનો ઉચ્ચતર અભ્યાસ કરતા આશાસ્પદ વિદ્યાર્થીઓને ઉત્તેજન આપવાના હેતુથી ભવને "રીસર્ચ સ્ટુડન્ટશીપ્સ"ની યોજના કરી છે. તદનુસાર ચાલુ સત્રથી શ્રી મુકુન્દરાય બા૦ ત્રિવેદી, બી. એ. તથા શ્રી હરિવલ્લભ ચુ૦ ભાયાણી, બી. એ. ને શિષ્યવૃત્તિ આપી એમની પાસે ભવનના અધ્યાપકોની દેખરેખ હેઠળ અભ્યાસ કરાવવામાં આવે છે.

*

આ સત્રમાં પણ "ભારતીય સંસ્કૃતિ" ઉપરની ભવને શરૂ કરેલી જ્ઞાનવર્ધક વ્યાખ્યાનમાળા ચાલુ રાખવામાં આવી હતી. સત્ર દરમ્યાન કુલ ૧૦ વ્યાખ્યાનો તેમા અપાયાં હતાં.

*

મુંબઈ યુનીવર્સિટીએ ભવનના ડિરેક્ટર ડૉ૦ મણિલાલ પટેલને "પીએચ. ડી (સંસ્કૃત) ડીગ્રી માટેના યુનિવર્સિટી અધ્યાપક" તરીકે સ્વીકાર્યા છે. એમની દોરવણી પ્રમાણે શ્રી૦ અચ્યુત દ૦ પુસાલકર એમ. એ., એલ્‌એલ. બી. "વાયુપુરાણ" ઉપર

અને શ્રી૦ અમૃતલાલ સ૦ ગોપાણિ, એમ. એ. "જ્ઞાનપઞ્ચમીકથા" ઉપર થીસીસ (મહાનિબંધ) તૈયાર કરી રહ્યા છે, જેને તેઓ પીએચ. ડી. ની ડીગ્રી માટે યુનિવર્સિટી સમક્ષ રજુ કરશે.

*

ભવનના સભ્યોની વાર્ષિક સભા તા૦ ૧૧-૨-૧૯૪૦ને રોજ મળી હતી. સભા સમક્ષ વાર્ષિક હેવાલ તથા રજીસ્ટર્ડ એકાઉન્ટન્ટસ્-ઑડિટર્સ મેસર્સ જયન્તીલાલ ઠક્કર એન્ડ કું૦ દ્વારા તપાસાવેલ સરવૈયું તથા આવક-ખર્ચનો હિસાબ રજુ કરવામાં આવ્યાં હતાં, જે સભાએ મંજુર કર્યાં હતાં. ઈ૦ સ૦ ૧૯૪૦ માટેની કાર્યવાહક સમિતિની નીમણુક પણ સભાએ કરી હતી.

*

ભવન માટે શ્રી ધર્માનંદ કોસંબીએ સંપાદિત કરેલ विसुद्धिमग्ग (બુદ્ધઘોષ કૃત) પાલીભાષાગ્રંથ છપાઈ ગયો છે. એકાદ માસમાં તે भारतीय विद्या – ग्रन्थावलिના પ્રથમ પુસ્તક તરીકે બહાર પડશે. સુપ્રસિદ્ધ જર્મન વિદ્વાન ડૉ૦ હરમાન યાકોબીના અપભ્રંશ ભાષા ઉપરના નિબંધોનું અંગ્રેજી ભાષાંતર ડૉ૦ મણિલાલ પટેલે તૈયાર કર્યું છે તે પણ થોડા જ સમયમાં છપાવા જશે. ભવનના અધ્યાપકો અન્ય કેટલાક સંશોધનગ્રન્થો પણ તૈયાર કરી રહ્યા છે.

*

તિરુપત્તિ ખાતે ઇસ્ટરમાં મળેલી દશમી અખિલ-ભારતવર્ષીય ઓરિયેન્ટલ કૉન્ફ્રન્સમાં ભવનના પ્રતિનિધિ તરીકે ડૉ૦ મણિલાલ પટેલે ભાગ લીધો હતો. એમણે ઉક્ત કૉન્ફરન્સના વેદ-વિભાગ સમક્ષ એક અને ભાષાશાસ્ત્ર-વિભાગ સમક્ષ એક એમ બે નિબંધો વાંચ્યા હતા. કૉન્ફરન્સની કાઉન્સિલે એક ખાસ ઠરાવદ્વારા ભવનની પ્રવૃત્તિઓની સંતોષપૂર્વક નોંધ લીધી હતી.

*

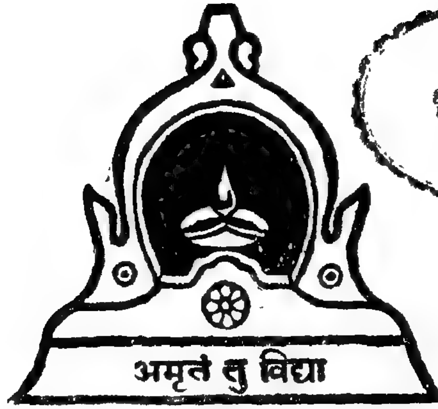
હૈદ્રાબાદ (દક્ષિણ) ખાતે ભરાનાર આવતી અગિયારમી અખિલભારતવર્ષીય ઓરિએન્ટલ કૉન્ફરન્સના વેદ-વિભાગના પ્રમુખ તરીકે ભવનના ડિરેકટર ડૉ૦ મણિલાલ પટેલની વરણી થઈ છે.

*

તા૦ ૩૧-૩-૧૯૪૦ ને રોજ શ્રી ફૉર્બસ ગુજરાતી સભાનો ૭૫મો વાર્ષિક ઉત્સવ ઉજવવામાં આવ્યો હતો. આ શુભપ્રસંગે શ્રી ફૉર્બસ ગુજરાતી સભાને ભવન હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને સભા દ્વારા ગુજરાતી સાહિત્યની થતી સતત સુંદર સેવાની નોંધ લે છે.

*

શ્રી મુંબાદેવી સંસ્કૃત પાઠશાળાનું કાર્ય સારી રીતે ચાલી રહ્યું છે. બનારસની ગવર્નમેંટ સંસ્કૃત કૉલેજ તરફથી લેવાતી સાહિત્ય-શાસ્ત્રી પરીક્ષાના તૃતીય ખંડની પરીક્ષા બે વિદ્યાર્થીઓએ, વ્યાકરણ મધ્યમા (દ્વિતીય ખંડની) પરીક્ષા એક વિદ્યાર્થીએ, સર્વશાસ્ત્ર સાધારણ પ્રથમાની પરીક્ષા બે વિદ્યાર્થીઓએ, અને બૅંગાલ ગવર્નમેંટ સંસ્કૃત એસોસિયેશન (કલકત્તા) તરફથી લેવાતી કાવ્ય પ્રથમા પરીક્ષા બે વિદ્યાર્થીઓએ આ સત્રમાં આપી છે.



भारतीय विद्या

प्रथम वर्ष, द्वितीय अंक] ❀ [माघ, वि० सं० १९९६

ग्रीक संसर्ग पहेलांनुं आर्यज्योतिष

*

लेखक – अ० स० गोपाणि एम्. ए. मर् कीकाभाई प्रेमचंद्र प्रोफेसर ओफ
जैन स्टडीझः भारतीय विद्याभवन

संस्कृतिना ज्वलंत प्रतीक समा वेदो, तत्त्वज्ञानमां सांख्य–वैशेषिक–न्याय–बौद्ध अने जैन दर्शनो, समाजशास्त्रना नियमो माटे महर्षि मनु निर्मित मनुस्मृति, राजनीति माटे कौटिलीय अर्थशास्त्र, रतिशास्त्रमां मेरी स्टोप्स् अने हेवलोक एलीसने पण क्यांय टपी जाय एवुं वात्स्यायनमुनि प्रणीत कामशास्त्र, मेकडूगळना मानसशास्त्रना सिद्धांतो करतांय सचोट आलेखन करतुं भगवान पतञ्जलिनुं योगशास्त्र, जीवविद्याने लगतो जैनोनो षड्जीवनिकायनो सिद्धांत, साहित्यमां शेकसपीअरने भूलावी दे तेवा महाकवि भासनां अने कविकुळगुरु कालिदासनां अप्रतिम नाटको, चिकित्साना अमोघ सूत्रो प्रतिपादन करती चरकसंहिता, आर्षद्रष्टिथी शारीर बाबतो रजु करती वेधक अने तलस्पर्शी शुश्रुत संहिता–ईत्यादि ईत्यादि द्वारा आर्य संस्कृतिनी अपूर्वता अने सर्वोच्चता सिद्ध थई चूकी छे तेम ज्योतिषमां पण गहन ज्ञाननी साक्षी आपता ब्राह्मणग्रन्थ ज्योतिष वेदांग अने जैनग्रन्थ सूर्यप्रज्ञप्ति द्वारा आर्यसंस्कृतिनी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध थई शके तेम छे.

ज्योतिष वेदांग आर्योनो प्राचीनतम ज्योतिष विषयक ग्रन्थ छे. तेमां आवता विषुववृत्तविषयक श्लोकना[1] आधारे कै० वा० दीक्षिते 'भारतीय ज्योतिःशास्त्राचे

---

1 ज्योतिष वेदांग श्लोक, ७. यजुःपाठ.
१.२.१.

ઇતિહાસ'માં તેનો રચનાસમય ઈ૦ સ૦ પૂ૦ ૧૪૦૦નો મુકર્રર કર્યો છે.[2] આ સ્થળે એટલું જણાવવું જોઇએ કે પોતાની "હિન્દુ એસ્ટ્રોનોમી"માં, ઈ૦ સ૦ પૂ૦ ૪૦૦થી ઈ૦ સ૦ ૪૦૦ સુધીનો જે સમય ઉપર્યુક્ત પુસ્તકના સંબંધમાં કાયેએ નિર્ણીત કર્યો છે તે હવે ખોટું ઠર્યું છે. કારણ કે, એક તો એમાં ગ્રીક પ્રભાવ દ્રષ્ટિગોચર થતો નથી અને બીજું વેદકાળના પ્રાન્ત ભાગમાં જ્યોતિષ વેદાંગને રચાયેલ માનીએ તો પણ, એને ઈ૦ સ૦ પૂ૦ છટ્ઠી શતાબ્દિમાં મૂકવો જોઇએ. એમાં આવતા "રાશિ" શબ્દ ઉપરથી ભ્રમણમાં પડી, પ્રો૦ વેબરનું જે અનુમાન[3] કે એના ઉપર ગ્રીક પ્રભાવ પડેલ છે તે પારસ્પરિક અન્વય તપાસતાં મિથ્યા ઠરે છે. કારણ કે "રાશિ" શબ્દ ત્યાં ત્રિરાશિ–પંચરાશિ એવા ગાણિતિક પ્રયોગ[4] માટે વપરાએલ છે. આ જ્યોતિષ વેદાંગના ત્રણ સંસ્કરણો છે—ઋક્, યજુસ અને અથર્વ. યજ્ઞકાલનો નિર્ણય કરવા માટે તેને રચવામાં આવ્યું હતું.[5] ઈ૦ સ૦ પૂ૦ ત્રીજી શતાબ્દિથી ગ્રીક જ્યોતિષનો પ્રભાવ ગમે તેટલો સુરેખરીતે પડ્યો હોય તો પણ[6] જ્યોતિષના મૂળસિદ્ધાંત પરત્વે–ખગોળના લગભગ અનીન્દ્રિય જેવા ગણાતા વિષય સંબંધે આ ગ્રન્થમાં આર્યઋષિ–મુનિઓનાં જે અદ્ભૂત જ્ઞાનની પ્રતીતિ આપણને થાય છે તે જોતાં એમ સહજ માનવા મન લલચાઈ જાય છે કે આર્યસંસ્કૃતિનો ઇતિહાસ જેટલો પ્રાચીન આપણને જણાયો છે તેનાથી તે ઘણો ઘણો પ્રાચીન હોવો જોઇએ. પંજિકા ઉપર જો કોઈ પ્રથમ વિસ્તીર્ણ ગ્રન્થ હોય તો તે જ્યોતિષ વેદાંગ છે.[7] તેમાં એક વર્ષના ૩૬૬ દિવસ ગણ્યા છે. પાંચ વર્ષનો એક યુગ, જેમાં ૧૮૩૦ દિવસ આવે. ચંદ્ર પોતાનું પરિભ્રમણ નક્ષત્ર ચક્ર આસપાસ ૬૭ વખત કરી રહે એટલા વખતમાં તે ચક્ર આસપાસ સૂર્ય પાંચ વખત પરિભ્રમણ કરે. અને એ વખત દરમ્યાન સૂર્ય અને ચંદ્ર બન્નેનો સંયોગ ૬૨ વખત થાય છે. આ ગણતરી પ્રમાણે ત્રીશ સાવન દિનોવાળા ૬૧ સાવન માસ[8] થાય છે. એક વર્ષમાં ૧૨૪ પર્વ આવે જેમાંથી ૬૨ પૂર્ણિમા અને ૬૨ અમાસ આવે. પાંચવર્ષી એક યુગમાં ૬૨ ચાંદ્રમાસ આવે. પાંચ સૌર વર્ષનો એક યુગ બનાવવા માટે પાંચ ચાંદ્ર વર્ષમાં બે અધિક માસ ઉમેરવા પડતા. સૂર્ય, ચંદ્ર, અને ધનિષ્ઠા-નક્ષત્રના સંયોગ વખતે માઘ શુક્લ પ્રતિપદાને દિવસે ઉત્તરાયણ હોય તે વખતે આ યુગનો આદ્ય દિવસ ગણવો અર્થાત્ તે દિવસથી યુગારંભ થયો એમ ગણવું.[9] સાઠ ચાંદ્ર માસના પાંચવર્ષી એક યુગમાં, બે અધિક માસો દર અઢી વર્ષને અંતે, એટલે કે એક માસ પ્રથમ યુગના ત્રીજા વર્ષના શ્રાવણ પહેલાં અને બીજો માસ બીજા યુગના આદ્ય માસ માઘ પહેલાં, એમ બે માસ ઉમેરવામાં આવતા હતા. જ્યોતિષ વેદાંગમાં આખી ગણનાનો મૂળભૂત પાયો નક્ષત્ર છે. એક નક્ષત્રના એક સો અને ચોવીશ અંશ કરવામાં આવે છે. દિવસ રાત્રિના ત્રીશ ભાગ કરવામાં આવે છે, જે

---

2 દીક્ષિતને આધારે ઈ. સ. પૂ. ૧૪૦૦, કોલબ્રૂકના મતે ઇ. સ. પૂ. ૧૨૦૦ અને આર્ચબીશપ પ્રેટના અભિપ્રાય મુજબ ઈ સ. પૂ. ૧૧૯૨. 3 સી૦ વી૦ વૈદ્યઃ હિસ્ટરી ઑફ સંસ્કૃત લિટરેચર વૉ૦ ૧, વિભાગ ૩. પૃ૦ ૯૩. 4 પૂર્વોક્ત પુસ્તક વૉ૦ ૧, વિ૦ ૩, પૃ૦ ૯૩. 5 જ્યો૦ વે૦ શ્લો. ૨ યજુ.પાઠ. 6 કીથઃ હિસ્ટરી ઑફ સંસ્કૃત લીટરેચર. પૃ૦ ૫૩૦. 7 કીથ પૂર્વોક્ત ગ્રંથ, પૃ૦ ૫૧૬. 8 સાવનમાસ એટલે ત્રીશ દિવસનો માસ. ચાંદ્રમાસ એટલે અમાસથી અમાસ સુધીનો સમય. નાક્ષત્રમાસ ચંદ્રને સત્તાવીશ નક્ષત્ર ફરી વળતાં લાગતો સમય. 9 જ્યો૦ વે૦ ૬ યજુઃ પાઠ.

દરેકને મુહૂર્ત્ત કહેવામાં આવે છે. અને આ દરેક મુહૂર્ત્તને બે ભાગમાં વિભક્ત કરવામાં આવેલ છે જેને નાડી સંજ્ઞા આપેલ છે. એક નાડીની ૧૦$\frac{1}{20}$ કળા હોય છે. ગ્રીકપ્રભાવાન્વિત સિદ્ધાન્તગ્રન્થોમાં દિવસની સાઠ ઘડી અને એક ઘડીની સાઠપળ એ પ્રમાણે કાળ વિભાગ કરવામાં આવ્યો છે. ઈ૦ સ૦ પૂ૦ પ્રથમ શતાબ્દિથી પ્રચલિત થયેલ સિદ્ધાન્તગ્રન્થોની આ પદ્ધતિને લીધે સંભવિત છે કે જ્યોતિષ વેદાંગની ઉપર્યુક્ત શૈલી છોડી દેવામાં આવી હોય અને એથી જ એમાં આવતો અમુક ભાગ હવે સમજી શકાતો ન હોય અને આખરી નિર્ણય ઉપર આવવામાં મુશ્કેલી પડતી હોય.[10] જ્યોતિષ વેદાંગમાં એક વર્ષના બાર સૌરમાસ, ઉત્તરાયણ અને દક્ષિણાયન એમ બે અયન, અને શિશિરાદિ છ ઋતુઓ ગણવામાં આવી છે. ચંદ્ર અને સૂર્ય સિવાય કોઇપણ ગ્રહોનો નામોલ્લેખ નથી. નક્ષત્રની સંખ્યા સત્તાવીશ છે.[11] માસ અમાંત ગણ્યા છે.

હવે જૈનોનો સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ ગ્રંથ લઇએ. આ ગ્રંથ જૈનોના પાંચમા ઉપાંગ તરીકે પ્રખ્યાત છે. જંબુદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ અને ચંદ્રપ્રજ્ઞપ્તિ અનુક્રમે છઠ્ઠા અને સાતમા ઉપાંગ છે. આ પ્રજ્ઞપ્તિ-ત્રયીમાં ખગોળ, ભૂગોળ અને જ્યોતિષ્ વિષયક ઘણી ઘણી બાબતો આવે છે અને તે બાબતો એક બીજાના મંતવ્યને પોષક તથા પૂરક હોય છે. તેમાંય સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં તો એવી બાબતો બહુ જ આવે છે કે જે બરાબરરીતે પ્રકાશિત થાય તો તેનાથી અનેક ઐતિહાસિક બાબતો ઉપર પ્રકાશ પડે તેમ છે.[12] ઈ૦ સ૦ ૧૮૮૦ ના જર્નલ ઓફ એસીઆટીક સોસાયટી ઓફ બંગાલના પૃ૦ ૧૦૭થી ૧૨૭; ૧૮૧થી ૨૦૬ માં પહેલી જ વાર ડૉ૦ થીબોએ એના ઉપર કલમ ચલાવેલી. જો કે એની પહેલાં લગભગ અડધી સદી પૂર્વે ફ્રેંચ વિદ્વાન એડવર્ડ બાયટે ઈ૦ સ૦ ૧૮૪૧માં Jurnal Asiatiqueમાં (પૃષ્ઠ ૫૯૨-૬૩૯) એક લેખમાળા પ્રકટ કરેલી અને તેમાં તે વિદ્વાને એવું સિદ્ધ કરવા ચેષ્ટા કરેલી કે સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિગત વાતોનું ચીનદેશીય જ્યોતિષિક ગ્રન્થ ચ્યૂ. પી. (Theou-pey) સાથે ઘણું જ સામ્ય છે; પરંતુ એ ઉપક્રમમાં કશું જ વજૂદ નથી.[13] ઈ૦ સ૦ ૧૯૨૫-૨૭ના જર્નલ ઓફ મીથીક સોસાયટીમાં આર૦ શામશાસ્ત્રીએ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિનો અંગ્રેજી અનુવાદ પ્રસિદ્ધ કરેલો છે. પ્રસંગવશ જણાયું કે તે ઉપરાંત, જૈનોના દસ પયન્ના પૈકીના ગણિવિદ્યા નામના આઠમા પયન્ના (પ્રકીર્ણક)માં પણ જ્યોતિષિક વિગતો આવે છે: જેવી કે:-બલાબલવિધિ, નવબલ, તિથિ, નક્ષત્ર, કરણ, ગ્રહ-દિવસ-લગ્ન વગેરે વગેરે. આમાં ૮૨ ગાથા છે. આ પ્રકીર્ણકો પદ્યબધ છે અને રચના પદ્ધતિમાં વેદના પરિશિષ્ટોને મળતાં આવે છે. આ ગણિવિદ્યા નામના આઠમા પયન્નાના સાઠમા શ્લોકમાં પહેલવહેલો હોરાશબ્દ નજરે પડે છે. આ પયન્નાનો આધાર સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ હોય તો પણ આ શબ્દનો ઉપયોગ ગણિવિદ્યાને ગ્રીક પ્રભાવાન્વિત ઠરાવે છે અને તેથી સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ પછી જ રચાયાનું સિદ્ધ

---

10 બી૦ જી૦ ટિળક વેદિક ક્રોનોલાજી એન્ડ વેદાંગજ્યોતિષ, પૃ૦ ૧૦૪. 11 જૂઓ. જ્યો૦ વે૦ શ્લોક, ૧૮ યજુ૦ પાઠ. 12 ડૉ૦ એચ૦ ડબલ્યુ૦ સ્મીથ સાહેબનું, પ્રો. વેબરના સેક્રેડ લીટરેચર ઓફ ધી જૈનાઝનુ અંગ્રેજી ભાષાંતર, પૃ૦ ૭૮. 12 દેખો:-ઈંડિયન હિસ્ટોરીકલ ક્વોર્ટર્લિ, માર્ચ-ડિસેમ્બર ૧૯૩૨માં સુકુમાર રંજન દાસનો "પ્રી જૈન સ્કુલ ઓફ એસ્ટ્રોનોમી" શીર્ષક લેખ; તથા ડા૦ સ્મીથનું પૂર્વોક્ત ભાષાંતર, પૃ૦ ૭૮.

કરે છે. આ દસ પ્રકીર્ણક ઉપરાંત બીજાં વીસ પ્રકીર્ણકો માનવામાં આવે છે જેમાંનું જ્યોતિષ્કરંડક નામનું આઠમું પ્રકીર્ણક સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાંથી જ ઉદ્ધૃત કરવામાં આવ્યું છે. તેમાં જંબૂદ્વીપમાં ચંદ્ર–સૂર્યનો મંડળવિભાગ, તાપક્ષેત્ર ઈત્યાદિ એકવીશ અધિકાર ચર્ચવામાં આવ્યા છે. તેના ઉપર મલયગિરિની ટીકા છે. આ બધા સાહિત્યને સળંગ વાંચી જવાથી જ ખબર પડે કે સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં શા શા વિષયો આવે છે; શું ક્ષેપક છે; ગ્રીક પ્રભાવ કયા ગ્રન્થમાં અને ક્યારે દેખાયો? બ્રાહ્મણગ્રંથોની અસર કેટલા પ્રમાણમાં પડી છે? જૈન જ્યોતિષના નવા મતવ્યો શાં શાં છે? વગેરે વગેરે. અત્યારે તો આપણે, ગ્રીક પ્રભાવથી તદ્દન મુક્ત અને ઉપાંગ સૂત્ર હોઇને પણ ભગવાન મહાવીરે અર્થરૂપે કહેલ અને ગણધરાદિકોએ સૂત્રરૂપે સૂત્રિત કરેલ[14] અંગગ્રંથો જેટલું જ માહાત્મ્ય ધરાવતી સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિને જ સમજવા પ્રયત્ન કરશું. ઉપાંગ છે તેથી તેનું મહત્ત્વ અંગો કરતાં ઓછું છે એમ સમજવાનું જરાય કારણ નથી–અને તેનો હેતુ એ છે કે ભગવાન મહાવીરે પરંપરા દ્વારા મેળવેલ જ્ઞાન પોતાના ગણધરોને આપ્યું જેમણે અંગ-ઉપાંગની રચના કરી. અર્થાત્ ગણધરો કે સ્થવિરોએ પુસ્તકરૂપે રચના કરી છે તેથી તેની અગત્ય જરાય ઘટતી નથી.[15]

સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં આવતા વીશ પાહુડોનું સંક્ષિપ્ત વર્ગીકરણ નીચે પ્રમાણે કરી શકાયઃ–

(૧) મંડલગતિસંખ્યા, (૨) સૂર્યનો તિર્યક્ પરિભ્રમ, (૩) પ્રાકાશ્ય ક્ષેત્ર પરિમાણ, (૪) પ્રકાશસંસ્થાન, (૫) લેશ્યાપ્રતિઘાત, (૬) ઓજઃસંસ્થિતિ, (૭) સૂર્યાવારક, (૮) ઉદયસંસ્થિતિ, (૯) પૌરુષીછાયાપ્રમાણ, (૧૦) યોગસ્વરૂપ, (૧૧) સંવત્સરોની આદિ તથા અંત, (૧૨) સંવત્સરોના ભેદ, (૧૩) ચંદ્રની વૃદ્ધિ તથા અપવૃદ્ધિ, (૧૪) જ્યોત્સ્ના પ્રમાણ, (૧૫) શીઘ્રગતિ નિર્ણય, (૧૬) જ્યોત્સ્ના લક્ષણ, (૧૭) ચ્યવન અને ઉપપાત, (૧૮) ચંદ્ર–સૂર્ય આદિની ઊંચાઈ, (૧૯) ચંદ્ર–સૂર્યનું પરિમાણ અને (૨૦) ચંદ્ર–સૂર્યનો અનુભાવ.

એક સંવત્સરના ૩૬૬ દિવસ ગણ્યા છે. તેમાં બાર સૌર માસ–બે અયન–છ ઋતુઓ આવે છે. પાંચ વર્ષના એક યુગવાળી ગણતરીનો પણ આમાં આશરો લીધેલો છે. નક્ષત્રોની સંખ્યા અભિજિત્ સહિત અઠ્ઠાવીશની ગણાવી છે.[16] નક્ષત્ર ચક્ર આસપાસ ચંદ્ર પોતાનું પરિભ્રમણ ૬૭ વખત કરી રહે એટલા વખતમાં સૂર્ય પાંચ વખત પરિભ્રમણ કરી રહે. અને આ સમય દરમ્યાન ચંદ્ર–સૂર્યનો સંયોગ બાસઠ વખત થાય. આ ઉપરાંત, તીથિ–નક્ષત્રોનો ભોગાનયન કાળ પણ જ્યોતિષવેદાંગ સાથે તદ્દન મળતો આવે છે. વર્ષનો આરંભ શ્રાવણથી થતો તથા માસ પૂર્ણિમાંત હતા.[17] ચંદ્ર–સૂર્ય ઉપરાંત શનિ તથા બૃહસ્પતિના નામોનો ઉલ્લેખ પણ તેમાં છે.[18] મેષ–

---

14 આવશ્યક નિર્યુક્તિ, ગાથા ૯૨. 15 વિન્ટરનિત્ઝ. હિસ્ટરી ઓફ ઇંડિયન લિટરેચરઃ વો૦ ૨, પૃ૦ ૪૩૨–૪૩૩. 16 સરખાવો· जंबूदीवे दीवे अभिइवज्जेहिं णक्खत्तेहिं संववहारे वट्टई । સમવાયાંગ સૂત્ર, ૨૭ મો સમવાય. 17 સરખાવો જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિમાં પ્રથમ ગણધર ગૌતમ અપરનામા ઇન્દ્રભૂતિ શ્રમણ ભગવાન મહાવીરને પ્રશ્ન કરે છે "मासा णं भंते ! किमाइया ? पक्खा णं भंते ! किमाइया ?" તેના જવાબમાં ભગવાન્ કહે છે गोअमा ! सावणाइया मासा; बहुलाइया पक्खा । 18 ડૉઃ સ્મીથનું વેબરના "સેક્રેડ લીટરેચર ઓફ ધી જૈનાઝ"નું અંગ્રેજી ભાષાંતર, પૃ૦ ૭૮.

વૃષભાદિ અર્થમાં રાશિ શબ્દનો પ્રયોગ દૃષ્ટિગોચર થતો નથી અર્થાત્ ગ્રીક પ્રભાવ પહેલાનો આ ગ્રંથ છે.[19]

સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં પ્રરૂપેલ બે સૂર્ય અને બે ચંદ્રવાળી બાબત[20]નો આધાર સમસ્ત ભૂમંડળને ચાર ખંડમાં વિભક્ત કરવામાં આવ્યું છે એ સૈદ્ધાન્તિક વિગત ઉપર જ છે. દરેક સૂર્યની વારી એક એક દિવસને આંતરે આવે છે અર્થાત્ આજે જે સૂર્ય આ ખંડને અજવાળી રહ્યો છે તે સૂર્ય આવતી કાલે આ ખંડમાં નહિ આવતાં પરમ દિવસે આવશે એટલે કે એને એક ચક્ર પરિભ્રમણ કરતાં બે દિવસ લાગવાના. તે ઉપરાંત, આ બન્ને સૂર્યો એક બીજાથી વિરૂદ્ધ દિશામાં રહેવાના. ટુંકમાં, જ્યોતિષિક પરિભાષામાં કહીએ તો બન્ને સૂર્યો પડભાંતર રહેવાના. આવી વિચિત્ર કલ્પના કરવામાં આવી છે છતાં સૂર્યની ઉદયાસ્તરૂપી દૈનિકી ગતિ, નક્ષત્રભ્રમણરૂપી વાર્ષિકી ગતિ, અને અયનરૂપી ગતિ સમજાવવામાં એના પ્રરૂપનારને જરાપણ મુશ્કેલી નડતી નથી.

રાહુદ્વારા સૂર્ય-ચંદ્રનો ગ્રાસ થઈ સૂર્યગ્રહણ કે ચંદ્રગ્રહણ ઉત્પન્ન થાય છે એ બાબત સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ સ્વીકારતી નથી. સૂર્ય-ચંદ્રની નીચેથી જતાં આવતાં રાહુ જ્યારે એઓની લેશ્યાને (તેજને) આચ્છાદિત કરે છે ત્યારે લોકો કહે છે કે તેઓને રાહુએ પકડી રાખ્યા છે; વળી જ્યારે તેજને આવરતો આવરતો તેઓની પડખેથી રાહુ ચાલ્યો જાય છે ત્યારે લોકો કહે છે કે સૂર્ય કે ચંદ્રમાએ રાહુની કુક્ષિને ભેદી નાખી છે. વળી જ્યારે રાહુ એવી જ રીતે તેઓની લેશ્યાને આવરીને ખસી જાય છે ત્યારે લોકો કહે છે કે રાહુએ સૂર્ય-ચંદ્રને વમી કાઢ્યા છે. વળી રાહુ જ્યારે જ્યારે એ બેના મધ્યમાંથી પસાર થાય છે ત્યારે લોકો કહે છે કે રાહુએ તેમને ભેદ્યા છે. વળી જ્યારે રાહુ સૂર્યને કે ચંદ્રને સર્વથા આવરી રહે છે ત્યારે પણ સત્ય સ્વરૂપથી અજ્ઞાન એવા લોકો કહે છે કે જાણે ક્ષુધાતુર હોય ની એવા રાહુએ સૂર્ય-ચંદ્રને ગ્રસ્યા છે. રાહુના પણ પર્વરાહુ અને નિત્યરાહુ એમ બે પ્રકાર છે. નિત્યરાહુનું વિમાન એકદમ શ્યામ છે અને તે વિમાન ચંદ્રના વિમાનની નીચે ચંદ્રથી ચાર આંગળ દૂર રહીને ચાલે છે. તેને આવરીને ધીમે ધીમે ચાલ્યા કરે છે તેથી જ ચદ્રમાં વૃદ્ધિ-હાનિનો ભાસ થાય છે.[21] ઉત્તમ વસ્ત્રાભૂષણ અને પુષ્પમાળાથી સૌન્દર્યવાન્ અને મહાન્ સમૃદ્ધિથી યુક્ત એવા આ રાહુને સર્વ અવયવો સપૂર્ણપણે છે. પણ લોકોને વિષે એ જેમ માત્ર મસ્તક રૂપે જ પ્રસિદ્ધ છે તેવું નથી. વળી આ રાહુનાં નવ નામ છે: તે નીચે પ્રમાણે છે:-શૃંગાટક, જટિલ, ક્ષત્રક, ખરક, દુર્ધર, સગર, મત્સ્ય, કૃષ્ણસર્પ અને કચ્છપ; તે ઉપરાંત એના શ્યામ, નીલ, રક્ત, પીત અને શ્વેત એમ પાંચ રંગના મનોહર વિમાન છે.[22] જ્યારે પર્વરાહુ સૂર્ય કે ચંદ્રની લેશ્યાને-તેજને આવરતો છતો યથોક્ત

19 ઇંડિયન એન્ટીક્વેરી, વૉ૦ ૨૧, પૃ૦ ૧૪-૧૫. આ જ વાતનુ સમર્થન પ્રો૦ હર્મન યાકોબી કરે છે-દેખો સેક્રેડ બુક્સ્ ઓફ ધી ઇસ્ટ, વૉ૦ ૨૨. 20 સરખાવો જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિવાળો પાઠ-तया णं इह गयस्स मणुसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहियतेवट्ठेहिं जोअणसएहिं एगवीसाए सट्ठिभाएहिं जोअणस्स चंदे चक्खुफासं हव्वमागच्छइ ॥ 21 સરખાવો:—चंदस्स नेव हाणी नवि वुड्ढी वा अवट्ठिओ चंदो। सुक्किलभावस्स पुणो दीसइ वुड्ढी य हाणी य ॥ किण्हं राहुविमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहियं। चउरंगुलमप्पत्तं हिट्ठा चंदस्स तं चरइ ॥ तेण वड्ढइ चंदो परिहाणी वा वि होइ चंदस्स ॥ 22 જુઓ ભગવતી સૂત્ર, શતક ૧૨, ઉદ્દેશ ૬.

કાળે સૂર્ય કે ચંદ્રની નીચે જાય છે ત્યારે સૂર્ય–ચંદ્રનો યથાયોગ્ય ઉપરાગ થાય છે તે લોકોમાં ગ્રહણના નામથી ઓળખાય છે. આવી અને બીજી ઘણી સૂક્ષ્મ બાબતોની ચર્ચા સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં આવે છે જેને સવિસ્તર ચર્ચવાનો અવકાશ આ લેખમાં નથી.

જ્યોતિષ વેદાંગ અને સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં આવતી બાબતોમાં કેટલું સામ્ય છે અને કેટલું વૈષમ્ય છે તેની ટુંકામાં નોંધ લઈ લઇએ. પાંચવર્ષી એક યુગ, બાર સૌર માસનું એક વર્ષ, બે અયન, છ ઋતુઓ, તિથિ–નક્ષત્રનો ભોગાનયનઃ આટલી બાબતોમાં જ્યોતિષ વેદાંગ અને સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ વચ્ચે અદ્‌ભૂત સામ્ય છે. એ સિવાય, સૂર્ય–ચંદ્રના નક્ષત્ર–ચક્ર–પરિભ્રમણના સંબંધમાં પણ ધ્યાન ખેંચે તેવું સામ્ય છે. મુહુર્ત્ત–નાડી–અંશ–કળા વગેરે કાળગણનામાં પણ બન્ને વચ્ચે ઘણી જ સંગતિ છે. હવે બન્ને વચ્ચે રહેલા વૈષમ્ય તરફ દૃષ્ટિ કરીએ. સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિના સમયનિર્ણયમાં આ વૈષમ્ય ખરેખર માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જ્યોતિષ વેદાંગમાં યુગારંભ માઘશુક્લ પ્રતિપદાને દિવસે, ઉત્તરાયણ વખતે, જ્યારે સૂર્ય–ચંદ્ર અને ધનિષ્ઠાનક્ષત્રનો સંયોગ હોય ત્યારે થાય છે. સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ પ્રમાણે, આ જ લેખમાં આગળ કહેવાયું છે તેમ, યુગનો આરંભ શ્રાવણ માસથી થાય છે. જ્યો૦ વે૦ પ્રમાણે માસ અમાંત હતા, જ્યારે સૂ૦ પ્ર૦ અનુસાર પૂર્ણિમાંત હતા. જ્યો૦ વે૦ માં નક્ષત્ર સંખ્યા સત્તાવીશની છે; અભિજીત્‌નો નામનિર્દેશ તેમાં નથી, જ્યારે સૂ૦ પ્ર૦માં અભિજીત્‌ને સામેલ કરી અઠ્ઠાવીશ નક્ષત્રો ગણાવામાં આવેલા છે. જ્યો૦ વે૦માં સૂર્ય અને ચંદ્ર સિવાય કોઈ ગ્રહોનો નામોલ્લેખ સુદ્ધાં પણ નથી, જ્યારે સૂ૦ પ્ર૦ માં શનિ તથા ગુરુનો ઉલ્લેખ આવે છે. બે સૂર્ય અને બે ચંદ્રની કલ્પના તથા પર્વરાહુ અને નિત્યરાહુનો સિદ્ધાંત આ બે બાબતો પણ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિની સુવાંગ હોય તેમ જણાય છે. શ્રાવણ માસથી થતો યુગારંભ, માસ પૂર્ણિમાંત હતો તે બાબત, અઠ્ઠાવીશ નક્ષત્રો, તેમ જ શનિ તથા ગુરુનો ઉલ્લેખઃ આ ચાર બાબતો આર્યોના જ્યોતિષિક જ્ઞાનમાં પ્રગતિ સૂચવે છે, અને તેથી સૂ૦ પ્ર૦, જ્યો૦ વે૦ પછી રચાઈ હોય એવું અનુમાન કરવા તરફ આપણને લઈ જાય છે, જે આ જ લેખમાં આપણે આગળ જોશું.

પહેલાં રાહુનો જૈન સિદ્ધાંત તથા બે સૂર્ય અને બે ચંદ્રવાળી બાબત આપણે તપાસી લઇએ. ચંદ્ર–સૂર્યનો ગ્રાસ રાહુદ્વારા થાય છે અને તેથી ચંદ્રગ્રહણ તથા સૂર્યગ્રહણ થાય છે એ સિદ્ધાંતને જેવીરીતે પૌરાણિક ગણવામાં આવ્યો છે અને તેથી માત્ર શ્રદ્ધાથી જ ગળે ઉતરી શકે તેમ છે તેવીરીતે પર્વરાહુ અને નિત્યરાહુ વાળો જૈન સિદ્ધાંત માત્ર શ્રદ્ધાથી જ માની શકાય તેવો છે અને તેથી વિજ્ઞાનની દૃષ્ટિએ એ ગ્રાહ્ય નથી એટલું જ કહેવું બસ થશે. બે ચંદ્ર અને બે સૂર્યવાળી બાબત પણ કાંઈક અંશે ઉપર્યુક્ત સિદ્ધાંત જેવી જ છે; છતાં જીવવિદ્યા–વિશ્વરચનાવિદ્યા–માનસશાસ્ત્ર જેવા જટિલ વિષયોમાં પણ મૌલિક અને સચોટ આર્ષ જ્ઞાન ધરાવનાર જૈન દ્રષ્ટાઓ આવી ઉપહસનીય બાબતનો અભ્યુપગમ આટલા બધા જોર શોરથી ન કરે એ પણ એટલું જ સત્યાંકિત છે. એટલે આ સિદ્ધાંતને આપણે જરા સૂક્ષ્મતાથી તપાસીએ.

મારૂં આ સ્પષ્ટ અને અસંદિગ્ધ મંતવ્ય છે કે વૈદિક કાળની બ્રાહ્મણ સંસ્કૃતિ સાથે સાથે જ જૈનોની શ્રમણ સંસ્કૃતિનો પ્રવાહ–આછો, ઘેરો–વહ્યાં કરતો હતો. અમુક

સંસ્કૃતિ પ્રાચીન અને અમુક અર્વાચીન એવું અનુમાન કરવું તે વધારે પડતું છે. કોઈકાળે પણ સમસ્ત જનતા એક જ સંસ્કૃતિની છત્રછાયા કે અસર નીચે હતી એવું કહેવું તે ઉતાવળું ગણાવું જોઇએ. મનુષ્ય માનસમાં જ કોઈ એવા પ્રકારની વિવિધતા છે કે તે કદિ એકધારૂં વલણ અખત્યાર કરી શકે જ નહિ. તદુપરાંત, ઇતિહાસજ્ઞોને પણ અવાર નવાર પોતાના મંતવ્યો બદલવા પડ્યાના દાખલાઓ વિપુળ છે. કઈ સંસ્કૃતિએ કઈ સંસ્કૃતિમાંથી કયાં તત્ત્વોને કેવીરીતે ક્યા સમયે અપનાવ્યા તેનો, ઉપલબ્ધ ઐતિહાસિક સામગ્રીદ્વારા સચોટ રદીયો આપવો, આપણે જેટલો માનીએ છીએ તેટલો સરળ નથી. એટલે એમ જ કહેવું ઉપસ્થિત થાય છે કે જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિના સ્રોતે વૈદિક કાળની બ્રાહ્મણ સંસ્કૃતિ સાથે સાથે વહ્યાં જ કર્યું છે. વળી જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ મૂળથી જ પોતાના તમામ સૂત્રોને અને સિદ્ધાંતોને મોઢે જ રાખતી આવેલી. કારણ કે આટલું તો નિર્વિવાદ પણે કહી શકાય તેમ છે કે જૈનોના તમામ સૂત્રો જે તે વખને મળ્યાં તે દેવર્દ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણના વખતમાં વિ૦ સં૦ ૫૧૦માં પુસ્તકારૂઢ થયાં એટલે બીજી સંસ્કૃતિઓમાં પણ સંઘર્ષ કાળમાં શું શું નષ્ટ થયું તે કહેવું લગભગ અશક્ય જેવું છે. તે ઉપરાંત વીરાત્ બીજી સદિમાં નંદરાજાના વખતમાં બારવર્ષી મહાભીષણ દુષ્કાળ પડ્યો, વીરાત્ છઠ્ઠા સૈકામાં બીજો બારવર્ષી દુષ્કાળ અને વીરાત્ દસમા સૈકામાં ત્રીજો દુષ્કાળઃ આવા ત્રણ દુષ્કાળોના આક્રમણથી જૈન શ્રમણોનું જ્ઞાન પુસ્તકારૂઢ ન્હોતું તેથી ઘણું જ નષ્ટ થઈ ગયું.[23] જૈનોના ત્રેવીશમા તીર્થંકર ભગવાન્ પાર્શ્વનાથ કે જેમને પહેલાં કાલ્પનિક વ્યક્તિ માનવામાં આવતા હતા તે એક ઐતિહાસિક પુરુષ હતા એમ હવે પાશ્ચાત્ય પંડિતોએ પણ સ્વીકાર્યું છે.[24] જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિના આદ્યદ્રષ્ટા તરીકે ભગવાન્ મહાવીરને ગણવા અને ત્યાંથી જ જૈન સંસ્કૃતિનો આરંભ ગણવો એ પણ એટલું જ ભૂલ ભરેલું છે.[25] બહુમાં બહુ તો તેમને આપણે જૈનમતના એક સુધારક કહી શકીએ – એટલે કે પ્રાચીન જૈન પરંપરાને તેમણે યુગને અનુકૂળ એવા વાતાવરણમાં મૂકી. જૈન સંસ્કૃતિનું વાઙ્મય પણ એટલું જ વિશાળ–વ્યાપક અને સર્વતોમુખી હતું.[26] જૈન શ્રમણ સસ્કૃતિનું સહઅસ્તિત્વ આ પ્રમાણે સ્વીકાર્યા પછી આપણે એ પણ જાણી લેવું ઘટે કે કોઈપણ સંસ્કૃતિના વિધાન કે સિદ્ધાન્તોને વિજ્ઞાનુસાર ઘટાવી શકવા આપણે અસમર્થ નીવડીએ ત્યારે તે સિદ્ધાંતોને તત્કાલીન વાતાવરણના પ્રકાશમાં આપણે જોવા જોઇએ અને તો જ તેનું ખરૂં મૂલ્યાંકન આપણે કરી શકીએ. એમ પણ ન હોઈ શકે કે જે સિદ્ધાંતની યથાર્થતા વિજ્ઞાનની દ્રષ્ટિએ હોય નહિ તે સિદ્ધાંત જ ખોટો. ઘણી વખત એમ બને છે કે એની યથાર્થતા વિજ્ઞાનને મોડી સમજાય. દાખલા તરીકે વનસ્પતિમાં જીવ છે એવા જૈન વિધાન તરફ વર્તમાન વિજ્ઞાન સૂગની દ્રષ્ટિએ જોતું. પરંતુ સર્ જગદીશ ચંદ્ર બોઝે અનેક વિશિષ્ટ પ્રયોગો પછી દુનિયાને બતાવ્યું ત્યારે વિજ્ઞાનને ન છૂટકે એ સ્વીકારવું પડ્યું. આટલી પ્રાસ્તાવિક ભૂમિકા પછી હવે આપણને એ સમજાવું કઠિન નહિ

23 જુઓ આચાર્ય હેમચંદ્રકૃત પરિશિષ્ટ પર્વ, સર્ગ ૯, શ્લો૦ ૫૫ થી ૫૮; તથા જૈન સાહિત્ય સંશોધક ખંડ ૨, અંક ૪, પૃ૦ ૬. 24 ગેરીનોઃ બીબ્લીઓગ્રાફી જૈન. 25 બેલવલકરઃ બ્રહ્મસૂત્રાઝ ઓફ બાદરાયણ, નોટસ્ પૃષ્ઠ ૧૦૭. 26 બાર્થઃ ધી રીલીજીયન્સ ઓફ ઇંડિયા, પૃષ્ઠ ૧૪૪.

લાગે કે બે ચંદ્ર અને બે સૂર્યવાળી માન્યતા પ્રાચીન સમયમાં જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિનું એક જ્યોતિષિક અંગ હતું અને જેનું જ્ઞાન સંપ્રદાય અને પરંપરાનુસાર બીજી જાતના જ્ઞાન પ્રવાહ સાથે સાથે ભગવાન મહાવીરે મેળવ્યું જે તેમણે ગણધરોને અર્થરૂપે કહ્યું અને ગણધરોએ એ જ્ઞાનને સૂત્રિત કર્યું કે જે સૂત્રિત જ્ઞાનને દેવર્દ્ધિ ગણિએ પુસ્તકારૂઢ કર્યું. પ્રાચીન ઇતિહાસ અને ઉપલબ્ધ સાધનને તપાસતાં સહેજે માલૂમ પડે છે કે ખુદ ઇશ્વર વિષે પણ અનેક ઉદ્દામ કલ્પનાઓ કરવામાં આવેલી છે તો બે ચંદ્ર અને બે સૂર્યવાળી બાબતનું તો પૂછવું જ શું? જૈનોની આ માન્યતા ઉપરથી આપણને એટલું તો જાણવાનું મળે છે જ કે સમસ્ત ભૂમંડળ ઉપર એક સાથે જ સૂર્યોદય અને એક સાથે જ સૂર્યાસ્ત થાય છે એમ તે વખતે પણ જૈનો ન્હોતા માનતા. પૃથ્વીના અમુક પ્રદેશમાં સૂર્યોદય થાય છે જ્યારે બીજા પ્રદેશમાં બરાબર તે જ વખતે સૂર્યાસ્ત હોય છે અને તે ઉપરથી જ તેઓ એકાધિક સૂર્ય–ચંદ્રની કલ્પના કરવા લલચાયા હોય. અર્થાત્ તત્કાલીન યુગના પ્રકાશમાં જ આ સિદ્ધાંતને આપણે જોવો રહ્યો. આવી અસબદ્ધ કલ્પનાઓ ૠગ્વેદ સુદ્ધાંમાં પણ મળી આવે છે. બીજી સંસ્કૃતિઓના ઇતિહાસમાં પણ આવી અનેકાનેક અસંબદ્ધ કલ્પનાઓ મળી આવે છે. બે ચદ્ર અને બે સૂર્યવાળી જૈન કલ્પનાને બરાબર મળતી આવે એવી માન્યતા ગ્રીકોના પ્રાચીન ઇતિહાસમાં પણ મળી આવે છે.[27] એટલે અસદિગ્ધપણે મારૂં માનવું એમ છે કે બે ચંદ્ર–બે સૂર્યવાળી બાબત અને પર્વરાહુ તથા નિત્યરાહુની કલ્પના પ્રાચીન જૈન શ્રમણસંસ્કૃતિના જ્યોતિષ વિષયક અંગ તરીકેની હોઈ તે પરંપરાનુસાર મહાવીર પ્રભુને સોંપાણી. અર્થાત્ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં આવતા આ વિધાનને આપણે પ્રાચીન અંશ માનવો જોઇએ. નક્ષત્રસખ્યાદિવાળી ચાર બાબતો કે જેનો ઉલ્લેખ આ જ લેખમાં આગળ કરેલો છે તે જ્યોતિષિક જ્ઞાનની પ્રગતિ બતાવનારી હોઈ જ્યોતિષ વેદાંગના રચનાકાળ પછીની હોવી જોઇએ. પરંતુ તે ચાર બાબતોમાં ગ્રીકપ્રભાવ જરાપણ નથી એટલે ગ્રીકોના સંસર્ગ પહેલાંની માનવામાં આપણને જરાપણ આપત્તિ નથી. આ બાબતની સવિસ્તર ચર્ચા નીચેની કંડિકામાં છે.

સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ જૈનોનું પાંચમું ઉપાંગસૂત્ર છે. અર્થરૂપે અરિહંતો તે કહેતા આવેલા અને ભગવાન મહાવીરે પણ તેને પોતાના ગણધરોને અર્થ રૂપે કહ્યું. ગણધરોએ સૂત્રરૂપે અર્થને સૂત્રિત કરી આપ્યો જે છેવટે દેવર્દ્ધિગણિએ પુસ્તકારૂઢ કર્યો. આ મુખ્ય વાત આપણી નજર આગળથી ખસવી ન જોઇએ. આ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ ઉપર આચાર્ય ભદ્રબાહુની નિર્યુકિત છે, જે ઉપલબ્ધ નથી. ભદ્રબાહુ એક જ નથી થયા એટલે નિર્યુક્તિકાર ભદ્રબાહુ ક્યા અને ક્યારે થયા તે તપાસીએ. પરંપરા પ્રમાણે ભદ્રબાહુ ચંદ્રગુપ્ત-મૌર્યના સમયમાં થયેલા મનાય છે. મહાવીર નિર્વાણપછી (વિ૦ સં૦ પૂ૦ ૪૭૦) વીશવર્ષે સુધર્મા, ચોસઠવર્ષે જંબૂ, પચોતેર વર્ષે પ્રભવ, અઠ્ઠાણું વર્ષે શય્યંભવ, એકસો અડતાલીશવર્ષે યશોભદ્ર, એકસો છપ્પનવર્ષે સંભૂતિવિજય અને એકસો સીત્તેર વર્ષે

---

27 એ' ટીઅસ (Aetius) લખે છે.–"ઝેનોફેન્સ (Xenophanes) પૃથ્વીના વિભાગ અને ઉપવિભાગો માટે અનેક સૂર્ય–ચંદ્રની કલ્પના કરે છે." હીથનું ગ્રીક મેથેમેટીક્સ, પૃષ્ઠ ૫૪.

ભદ્રબાહુ (સંભૂતિવિજયના લઘુ ગુરુભ્રાતા) કાળધર્મ પામ્યા.[28] આ ભદ્રબાહુએ બીજી પણ નિર્યુક્તિઓ રચી હતી.[29] કલ્પસૂત્ર પણ તેમણે જ રચ્યું હતું[30] અને કલ્પ-સૂત્રકાર ભદ્રબાહુ એ જ નિર્યુક્તિકાર ભદ્રબાહુ.[31] ભદ્રબાહુ સંહિતાના રચનાર ભદ્રબાહુ કે જેમને પરંપરા વરાહમિહિરના ભાઈ તરીકે ઓળખાવે છે તે ભદ્રબાહુએ કલ્પસૂત્રની રચના કરી ન હતી એમ ડૉ૦ હર્મન યાકોબીએ સિદ્ધ કર્યું છે.[32]

અમુક નિન્હવ અમુક વખતે થયો એવા તાત્પર્યવાળું વાક્ય, ભૂતકાળમાં થઈ જનાર માણસ, ભાવિ ઘટના વિષે કેમ લખી શકે ? એવી શંકા મુનિ ચતુરવિજયજી ઉઠાવે છે અને એમ સિદ્ધ કરવા માગે છે કે બધા નિન્હવો ઉત્પન્ન થઈ ગયા પછી જ આવશ્યક નિર્યુક્તિમાં ભદ્રબાહુ સ્વામીએ એમ લખ્યું હશે. છેલ્લો નિન્હવ રથવીરપુર નગરમાં વીરાત્ છસો અને નવ વર્ષે ઉત્પન્ન થયો. અર્થાત્ ભદ્રબાહુ સ્વામી એ સમય પછી જ થયા હોવા જોઇએ; કારણ કે આવી નોંધ અન્યથા પોતે કેવીરીતે કરી શકે ?[33] ઉપલક દૃષ્ટિએ આ દલીલ સબળ જેવી લાગે છે પરંતુ દેવર્દ્ધિગણિએ વલ્લભી વાચના પ્રસંગે આવા કેટલાક પાઠો પોતે ઉમેરેલા છે અને એના બીજા દાખલાઓ[34] પણ મળી આવે છે – એ બાબતનો વિચાર કરીએ છીએ ત્યારે દલીલ ટકી શકતી નથી. સારાંશ એ કે ભદ્રબાહુ સ્વામીએ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ નામના પાંચમા ઉપાંગસૂત્ર ઉપર નિર્યુક્તિ રચી હતી અને ભદ્રબાહુ સ્વામી વીરાત્ ૧૭૦ વર્ષ થયા હોઈ, ઇ૦ સ૦ પૂર્વે ત્રીજી શતાબ્દિમાં ચંદ્રગુપ્ત મૌર્યના સમયે જ તેઓ થયા હતા એમ નિષ્પન્ન થાય છે. એટલે એ તો સ્પષ્ટ જ થયું કે આ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિની સૂત્રરૂપે રચના વીર નિર્વાણ (વિ૦ સ૦ પૂ૦ ૪૭૦) પછી અને ભદ્ર-બાહુ સ્વામી કે જેઓ વિ૦ સં૦ પૂ૦ ત્રીજા સૈકામાં કાળધર્મ પામ્યા તેમના પહેલાં થઈ હોવી જોઇએ. આ મંતવ્યને પુષ્ટિ આપનારાં બીજાં પ્રમાણો એ છે કે સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં કોઇપણ ગ્રીકપ્રભાવ પ્રદર્શક રાશ્યાદિ જ્યોતિષિક પારિભાષિક શબ્દો નજરે ચડતા નથી. આ રીતેપણ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ નામના જૈન જ્યોતિષ ગ્રંથને આપણે વિ૦ સં૦ પૂર્વે ત્રીજી શતાબ્દિ પહેલાં મૂકી શકીએ. અભિજિત્‌ની નક્ષત્રોમાં ગણના, શનિ–ગુરુનો નામ નિર્દેશ, પૂર્ણિમાંત માસ, અને શ્રાવણ વદ એકમથી થતો યુગારંભઃ આ ચાર બાબતો જ્યોતિષ વેદાંગથી જૂદી પડતી હોઈ તેમ જ જ્યોતિષિક જ્ઞાનની પ્રગતિ બતાવતી હોઈ જૈનોના સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ ગ્રન્થને જ્યોતિષ વેદાંગ પછી મૂકવો જોઇએ. આ કથનને અનુકૂળ એવી માહિતી આપણને કૌટિલ્યના અર્થશાસ્ત્રમાંથી પણ મળે છે.

---

28 જુઓ, મુનિ જિનવિજયજી સંપાદિત ખરતર ગચ્છપટ્ટાવલિ સંગ્રહ, પૃષ્ઠ ૧૫–૧૬–૧૭. વિન્ટરનિત્ઝઃ હિસ્ટરી ઓફ સંસ્કૃત લીટરેચર, વૉ૦ ૨, પૃ૦ ૪૬૨. 29 આવશ્યક નિર્યુક્તિ, ગાથા ૮૨. 30 શાર્પેન્ટીયરઃ ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર, પૃષ્ઠ ૧૩–૧૪. 31 જુઓ વિન્ટરનિત્ઝ હિસ્ટરી ઑફ સંસ્કૃત લિટરેચર, વૉ૦ ૨, પૃષ્ઠ ૪૬૨. 32 જુઓ, યાકોબી સંપાદિત કલ્પસૂત્રની પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૪. 33 જુઓ, આત્માનંદ જન્મશતાબ્દિ સ્મારક ગ્રંથ. મુનિ ચતુરવિજયજીવાળો ભદ્રબાહુ સ્વામી શીર્ષક લેખ, પૃષ્ઠ ૨૨–૨૩. 34 ઠાણાંગસૂત્ર–સાતમું સ્થાન. અર્થરૂપે તો અંગસૂત્રની રચના ભગવાન મહાવીરે જ કરી તેની સાત નિન્હવો કે જેને થવામાં તેમના નિર્વાણ પછી લગભગ સાત શતાબ્દિ લાગી તેનો ઉલ્લેખ ભગવાન મહાવીર કેમ આપી શકે ? તેથી આપણે એમ જ માનવું જોઇએ કે દેવર્દ્ધિગણિએ એ પાછળથી ઉમેર્યું છે.

કૌટિલ્યના અર્થશાસ્ત્રના મતે વર્ષનો આરંભ, જ્યોતિષ વેદાંગ પ્રમાણે માઘશુકલ પ્રતિપદાથી ન માનતાં સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં છે તેમ, શ્રાવણથી માન્યો છે.[35] કૌટિલ્યનું અર્થ-શાસ્ત્ર ઈ૦ સ૦ પૂ૦ ૩૨૨ લગભગ રચાયાનું પુરવાર થયું છે. આ રીતે પણ સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ ઈ૦ સ૦ પૂ૦ ત્રીજા સૈકા પહેલાં રચાયા વિષે આગળ કરેલ વિધાનને બળ મળે છે. આ તમામ હકીકત ઉપરથી હવે એ નિઃસંશય કહી શકાય કે સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ નામનું જૈનોનું પાંચમું ઉપાંગસૂત્ર ભગવાન્ મહાવીરના નિર્વાણકાળ (વિ૦ સં૦ પૂ૦ ૪૭૦) પછી અને નિર્યુક્તિકાર આચાર્ય ભદ્રબાહુ (વિ૦ સં૦ પૂ૦ ત્રીજી શતાબ્દિ) પહેલાં ગમે ત્યારે કોઈ ગણધરે કે સ્થવિરે સૂત્રિત કર્યું. જ્યોતિષ વેદાંગ અને જૈનાના સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ એ બન્નેના સમય વચ્ચે ગાર્ગીસંહિતા કે વૃદ્ધગર્ગની રચેલી સંહિતા નામનો જ્યોતિષ ગ્રન્થ રચાયાનું અનુમાન થાય છે.

અંતમાં, પ્રાચીન જ્યોતિષરૂપી સાંકળના છૂટા પડેલા મણકા, નીચે પ્રમાણે સાંધી શકીએ. સૌથી પ્રાચીન ઉપલબ્ધ જ્યોતિષ ગ્રન્થ તે જ્યોતિષ વેદાંગ ઈ૦ સ૦ પૂ૦ ૧૪૦૦; ગાર્ગીસંહિતા (ગર્ગનો ઉલ્લેખ પાણિનિએ કર્યો છે) ઈ૦ સ૦ પૂ૦ છઠ્ઠા સૈકા પહેલાં; ત્યાર બાદ નક્ષત્રકલ્પ અને તેના પછી અથર્વ વેદના પરિશિષ્ટો, વગેરે; અને તે પછી ઈ૦ સ૦ પૂ૦ ચોથી શતાબ્દિ પહેલાંનો જૈનોનો સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ નામનો ગ્રંથ. ઇત્યલમ્.

---

35 આર૦ શામશાસ્ત્રી સંપાદિત, કૌટિલ્ય અર્થશાસ્ત્ર, પૃષ્ઠ ૭૦ અધિ૦ ૨, અ૦ ૭, પૃ૦ ૨૫–૩૬, "પાણિનિએ ઉલ્લેખ કર્યો છે તેથી તેમના પૂરોગામી ગર્ગ અને પરાશર કરતાં જ્યોતિષ વેદાંગ પ્રાચીન છે." ફૂટ: વીસીસીટ્યુડ્સ ઓફ આર્યન સીવીલીઝેશન.

ગુજરાતી નાટકોમાં સંસ્કૃત રૂપકાદિનાં તત્ત્વો

*

लेखक-श्रीयुत प्रो० भानुशंकर बा० व्यास, एम. ए.

[**નોંધ**–ગુજરાતી નાટકોની વિચારણા કરતાં પ્રેમાનન્દને નામે પ્રગટ થયેલાં ત્રણ નાટકોના કર્તૃત્વનો પ્રશ્ન સ્વાભાવિક રીતે જ ઉપસ્થિત થાય છે. એ નાટકો પ્રાચીન જણાય તે માટે સર્વતઃ સંસ્કૃત રૂપકોની શૈલીનો સ્વીકાર કરવાનો પ્રયત્ન એ બધામાં છે. એ નાટકોના ગ્રન્થવિવેચનમાં અને ટીકામાં પણ મૂળ કૃતિમાં સંસ્કૃત તત્ત્વો કેટલા પ્રમાણમાં અને કેવી રીતે યોજવામાં આવ્યા છે તે દર્શાવવાનો પ્રયાસ છે. છતાં એ નાટકોના કર્તૃત્વ સંબન્ધે સ્વ૦ નરસિંહરાવે જે શંકાઓ ઉપસ્થિત કરી છે તેનું નિરાકરણ હજી નથી થઈ શક્યું. એટલે ગુજરાતી નાટક સાહિત્ય વિશે વિચારણા કરતાં એ નાટકોને બાજુએ રાખી પ્રવૃત્તિ કરવી એ ઇષ્ટ લાગે છે. છતાં આયોજનમાં સંસ્કૃત શૈલીનું અનુસરણ એ નાટકોમાં છે એટલું કહેવું ઉચિત છે.–લેખક]

ગુજરાતી નાટકો વિશે વિચાર કરતાં પ્રથમ તો 'નાટક' એ ગુજરાતી ભાષામાં રૂઢ બનેલો શબ્દ લક્ષ ખેંચે છે. સંસ્કૃતમાં દૃશ્ય સાહિત્ય માટે વપરાતો રૂપક[1] શબ્દ એ અર્થમાં ગુજરાતીમાં પ્રવેશ પામ્યો નથી, પણ તેનું સ્થાન નાટક શબ્દે લીધું છે. વસ્તુતઃ નાટક[2] તો સંસ્કૃતમાં રૂપકોના જે પ્રકારો ગણાવ્યા છે તેમાંનો એક છે અને તેની મર્યાદા પાંચથી દશ અંકની મૂકવામાં આવી છે. પરંતુ ગુજરાતીમાં તો આજે એક અંકની કૃતિ હોય તેને પણ નાટક કહેવામાં આવે છે. આ પ્રમાણે નાટક શબ્દના અર્થદર્શનમાં જે પરિવર્તન ગુજરાતીમાં આવતાં થયું છે તે લક્ષમાં રાખવાની જરૂર છે.

આગળ વિચારણા કરતાં, સંસ્કૃત નાટકની જે રીતે શરૂઆત કરવામાં આવે છે તે રીતનું અસ્તિત્વ ગુજરાતીમાં નથી. પણ તે બાબતમાં વિશેષ વિચારણા કરતા પહેલાં ગુજરાતનું નાટકસાહિત્ય અંગ્રેજી અને અંગ્રેજી દ્વારા ઈતર પાશ્ચાત્ય સાહિત્યના સંપર્કથી શરૂ થયું એ હકીકત લક્ષમાં લેવાની જરૂર છે. અને એ સંપર્કના ફળ રૂપે ગુજરાતને કવિ દલપતરામ તરફથી પહેલું 'લક્ષ્મી નાટક' મળ્યું. તે પછી તો સંસ્કૃત સાહિત્યનો અભ્યાસ પણ વૃદ્ધિ પામ્યો અને ઘણાં સંસ્કૃત નાટકોનાં ભાષાન્તરો પણ ગુજરાતીમાં થયાં. છતાં વસ્તુના આયોજનમાં કાંઈક સંસ્કૃત અને કાંઈક પાશ્ચાત્ય એમ બંને શૈલીનું અનુસરણ દૃષ્ટિએ પડે છે. પણ રૂપક અને ઉપરૂપકના ભેદ–પ્રભેદ ગુજરાતીએ જતા કરી નાટકનું સામાન્ય દૃશ્ય સ્વરૂપ સ્વીકાર્યું.

ગુજરાતી રંગભૂમિ ઉપર જે નાટકો ભજવાયાં અને ભજવાય છે તેમાં સંસ્કૃત તત્ત્વોના અવશેષ તરીકે નાન્દી પછી સૂત્રધારનો પ્રવેશ આજે પણ અસ્તિત્વ ધરાવે છે અને સંસ્કૃત શૈલી અનુસાર જેને પ્રસ્તાવના કહી શકાય તેવી શરૂઆત એ નાટકોમાં આજે પણ દેખાય છે. બેશક એ પ્રસ્તાવનામાં કથોદ્ઘાત, પ્રવૃત્તક, પ્રયોગાતિશય કે

---

1 तदेव नाट्यं दृश्यमानतया रूपमित्युच्यते। नटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्रूपकम्।–दशरूपके। 2 पञ्चाङ्कमेतदवरं दशाङ्कं नाटकं परम्।–दशरूपके

વીથી એ સંસ્કૃત ભેદો પ્રમાણે વિભાગ કરવા જઇએ તો આપણને નિરાશ થવું પડે. અહિ તો પ્રસ્તાવના[3] દ્વારા જે પ્રબન્ધ ભજવી બતાવવાનો હોય તેનો કંઇક પરિચય પ્રેક્ષકવર્ગને આપવો એ જ આશય રહ્યો છે; એટલે રંગભૂમિની બહારનાં નાટકોમાં તો પ્રસ્તાવના અને તેની સાથે સૂત્રધારનો પણ લોપ થયેલો છે. વળી જે સૂત્રધાર ગુજરાતી રંગભૂમિપર દેખાય છે તે પણ સૂત્રધાર શબ્દનો જ અવશેષ છે. કારણ કે [4]नानाभाषणतत्त्वज्ञः, पौरेषणविचक्षणः, छन्दोविधानतत्त्वज्ञः, तत्तद्गीतानुगलयकलातालावधारणः વગેરે જે લક્ષણો સૂત્રધારનાં ગણાવવામાં આવ્યાં છે તે તો આ સૂત્રધારમાં રહ્યાં નથી. કારણ કે સૂત્રધારનું ખરૂં કામ તો અત્યારે નાટકનો જે દિગ્દર્શક કે રજુ કરવા માટે તૈયાર કરનાર હોય છે તે જ કરે છે અને તેનામાં સંસ્કૃત સૂત્રધાર જેટલી કુશળતા આવશ્યક છે એ ચોક્કસ.

પણ સંસ્કૃતમાં आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देश રૂપ નાન્દી થયા પછી સૂત્રધારનો પ્રવેશ થતો તેને બદલે સૂત્રધાર પોતે જ એકલો અથવા નટી અને બીજા બાળકો આશીર્વાદ કે નમસ્કારરૂપ પ્રાર્થના નાટકના આરંભમાં જ કરે છે. તે પછી સૂત્રધાર પ્રેક્ષકવર્ગને નાટકના વસ્તુનો પરિચય કરાવે છે. પણ તેમાં નાટકકારના પરિચયનો ભાગ આવતો નથી. સંસ્કૃત પ્રસ્તાવનાનો[5] આ અંશ ગુજરાતી નાટકોએ તજી દીધો છે. નહિતર સંસ્કૃત નિયમ પ્રમાણે તો स्वगतं तु स्वगोत्रादिस्वीयकीर्तिप्रकाशनम् એ રીતે પોતાનાં ગોત્ર અને કીર્તિના પ્રકાશનનો સ્પષ્ટ આદેશ છે. પરંતુ કવિ પોતાના વિશે વધારે લખવા પ્રવૃત્ત ન થાય એવો વિનય સ્વાભાવિક રીતે અનેક સ્થળે મળી આવે છે.

પ્રસ્તાવના પૂરી થતાં નાટકનું વસ્તુ પ્રેક્ષકો સમક્ષ રજુ થાય છે. પણ તે રજુઆત કેવી રીતે કરવી તે બાબતના બે માર્ગ શાસ્ત્ર સૂચવે છે. જો વસ્તુ શરૂઆતથી જ સરસ હોય તો તરત અંક શરૂ કરવો. પરંતુ વસ્તુની સીધી રજુઆત તરત ન કરવી હોય તો એક યુક્તિ નાટકકારને માટે રાખવામાં આવી છે અને તે યુક્તિ એટલે વિષ્કમ્ભક. ગુજરાતી રંગભૂમિ પર ભજવાતાં નાટકોમાં તો વિષ્કમ્ભક જેવું કશું જ નથી. પણ પ્રસિદ્ધ થયેલાં બીજા નાટકોમાં વિષ્કમ્ભકનો આશ્રય ઘણી વાર લેવામાં આવ્યો છે એટલે સસ્કૃત નાટ્યકલાના અવશેષ તરીકે તેનું અનુકરણ કરવાની જરૂર છે.

વિષ્કમ્ભકના લક્ષણ પ્રમાણે એ વૃત્ત – બની ગયેલા અને વર્તિષ્યમાણ – બનવાના કથાંશોનો નિદર્શક છે. એની યોજના એક અથવા બે મધ્યમ પાત્રોથી અથવા મધ્યમ અને અધમ પાત્રોના સંમિશ્રણથી થઈ શકે છે. પણ વિષ્કમ્ભકમાં પ્રધાન પાત્રોમાંથી – ઉત્તમ પાત્રોમાંથી તો એક પણ ન આવે એવો સ્પષ્ટ આદેશ છે. હવે થોડાંક ગુજરાતી નાટકો તરફ દૃષ્ટિ કરીએ. કવિ દલપતરામના 'મિથ્યાભિમાન નાટક'માં નાન્દી, સૂત્રધારની પ્રસ્તાવના અને વિષ્કમ્ભઃ – ત્રણેનો પહેલા અંકના પૂર્વભાગ તરીકે સમાવેશ કરી તે પછી પ્રવેશની શરૂઆત કરવામાં આવી છે. એ વિષ્કમ્ભકના વિભાગમાં મધ્યમ કે અધમ કોઈ પણ પાત્ર જ નથી અને સૂત્રધારે જાતે જ એ વસ્તુ સભા સમક્ષ રજુ

3 विषेर्यथैव सकल्पो मुखतां प्रतिपद्यते । प्रधानस्य प्रबन्धस्य तदा प्रस्तावना मता ॥ –लक्षणसुधाकरे
4 માતૃગુપ્તાચાર્ય. 5 પ્રેમાનન્દને નામે છપાયેલાં નાટકોમાં, નર્મદના કેટલાંક નાટકોમા અને અત્યારે પણ સંપૂર્ણતઃ સંસ્કૃત શૈલીને અનુસરતાં નાટકોમા કર્તા વિશે નિર્દેશ હોય છે.

કરવી એવું સૂચન છે. તદુપરાંત નાટકનું સમગ્ર વસ્તુ બહુ જ સંક્ષિપ્ત સ્વરૂપમાં એ વિષ્કમ્ભક દ્વારા રજુ કરવામાં આવ્યું છે. આ પ્રમાણે કવિ દલપતરામે માત્ર વિષ્કમ્ભક શબ્દ જાળવીને પોતાને અનુકૂળ અને ઉચિત લાગ્યું તે જ આયોજન કર્યું છે. કવિ નાનાલાલના 'વિશ્વગીતા' માં પણ વિષ્કમ્ભક છે. પણ એ વિષ્કમ્ભક વસ્તુતઃ પ્રસ્તાવનાનું કાર્ય કરવા યોજવામાં આવ્યો છે અને તેમાં આવતા ગન્ધર્વરાજ અને અપ્સરાસંઘનાં પાત્રોને મધ્યમ ગણીએ તો શુદ્ધ વિષ્કમ્ભક ગણાય એવો લાગે છે. શ્રીયુત કનૈયાલાલ મુન્શીના એક પૌરાણિક નાટક 'અવિભક્ત આત્મામાં' પણ વિષ્કમ્ભક છે. પરંતુ એમાં એ નાટકના નાયક વશિષ્ઠને જ રજુ કરવામાં આવ્યો છે. આ પ્રમાણે વિષ્કમ્ભકનો સ્વીકાર કર્યા છતાં તેનાં લક્ષણો જાળવવાનો પ્રયત્ન ગુજરાતીમાં થયો નથી.[5A]

આટલું કર્યા પછી નાટકના [6]અંકની શરૂઆત થાય છે. અંક દ્વારા સીધી જ વસ્તુની શરૂઆત થાય છે. નાટક માટે શાસ્ત્રમાં પાંચથી દશ અંકની મર્યાદા સૂચવવામાં આવી છે. અંક દ્વારા નાટકના પ્રધાન રસના આવિષ્કરણની અને પોષણની શરૂઆત થાય છે. ગુજરાતીમાં શરૂઆતમાં લખાયેલાં નાટકોમાં પાંચથી દશ અંકની આ મર્યાદા જાળવવામાં આવી છે. કવિ દલપતરામકૃત 'મિથ્યાભિમાન'માં આઠ, નર્મદકૃત 'કૃષ્ણા કુમારી'માં નવ, રણછોડભાઈકૃત 'જયકુમારીવિજય'માં આઠ, દોલતરામકૃત 'અમરસત્ર'માં સાતઃ આ પ્રમાણે અંકોની સંખ્યા મળી આવે છે. પરંતુ એ અંકોમાં ઘણે સ્થળે પ્રવેશોના વિભાગો યોજવામાં આવ્યા છે એટલે અંકોની સુબદ્ધતા સંસ્કૃત નાટકોના અંકો જેવી રહી નથી. વળી રંગભૂમિ ઉપર ભજવાતાં નાટકોમાં તો અનુકૂળતા ખાતર ત્રણ અંકોનો સ્વીકાર શરૂઆતથી જ કરવામાં આવ્યો છે અને આજ સુધી ગુજરાતી રંગભૂમિ ઉપર ત્રિઅંકી નાટકો જ ભજવાય છે.[7] પછી તો ગુજરાતીમાં એકાંકી નાટકો પણ લખાયાં છે. પણ આ બધાંની સ્વરૂપઘટના મુખ્યતઃ અંગ્રેજી નાટકોપર અવલંબે છે—એટલે નાટ્યશાસ્ત્ર અનુસાર જે એકાંકી નાટકોની રચનાનો નિર્દેશ છે તેમની સાથે આ નાટકોનો સંબન્ધ યોજવો અશક્ય છે. છતાં સંસ્કૃતમાં એકાંકી નાટકોની રચનાનો જે નિર્દેશ છે તેનું દર્શન કરવું ઇષ્ટ છે. રૂપકોમાં ભાણ, પ્રહસન, વ્યાયોગ, વીથી અને અંક (उत्सृष्टिकाङ्क) એ પાંચ[8] એકાંકી છે. નાટ્યશાસ્ત્રમાં સ્વીકારેલા પાંચ [9]સંધિ મુખ, પ્રતિમુખ, ગર્ભ, અવમર્શ અને નિર્વહણમાંથી બે કે ત્રણ સંધિ ઓછા કરીને નાટકનું સ્વરૂપ ટુંકું કરવાનો પ્રયત્ન આ એકાંકી નાટકોમાં દેખાય છે. પરંતુ વસ્તુના વિસ્તારને

5 A શ્રીયુત બટુભાઈ ઉમરવાડિયાકૃત મત્સ્યગન્ધા અને ગાંગેયમાં વિષ્કમ્ભક જેવું ટુંકું લખાણ છે, જે પ્રસ્તાવના પણ કહી શકાય તેવું છે કર્તાએ તેનુ નામ પ્રાસ્તાવિક રાખ્યું છે.

6 प्रत्यक्षनेतृचरिता विन्दुव्याप्तिपुरस्कृतः । अङ्को नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः ॥ – दशरूपक.

7 કવિ નાનાલાલના જયાજયન્ત, ઇન્દુકુમાર વગેરેમા અને શ્રીયુત મુન્શીના સ્નેહસંભ્રમ, કાકાની શશી વગેરેમાં પણ ત્રણ અંકોની જ યોજના છે.

8 ભાણમા પંડિત કે વિટના પ્રધાન પાત્ર દ્વારા ધૂર્તચરિત્રનુ આલેખન; મુખ્ય રસો વીર તથા શૃંગાર. પ્રહસનમાં વિપ્રાદિ પાત્ર દ્વારા હાસ્યરસનુ આલેખન. વ્યાયોગમા સ્ત્રી જેમાં નિમિત્ત ન હોય એવા યુદ્ધના પ્રસંગનું મુખ્ય આલેખન. વીથીમા એકથી બે પાત્રો દ્વારા મુખ્યતઃ શૃંગાર રસનુ આલેખન. અંકમાં પ્રાકૃત નટને નાયક તરીકે લઈ મુખ્યતઃ કરુણ રસનું આલેખન.

9 एकेन प्रयोजनेनान्विताना कथांशानामवान्तरैकप्रयोजनसंबन्धः सन्धिः ।

જતો કરી સમગ્રતા અને સુબદ્ધતા સાધવાનો આશય આ એક અંકની યોજનામાં છે એ ચોક્કસ. દૃષ્ટાન્ત તરીકે વ્યાયોગમાં માત્ર એક દિવસના ચરિત્રની યોજના કરવાનો નિયમ સૂચવવામાં આવ્યો છે. એટલે ગુજરાતી ભાષામાં લખાયેલાં એકાંકી નાટકો સર્વથા આ લક્ષણોના ચોકઠામાં ન બેસે છતાં એમાંનાં કેટલાંક તત્ત્વો રસનિષ્પત્તિ સંબન્ધનાં આ યોજનાને અનુસરતાં મળી આવે. નાયક-નાયિકાના પ્રકાર અને પાત્રોની સંખ્યા પરત્વેની મર્યાદા આજે યંત્રવત્ જણાય એ સ્વાભાવિક છે એટલે એ નિયમોને વશ વર્તતાં નાટકો આજે નહિ મળે.

આ ઉપરાંત ઉપરૂપકોના જે અઢાર પ્રકારો નાટ્યશાસ્ત્ર સ્વીકારે છે તેમાં પણ ગોષ્ઠી, રાસક, નાટ્યરાસક, કાવ્ય, પ્રેંખણ, શ્રીગદિત, વિલાસિકા કે લાસિકા, હલ્લીશ અને ભાણિકા એટલા પ્રકારો એકાંકી છે. આ બધામાં પણ પાત્રોની સંખ્યાની મર્યાદા સ્વીકારવી અને વસ્તુના વિસ્તારનો ત્યાગ કરી સુબદ્ધતા આણવી એ જ આશય છે. આ પ્રકારોમાંથી એક નાટ્યરાસકનો પ્રયોગ ગુજરાતીમાં થયો છે. ગુજરાતના પ્રસિદ્ધ ભક્તકવિ નરસિંહ મહેતાને નાયક તરીકે લઈને શ્રીયુત કનૈયાલાલ મુન્શીએ 'નરસૈંયો ભક્ત હરિનો' એ નામે એક પ્રયોગ રચ્યો છે અને રંગભૂમિ પર પણ રજુ કરેલો. એ કૃતિને કર્તાએ નાટ્યરાસક નામ આપ્યું છે. ગુજરાતના નાટકસાહિત્યને ઉપકારક થાય એવી મુખ્ય પ્રવૃત્તિ જેમણે પોતાના જીવનમા કરી તે સ્વ૦ રણછોડભાઈ ઉદયરામે સંસ્કૃત ગ્રન્થો ઉપરથી તારવણી કરીને રચેલા તેમના ગ્રન્થ નાટ્યપ્રકાશમાં નાટ્યરાસકનું લક્ષણ આ પ્રમાણે આપ્યું છે:[10] "एमां एक ज अंक योजवो. ताल लयनी रचना बहु आणवी. धीरोदात्त नायक आणवो. शृंगारसहित हास्यरस मुख्यत्वे आणवो. नायिका वासकसज्जा आणवी. मुख अने निर्वहण संधि योजवा." આ લક્ષણ પ્રમાણે ઉપર નિર્દેશ કરેલા 'નરસૈંયો ભક્ત હરિનો'નું દર્શન કરતાં એ પ્રયોગને નાટ્યરાસક કહેવાય કે નહિ એ પ્રશ્ન વિચારવા જેવો છે. પ્રથમ તો એમાં ચાર અંકની યોજના કરવામાં આવી છે એ જ એને નાટ્યરાસકના પ્રકારમાં ગણવામાં બાધારૂપ બને છે. એ ચાર અંકોને બદલે ચાર પ્રવેશોની યોજના કરવામા આવી હોત તો પણ વસ્તુની યોજનામાં એક અંક જેવી સુબદ્ધતા દેખાત નહિ. રસની બાબતમાં શૃંગારસહિત હાસ્ય રસને બદલે વ્યાપક શાન્ત રસની યોજના છે. છતાં વસ્તુમા શિવ-ભીલડીના પ્રસંગ દ્વારા અને શ્રીકૃષ્ણની રાસક્રીડા દ્વારા શૃંગાર રસનો સમાવેશ છે ખરો. પણ કર્તાના મનમાં તો તાલલયની રચનાની વિશેષતા અને નાયકનું ધીરોદાત્તત્વ એ બે પ્રધાન હોવાથી નાટ્યરાસકનું નામ એ કૃતિને અપાયું છે.

સ્વગત, જનાન્તિક, અપવારિત, આકાશભાષિત વગેરે યુક્તિઓનો ઉપયોગ પણ ગુજરાતી પ્રસિદ્ધ નાટકોમાં અને રંગભૂમિ ઉપર ભજવાતાં નાટકોમાં પણ કરવામાં આવે છે. કારણ કે આ બધી યુક્તિઓ તો નાટકકારના આયોજનમાં સામાન્ય જરૂરિયાતો જેવી છે. ત્રિપતાકાકરેણ અને પગત્રય દ્વારા જનાન્તિક અને અપવારિતનો જે ભેદ દર્શાવવામાં આવ્યો છે તે ભેદ નિષ્પ્રયોજન લાગતો હોય તેમ તજી દેવાયો છે.

10 આજે આપણે સમસ્ત હિન્દ માટે સામાન્ય લિપિ યોજવા પ્રવૃત્તિ કરીએ છીએ તે વખતે સ્વ. રણછોડભાઈ જેવા કેટલાક વિદ્વાનો પોતાના ગ્રન્થો નાગરી લિપિમાં છપાવતા એ સ્મરણ અસ્થાને નહિ ગણાય.

બીજી એક યુક્તિ, જેનો સંસ્કૃત નાટકકારો કુશળતાથી પ્રયોગ કરે છે તે પતાકા-સ્થાનક[11] છે. આ યુક્તિમાં રચનાની સ્વાભાવિકતા કરતાં રચનાની કુશળતા વધારે પ્રમાણમાં જણાય છે એટલે વર્તમાન નાટકોમાં એનું અસ્તિત્વ જણાતું નથી. સર રમણભાઈના 'રાઇનો પર્વત' નાટકમાં એનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે. ચાલુ સંવાદમાં કે વાતમાં કુશળતાથી સંવાદ કરનાર પાત્રોને જરા પણ સમજ ન પડે છતાં પ્રેક્ષકવર્ગ સમઝી જાય તે રીતે ભાવિનું સૂચન આ યુક્તિ દ્વારા થઈ જાય છે.

પાત્રોની ભાષા પરત્વે પણ સંસ્કૃતમાં સ્પષ્ટ નિર્દેશ છે. ઉત્તમ અને પુણ્યવાન પાત્રોની ભાષા સંસ્કૃત જોઇએ, છતાં તેવાં જ સ્ત્રીપાત્રો હોય તો તેમની ભાષા શૌરસેની રાખવી એમ સાહિત્યદર્પણકાર કહે છે. તે પછી અન્ય પાત્રો માટે પણ ભાષા વૈવિધ્યની યોજના છે. અને સંસ્કૃત નાટકોનાં અનુવાદો ગુજરાતીમાં કરતી વેળા સ્વ૦ કેશવલાલ ધ્રુવે અધમ અથવા મધ્યમ પાત્રો માટે આવો ભાષાભેદ જાળવવા પ્રયત્ન કર્યો છે. પરંતુ વસ્તુતઃ ભાષાભેદ માટે આપણે ત્યાં અવકાશ ન હોવાથી પ્રાન્તના સંસ્કારવાળી કે જાતિના સંસ્કારવાળી બોલીઓનો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે. પણ એક પ્રાન્તની કે જાતિની બોલી બધાને સમઝવી સુગમ ન પડે તે ખાતર આવી બોલીઓના પ્રયોગમાં પણ મર્યાદા છે. પરંતુ વર્તમાન સમયમાં સમાજમાં નીચે રહી ગયેલા થરમાંથી પાત્રોનો પ્રવેશ નાટકસાહિત્યમાં થતો જાય છે તેમ તેમ આવા બોલીના પ્રયોગો વિશેષ નજરે પડે છે. એટલે ભાષા એ પાત્રની સંસ્કારિતાનું પ્રતિબિમ્બ છે એ સત્ય જેમ સંસ્કૃતમાં દર્શાવેલા ભાષાભેદના મૂળમાં છે તેમ અત્યારના નાટકકારોની યોજનામાં પણ ઘણે સ્થળે એ સત્યને અનુસરવાનો પ્રયત્ન થાય છે. છતાં સંસ્કૃત અને પ્રાકૃતોના જેવો અને જેટલો ભેદ દર્શાવવો એ ગુજરાતી માટે શક્ય નથી.

હવે ગુજરાતી નાટકોમાં જે સંગીતનું તત્ત્વ પ્રવેશ પામ્યું તેને માટે નાટ્યશાસ્ત્રમાં અવકાશ છે કે નહિં તે પ્રશ્ન વિચારવા જેવો છે. રંગભૂમિ પર રજુ થતાં નાટકોમાં તો સંગીત આવવું જ જોઇએ એ નિયમ થઈ ગયો છે. બીજાં પ્રસિદ્ધ થયેલાં નાટકોમાંથી શરૂઆતનાં નાટકોમાં ગીતોની યોજના છે, કોઈ કોઈ નાટકમાં સંસ્કૃત નાટકો જેવા શ્લોકોની યોજના છે અને કેટલાકમાં જરા પણ સંગીત નથી. તેમ જ એકાંકી નાટકમાં તો ભાગ્યે જ સંગીત આવે છે. કેટલાંક સંસ્કૃત નાટકોની પ્રસ્તાવનામાં નટીના સંગીતની યોજના કરવામાં આવેલી દેખાય છે. તે પછી નાટકના વસ્તુમાં સંગીત ક્વચિત્ દૃષ્ટિએ પડે છે. આ વિચારણામાં નાટ્યશાસ્ત્રમાં જે ચાર વૃત્તિઓ સ્વીકારવામાં આવી છે તેના તરફ દૃષ્ટિપાત કરવો ઉચિત છે. વૃત્તિ એટલે નાયક આદિની પ્રવૃત્તિનો સ્વાભાવિક વ્યાપાર. રસોત્પાદન એ નાટકનું લક્ષ્ય હોવાથી તેને ઉપકારક થઈ પડે તેવી રીતે આ વૃત્તિઓની યોજના કરવામાં આવી છે. તેમાં કૈશિકી, જે મુખ્યતઃ શૃંગાર રસમાં અને સામાન્યતઃ હાસ્ય અને કરુણમાં પણ યોજવામાં આવે છે, તેમાં ગીત, નૃત્ય, વિલાસ વગેરેનો સમાવેશ છે. એટલે જ્યાં કૈશિકી વૃત્તિને અવકાશ હોય ત્યાં સંગીતનો પ્રવેશ

---

11 यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिन् तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते।
आगंतुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ॥–साहित्यदर्पणे

શક્ય બને છે. પણ સંગીત જે આનન્દ આપે છે તે નાટકના વસ્તુથી ભિન્ન અને વિશિષ્ટ હોવાથી નાટકના વસ્તુની સુબદ્ધતામાં એ વિક્ષેપકર બને એ આશયથી સારાં એકાંકી નાટકોમાં તો સંગીત નથી જ મૂકવામાં આવતું.[12]

સંસ્કૃત નાટકોને અન્તે આવતું ભરતવાક્ય[13] શરૂઆતના નાટકકારોએ ગુજરાતીમાં જાળવ્યું છે. નાટકને અન્તે આશીર્વાદરૂપે કે પ્રાર્થનારૂપે આ વાક્ય યોજવામાં આવે છે. વર્તમાન નાટકોમાં આ અંશ પણ અદૃશ્ય થયો છે. શરૂઆતમાં રચાયેલાં નાટકો–બાલકૃષ્ણવિજય નાટક, જયકુમારીવિજય નાટક, અમરસત્ર, પ્રતાપનાટક, રાઇનો પર્વત વગેરેમાં ભરતવાક્ય છે. રંગભૂમિ પર ભજવાતાં નાટકોમાં પણ શરૂઆતમાં નાટકને અન્તે સર્વે પાત્રો મળીને આશીર્વાદાત્મક કે પ્રાર્થનાત્મક ગીત ગાતાં. પણ આ વ્યવહાર અત્યારે તો અદૃશ્ય થયો છે.

રંગભૂમિ ઉપર કઈ બાબતો પ્રત્યક્ષ ન દેખાડવી તેને માટે પણ શાસ્ત્રનો આદેશ છે. દૂરનો પંથ, વધ, યુદ્ધ, રાજ્યદેશાદિવિપ્લવ, ભોજન, સ્નાન, વસ્ત્રપરિધાન વગેરે રંગભૂમિ પર પ્રત્યક્ષ રજુ ન કરવાં જોઇએ. પણ આ બાબતમાં તો દેશકાળ અનુસાર ફેરફાર થાય એ સ્વાભાવિક છે. એટલે સામાન્ય નીતિની દૃષ્ટિએ જે વસ્તુ રંગભૂમિ ઉપર ન દર્શાવવી જોઇએ એમ કર્તાને લાગે તે વસ્તુ એ સૂચન દ્વારા દર્શાવી દે છે. પણ ગુજરાતી નાટકકાર આ બાબતમાં સંસ્કૃત નિયમોને વશ થઇને વર્તતો નથી.

નાટ્યશાસ્ત્રે જેને નાયકના શૃંગારસહાયોમાંનો એક ગણ્યો છે એવો વિદૂષક ગુજરાતી નાટકોમાં– ખાસ કરીને શરૂઆતના ગુજરાતી નાટકોમાં અવતાર પામ્યો છે. મુખ્યતઃ વિદૂષક હાસ્યકૃત્ છે. અને એની પ્રવૃત્તિ આવી હોવાથી એના આકાર ને વેશ વિકૃત હોય છે, ભોજનની વાતોમાં એ કુશળ હોય છે અને તેને કર્મવપુ એટલે જેવું કર્મ તેવું શરીર ધારણ કરનાર પણ કહેવામાં આવે છે. કવિ દલપતરામના 'મિથ્યાભિમાન'માં એ રંગલો બનીને આવે છે અને તે પછી તો 'જયકુમારીવિજય નાટક,' 'પ્રતાપનાટક', 'રાઇનો પર્વત' વગેરેમાં પણ એનું દર્શન થાય છે. રંગભૂમિ પર અત્યારે ભજવાતાં નાટકોમાં તો હાસ્યરસના વસ્તુની ખાસ યોજના મુખ્ય વસ્તુ સાથે સંગત રાખીને અથવા અસંગત રાખીને કરવામાં આવે છે એટલે એકને બદલે અનેક વિદૂષકોની જરૂર પડે છે. અને નાટક જોનાર વર્ગને રુચે છે ત્યાં સુધી અનેક તૈયાર કરવામાં ભજવનાર વર્ગને મુશ્કેલી પડતી નથી. બાકી બીજા નાટકકારોને તો જ્યાં સુધી જીવનના પ્રસંગોનું દર્શન કરાવતાં પાત્રોમાંથી જ હાસ્ય રસનું તત્ત્વ મળી રહે ત્યાં સુધી શા માટે એકાદ ખાસ પાત્રનો આશ્રય લે ?

આ પ્રમાણે ગુજરાતી નાટક સાહિત્ય ઉપર દૃષ્ટિપાત કરતાં સંસ્કૃત નાટ્યશાસ્ત્રના જે મુખ્ય અવશેષો આપણી નજરે પડે છે તેમાંના ઘણાખરાનો ઉલ્લેખ છે. અંગ્રેજી ભાષાના અને તે દ્વારા બીજી યુરોપની ભાષાના નાટકસાહિત્યના પરિચયથી ગુજરાતનું

12 આ બાબતમાં ભરત કહે છે કેઃ–મધ્યમ અને ઉત્તમ પાત્રોએ કરવાનું જે નાટ્યગાન હું વર્ણવું છું તે નાટકની સિદ્ધિ આપનારૂં છે. આમ કહીને નાટ્યગાનના ભંગ, ઉપભંગ અને લયના ભેદ વર્ણવે છે.

13 સંસ્કૃત નાટકોનો અન્ત કરુણ ન જ હોય એટલે ભરતવાકય ત્યાં સ્થાને હતું. ગુજરાતીમાં કરુણાન્ત નાટકો શરૂ થયાં તેથી પણ આ અંશ લુપ્ત થયો હોય એ સ્વાભાવિક છે.

નાટકસાહિત્ય ઉદ્‌ગમ પામ્યું. પણ ગુજરાતમાં વ્યવસ્થિત શિક્ષણની સ્થાપના થઈ તેથી સંસ્કૃત સાહિત્યના અભ્યાસને પણ ઘણું ઉત્તેજન મળ્યું એટલે જેમ ગુજરાતના બીજા સાહિત્યમાં સંસ્કૃત સાહિત્યનું સિંચન દૃષ્ટિએ પડે છે તેમ નાટકમાં પણ બન્યું છે. છતાં એ અસર કેટલે અંશે બાહ્ય અને કેટલે અંશે આન્તરિક છે તે અંશતઃ દર્શાવવાનો પ્રયત્ન અહિં છે. આજે તો ગુજરાતનું નાટક સાહિત્ય બહુધા પરદેશી પ્રતીકોને જ અનુસરે છે. ઇંગ્લેંડના અને યુરોપના અન્ય દેશોના પ્રતિષ્ઠિત નાટકકારોનાં નાટકોનો અભ્યાસ નવા નાટકકારોને ઉત્તેજક અને પ્રોત્સાહક બને છે. છતાં ગુજરાતને આ ક્ષેત્રમાં હજી ઘણી પ્રગતિ કરવાની છે. સંસ્કૃત નાટ્યશાસ્ત્રનાં મૂલગત તત્ત્વોને પ્રવર્તમાન રચનાનિયમો જોડે કેટલો સંબન્ધ છે એ પ્રશ્ન જ નીરાળો છે. વર્તમાન સ્થિતિ શી છે અને સંસ્કૃત રૂપકાદિનાં કેટલાં તત્ત્વો ગુજરાતી નાટકોમાં અવશિષ્ટ છે એને અનુલક્ષીને જ અત્રે તો વિચારણા કરી છે.

च्यवनाख्यायिका

*

लेखक – श्रीयुत प्रो० गौरीप्रसाद चु० झाला.

ઋગ્વેદનાં સૂક્તોમાં સોમ-સવન, સોમપાન માટે દેવોને આહ્વાન, દેવોની પ્રાર્થના, ગુણગાન અને અનુગ્રહ માટે વિનંતિ–ઇત્યાદિ વસ્તુઓ પ્રધાનપણે વિષયભૂત છે. તે ઉપરાન્ત જુદા જુદા પ્રસંગોના ઉલ્લેખો કે આખ્યાયિકાઓ પણ છે. આવી આખ્યાયિકાઓ ન્હાની સંખ્યામાં નથી; તેમ એ બધી સર્વાંગ-સમ્પૂર્ણ વર્ણન પણ પામી નથી. કેટલીકનું સાંગોપાંગ વર્ણન મળે છે, જ્યારે મ્હોટી સંખ્યા તો ઓછેવત્તે અંશે સ્થૂળ નિર્દેશ જ પામી છે. આ આખ્યાયિકાઓને ઋષિઓ, દેવોને આહ્વાન આપતી વેળા તેઓનાં પરાક્રમોનો કે સહાય આપ્યાના પ્રસંગોનો ઉલ્લેખ કરી રીઝવવાના આશયથી, સ્પર્શતા હોય એમ જણાય છે. સૌથી વધારે આખ્યાયિકાઓ ઇન્દ્ર અને અશ્વિનીકુમારો સંબન્ધે મળે છે. ઇન્દ્ર વીર્ય-પ્રધાન હોવાથી તેની આખ્યાયિકાઓમાં શત્રુઓનો નાશ પ્રધાન સૂર બને છે; અશ્વિનીકુમારોની આખ્યાયિકાઓમાં એ દેવ-યુગ્મે કયા કયા પુરુષને કેવી રીતે સહાય આપીને ઉગારી લીધા એ વિષય હોય છે. ચ્યવન અશ્વિનીકુમારોની સહાય પામેલા પુરુષોમાંના એક છે.

અને ચ્યવનની આખ્યાયિકાથી કોણ અજાણ્યું હશે? જ્યારે જગતની અન્ય સંસ્કૃતિઓ કાળને વશ થઈ સ્મૃતિશેષ થઈ ગઈ છે ત્યારે ભારતીય સંસ્કૃતિ, જે તત્ત્વોને લીધે કાળને આજસુધી હંફાવી રહી છે, એ તત્ત્વોને જાળવી રહેલી નળ-દમયન્તી કે દુષ્યન્ત-શકુન્તલાની આખ્યાયિકાઓની પેઠે ચ્યવન-સુકન્યાની આખ્યાયિકા પણ નિત્ય-નવીન રહી છે. છેક ઋગ્વેદ-કાળથી માંડી બ્રાહ્મણ-કાળમાં અને તે પછી મહાભારત-કાળમાં આ આખ્યાયિકા ઉતરી આવી છે; અને અર્વાચીન સમયમાં પણ એનું આકર્ષણ ઓછું થયું જણાતું નથી. શ્રી મુનશીએ 'પુરંદર પરાજય' નાટક આ આખ્યાયિકા ઉપર જ રચ્યું છે.

આમ આ આખ્યાયિકા આપણા સાહિત્યમાં સર્જન-જૂની છે. તેનો ઇતિહાસ તપાસવો, તેમાં ઉત્તરોત્તર શા શા ફેરફાર થયા, કઈ દિશામાં થયા, શા ઉદ્દેશથી થયા ઇત્યાદિનું અન્વેષણ કરવું એ અતિરસિક તેમ જ બોધદાયક પ્રવૃત્તિ છે.

ત્યારે, ઉપર કહ્યું તે પ્રમાણે ચ્યવનાખ્યાયિકાનો ઉલ્લેખ છેક ઋગ્વેદમાં મળે છે. પણ એનું જે સ્વરૂપ ઋગ્વેદમાં દેખાય છે તે તો કેવળ બીજ-રૂપ છે. ઋગ્વેદમાં કૂલે છ સ્થાનોમાં આ આખ્યાયિકાનો ઉલ્લેખ થયો હોવા છતાં એક પણ સ્થાને એનું ચતુરસ્ર વીગતવાળું નિરૂપણ થયું નથી. **युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तम्** । (ઋ૦ ૭. ૭૧. ૫)માં અશ્વિનીકુમારોએ ચ્યવનને બુઢાપામાંથી મુક્ત કર્યા એટલું કહ્યું છે. આથી આગળ વધીને, **पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम्** । (ઋ૦ ૧. ૧૧૮. ૬)માં ચ્યવનને અશ્વિનીકુમારોએ ફરીથી યુવાન બનાવ્યા એમ સ્પષ્ટ કહ્યું છે. **युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः** । (ઋ૦ ૧. ૧૧૭. ૧૩)માં અશ્વિનીકુમારોએ જીર્ણ થયેલા ચ્યવાનને પોતાની શક્તિથી પુનઃ યૌવન આપ્યું, અને ઋ૦ ૧૦. ૩૯. ૪ માં ચ્યવાનને યુવાન

બનાવી હરતા ફરતા કર્યા, એ ઉલ્લેખો છે. ઋ૦ ૭. ૬૮. ૬ માં અશ્વિનીકુમારોએ ઘરડા થએલા ચ્યવાનને પોતાની સહાયથી સુંદર રૂપવાળા બનાવ્યા એમ કહ્યું છે. દેખીતી રીતે જ, આ બધા તૂટક તૂટક ઉલ્લેખો છે. કંઈક અંશે વધારે વિસ્તારવાળા ઉલ્લેખો બે સ્થળે મળે છે:

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ઋ૦ ૫. ૭૪. ૫.

જીર્ણ થઈ ગયેલા ચ્યવાનના ઘડપણને અશ્વિનીકુમારોએ કવચની પેઠે દૂર કર્યું અને તેને યુવાન બનાવ્યો ત્યારે ફરીથી તેણે સ્ત્રીના કામને ઉદ્દીપ્ત કર્યો. ચ્યવાનના પ્રસંગમાં સ્ત્રીનો ઉલ્લેખ અહિ મળે છે—ઉપર અવતારેલી ઋચાઓમાં એ વિષે કંઈ નિર્દેશ નથી. આના કરતાં પણ વધારે વીગતવાળો ઉલ્લેખ નીચેની ઋચામાં મળે છે:

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ ૧. ૧૧૬. ૧૦.

ઘરડા થયેલા ચ્યવાનની જરાને અશ્વિનીકુમારોએ કવચની પેઠે ખેંચી કાઢી; તજી દેવાયેલા એ ચ્યવાનના આયુષ્યને વધાર્યું અને તેને કન્યાઓનો પતિ બનાવ્યો—આ ઋચામાં ચ્યવાનની આખ્યાયિકાનો સાર આવી રહ્યો છે.

આ ઉલ્લેખો ઉપરથી એટલું તારવી શકાય કે ચ્યવાનને અશ્વિનીકુમારોએ પુનઃ યૌવન આપ્યું હતું; ચ્યવાનને તજી દેવામાં આવ્યા હતા એમ એક ઋચા કહે છે. ચ્યવાન યૌવન પામીને કન્યાઓના (બહુવચન) પતિ પણ થયા હતા. અને છેવટે, બધે સ્થળે ચ્યવાન જ—ચ્યવન નહિ—કહેવાયા છે. પાછળના સમયમાં આ વાર્તાનું જે સ્વરૂપ મળે છે તેના બીજ શિવાય અહિ કંઈ વધારે નથી એ સ્પષ્ટ છે.

એ બીજમાંથી સમય જતાં કેવડું વિશાળ અને અંગોપાંગથી સમૃદ્ધ વૃક્ષ ઊગી નીકળ્યું! બ્રાહ્મણકાળમાં જ—જૈમિનીય અને શતપથમાં—આ આખ્યાયિકા ઘણી વીગતોથી ભરપૂર, લંબાણવાળી મળી આવે છે. એના વિકાસનું યથાસ્થિત દર્શન કરવા માટે પ્હેલાં જૈમિનીય બ્રાહ્મણમાં જે રીતે એ વર્ણવાઈ છે તે જોઈએ:

[1]ચ્યવન વાસ્તુપાર્શ્વ બ્રાહ્મણ જાણતા હતા. તેમણે પોતાના પુત્રોને કહ્યું, "હું વાસ્તુપાર્શ્વ બ્રાહ્મણ જાણું છું. ત્હમે મ્હને વાસ્તુમાં છોડીને ચાલ્યા જાઓ." પુત્રો બોલ્યા, "એમ ન થાય. એમ કરીએ તો પિતાને મૂકીને અમે નાશી ગયા એમ સૌ કહેશે." ચ્યવને કહ્યું "હું કહું છું તેમ કરો; તેમાં ત્હમને લાભ છે, અને મ્હને પણ લાભ થશે—હું ફરીથી યૌવન મેળવીશ. માટે મ્હને છોડીને ચાલ્યા જાઓ." પછી ચ્યવનને સરસ્વતીને કાંઠે મૂકીને તેઓ જતા રહ્યા. વાસ્તુમાં બેઠાં બેઠાં ચ્યવને સાભિલાષ વિચાર કર્યો; મ્હને ફરીથી યૌવન મળો, યુવતી પત્ની મળો અને હું સહસ્ર-દક્ષિણ યાગ કરવા સમર્થ થાઉં.'

એ અરસામાં શર્યાત માનવ પોતાના સંઘ સાથે ત્યાં આવી ચઢ્યો. ન્હાના ગોવાળીઆઓએ એ જીર્ણ થઈ ગયેલા ચ્યવનને જોયા અને તેને કાદવ અને રાખવાળું છાણ

1 આ મૂળનું શબ્દશઃ ભાષાન્તર નથી. ઇંગ્લિશમાં Whitney એ ભાષાન્તર કર્યું છેઃ તે માટે જુઓ. K. S. Macdonald 'The Brāhmaṇas of the Vedas' માંનું અવતરણ.

ચોપડી દૂષિત કર્યાં. આથી ક્રોધ પામીને ચ્યવને શર્યાતના સંઘમાં કંકાસ ઉત્પન્ન કર્યો—મા દીકરાને ન જાણે, દીકરો માને ન જાણે. શર્યાત મુંઝાયો અને સૌને પૂછવા લાગ્યો. ગોવાળોએ કહ્યું, "અહિં એક જીર્ણ થઈ ગયેલો પુરુષ છે, તેને અમે કાદવ અને છાંણુ ચોપડ્યાં છે." શર્યાત બોલી ઉઠ્યો કે એ તો વાસ્તુપાર્ષ્ય બ્રાહ્મણને જાણનારા ચ્યવન છે—તેને ત્યાં રાખીને તેના પુત્રો ચાલ્યા ગયા છે."

પછી શર્યાત ચ્યવન પાસે ગયો અને સૌ ઉપર દયા કરવા વિનંતિ કરી. શર્યાતની અતિસુન્દર પુત્રી સુકન્યાને જોઇને ચ્યવને કહ્યું, "આ સુકન્યા મ્હને આપી દે." શર્યાતે બીજી કંઈ માગણી કરવા કહ્યું ત્યારે ચ્યવન બોલી ઉઠ્યા: "નહિ; હું વાસ્તુપાર્ષેય બ્રાહ્મણ જાણું છું. ત્હારી પુત્રીને અહિં મ્હારી પાસે છોડીને તું આજ સાંજે જ તારા સંઘ સાથે અહિંથી ચાલ્યો જા." શર્યાતે થોડી મુદત માગી; સૌએ એકઠા મળી મન્ત્રણા કરી કે સુકન્યાને આપી દીધા વિના છુટકો નથી. તેઓએ સુકન્યાને સમઝાવી કે ચ્યવન તો જીર્ણ થઈ ગયેલ છે તેથી દોડી શકે તેમ નથી; માટે અમે વાહનો જોડીએ કે તરત તું પાછળ નાશી આવજે. સુકન્યા ચ્યવન પાસે ગઈ અને નાશી જવાને તૈયાર થઈ કે તરત ચ્યવને ઉદ્ગાર કાઢ્યા, "હે સર્પ, હું જીવું છું છતાં મ્હને છોડી જતી આ સ્ત્રીને રોકજે."—અને એક કાળો સર્પ માર્ગ રોકીને ઉભો: સુકન્યા બેસી રહી.

થોડા સમયમાં, રોગોના ઉપચાર કરતા કરતા અશ્વિનીકુમારો—જેને સોમ-યાગમાં અધિકાર નથી—ત્યાં આવી ચઢ્યા. સુકન્યાને જોઈ મુગ્ધ થઈ તે બોલ્યા, "આ ચ્યવન તો ઘસાઈ ગયેલો, વૃદ્ધ, અશક્ત માણસ છે; અમારી સાથે ચાલ—અમને પતિ તરીકે સ્વીકાર." સુકન્યાએ ઉત્તર આપ્યો, "જે પુરુષ સાથે મ્હારા પિતાએ મ્હને પરણાવી છે તેની જ હું પત્ની રહીશ." ચ્યવને આ વાત જાણી અને સુકન્યાને કહ્યું, "જો એ અશ્વિનીકુમારો હતા. એ પાછા કાલે આવશે અને તને વીનવશે. તું તેને કહેજે કે ત્હમને સોમપાનનો અધિકાર નથી તેથી ત્હમે અપૂર્ણ છો—મ્હારો પતિ સંપૂર્ણ છે. એ પૂછે તો કહેજે કે મ્હારો પતિ ત્હમને સોમપાનના અધિકારી બનાવી શકે. આમ કરવાથી હું મ્હારૂં યૌવન પાછું મેળવી શકીશ."

વળતે દિવસે અશ્વિનીકુમારો આવ્યા અને "અમને સોમપાનના અધિકારી બનાવો" એમ ચ્યવનને વિનંતિ કરી. ચ્યવને કહ્યું, "મ્હને ફરીથી યુવાન બનાવો તો એ અધિકાર અપાવું." એથી અશ્વિનીકુમારો ચ્યવનને સરસ્વતીને કાંઠે લઈ ચાલ્યા. ચ્યવને સુકન્યાને કહ્યું, "આ પાણીમાંથી અમે ત્રણ એક સરખા રૂપવાળા બહાર નીકળશું: માટે આ એંધાણ રાખીને મ્હને પારખી લેજે." પછી એ ત્રણે નદીમાં પડ્યા અને એકસરખા રૂપવાળા થઈ બ્હાર આવ્યા. સુકન્યાએ ચ્યવનને ઓળખી કાઢ્યા.

ત્યારે અશ્વિનીકુમારોએ ચ્યવનને કહ્યું, "અમે ત્હમને યૌવન આપ્યું, હવે અમને સોમપાનનો અધિકાર અપાવો." ચ્યવન બોલ્યા: "દેવો કુરુક્ષેત્રમાં યજ્ઞ કરે છે, પણ યજ્ઞનું માથું કપાઈ ગયેલું હોવાથી તેઓને ધાર્યું ફળ મળતું નથી. ત્હમે દધ્યઞ્ચ જે વિદ્યા જાણે છે તે તેની પાસેથી શીખીને તેનો ઉપયોગ કરો."

અશ્વિનીકુમારો દધ્યઞ્ચ પાસે ગયા અને "યજ્ઞનું શીર્ષ શું છે તે શીખવ" એમ કહ્યું. દધ્યઞ્ચ બોલ્યા, "ઇન્દ્ર પણ આ રહસ્ય જાણે છે. તેણે મ્હને ધમકી આપી છે કે

જો કોઈ બીજાને આ રહસ્ય તું કહીશ તો ત્હારૂં માથું કાપી નાખીશ." અશ્વિનીકુમારોએ કહ્યું, "અમે ત્હારૂં માથું ઉતારી લઇને, અશ્વનું માથું ચોંટાડી દેશું. એ મ્હોંથી તું અમને એ વિદ્યા કહેજે. ઇન્દ્ર આવીને ત્હારૂં—એ ઘોડાનું—માથું કાપી નાખશે એટલે અમે ત્હારૂં પોતાનું જ માથું પાછું સાંધી દઇશું!" દધ્યઞ્ચે હા પાડી—અને અશ્વિની-કુમારોને એ રહસ્ય કહ્યું.[2] ઇન્દ્ર ક્રોધમાં દોડતો આવ્યો અને દધ્યઞ્ચનું ઘોડાનું માથું કાપી નાંખ્યું. એટલે અશ્વિનીકુમારોએ દધ્યઞ્ચનું પોતાનું માથું ચોંટાડી દીધું.

પછી અશ્વિનીકુમારો દેવોના યજ્ઞમાં આવ્યા અને બોલ્યા, "ત્હમે માથાં વિનાનો યજ્ઞ કરો છો. અમે એ વિદ્યા જાણીએ છીએ. અમને જો યજ્ઞમાં ભાગ આપો તો યજ્ઞનું માથું સાંધી દઇએ" દેવોએ એ કબૂલ કર્યું અને કહ્યું, "ત્હમે એ વિદ્યા જાણો છો તેથી અધ્વર્યુ થવા લાયક છો." અશ્વિનીકુમારોએ યજ્ઞનું માથું સાંધી દીધું અને તેઓને આશ્વિન-ગ્રહ મળ્યો.

ચ્યવન શર્યાત પાસે ગયા અને સહસ્ર-દક્ષિણ યાગ કરાવ્યો. આમ આ સામ જાણવાથી ચ્યવન યુવાન થયા, યુવતી પત્ની મળી અને યાગ પણ કર્યો.

ક્યાં ઋગ્વેદમાંની આ કથાની બીજરૂપ દશા અને ક્યાં આ ફૂલ્યાફાલ્યા વિશાળ-કાય વૃક્ષની દશા! ઋગ્વેદમાં એક જ સ્થળે (૧.૧૧૬.૧૦) એક જ શબ્દદ્વારા (जहित) ચ્યવનને ત્યજી દેવામાં આવ્યા હતા એમ ઉલ્લેખ છે. તેનો કેટલો પરિષ્કાર અહિં થયો છે! ઋગ્વેદમાં શર્યાત માનવનો આ પ્રસંગને અનુલક્ષીને કંઈ ઉલ્લેખ નથી. સુકન્યા ચ્યવનને મળી એ મુખ્ય વસ્તુનો પણ ઋગ્વેદમાં ઉલ્લેખ નથી; કેવળ, એક સ્થાને 'કન્યાઓનો (!) પતિ બનાવ્યો' એમ નિર્દેશ મળે છે, અને બીજે સ્થળે 'વધૂ'ના કામને ચ્યવને ઉદ્દીપ્ત કર્યો એમ કહેવાયું છે. આ શિવાય બીજી બધી વીગતો સ્વતન્ત્રપણે જ આ આખ્યાયિકામાં ગૂંથી લેવાઈ હોય એમ લાગે છે. ચ્યવન અને સુકન્યાનાં પાત્રોની થોડી પણ સ્પષ્ટ રૂપરેખા, સુકન્યાની પતિ-ભક્તિ, અશ્વિનોની ચિકિત્સા-શક્તિ વગેરે વગેરે આ કથાને આકર્ષક બનાવતાં અંગો છે. પણ સૌથી મહત્ત્વની ધ્યાન રાખવા લાયક બાબત એ છે કે આ આખ્યાયિકામાં 'વાસ્તુપાર્શ્વ બ્રાહ્મણ'–વિદ્યાનું અને સાથે સાથે પ્રવર્ગ્ય–વિદ્યાનું માહાત્મ્ય દર્શાવાયું છે.–ખરીરીતે, આ ઉદ્દેશથી જ આ આખ્યાયિકા વર્ણવાઈ છે. આમાં આશ્ચર્ય પામવા જેવું નથી. કારણ કે બ્રાહ્મણ-ગ્રન્થોમાં કર્મકાંડને અનુલક્ષીને અર્થવાદ રૂપે જ આવી આખ્યાયિકાઓ સામાન્યરીતે આપવામાં આવે છે.

હવે આની સાથે શતપથ બ્રાહ્મણ (૪.૧.૫)માં આ આખ્યાયિકાની જે વીગતો છે તે સરખાવી જોઇએ. શતપથમાં જૈમિનીયની પેઠે ચ્યવનના ત્યાગનું સવિસ્તર વર્ણન નથી. શતપથમાં તો એટલું જ છે કે "જ્યારે ભૃગુઓ અને અંગિરાઓ સ્વર્ગમાં ગયા ત્યારે ચ્યવન (ભાર્ગવ કે આંગિરસ) વૃદ્ધાવસ્થામાં આવેલા પાછળ રહી ગયા."

---

2 આથર્વણ દધ્યંચની પ્રવર્ગ્યવિદ્યા કે મધુવિદ્યાનો પ્રસંગ અહિં આમ સવિસ્તર સાંકળી લેવામાં આવ્યો છે. આ પ્રસંગના ઋગ્વેદમાં ઉલ્લેખ માટે જુઓ, ઋ. ૧.૧૧૬.૧૨.;૧.૧૧૭.૨૨;૧.૧૧૯.૯; બૃહદ્દેવતા ૩,૧૮–૨૪માં આ જ પ્રસંગ વર્ણવાયો છે.

આમ મૂળ ઋગ્વેદના ઉલ્લેખને અહિ પણ સાચવી રાખવામાં આવ્યો છે. શર્યાતન કુમારોએ જીર્ણ થયેલા ચ્યવનને 'નકામાં' (अनर्थ्यम्) માનીને પથરાઓ ફેંકીને માર્યા–પરિણામે શર્યાત રથ જોડીને પોતાની પુત્રી સુકન્યાને લઇને ચ્યવન પાસે ગયો અને બોલ્યો 'इयं ते सुकन्या । तया ते अपह्नुवे । सं जानीतां मे ग्रामः ।' અહિં શર્યાત પોતે જ સુકન્યાને ચ્યવનને આપે છે, જ્યારે જૈમિનીયમાં ચ્યવન સુકન્યાની માગણી કરે છે. ચ્યવન સુકન્યાનો સ્વીકાર કરે છે. જૈમિનીયમાં શાર્યાતો જે છલનું આચરણ કરે છે તેનો અહિં સર્વથા અભાવ છે; કારણ પણ સ્પષ્ટ છેઃ ત્યાં પોતાની મરજી વિરુદ્ધ સુકન્યાને આપી દેવાની હતી, અહિ શર્યાત પોતે જ ચ્યવનને સુકન્યા અર્પી દે છે. આ મુદ્દા ઉપરથી શતપથ કરતાં જૈમિનીયની આખ્યાયિકા વધારે પ્રાચીન હોવાનું અનુમાન કરી શકાય. અશ્વિનીકુમારોપાસે સુકન્યા ચ્યવનના યૌવન માટે માગણી કરે છે, ત્યારે એ દેવો ચ્યવનને પાસેના એક ધરામાં (ह्रद) લઈ જવાનું તેને કહે છે, અને તેમાં ન્હાવાથી તેની ઇચ્છાપ્રમાણે વય પામશે એમ બતાવે છે. આ મુદ્દા પરત્વે પણ ધ્યાનમાં રાખવા લાયક બાબત એ છે કે અહિ હ્રદનો ઉલ્લેખ 'Deus ex machina જેવો જણાય છે, જ્યારે જૈમિનીયમાં ચ્યવનને સરસ્વતીને કાંઠે તેના પુત્રો છોડી ગયા હતા અને અશ્વિનીકુમારોએ સરસ્વતીમાં જ તેને સ્નાન કરાવ્યું એમ નિર્દેશ છે. વળી, ક્યાં શતપથની સાદી સીધી ચિકિત્સા અને ક્યાં જૈમિનીયમાં અશ્વિનીકુમારોની લાલસાથી ત્રણેયનાં એક સરખાં રૂપોને લીધે થતી વિમાસણ, અને તેને પ્હોંચી વળવા માટે ચ્યવનની 'યુક્તિ' અને દીર્ઘદૃષ્ટિનો ઉલ્લેખ! અન્તે, ચ્યવનની સૂચનાથી અશ્વિનીકુમારો દેવોના યજ્ઞમાં જાય છે અને યજ્ઞનું માથું સાંધીને યજ્ઞ-ભાગ મેળવે છે.[4] અહિ દધ્યઞ્ચ આથર્વણની કથાનો ઉલ્લેખ નથી કરાયો. અહિ પણ આ આખ્યાયિકા અર્થવાદરૂપે સ્થાન પામી છે.

હવે, મહાભારતમાં આ આખ્યાયિકાનું સ્વરૂપ જોઇએ. મહાભારતનો કાળ એટલે કોઈ પણ બાબતને महत् અને भारवत् બનાવી દેવાની પ્રવૃત્તિનો કાળ.[5] જ્યાં અવકાશ હોય ત્યાં લહીઆ કે કથાકાર પંડિતો મૂળ વસ્તુને બહલાવે, નવું ઉમેરે, પુનરુક્તિઓ કરે, અને પોતાની કલ્પનાશક્તિની મર્યાદામાં રહીને વસ્તુનું પુનઃસંસ્કરણ કરે–આ તો મહાભારતનો દરેક વિવેચનશીલ અભ્યાસી જાણે છે. બીજું, બ્રાહ્મણકાળ અને મહાભારતકાળ–એ વચ્ચેના મોટા ગાળામાં ધાર્મિક, સામાજિક, નૈતિક ઇત્યાદિ બધી દૃષ્ટિએ સ્થિતિ-પરિવર્તન થયું હશે તે પણ આ પુનઃસંસ્કરણમાં પ્રતિબિમ્બિત થાય એ દેખીતું છે. તપની મહત્તા, દેવો અને ઋષિઓ પ્રત્યે ગૌરવભરી માનની લાગણી, ઋષિઓની તપને લીધે દેવોને પણ તાબે કરી શકવાની શક્તિ, સ્રીની પતિ-ભક્તિની દૃઢતા, વગેરે માન્યતાઓ આ ગાળામાં કૃતમૂલ થઈ હતીઃ આ સંસ્કાર પામેલા કાળમાં જે સંસ્કરણ થાય તેમાં આ સંસ્કારોની છાપ પડે એ સ્વાભાવિક છે.

---

4 આ જ મુદ્દાના ઉલ્લેખ માટે જુઓ તૈત્તિરીય સંહિતા, ૬.૪.૯. અને ઐતરેય બ્રાહ્મણ, ૧.૧૮.

5 જુઓ આદિપર્વમાં 'महाभारत' શબ્દનું આપેલું નિર્વચનઃ महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ।

મહાભારતમાં 'ચ્યવન' નામ કેમ પડ્યું એ પણ સમજાવવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે.[6] શતપથમાં ચ્યવનનો ભાર્ગવ તરીકે જે ઉલ્લેખ છે તેનો મહાભારતમાં વિસ્તારથી ઉલ્લેખ કરાયો છે.[7] ચ્યવન-સુકન્યાની આખ્યાયિકા વનપર્વમાં મળે છે; તે જોઇએ:

મહર્ષિ ભૃગુને ચ્યવનનામે પુત્ર હતો. તેણે તપ કર્યું; એક સ્થાને સ્થિર રહેવાથી તેની આસપાસ રાફડાઓ બાઝી ગયા અને કીડીઓ ફરવા લાગી. એ સમયે શર્યાતિ પોતાના સૈન્યસાથે ત્યાં આવી ચઢ્યો. તેની રૂપવતી પુત્રી સુકન્યાને શણગારેલી અને એક જ વસ્ત્ર પ્હેરીને આમ તેમ ફરતી ચ્યવને જોઈ. સુકન્યા ચ્યવન પાસે આવી અને તેની ચમકતી આંખો જોઇને 'આ શું છે?' એમ કુતૂહળથી કાંટા ભોંકીને એ આંખો ફોડી નાખી. ચ્યવન ક્રોધે ભરાયા, અને શર્યાતિના પરિવારના શારીરિક વેગોનું રોધન કર્યું (शर्यातिसैन्यस्य शकृन्मूत्रे समावृणोत् ।) શર્યાતિએ આનું કારણ સૌને પૂછયું પણ કંઈ નિરાકરણ મળ્યું નહિં. છેવટે, સુકન્યાએ ચ્યવનની વાત કહી. એટલે શર્યાતિ ચ્યવન પાસે ગયો અને ક્ષમા માગી. ચ્યવન બોલ્યા: "આ સુકન્યાએ મ્હારી આંખો ફોડી નાખી છે માટે એ સુકન્યા મ્હને સોંપી દે તો હું માફ કરીશ." સુકન્યા ચ્યવન પાસે રહી.

પછી અશ્વિનીકુમારોએ એક વેળા સ્નાન કરીને ઉઘાડે શરીરે ઉભેલી સુકન્યાને જોઈ. તેઓએ સુકન્યાને પરણવાનો આગ્રહ કર્યો—સુકન્યાએ ના પાડી; ત્યારે તે ફરીથી બોલ્યા, "અમે દેવના વૈદ્ય છીએ, ત્હારા પતિને યુવાન અને સૌંદર્યવાળો બનાવી દઇએ તો પછી અમે ત્રણમાંથી ગમે તે એકને પતિ તરીકે તું સ્વીકાજે." પછી અશ્વિની-કુમારો ચ્યવનને એક સરોવરમાં લઈ ગયા, તેમાંથી ત્રણે યૌવનશાળી, દિવ્યરૂપવાળા અને એક સરખા વેષવાળા થઇને બહાર આવ્યા. સુકન્યાએ પોતાના હૃદયને અનુસરીને ચ્યવનને જ ઓળખી કાઢી સ્વીકાર્યા.

પછી ચ્યવને અશ્વિનીકુમારોને સોમ-પાનનો અધિકાર અપાવવાનું માથે લીધું. અશ્વિનીકુમારો તો સ્વર્ગમાં ચાલ્યા ગયા.

એ પછી ચ્યવન શર્યાતિ પાસે ગયા અને તેની પાસે યજ્ઞ કરાવ્યો. યજ્ઞમાં ચ્યવને અશ્વિનીકુમારોનો સોમ-ભાગ કાઢ્યો કે તરત ઇન્દ્ર વચમાં પડ્યા અને કહેવા લાગ્યા કે, "અશ્વિનીકુમારો ભિષક્કર્મ કરે છે માટે સોમને લાયક નથી, વળી મનુષ્યોનો સંસર્ગ પણ બહુ જ રાખે છે તેથી પણ સોમને લાયક નથી." ચ્યવને ઇન્દ્રને ગણકાર્યા વિના જ અશ્વિનીકુમારોનો ભાગ ઉપાડ્યો. ઇન્દ્રે વજ્ર ઉગામ્યું, પણ ચ્યવને ઇન્દ્રના બાહુને સ્તબ્ધ કરી દીધો. પછી ચ્યવને અગ્નિમાં મન્ત્રોની આહુતિ આપી અને મદ નામના મ્હોટા અસુરને ઉત્પન્ન કર્યો. ઇન્દ્ર આ મહાસુરથી ભય પામીને બોલ્યા, "હે ચ્યવન, આજથી અશ્વિનીકુમારો સોમ-પાનના અધિકારી થશે. બ્રાહ્મણનું વચન સત્ય થશે.

---

6 ततः स गर्भो निवसन् कुक्षौ भृगुकुलोद्वह । रोषान्मातुश्च्युतः कुक्षेश्च्यवनस्तेन सोऽभवत् ॥
આદિપર્વ, ૬.૨;

7 જુઓ આદિપર્વ, ૫–૭.

અને મ્હેં કેવળ ત્હારૂં સામર્થ્ય સૌ કોઈ જાણતા થાય અને સુકન્યાના પિતાની કીર્તિ પ્રસરે એ ઉદ્દેશથી જ આ વિઘ્ન નાખ્યું હતું." પછી એ મદને સુરાપાનમાં, સ્ત્રીઓમાં, પાસાઓમાં, અને મૃગયામાં વ્હેંચી દીધો.

આ રૂપાન્તરમાં કેટલા રંગો પૂરાયા છે! ચ્યવનને છોડી દીધા હોય કે અવસ્થાએ જીર્ણ થઈ ગયા હોય એ મહાભારતકાળનાં માનસને હીનતાસૂચક જ લાગે–તેથી ચ્યવને મ્હોટાં તપ આદર્યાં, અને કાળે કરીને રાફડાઓ બાઝી ગયા અને ઠૂંઠા જેવા થઈ ગયા એમ રૂપાન્તર થયું. ઋષિનું ગૌરવ ખરેખર આ ફેરફારથી સચવાયું છે. શર્યાતિની રાણીઓની સંખ્યાનો ઉલ્લેખ અને સુકન્યા એકની એક પુત્રી– એ પણ વાર્તાની જમાવટ કરવામાં સહાયભૂત થતી વીગતો છે. બ્રાહ્મણોમાં ગોવાળોએ કે કુમારોએ કાદવ છાંટ્યો કે પથરા માર્યાનું કહેવાયું છે. મહાભારત કાળમાં–કદાચ poetic justice કરવાની ઇચ્છાથી–સુકન્યાએ જ કુતૂહલથી કાંટા ભોંક્યા–અને એ જીર્ણ ઋષિને જ પતિ તરીકે સ્વીકારવા પડ્યા! અને સુકન્યાનું વર્ણન પણ કેવું વીગતવાળું અપાયું છે? બ્રાહ્મણોમાં ચ્યવને શાર્યાતોમાં વિરોધ કે 'असंज्ञा' ઉત્પન્ન કરી એમ કહ્યું છે, અહિં તો शकृन्मूत्रे समावृणोत् એવી, કથા લખનારને વધારે આકરી જણાતી, શિક્ષાનો ઉલ્લેખ છે. બ્રાહ્મણોમાં અશ્વિનીકુમારોએ સુકન્યાને જોઈ અને મુગ્ધ થયા એટલું કહેવાયું છે તેનો પરિષ્કાર અહિં 'अश्विनौ कृताभिषेकां विवृतां तामपश्यताम् ।' એમ થયો છે. સુકન્યાની પતિ-ભક્તિને પણ પૂરતો ન્યાય મળ્યો છે. જૈમિનીયની પેઠે અહિં પણ ત્રણેયનાં એકસરખાં રૂપ થાય છે: શતપથથી અહિં આ કથા જૂદી પડી છે. પણ જૈમિનીયની પેઠે અહિં ચ્યવનની અગમચેતી ને યુક્તિનો ઉલ્લેખ નથી. અહિં તો સુકન્યા પોતાના સામર્થ્યથી જ ચ્યવનને ઓળખી કાઢે છે, અને તેથી ઋષિના ગૌરવમાં ક્ષતિ કરે એવો કંઈ ઉલ્લેખ કરવો પડતો નથી.

અહિંનો આખ્યાયિકાનો અન્તનો ભાગ ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે. યજ્ઞમાં અશ્વિનોને સોમ-પાનનો અધિકાર મળશે પણ તે યજ્ઞના શીર્ષના સંધાનથી નહિ: ચ્યવન જાતે જ શર્યાતિપાસે યજ્ઞ કરાવી અશ્વિનોનો ભાગ કાઢે છે–અને ઇન્દ્ર સાથે ઝગડો થાય છે. અહિં યજ્ઞશીર્ષ વિશેની કર્મકાંડની જટિલ બાબતને છોડીને મહાભારતના પંડિતે ઋષિઓનાં દેવો ઉપરનાં સામર્થ્યને દર્શાવતી કથા સાંકળી લીધી છે. અલબત ચ્યવન અને ઇન્દ્ર વચ્ચે થયેલા આ કલહનો પ્રસંગ કેવળ કપોલકલ્પિત નથી. ઋ૦ ૧૦.૬૧.૧-૩માં ઇન્દ્ર અને ચ્યવન વચ્ચે કંઈ કલહ થયાનો ઉલ્લેખ જણાય છે તેનો જ અહિં આ નવો અવતાર છે. ઇન્દ્રની અશ્વિનો વિરુદ્ધ જે દલીલો છે તે પણ મૂળ શ્રુતિના આધારને અનુસરતી જ છે.[8] અને ઋષિનું પણ ઇન્દ્ર જેવા દેવરાજ ઉપર શું સામર્થ્ય દર્શાવાયું છે! છેવટે, ઇન્દ્ર નમે છે–અને તેમાં પણ પૌરાણિક તમાચો મારીને ગાલ લાલ રાખવાની' યુક્તિનો ઉપયોગ કર્યો છે!

આમ કાળના સંજોગો અનુસાર રૂપરૂપાન્તર પામતી આ આખ્યાયિકા આજે પણ પોતાની આકર્ષકતા સાચવી રહી છે.

---

8 જુઓ તૈત્તિરીય સંહિતા, ૬.૪.૯.૧.

संवत् १४८२ मां लखाएली

पद्यानुकारी गुजराती गद्यमय जैन गुर्वावली

*

संपादक—श्रीयुत मोहनलाल दलीचंद देसाई, बी. ए. एलएल्. बी.

१. વિક્રમના પંદરમા સૈકાના ઉત્તરાર્દ્ધમાં—સંવત ૧૪૭૮માં—જૈન શ્વેતાંબર સંપ્રદાયના અંચલગચ્છાનુયાયી આચાર્ય માણિક્યસુંદર સૂરિએ પૃથ્વીચંદ્રચરિત્ર નામની ગુજરાતી ભાષામાં ગદ્યરૂપે એક રચના કરી છે જેનું બીજું નામ કર્તાએ વાગ્‌વિલાસ એવું પણ આપ્યું છે. એ રચના ગુજરાતી ભાષાના ગદ્યના એક ઉત્તમ નમૂનારૂપે હોઈ ઘણી સુંદર અને મનોરંજક છે.

૨. સ્વ૦ સાક્ષરરત્ન શ્રી કેશવલાલ હર્ષદરાય ધ્રુવે સ્વસંપાદિત 'પ્રાચીન ગૂર્જર કાવ્ય'-ની પ્રસ્તાવનામાં લખ્યું છે કે:—"માણિક્યસુંદર સૂરિએ જૂની ગૂજરાતીમાં ગદ્યાત્મક પૃથ્વીચંદ્રચરિત્ર (મુદ્રિત—સ્વ૦ ચિમનલાલ દલાલ સંપાદિત 'પ્રાચીન ગૂર્જરકાવ્ય સંગ્રહ', અને શ્રી જિનવિજયજી સંપાદિત 'પ્રાચીન ગુજરાતી ગદ્યસંદર્ભ'માં) સં૦ ૧૪૭૮માં રચ્યું છે; તે બોલીમાં છે. અક્ષરના, રૂપના, માત્રાના અને લયના બંધનથી મુક્ત છતાં લેવાતી છૂટ ભોગવતું પ્રાસયુક્ત ગદ્ય, તે બોલી. માણિક્યસુંદર બોલી-વાળા પ્રબંધને વાગ્વિલાસ એટલે બોલીનો વિલાસ એવું નામ આપે છે."

૩. એવા વાગ્વિલાસના વર્ગમાં, ઉક્ત ગ્રંથના રચના સંવત્‌થી ચાર વર્ષ પછી—એટલે સં૦ ૧૪૮૨માં અક્ષય તૃતીયા દિને, જૈન શ્વેતાંબર તપાગચ્છનાયતિ જિનવર્દ્ધન ગણિએ રચેલી, પોતાના ગચ્છની ગુર્વાવલી, તે જ વર્ષમાં સુંદર હસ્તાક્ષરે લખાયેલી ત્રણ પત્રની હસ્તપ્રત, સદ્‌ભાગ્યે બીકાનેરના સાહિત્યરસિક બંધુ શ્રી અગરચંદ નાહટા પાસેથી વિગત અકટોબર માસમાં જેમને સાંપડેલી, તેની અક્ષરશઃ નકલ, કાળજી પૂર્વક પદન્યાસ કરીને અત્ર આપવામાં આવે છે. તેની ફોટો નકલ પણ વડોદરાના ઓરિએ-ન્ટલ ઇન્સ્ટિટયૂટમાંથી મેં કરાવી રાખી છે.

૪. આ કૃતિપરથી વિક્રમ પંદરમી શતાબ્દીના ઉત્તરાર્ધમાં—ઇસવી ૧૫મા શતકના પ્રારંભમાં, ગુજરાતી ભાષામાં વિદ્વાનોનો કેવો વાગ્વિલાસ હતો, તેમાં જોડણી કેમ લખાતી, વિભક્તિનાં પ્રત્યયો, ક્રિયાપદનાં રૂપો વગેરે કયા સ્વરૂપમાં લેખબદ્ધ થતાં એનો સારો ખ્યાલ આવશે—અને એ પરથી, જૂની ગુજરાતીમાંથી વર્તમાન ગુજરાતી ઉત્ક્રાન્ત થઈ તે દરમ્યાન, જે જે પરિવર્ત્તન થયાં ને ઉત્તરોત્તર ક્રમબદ્ધ પરિણતિને ભાષા પામતી ગઈ—તેના થોડા શૃંખલાબદ્ધ અંકોડા ભાષાશાસ્ત્રીને મળી રહેશે.

૫. વિષય ઐતિહાસિક છે. શ્વે૦ જૈનધર્મમાં થએલા અનેક 'ગચ્છો' (સમૂહો)-માંના હાલ વિદ્યમાન મુખ્ય ત્રણ નામેઃ—ખરતર, તપા, અને અંચલ—ગચ્છો પૈકી તપાગચ્છમાં જૈનોના છેલ્લા—૨૪મા તીર્થંકર શ્રી મહાવીર સ્વામીથી માંડી તેમની પટ્ટપરંપરા રૂપે જે આચાર્યો, અનુક્રમે કર્તાના સમયમાં સં૦ ૧૪૮૨માં વિદ્યમાન ૫૦મા

પટ્ટધર આચાર્ય સોમસુંદરસૂરિ સુધીના થયા, તેમની ટૂંકી નોંધ છે. આ પટ્ટપરંપરા શ્વે૦ જૈન ધર્માનુયાયિઓમાં સુપ્રસિદ્ધ છે એટલે તેમને મન આમાંથી ખાસ મહત્ત્વનું બહુ ઓછું મળશે. અત્ર આ કૃતિ પ્રકાશિત કરવામાં, મારે મન, ઐતિહાસિક કરતાં ભાષાવિષયક દૃષ્ટિ પ્રાધાન્ય ધરાવે છે.

॥ ९० ॥ **श्री वर्द्धमानस्वामिने नमः** ॥

वितरतु मंगलमालाः समस्तसंघस्य वर्द्धमानजिनः ।
यत्पदसेवा संप्रति कल्पलताभीष्टफलदाता ॥ १ ॥

विमलकेवलज्ञानदिवाकर, सकलत्रैलोक्यलोकशिवशंकर;
पादपीठलुठंत चउसट्ठि आखंडल, मोहांधकारसंहारमार्त्तंडमंडल;
देवाधिदेव, त्रिभुवनकृतसेव; मनोवांछितदायक, त्रैलोक्यनायक;
प्रतिबोधित अनेक भव्य जीवसमाज, अपश्चिम तीर्थाधिराज;
श्रीवर्द्धमानस्वामि श्रीसंघरहइ मंगलीक माला करउ ।

जसनाममंतसमरणि भव्वा पावंति सयलसिद्धीओ ।
बहुविहलद्धिसमिद्धो सो गोयमगणहरो जयउ ॥ २ ॥

अनेक गुणतणउ आगर, सकल लब्धितणउ सागर;
रूपसौभाग्यतणी खाणि, अमृतसमान वाणि;
वांछितफलदायक, मुक्तिवधूनायक;
सकल जीवलोक पापतापनिर्वापण जलहर, श्रीवीर पढम गणहर;
श्रीगौतमस्वामि श्रीसंघप्रतिइं ऋद्धि वृद्धि कल्याण निपजावउ ।

जिणसासणसोहकरो वरदंसणनाणचरणगुणकलिओ ।
सुविहियगच्छसिरोमणिसिरितवगच्छो चिरं जयउ ॥ ३ ॥

जिम देवमाहि इंद्र, जिम ज्योतिश्चक्रमाहि चंद्र;
जिम वृक्षमाहि कल्पद्रुम, जिम रक्त वस्तुमाहि विद्रुम;
जिम नरेंद्रमाहि राम, जिम रूपवंतमाहि काम;
जिम स्त्रीमाहि रंभा, जिम वादित्रमाहि भंभा;
जिम सतीमाहि सीता, जिम स्मृतिमाहि गीता;
जिम साहसीकमाहि विक्रमादित्य, जिम ग्रहगणमाहि आदित्य;
जिम रत्नमाहि चिंतामणि, जिम आभरणमाहि चूडामणि;
जिम पर्वतमाहि मेरु भूधर, जिम गजेंद्रमाहि ऐरावण सिंधुर;

जिम रसमाहि घृत, जिम मधुर वस्तुमाहि अमृत;
तिम सांप्रति कालि, सकल गच्छ अंतरालि;
ज्ञानि विज्ञानि तपि जपि शमि दमि संयमि करी अतुच्छ, ए श्री तपोगच्छ,
आचंद्रार्क जयवंतउ वर्त्तइ ।
जे श्री तपोगच्छ, मानस सरोवरतणी परि स्वच्छ;
आगम-लक्षण-तर्क-साहित्य-छंद-अलंकार-प्रमुखसकल विद्यातणउ निधानु,
श्री संयम साधन सावधानु, दुष्कर क्रिया कलाप प्रधानु;
सुगतिमार्गसाधक, सर्व दोषबाधक; गुणनउ भंडार, चारित्रलक्ष्मीशृंगार;
महिमहिमा विशाल, भवताप तापित भव्य जीव विश्राम रसाल;
सकल कुमत खंडन, श्री जिनशासनमंडन प्रवर्त्तइ छइ ।

अनइ मुखि तउ जीभ एक, तेह्ना किम बोलउं गुण अनेक;
जिम संपजइ नवनवी संपत्ति, दूरि पलाइ सकल विपत्ति, मनि ऊपजइ
मनोहर भक्ति; तेह कारण तउ हिव सांभलउ, श्री तपोगच्छ तणी उत्पत्ति ।
श्री वर्द्धमानस्वामि तणउ पांचमउ गणधर, चउद पूर्वधर;
श्री सुधर्मस्वामि, पाप नासइं जेह्नइं नामि;
तेह तणइ संतानि, कोटिक इसिइं नामिइं गणि;
श्री वयरस्वामि तणी शाखां अतुलि, विपुलि श्री चंद्रकुलि;
ए श्री वडगच्छ ऊपनउ, किम, सांभलउ, सावधान थई करी ।
ईणअं श्री वर्द्धमानस्वामि तणइ पाटि पहिलउ,
अनेक गुणमणिभूधर, श्री सुधर्मस्वामि गणधर, जाणिवउ;
तेह तणइ पाटि २ श्री जंबूस्वामि हीआमाहि आणिवउ ।
जीणइं श्रीजंबूस्वामिइं अतिविनीत, नवपरिणीत; आठ नारी, ९९ कोडि
सुवर्णि करी सारी; लीलामात्रि परिहरी, अनइ श्री संयम लक्ष्मी वरी । एहं बिहुं
आचार्य प्रतिइं ऊपनउं विमल केवलज्ञानु, जगमाहि प्रतपिआ जिम भानु ।

तेह तणइ पाटि ३ श्री प्रभवस्वामि गणधर; जीणइं पांचसइं चोर तणउ
परिवार छांडी, अनइ संवेग लगइ चारित्र कंन्या मांडी ।
तेह तणइ पाटि ४ श्री सय्यंभवसूरि, जेह प्रतिइं अज्ञान नाठउं दूरि;
जीणं करावतां यज्ञ, मुनि वचन सांभलउं धन्यु;
खड्ग काढी पूछिउ तत्त्व विचारु, तउ देखाडइ यानी जिनप्रतिमा सारु;

मनि ऊपनउ संवेग अपार, तउ लीधउ संयम भारु;
जेहे कीधउ सिद्धांत सारु, ग्रंथ **दशवैकालिक** चारु;
साधिउं **मणग** चेलानउं काजु, जे अजी वर्त्तइ छइ लगइ आजु ।
तेह तणइ पाटि ५ श्री यशोभद्र, जेहतउ पामीइं भद्र ।
तेह तणइ पाटि ६ बि शिष्य; कृत मोहमल्लविजय, श्री संभूतिविजय;
अनइ श्री भद्रबाहुस्वामि ।
जे श्री भद्रबाहु गुरु, बुद्धिइं करी जाणे छइ देवनउ गुरु;
जीणअं अनेक नवी निर्युक्ति कीधी, तउ पछइ सुखिइं सिद्धांत भणी अर्थसंगति सीधी ।
अनइ संभूतिविजय तणइ पाटि ७ श्री स्थूलभद्र, जेहनइं नामिइं नीपजइ सर्वतोभद्र ।
जीणं फेडिउ मयण भडवाउ, तउ ऊपनउ जगि जसुवाउ;
जेह तणउं बोलासिइ चरित्र, चउरासी चउवीसी लगइ पवित्र ।
पछइ गणधर नीपना १४ पूर्वधर, तेह तणइ पाटि ८, शिष्य २ हूआ;
पहिलउ श्री जिनकल्प तुलना करणहार, श्रीमहागिरि गणहार;
जेहना संतान विभूषण, अनेक आचार्य नीपना अदूषण ।
अनइ बीजउ शिष्य, श्री सुहस्तिसूरि दक्ष ।
तेह तणइ पाटि ९ श्री सुस्थित-सुप्रतिबद्ध, जगमाहि नीपना प्रसिद्ध;
जीहं थिकउ कौटिक गण प्रवर्त्तिउ । **कौटिक** किसिउं कहीइ, सांभलउ–
जेतलउं वस्तु सर्वज्ञ देखइ, तेहनउ कोडिमउ भाग सूरिमंत्रनउ ध्याणहार पेखइ; तेह कारण कोट्यंश मंत्र बोलाइ, तेह मंत्रनइं संबंधिइं कौटिक गण बोलाइ ।
तेह तणइ पाटि ११ श्री दिन्नसूरि ।
तेह तणइ पाटि १२ गुणमणि रोहणगिरि, सूरि श्री सिंहगिरि ।
तेह तणइ पाटि १३ दश पूर्वधर, श्री वयरस्वामि गणधर ।
जीणं बालि कालि रोदननइं वलिइं माता मनावी, श्रीगुरु समीपि आवी;
पालनइ सूतइं, धर्मनइ धुरि जूतइं; ११ आंग सीखी, त्रिनि वरस पडखी;
कीधउ राजसभां चमत्कार, पछइ हऊ दीक्षा अंगीकार;
जेहनी घणीवार देवे परीक्षा कीधी, तउ आकाशगामिनी शक्ति दीधी;

क्रमइं पछइ गणधर पदवी सीधी ।
अनइ जीणंइं महाविकरालि, दुर्भिक्षनइ कालि;
पटविद्यां संघ उद्धरी, जिनशासनि प्रभावना करी;
जेह लगइ च्यारि ज्ञान अनइ कोव्यंश मंत्र आविउ, कालविशेषिइं
आघउ न चालिउ ।
तेह तणइ पाटि १४ श्री वयरसेन, तीणं भागी मोहनी सेन;
जीणं न्याय-नीति तणइ आगरि, सोपारइ नगरि;
नागेंद्र चंद्र निवृत्ति विद्याधर, गुणमणि तणा सागर;
ईश्वरी श्राविकाना ४ पुत्र, दीक्षा देईनइ कीधा पवित्र;
तेहं थिकउ ४ शाखा प्रवर्त्ती । आघी **निर्वृत्ति** शाखा न प्रवर्त्ती ।
अनइ श्री चंद्र आचार्य थिकउ ए **चंद्रकुल,** प्रवर्त्तिउं श्रीचंद्रनी परि निर्मल ।
तेह तणइ पाटि १६ देव देवीने देवकुलि कसणहार, भीम उपसर्गनउ सहणार;
पूर्वगत श्रुत धारक, अरण्यवास कारक;
सूरि श्री सामंतभद्र, जिनशासनि हूऊउ उनिद्र ।
तेह तणइ पाटि १७ वडउ श्री देवसूरि ।
तेह तणइ पाटि १८ श्री प्रद्योतनसूरि ।
तेह तणइ पाटि १९ श्री मानदेवसूरि, पुण्यलक्ष्मीतणइ मूलि, जेहे रहे हूंते नड्डूलि,
नगरि सयंभरि मोकलिउ शांतिस्तव, तीणइं विलय गियां संघमाहि अशव ।
तेह तणइ पाटि २० महिमाउत्तुंग, सूरि श्रीमानतुंग;
जेहे सुप्रभावे ४४ महाकाव्य भक्तामरस्तव जोडी;
धाणीनी परि त्रडत्रडाट करती ४४ महाअठील फोडी ।
तेह तणइ पाटि २१ अतिआर्य, श्री वीराचार्य ।
तेह तणइ पाटि २२ भव्य जीवकृत सेव, सूरि श्री जयदेव ।
तेह तणइ पाटि २३ सदा परमानंद, सूरि श्री देवानंद ।
तेह तणइ पाटि २४ जित मोहपराक्रम, सूरि श्री विक्रम ।
तेह तणइ पाटि २५ बोधित हिंसक यक्षः, श्री नरसिंहसूरि दक्षः ।
तेह तणइ पाटि २६ गुणसमुद्र, सूरि श्री गुणसमुद्र;
जेहे जीपी दिगंबर, **नागद्रह** तीर्थ कीधउं श्वेतांबर ।

तेह तणइ पाटि २७ श्रीमानदेवसूरि, अंबिकादत्तसूरिमंत्रकरी गियां कश्मल दूरि।
जेहसिउं १४४४ प्रकरणनउ करणहार, बौधदर्शन निर्धाटनहार;
याकिनी सून, महिमा अनून; हरिभद्र सूरि, मैत्री नीपजावइ भूरि ।
तेह तणइ पाटि २८ श्री विबुधप्रभसूरि ।
तेह तणइ पाटि २९ श्री जयानंदसूरि ।
तेह तणइ पाटि ३० श्री रिव(रवि)प्रभसूरि गरिष्ठ, जेहे नड्डूलपुरि
श्री नेमि कीध प्रतिष्ठ ।
तेह तणइ पाटि ३१ श्रीयशोदेवसूरि ।
तेह तणइ पाटि ३२ श्री प्रद्युम्नसूरि । जेहरइं तपोनियमोपधान तणी
घणी सिद्धि, तउ उपधानि आइसी हुई प्रसिद्धि ।
तेह तणइ पाटि ३३ श्री मानदेवसूरि;
तेह तणइ पाटि ३४ भव्य कैरवचंद, सूरि श्री विमलचंद्र ।
तेह तणइ पाटि ३५ जिनशासन-उद्योतन, सूरि श्री प्रद्योतन ।
जे ९९४ विक्रम संवत्सरि, पहुता श्री अर्बुद परिसरि ।
अर्बुदनी पाजनइ ठामि, प्रसिद्ध टेलीग्रामि ।
वटवृक्ष हेठि, मुहूर्त्तरहिं दीधी द्रेठि ।
८ सूरिपद स्थापना कीधी, तिवार पूठिइं वडगच्छ प्रसिद्धि सीधी ।
तेह तणइ पाटि ३६ श्री सर्वदेवसूरि ।
तेह तणइ पाटि ३७ श्री देवसूरि । जेहरइं श्री अर्बुदाचलनइ भूपालि,
रूपश्री इसिउं नाम दीधउं ईणं कलिकालि ।
तेह तणइ पाटि ३८ श्री सर्वदेवसूरि ।
तेह तणइ पाटि ३९ श्री यशोदेवसूरि ।
तेह तणइ पाटि ४० श्री मुनिचंद्रसूरि, अनइ श्री मानदेवसूरि ।
जे श्री मुनिचंद्रसूरिरहिं 'आछणीआ' इसिउं नाम, छ विगइपरिहारपरिणाम;
तेह बिहुं तणइ पाटइ ४१ श्री अजितदेवसूरि ।
श्री वादीश्रीदेवसूरि प्रमुख नही केहनइ घाटि ।
अनइ श्री अजितदेवसूरितणइ पाटि ४२ श्री विजयसिंहसूरि ।
तेह तणइ पाटि ४३ श्री मणिरत्नसूरि ।
तेह तणइ पाटि ४४ श्री जगच्चंद्रसूरि, जेहरइं प्रमाद नाठउ दूरि ।

"नियं गुरु पयतलि बाल जिम भणतां आइम अंग ।
ततखणि जस मणि उल्लसिउ बहुत संयम रंग ॥ १ ॥
कलिमल कद्दमि अइकलिउं जिणि उद्धरिउं चरित्तु ।
तिणि कारणि जिणि वीर जिण सासण कीउं पवित्तु ॥ २ ॥
जिणि कीधउं आंबिल तणउं जावजीव पच्चखाण ।
तिणि गुणि महीयलि ऊपनउं गच्छह तवाभिहाण ॥ ३ ॥
जिणसासण वर कुमुअवण बोहण पूनिमचंद ।
जां रवि चंदा तां जयउ सो **जगचंद** मुणिंद ॥ ४ ॥"

जेहे श्री गुरे वाचतां श्री आचारांग, अध्ययन शस्त्रपरिज्ञा चंग;
जाणिउ छ जीव तणउ विचार, मनि ऊपनउ संवेग अपार;
पांचइ इंद्रीय संकलइं, तउ गुरु मोकलावी नीकलइ;
चित्रावाल गच्छ, श्री देवभद्र गणि स्वच्छ;
तिहां चारित्र उपसंपद प्रामी, तउ पच्छइ हउउ सुविहित स्वामी;
जेहरइं मोक्षमार्गि अतुल शंबल, जावज्जीव पच्चक्खाण आंबिल;
एह वडगच्छरहइं तेह कारण, **तपगच्छ** हुउं नाम पापवारण ।

"जो चंदमंडल कंति निम्मल सूरि गुणमणि सायरो,
तव नियम संयम खंति मद्दव चरण करण गुणायरो ।
छज्जीवरक्खण अइ विचक्खण लोयबोहण सायरो,
जगचंद गणहर वाणि जलहर जयउ जाम दिवायरो ॥ १ ॥"

तेह तणइ पाटि **४५** श्री देवेंद्रसूरि, जेहरइं अज्ञान गिउं दूरि ।
जेहे गुरे श्री दिनकृत्यसूत्र-वृत्ति, पांच कर्मग्रंथ-सूत्र-वृत्ति, सिद्धपंचासिकासूत्र वृत्ति, श्री धर्मरत्नवृत्ति, सुदर्शनाचरित्र, त्रिनि भाष्य प्रमुख अनेक ग्रंथ कीधा ।
जे श्री गुरु **खंभाइति** नगरि **कुमारविहार** प्रासादि, मेघ जिम गंभीर नादि;
धर्म देशनां ४ वेद वखाणता, ब्राह्मणादिक अनेक सभ्य आवता;
तिहां १८ शत मुहपती तणउ व्यापार, जेहे कीजइ षडविध आवश्यक विचार ।
तेह तणा शिष्य **४६** श्री विद्यानंदसूरि—श्री धर्मघोषसूरि, हूया वि बांधव अतिशय तणइ पूरि । जे श्री विद्यानंद सूरिरहइं संवत् १३०२ वरी कन्या तणउ परिहार, चारित्र कंन्या तणउ अंगीकार ।

सुख संपदा तणइ सागरि, **पाल्हणपुरि** नगरि;
पाल्हणविहार प्रासादि, अनेक तूर्य निनादि;
१३२३ आचार्यपद, संघनइं मनि आणंद संपद;
प्रासाद मंडपि कुंकुमवृष्टि, लोके ते वात दीठी निज दृष्टि;
मनमाहि विस्मय अपार, तउ पात्रि अंबिका अवतार;
लोक हहुऊ सावधान, तीणं इसिउं वचन बोलिउं प्रधान;
ए उत्तम पुरुष पदठवणि, देवे उच्छव किउ इणि भवणि;
ए वड महिमा देषि, तउ संघ नाचइ हर्षविशेषि;
अनेकि सीकिरिधर व्यवहारीया तणउ संयोग,
तिणि प्रासादि ५०० वीसलपुरीय भोग।

तथा – श्री धर्मघोषसूरि सुविचार, जेरहि[इ]उं १३२७ पदठवण आचार;
जेहे गुरे अतिशय लगइ योग्य अवधारिउ, सा० पेथड परिग्रह परिमाण संक्षेपतउ निवारिउ; जेणइं पेथडसाहि ८४ उत्तुंग तोरण प्रासाद कराव्या, ७ ज्ञानभंडार भराव्या; अनइ २१ धडी सुवर्ण, श्री शत्रुंजय मूलप्रासाद कीधउ वर्णि सुवर्णि।
जेह तणउ पुत्र, सा० झाझणदे पवित्र;
जीणइं बिहु तीर्थि एकूज ध्वज, देईअनइ आत्मा कीधउ अरज;
अनइ जे गुरुरहइ देवकइं पाटणि, सुमुद्रिइं दिखाडिउं चिंतामणि;
अनइ तिहां गोमुख यक्ष, का[उ]सग प्रभावि हऊउ प्रत्यक्ष;
उपदेश देई बूझविउ, मिथ्यात्व करतउ ते पाप सूझविउ;
तथा – **विद्यापुरि** ग्रामि,
जाणी वडां मूकावियां जूआं, ते संध्यानइ समइ पाषाण हूआं।
तथा – एकदा प्रभाति देतां उपदेश, कुणइं एकि गलइ विकुर्विया केश।
श्राविका जाणी दुष्ट, तउ आसणि विलाइउ पट्ट;
जाती देखी लोके हसी, पाछी आवीनइ खूणइ खुसी;
गुरु कन्हइ ए स्वरूप पूछी, तउ श्रावके ते अतिघणउं दोछी;
पछइ ऊठी पाये पडइ, तउ पाटलउ जूउ अडवडइ।
तथा – **उज्जयिनी** नगरि,
एक वसइ योगी पणि प्रत्यनीक, ते माहात्मानइं दिखाडइ बीक;

तेह कारण माहतमा तिहां न जाइं, तिम तिम योगी हियामाहि न माइं;
एकदा गुरु तिहां आव्या, तउ योगीइं बोलाव्या;
रहियो धीर थाई इण गामि, गुरि भणिउं रहिया छउं इण ठामि;
पटि आछादी कुंभ, गुरि कीधउं ध्यान अदंभ;
योगी गाढ आरड करंत, तउ नमिउ गुरु पय अणुसरंत ।
एकदा रात्रि मझारि, आवी शाकिणी च्यारि;
गुरुनी पाटि उपाडी ते नीकली, गुरे जाणी मंत्र शक्तिइं संकली;
तउ गाढी टलवली, वचनि दीधइ कीधी मोकली ।
एकदा सर्पनइ डंसि विकरालि,
प्रभातनइ कालि, काष्टवाहक भारा अंतरालि,
लिवारी विषापहारिणी वेलि, तिणि लांखिउं विष सघलउं ठेलि ।
स्थानकि स्थानकि
जेह गुरुतणा अनेक प्रभाव, ते सवे किम हूं बोलउं मूर्खस्वभाव ।
एकदा एकइं महुतइं, अति विचक्षण हूतइं;
आठ यमकनउं काव्य भणी, हसिउं बोलिउं गुरु भणी;
हवडां ए[ह]वडूं काव्य, कुणहइं किमहइ न हुई श्राव्य;
गुरे कहिउं नाथि, महानुभाग अ णाथि;
पछइ एक रात्रि मज्झारि, आठ आठ यमक विचारि;
स्तवी देव चउवीस, स्तुति कीधी अठ्ठावीस;
अमृत पाहइं अति मीठी, प्रभाति ते थुइ महुतइं दीठी;
ऊपनउ चमत्कार गाढउ, हियइ महुतउ हऊउ टाढउ ।

अनइ जेहे श्री गुरे श्री संघाचारभाष्यवृत्ति, श्री शत्रुंजयकल्प, कायस्थिति-भवस्थिति स्तवन, अति यमक श्लेषमय अनेक स्तुति स्तोत्र कीधां, ते अद्यापि वर्त्तइं छइं प्रसीधां ।

तेह तणइ पाटि ४७ श्री सोमप्रभसूरि, जेहनइं ११ आग[म]नां सूत्रार्थ आवतां जिम गंगानइ पूरि । जेहनां कीधां सविस्तर जीतकल्प, यमकमय अनेक स्तुति वर्त्तइं छइं ।

तेह तणइ पाटि ४८ तेह तणा ४ शिष्य श्री विमलप्रभसूरि [१], श्री परमानंद सूरि २, महाजयणापर श्री पद्मतिलकसूरि ३, महाभाग्यसौभाग्य प्रतापिइं करी भूरि, श्री सोमतिलकसूरि ४। जे श्री गुरु –

"भवियण मण मिच्छत्त जण उम्मूलण गयराय ।
पंडिय जण मण रंजणउ **सोमतिलय** गुरु राय ॥ १ ॥
सयलि महीतलि झगमगइ अज्जवि जसु जसवाउ ।
जेहे भग्गउ अतुल बल मोहराय भडवाउ ॥ २ ॥
जेहे खेतसमास मुख कीधा ग्रंथ बहूत ।
गच्छि गच्छंतरि वापरइं ते अज्जवि सब्भूत ॥ ३ ॥
रयणायरि रयणहं तणउ नो लब्भइ जिम पार ।
जस्सहरुज्जल णेग गुण न गणाइं तिम सार ॥ ४ ॥
देस वदेसिइं जाणीइ जसु गुरु तणउं भिहाण ।
सोमतिलय गुरु सो जयउ सुविहिय सूरिपहाण ॥ ५ ॥

जेह गुरुना अनेक चमत्कार, किम, सांभलउ –
मालव मंडल मझारि, संध्यां शकुन विचारि;
नवस्थानकि कीधउं संस्तारकसंग, पूर्विलइ स्थानकि शिलापाति हुउउ मात्रक भंग;
तथा – सविहुं देसि पहाणि; देशि **गूर्जरात्र**भिहाणि;
कुणइ एकं संनिवेशि, उपाश्रय तणइ प्रवेशि;
पाषाण ऊपरि मूकिउ पाउ, तत्काल जाणिउ अपाय;
शिला ऊपाडी दीधी द्रेठि, दुष्ट क्षुद्र नीकलीउं तउ हेठि;
तथा – कुणहं एकं व्यंतरि अवतारि, इसिउं बोलिउं वचन सुविचारि;
तुम्हारउं गुरुअं तेज अम्हे सही न सकउं ए वात सही ।
तथा – रात्रिइं पडिकमणानइ कालि, जेह तणा ओघा विचालि;
दीसतउ तेजनउ विकाश, जीणंइं थातउ कांई एक प्रकाश;
जेहना इस्या अनेक प्रभाव, ते सवे किम बोलइ अजाण स्वभाव ।
जे श्री गुरुरहइं १३५५ जन्म, १३६९ दीक्षा, १३७३ श्री सूरिपद,
१४२४ स्वर्गसंपद । यथा –
'जो छंद लक्खण तक्क आगम पमुह ग्रंथ सुजाणओ,
जो भव माणस कमल काणण बोहणे नव भाणुओ ।

सो संघलोयण अमियअंजण सरिस मूरति नंदओ,
सिरि **सोमतिलओ** सूरिनिलओ जाम तिहुयणि चंदओ ॥ १ ॥'

श्री सोमतिलकसूरिना ३ शिष्य, अतिहिं दक्ष ।
अनेक स्तुति स्तोत्र सूत्रण सूत्रधार, निरंतर विद्याना सूत्रगार;
प्रतिबोधित अनेक अनार्य, श्री चंद्रशेखर आचार्य ।
भनइ सकलविद्या कंठ कंदलहार, स्थूलभद्रचरित्र प्ररूपणहार;
नंदपद्रि वर नगरि, अनेक देशांतरागत अनेक विद्वांस सभा अभ्यंतरि;
वचनकला निर्मित स[क]ल सभा आणंद, सूरि श्री जयाणंद ।
जेहरइं साजण भाई दीक्षा अंतराय कर[त]उ, देवतां चपेटां आहणी
कीधउ मानतउ ।

अनइ त्रीजा शिष्य

श्री महावीरथिकउ ४९ पाट धुरंधर, श्रीमत् श्री देवसुंदरसूरि गुरुपुरंदर ।
जे श्री देवसुंदरसूरि गुरु महाभाग्यवंत, गुहिर गंभीर, निर्जितकंदर्पवीर;
अनेक गुणमणितणी खाणि, अमृत समान वाणि;
श्रीसंघलोकमानसहंस, सुविहितसूरिमस्तकअवतंस;
निस्संगचूडामणि, सकलजाण शरोमणि;
सर्वविद्या तणउ आगार, नवकल्पविहार, बइतालीसदोषवर्जित आहार;
श्री जिनशासनश्रृंगार, युगप्रधानावतार;

"सायर जिम गंभीर गुरु तपतेजिहिं नवभाणु ।
गंगाजल जिम निम्मलउ गुरुअडि मेरु समाण ॥ १ ॥
अपमत्तउ भारंड जिम गुत्तिंदिय जिम कुम्म ।
पंकय जिम निल्लेव बहु लक्खण वंजण रम्म ॥ २ ॥
सिरिजिणसासणनहयलदिणयरसरिसं थुणेमि मुणिरायं ।
सिरिदेवसुंदरगुरुं भारहखित्ते जुगपहाणं ॥ ३ ॥

जिणि लीलमित्तिइं मयण जीतउ सयल तिहुअण सल्लउ,
जो सयल सुविहिय सूरिमस्तक रयणसेहर तुल्लउ ।
सोभागसुंदर गुरु पुरंदर वयणि जणमण मोहए,
सिरि देवसुंदरसूरि गणधर वीरसासणि सोहए ॥ ४ ॥

कसमीर मरहठ चीण कुंकुण अंग वंग तिलंगए,
सोरट्ठ सवालष देश गूर्जर गौड चौड कलिंगए ।
कोरंट कोसल देश कोशिक मूलयाण कनूजए,
जसु कीर्त्ति झलकति सूरि नंदउ देवसुंदर सो जए ॥ ५ ॥
हंमीर हुर्मुज सिंधु जलपथ ओडियाण खुरसाणए,
पंचाल जंगल मेदपाट करहाट लाट कर्ण्णाटए ।
नेपाल मंडल मगध मालव पमुह देस विदेसए,
जसु कीर्त्ति झलकति सूरि नंदउ देवसुंदर सो जए ॥ ६ ॥
जोगी उदायी पाइ पाटणि गूंगडीय सरोवरे,
बहु लोय पेखति जस्स पणमिय पाय पउम मणोहरो ।
तउ लोअ पूच्छति जोगि जंपति एस पुरिस जुगुत्तमो,
गिरिनारि कणयरीसिद्धि कहिउ तेण कारणि हुं नमो ॥ ७ ॥
नहयलिहिं दिणयर जाम जाम रोहणि चिंतामणि,
सुरपति मस्तकि जाम तेजि दीपइ चूडामणि;
सुरतरु सोहइ जाम मेरु नंदण वणकाणणि,
जिणवर भासिय धम्म जाम निवसइ सज्जण मणि;
तामेव गुणवन वर पाटधरण वीरसासणि गणहर भयउ ।
सिरि संघ गच्छ परिवार सहित **देवसुंदर** मुणिवर जयउ ॥ ८ ॥

अनइ श्री गिरिनार पर्वति श्री कुलमंडनसूरि प्रतिइं हुई अंबिका आदेश सिद्धि, जे श्री **देवसुंदरसूरि**नइं कही चउथइ भवांतरि सिद्धि;

ये श्री गुरु प्रतिइं १३९७ वर्षे जन्म, १४०४ दीक्षा, संवत् १४०२० (१४२०) वर्षे दीउं आचार्यपद, संवत् १४०६८ (१४६८) वर्षे स्वर्गसंपद । जिम जंबूद्वीपमाहि पांच मेरु सुणीइं, तिम तेहगुरुनइ पांचआचार्यशिष्य भणीइं ।

कुण कुण, सांभलउ—

निर्मल वैराग्य तणउ आगर, सकल सिद्धांतनउ सागर, सूरि श्री ज्ञानसागर १.

तथा—सर्वमतवितंडाखंडन, श्री जिनशासनमंडन, सूरि श्री कुलमंडन २.

बुद्धिइं सुरु (सुरगुरु) समान, क्रियारत्नसमुच्चय ग्रंथकारक, सकल प्रमाद निवारक, चतुर्दश विद्याकृत निरंतर यत्न, सूरि श्री गुणरत्न ३.

अमीयसमान देशना, बूझवइ लोक अनेक देशना; उपशम रससागर, गुणमणि आगर; भाग्यसौभाग्य सुंदर, सज्जनजन पुरंदर, सूरि श्री सोमसुंदर ४.

सर्वगच्छ कार्यधुरीण, सकलविद्या पारीण; विमलकलाकलाप विशाल, जिनशासन मानस मराल; श्रीसंयममार्ग बहुयतन, सूरि श्री साधुरत्न ५.

तेह माहि काल तणइ अनुभावि

प्रथम ३ आचार्य अनइ श्री साधुरत्नसूरिगुरु, अनुभवइं देवभवनि सुख पूरु।

अनइ श्री महावीर थिकउ ५० पाट धुरंधर, सकलसूरिपुरंदर श्रीश्रीश्री सोमसुंदरसूरि गुरुपुरंदर हवडां जे निज प्रतापिइं जयवंता वर्त्तइं।

जे श्री **सोमसुंदरसूरि** गुरु उत्तम भाग्यनिधान, सकल युगप्रधान;

चारित्रलक्ष्मी कंठ कंदलहार, निरुपम ज्ञानभंडार;
सकलसूरि शिरोमणि, श्री **तपो**गच्छनभोमणि;
कुवादिमतंगजसीह, निर्मल क्रियावंतमाहि लीह;
चउद विद्या आगर, गंभीरिम तर्जित सागर;
अज्ञानतिमिर निराकरणसूर, कषायदावानल वारिपूर;
निजदेशनाविबोधितानेकदेशजन, निजगुणलक्ष्मीप्रीणितसज्जन;
नवकल्पविहार, बइतालीस दोषवर्जित आहार;
श्रीजिनशासन शृंगार, युगप्रधानावतार;
जेहे गुरे संस्थाप्या ४ आचार्य, चारित्र भार धरण धुर्य;
कुण कुण सांभलउ – भविक जन पुरंदर, सूरि श्री **मुनिसुंदर**;

जेहे चीट्ठडउं करी अठोत्तर सउ हाथप्रमाणु, परवादी तणउं ऊतारिउं माण।

भविककुमुदविकाशन वितंद्रचंद्र, सूरि श्री जयचंद्र।

जेहे वृहस्पति जीतउ गुणविवेकि, समस्या स्तव, कलापकसूत्रनिबद्धश्री-शत्रुंजयस्तोत्रवृत्ति प्रमुख कीधां शास्त्र अनेकि।

बुद्धिइं जितदेवगुरु, श्री भुवनसुंदर सूरि गुरु।

निजधैर्यनिर्जितमंदर, सूरि श्री जिनसुंदर।

जे करइं करावइं स्वाध्याय, इस्या वर्त्तइं श्री जिनकीर्त्ति गणि उपाध्याय
प्रमुख ४ अनेक गुणमणिमंडित, वर्त्तइ छइं पंडित;
मुनि महासती न लाभइ पार, जेह गुरुनउ एवडउ परिवार।

"भवियणकुमुयविबोहणससिकरसारिच्छतिहुयणाणंदो ।
सिरिसोमसुंदरगुरू चिरकालं जयउ जुगपवरो ॥ १ ॥

आसोअ पुन्निम विमल मंडल चंद कंतिहिं सोहणा,
जसु कित्तिकामिणि भमइ अहनिशि तिजयजणमणमोहणा ।
सिरि सोमसुंदर गुरुपुरंदर जणियजणमणतोसओ,
सो जयउ सुहुगुरु तिजयलोयह सयलनासियसंसओ ॥ २ ॥
तवगच्छ निम्मल विपुल नहयल भासणेह नभोमणी,
जो सयलसुविहिअसूरिचूलामण्डणिकसिरोमणी ।
सिरि सोमसुंदर०, सो जयउ सुहुगुरु० ॥ ३ ॥
सिरिवीरसासणपवरजलनिहिवुड्ढि चंदसमाणओ,
दहचतुरविज्जावहूय वयणोदारकुण्डलसंनिहो ।
सिरि सोमसुंदर०, सो जयउ सुहुगुरु० ॥ ४ ॥
जो सयलभवियणपवरसिवपुरनयणविपुलसुसंदणो,
संवेगचंगो विगयसंगो मयणमाणविहण्डणो ।
सिरि सोमसुंदर०, सो जयउ सुहुगुरु० ॥ ५ ॥
गुज्जर मालव मेदपाट मरहट्ट कलिंगिहिं,
सिंधु जलपथि कन्यकुब्जि कर्णाटि सुभोटिहिं;
हरमुज कोसल पमुह देसि जसु कित्तिअ गज्जइ,
जां दिणयर वर चंद मेरु पुहवी तलि छज्जइ;
तां वीरनाह जिणवर थिकउ पंचासम वर पाटधर ।
सिरिगच्छसंघ परिवारिसहित सोमसुंदर गुरु जयउ चिरु ॥ ६ ॥

इति श्री श्री श्री तपोगच्छ गुर्वावली समाप्ता ।
विबुधवर पं० **जिनवर्द्धन**गणिभिः विरचिता ।

॥ सं० १४०८२ (१४८२) वर्षे वैशाख शुदि ३ दिनेऽलेखि ॥

वल्लभाचार्य अने तेमनो संप्रदाय

*

ले० – श्रीमती कुमारी सुशीला महेता. एम्. ए. एल्एल्. बी.

[ભાગવતધર્મ રિસર્ચ ફેલો – ભારતીય વિદ્યા ભવન]

ભક્તિમાર્ગના અનેક સમ્પ્રદાયોમાં, ગુજરાતમાં સૌથી વધુ પ્રચાર પામેલો સમ્પ્રદાય આચાર્યશ્રી વલ્લભાચાર્યનો છે. ભક્તિવૃત્તિનાં મૂળ તો છેક વેદિક ઋચાઓમાં પણ શોધી શકાય; વેદમંત્રોના દેવતાઓમાં વિષ્ણુને પણ આદરણીય સ્થાન હતું. એ દેવની મહત્તા ધીરેધીરે, કાલક્રમે વધતી ચાલી. ઇ૦ સ૦ દશમા શતકમાં તો વિષ્ણુભક્તિ – તે દેવનાં જુદાંજુદાં નામરૂપોમાં – સારી રીતે પ્રચલિત હતી. અને તે પછી પંદરમાં શતક સુધીમાં તો તેનાં પૂર ઉભરાઈ ઉભરાઈ તે અનેક પ્રવાહોમાં વહેતાં થઈ ગયા હતાં. ભાગવત જેવાં પુરાણોમાં, ગીતગોવિન્દ જેવાં શૃઙ્ગારિક તેમ જ નરસિંહમહેતા જેવા ભક્તકવિઓનાં કાવ્યોમાં ભક્તિરસની છોળો ઉછળતી દેખાય છે. એ ભક્તિરસનાં ન્હાનાં ન્હાનાં, જુદાં જુદાં વહેણો એકત્રિત થઈ. એક ને અખંડિત એવા મહાન પ્રવાહમાં વહેવા લાગ્યાં હોય તો તે શ્રીવલ્લભાચાર્યના પ્રતાપે. એમનો આ પ્રયાસ અ-પૂર્વ હતો એમ તો ન કહેવાય. એમની પહેલાં અનેક આચાર્યો – જેવા કે રામાનુજ (૧૦૧૬–૧૧૩૭), મધ્વ (૧૧૯૭–૧૨૭૬) અને નિમ્બાર્ક (૧૧૬૨) વિગેરેએ, ભક્તિમાર્ગને પોતપોતાના સમ્પ્રદાયમાં મૂર્ત સ્વરૂપ આપવા પ્રયત્ન કર્યો હતો; પણ શ્રીવલ્લભાચાર્યનો સમ્પ્રદાય જેટલો લોકપ્રિય થઈ પડ્યો તેટલી લોકપ્રિયતા બીજા સમ્પ્રદાયોએ ન મેળવી. તેનું મુખ્ય કારણ છે વલ્લભાચાર્યની સામાન્ય લોકોનાં હૃદયને વશ કરવાની વિશિષ્ટ સમર્થતા. "સંસારમાં સરસો રહે પણ મન મારી પાસ" એ મંત્રને એમણે પોતાના સિદ્ધાન્તના મધ્યબિન્દુ તરીકે સ્વીકાર્યો. એમને ત્યાં ત્યાગની આવશ્યકતા નહોતી. એમના સિદ્ધાંત પ્રમાણે દરેકેદરેક મનુષ્ય ઈશ્વરને પ્રાપ્ત કરી શકે, જીતી શકે, વશ કરી શકે; પણ તે માત્ર એક જ આયુધ વડે અને તે આયુધ તે ભક્તિ. વલ્લભાચાર્યની ભક્તિ એટલે પ્રભુની સેવા. ઈશ્વરપ્રાપ્તિનો આવો સહેલો, સરળ માર્ગ દાખવનારના જીવનચરિત્રમાં અહીં જરાવાર ડોકિયું કરીએ તો તે અસ્થાને નહીં ગણાય.

આન્ધ્ર દેશમાં વ્યોમસ્તંભ પર્વતની પાસે કૃષ્ણા નદીની દક્ષિણે કાકરવાડ[1] નામે એક મોટું નગર હતું. ત્યાં શુદ્ધ વેલનાટ કે વેળનાડુ નામે જાણીતું એક બ્રાહ્મણ કુટુમ્બ રહેતું. એ કુટુમ્બનું ગોત્ર યજુર્વેદી તૈત્તિરીયશાખી ભારદ્વાજ હતું. અને તે ગોપાલકૃષ્ણની ભક્તિ કરતું. વલ્લભાચાર્યના પિતા લક્ષ્મણભટ્ટજી વિષ્ણુસ્વામી મતને અનુસરતા. કાકરવાડનો નાશ થવાથી તેઓ અગ્રહારમાં રહેવા ગયા. અને વિદ્યાનગર (વિજયનગરના)ના રાજાના પુરોહિત સુશર્માની કન્યા યલ્લમાગારૂને પરણ્યા. લક્ષ્મણભટ્ટજીને યલ્લમાગારૂથી બે પુત્ર અને બે પુત્રીઓ થઈ. તેમાનાં એક અને સૌથી નાના પુત્ર વલ્લભાચાર્ય. લક્ષ્મણભટ્ટજી એકવાર સકુટુમ્બ – સપરિવાર કાશીની યાત્રાએ ગયા.

1 આ સ્થાન હાલમાં ઓળખાવી શકાયું નથી.

મુસલમાની હુમલાના ભયે ત્યાંથી ન્હાસતાં રસ્તામાં ચોડાનગર પાસે ચંપારણ્યમાં શિવા (હરડેના) વૃક્ષ નીચે સંવત ૧૫૨૯ (ઇ. સ. ૧૪૭૩)ના વૈશાખ (ગુજરાતી ચૈત્ર) વદ અગીઆરસને શનિવારે યલ્લમાગારૂને પુત્રપ્રસવ થયો. બાળકને મરેલું માની માબાપે તેને એક કપડાના કટકામાં વીંટી, શમીવૃક્ષની બખોલમાં મૂકી દીધું; ને તેઓ આગળ ચાલ્યાં. બીજે દિવસે પાછાં વળતાં તેઓએ બાળકની આસપાસ અગ્નિ જોયો ને બાળક જીવતું દેખાણું. પછી તેને સાથે લઈ આગળ ચાલ્યાં. જન્મતાં વેંત જ એમનું અગ્નિએ રક્ષણ કર્યું હતું તેથી વલ્લભાચાર્યને એમના અનુયાયીઓ અગ્નિનો અવતાર–વૈશ્વાનરાચાર્ય–માને છે.

વલ્લભે કાશીમાં જ પોતાનું શૈશવ ગાળ્યું. અને વેદો, વ્યાકરણ તથા ન્યાયાદિ દર્શનોનો અભ્યાસ ત્યાં જ પૂરો કર્યો. ત્યારપછી વૈષ્ણવ તેમ જ શૈવતંત્રો અને રામાનુજ વિગેરે વૈષ્ણવોના સિદ્ધાન્તોનો પરિચય મેળવવા બાર વર્ષની ઉમ્મરે તેમણે કાશી છોડ્યું. વિજયનગરમાં ચારેક વર્ષના રહેવાસ દરમીઆન વૈષ્ણવ શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરી વલ્લભાચાર્ય સંવત્ ૧૫૪૫માં[1] ગોકુળ–મથુરા ગયા. ત્યાં તેઓએ ગિરિરાજમાં દેવદમન કે શ્રીનાથજીના પ્રાકટ્યની વાત સાંભળી, તેથી તે તરફ ગયા અને શ્રીનાથજીનાં દર્શન કર્યાં. મથુરાથી ઉજ્જયિની થઈ સં૦ ૧૫૪૬ની આસપાસ તેઓ કાશી ગયા.

આ પછી લગભગ દશેક વર્ષ તેમણે કાશીમાં ગાળ્યા હોય એમ માનવામાં આવે છે. અને એ અરસામાં જ તેમણે तत्त्वार्थदीपनिबन्ध, सिद्धान्तमुक्तावली અને पत्रावलंबन વિગેરે ગ્રન્થો લખ્યા એમ કહેવાય છે. કાશીમાં તેમણે તત્રસ્થ દેવનભટ્ટની કન્યા મહાલક્ષ્મી સાથે ત્રીશ વર્ષની ઉમ્મરે લગ્ન કર્યું. તેઓ લગ્ન પહેલાં કાશી ગયા હોય એમ સામ્પ્રદાયિક માન્યતા છે; કારણ કે સં૦ ૧૫૫૬ની ચૈત્ર સુદ બીજે તેઓએ ગોવર્ધનપર્વત ઉપર શ્રીનાથજીનું મંદિર બંધાવ્યું.

લગ્ન પછી આચાર્યશ્રીએ દેશનાં અનેક તીર્થોમાં પર્યટન કર્યું. અને પોતાના વિચારોનો ઉપદેશ કર્યો. આવું પર્યટન–જેને "ધાર્મિક દિગ્વિજય" કહેવામાં આવે છે–દરેક સામ્પ્રદાયના આચાર્યોએ કર્યું છે. વલ્લભાચાર્યે દક્ષિણમાં રામેશ્વર સુધીનાં તીર્થોની, મહારાષ્ટ્ર તેમ જ મારવાડનાં તીર્થસ્થાનોની, ગુજરાતનાં મોટાં શહેરોની તથા કાઠિયાવાડનાં સ્થળોની, તેમજ ઉત્તરનાં ને પૂર્વ સુધીનાં અનેક તીર્થોની યાત્રા કરી હતી. આ સ્થળોનાં વિશ્રામસ્થાનોમાં તેઓ શ્રી ભાગવતનું પારાયણ કરતા અને શ્રીકૃષ્ણભક્તિનો ઉપદેશ આપતા. આવા દરેક સ્થળે શ્રીમહાપ્રભુજીની બેઠકો થઈ છે. હાલ આવી ૮૪ બેઠકો મનાય છે; પરંતુ બધીય તે વખતની જ છે એવું ચોક્કસ માનવાને પુરાવો નથી.

તેમની આ પરિક્રમા દરમ્યાન, એક વખતે, વિદ્યાનગરના રાજા કૃષ્ણરાયની સભામાં તેમણે ધાર્મિક વાદવિવાદમાં માયાવાદી પંડિતોને હરાવી પોતાનો સિદ્ધાન્ત સિદ્ધ કાર્યાનું કહેવાય છે. આ પ્રસંગ સં૦ ૧૫૬૫–૬૬માં બન્યો હોવાનો સંભવ છે. આને

1 તેમના ચરિત્રલેખકોએ આપેલી સાલ અને પ્રસંગો બંધબેસતા નથી આવતા. સંસ્કૃત સાહિત્યના ઘણાખરા દરેક લેખક કવિ કે આચાર્યના જીવનપ્રસંગો આપણને અનુમાનથી જ સિદ્ધ કરવાનો પ્રયાસ કરવો પડે છે. વલ્લભાચાર્યના વિષયમાં આટલી માહિતી મળી શકે છે, તે પણ આપણું સદ્ભાગ્ય જ છે.

પરિણામે વલ્લભના ચરિત્રલેખકોમાંના એક–ગદાધરદાસ–ના કહેવા મુજબ, "વ્યાસતીર્થે–જે સભાપતિ હતા–શ્રીવલ્લભાચાર્યને, જો તે મધ્વમત સ્વીકારે તો આચાર્યપદ આપવાની ઇચ્છા દર્શાવી. પણ વિષ્ણુસ્વામીમતના છેલ્લા આચાર્ય બિલ્વમંગળે સ્વપ્નમાં દર્શન આપી વ્યાસતીર્થના શિષ્ય થવાની ના પાડી અને વિષ્ણુસ્વામીનો સર્વમત કહી એ લુપ્ત થઈ ગયેલા મતને પુનઃ પ્રકાશિત કરવાની સૂચના કરી." આ દંતકથામાંથી માત્ર એટલું જ ઐતિહાસિક સત્ય તારવવા યોગ્ય છે કે શ્રીવલ્લભાચાર્યને વિષ્ણુસ્વામી-મતના સિદ્ધાન્તોનો તેમ જ ભક્તિગ્રંથોનો અને પોતાના મોસાળપક્ષના મધ્વમતનો પરિચય હોવો જોઇએ. આ "શાસ્ત્રાર્થવિજય" પછી તેઓ વ્રજમાં જઈ કાશી ગયા હોય એમ માનવામાં આવે છે. છેલ્લાં ૧૯–૨૦ વર્ષ તેઓએ એટલમાં જ ગાળ્યા, છતાં તેઓ વારંવાર વ્રજમાં જતા. આમાંના એકાદ પ્રસંગે, શ્રાવણ સુદ એકાદશીની મધ્યરાત્રીએ, શ્રીકૃષ્ણે તેમને સ્વપ્નમાં દર્શન દીધાં, અને બ્રહ્મસંબંધથી મનુષ્યોને સેવામાર્ગમાં પ્રવેશ કરાવવાની આજ્ઞા કરી. આ રીતે દામોદરદાસ, કૃષ્ણદાસ, મેઘન અને કેશવ કાશ્મિરીએ આત્મસમર્પણ કરી 'સેવા'નો હક્ક પ્રાપ્ત કર્યો.

વલ્લભાચાર્યે તેમની છેલ્લી અવસ્થામા પોતાનાં અધૂરાં પુસ્તકો પુરાં કર્યાં. પોતાના પ્રથમ પુત્ર ગોપીનાથજીને ગાદીએ બેસાડી, તેઓએ માધવેન્દ્રયતિ પાસે સન્યાસ લીધો. ત્યારપછી થોડા જ સમયમાં, સં० ૧૫૮૭ની આષાઢ સુદ ત્રીજને દિવસે, તેમણે શ્રીકૃષ્ણની નિત્યલીલામાં પ્રવેશ કર્યો.

તેમના ગ્રન્થોમાંના મુખ્ય મુખ્યમાં अणुभाष्य નામે પ્રસિદ્ધ ब्रह्मसूत्रभाष्य, पूर्वमीमांसाकारिका, पूर्वमीमांसाभाष्य, બ્રહ્મસૂત્રપર बृहद्भाष्य कृष्णाश्रय, सिद्धान्तमुक्तावली, सिद्धान्तरहस्य, अन्तःकरणप्रबोध, तत्त्वार्थदीप, पुष्टिप्रवाहमर्यादा, पत्रावलम्बन, सुबोधिनी અને तत्त्वार्थप्रकाश ગણી શકાય. આ સિવાય પણ તેમણે બીજાં નાનાંનાનાં અઢારેક પુસ્તકો રચ્યાં છે. વલ્લભાચાર્યના રચેલાં આ બધાં પુસ્તકોમાંથી અત્યારે તો આપણને થોડાંક જ ઉપલબ્ધ થાય છે. કારણ કે એમના વારસદાર ગોપીનાથજીના અકાળ મૃત્યુથી તેમની પત્નીના હાથમાં એ પુસ્તકો આવ્યાં, જે તેણે તેના દીયર વિઠ્ઠલનાથજીને સોંપવા ના પાડી અને કોઈ અકસ્માતથી તે નાશ પામ્યાં. આચાર્યના મરણને અંગે અધૂરા રહેલા અણુભાષ્યની પૂર્તિ પણ શ્રીવિઠ્ઠનાથજીએ જ કરી છે.

તેમનાં જીવનચરિત્રનું આટલું અવલોકન કર્યા પછી હવે આપણે તેમણે ઉપદેશેલા સિદ્ધાન્તોનો સંક્ષિપ્ત પરિચય કરીએ.

ભક્તિ–વલ્લભાચાર્યે ભક્તિની વ્યાખ્યા ભાગવતમાંથી જ ઉતારી છે. તેમના મતે ભક્તિનું સ્થાન કર્મ અને જ્ઞાન કરતાંય ઉચ્ચતર છે.

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥

ભાગવત, ૩. ૨૯. ૧૧.

પ્રભુના ભજનમાં તલ્લીનતા અને પ્રભુમાં જ મનની ગતિ તે ભક્તિ. અથવા "માહાત્મ્યના જ્ઞાનપૂર્વક સુદૃઢ અને સૌથી વધારે પ્રભુમાં સ્નેહ તે ભક્તિ; આનાથી જ મુક્તિ

૧.૨.૬.

મળે બીજાથી નહીં." પણ આવી ભક્તિ અને આવું માહાત્મ્યજ્ઞાન પ્રભુના અનુગ્રહ સિવાય અશક્ય જ છે; અને ભક્તને તો પ્રભુના અનુગ્રહ વિના બીજા શેની અગત્ય હોય? એટલે "ઈશ્વરનો અનુગ્રહ" સાધનરૂપે યા ફલરૂપે આ માર્ગમાં સર્વોત્કૃષ્ટ સ્થાન પામે છે, અને તેથી આ સમ્પ્રદાયને "પુષ્ટિમાર્ગ" એવું નામ આપે છે. "પુષ્ટિ" એટલે ખાઈ પી, મોજમજાહ માણી પુષ્ટ થવું – એવો અર્થ રખે કરતા! પણ પુષ્ટિ એટલે પોષણ અને તે જ "(પ્રભુનો) અનુગ્રહ"

पोषणं तदनुग्रहः । ભાગવત, ૨. ૧૦. ૪.

ઈશ્વરના અનુગ્રહથી જ સંસારમાંથી મુક્તિ, ભગવદ્ભક્તિ, કે ભગવત્ પ્રાપ્તિ સંભવે અને તેથી જ આ માર્ગીય ભક્તો પુષ્ટિભક્તો કહેવાય છે. તેઓના ચાર પેટાભેદો છે.

(૧) **મર્યાદાપુષ્ટિભક્તો** – એટલે કે ભગવાનના ગુણો જાણીને ભક્તિ કરનારા. તેઓને મન સંસારનું સુખ તુચ્છ છે. માત્ર ભગવાનનું ભજન, કીર્તન વિગેરે જ તેમને આનંદ આપી શકે છે.

(૨) **પ્રવાહપુષ્ટિભક્તો** – પુષ્ટિમાર્ગના ભક્તોનો બીજો પ્રકાર તે પ્રવાહપુષ્ટિભક્તો. તેઓ કર્મ કરવામાં જીવનનું સાર્થક્ય માને છે. નિશદિન શાસ્ત્રવિહિત કર્મો કર્યે જાય છે; છતાં "આ હું કરૂં છું," "આ મારૂં છે" એ મમત્વનો નાશ થયો હોતો નથી.

(૩) **પુષ્ટિપુષ્ટભક્તો** – તેઓ ભગવદ્ અનુગ્રહથી પાવન થયા છતાં શ્રીહરિની પૂજા માટે બીજા સાધનોનો, જ્ઞાનના ઉદય માટે, ઉપયોગ કરે છે. તેઓને ભગવાનના સ્વરૂપનું યથાર્થજ્ઞાન તથા પ્રભુપ્રત્યે સુદૃઢ અને સર્વાધિક સ્નેહ હોય છે. પણ તે જ્ઞાન માટે તેઓને પ્રયત્ન કરવો પડે છે.

(૪) **શુદ્ધપુષ્ટિભક્તો** – પ્રેમથી હરિની પરિચર્યા તથા તેના ગુણોનું શ્રવણ-કીર્તન કરનારા. ભક્તિ એ તેમને વ્યસન છે. આ ભક્તિનો ઉદ્ભવ તેમનાં હૃદયમાં માત્ર ઈશ્વરકૃપાથી જ થાય છે. ત્યા બીજાં બાહ્ય સાધનો કે સ્વેચ્છાને અવકાશ નથી.

આ ચાર પ્રકારોમાં છેલ્લો સર્વોત્તમ છે. આ જાતની ભક્તિ ગોપીઓની – શ્રીકૃષ્ણના વિરહદુઃખથી ટળવળતી અને તેના સંયોગમાં રાચતી ગોપીઓની હોય છે. આ શુદ્ધ-પુષ્ટિભક્તિને ફળરૂપભક્તિ અથવા માનસી સેવાને નામે પણ ઓળખવામાં આવે છે.

ભગવત્સેવા – પુષ્ટિમાર્ગની ભક્તિનું મુખ્ય અંગ તે ભગવત્સેવા. સેવાના ત્રણ પ્રકાર છે – તનુજા સેવા, વિત્તજા સેવા, અને માનસી સેવા.

શ્રવણ, કીર્તન અને પોતાના શરીરથી ભગવાનની યથાશક્તિ સેવા તે તનુજા.

પ્રભુને વસ્ત્રાલંકાર ધરાવવા, ઉત્સવો વિગેરે ઉજવવા, મંદિરો બંધાવવા – આ સઘળી વિત્તજા સેવા. અલબત્ ધનાઢ્યોને જ આ સેવા સુલભ ને શક્ય બને, છતાં સૌ પોતાની શક્ત્યનુસાર ફાળો આપી શકે.

આ બે પ્રકારની સેવા તો સાધનરૂપ છે. આવી રોજની પ્રવૃત્તિથી મનની એકાગ્રતા સાધી શકાય, અર્થાત્ તેનો અભ્યાસ પડે, અને તેનું જે ફળ તે માનસી સેવા. ઉપરના બે પ્રકારની સેવાથી સેવાભાવનાં બીજ મનમાં રોપાય છે, જે ભાવ અભ્યાસથી પ્રેમમાં

પરિણમે છે. એ પ્રેમરાશિ વધતાં તે આસક્તિનું, મોહનું—લૌકિક, ક્ષુદ્ર નહીં, પણ દિવ્ય મોહનું—સ્વરૂપ ધારણ કરે છે. અને પરિણામે તેનું વ્યસન થઈ જાય છે. ત્યાર-પછી, પ્રભુની કૃપાથી—અનુગ્રહ વડે—સર્વાત્મભાવ પ્રાપ્ત થાય છે.

આત્મનિવેદન—ઉપર કહ્યા પ્રમાણે સાધનરૂપ સેવા એ શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તિનું સાધન ખરૂં, પણ આપોઆપ ભગવત્સેવાનો અધિકાર પ્રાપ્ત થતો નથી. "ગુરૂ બિન કૌન બતાવે વાટ." આપણે તો પામર અજ્ઞાન મનુષ્યો! ગુરૂ વિના શ્રીહરિનું ઓળખાણ કોણ કરાવે? આપણે મનુષ્યો પણ એક બીજા સાથેનો સમાગમ સાધવા માટે પરસ્પર ઓળખાણની અપેક્ષા રાખીએ છીએ તો પછી ઈશ્વર જેવા અગમ્યને શરણે જતાં પહેલાં કોઈ દિશા સુઝાડનાર, માર્ગદર્શક ભોમિયાની જરૂર પડે એમાં આશ્ચર્ય જેવું શું? એટલે આ માર્ગમાં પ્રવેશ કરવા ઇચ્છનારે આચાર્યના કોઈ પણ વંશજને ગુરૂ તરીકે માન્ય રાખી, તેને શરણે જઈ, તેની પાસેથી 'श्रीकृष्णः शरणं मम' નો મંત્ર કાનમાં સાંભળીને તેને હાથે તુલસીમાલા ધારણ કરવી. આમ કરવાથી આત્મનિવેદન વિધિ સંપૂર્ણ કર્યો ગણાય છે. આ શરણમંત્રોપદેશ પછી, બ્રહ્મસંબંધ કે આત્મનિવેદન, જેનો મુખ્ય હેતુ આચાર્યદ્વારા પ્રભુને સર્વસ્વ સમર્પણ કરવાનો છે, તે લેવામાં આવે છે. તે સમયે ગુરૂ નીચેનો ગદ્યમંત્ર કાનમાં બોલે છેઃ—

'सहस्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्णवियोगजनिततापक्लेशानन्दतिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणानि तद्धर्मांश्च दारागारपुत्रवित्तेहापराणि आत्मना सह समर्पयामि, दासोऽहं कृष्ण त्वमसि ।'

બ્રહ્મસંબંધ એટલે જીવ અને ભગવાનના અંશાંશીભાવની પુનઃસ્મૃતિ. આ સંસ્કાર પછી જ પુષ્ટિમાર્ગમાં સેવાનો અધિકાર પ્રાપ્ત થાય છે.

જીવ—તે ભગવાનનો અંશ છે, ને અણુરૂપ છે. તેમાં બ્રહ્મના ત્રણ ધર્મો—સત્, ચિત્ ને આનંદ—માંથી આનંદનો તિરોભાવ છે. તે જ્ઞાતા છે, ને જ્ઞાન તેનો ધર્મ છે; તે પ્રકાશક છે ને ચૈતન્ય તેનો ધર્મ છે. ચૈતન્ય વડે જ તે અણુ હોવા છતાં સમગ્ર દેહને વ્યાપી રહેલ છે. તે કર્તા તેમ જ ભોક્તા છે. જેમ અગ્નિમાંથી તણખા નીકળે છે તેમ બ્રહ્મમાંથી અસંખ્ય જીવો ઉત્પન્ન થાય છે—"વ્યુચ્ચરિત" થાય છે. આ અંશાંશી-ભાવ એટલે જ જીવ અને બ્રહ્મનો અભેદ. માત્ર આનંદાંશના તિરોભાવને લીધે, ભગ-વાનના છ ગુણો—ઐશ્વર્ય, વીર્ય, યશ, શ્રી, જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય—જીવમાં જોવામાં આવતા નથી. તે કારણે જ તેની પરાધીનતા, દુઃખ, દેહાદિમાં અહબુદ્ધિ ને વિષયાસક્તિ દેખા દે છે. જ્યારે ઈશ્વરાનુગ્રહે આનન્દાંશ પ્રકટે છે ત્યારે જીવ અણુ મટી વિભુ બને છે, અને ભગવાનના તિરોભૂત ધર્મો જીવમાં પુનઃ પ્રકટ થાય છે.

જગત અને સંસાર—જગતની ઉત્પત્તિ પણ બ્રહ્મની ઇચ્છાશક્તિમાંથી જ થાય છે; તેથી તે પણ પ્રભુથી ભિન્ન નથી. શંકરાચાર્યની જેમ શ્રીવલ્લભાચાર્ય માયાવાદ ઉપદેશતા નથી. શંકર, જગત અને જીવ—બન્નેને માયાના પરિણામ—એટલે કે મિથ્યા ગણે છે. વલ્લભમતે બન્ને સત્ય છે. છતાંય કાર્યજગતની ઉત્પત્તિથી કારણબ્રહ્મમાં કાંઇપણ ફેરફાર થતો નથી. આ "અવિકૃતપરિણામવાદ" ને નામે ઓળખાય છે. માટીનાં અનેક આકા-રનાં વાસણો બનાવ્યાં છતાંય માટી માટી જ રહે છે. તેમ બ્રહ્મ, અનેક જીવની ઉત્પત્તિ

છતાં, બ્રહ્મ જ રહે છે. બ્રહ્મ, આમ ઉપાદાન કારણ ઉપરાંત નિમિત્ત પણ છે, કારણ કે તેમાંથી અને તેની ઇચ્છાથી જ જગત્ ઉત્પન્ન થયું છે.

વળી, શંકરાચાર્યની જેમ વલ્લભાચાર્યે જગતોત્પત્તિ માટે, બ્રહ્મની અપરા પ્રકૃતિ કલ્પી નથી. બ્રહ્મની આવિર્ભાવ-તિરોભાવાત્મક શક્તિ તે જ માયા અને તેમાંથી જ જીવ અને જગત્‌ની ઉત્પત્તિ છે અને તેમાં જ તે લય પામે છે. આમ જ બ્રહ્મની 'અદ્વૈતતા' સિદ્ધ થાય છે. શંકરના કેવલાદ્વૈત અને રામાનુજના વિશિષ્ટાદ્વૈતથી જુદો પાડવા વલ્લભાચાર્ય પોતાના મતને "શુદ્ધાદ્વૈત" નામ આપે છે. मायासंबंधरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः । (शुद्धाद्वैतमार्तण्ड – ૨૮) બ્રહ્મને માયા સ્પર્શી શકતી નથી માટે તે શુદ્ધ.

આ પ્રમાણે જગત્ તો શુદ્ધ જ છે; મિથ્યા છે સંસાર, જેનું નિમિત્ત પાંચપર્વા અવિદ્યા છે. તેનું ઉપાદાન કારણ નથી; કેમકે તેનું અસ્તિત્વ, અવિદ્યાને અંગે, જીવથી કલ્પિત છે. જ્ઞાનના ઉદયથી દ્વૈતજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને જીવને સર્વ ઠેકાણે અદ્વૈત દર્શન લાધે છે. જીવનું સંસારિત્વ, દેહ, ઇન્દ્રિય, અંતઃકરણ, પ્રાણ અને સ્વરૂપ-વિસ્મૃતિ – એ અધ્યાસો વડે જ સંભવે છે. આ પાંચપર્વા અવિદ્યાનો નાશ પાંચપર્વા વિદ્યાથી શક્ય છે. વિદ્યાના પાંચ પર્વો એટલે વૈરાગ્ય, સાંખ્ય, યોગ, તપ અને પ્રેમ. આ અહતા – મમતાત્મક સંસારમાંથી જીવની મુક્તિ એ જ મોક્ષ. સંસાર નાશવંત છે, જગત્ નહીં. સંસાર કલ્પિત છે; જગત્ બ્રહ્મકાર્ય છે માટે શુદ્ધ છે, સત્ય છે. આવો જગત્ – સંસારનો ભેદ શ્રીવલ્લભાચાર્યે પ્રથમ જ સમજાવ્યો છે.

ઇશ – આ માર્ગમાં ઇષ્ટદેવતાના સ્થાને શ્રીકૃષ્ણ વિરાજે છે. અવિકૃત સચ્ચિદાનંદ, રસરૂપ, પૂર્ણપુરૂષોત્તમ, જગતની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ ને લયના કારણરૂપ છે. ક્ષર તેમ જ અક્ષરથી પર, અનન્ત નામ તેમ જ શક્તિ ધરાવે છે. સર્વશક્તિમાન, વ્યાપક તે પ્રભુ આકારવાન્ છે. એ વિરૂદ્ધધર્મા પણ છે, જેમકે અણુ છતાં વિભુ, નિરાકાર છતાં સાકાર, અને અવિભક્ત છતાં વિભક્ત છે. પરબ્રહ્મ એવા શ્રીકૃષ્ણના ત્રણ રૂપો છે – આધિદૈવિક, આધિભૌતિક ને આધ્યાત્મિક. અક્ષરબ્રહ્મ એ એનું આધ્યાત્મિક સ્વરૂપ, જગત્ તેમ જ લક્ષ્મીપતિ નારાયણ એ આધિભૌતિક અને સચ્ચિદાનંદ બ્રહ્મ એ આધિદૈવિક. આમાંથી પહેલું જ્ઞાનીને પ્રાપ્ય છે, છેલ્લું ભક્તને. સાધારણ મનુષ્યો, એ આનન્દરૂપ દેવને, માયાના આવરણને અંગે જોઈ શકતા નથી. ભક્તિવડે એ પડળ દૂર થતાં તેનાં દર્શન સુલભ બને છે. એના અનેક અંશાવતારો થયા છે, પણ રાસલીલાના અધિષ્ઠાતા એ પૂર્ણપુરૂષોત્તમ જ છે.

પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણ તરીકે તો,

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ।
उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम् ॥

(तत्त्वदीपनिबन्ध, शास्त्रार्थप्रकरण, ૭ – ૮)

એટલે વેદમાં સંદેહ પડે તો ગીતાવડે – જે શ્રીકૃષ્ણની વાણી છે – તેનું નિવારણ, ગીતાની શંકા બ્રહ્મસૂત્ર દૂર કરે, અને તેમાંય શંકા થાય તો છેવટનું પ્રમાણ શ્રીમદ્ ભાગવત – જે ઉપર્યુક્ત શ્લોકમાં "વ્યાસની સમાધિભાષા" તરીકે ગણાયું છે.

મોક્ષ—શ્રીકૃષ્ણની પ્રાપ્તિ—જે "અનુગ્રહ" વિના અશક્ય છે—અને તેની નિત્ય લીલામાં પ્રવેશ; આ જ પુષ્ટિભક્તોનો મોક્ષ. તે અનુગ્રહ—ભક્તિવડે જ મેળવાય. બ્રહ્માનંદ કરતાં ભજનાન્દ આ માર્ગમાં ઉચ્ચતર ગણાય છે, પણ એ અલૌકિક આનંદના અનુભવ માટે દિવ્ય દેહની જરૂર રહે છે. આનું નામ **પુષ્ટિમાર્ગીય સદ્યોમુક્તિ.** આ સ્થિતિમાં ઐશ્વર્યાદિ ગુણો તિરોહિત જ હોય છે, અને દુઃખનો નાશ પણ થતો નથી. પણ એ દુઃખ તો શ્રીકૃષ્ણના વિરહનું હોવાથી ભક્ત તેને હસતે મુખડે વધાવી લે છે.

ભક્તિમાર્ગમાં સ્ત્રીને ને શૂદ્રને પણ શરૂઆતથી જ અધિકારી ગણવામાં આવ્યાં છે, એટલે પુષ્ટિમાર્ગ તેમને અધિકારી ગણે એ સ્વાભાવિકજ છે. એનાં ઉદાહરણ તરીકે વિઠ્ઠલનાથજીનાં શિષ્યો—પઠાણકવિ રસખાન તેમ જ ચાંદબીબી છે.

શ્રીવલ્લભાચાર્યના સિદ્ધાન્તોનું આપણે ટૂંકું વિવેચન કર્યું. ઈશ્વરના અનુગ્રહને સ્વમાર્ગનું મુખ્ય લક્ષણ ગણી તે ઉપરથી તેમણે પોતાના માર્ગને "પુષ્ટિમાર્ગ" એવું નામ આપ્યું. આ અનુગ્રહનું તત્ત્વ તો છેક ઉપનિષદ્‌ના મંત્રોમાં પણ શોધી શકાય. "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम ।" (कठ १.२.२३, मुण्डक ३. २. ३) શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદ્‌માં શરણ—પ્રપત્તિ—નો પણ ઉલ્લેખ છે. तमहं देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणं प्रपद्ये ।' (શ્વે૦ ૬,૧૮.) મતલબ કે ઉપનિષદ્, ગીતા, મહાભારતમાં મળી આવતાં ભક્તિનાં પ્રાચીન તત્ત્વો જેમ રામાનુજાદિ બીજા સમ્પ્રદાયોમાં ઉતરી આવ્યાં છે, તેમ જ આમાં પણ ઉતરી આવ્યાં છે; એટલું જ નહીં પણ પૂર્વ સમ્પ્રદાયોમાં થયેલો કેટલોક વિકાસ પણ આ સામ્પ્રદાયમાં સ્વાભાવિક રીતે અવતરે છે. દાખલા તરીકે, રામાનુજ મતના ઈશ્વરસ્વરૂપનું વર્ણન વલ્લભમતના વર્ણન સાથે સ્પષ્ટ સામ્ય દર્શાવે છે. મધ્વમત પણ ઈશ્વરના શરીરને આનંદમય માને છે; અને ભક્તિના મુખ્ય લક્ષણ તરીકે પ્રેમને અગ્રસ્થાન શ્રી નિમ્બાર્કે પણ આપ્યું છે. આમ પ્રાચીન સાહિત્ય તેમ જ સમ્પ્રદાયોની દેખીતી અસર છતાં, પુષ્ટિમાર્ગનો મુખ્ય આધાર, શ્રીવલ્લભ જેને સંદેહનિવારક ગ્રંથોમાં ગણાવે છે, તે શ્રીમદ્‌ભાગવત પર જ છે. (વૈષ્ણવધર્મનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ—દુ૦ કે૦ શાસ્ત્રી, પૃ. ૨૬૬)

જો કે વલ્લભે ભક્તિનાં સિદ્ધાન્તો ભાગવતમાંથી તારવ્યાં છે, છતાં પણ ભાગવતની ભક્તિ પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન છે. ભાગવત ગોપીઓની ભક્તિને સર્વોત્તમ માનતું નથી. તેમાં તો ગોપીઓના વર્તન માટે બચાવનો પ્રયાસ જોવામાં આવે છે. ત્યારે પુષ્ટિમાર્ગમાં તો ગોપીઓની ભક્તિ જ આદર્શ ગણાય છે. ભાગવત પછી શ્રીધરસ્વામી, બોપદેવ વિગેરેને પણ ગોપીભક્તિ પ્રશંસાપાત્ર તો નથી જ લાગતી. છતાં બિલ્વમંગલ અને જયદેવ જેવા સંતભક્તોની અસરે એ આદર્શને ધીમેધીમે પોષ્યો-વિકસાવ્યો. વળી ચૈતન્ય—વલ્લભના સમકાલીન—ની (શક સં૦ ૧૪૦૭–૧૪૫૫) પણ અસર આ માર્ગપર થાય એમાં આશ્ચર્ય નહીં. વિ૦ સં૦ ૧૬૦૦ થી—૧૬૫૦ વચ્ચે આ બેય સંપ્રદાયના ગુંસાઇઓ વ્રજમાં રહેતા. તેમને "પરસ્પરસમાગમ અને વિચારવિનિમયનો પુરતો અવકાશ હતો." ઉલટું, ચૈતન્યનો સખીભાવ, પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિની કલ્પનાથી વિરોધી ન હોવાને લીધે, તેના આછેરા પડઘા આ માર્ગમાં પડે, ઝીલાય, એ સ્વાભાવિક હતું. વલ્લભે સ્પષ્ટરીતે સખીભાવને નથી ઉલ્લેખ્યો છતાં તેમના

પુત્ર વિઠ્ઠલનાથજી ગોપીભાવને ઉલ્લેખે છે. मारणे वरणे वापि दासीनां नाप्रभुर्गतिः। (विज्ञप्ति २, वेणुनाद १. ४. ९४)

જો કે ચૈતન્યની જેમ વલ્લભાચાર્યે 'જારભાવ' કે 'સખીભાવ'નો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ નથી કર્યો, છતાં એ 'શૃંગારભાવ' તો ઉપદેશે છે એમાં બીલકુલ શંકા નથી. તેની સાબીતી તરીકે કૃષ્ણગોપીલીલાનાં શ્રીવલ્લભાચાર્ય તેમ જ અન્ય ગુંસાઇઓનાં કાવ્યો ગણાવી શકાય.

હાલના આચાર્યો અને વર્તમાન સ્થિતિ–શ્રીવલ્લભાચાર્યના વંશજ વિઠ્ઠલનાથજીને સાત પુત્રો હતા. તે બધાના સર્વે વંશજો પુષ્ટિમાર્ગના હાલના આચાર્યો ગણાય છે. તેઓ જુદેજુદે સ્થળે રહી, ભગવત્સેવા કરે છે. ભક્તોને દીક્ષા દેવાનો અધિકાર તેમનો છે. આ માર્ગના પેટાભેદો ગુજરાત-કાઠિયાવાડમાં મળે છે–જેવા કે, ભરૂચી, પાવડીઆ અને નીમડીઆ વૈષ્ણવો; અને કાઠિયાવાડમાં જયગોપાલીઆ વૈષ્ણવો.

ગુરૂભક્તિ–દરેક ધર્મમાર્ગમાં ગુરૂનું સ્થાન મહત્ત્વનું જોવામાં આવે છે. જ્ઞાનમાર્ગ, ભક્તિમાર્ગ કે યોગમાર્ગ–બધાયમાં ગુરૂની આવશ્યકતા સ્વીકારવામાં આવી છે. કારણ મનુષ્યને માર્ગદર્શકની જરૂર અવશ્ય રહે જ છે. આ સ્વાભાવિક વસ્તુએ ગુરૂભક્તિને એટલી ઉચ્ચ કક્ષાએ પ્હોંચાડી કે ગુરૂ અને દેવનો ભેદ લુપ્ત થવા લાગ્યો; શિષ્યને શરૂઆતથી જ શીખવાયું. "आचार्य देवो भव"; શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદ્‌માં પણ "यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ" નો મંત્ર ઉપદેશાયો. ગુરૂભક્તિનાં મૂળ આ પ્રમાણે ઉપનિષદ્ કાળથી જ જણાઈ આવે છે. બીજા સમ્પ્રદાયોમાં પણ તેની અગત્યતા સ્વીકારવામાં આવી છે જ; પણ વલ્લભસંપ્રદાયે એના આદર્શને સૌથી વધુ પોષ્યો. જો કે વલ્લભાચાર્યે પોતે ગુરૂની આવશ્યકતા પર એટલો બધો ભાર દીધો નથી. એ તો કહે છે:–"જિજ્ઞાસુએ શ્રીકૃષ્ણની સેવામાં પરાયણ, દમ્ભાદિથી રહિત, અને શ્રીભાગવતતત્ત્વને જાણનાર મનુષ્યને જોઈ તેને ગુરૂ તરીકે આદરથી ભજવો. એવો માણસ ન મળે તો કવચિત્ જાતે શ્રીહરિની મૂર્તિ કરીને પણ તેની સેવા કરવી." પણ પોતે જ માર્ગના આદ્યસ્થાપક હોઈ ગુરૂપદ ધારણ કર્યું. વલ્લભ પછી તેના વંશજોને જ ગાદી મળે એવી રૂઢિ એ માર્ગમાં પ્રચલિત છે; કારણ વલ્લભે તેમના અનુયાયીઓ પર સંન્યાસ લેવાનો પ્રતિબંધ મૂક્યો હતો–એટલે વલ્લભાચાર્ય પછી તેના અનુગામી આચાર્યોને ગુરૂપદ ધારણ કરવાનો અને પોતાના ભક્તોને દીક્ષા આપવાનો અધિકાર મળ્યો. જો કે સામ્પ્રદાયિક માન્યતા પ્રમાણે આચાર્ય તો વલ્લભાચાર્ય જ છે, અને એમના વંશજો તો માત્ર 'ગુરૂદ્વાર' રૂપ છે, પણ અજ્ઞાન અને ગુરૂભક્તિનાં વેગમાં આનો વિપરીતાર્થ થયો છે.

શ્રી વલ્લભાચાર્ય પોતાને "કૃષ્ણના દાસ" कृष्णदासस्य वल्लभस्य કહે છે, પણ એમના પુત્ર શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી "વલ્લભાચાર્ય એ જ કૃષ્ણ" "वस्तुतः कृष्ण एव सः" એમ કહે છે. આ રીતે તેમણે ગુરૂની, દેવની જેમ ભક્તિ કરવી તેના બદલે, ગુરુને જ દેવ તરીકે ઉપદેશ્યા. વિઠ્ઠલનાથજીના શિષ્ય ગોપાળદાસે તેથીય એક પગલું આગળ જઈ પોતાના ગુરૂને પુરૂષોત્તમનો જ અવતાર ગણ્યા. વળી વલ્લભાચાર્યે પોતાનું "અશેષ માહાત્મ્ય" પોતાના દરેક વંશમાં સ્થાપ્યું છે, એવું પણ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીએ લખ્યું.

આને લીધે દરેક આચાર્ય, વિદ્વાન્ હોય યા ન હોય, ચારિત્ર્યવાન્ હોય યા નહીં, પણ ભક્તોને મન તો તે પુરૂષોત્તમ જ છે. એટલે જ્યાં ઇષ્ટદેવતા રાસવિહારી શ્રીકૃષ્ણ-દેવ હોય, જ્યાં ભક્તિનો આદર્શ ગોપીભક્તિ હોય અને જેમાં આચાર્ય જ દેવરૂપ મનાતા હોય ત્યાં સ્વચ્છંદનો પ્રવેશ સુલભ બને તો એમાં આશ્ચર્ય જેવું નથી; અને એના પરિણામે જ એ માર્ગમાં પેસી ગયેલા કેટલાક દુરાચાર, વિલાસ ને વ્યભિચારનો સ્વીકાર તો તન્માર્ગીય વિદ્વાનોને પણ કર્યા વિના છૂટકો નથી. અને એ રીતે શ્રીવલ્લભાચાર્યે જે ભવિષ્યવાણી કહી છે તે અત્યારે સત્ય થતી જોઈ શકાય છે. એમણે ભાખ્યું હતું કેઃ—

यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथञ्चन ।
तदा कालप्रवाहस्था देहचित्तादयोऽप्युत ।
सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मानिति मतिर्मम ॥

આ ઉપરથી શ્રીવલ્લભાચાર્યે કે તેમના પુત્ર વિઠ્ઠલનાથજીએ અસદાચારનો ઉપદેશ કર્યો હતો એવો અસત્ય આક્ષેપ ન કરી શકાય. શ્રી મુન્શી કહે છે તેમ "માણસના શૃઙ્ગારી સ્વભાવને આ પંથમાં ઝોક મળવાથી તે લોકપ્રિય થયો" તે ખરૂં પણ "આદ્ય-શિષ્યો નૈતિક બળવાળા હતા. તેના અનુયાયીઓમાં સ્વચ્છંદ કે દૂષણો નહીં પેઠા. પણ મનુષ્યસ્વભાવ નિર્બલ છે; અને અમર્યાદિત વાસનાથી સરલ થઈ પડેલું અધઃપતન ભાગ્યે જ તે લાંબા વખત સુધી રોકી શકે છે."

તેથી આ મનુષ્યસહજ નિર્બલતાનો દોષ આપણે એ મહાન્ આચાર્યને શિરે ઢોળી ન શકીએ.

रांदल शब्द विषे विचार

*

[ले० – श्रीयुत पं० वेचरदास जी० दोसी; न्याय-व्याकरणतीर्थ]

મુંબઈની ફાર્બસ સભાદ્વારા ચાલતી બુદ્ધિવર્ધક વ્યાખ્યાનમાળામાં, એક વ્યાખ્યાતા શ્રીમાન્ ભગવાનલાલ લ૦ માંકડ એમ. એ. બી. ટી. એમણે 'ગુજરાતમાં સૂર્યપૂજા અને રાંદલપૂજા' એ વિશે એક રસપ્રદ વ્યાખ્યાન તા. ૨૫–૯–૩૮ ને રોજ આપેલું હતું. તે આખું ફાર્બસ ગુજરાતી સભાના મુખ પત્ર 'ત્રૈમાસિક' માં છપાયું છે. તેમાં તે વિદ્વાન્ વ્યાખ્યાતાએ 'રાંદેલ' શબ્દની વ્યુત્પત્તિ બતાવતાં નીચે પ્રમાણેનું લખાણ કરેલું છેઃ

'રાંદલ'[1] શબ્દની વ્યુત્પત્તિ કરતાં આપણને આ દુઃખમાત્ર દૂર કરી સુખ આપે છે તે રાંદલ એમ સમજાય છે. रांदे याति लाति इति रांदेलः અમારાં કહેલાં આનંદ સુખને દેવાવાળી રાંદેલ."

આ વ્યુત્પત્તિ મારી સમજમાં નથી આવતી. 'रांदे' એટલે શું? તેની સાથે વળી 'याति' પદનો શો સંબંધ? સંસ્કૃતસાહિત્યમાં આનંદ અને સુખ માટે 'रांदे' શબ્દનો ઉપયોગ મેં જાણ્યો નથી. વ્યુત્પત્તિ બતાવનાર ભાઈએ 'रादे' નો જે અર્થ બતાવ્યો છે તે માટે એકાદ કોશનું કે એવું બીજું કોઈ સંવાદી વચન ટાંકી બતાવ્યું હોત તો વિશેષ ઉચિત થાત. અસ્તુ.

મારી સમજ પ્રમાણે 'रन्नादे' કે 'रण्णादे' એ શબ્દ પ્રાચીન છે એવું ઇતિહાસવિદ્ શ્રી દુર્ગાશંકરભાઈનું કથન બરાબર છે. सं० रत्नादेवी – प्रा० रयणादेवी. 'रयणादेवी' પદ સાથે 'रन्नादे' વા 'रण्णादे' શબ્દનું વિશેષ સામ્ય છે. અક્ષરવિન્યાસ અને તેનું પરિવર્તન, તથા અર્થદૃષ્ટિએ જોતાં એ સામ્ય બરાબર સંગત ભાસે છે.

આચાર્ય હેમચંદ્રે પોતાના [2]યોગશાસ્ત્રમાં 'સૂર્યપત્ની' માટે 'रत्नादेवी' શબ્દનો ઉપયોગ કરેલો છે એ જોતાં ઉક્ત કલ્પનાને સબળ ટેકો મળે છે. रत्नादेवी – रयणादेवी – रण्णादेई – रण्णादे વા रन्नादे – राणादे વા रानादे એ પ્રકારે શબ્દપરિવર્તનનો ક્રમ હોવો જોઈએ. रण्णादेई વગેરે પદોમાં 'रन्नादेई' એ રીતે 'न' પણ કલ્પી શકાય છે.

प्रा० पीअल[3] (પીળું) प्रा० अंधल (આંધળું) प्रा० विज्जुला (વીજળી) प्रा० पत्तल (પાતળું) વગેરે પદોમાં અંતિમ 'ल' સ્વાર્થિક પ્રત્યય છે તેમ 'रण्णादे' શબ્દને સ્વાર્થિક 'ल' પ્રત્યય લાગવાથી 'रण्णादेल' એવું પદ નીપજે છે અને એ 'रण्णादेल' શબ્દનું ત્વરિત ઉચ્ચારણ કરતાં વર્તમાનમાં બોલાતો 'રાંદલ' વા 'રાંદેલ' શબ્દ આપોઆપ નીપજે એમ છે.

કેટલાંક બંગાળી નામોમાં અંતે 'અડક' સૂચક 'દે' આવે છેઃ (નંદલાલ દે, વિશ્વનાથ દે) એ 'દે' મૂળ 'દેવ' શબ્દનું સંક્ષિપ્ત રૂપ છે. देव – देअ – दे. એનું અંગ્રેજોએ કરેલું 'ડે' ઉચ્ચારણ પણ પ્રસિદ્ધ છેઃ (નંદલાલ ડે) જેમ 'દેવ' શબ્દ 'દે' રૂપે પરિણમેલો છે તેમ 'દેવી' શબ્દ પણ 'દે' રૂપે નીપજેલો છેઃ જેમ ગોરાંદે. એ જ રીતે પ્રસ્તુત 'रण्णादे' વા 'रन्नादे' શબ્દનો અંતિમ 'दे' 'देवी' શબ્દનું સંક્ષિપ્તરૂપ છે. देवी – देई – दे. આ રીતે ઉક્ત પ્રકારે 'રાંદલ' વા 'રાંદેલ' પદનું નિર્વચન કરવું ઠીક લાગે છે. વળી કોઈ વ્યુત્પત્તિવિદ્ મહાશય આ વિશે વિશેષ જણાવશે તો જરૂર નવું જાણવાનું મળશે.

---

1 ફાર્બસ ગુજરાતી સભા દ્વારા પ્રકાશિત થતા 'ત્રૈમાસિક'ના ચોથા પુસ્તકના ત્રીજા અંક (ઓકટોમ્બર–ડીસેમ્બર–૧૯૩૯)માં આવેલા વધારામાંથી આ લખાણ અક્ષરશઃ ઉતારેલું છે.

2 गौरी रुद्रस्य, सावित्री ब्रह्मणः, श्रीर्मुरद्विषः ।
शची-इन्द्रस्य, रवे रत्नादेवी, दक्षात्मजा विधोः ॥ – યોગશાસ્ત્ર દ્વિતીય પ્રકાશ.

3 "विद्युत्-पत्र-पीत-अन्धात् लः" – ૮।૨।૧૭૩। હેમપ્રાકૃતવ્યાકરણ.

अपभ्रंश कविओ:

चतुर्मुख स्वयंभू अने त्रिभुवन स्वयंभू[1]

*

लेखक — श्रीयुत प्रो० मधुसूदन चिमनलाल मोदी, एम. ए., एलएल. बी.

[अपभ्रंशना युनिवर्सिटी पोष्ट ग्रेज्युएट अध्यापक, गु० व० सो० रिसर्च डीपार्टमेंट, अमदावाद]

§૧. અપભ્રંશપાઠાવલીનું[2] સંકલન કરતીવેળા આ બે અપભ્રંશકવિઓની સંયુક્ત કૃતિઓનો, હાથપ્રતો મારફતે, પરિચય સાધવાનું ભાગ્ય મને પ્રાપ્ત થયું હતું. વિશાળ પુરાણોને અપભ્રંશમાં ઉતારનાર આ કવિયુગલ આઠમાથી દશમા વિક્રમશતકમાં થઈ ગયું. બાણભટ્ટની અધૂરી કાદંબરી તેના પુત્રે પૂર્ણ કરી પિતાનું તર્પણ કર્યું, તે રીતે જ ચતુર્મુખ સ્વયંભૂની વિશાળ અધૂરી કૃતિઓને તેના પુત્ર ત્રિભુવને પૂરી કરી પિતૃઋણ અદા કર્યું. હાથપ્રતો મારફતે જ જાણીતા, આ બે કવિઓનું અપભ્રંશ સાહિત્યમાં સમયની દૃષ્ટિએ પણ પ્રાચીન સ્થાન છે. આ કવિની એક પણ કૃતિ પ્રસિદ્ધ થઈ નથી. અપભ્રંશપાઠાવલીમાં મેં ભાંડારકર ઓરીએન્ટલ રીસર્ચ ઇન્સ્ટીટ્યૂટની હાથપ્રતોનો આશ્રય લઈ અવતરણો લીધાં હતાં. આ કવિઓની કૃતિઓ તે **'पउमचरिय'** અને **'हरिवंशपुराण'**. **पउमचरिय** ભાંડારકર ઓરિએન્ટલ ઇન્સ્ટીટ્યૂટ નં૦ ૧૧૨૦, સને ૧૮૯૪–૯૭ છે. **हरिवंशपुराण** તે જ સંસ્થાની હાથપ્રત નં૦ ૧૧૧૭ સને ૧૮૯૧–૯૫ છે. **पउमचरिय** ને તે સંસ્થાની યાદીની નોંધમાં **सयंभूदेव** રચિત **रामायण-पुराण** એ નામથી દાખલ કરવામાં આવ્યું છે. નીચે વિસ્તારેલું તે કાવ્યોનું વૃત્તાન્ત, ઉપરની પ્રતોની મારી નોંધોને અનુસરી આપવામાં આવેલું છે.

---

1. આ કવિઓ ઉપર નીચેમુજબનાં લખાણો થયેલા છે. (૧) નાથુરામ પ્રેમીની નોંધ ઉપરથી મોહનલાલ દલીચંદ દેશાઈ કૃત 'જૈન ગુર્જર કવિઓ' ભાગ; ૧, પાન ૩૪–૩૭. ઇ. સ. ૧૯૨૬; (૨) અપભ્રંશપાઠાવલી, સં. મધુસૂદન ચિ૦ મોદી. પ્રકાશકઃ ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટી, અમદાવાદ. ઈ સ. ૧૯૩૫. (૩) Nagpur University Journal No I. December 1935. 'Svayambhū and his two poems in Apabhrams'a' by Prof. H. L. Jain pp. 76–84. (૪) 'સ્વયંભૂછંદઃ' માટે Journal of the University of Bombay Vol. V, Part. III November 1936. 'Svayambhūcchandas· Chap. IV–VIII' pp 69–93. given as an Appendix to the Art. 'Apabhramśa Metres' by Prof. H. D. Velankar (૫) 'સ્વયંભૂછંદઃ' માટેઃ Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society 1935. pp. 18–58, 'Svayambhucchandas: Chap. I–III.

આ નિબંધ તૈયાર કરવામાં ઉપરનાં લખાણોમાંથી નં. ૩, નં. ૫ મારી સમક્ષ હતાં નહિ.

2. અપભ્રંશપાઠાવલીઃ ઉદ્ધરણઃ ૧–૪ઃ ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના કાવ્યમાંથી નમૂના આપે છે. તે ઉપરાંત તે જ ગ્રંથમાં ટિપ્પણી, પા. ૩–૫; ૨૩–૨૫. કવિના જીવન અને કવન ઉપર વિવેચન આપે છે.

૧.૨.૭.

§૨. **पउमचरिय**ની હાથપ્રતમાં ૨૨૬ પત્ર છે. પાન ૧૯,૨૪,૩૪,૧૬૪–૧૭૨ (એટલે ૯ પાન), ૧૮૯–૧૯૧ (એટલે ૩ પાન)–આમ બધાં થઇને ૧૫ પત્ર ખૂટે છે. આ હાથપ્રતમાં મૂળગ્રંથકારની પ્રશસ્તિ તેમ જ લહિયાની પ્રશસ્તિ પણ છે. લહિયાની પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે:

संवत् १५२१ वर्षे ज्येष्ठमासे सुदि १० बुधवारे । श्रीगोपाचलदुर्गे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे श(=स) रश्व (=स्व) तीगच्छे । श्रीनंदिसंघे । भट्टारकश्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारकश्रीप्रभाचन्द्रदेवा । तत्पट्टे श्रीशुभचन्द्रदेवा । तत्पट्टे श्रीजिनचन्द्रदेवा । तत्र श्रीपद्मनंदिशिष्यश्रीमदनकीर्तिदेवा । तत्सि (=शि)ष्य श्रीनेत्रानंदिदेवा । तन्निमित्ते षंडेलवालत्थ लुहाड्यागोत्रे सं० गही धामा तद्भार्या धनश्री तयोः पुत्रौ सं० इल्हा बीझा तत्र सं० ईल्हा भार्या साध्वी सवीरी तयोः पुत्राः सं० बोहिथ भरहा । सं० ईस्व (=श्व)रपुत्री सूवा ॥ एतैर्निज न्यान्या (=ज्ञाना) वरणीयकर्म्मक्षयार्थं इदं पुस्तकं लिखापितं ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः । अंत्र ... ... ॥ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ श्री ॥

આ લહિયાની નોંધ ઉપરથી પ્રતીત થાય છે કે હાથપ્રત સં० ૧૫૨૧માં લખાએલી છે; અને દિગંબર પરંપરામાં આ પુરાણનો ઉદ્ભવ થયો છે. હાથપ્રત કાગળની છે. ભાષાના પરિશીલનમાં એટલી વાત ધ્યાન રાખવી ઘટે કે મૂળ કવિના લખાણ પછી આ હાથપ્રત સાત આઠ સૈકાં પછી લખાએલી છે. તે દૃષ્ટિએ લખાણની જોડણી, ક્ષેપક ઉમેરાઓ અને ઉદ્ધાર કરવાને નામે કેટલાક સુધારા-વધારા થયા હોય એ સંભવિત છે. અને તેના પૂરાવાઓ પ્રસ્તુત પુરાણ ગ્રંથોમાં પણ છે. પરંતુ આગળ સિદ્ધ કરવામાં આવશે તે પ્રમાણે અપભ્રંશ સાહિત્યિક ભાષા થઈ ત્યારે જ આ પુરાણ ગ્રંથોની રચના કરવામાં આવી છે; એટલે પછીના સુધારા-વધારાઓથી ભાષાવિપર્યાસ ખાસ થયો હોય એવો સંભવ નથી.

§૩. એ જ રીતે **पउमचरिय** ના આરંભ ભાગમાં તથા કાવ્યના અંતભાગે કવિએ નોંધેલો પરિચય ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના જીવન ઉપર દ્યોતક થઈ પડશે. **पउमचरिय** ની બે સંધિ પરિશિષ્ટમાં આપી છે; એટલે પ્રસ્તુત અવતરણો જ અહીં આપીશું. આરંભમાં સંધિ ૧, કડવક ૨ નો છેલ્લો ભાગ કવિનો કાંઇક પરિચય આપે છે:

पुणु एवहिँ संसारारापं कित्तिहरेण अणुत्तरवापं ।
पुणु रविसेणायरियपसाएं बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ।
पउमिणिजणणिगब्भसंभूएं मारुयएवरूवअणुराएं ।
अइतणुएण पईहरगत्तें छिव्वरणासें पविरलदत्तें ।
णिम्मलपुण्णपवित्तकहकित्तणु आढप्पइ ।
जणइ समाणिज्जंतएण थिर कित्ति विढप्पइ ॥

ઉપરની પંક્તિઓનો અર્થ નીચે પ્રમાણે છે:

"વળી આ પ્રમાણે સંસાર ઉપર રાગ વિનાના, કીર્તિને પામેલા અને જેની વાણીથી કોઈ બીજાની વાણી ચઢતી નથી તેવા કવિરાજ [સ્વયંભૂએ] આચાર્ય રવિષેણની કૃપાથી પોતાની બુદ્ધિએ કરીને [રામની કથારૂપ નદીમાં] અવગાહન કર્યું. 'મારુએએવ' (=માઉર દેવ) ના રૂપ તરફના પ્રેમને લીધે પદ્મિની નામે માતાના ગર્ભમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા, અત્યંત પાતળા, લાંબાં અંગવાળા, ચીબા નાકવાળા, આછા છૂટા દાંતવાળા [કવિરાજ સ્વયંભૂથી] નિર્મલ, પુણ્યદાયક અને પવિત્ર રામની કથાનું કીર્તન આરંભાય છે. લોકો પાસેથી સન્માન પામેલા [મનુષ્યથી] સ્થિર કીર્તિનું અર્જન કરાય છે."

ઉપરના અવતરણમાંથી કેટલીક બાબતો સ્પષ્ટ તરી આવે છે:

(૧) 'આચાર્ય રવિષેણની કૃપાથી'[3] – એટલે શું ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ રવિષેણનો સીધો શિષ્ય હશે; કે પછી જેમ સિદ્ધર્ષિ પોતાને હરિભદ્રના શિષ્ય તરીકે ઉલ્લેખે છે તેમ હશે?[4] રવિષેણે 'પદ્મપુરાણ'ની રચના કરી છે; એટલે સ્વયંભૂ ફક્ત તેના પુસ્તકનો ભક્ત હોઈ, 'આચાર્ય રવિષેણની કૃપાથી' પઉમચરિયની પોતે રચના કરી, એમ વર્ણવતો હોય તો તે કલ્પના અશક્ય તો નથી જ.

(૨) તેની માતાનું નામ પદ્મિની હતું; તેના પિતાનું નામ 'मारुएएव'= છંદોદૃષ્ટિએ 'माउरएव' હોય એમ સંભવે છે. **स्वयंभूछन्द**માં माउरदेव[5] નામે એક અપભ્રંશ કવિનો ઉલ્લેખ છે; તે અને સ્વયંભૂનો પિતા એક હશે? હાથપ્રતની અવ્યવસ્થ સ્થિતિને લીધે નામની ભ્રષ્ટતા સંભવિત છે.

(૩) પોતાની જાતનું જુગુપ્સાપૂર્વક વર્ણન કર્યું છે તે તો કેવલ પોતાની શરીર-સૌન્દર્ય પ્રત્યેની અનાસક્તિ બતાવવા માટે કર્યું હોય એમ દેખાઈ આવે છે. બીજો અપભ્રંશકવિ પુષ્પદંત પણ પોતાની જાતને આ પ્રમાણે વર્ણવે છે.[6]

(૪) પોતાને સ્વયંભૂ 'કવિરાજ' તરીકે ઓળખાવે છે અને વારંવાર 'કવિરાજ' નામથી જ તેનો ઉલ્લેખ કાવ્યમાં પણ આવે છે.

§૪. આ ઉપરાંત સંધિ ૧, કડવક ૩,માં કેટલીક હકીકત તેના જીવન ઉપર પ્રકાશ પાડે તેવી આપે છે.

---

3. જુઓ પ્રસ્તુત લેખ §૧૪.

4. 'હરિભદ્રસૂરિના સમય' ઉપરનો મુનિશ્રી જિનવિજયજીનો નિબંધ. First Oriental Conference, November 1919, Poona; અને 'हरिभद्रसूरिका समयनिर्णय' જૈનસાહિત્યસંશોધક. ભા૦ ૧, અંક ૧, પા૦ ૫૮ થી શરૂ. સિદ્ધર્ષિના ગ્રંથ ઉપમિતિભવપ્રપંચાકથાનો પ્રશસ્તિ શ્લોકઃ आचार्यहरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुरुः । प्रस्तावे भावतो हन्त स एवाद्य निवेदितः ॥ આ શ્લોક ઉપરથી હરિભદ્રસૂરિને સિદ્ધર્ષિના પ્રત્યક્ષ ગુરુ માનવા તે અયથાર્થ છે.

5. જુઓ પ્રસ્તુત લેખ §૧૩.

6. સરખાવો પુષ્પદંત: 'महापुराणु': સં૦ પ્રો૦ પી. એલ. વૈદ્ય; ૧, ૯; પં૦ ૧૨-૧૬:

हउं बप्प निरक्खर कुक्खिमुक्खु णरवेसें हिंडमि चम्मरुक्खु ।
अइदुग्गमु होइ महापुराणु कुडएण मवइ को जलणिहाणु ॥ इत्यादि

बुहयण सयंभु पइं विण्णवइ मइ सरिसउ अण्णु णाहिं कुकइ ।
वायरणु कयाइ न जाणिअउ णउ वित्ति सुत्तु वक्खाणियउं ॥
णउ पच्चाहारहो तत्ति किय णउ संधिए उपरि बुद्धि ट्ठिय ।
णउ णिसुअउ सत्तविहत्तियाउ छव्विहउ समासपउत्तियाउ ॥
छक्कारय दसलयार ण सुय वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ।
णव भाव लद्धउ णिवायगणु णउ लिंगु उणाइ वक्कु वयणु ॥
णउ णिसुणिउ पंच महायकव्व णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु ।
णउ बुज्झिउ पिंगलपत्थारु णउ भम्मह-दंडिय लंकारु ॥
ववसाउ तोवि णउ परिहरमि वरि रयडावुत्तु कव्वु करमि ।
सामाणभास छुडु म विहडउ छुडु आगमजुत्ति किंपि घडउ ॥
छुडु होंति सुहासुहवयणाइं गामेल्लभासपरिहरणाइं ।
इहु सज्जण-लोयहु किउ विणउ जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
जं एव विरूसइ को वि खलु तहो हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ।
॥ घत्ता ॥ पिसुणें किं अब्भत्थिएण जसु कोवि ण रुच्चइ ।
किं च्छणइं चंदु महग्गहेण कंपंतु विमुच्चइ ॥

"હે બુધજન, સ્વયંભૂ તને વીનવે છે: 'મારા જેવો અન્ય કોઈ કુકવિ નથી. વ્યાકરણ કદાપિ જાણ્યું નથી; વૃત્તિ કે સૂત્રનો અભ્યાસ કર્યો નથી. પ્રત્યાહારનું ચિંતન કર્યું નથી; સંધિના ઉપર બુદ્ધિ મૂકી નથી. સાત વિભક્તિઓ અને છપ્રકારની સમાસની પ્રવૃત્તિઓ સાંભળી નથી. છ કારક અને દશ લકાર તથા વીસ ઉપસર્ગ અને બહુ પ્રત્યયો સાંભળ્યા નથી. નિપાતગણ, લિંગ, ઉણાદિ અને વક્રવચન બરોબરરીતે પ્રાપ્ત કર્યાં નથી. પાંચ મહાકાવ્ય, ભરત, લક્ષણ, સર્વ છંદ સાંભળ્યા નથી. પિંગલનો પ્રસ્તાર કે ભામહ અને દંડીના અલંકારો જાણ્યા નથી; તો પણ હું [કાવ્ય રચવાના] વ્યવસાયને ત્યજી દેતો નથી; અને રાજશ્રેષ્ઠીથી[7] કહેવાયેલો હું કાવ્ય રચું છું. સામાન્યભાષાને છૂટી કરી જોતા નહિ; શાસ્ત્રની યુક્તિ પ્રમાણે કાંઈક જોડીને સમજજો. ગામઠી ભાષાનાં વસ્ત્રો, શુભ અને અશુભ વચન પણ છે: જે મેં પોતાને અબુધ દર્શાવ્યો છે તે સજ્જન લોકોને વિનય કર્યો છે; કોઈક ખલ જે (=એ વિનય) તરફ જ ગુસ્સે થાય, તેને માટે (તે ખલના) હાથમાંથી સરી પડેલા છલને હું સ્વીકારી લઉં છું.—જેને કોઈ ગમતો નથી એ દુષ્ટ માણસને પ્રાર્થના કર્યાનો શો ઉપયોગ ? શું રાહુ પૂર્ણિમા છે તેથી કંપતા ચંદ્રને મૂકી દે છે ?"

ઉપરના ભાગ ઉપરથી કેટલાંક તેના જીવનનાં અંગો આપણને જાણવાનાં મળે છે:

(૧) વ્યાકરણ, છંદઃશાસ્ત્ર, નાટ્યશાસ્ત્ર વગેરેનો તેનો અભ્યાસ સારો હોવો જોઇએ. ખાસ કરીને વ્યાકરણના જુદા જુદા વિભાગોનું પણ તેણે ઉપરના ઉતારામાં દિગ્દર્શન કરાવ્યું છે. તે બતાવે છે કે વ્યાકરણનો તેનો પરિચય ઘણો સારો હોવો જોઇએ. પિંગલનો પણ તે ઉલ્લેખ કરે છે.

7. रयडा=રાજશ્રેષ્ઠી કોઈ અજ્ઞાત ટિપ્પણકારે હાથપ્રતના હાંસિયામાં લખ્યું છે; તે અર્થ સ્વીકારીને 'રાજશ્રેષ્ઠી' એ અર્થ આપ્યો છે.

(૨) ભામહ અને દંડીનો તેણે ઉલ્લેખ કર્યો છે. આ ઉલ્લેખ તેનો સમય નક્કી કરવામાં આપણને ઘણો ઉપયોગી થઈ પડે.

(૩) 'रयडा'=રાજશેઠના કહેવાથી તેણે આ કાવ્ય લખ્યું છે. આ બાબત ઉપર પાછળના કેટલાક ઉલ્લેખોથી પ્રકાશ પડી શકે એમ છે.

(૪) અપભ્રંશની સામાન્ય-ભાષા—સામાન્યજનોની ભાષા—તરીકે નોંધ લેવામાં આવી છે. અને તેના ઉપર 'ગામઠી-ભાષા'ની પણ અસર થયેલી છે.

§૫. ચતુર્મુખના જીવન અને કવનની અન્ય માહિતી પઉમચરિયની અંત-પ્રશસ્તિ ઉપરથી માલમ પડે છે. તેમાં ચતુર્મુખના પુત્ર ત્રિભુવનની પણ માહિતી આપણને પ્રાપ્ત થાય છે. આખીય ચતુર્મુખના પુત્ર ત્રિભુવનની લખેલી પ્રશસ્તિ નીચે મુજબ છે:

इय पोमचरियसेसे सयंभुएवस्स कहवि उव्वरिए
तिहुअणसयंभुरइए राहवनिव्वाणपव्वमिणं ॥ छ ॥
वंदइ-आसिय तिहुयणमयंभु परिविरइयम्मि महाकव्वे ।
पोमचरियस्स सेसे संपुण्णो णवइमो सग्गो ॥ संधि ॥ ९० ॥
पोमचरियं सम्मत्तं ।

"આ પ્રમાણે સ્વયંભૂદેવથી કોઈરીતે બાકી રહી ગયેલા અને ત્રિભુવનસ્વયંભૂથી રચાયેલા પદ્મચરિતના બાકીના ભાગમાં આ રાઘવનિર્વાણ નામે પર્વ છે.

વંદકના આશ્રિત ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ રચેલા પદ્મચરિતના બાકીના મહાકાવ્યમાં નેવુમો સર્ગ પૂરો થયો ॥ સંધિ ૯૦ ॥ પદ્મચરિત સમાપ્ત ॥

આ પ્રમાણે પદ્મચરિત ચતુર્મુખ સ્વયંભૂએ અધુરૂં મૂકેલું તે તેના પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ પૂરૂં કર્યું. મહાકાવ્ય ૯૦ સર્ગમાં પૂરૂં થયું. ત્રિભુવન સ્વયંભુ 'વંદઇ' કે 'વંદય' (=વંદક) નામે રાજશ્રેષ્ઠીનો આશ્રિત હતો.

આ પ્રશસ્તિના વધારાની ગાથાઓ નીચે પ્રમાણે છે:

सिरिविज्जाहरकंडे संधीउ होन्ति वीसपरिमाणा ।
उज्झाकंडम्मि तहा बावीस मुणेह गणणाए ॥
चउद्दह सुंदरकंडे एक्कहियवीस जुज्झकंडे य ।
उत्तरकंडे तेरह संधीउ णवइ सव्वाउ ॥

"શ્રી વિદ્યાધરકાંડમાં વીસસંખ્યામાં સંધિઓ છે; તેજ પ્રમાણે અયોધ્યાકાંડમાં ગણતરીએ બાવીસ, સુંદરકાંડમાં ચૌદ, યુદ્ધકાંડમાં એકવીસ, અને ઉત્તરકાંડમાં તેર સંધિઓ છે: કુલ નેવુ સંધિઓ છે."

આ ગાથાઓ પછીની ગાથાઓ ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવનના જીવનની માહિતી આપે છે:

तिहुअणसयंभु णवरं एक्को कइरायचक्किणुप्पन्नो ।
पउमचरियस्स चूलामणि व्व सेसे कयं जेण ॥
कइरायस्स विजयसेसियस्स वित्थारिउ जसो भुवणे ।
तिहुअणसयंभुणा पउमचरियसेसेण णिस्सेसो ॥ छ ॥

तिहुअणसअंभुधवलस्स को गुणो वण्णिउं जए तरइ ।
बालेण वा जेण सयंभुकव्वभारो समुव्वूढो ॥
वायरणदढक्खंधो आगमअंगो पमाणवियडपओ ।
तिहुवणसयंभुधवलो जिणतित्थ वहउ कव्वभरं ॥ छ ॥
चउमुहसयंभुएवाण वाणियत्थं अचक्खमाणेण ।
तिहुअणसयंभुरइयं पंचमिचरियं महच्छरियं ॥
सव्वे वि सुआ पंजरसुअ व्व पढिअक्खराइं सिक्खंति ।
कइरायस्स सुउ सुय व्व सुइगब्भसंभूओ ॥
तिहुअणसयंभु जइ ण हुंतु णंदणो सिरिसयंभुदेवस्स ।
कव्वं कुलं कवित्तं तो पच्छा को समुद्धरइ ॥
जइ न हुउ च्छंदचूडामणिस्स तिहुअणसअंभु लहुतणउ ।
तो पद्धडियाकव्वं सिरिपंचमि को समारेउ ॥
सव्वो वि जणो गेण्हइ णियतायविढत्तदव्वसंताणं ।
तिहुयणसयंभुणा पुण गहियं णं सुकइत्तसंताणं ॥
तिहुअणसयंभुमेक्कं मोत्तूण सयंभुकव्वमयरहरो ।
को तरइ गंतुमत्तं मज्झे णिस्सेससीसाणं ॥
इय चारु पोमचरियं सयंभुएवेण रइयं समत्तं ।
तिहुअण सयंभुणा तं समाणियं परिसमत्तमिणं ॥
चेष्टितमयणं चरित्तं करणं चारित्रमित्यात्मीयछन्दः ।
पर्याया रामायणमित्युक्तं(क्तं)तेन चेष्टितं रामस्य ॥
वाचयति श्रुणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्यं च ।
खड्गहस्तो रिपुरपि ण करोति वैरमुपसमेति ॥
माउरसुय-सिरिकइरायतणयकयपोमचरियअवसेसं ।
संपुण्णं संपुण्णं वंदओ लहइ संपुण्णं ॥
गोइंदमयणसुअणंत विरइयं वंदइ-पढमतणयस्स ।
वच्छलदाए तिहुअणसयंभुणा रइयं महाकव्वं ॥
वंदइ-णाग-सिरिपालपहुइभव्वयणगणसमूहस्स ।
आरोग्गत्तसमिद्धी संति सुहं होउ सव्वस्स ॥
सत्तमहासग्गं गीतिरयणमूसासु रामकहकण्णा ।
तिहुअणसयंभुजणिया परिणउ वंदइयमणतणउं ॥
॥ इति रामायणपुराणसमाप्तं ॥

ઉપરની ગાથાઓનો નીચે પ્રમાણે અર્થ છે :

"કવિરાજચક્રવર્તીથી ઉત્પન્ન થએલો ત્રિભુવન સ્વયંભૂ જ એકલો પુત્ર છે – જેણે પદ્મચરિત્રનો શેષવિભાગ મસ્તક ઉપરના મુકુટમણિ જેવો રચ્યો છે.

જેમનો વિજય જ શેષ રહ્યો છે તેવા કવિરાજનો ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ પદ્મચરિતના શેષભાગથી સંપૂર્ણ યશ ભુવનમાં વિસ્તાર્યો છે.

ધવલની ઉપમાને યોગ્ય ત્રિભુવન સ્વયંભૂના ગુણને કોણ જગતમાં વર્ણવવા શક્તિવાન છે?–બાલક હોવા છતાં પણ જેણે સ્વયંભૂના કાવ્યભારનું વહન કર્યું છે.

વ્યાકરણના જેવી દૃઢ અને ઉત્તુંગ જેની કાંધ છે, વ્યાકરણ જેનાં અંગ છે, પ્રમાણશાસ્ત્રરૂપી વિકટ જેના પગ છે તેવો ત્રિભુવન સ્વયંભૂરૂપી ધવલ કાવ્યરૂપી ભારને જિનના તીર્થે લઈ જાવ.

ચતુર્મુખ સ્વયંભૂદેવની વાણીના અર્થને ન ચાખનાર ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ મહાઆશ્ચર્યકારક પંચમીચરિત રચ્યું છે.

પાંજરાના શુકની માફક બધા પુત્રો પઢેલા અક્ષરોને જ ભણે છે; કવિરાજનો પુત્ર શ્રુત[8] (=શાસ્ત્ર)ની માફક શુદ્ધગર્ભમાંથી ઉત્પન્ન થયો છે.

શ્રીસ્વયંભૂદેવનો પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂ ન હોત તો કાવ્યનો, કુલનો અને કવિત્વનો પછી કોણ ઉદ્ધાર કરત?

જો છંદચૂડામણિ (ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ) નો નાનો પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂ ન હોત તો પદ્ધડિયા છંદમાં તૈયાર કરેલા શ્રીપંચમીકાવ્યની કોણ સંપૂર્ણ રચના કરત?

બધાય મનુષ્યો પોતાના પિતાએ કમાયેલા દ્રવ્યના વારસાને ગ્રહણ કરે છે; પણ ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ તો તેના સુકવિત્વના વારસાને લીધો છે.

બધાય શિષ્યોમાં, એક ત્રિભુવન સ્વયંભૂ સિવાય સ્વયંભૂના કાવ્ય સમુદ્રમાં જવા જેટલો પણ કોણ શક્તિમાન છે?

સ્વયંભૂદેવે રચેલું આ સુંદર પદ્મચરિત સમાપ્ત થયું છે; ત્રિભુવન સ્વયભૂએ આ કાવ્યને સંપૂર્ણ બનાવી દીધું.

अयण–ના પર્યાયો: **चेष्टित, चरित्त, करण, चारित्र, आत्मीयछंदः**, છે; આથી રામનું ચેષ્ટિત તે રામાયણ કહેવાયું.

જે મનુષ્ય આ ગ્રંથને સાંભળે છે અને વાંચે છે તેનાં આયુષ્ય અને પુણ્ય વૃદ્ધિ પામે છે; ખડ્ગ હાથમાં લઇને આવેલો શત્રુ પણ તેના ઉપર [આક્રમણ?] કરતો નથી; અને તેનું વેર શાન્ત થઈ જાય છે.

વંદકના પ્રથમ પુત્ર ગોવિંદના મનન અને શ્રવણને અર્થે આ રચ્યું છે; વત્સલતાને લીધે ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ મહાકાવ્ય રચ્યું છે.

વંદક, નાગ, શ્રીપાલ વગેરે ભવ્યજનોના સમૂહને આરોગ્ય અને સમૃદ્ધિ થાવ: બધાંયને સર્વપ્રકારે સુખ થાવ.

સાત મોટા સર્ગના ગાનરૂપી ભૂષણવાળી તે રામકથારૂપી કન્યા–જેણે ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ જન્મ આપ્યો છે તે–વંદકના મનરૂપી તનય સાથે લગ્ન કરો."

ઉપરની ગાથાઓમાંથી નીચેની વાતો તરી આવે છે:

ચતુર્મુખ સ્વયંભૂને અનેક પુત્રો હતા; અને અનેક શિષ્યો પણ હતા. ત્રિભુવન તેનો નાનો પુત્ર હતો. અને તેના પિતાનો શિષ્ય પણ હતો. અનેક શિષ્યોમાં તેણે એકલાએ

---

8. સં. श्रुत, सुत, शुक=પ્રા. सुअ; આ सुअ ને આશ્રયે કવિએ શ્લેષસાધ્યો છે.

જ ચતુર્મુખના સમુદ્ર સરખા પદ્મપુરાણમાં અવગાહન કર્યું હતું. તે કટાક્ષ કરતાં કહે છે કે અન્ય પુત્રો તો પોતાના પિતાની સમૃદ્ધિનો વારસો લે છે જ્યારે ત્રિભુવને તો પોતાના પિતાની કાવ્યશક્તિનો વારસો લીધો છે. ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ પદ્મપુરાણના છેલ્લા સાત સર્ગો લખ્યા—એટલે કે, છેલ્લા સાત સંધિઓની રચના કરી. આપણે જોઈ ગયા તે પ્રમાણે પદ્મપુરાણમાં ૯૦ સંધિઓ છે; એટલે સંધિ ૮૩ થી આરંભી પદ્મપુરાણમાં ત્રિભુવનની રચના છે; જો કે સંધિ ૮૩ ની પુષ્પિકામાં ૮૩ મો સંધિ ત્રિભુવને રચ્યાનો ઉલ્લેખ છે. ત્રિભુવન વંદક નામે કોઈ નગરશેઠનો આશ્રિત હતો. વંદકના પુત્રનું નામ ગોવિંદ હતું. વંદકના પ્રથમ પુત્ર ગોવિંદ તરફના પ્રેમને લીધે ત્રિભુવને આ ચૂડામણિ સમો પદ્મપુરાણનો બાકીનો ભાગ પૂરો કર્યો. વંદક, નાગ, શ્રીપાલ વગેરે શ્રાવકોનો ખાસ ટેકો ત્રિભુવનને હશે. વંદકને તો પોતાના આશ્રયદાતા તરીકે અનેક સ્થળે ત્રિભુવન નોંધે છે; જ્યારે નાગ અને શ્રીપાલ તેના બીજા નાના આશ્રયદાતા હશે. ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ આ શેષભાગ પૂરો કરવા ઉપરાંત પદ્ધડિયા છંદમાં 'શ્રીપંચમીચરિતં' નામે અપભ્રંશ કાવ્યની રચના કરી હતી. ઉપર ટાંકેલી છેવટની પુષ્પિકાને છેડે પંચમીચરિતનો બે વાર ઉલ્લેખ કર્યો છે. તે કાવ્યની રચના તેણે સ્વયંભૂદેવની વાણીનો અર્થ ચાખ્યા વિના કરી છે એમ તે જણાવે છે. વ્યાકરણ, આગમ એટલે શાસ્ત્રો અને પ્રમાણશાસ્ત્રનો ત્રિભુવન સારો જ્ઞાતા હતો.

આ પુષ્પિકામાં ઉપર પ્રમાણે ત્રિભુવને પોતાના પિતા ચતુર્મુખના જીવનની માહિતી પણ આપી છે. ચતુર્મુખના પિતાનું નામ 'माउर' હતું. આ ઉલ્લેખ આદિના ઉલ્લેખ 'मारुएएव'ની કુંચી પૂરી પાડે છે. मारुएएव એ પાઠ 'माउरदेव' હોય એ જ યોગ્ય છે. અને આ माउरदेव તે स्वयंभूछंदः માં નોંધેલ माउरदेव હોવો જોઇએ. તે ઉપરાંત ચતુર્મુખ 'छंदचूडामणि'ને નામે પણ પ્રખ્યાત હતો. તેનું અન્ય ઉપનામ 'कविराज' પણ હતું. ચતુર્મુખના વિદેહ થયા પછી તેણે આ પદ્મચરિત કાવ્યને પૂર્ણ કર્યું.

§ ૬. ઉપરના પૂરાવાઓ ઉપરાંત પણ કેટલેક સ્થળે ચતુર્મુખના જીવન અને કવન સંબંધી પુરાવાઓ કાવ્યની વચમાં પણ કેટલેક સ્થળે દૃષ્ટિગોચર થાય છે. મારી નોંધો તો કેવળ ઉડતી નોંધો છે; પરંતુ જો કાવ્યનું ચિવ્વટભર્યું સંપાદન થાય તો તે પૂરાવાઓ વધારે પ્રમાણમાં પણ મળે એ અસંભવિત નથી. મારી પાસે જે પૂરાવાઓ છે તે નીચે પ્રમાણે છે. પઉમચરિયની પ્રત્યેક સંધિની પુષ્પિકામાં નીચે પ્રમાણે કથન છેઃ દા. ત. પહેલા સંધિને અંતેઃ

इय एत्थ पउमचरिए धणंजयासियसयंभुएववकए ।
जिणजम्मुप्पत्ति इयं पढमं चिय साहियं पव्वं ॥

"આ પ્રમાણે ધનંજયના આશ્રિત સ્વયંભૂદેવે કરેલા પદ્મચરિતમાં જિનજન્મોત્પત્તિ નામે પહેલું પર્વ કહેવાયું." આ ઉપરથી માલમ પડે છે કે 'रयडा'='રાજશ્રેષ્ઠી' તે આ ધનંજય હોય એ સંભવિત છે.

વિદ્યાધરકાંડ—એટલે સંધિ ૨૦ મીને છેડે નીચે પ્રમાણે વધારાની ગાથાઓ માલમ પડે છેઃ

इय विज्जाहरकंडं वीसर्हिं आसासर्पाहिं मे सिट्ठं ।
एन्हिम उज्झाकंडं साहिज्जं तं णिसामेह ॥
धुवराय व तइय भुअप्पणसिणत्तीसुयाणुपाढेण ।
णामेण सामिअव्वा सयंभुघरिणी महासत्ता ॥
तीए लिहावियमिणं वीसर्हिं आसासएहिं पडिबद्धं ।
सिरिविज्जाहरकंडं पि व कामदेवस्स ।

"આ પ્રમાણે વિદ્યાધરકાંડ મેં વીસ આશ્વાસકમાં કહ્યો છે; હવે અયોધ્યાકાંડને હું કહું છું; તેને સાંભળો."

બીજી ગાથાની પ્રથમ પંક્તિ સમજી શકાતી નથી. બીજી પંક્તિ: 'નામે સ્વામીની માફક સ્વયંભૂની પત્ની મહાસત્ત્વવાળી છે'

'તેણે વીસ આશ્વાસકમાં બંધાયેલો શ્રીવિદ્યાધરકાંડ કામદેવને જેમ (રતિ લખાવે તેમ મને) લખાવ્યો."

તેની પત્ની સંબંધી ઉલ્લેખ સ્વયંભૂ ૪૨ મા સંધિના અંતમાં પણ કરે છે:

आइच्चुएवि पडिमोवमाए आइच्चंविमाए ।
विअमउज्झाकंडं सयंभुघरिणीए लेहावियं ॥

"દેહની ઉપમાએ કરીને આદિત્ય સમાન આદિત્યદેવી એ-સ્વયંભૂની ગૃહિણીએ આ બીજો અયોધ્યાકાંડ લખાવ્યો."

ઉપરનાં અવતરણો ઉપરથી નીચેની બાબતો સિદ્ધ થાય છે. ૧) સ્વયંભૂએ પદ્મચરિત ધનંજય નામે રાજશ્રેષ્ઠીના આશ્રયે રચ્યું; ૨) સ્વયંભૂની પત્નીનું નામ આદિત્યદેવી હોય તે સંભવિત છે. ૩) તેણે વિદ્યાધરકાંડ અને અયોધ્યાકાંડ એ બે લખાવ્યા હતા અને એ રીતે પતિના ધર્મ અને વાઙ્મયના કાર્યમાં તેણે સક્રિય મદદ કરી હતી. તે પણ આ ભાષાને જાણતી હોવી જોઇએ. ત્રિભુવન સ્વયંભૂ એક સ્થળે 'કુલકવિત્વ' કહે છે તે યથાર્થ જ છે; કારણ કે આ બધા પુરાવા ઉપરથી ચતુર્મુખનું આખું ય કુટુંબ વિદ્વાન્ હશે એમ દેખાઈ આવે છે.

§૭. આ ઉપરાંત સંધિ ૨૩ ના આરંભમાં સ્વયંભૂ નીચે પ્રમાણે અભ્યર્થના કરે છે. જો કે તેના જીવન ઉપર એનાથી એટલો બધો પ્રકાશ પડતો નથી પણ તેની નોંધ લેવી અહિં આવશ્યક છે:

तहि सुणि सुव्वयतित्थ वुहयण कण्णरसायणु,
रावण-रामहु जुज्झु जं तं निसुणहु रामायणु ।

णमिऊण भडारउ रिसहजिणु, पुणु कव्वहो उप्परे करेवि मणु ।
जए लोयहु सुयणहु पंडियाहु, सद्दत्थसत्थपरिवड्डियाहु ।
किं चित्तइ गेण्हवि सक्कियाइं, वासेण वि जाइं न रंजियाइं ।
तो कवणु गहणु अम्हारिसेहिं, वायरणविहूणहिं आरिसेहिं ।
कइ अत्थि अणेयमेयभरिय, जे सुयणसहासहिं आयरिय ।
१.२.८.

चक्कलएहिँ कुलएहिँ खंधएहिँ, पवणद्धुअ रासालुद्धएहिँ ।
मंजरियविलासिणिणक्कुडेहिँ, सुहच्छंदेहिँ सद्देहिँ खडहडेहिँ ।
हउं किंपि न जाणमि मुक्खु मणे, णियबुद्धि पयासिय तो वि जणे ।
जं सयले वि तिहुवणे वित्थरिउ, आरंभिउ पुणु राहवचरिउ ॥

ઉપરના અવતરણનો અર્થ નીચે પ્રમાણે છેઃ

"હે બુધજનો, તો સારી રીતે વ્રત પાળનારના તીર્થરૂપ, કાનના રસનું સ્થાન તેને સાંભળો–રામ અને રાવણનું જે યુદ્ધ છે–તે રામાયણ સાંભળો. ભટ્ટારક એવા ઋષભ-જિનને નમસ્કાર કરીને હું કાવ્યના ઉપર ચિત્ત કરૂં છું. જગતમાં [સામાન્ય] લોકોનાં, સજ્જનોનાં, અને શબ્દ અને અર્થનાં શાસ્ત્રોથી પરિવર્ધિત બનેલા પંડિતોનાં શું ચિત્તો–જે વ્યાસથી પણ ખુશ કરી શકાયાં ન હતાં–ગ્રહણ કરવાં શું શક્ય છે? તો પછી વ્યાકરણ વિનાના એવા અમારા જેવાથી તો ક્યાંથી શક્ય હોય? ચક્કક, કુલક, સ્કંધક, અને ઉદ્ધત પવન જેવો રાસક, મંજરિકા, વિલાસિની, નર્કુટક એવા સુંદર છંદો અને ઝણઝણતા શબ્દોથી લોભાયેલા હજારો સજ્જનોથી આદર પામેલા અનેક ભેદોને જાણનારો (શબ્દશઃ ભરેલો) કવિ હોય છે; હું તો કાંઈ જાણતો નથી; અને મૂર્ખ છું;–છતાંય મેં મારી બુદ્ધિને મનુષ્યોમાં પ્રકાશિત કરી, જે આખા ય ત્રિભુવનમાં વિસ્તરેલું છે તે રાઘવનું ચરિત આરંભ્યું છે."

ઉપરના ફકરામાં કવિ ફરીથી પોતાનું છંદોવિધાનનું જ્ઞાન બતાવે છે અને સજ્જનો પ્રત્યે પોતાની નમ્રતા બતાવે છે.

§૮. આ ઉપરાંત ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના જીવન અને કવનના અનેક પૂરાવાઓ મળી શકે. અર્વાચીન પ્રાંતીય ભાષાઓના શબ્દો અને વ્યાકરણનાં રૂપો ઉપર પણ તેની ભાષામાંથી પ્રકાશ મળી શકે. આ બધું આખું ય કાવ્ય પ્રસિદ્ધ થાય ત્યારે સંભવિત બને. 'પઉમચરિય'ની વસ્તુ કાંઈ નવીન નથી. આ દિગંબર પરંપરાનું કાવ્ય છે. સંધિ ૧–૮૩. ચતુર્મુખ સ્વયંભૂએ રચેલા છે; બાકીના સાત સંધિ ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ રચેલા છે. સંધિ ૫૯ માં વિવિધ પ્રકારના છંદોનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે. સંધિ. ૪૯ માના આરંભમાં શબ્દચિત્રની યોજના કરવામાં આવી છે. દરેક સંધિને છેડે આપેલા શ્લોકમાં સંધિ, વિષય અને કવિના નામની પ્રશસ્તિ ગાથા છે. સંધિના અંત્ય કડવાની છેલ્લી ઘત્તામાં 'સ્વયંભૂ' નામનો ઉલ્લેખ મળે છે.

§૯. 'પઉમચરિય' ઉપરાંત ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને તેના પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ 'હરિવંશપુરાણ'ની રચના કરી છે. ગ્રંથનું નામ પ્રત્યેક સંધિને અંતે જણાવ્યા પ્રમાણે 'અરિટ્ઠણેમિચરિય'='અરિષ્ટનેમિચરિત' છે. આ ગ્રંથનો પરિચય પૂર્વનિર્દિષ્ટ ભાંડારકર ઓરિએન્ટલ રિસર્ચ ઇન્સ્ટીટ્યુટની હાથપ્રત ઉપરથી આપવામાં આવ્યો છે. આ ગ્રંથનો આરંભ.

॥ ॐ ऐं नमः ॥ ॐ नमो वीतरागाय । अथ स्वयंभूमुनिकृत हरिवंशपुराण लिख्यते । અને પછીથી કાવ્યનો આરંભ થાય છેઃ–

सिरिपरमागमणालु सयलकलाकोमलदलु,
करहु विहूसणु कण्णे जायवकुरुवकहुप्पलु ॥ छ ॥

पणमामि णेमितित्थंकरहो हरिबलकुलनहयलससहरहो ।
तइलोक्कलच्छिलच्छियउरहो परिपालियअजरामरपुरहो ।
कल्लाणणामगुणरोहणहो पंचिंदियग्गामनिरोहणहो ।
भामंडलमंडियअवयवहो परिपक्कमोक्खफलपायवहो ।
तइलोक्कसिहरसिंहासणहो णिरु णिरुवमचामरवासणहो ।
जसु तणइं तित्थें उप्पज्जइं जिह छणु चंदुग्गहें विमलपह ।

× × ×

॥ घत्ता ॥ सासयसुक्खणिहाणु अमरभावउप्पायणु ।
कण्णंजलिहि पिपहु जिणवरवयणरसायणु ॥ १ ॥

ઉપરના કડવકમાં સ્તુતિ અને આરંભ છે. ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ ખાસ ઉપયોગી ન હોવાથી તેનું ભાષાંતર આપવું આવશ્યક નથી. બીજું કડવક નીચે પ્રમાણે છેઃ

चिंतवइ सयंभु "काइं करम्मि हरिवंसमहण्णउ के तरम्मि ।
गुरुवयणतरंडउ लच्छु नवि जम्महो वि ण जोइउ को वि कवि ।
णउ णाइउ बाहत्तरिकलउ एकु वि ण परिमोक्कलउ" ।
तहिं अवसरि सरसइ धीरवइ "करि कव्बु दिण्ण मइ विमलमइ" ।
इंदेण समप्पिउ वायरणु रसु भरहें वासें वित्थरणु ।
पिंगलेण छंदपयपत्थारु भम्महं दंडणिहिं अलंकारु ।
बाणेणं समप्पिउं घणघणउं तं अक्खरडंबरु घणघणउं ।
सिरिहरिसेणि पनिउ णित्तणउ अवरेहिं मि कइहिं कइत्तणउं ।
छंदणियदुवइधुवएहिं जडिय चउमुहिण समप्पिय पद्धडिय ।
जणणयणाणंदजणेरियए आसीसए सव्वहु केरियए ।
पारंभिय पुणु हरिवंसकहा ससमयपरसमयवियारसहा ।
॥ घत्ता ॥ पूछइ मागहणाहु "भवजरणमरणवियारा ।
थिउ जिणसासणि केम कहि हरिवंसु भडारा ॥"

ઉપરના કડવકનું ભાષાંતર નીચે પ્રમાણે છેઃ

"સ્વયંભૂ ચિંતન કરવા લાગ્યો—'હું શું કરૂં ? હરિવંશરૂપી મોટો સમુદ્ર હું કેવી રીતે તરૂં ? ગુરુના વચનરૂપી હોડકું કે લક્ષ્ય—એવું કાંઈ મારી પાસે છે નહિ; અને જન્મથી માંડીને કોઈ પણ કવિને જોયો નથી; બ્હોતેર કળાઓને જાણી નથીઃ એકને પણ સંપૂર્ણ કરી નથી !' તે અવસરે સરસ્વતીએ ધીરજ આપી,—'તું કાવ્ય કર; મેં તને નિર્મલ બુદ્ધિ આપી છે.' ઇંદ્રે વ્યાકરણ, ભરતે રસ (=રસશાસ્ત્ર) અને વ્યાસે વિસ્તાર-વાળું (મહાભારત) પૂર્ણ કર્યું. બાણકવિએ વાદળ જેવું વિપુલ એવું ઘણું પૂરૂં કર્યું છે. શ્રીહરિષેણે અને અન્ય કવિઓએ પણ નિત્ય નૂતન કવિતાને રચી છે. છર્દ-નિકા, દ્વિપદી અને ધ્રુવકોથી જડેલા પદ્ધડિયા છંદ ચતુર્મુખે પૂરા કર્યા. મનુષ્યોનાં નયનોને આનંદ આપનારી, બધાંયની આશીષથી સ્વસિદ્ધાન્ત અને પરસિદ્ધાન્તના વિચારને અનુકૂળ થાય એવી હરિવંશકથા તેણે આરંભી છે. માગધનાથે (શ્રેણિકે)

કહ્યું–"જન્મ, જરા અને મરણનો જેણે વિચાર કર્યો છે એવા હે ભટ્ટારક, જિન-શાસનમાં હરિવંશ કેવો છે–તે કહો."

ઉપરના અવતરણથી ચતુર્મુખના જીવન ઉપર કેટલોક પ્રકાશ પડે છેઃ

(૧) વ્યાકરણના કર્તા ઇંદ્ર, રસશાસ્ત્રના કર્તા ભરત, મહાભારત અને પુરાણકાર વ્યાસ, છંદઃશાસ્ત્રના કર્તા પિંગલ, કવિ હરિષેણ અને કાદંબરીકાર બાણભટ્ટનો પણ ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે. બાણભટ્ટનો ઉલ્લેખ ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ ઉપયોગી છે. બાણ-ભટ્ટ હર્ષવર્ધનના સમયમાં થઈ ગયો એ ઇતિહાસસિદ્ધ વાત છે. ચતુર્મુખ સાતમા સૈકા પછી થઈ ગયો એ વાત બાણના ઉલ્લેખથી નિશ્ચિત થાય છે.

(૨) 'છર્દનિકા, દ્વિપદી અને ધ્રુવકોથી જડેલા પદ્ધડિયા છંદ ચતુર્મુખે પૂરા કર્યા'– આ ઉલ્લેખ બતાવે છે કે 'પઉમચરિય'નો મોટો ભાગ પૂરો કર્યો હતો. 'પઉમચરિય' 'પજ્જડિયારામાયણ'[9] તરીકે જાણીતું હતું. ઉપર નોંધેલી બાબતો સ્વતંત્ર રીતે પણ, સિદ્ધ કરવા માટે પ્રમાણો છે. એટલે ઉપરનો ઉલ્લેખ પોષક પ્રમાણ તરીકે મદદગાર થાય છે.

(૩) આમાં પણ ભામહ અને દંડીનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે.

§૧૦. પ્રત્યેક સંધિને અંતે 'સ્વયંભૂ'ના નામની પ્રશસ્તિ આપવામાં આવી છે. દા. ત. સંધિ ૧ ની પ્રશસ્તિઃ

इय अरिट्ठणेमिचरिए धवलइयासियसयंभुदेवकए ।
पढमो समुद्दविजयाहिसेयणामो इमो सग्गो ॥

અથવા તો સંધિ ૧૩ ની અંત્ય પ્રશસ્તિઃ

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासियसयंभुएवकए ।
..................जायवकांडं समात्तं ॥ संधि १३ ॥

ઉપરની પ્રશસ્તિ ઉપરથી કાવ્યનું નામ 'અરિષ્ટનેમિચરિત=अरिट्ठणेमिचरिय' હતું એ પ્રતીત થાય છે. 'ધવલઇય' નામના આશ્રયદાતાના આશ્રય હેઠળ આ કાવ્ય લખાયું હતું એ પણ સમજાય છે.

આ હકીકત ઉપરાંત સંધિ ૯૨ ને અંતે આપેલી ગાથાઓ આ કાવ્યની રચના ઉપર ઘણો પ્રકાશ નાખે છે.

तेरह जाइवकंडे कुरुकंडेकूणवीससंधीओ ।
तह सट्ठि जुज्झियकंडे एवं बाणउदिसंधीओ ॥ १ ॥
सोमसुयस्स य वारे तइयादियहम्मि फग्गुणे रिक्खे ।
सिउ णामेण य जोए समाणियं जुज्झकंडं व ॥ २ ॥
छव्वरिसाइं ति मासा एयारस वासरा सयंभुस्स ।
याणवइसंधिकरणे वोलिणो इत्तिओ कालो ॥ ३ ॥

---

9. પુષ્પદંતઃ મહાપુરાણઃ ૧, પંક્તિ ૫. ઉપર કોઇક પ્રાચીન ટિપ્પણઃ चउमुहु कश्चित् कविः, सयंभु पद्धडीबद्ध रामायणकर्ता आपलीसंघीयः । ડૉ. પી. એલ. વૈદ્યની આવૃત્તિ. પાન ૯.

दियहाहिवस्स वारे दसमीदियहम्मि मूलणक्खत्ते ।
एयारसम्मि चंदे उत्तरकंडं समाढत्तं ॥ ४ ॥
वरं तेजस्विनो मृत्युर्न मानपरिखण्डनं ।
मृत्युस्तत्क्षणकं दुःखं मानभंगो दिने दिने ॥ ५ ॥

ઉપરની ગાથાઓનો અર્થ નીચે પ્રમાણે છેઃ

"યાદવકાંડમાં ૧૩ સંધિઓ, કુરુકાંડમાં ૧૯ સંધિઓ, અને યુદ્ધકાંડમાં ૬૦ સંધિઓ છે;–આ પ્રકારે ૯૨ સંધિઓ છે. (૨)

ચંદ્રના પુત્ર (=બુધ)નો વાર, તૃતીયાતિથિ, ફાલ્ગુન નક્ષત્ર, શિવ નામનો યોગ– આ સમયે યુદ્ધકાંડ પૂરો થયો. (૨)

છ વર્ષ, ત્રણમાસ અને અગીઆર દિવસ સ્વયંભૂને ૯૨ સંધિઓ પૂરા કરતાં થયાં. (૩)

દિવસના અધિપતિ (=સૂર્ય)ના વાર (–રવિવાર), દશમી, મૂલનક્ષત્ર, અને અગીઆરમો ચાંદ્રમાસ એટલે ભાદ્રપદ માસમાં ઉત્તરકાંડ શરુ કર્યો. (૪)

તેજસ્વી માણસને માનભંગ કરતાં મૃત્યુ વહાલું લાગે છે; મૃત્યુ તો તત્ક્ષણ દુઃખ આપે છે જ્યારે માનભંગ હંમેશાં દુઃખ આપે છે. (૫)"

ઉપરની ગાથાઓ ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ રચી હોય એમ લાગે છે; અને ૯૨ સંધિઓ રચ્યા પછી ચતુર્મુખ સ્વયંભૂનો કાળ થયો હોવો જોઇએ; અને પોતાના પિતાની કીર્તિ અધુરી ન રહે એટલા માટે થોડા સમય પછી ત્રિભુવને ઉત્તરકાંડનો આરંભ કર્યો હોવો જોઇએ.

સંધી ૯૯ને અંતે પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે:

इय रिट्ठनेमिचरिएधवलइयासियसयंभुकए ।
कविराग्रयलनिर्मिते (?) श्रीसमवसरणकथनं णिव्याणवौ ॥
[संधिः ॥ ९९ ॥

ઉપરની પ્રશસ્તિમાં સંદિગ્ધ સ્થળનો અર્થ 'કવિરાજનો પુત્ર' એવો કાંઇક થતો હોવો જોઇએ. સંધિ ૧૦૦ને અંતે પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે:

इयरिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयंभु[ए]वकए ।
उव्वरिए तिहुयणसयंभुमहाकइ समाणिय समवसरणं णाम सउम सग्गो १००

આ પ્રમાણે ત્રિભુવન સ્વયંભૂના નામનો ઉલ્લેખ ૧૦૮ સંધિઓ સુધી આવે છે. સંધિ ૧૦૯ ના અંતે નીચેની પ્રશસ્તિ આપવામાં આવેલી છે:

इह जसकित्तिकएणं पव्वसमुद्धरणरायपक्कमणं ।
कइरायस्सुव्वरियं पयडत्थं अकिन्नयजइणा ॥ १ ॥
ते जीवंति य भुवणे सज्जणगुणगणह रायभावत्था ।
परकव्वकुलं वित्तं विहडियं पि जे समुद्धरहिं ॥ २ ॥

ઉપરની ગાથાઓ ઉપરથી એટલું તો પ્રતીત થાય છે કે સંધિ ૧૦૨ યશઃકીર્તિએ રચ્યો. તેના કારણમાં એ જણાવવામાં આવે છે કે કવિરાજ સ્વયંભૂએ પ્રસ્તુત ગ્રંથ અધુરો મૂક્યો હતો. આ ઉપરથી આપણે કહી શકીએ કે સંધિ ૧–૯૨.ની રચના ચતુર્મુખ સ્વયંભૂની; સંધિ ૯૯–૧૦૮ ની રચના તેના પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂની; સંધિ ૧૦૯–૧૧૨નો ઉદ્ધાર યશઃકીર્તિ ભટ્ટારકે કર્યો. યશઃકીર્તિ ભટ્ટારકનો સમય સોળમો સૈકો છે.

§૧૧. હરિવંશપુરાણનું છેલ્લું કડવું નીચે પ્રમાણે છે:

इह भारहपुराणु सुपसिद्धु णेमिचरिय हरिवंसाइद्धउ।
वीरजिणेसें भवियहो अक्खिउ पच्छइं गोयमसामिण रक्खिउ।
सोहम्में पुणु जंबुसामे विण्हुकुमारें दिग्गयगामिं।
णंदिमित्त अवरज्जियणाहें गोवद्धणेणुसुभद्दहबाहें।
एम परंपराइ अणुलग्गउ आयरियहं मुहाउ आवग्गउं।
सुणि संखेवु सुत्तु अवहारिउ विउसें सयंभे महि वित्थारिउं।
पद्धडियाछंदें सुमणोहरु भवियणजणमणसवणसुहंकरु।
जस-परसेसि कविहिं जं सुण्णउं जं उव्वरिउ किंपि सुणियाणहो।
तं जसकित्ति मुणिहिं उद्धरियउ णिएवि सुत्तु हरिवंसच्छरियउ।
णियगुरु सिरिगुणकित्तिपसाएं किउ परिपुण्णु मणहो अणुराएं।
मरहसे देदंसेठि (?) आएसें कुमरणयरि आविउ सविरोसें।
गोवगिरिहे सामीवे विसालए पणियारहे जिणवरचेयालए।
सावयजणहो पुरउ वक्खाणिउ दिट्ठु मिच्छत्तु मोहु अवमाणिउ।
जं अमुणंतें इह मइं साहिउ तं सुयएवि खमउं अवराहउ।
णंदउ सासणु सम्मइणाहहो णंदउ भवियण कयउच्छाहहो।
णंदउ णरवइ पय पालंतहो णंदउ दयधम्मु वि अरहंतहो।
कालं विय णिच्च परिसक्किउ कास वि धणु कणु दिंति ण थक्कउ।
भद्दवमासि विणासियभवकलि हुउ परिपुण्णु चउद्दिसि णिम्मलि।
॥ घत्ता ॥ इय चउविहसंघहं विहुणियविग्घहं णिण्णासियभवजरमरणु।
जसकित्तिपयासणु अखलियसासणु पयडउ संति सयंभु जिणु॥१७॥

ઉપરના કડવક ઉપરથી એટલું દેખાઈ આવે છે કે પદ્ધડિયા છંદમાં વિદ્વાન સ્વયંભૂએ હરિવંશપુરાણ રચ્યું. તે શ્રોતાઓને માટે અધુરૂં હતું. ગોપાચલગચ્છના શ્રીગુણકીર્તિના શિષ્ય યશઃકીર્તિએ તે પુરૂં કર્યું. યશઃકીર્તિ ભટ્ટારક 'રઇધુ'ને નામે પ્રખ્યાત છે. તે સોળમા સૈકામાં પ્રવર્તમાન થયો.

છેવટની પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે:

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासियसयंभुवि उव्वरिए।
तिहुवणसयंभुरइए समाणियं कन्हकित्तिहरिवंसं॥
गुरुपव्वनासभयं सुयणाणाणुक्कमं जहा जाय।
सयमिक्कदुदह अहियं संधीत्थ परिसमत्ताउ॥ संधि ११२॥

ઉપરની પ્રશસ્તિની બીજી ગાથા ઉપરથી દેખાઈ આવે છે કે "શ્રુતજ્ઞાનને અનુસરીને મોટા પર્વનો નાશનો ભય ઉત્પન્ન થયો–તેથી અહિં પૂરેપૂરા ૧૧૨ સંધિઓ પૂરા કર્યા." આ ગાથા ઉદ્ધારક યશઃકીર્તિની લખેલી હોવા સંભવ છે. યશઃકીર્તિ વચ્ચે ખોવાઈ ગયેલા તૂટક ભાગોનો ઉદ્ધાર કર્યો હશે અને ક્ષેપક ભાગ પણ ઉમેર્યો હોય તો તે અસંભવિત નથી.

§ **૧૨.** હરિવંશપુરાણની ઉપરના વિવેચન પ્રમાણે ૧૧૨ સંધિ છે. (૧) યાદવકાંડ–સંધિ ૧૩; (૨) કુરુકાંડ–સંધિ ૧૯; (૩) યુદ્ધકાંડ–સંધિ ૬૦; (૪) ઉત્તરકાંડ–સંધિ ૨૦. હરિવંશની રચનામાં ત્રણ હાથ છે: ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ, ત્રિભુવન સ્વયંભૂ અને યશઃકીર્તિ ભટ્ટારક. હરિવંશપુરાણમાંથી છંદોવૈવિધ્ય અને કાવ્યરચનાના વૈવિધ્યના અનેક પુરાવાઓ મળી શકે છે. આખુ ય કાવ્ય પ્રસિદ્ધ થાય તો આ બાબત ઉપર ઘણો પ્રકાશ પડી શકે. અહીં ફક્ત ઉડતી બાબતોની જ નોંધ બસ થશે. દાખલા તરીકે સંધિ ૭ માં, જુદા જુદા છંદોનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે. ખાસ ઉપયોગી બાબતોમાં એક બાબત અહીં નોંધવી આવશ્યક છે. દા. ત. હાથપ્રત પાન ૪૯૮ (अ) मागधिकाया भाषायां पदाकुलछंदः; હા. પ્ર. પા. ૪૯૮ (ब) मागधिका णाम छंदः; પા. ૪૯૭ (अ) इयमण्णिव मागधिकाभासाः પા. ૫૦૦ (अ) ढक्काभासाकवडयं: અને પા. ૪૯૫[10] सिंधवी भासा. 'सिंधवी भासा' સિવાયનો બીજો બધો ભાગ, સંધિ ૧૦૩ માં છે, તે આખોય સંધિ એક પ્રકારના વૈચિત્ર્યવાળો હોવાથી અપભ્રંશપાઠાવલીમાં ઉદ્ધરણ તરીકે મેં લીધો છે. આ ઉપરથી 'અપભ્રંશ–એક કે અનેક' એ પ્રશ્ન ઉપર કાંઈક પ્રકાશ પડી શકે છે. આ સંબંધી ચર્ચા–એ તો બહુ વિસ્તૃત વિષય છે; અને આપણા વિષયને માટે પ્રસ્તુત નથી. એક બાબત અત્રે કહેવી આવશ્યક છે અને તે એ કે આ બધી ભાષાઓ એક પ્રકારના ભાષાવૈચિત્ર્ય ખાતર બનાવટી કરીને મૂકવામાં આવી હોય એમ લાગે છે सिंधवी भासा માં પણ ખાસ વૈચિત્ર્ય છે જ નહિ અને તે પણ સામાન્ય અપભ્રંશમાં સહેજ ફેરફાર કરીને એક કડવકમાં આપવામાં આવી છે. કવિએ પોતાનું ભાષાવૈદગ્ધ્ય બતાવવા ખાતર દરેક ભાષા માટે એક કડવક ઉમેર્યુ છે. આ કરામત ત્રિભુવનની હશે કે પછી યશઃકીર્તિની હશે તે કહેવું અત્યારે તો મુશ્કેલ છે. યશઃકીર્તિનો ઉમેરો હોય તો તે અસંભવિત તો નથી જ.

§ **૧૩.** स्वयंभूछंदः નામે છન્દોરચનાનો ગ્રથ પ્રો॰ વેલણકરે JBBR AS 1935 pp. 18 – 58 માં એ ગ્રંથનાં પહેલાં ત્રણ પ્રકરણ સંપાદિત કર્યાં હતાં. આ ભાગ મારા જોવામાં આવ્યો નથી; તેમ જ તે સ્થાને આપેલું સ્વયંભૂ સંબંધી સંપાદકીય વક્તવ્ય પણ મારા વાંચવામાં આવ્યું નથી. અપભ્રંશ છંદોની ચર્ચા કરતાં, स्वयंभूछंदः નાં પ્રકરણ ૪–૮, તે જ વિદ્વાન પ્રો॰ વેલણકરે Journal of the University of Bombay Vol. V, part III, November 1936, P. 69-93 માં સ્વયંભૂ સંબંધી પોતાના વક્તવ્ય સહિત સંપાદિત કર્યાં છે. એ સંપાદકીય વક્તવ્યમાં તેમણે પ્રો॰ હીરાલાલ જૈને Nagpur University Journal No. 1. December 1935 P. 70–84 ના 'Svayambhū and his two poems in Apa-

10. આ ભાષાવિભેદોવાળી સંધિમાટે: અપભ્રંશપાઠાવલી. ઉદ્ધરણ. ૪. પા. ૫૩–૮૦.

bhramśa' ના લેખનો સવિસ્તર ઉલ્લેખ કર્યો છે. મારી પાસેના પૂરાવાઓના આધારે કેટલોક વિશેષ પ્રકાશ પ્રો० વેલણકરે ઊભા કરેલા મુદ્દાઓ ઉપર નાખી શકાય એમ છે. પ્રો० જૈને જે કાંઈ લખ્યું છે તે મારા વાંચવામાં આવ્યું નથી. પ્રો० વેલણકરે પ્રો० જૈનના કેટલાક અભિપ્રાયો સવિસ્તર નોંધ્યા છે; અને તે અભિપ્રાયોનો નિરાસ અને પોતાના અભિપ્રાયનું સમર્થન કર્યું છે. આમ મારૂં વક્તવ્ય પ્રો० જૈનના અભિપ્રાયો અને પ્રો० વેલણકરના અભિપ્રાયો, પ્રો० વેલણકરના Bombay University Journal ના લેખને અનુસરી નોંધ્યા છે.

પ્રો० વેલણકર જણાવે છે:

(१) 'It is impossible to imagine that Tribhuvana Svayambhū, had he known this work of his father, would not have mentioned it. In our work on the other hand, there is no trace of any of the poems either of the poet Svayambhū[11]........

स्वयंभूछंदः નો કર્તા ત્રિભુવન સ્વયંભૂ છે કે કેમ તે સંબંધે મારે કાંઈ કહેવાનું નથી; પરંતુ પ્રો० વેલણકર જણાવે છે કે **स्वयंभूछंदः** માં સ્વયંભૂની બે કવિતાઓનો બીલકુલ ઉલ્લેખ નથી. આ વિધાન પરત્વે મારો વિરોધ છે. **चतुर्मुखस्वयंभू**ના **पउमचरिय**ના ૧૪ મા સંધિમાં આવેલી એક ઘત્તા **स्वयंभूछंदः** V, 9, માં નીચે પ્રમાણે ટાંકેલી છે:

[12]**छड्डा अवजाई जहा–**

कहवि सरुहिरइं । दिट्ठइं णहवइं । थणसिहरोपरि सुपउत्ताइं ।
वेग्गे वलग्गहो । मअणतुरंगहो । णं पइ छइ छइ दुक्खत्ताइं ॥ ९ ॥

અપભ્રંશપાઠાવલીમાં ચતુર્મુખ સ્વયંભૂના પઉમચરિયમાંનો સંધિ ૧૪ આખોય પ્રથમ ઉદ્ધરણ તરીકે લીધો છે. તેમાં પં. ૭૪–૭૫ નીચે પ્રમાણે છે:

[13]**कहिवि सरुहिरइं दट्ठइं णहरइं थणसिहरोवरि सुपहुत्तइं ।**
वेग्गि वलग्गहो मयणतुरंगहो णं पयइ छुड्डु छुड्डु खित्तइं ॥

આ અવતરણ કવિના નામ વગર જ ઉદાહરણ તરીકે સ્વયંભૂછંદમાં નોંધવામાં આવ્યું છે; તે બતાવે છે કે 'પઉમચરિય'માંથી નામની નોંધ વિના પણ સ્વયંભૂછંદનો રચયિતા ટાંકી શકે છે. આ ઉપરાંત ચતુર્મુખના નામ સહિત અને નામ વિના બીજાં અવતરણો લેવાયાં હોય તો તે અસંભવિત નથી. કેટલાં ય ઉદાહરણો 'પઉમચરિય' અને 'હરિવંશ'માંથી લેવામાં આવ્યાં હોય એવાં જ જણાય છે. એ બન્ને ય કાવ્યો પ્રસિદ્ધ થશે તો આ છંદોરચનાના ગ્રંથ ઉપર ઘણો પ્રકાશ પડશે. પણ એટલું તો દેખાઈ જ આવે છે કે स्वयंभूछंदः ની રચનાને स्वयंभू સાથે સંબંધ તો છે. ચતુર્મુખ સ્વયંભૂનું છંદોરચનાનું તથા વ્યાકરણનું જ્ઞાન વિશાળ હતું એ તો તેના પ્રયોગો અને તેના પોતાના ઉલ્લેખો ઉપરથી જણાઈ આવે છે. આથી પ્રો० જૈનની કલ્પનામાં તથ્યનો અંશ નથી એમ તો નથી જ.

---

11. Journal of the University of Bombay, Vol. V, Part III, P. 69. (J. U. B.)

12. J. U. B. Vol. V. Part III, P. 77.

13. અપભ્રંશપાઠાવલી. પાન ૧૦, ઉદ્ધરણ: ૧: जलकीलावण्णणु ।

(२) પ્રો૦ વેલણકર વધારામાં લખે છે: 'There is no trace of any of the poems either of the poet Svayambhū himself or the Apabhraṁśa poet like Bhadra (author of the Matsyavedha), Chaturmukha (author of the Gograhaṇakathā) and an earlier Svayambhū (author of the Jalakrīḍā), so respectfully mentioned both by the poet Svayambhū (Paumachariya, Sandhi 14, P. 81) and his son Tribhuvana (Paumachariya, Introduction, pp. 79, 74).'

પ્રો૦ વેલણકરનો અભિપ્રાય સુસંગત નથી. સંધિ ૧૪ ના અંતભાગની એ ગાથા મને તો પ્રશસ્તિગાથા લાગે છે. જો પ્રો૦ વેલણકરે, પ્રો૦ જૈનના અભિપ્રાયનું ટાંચણ વ્યવસ્થિત આપ્યું હોય તો તે ગાથા સંબંધે પ્રો૦ જૈનનો પણ પ્રમાદ થયો લાગે છે. મારી નોંધ પ્રમાણે પ્રસ્તુત ગાથા[14] નીચે પ્રમાણે છે:

जलकीलाए सयंभू चउमुह पवंग[15] गोग्गहकहाए ।
भद्दं च मच्छवेहें अज्ज वि कइणो न पावंति ॥

'જલક્રીડાવર્ણન' એ સંધિ ૧૪ નો વિષય છે. અને ચઉમુહ સયંભૂની તે વર્ણનમાં કવિત્વની પરાકાષ્ઠા છે. તે જ રીતે 'પવંગ'ની કવિતા 'ગોગ્રહકથા'માં અનુપમ છે. ભદ્ર નામે કવિનું કાવ્યગૌરવ 'મત્સ્યવેધ'માં અભિવ્યક્ત થાય છે. આજ સુધી કોઈ કવિએ આ કવિતાની સરખામણીમાં ઊતરે તેવી કવિતાની રચના કરી નથી એમ એ ગાથાકારનું કહેવું છે. 'ગોગ્રહકથા' એ વિરાટપર્વનો વિષય છે અને એ રીતે હરિવંશપુરાણનો ભાગ હશે. 'મત્સ્યવેધ' પણ મહાભારતનો ભાગ હોઈ હરિવંશપુરાણનો ભાગ હશે. ઉપરની ગાથામાં નોંધેલાં લખાણો મોટાં કાવ્યોના સંધિઓ કે વિભાગો હશે. આ ગાથા ચતુર્મુખ સ્વયંભૂની નથી પણ એ 'જલક્રીડાવર્ણન'ને લગતા સંધિની પ્રશંસા ખાતર પાછળથી રચાએલી ગાથા છે. પ્રો૦ જૈને–પ્રો૦ વેલણકરના ટાંચણ અનુસાર–પણ આ ગાથા પૂર્ણ સ્વરૂપમાં નોંધી નથી. 'पवंग' નામે કવિનો નામોલ્લેખ તેમાં દેખા દેતો નથી. પ્રો૦ વેલણકર ચતુર્મુખને 'ગોગ્રહણકથા'ના કર્તા તરીકે જણાવે છે તે અયથાર્થ છે.

(૩) 'હરિવંશપુરાણ'ના સંધિ ૯૯ ને અંતે એક પ્રશસ્તિગાથા આવે છે:

काउण पोमचरियं सुव्वयचरियं च गुणगणप्पवियं ।
हरिवंसमोहहरणे सरस्स[ई] सुढियदेह व ॥

ઉપર પ્રમાણે મૂળ હાથપ્રતમાં ગાથા છે. તેમાં કેટલાક લહિયાના પ્રમાદ છે: ૧. પ્રથમ પંક્તિમાં શુદ્ધરૂપ काऊण, काउण ને સ્થાને; ૨. च ને ઠેકાણે व=સં. इव; બીજી પંક્તિમાં सरस्ससुढियदेहव्व[16] ને સ્થાને सरस्स[ई]सुढियदेह व्व । પ્રો૦ વેલણકર ટીકા કરે છે

14. અપભ્રંશપાઠાવલી, પાન ૧૬ ની નોંધમાં આપેલી પ્રશસ્તિગાથા.

15. અપ, पवंग=સં. प्लवंग, पतंग. અપભ્રંશપાઠાવલીમાં સં૦ છાયા पतंग આપી છે–તે સંદિગ્ધ તો છે જ.

16. સરસ્વતીના પ્રસાદથી તેણે હરિવંશપુરાણનો આરંભ કર્યો હતો તે માટે જુઓ આ જ લેખમાં સ્વયંભૂના પોતાના શબ્દો §૯.

तहिं अवसरि सरसइ धीरवइ "करि कव्वु दिण्ण मइ विमलमइ."

એટલે सरस्स ની सरस्सइ કલ્પના કરી છે. सुढिय=श्रान्त સરખાવો. દે. ના. મા. ૮. ૩૬. ૧.૨.૬.

'A long letter between 'Sarass' and 'Sudhiyadeha vva' is missing.' મારા અભિપ્રાય પ્રમાણે તે દીર્ઘ 'ई' છે.

એ ગાથાના અર્થમાં એક રીતે ઉપમા સમાયેલી છે. હું એ ગાથાનો અર્થ આ પ્રમાણે કરું છું: "ગુણોથી પવિત્ર શુદ્ધ ચારિત્રના જેવા 'પદ્મચરિત'ને સિદ્ધ કરીને, સરસ્વતીએ [૧. મનુષ્યના ચારિત્ર પક્ષે: જ્ઞાન; અને કાવ્યપક્ષે: સરસ્વતી] જેનો દેહ શ્રાન્ત કર્યો છે [એટલે કે, જ્ઞાને કરીને જેની દેહ ઉપરની આસક્તિ ઓછી કરી છે] તેણે 'હરિવંશ'રૂપી મોહને દૂર કરવા માટે [મતિ કરી]" 'હરિવંશપુરાણ'ના આરંભના કડવકમાં 'સરસ્વતી'ની અનુજ્ઞાથી તેણે આ પુરાણકાવ્યનો આરંભ કર્યો એમ જણાવ્યું છે. આ પ્રશસ્તિગાથાથી 'પદ્મચરિત' લખ્યા પછી 'હરિવંશપુરાણ'નો આરંભ ચતુર્મુખે કર્યો એ સિદ્ધ થાય છે. આ રીતે ગાથાનો અર્થ સુસ્પષ્ટ થાય છે. 'હરિવંશપુરાણ'ની રચના 'પદ્મચરિત' પછીથી થઈ તે 'હરિવંશપુરાણ'ના આદિભાગથી સૂચિત થાય છે અને આ ગાથાથી તે સ્પષ્ટ થાય છે.

(૪) પ્રો૦ વેલણકરે ઊભો કરેલો ચોથો મુદ્દો 'પંચમિચરિય'ને લગતો છે. તેને લગતી ગાથાઓ નીચે પ્રમાણે છે.

चउमुहसयंभुएवाण वाणियत्थं अचक्खमाणेण ।
तिहुअणसयंभुरइयं पंचमिचरियं महच्छरियं ॥
जइ न हुउ च्छंदचूडामणिस्स तिहुअणसअंभुलहुतणउ ।
तो पद्धडियाकव्वं सिरिपंचमि को समारेउ ।

આ ગાથાઓનો અર્થ મારી દૃષ્ટિએ મેં પૂર્વે આપ્યો છે. 'પંચમિચરિય' એટલે જ્ઞાનપંચમીની ઊજવણી ખાતર રચેલી કથા. દાખલા તરીકે, ધણવાલની 'ભવિસ-યત્તકહા' પણ 'પંચમિકહા' ને નામે ઓળખાય છે. 'ચતુર્મુખ સ્વયંભૂની વાણીના અર્થને ન ચાખતા એવા ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ મહા-આશ્ચર્યકારક 'પંચમિચરિય' રચ્યું.' આનો અર્થ એમ પણ હોય કે 'સંપૂર્ણ રીતે નહિ ચાખતા' એવા ત્રિભુવન સ્વયંભૂએ એ કાવ્ય અધુરૂં હતું તે પૂરૂં કર્યું. બીજી ગાથામાં પણ જાણે ચતુર્મુખે કોઈ કાવ્ય અધુરૂં રાખ્યું હોય અને ત્રિભુવને, લઘુ તનય હોવા છતાં પણ, પિતૃઋણ અદા કર્યું એ જાતનો આશય નીકળે છે. 'પંચમિચરિય' તે 'પઉમચરિય', 'હરિવંશપુરાણ' કે બીજું જ કાવ્ય – એ નિશ્ચિત કરવું મુશ્કેલ બાબત છે.

(૫) स्वयंभूछंदः માંથી એક બાબત દૃષ્ટિગોચર થાય છે. 'પઉમચરિય'ની અંત્ય-પ્રશસ્તિ ગાથાઓમાં નીચેની ગાથા છે:

माउरसुयसिरिकइरायतणयकयपोमचरियअवसेसं ।
संपुण्णं संपुण्णं वंदओ लहइ संपुण्णं ॥

ઉપરની ગાથામાં કવિરાજ ચતુર્મુખને 'માઉરસુય' તરીકે જણાવવામાં આવ્યો છે. 'પઉમચરિય' ના આરંભભાગમાં નીચેની પંક્તિ આવે છે:

पउमिणिजणणिगब्भसंभूयं माहपएवरूवअणुरायं ।

એ પંક્તિમાં 'माउएएव'= છંદોદૃષ્ટિએ 'माउरएव' હોવું જોઇએ. અને ઉપર ટાંકેલી ગાથા ઉપરથી તે કલ્પનાને સમર્થન મળે છે. स्वयंभूछंदः માં माउरदेवના નામનો એક દોહો મળે છે:

चोद्दहपढमतइअ[च]रणे बारहवीअचउत्थे।
दुवह[अ]लक्खण पत्तलउ होई अवहंससत्थे॥

दुवहउ जहा–

अम्मिअ करह दुसीलअउ णीरिउ किंपि ण खाइ।
कावि मरुत्थलवेल्लिलिअ तेहो कारणे विदाइ॥

तहा अ **माउरदेवस्स**–

लब्भउ मित्त भण(म)न्तेण रअणाअ[र] चन्देण।
जो सिज्जन्ते सिज्जइ वि तह भरइ भरन्तेण॥

ઉપર ટાંકેલો દુહો ચતુર્મુખના પિતા 'માઉરદેવ'નો હોય તો તે અસંભવિત નથી.

§૧૪. ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવનનો સમય નક્કી કરવા માટે આપણે પૂર્વમર્યાદા નક્કી કરવા માટે તેણે જ આપેલાં સાધનો છે. તેણે (૧) દંડી અને ભામહ; (૨) બાણ; (૩) રવિષેણ અને (૪) હરિષેણ–એ લેખકોના નામનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. દંડી અને ભામહ છઠ્ઠા સૈકામાં પ્રવર્તમાન થયા.[17] બાણનો સમય સાતમા સૈકામાં નિશ્ચિત છે.[18] હરિષેણનો સમય પણ લગભગ આ જ અરસામાં છે. રવિષેણનો ઉલ્લેખ ખાસ મદદ રૂપ છે. રવિષેણે પદ્મપુરાણ ભગવાન મહાવીરના નિર્વાણ પછી ૧૨૦૩ વર્ષે–એટલે કે વિ. સં. ૭૩૩માં લખ્યું.[19] આ ચતુર્મુખના સમયનિર્ણય માટેની પૂર્વમર્યાદા છે.

છેવટની મર્યાદા અપભ્રંશકવિ ધવલ અને પુષ્પદંતના ઉલ્લેખ ઉપરથી સિદ્ધ કરી શકાય છે. 'તિસટ્ઠિમહાપુરિસગુણાલંકાર'ના પ્રારંભિક કડવકમાં કેટલાક લેખકો અને કવિઓનાં નામોનો તે ઉલ્લેખ કરે છે. તેમાં ચતુર્મુખ સ્વયંભૂના નામનો પણ ઉલ્લેખ છે:

भावाहिउ भारहवासि वासु कोहलु कोमलगिरु कालिदासु।
चउमुहु सयंभु सिरिहरिसु दोणु णालोइउ कइ ईसाणु बाणु॥

ડૉ૦ પી. એલ. વૈદ્યની ગણતરી અનુસાર મહાકવિ પુષ્પદંતે પોતાનું મહાપુરાણ વિ૦ સં૦ ૧૦૨૨માં પૂરૂં કર્યું.[20]

આ ઉપરાંત અપભ્રંશ મહાકવિ ધવલે[21] પણ ચતુર્મુખ સ્વયંભૂનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

---

17. સરખાવો दशकुमारचरित (Ed. M. R. Kale) Introduction, P. XLVIII. $$.

18. कादम्बरी (Ed. P. V. Kane) Introduction, P. VII. $$.

19. जिनसेन नुं हरिवंशपुराण. (પૂર્વાર્ધ) (માણિકચંદ્ર દિગંબર ગ્રન્થમાલા. ૩૨) પ્રસ્તાવના. પા. ૧. ફુટનોટ.

20. पुष्पदंत विरचित 'जसहरचरिउ' Ed. by Dr. P. L. Vaidya. (Karanja Jain Series. Vol. I) Introduction, P. 24.

21. Catalogue of Sanskrit, Prakrit Mss. Berar and C. P. Edited by Rai Bahadur Hiralal B. A. Appendix. P. 720.

ધવલનો સમય વિ૦ સં૦ ૧૦મા સૈકામાં મૂકી શકાય. પુષ્પદંત ધવલનો ઉલ્લેખ કરતો નથી; અને ધવલ પુષ્પદંતનો ઉલ્લેખ કરતો નથી. એટલે આ બન્ને ય કવિઓ વચ્ચે બહુ થોડા સમયનુ અંતર હોવું જોઇએ. કરકંડુચરિતનો કર્તા કનકામર સ્વયંભૂ અને પુષ્પદંતનો સાથે ઉલ્લેખ કરે છે.

तो सिद्धसेण सु समंतभद्द अकलंकदेव सुअजलसमुद्द ।
जयएव सयंभु विसालचित्तु वाएसरिघरु सिरिपुष्फयंतु ॥

કનકામરે ઈ૦ સ૦ ૧૦૬૫=વિ૦ સં૦ ૧૧૨૧ના અરસામાં આ કાવ્ય લખ્યું.[22]

ઉપરના પુરાવાને અનુલક્ષી ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂનો સમય, વિ૦ સં૦ ૭૩૩ પછીથી અને વિ૦ સં૦ ૧૦૨૨ – ધવલનો ઉલ્લેખ ધ્યાનમાં લેતાં – પૂર્વે, એકાદ સૈકા પહેલાં સ્વયંભૂ પિતા પુત્રની કાવ્યપ્રવૃત્તિ હશે. આ બધા પુરાવાઓ સાથે સ્વયંભૂએ રવિષેણના સંબંધમાં જે બોલ ઉચ્ચાર્યા છે તે નોંધમાં લેવા જેવા છે:

पुणु रविसेणायरियपसाएं बुद्धिए अवगाहिय कइराएं[23] ।

'પદ્મચરિતની કથામાં કવિરાજ પોતાની બુદ્ધિથી અને વળી રવિષેણાચાર્યની કૃપાથી અવગાહન કર્યું.' રવિષેણે આપણે ઉપર જોયું તે પ્રમાણે વિ૦ સં૦ આઠમા સૈકાના મધ્યભાગમાં પદ્મપુરાણની રચના કરી. એટલે ઉપરનો ઉલ્લેખ, ચતુર્મુખનો રવિષેણાચાર્ય સાથે શિષ્ય અને આચાર્યનો સંબંધ હોય એમ બતાવી આપે છે. પોતાનાં માતા પિતાના નામની સાથે જ ચતુર્મુખે રવિષેણનો ઉલ્લેખ આચાર્ય તરીકે કર્યો છે. એટલે જ શિષ્ય અને આચાર્યનો સંબંધ તે બન્ને વચ્ચે વધારે સંભવિત લાગે છે. જો એક પ્રસિદ્ધ લેખક તરીકે તેનો ઉલ્લેખ કરવો હોત તો તે અન્ય લેખકોના ઉલ્લેખ સાથે જ તેમનો ઉલ્લેખ કરત. સ્વતંત્ર રીતે પણ ઉપરના પુરાવાઓને આશ્રયે લગભગ વિ૦ સં૦ નવમા સૈકાના મધ્યભાગમાં આ કવિયુગલને મૂકી શકાય; અને જો એ શક્ય છે તો ચતુર્મુખનો રવિષેણ સાથેનો અંગત પરિચય અશક્ય નથી. જો અન્ય સ્વતંત્ર સમયનિયામક પુરાવા ન હોત તો હરિભદ્ર અને સિદ્ધર્ષિની માફક રવિષેણ અને સ્વયંભૂના સંબંધના સંભવનો સ્વીકાર કર્યા વિના ચાલત નહિ.

§૧૫. ઉપરની કંડિકાઓમાં મારી પાસે પડેલા પુરાવાઓમાંથી ફલિત થતા મુદ્દાઓને આધારે મેં ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના જીવન અને કવનનું બ્યાન આપવા પ્રયત્ન કર્યો છે. આ બન્નેય કવિઓની કવિતા અપભ્રંશ સાહિત્યની ભાષા બની ત્યાર પછીની છે. અપભ્રંશ સાહિત્ય-ભાષા થયાનો ઉલ્લેખ ધરસેન બીજાએ (ઈ. સ. ૫૫૨–૫૬૨) પોતાના પિતા ગુહસેન સંબંધી લેખમાં કર્યો છે. તેમાં ગુહસેનને "સંસ્કૃત, પ્રાકૃત, અપભ્રંશ એ ત્રણેય ભાષાના પ્રબંધોની રચનાથી જેનું અંતઃકરણ વધારે નિપુણ થયું છે" એમ વર્ણવ્યો છે.[24] તે ઉપરાંત કુવલયમાલા (વિ૦ સં૦ ૮૩૫)

22. कनकामर-विरचित–'करकंडुचरिउ' संधि १, કડવક, ૨, પં. ૮–૯ (Ed. Prof. Hiralal Jain : अम्बाइदास चवरे दिगम्बर जैनग्रंथमाला–४.) Introduction, P. 34 $$.

23. પ્રસ્તુત લેખ § ૩.

24. Indian Antiquary, Vol. 10, P. 284 : संस्कृतप्राकृतापभ्रंशभाषात्रयप्रतिबद्धप्रबन्धरचनानिपुणतरान्तःकरणः । આ પ્રમાણે વલભીરાજ ગુહસેનનું વિશેષણ આપવામાં આવ્યું છે.

માં અપભ્રંશ કથા લખાયાનો ઉલ્લેખ છે;[25] અને તે ઉપરાંત અપભ્રંશભાષા સાહિત્ય-ભાષા તરીકે ઉત્કૃષ્ટ સ્થાન ધરાવતી હતી તેનો પણ ઉલ્લેખ તેમાં છે.[26] દેશ્યભાષાઓ અપભ્રંશથી નિરાળું સ્થાન ધરાવતી હતી તેનો ઉલ્લેખ પણ તે ગ્રન્થમાં કરવામાં આવ્યો છે.[27] આ રીતે આઠમા–નવમા સૈકામાં રચાયેલ ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂની કૃતિઓ અપભ્રંશનો સાહિત્ય ભાષા તરીકે ખૂબ જ વિકાસ થયા પછી રચાએલી છે. વળી સ્વયંભૂનાં કાવ્યોમાં છંદોરચનાનો વિકાસ અત્યંત થયેલો છે તે આપણે જોઈ ગયા છીએ.

અપભ્રંશ કાવ્યપ્રસ્તાર કડવક અને સંધિથી બદ્ધ છે. સામાન્ય રીતે એક કાવ્ય અનેક સંધિઓમાં વિભક્ત થયેલું હોય છે. દરેક કડવક મૂળગત નિયમ પ્રમાણે ૧૦ પંક્તિનું હોવું જોઇએ.[28] દરેક કડવકનું ધ્રુવપદ–દ્વિપદી હોય, કે હેલા હોય–

---

25. કુવલયમાલાકથા: જેસલમેર ભંડાર તાડપત્ર: પત્ર ૩.

पाययभासारइया मरहट्ठयदेसिवण्णयणिबद्धा ।
सुद्धा सयल कह च्चिय तावसजिणसत्थवाहिल्ला ॥
कोऊहलेण कत्थइ परवयणवसेण सक्कयणिबद्धा ।
किंचि अवब्भंसकया दाविय पेसायभासिल्ला ॥

26. કુવલયમાલા: તાડપત્રપ્રતી: પત્રનો ૫૭–૫૮ માં અપભ્રંશ સંસ્કૃત, પ્રાકૃત અને પૈશાચીની જોડની સાહિત્યભાષા તરીકે ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે. અપભ્રંશની પ્રશંસા નીચે પ્રમાણે છે.

एयं पुण ण सुट्ठु । ता किं अवहंसं होहिइ । हूं । तं पि णो जेण सक्कयपाययउभयसुद्धासुद्धपयसमतरंगरंगंतवग्गिरं णवपाउसजलयपवाहपूरपव्वालियगिरिणइसरिसं समविसमं पणयकुवियपियपणइणिसमुल्लावसरिसं मनोहरं ॥

27. આ વિષયની વિસ્તૃત ચર્ચા માટે જુઓ: અપભ્રંશપાઠાવલી: ટિપ્પણી: પાન ૮૬–૮૯.

28. J.B.U. Vol. V, Part III, p. 91. સ્વયંભૂછં.. Chap. IV–VIII

पद्धडिआ पुणु जेइ करेन्ति । ते सोलह मत्तउ पउ धरेन्ति ।
बिहिं पअहिं जमउ ते णिम्मअन्ति । कडवअ अट्ठहिं जमअहिं रअन्ति ॥

"જે કવિ પદ્ધડિઆ છંદમાં કાવ્યરચના કરે છે, તેઓ એક પદમાં સોળ માત્રાઓ મૂકે છે. બે પદનું એક યમક બને છે. એક કડવક આઠ યમકોનું બને છે." આપણા હિસાબે આઠ પંક્તિના કડવકદેહ આ રીતે છંદઃશાસ્ત્રીઓએ માન્ય કરેલો છે.

આ ઉપરાંત નીચેની કડીઓ અપભ્રંશ કાવ્યવિધાનના દૃષ્ટિએ ઉપયોગી હોઈ, તે જ ગ્રંથ 'સ્વયંભૂછંદઃ'માંથી નોંધી છે:–

आइहिं पुणु घत्त समामणन्ति । जमआवसाण छड्डुणि भणन्ति ।
संखाणिबद्धकडवेहि संधि । इह विविहपआरहि तुहु वि बन्धि ॥ २१ ॥
संधिमेआइं ते रइअ एअ । छड्डुणिआ वि घत्ता भण सुमेअ ॥
अण्णाउ विविहपआरिआउ । घत्ताउ छड्डुणि विआरिआउ ॥ ३२ ॥

ત્યારપછીની ૩૫ સુધીની ગાથાઓ અપભ્રંશ કાવ્યવિધાન માટે ઉપયોગી છે.

શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યે छन्दोनुशासन, अध्याय, ૬: ના આરંભમાં આ જ અભિપ્રાય દર્શાવ્યા છે: **सन्ध्यादौ कडवकान्ते च ध्रुवं स्यादिति ध्रुवा ध्रुवकं घत्ता वा ।** कडवकसमूहात्मकः सन्धिस्तस्यादौ चतुर्भिः पद्धडिकाद्यैश्छन्दोभिः कडवकम् । હેમચંદ્રાચાર્યે ચાર પદ્ધડિકા જેવા છંદોથી કડવક બને છે, એક છંદ ચાર ચરણનો એટલે બે પંક્તિનો. ચાર પદ્ધડિકા છંદો–એટલે આઠ પંક્તિઓ. આ પ્રમાણે હેમચંદ્રાચાર્યને પણ કડવક-દેહમાં આઠ પંક્તિઓ શાસ્ત્રીય દૃષ્ટિએ સંમત છે. ત્યારપછીનું છન્દોનુશાસનનું અવતરણ અહીં ઉપયુક્ત હોઈ નોંધ્યું છે. तस्यान्ते ध्रुवं निश्चितं स्यादिति ध्रुवा, ध्रुवकं, घत्ता वेति संज्ञान्तरम् । **सा त्रेधा षट्पदी चतुष्पदी द्विपदी च ॥** सेति ध्रुवा ॥ **कडवकान्ते प्रारब्धस्यार्थोपसंहारे आद्ये छड्डुणिका च ॥** प्रारब्धस्य प्रकरणात्तस्यार्थस्य कडवकान्ते भङ्ग्यन्तरेणाभिधाने षट्पदीचतुष्पद्यावेव छड्डुणिकासंज्ञे न केवल ध्रुवादिसंज्ञे छड्डुणिकासंज्ञे चेति चार्थः ।

કડવકે કડવકે વિભિન્ન હોય અથવા તો આખી સંધિનું એક જ આરંભમાં ધ્રુવપદ હોય. કડવકને અંતે 'ઘત્તા' હોય છે. ઘત્તામાં ગત કડવકનો ઉપસંહાર હોય છે અને આગામી કડવક તરફ ગતિ હોય છે. આ રીતે ધ્રુવપદની ૨ પંક્તિ + કડવકના દેહની ૮ પંક્તિ + ઘત્તાની ૨ પંક્તિ=૧૨ પંક્તિઓ હોય છે. જો ધ્રુવપદની ૨ પંક્તિ ન હોય તો કડવકનો આદર્શ ૧૦ પંક્તિઓનો હોય છે. આ નિયમનું પાલન ચતુર્મુખ સ્વયંભૂની કૃતિઓમાં વિશેષપણે જોવામાં આવે છે.[29] તેમાં વિશેષે કરીને કડવકના દેહની ૮ પંક્તિઓ હોય છે. આ કડવકના દેહની પંક્તિઓનો નિયમ ઝાઝો પળાયો નથી. કેટલાક કવિઓનાં લખાણોમાં તે નિયમની દરકાર કરવામાં આવી નથી. દાખલા તરીકે ચતુર્મુખના પુત્ર ત્રિભુવનની રચનામાં કે પુષ્પદંતની રચનામાં કોઈવાર ૧૦થી૪૦ સુધીની પંક્તિઓ કડવકના દેહમાં માલમ પડે છે. કડવકના દેહની પંક્તિની સંખ્યાનું સામાન્યતઃ પાલન, ચતુર્મુખની અન્યકવિઓ કરતાં પ્રાચીનતા સિદ્ધ કરી આપે છે.

અપભ્રંશ છંદોરચના અને કાવ્યદેહનિર્માણની અસર પ્રાચીન ગૂજરાતીના કાવ્યઘડતર ઉપર જેટલી છે, તેટલી જ અપભ્રંશ વ્યાકરણ અને શબ્દભંડોળની ગૂજરાતી ભાષા ઉપર છે તેથી જ અપભ્રંશ છંદોરચના અને કાવ્યદેહનિર્માણનો આ દૃષ્ટિબિંદુથી અભ્યાસ થવો આવશ્યક છે. અપભ્રંશ કવિઓની કૃતિઓનું પ્રકાશન અને છંદોદૃષ્ટિએ તેઓનો અભ્યાસ જોઇએ તેટલા પ્રમાણમાં થયાં નથી.

§१६. ચતુર્મુખ અને ત્રિભુવન સ્વયંભૂના કાવ્યોનું પ્રકાશન અદ્યાવધિ થયું નથી. પૂર્વે કહ્યા પ્રમાણે તે અજ્ઞેય કાવ્યોમાંથી ચાર સંધિઓને પસંદ કરી અપભ્રંશપાઠાવલીમાં પ્રથમ ચાર ઉદ્ધરણ તરીકે મેં મૂક્યા છે. આ નિબંધના અનુષંગી લેખ તરીકે ચતુર્મુખ સ્વયંભૂના 'પઉમચરિઉ'માંથી પ્રથમના બે સંધિઓ આ ત્રૈમાસિકના આગામી અંકમાં આવશે. જેથી આ કવિઓની કાવ્યસામગ્રીનો કાંઇક નમુનો વાચક પ્રાપ્ત કરી શકે. આ દિગંબર કવિનું કાવ્ય છે અને ગૂજરાતમાં લખાયું નથી. ગૂજરાતમાં શ્વેતાંબર કવિઓનાં અનેક અપ્રસિદ્ધ કાવ્યો ભંડારોના અંધકારમાં પડ્યાં છે. ગૂજરાતમાં સંશોધનનો ઉત્સાહ ઉત્તેજિત થયો છે; ગૂજરાતમાં સંશોધન માટે સંસ્થાઓ પણ સ્થાપિત થઈ છે; તો અપભ્રંશ સાહિત્ય પ્રકાશિત કરવાનું કાર્ય હાથમાં લેવાશે તો જરૂર ગૂજરાતીનાં ભાષાવિધાન, કાવ્યદેહ, છંદોરચના અને સંસ્કૃતિગૌરવ ઉપર અપૂર્વ પ્રકાશ પડશે.

---

29. જુઓ અપભ્રંશ પાઠાવલી : ઉદ્ધરણ : ૧ : નો કડવકબંધ અને સંધિબંધ. આના અનુગામી લેખમાં આપેલી સંધિનો કડવકબંધ જુઓ.

गुजरातनी प्राचीनतम जिनमूर्तिओ

*

लेखक—श्रीयुत साराभाई मणिलाल नवाब, एम्. आर्. ए. एस्.

આબૂ ઉપરના દિવ્ય દેવપ્રાસાદોમાં, ગિરનાર પરનાં ભવ્ય દેખાવનાં દેવાલયોમાં કે શત્રુંજયપરનાં રમણીય ઘાટનાં જિનમંદિરોમાં, મધ્યકાલીન (અગીયારમા સૈકાથી પંદરમા સૈકા સુધીની) અસંખ્ય જિનમૂર્તિઓ વિદ્યમાન છે, પરંતુ દશમા સૈકા પહેલાંની શિલાલેખવાળી કોઈ પણ મૂર્તિ હોય એવું જાણવામાં આવ્યું નથી.

ગુજરાતની જિનમૂર્તિઓમાં, સૌથી પ્રાચીન કહી શકાય એવી ચાર મૂર્તિઓ હમણાં થોડા જ સમય ઉપર જાણમાં આવી છે. જે વડોદરા રાજ્યના વિજાપુર ગામની પાસે આવેલા મહુડી ગામના કોટ્યર્કજીના મંદિરનું ખોદકામ કરતાં દોઢેક વર્ષપર ત્યાંના મહંતને બીજા સ્થાપત્યકામો સાથે મળી આવી છે. આ ચારે મૂર્તિઓ ધાતુની છે. એમાંની સૌથી મોટી વજનદાર જિનમૂર્તિ કોટ્યર્કજીના મંદિરની બાજુમાં, ત્યાંના મહંતની માલીકીની એક ઓરડીમાં સ્થાપિત કરવામાં આવી છે અને તે સીમેન્ટથી ભીંત સાથે સજ્જડ રીતે બેસાડી દેવામાં આવેલી છે. બાકીની ત્રણ નાની મૂર્તિઓ વડોદરા રાજ્યના પુરાતત્ત્વ સંશોધનખાતાની ઑફીસમાં લઈ જવામાં આવેલી છે.

આ ચારે મૂર્તિઓનાં ફોટો-ચિત્રો, ઈ૦ સ૦ ૧૯૩૭–૧૯૩૮ ના વડોદરા રાજ્યના પુરાતત્ત્વ સંશોધનખાતાના અહેવાલમાં, ચિત્રપ્લેટ નંબર ૪અ, ૫અ, ૫બ અને ૬અ માં છપાવવામાં આવેલાં છે; પણ વડોદરા રાજ્યના પુરાતત્ત્વ ખાતાના વડા નિયામક માન્યવર ડૉ૦ હીરાનંદ શાસ્ત્રીજીએ આ મૂર્તિઓને જૈન નહિં પણ બૌદ્ધમૂર્તિઓ તરીકે પોતાના એ અહેવાલમાં ઓળખાવેલી છે, અને તેના અંગે જ કેટલીક ચર્ચા પ્રસ્તુત લેખમાં કરવા ધારી છે.

આ ચાર મૂર્તિઓ પૈકીની સૌથી મોટી મૂર્તિ કે જે હાલમાં કોટ્યર્કજીના મહંતના કબજામાં છે, અને જેની પાછળ બ્રાહ્મી લિપિમાં એક લેખ પણ કોતરેલો છે, તે મૂર્તિનો પરિચય આપતાં, માન્યવર શાસ્ત્રીજી ઉક્ત અહેવાલના પાના ૬, પૅરેગ્રાફ ૧૩ માં જણાવે છે કેઃ—

"The principal image, (Pl. IV a) which is the largest of the four, represents, in all probability, the Buddha, seated cross-legged in meditation with hands placed above the heels and the palms turned upwards."

અર્થાત્—ચિત્ર પ્લેટ નંબર ૪અ વાળી મુખ્ય મૂર્તિ જે ચારે મૂર્તિઓમાં સૌથી મોટી છે તે, બધી સંભવિત રીતે જોતાં, પલાંઠી વાળેલા ખોળામાં એક બીજી ઉપર મુકેલી બંને હાથની ચત્તી હથેલીઓ સાથે, બેઠેલા ધ્યાનસ્થ બુદ્ધની લાગે છે.

એ મૂર્તિનું ચિત્ર, આ લેખ સાથે, ચિત્ર નંબર ૧ તરીકે રજુ કરેલું છે, જેને જોઇને કોઈપણ અભ્યાસી કહી શકશે કે માન્યવર શાસ્ત્રીજી કહે છે તેમ એ બૌદ્ધ મૂર્તિ નથી પણ સ્પષ્ટ રીતે જૈન મૂર્તિ છે. કારણ કે એ મૂર્તિની છાતીપરની બંને ડીંટડીઓ સ્પષ્ટ દેખાય છે. બૌદ્ધ મૂર્તિઓમાં, છાતીનો ભાગ વસ્ત્રથી આચ્છાદિત થયેલો હોય છે અને તેથી તેમાં એ ડીંટડીઓ સ્પષ્ટ રીતે બતાવવામાં આવતી નથી. તેમ જ ગમે તેટલી બારીકાઈથી જોવા છતાં પણ આ મૂર્તિમાં અંગ ઉપર વસ્ત્રનું અથવા ઉપવિત (જનોઈ)નું નિશાન જરાય દેખાતું નથી.

માન્યવર શાસ્ત્રીજી, મૂર્તિની ધ્યાનસ્થ બેઠક અને ખોળામાં એક બીજા ઉપર રાખેલા હાથો પરથી આ મૂર્તિને બૌદ્ધ મૂર્તિ હોવાની સંભાવનાઓ રજુ કરે છે. પરંતુ સ્વર્ગસ્થ વિન્સેન્ટ સ્મિથ દ્વારા સંપાદિત The Jain Stupa and other antiquities of Mathura નામનું પુસ્તક કે જે ઈ૦ સ૦ ૧૯૦૧ માં, ભારત સરકારના પુરાતત્ત્વ સંશોધનખાતાના વીશમા ગ્રન્થાંક તરીકે પ્રસિદ્ધ થયું છે, તેમાં કંકાલી ટીલામાંથી મળી આવેલી આવી ધ્યાનસ્થ બેઠકવાળી કુશાન સમયની જે જિનમૂર્તિઓ (ચિત્ર પ્લેટ નંબર ૮૫, ૯૧, ૯૨, ૯૩, ૯૪ અને ૯૮) પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવી છે તે જો ખ્યાલમાં રાખી હોત, તો માન્યવર શાસ્ત્રીજી, આ મૂર્તિને બૌદ્ધ મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવવાનો પ્રયત્ન ન જ કરત. વાચકોની જાણ ખાતર ઉક્ત પુસ્તકમાંથી એવી બે જિનમૂર્તિઓનાં ચિત્ર, આ લેખ સાથે ચિત્ર નં. ૨ અને ૩ તરીકે રજુ કર્યાં છે. જેની સાથે સરખામણી કરવાથી ખ્યાલ આવશે કે ચિત્ર નંબર ૧ વાળી મૂર્તિ બૌદ્ધ મૂર્તિ સાબીત થતી નથી, પરંતુ દરેક પુરાવાઓથી તે જિનમૂર્તિ હોવાની સાબિતી આપે છે.

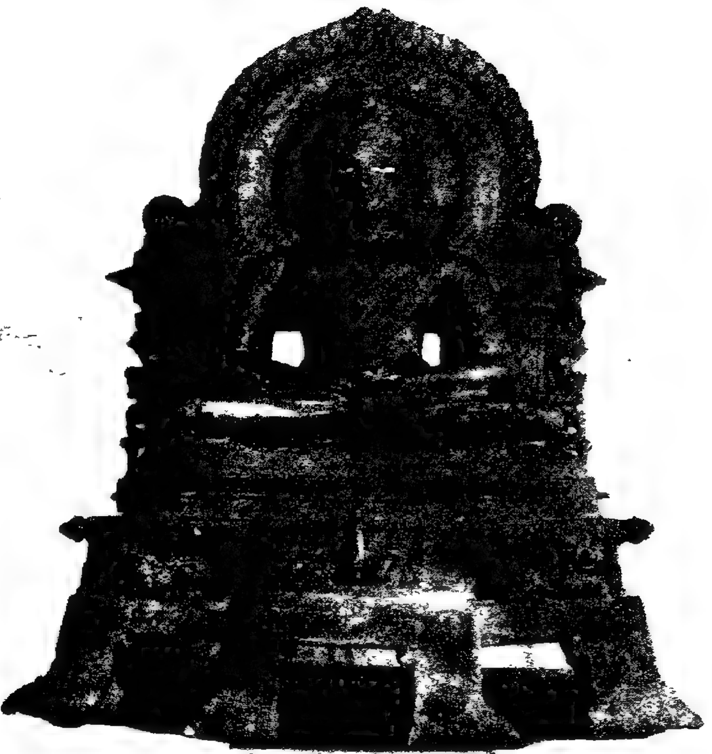
વળી, માન્યવર શાસ્ત્રીજી, પોતાના એ અહેવાલના પાન ૭ ઉપર, ચિત્ર નંબર ૧ વાળી મૂર્તિની પ્રભાવલીના પાછળના ભાગનું વર્ણન આપતાં જણાવે છે કે–

"The Prabhāvalī (pl. IV b) shows an old inscription incised on the back in minute late Brāhmī letters. The style of the image, however, is late and seems to belong to about the 7th century of the Christian era. The conventional and ornamental nature of the aura is an indication of late age."

અર્થાત્–પ્રભાવલી (પ્લેટ ૪ બ)ની પાછળના ભાગમાં છેલ્લા સમયની બ્રાહ્મી-લિપિનો બારીક કોતરેલો એક લેખ છે. તેમ છતાં મૂર્તિની ઢબ મોડા સમયની અને લગભગ ઇસિવી સનના સાતમા સૈકાની લાગે છે. એની પાછળ આવેલું રૂઢ સ્વરૂપનું શોભનાત્મક આભામંડલ તે મોડા સમયની હોવાનું દર્શાવે છે.

પ્લેટ નંબર ૪ બ નો લેખ ચિત્રમાં સ્પષ્ટ નહીં અહોવાથી અત્રે રજુ કર્યો નથી, પરંતુ તેની લિપિ જોતાં તો એ મૂર્તિ ઇસિવી સનના પહેલાથી ત્રીજા સૈકા સુધીની હોવાની સાબિતી આપે છે, પણ શાસ્ત્રીજી કહે છે તે પ્રમાણે સાતમા સૈકાની નહિ જ.

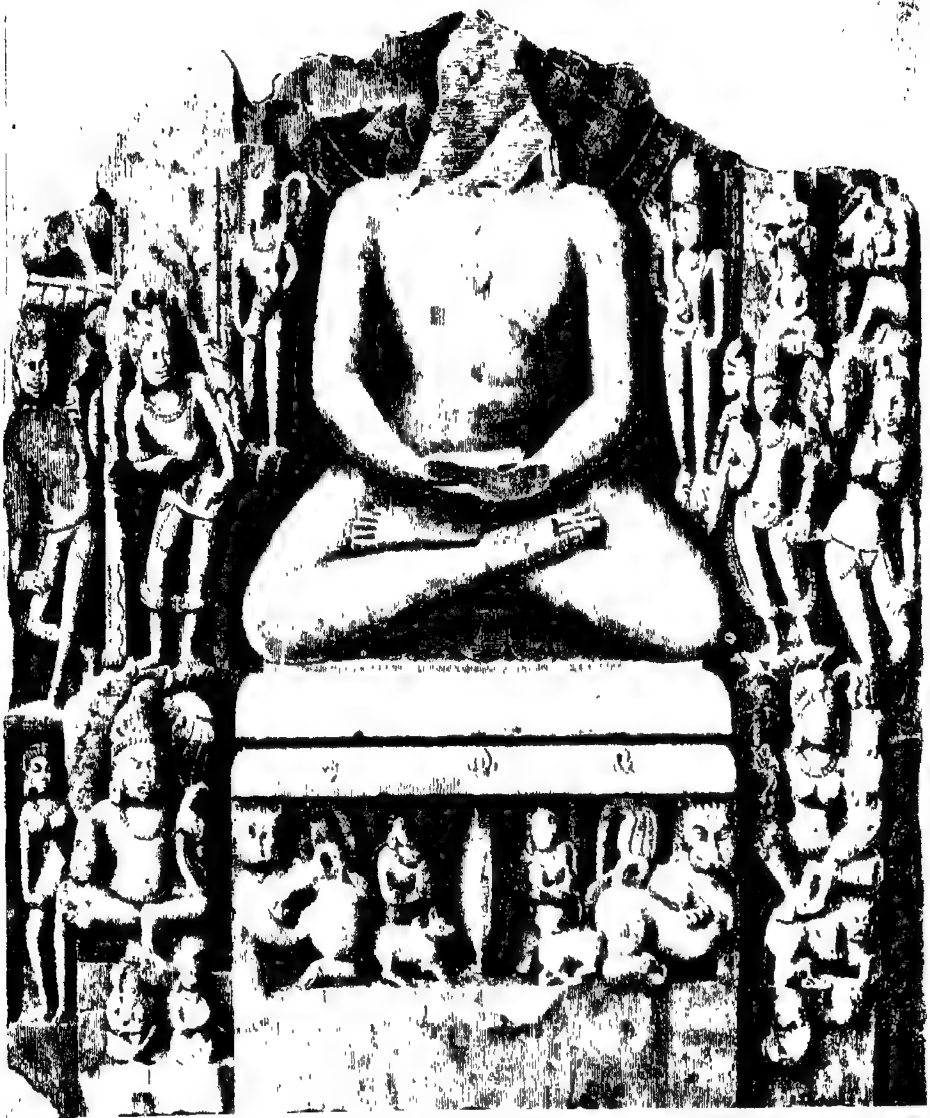
મારા કથનના પ્રમાણમાં, એ અહેવાલના પાન ૨૮મા ઉપર, પરિશિષ્ટ 'ડી' માં, શાસ્ત્રીજીના મદદનીશ અને એક વખતના મારા સહાધ્યાયી મિ. એ. એસ. ગદ્રેએ જે આ લેખનું વાંચન કરીને, તેનો સમય, ઇસિવી સનના ત્રીજા સૈકાની આસપાસનો માનેલો



चित्र १ एक जिनमूर्ति · महुडी



चित्र २ श्रीआदिनाथ · मथुरा



चित्र ३ श्रीपार्श्वनाथ · मथुरानो कंकालीटीलो

(ब्लोक साराभाई नवाबना सौजन्यथी)

છે, તે તરફ તેઓશ્રીનું ધ્યાન ખેંચું છું. વળી એ જ પરિશિષ્ટના remarks વાળા ખાનામાં મિ. ગદ્રેએ એ લેખની પહેલી લીટીનું જે વાંચન રજુ કરેલું છે, તે પણ એ મૂર્તિ જૈન હોવાની સાબિતી આપે છે અને તે અત્રે ઉતારવું આવશ્યક લાગે છે:

"Nama[ḥ] Siddha[nam] Vairigaṇasa......upa[ri]-kā-āryasaṅgha-srāvaka-"

नम[:] सिद्ध[नम्] वैरिगणस......उप[रि]-का-आर्य-संघ-श्रावक-"

મિ૦ ગદ્રેના વાંચનનો જે પ્રથમ શબ્દ 'नम' [:] શબ્દ છે તેનો અર્થ 'નમસ્કાર થાઓ' અને બીજા શબ્દ 'सिद्ध' ની સાથે તેઓ જે [नम्] શબ્દ હોવાની કલ્પના કરે છે, તેને બદલે [ाणं] હોવાની કલ્પના મને વધારે વાસ્તવિક લાગે છે. કારણ કે આ બે શબ્દો મળીને જૈનોને માન્ય પરમેષ્ટિમંત્રનું બીજું પદ 'नमो सिद्धाणं' થાય છે જેનો અર્થ 'સિદ્ધોને નમસ્કાર થાઓ' એ પ્રમાણેનો છે. આ બે શબ્દો જ આ મૂર્તિના જૈનત્વની સાબિતી માટે પૂરતા છે. કારણ કે આ પદથી એકેએક જૈન પરિચિત છે.

લેખનો ત્રીજો શબ્દ 'वैरिगणस' છે, આમા જે 'वैरिगण' શબ્દ છે તે પણ આ મૂર્તિ જૈન હોવાનું સ્પષ્ટ પ્રમાણ આપે છે. 'वैरिगण' એટલે આર્ય વજ્રસ્વામીનો શિષ્ય સમુદાય.

'કલ્પસૂત્ર' નામના સુપ્રસિદ્ધ અને પ્રાચીન જૈન સૂત્ર ગ્રંથના પાછળના 'સ્થવિરાવલી' પ્રકરણમાં આર્ય વજ્રસ્વામીથી 'वैरि' શાખા નીકળ્યાનો ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે મળી આવે છે.

"थेरेहिंतो णं अज्जवइरेहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थ णं अज्जवइरी साहा निग्गया।"

અર્થાત્–ગૌતમ ગોત્રવાળા સ્થવિર આર્ય વજ્રથી આર્ય વજ્રી નામની શાખા નીકળી."

મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થયેલી કુશાન સમયની પ્રાચીન જિનમૂર્તિઓ તથા જૈનસ્થાપત્યો ઉપર પણ 'वैरिशाखा'નો ઉલ્લેખ કરનારા કેટલાક લેખો મળી આવ્યા છે.

વળી, આ લેખમાં જે 'वैरिगण' શબ્દ વપરાએલો છે, તે આ મૂર્તિનો સમય નક્કી કરવામાં પણ વધુ મદદગાર થઈ પડે તેમ છે. કારણ કે 'गण' શબ્દનો અર્થ એક જ વાચના લેનાર શિષ્યસમુદાય એવો પણ થાય છે. અને તેથી, આ લેખમાં, જો મથુરાના કંકાલી ટીલાના સ્થાપત્યોમાં મળી આવે છે તેવો 'वैरिशाखा' શબ્દ મળી આવ્યો હોત, તો આ મૂર્તિ આર્ય વજ્રસ્વામીની શિષ્ય પરંપરામાંના કોઈ સમુદાયના સમયમાં બનાવવામાં આવી હશે એવું માનવાને કારણ રહેત, પરંતુ મારી માન્યતા પ્રમાણે આ મૂર્તિ આર્ય વજ્રસ્વામીની વિદ્યમાનતામાં અથવા તો તેમની પાસે પ્રત્યક્ષ વાચના લેનાર સાધુ સમુદાયની હયાતીમાં જ પ્રતિષ્ઠિત થઈ હોવી જોઇએ અને તે જ કારણને લઇને આ લેખમાં 'वैरिगण' એ શબ્દનો ખાસ પ્રયોગ થએલો હોવો જોઇએ.

મારી આ દલીલ જો બરાબર હોય (અને બરાબર નહીં હોવાનું કાંઈ કારણ મળતું નથી) તો આ મૂર્તિ ઇસિવી સનના પહેલા સૈકાની હોવી જોઇએ. કારણ કે આર્ય વજ્રસ્વામીનો સમય ઇસવી સનનો પહેલો સૈકો. છે (તેમનો જન્મ, વીર નિર્વાણ સંવત્ ૪૯૬ માં, અને દીક્ષા વીર નિર્વાણ સંવત્ ૫૦૪ માં થયાં હતાં. વીર નિર્વાણ સંવત્

૫૪૮ સુધી સામાન્ય સાધુપદ અને વીર નિર્વાણ સંવત્ ૫૮૪ વર્ષ સુધી યુગપ્રધાન પદવી ભોગવી, વીર નિર્વાણ સંવત્ ૫૮૪ માં તેઓ સ્વર્ગવાસ પામ્યા.)

શ્વેતાંબર સંપ્રદાયના તપગચ્છ આદિ ગચ્છોમાં આજે પણ સાધુઓને દીક્ષા વિગેરેની ક્રિયાઓ કરાવતી વખતે 'કોટિકગણ, ચંદ્રકુલ, વૈરિશાખા' વિગેરે શબ્દોનો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે.

લેખનો પાંચમો શબ્દ 'आर्य-संघ' અર્થાત્–સાધુઓનો સમુદાય. આ શબ્દ પણ મારી ઉપરની દલીલોને ટેકો આપે છે, અને આ મૂર્તિની સ્થાપના, સાધુઓના સમુદાયની હાજરીમાં થયાનો સ્પષ્ટ પુરાવો આપે છે.

છઠ્ઠો શબ્દ જે 'श्रावक' છે તે તો આજે પણ પ્રચલિત છે જ. જૈનધર્માનુયાયી ગૃહસ્થોને જ 'શ્રાવક' તરીકે સર્વત્ર ઓળખવામાં આવે છે, એ સુવિદિત છે.

લેખના ત્રીજા અને પાંચમા શબ્દની વચ્ચેના 'स......उर्प[रि]का' એવા અક્ષરોનો ઘણો પ્રયત્ન કરવા છતાં પણ મેળ મળતો નહીં હોવાથી, તે ખૂટતા અક્ષરો કોઈ વિદ્વાન પૂરા બંધબેસ્તા કરી આપશે એમ માનીને એમને એમ રહેવા દેવાનું યોગ્ય માન્યું છે.

આ પ્રમાણે એ લેખની પહેલી લીટીની વાચનાનો એકેએક શબ્દ જૈન પરિભાષાનો છે, તે ઉપરથી પણ આ મૂર્તિ, માન્યવર શાસ્ત્રીજી માને છે તેમ બૌદ્ધ મૂર્તિ નથી, પરંતુ જૈન મૂર્તિ જ હોવાનું સ્પષ્ટ સાબિત થાય છે.

શાસ્ત્રીજી, વળી આગળ ઉપર 'ધર્મચક્ર'નું ચિહ્ન તે મૂળ બૌદ્ધ પરંપરાનું ચિહ્ન છે એમ જણાવીને, ભગવાન બુદ્ધની વાણારસી પાસેની પહેલી દેશનાની નોંધ લે છે. પરંતુ વીર નિર્વાણ સંવત્ ૧૭૦ માં–એટલે ઈ૦ સ૦ પૂર્વે ૩૫૭ મા વર્ષમાં નિર્વાણ પામેલા આર્ય ભદ્રબાહુસ્વામી વિરચિત 'આવશ્યક નિર્યુક્તિ' નામના પ્રાચીન જૈન સૂત્રગ્રંથમાં, 'ધર્મચક્ર' તીર્થની સ્થાપના જૈનોના પ્રથમ તીર્થંકર (શ્રીઋષભદેવ)ના પુત્ર બાહુબલિના સમયમાં થઈ હતી, એવો ઉલ્લેખ મળી આવે છે. એ ઉલ્લેખ તરફ માન્યવર શાસ્ત્રીજીનું લક્ષ્ય ખેંચાયું હોય તેમ લાગતું નથી. એ ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે છેઃ–

"ततो भगवं विरहमाणो बहलीविसयं गतो, तत्थ बाहुबलीस्स रायहाणी तक्खसिला णामं, तं भगवं वेताले य पत्तो, बाहुबलीस्स वियाले णिवेदितं जहा सामी आगतो। कल्लं सब्बिड्ढिए वंदिस्सामि त्ति ण णिग्गतो, पभाते सामी विहरंतो गतो। बाहुबलीवि सब्बिड्ढिए णिग्गतो, जहा दसन्नविभासा, जाव सामीं ण पेच्छति, पच्छा अधितिं काऊण जत्थ भगवं वुत्थो तत्थ धम्मचक्कं चिन्धकारेति। तं सव्वरयणमयं जोयणपरिमंडलं, जोयणं च ऊसितो दंडो, एवं केई इच्छंति। अन्ने भणंति–केवलनाणे उप्पन्ने तहिं गतो, ताहे सलोगेणं धम्मचक्कविभूती अक्खाता, तेण कतंति।"

–अवश्यक सूत्र निर्युक्ति, पृष्ठ १८०–१८१

વળી, આગળ ઉપર, એ મૂર્તિની ચકચકિત આંખોની બાબતનો ઉલ્લેખ કરતાં તેઓ જણાવે છે કેઃ–

"The glazed eyes, on the contrary, seem to be an adaptation by Buddhists from the Jainas, for they are not common

in Buddhist sculpture or paintings, though they are occasionally met with there also. In sculpture I may mention the Buddhist figure on the Tarangā hill (plate VII).'

અર્થાત્–એથી ઉલટું, ચકચકિત ચક્ષુઓ, બૌદ્ધોએ જૈનો પાસેથી અપનાવેલી હોય એમ લાગે છે, કારણ કે બૌદ્ધમૂર્તિઓ કે ચિત્રોમાં તે પ્રચલિત નથી, જો કે તેમાં પણ કવચિત મળી આવે છે ખરી, આવી મૂર્તિના ઉદાહરણ માટે (ચિત્ર પ્લેટ ૭ વાળી) તારંગાની ટેકરી ઉપરની બૌદ્ધમૂર્તિ (તારાદેવી)નો હું ઉલ્લેખ કરૂં."

તારંગાની ટેકરી ઉપરની (તારાદેવીની) બૌદ્ધ મૂર્તિને ચકચકિત ચક્ષુઓ હોવાનો માન્યવર શાસ્ત્રીજી ઉલ્લેખ કરે છે, તે બરાબર છે; પરંતુ શાસ્ત્રીજીએ જાણવું જોઇએ કે ઇ૦ સ૦ ની બારમી સદીમાં ગૂર્જરેશ્વર કુમારપાલે જ્યારથી તારંગાની ટેકરી ઉપર જૈનોના બીજા તીર્થંકર શ્રી અજિતનાથ ભગવાનનું મંદિર બંધાવ્યું ત્યારથી તે આજ-સુધી તારંગાનો ડુંગર અને તેના ઉપરનાં દેવસ્થાનો જૈનોના કબજામાં છે અને તેથી જ પોતાની ચાલુ પ્રથા પ્રમાણે જૈનોએ આ મૂર્તિને પણ ચકચકિત ચક્ષુઓ લગાડી દીધેલાં છે. એટલે કે શાસ્ત્રીજી માને છે તેમ બૌદ્ધોએ જ એ મૂર્તિને, જૈનોના અનુકરણરૂપે આ ચકચકિત ચક્ષુઓ ચોડ્યાં છે એવું નથી. એટલે તે કારણને લીધે, આ ચિત્ર નંબર ૧ વાળી મૂર્તિ બૌદ્ધ મૂર્તિ હોવાનું જે શાસ્ત્રીજી માને છે તે યથાર્થ નથી; પણ ખરી રીતે તો આ મૂર્તિનાં ચકચકિત ચક્ષુઓ પણ આ મૂર્તિ જૈનની જ–અને તે પણ શ્વેતાંબર સંપ્રદાયની (ચક્ષુઓ હોવાને લીધે)જ–હોવાની એક મજબુત સાબિતી આપે છે.

ચિત્ર નંબર ૧ વાળી મૂર્તિના આસનની નીચે, મધ્યભાગમાં, જેવી રીતે 'ધર્મચક્ર'નું ચિહ્ન કોતરેલું દેખાય છે, તેવી જ રીતે મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થએલી કુશાન સમયની જિનમૂર્તિઓના આસનની નીચેના મધ્યભાગમાં પણ દેખાય છે. વાચકોની જાણ ખાતર કુશાન સમયની એવી બે જિનમૂર્તિઓ, ચિત્ર નંબર ૨ અને ૩ તરીકે, આ સાથે રજુ કરૂં છું.

ઉક્ત શાસ્ત્રીય ઉલ્લેખ તથા આ સ્થાપત્યના પુરાવાઓથી સાબિત થાય છે કે 'ધર્મચક્ર'ની માન્યતા શાસ્ત્રીજી કહે છે તેમ બૌદ્ધ ધર્મના અનુકરણ રૂપે જૈનોએ અપનાવેલી નથી, પરંતુ એક સ્વતંત્ર માન્યતા રૂપે, ઘણા જ પ્રાચીન સમયથી જૈનોમાં પણ એ ચાલી આવે છે અને આજે પણ પ્રચલિત છે. આપણે કોઇપણ પદ્માસનવાળી, પરિકર સહિ-તની જૈન મૂર્તિ જોશું તો તેમાં–પછી તે કુશાનકાલીન હો કે મધ્યકાલીન, મધ્યકાલીન હો કે અર્વાચીન, દરેકે દરેક જિનમૂર્તિના પદ્માસનની નીચેના–મધ્યભાગમાં ધર્મચક્રનું ચિહ્ન સ્પષ્ટ દેખાશે.

આ સાથે રજુ કરેલી ચિત્ર નંબર ૨ વાળી ઋષભદેવની મૂર્તિ, મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી ખોદકામ કરતાં ઇ૦ સ૦ ૧૮૮૯–૯૦ માં મળી આવી હતી. સ્વર્ગસ્થ વિન્સેન્ટ સ્મિથે પોતાના The Jain stupa and other antiquities of Mathura નામના પુસ્તકમાં ચિત્ર પ્લેટ ૯૫ તરીકે આ મૂર્તિ રજુ કરી છે, અને તેના જ ઉપરથી મેં પણ આ ચિત્ર અત્રે રજુ કરેલું છે. મિ૦ સ્મિથે એ પુસ્તકના પાના પર ઉપર આ મૂર્તિની ઓળખાણ નીચેના શબ્દોમાં આપેલી છે:–

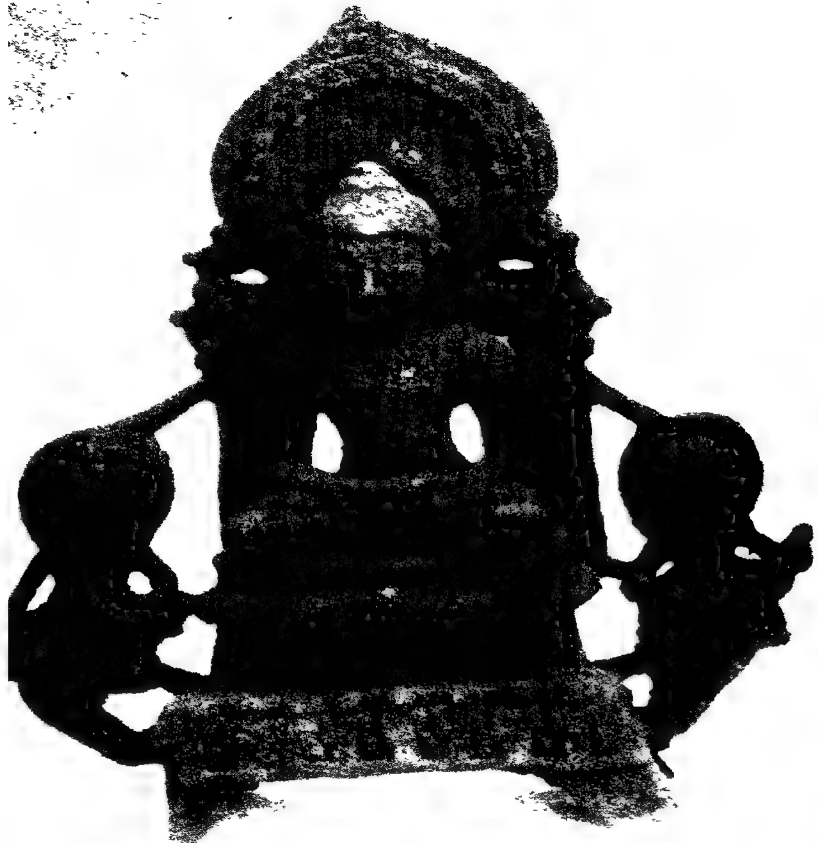
"Vardhamāna, surrounded by the previous 23 Tirthankaras. The saint is represented seated in the usual attitude of meditation (D h y ā namudrā), on a cushion. The lions in the pedestal show that Vardhamāna or Mahāvira is the person represented. His 23 predecessors in miniature are arranged as a border, seven at the top and eight at each side."

અર્થાત્–પૂર્વના ત્રેવીશ તીર્થંકરોથી વીંટાએલા શ્રીવર્દ્ધમાન એ સંત પુરુષને ગાદી ઉપર હમેશની ધ્યાનમુદ્રાની બેઠકે બેઠેલા દર્શાવ્યા છે. પબાસનમાંના સિંહો આ વર્દ્ધમાન ઉર્ફે મહાવીર છે એમ બતાવે છે. તેમની પહેલાંના ત્રેવીશ તીર્થંકરોની નાની નાની મૂર્તિઓ, જેમાંની સાત ઉપર અને આઠ આઠ બંને બાજુએ એમ કીનારની માફક ગોઠવેલી છે.

મિ૦ સ્મિથે પબાસનમાંના સિંહોની આકૃતિને, એ મૂર્તિના મુખ્ય લાંછન તરીકે માની લઇને એ મૂર્તિની મુખ્ય આકૃતિને મહાવીરની મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવવામાં ભૂલ કરેલી છે. કારણ કે શિલ્પીએ સિંહનો ઉપયોગ જો લાંછન તરીકે કરવાનો ઇરાદો રાખ્યો હોત તો તેણે તે મૂર્તિના પબાસનની નીચેના મધ્યભાગમાં અથવા તો ધર્મચક્રની ઉપરના મધ્યભાગમાં, એક જ સિંહની આકૃતિ કોતરીને રજુ કરી હોત.

પરંતુ મેં એક બીજા લેખમાં (જૈન સત્યપ્રકાશ માસિકના ચોથા વર્ષના અંક ૧–૨ માં) જણાવ્યું છે તેમ, ઇસવી સનના દશમા સૈકા પહેલાંની જૈન મૂર્તિઓમાં લાંછનો કોતરેલાં મળી આવતાં નથી, તેમ જ દશમા સૈકા પહેલાંના કોઇપણ જૈન ગ્રંથમાં પણ ચોવીશ તીર્થંકરોનાં એ જુદાં જુદાં લાંછનોનું વર્ણન કરેલું હોવાનું મારી જાણમાં નથી. તેથી મારૂં માનવું તો એમ છે કે દશમા સૈકા પછીના કોઈ પણ જૈન મહાપુરુષે, દરેક તીર્થંકરોને જુદાં જુદાં સ્વરૂપે ઓળખવા માટે, જુદાં જુદાં લાંછનોની કલ્પના કરી હોવી જોઇએ.

વાસ્તવિક રીતે એ મૂર્તિ વર્દ્ધમાનદેવની નહિ, પરંતુ પ્રથમ તીર્થંકર શ્રીઋષભદેવની છે અને તેને ફરતી બાકીની ત્રેવીશ તીર્થંકરોની મૂર્તિઓ કોતરીને શિલ્પીએ પ્રાચીન ચોવીશવટાનું સુંદર સર્જન કર્યું છે. એ મૂર્તિને હું ઋષભદેવની મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવું છું, તેનું કારણ મૂર્તિના બંને ખભા ઉપર, શિલ્પીએ રજુ કરેલી લટકતી વાળની લટો છે, જે એ મૂર્તિના ચિત્રમાં, તથા આ લેખ સાથે રજુ કરેલી, ચિત્ર નંબર ૬ વાળી મહુડીની મૂર્તિમાં, નંબર ૭ વાળી મથુરાની મૂર્તિમાં, તથા નંબર ૮ વાળી પિંડવાડા (મારવાડ)ની જિનમૂર્તિમાં સ્પષ્ટ દેખાય છે. જૈનોના ચોવીશ તીર્થંકરો પૈકી પ્રથમ તીર્થંકર શ્રીઋષભદેવ સિવાય બાકીના ત્રેવીશ તીર્થંકરોએ પંચમુષ્ટિ લોચ કરેલો છે, જ્યારે શ્રીઋષભદેવે ચારમુષ્ટિ લોચ કરી રહ્યાં પછી પાંચમી મુષ્ટિથી લોચ કરતી વખતે સૌધર્મેન્દ્રની વિનંતીથી, વાળની એ લટો લોચ કર્યા વગરની જ રહેવા દીધી હતી, જે સંબંધી સ્પષ્ટ વર્ણન, આવશ્યકનિર્યુક્તિ જેવા પ્રાચીન સૂત્રગ્રંથમાં તથા કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમચંદ્રસૂરિએ રચેલા 'ત્રિષષ્ટિશલાકા પુરુષચરિત્ર' જેવા ચરિત્રગ્રંથોમાં કરેલું મળી આવે છે. જેમકે–



चित्र ४ श्रीपार्श्वनाथ : महुडी



चित्र ५ श्रीपार्श्वनाथ · महुडी



चित्र ६ श्रीआदिनाथ · महुडी



चित्र ७ श्रीआदिनाथ · मथुरा
(ब्लॉक साराभाई नवाबना सौजन्यथी)

"तेसिं पंचमुट्ठिओ लोओ सयमेव। भगवओ पुण सक्कवयणेण कणगावदाए सरीरे जडाओ अंजणरेहाओ इव रेहंतीओ उवलभइऊण ठिआओ तेण चउमुट्ठिओ लोओ।" –आ० नि० पृ. १६१

—તેમનો (તીર્થંકરોનો) સ્વયમેવ પાંચ મુષ્ટિનો લોચ હતો. પણ ભગવાન ઋષભદેવનો ઇન્દ્રના વચનથી, તેમના કનક જેવા ઉજ્જ્વળ શરીર ઉપર, અંજનની રેખા જેવી જટાઓ શોભતી ઉખાડ્યા વગરની રહી. તેથી તેમનો ચાર મુષ્ટિનો લોચ છે."

"प्रतीच्छति स्म सौधर्माधिपतिः कुन्तलान् प्रभोः।
वस्त्राञ्चले वर्णान्तरतन्तुमण्डनकारिणः ॥ ६८ ॥
मुष्टिना पञ्चमेनाऽथ शेषान् केशान् जगत्पतिः।
समुच्चिखनिषन्नेवं ययाचे नमुचिद्विषा ॥ ६९ ॥
नाथ! त्वदंसयोः स्वर्णरुचोर्मरकतोपमा।
वातानीता विभात्येषा तदास्तां केशवल्लरी ॥ ७० ॥
तथैव धारयामास तामीशः केशवल्लरीम्।
याञ्चामेकान्तभक्तानां स्वामिनः खण्डयन्ति न ॥ ७१ ॥

–त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, सर्ग ३, पृष्ठ ७०.

અર્થાત્–પ્રભુના કેશોને સૌધર્માધિપતિએ પોતાના વસ્ત્રના છેડામાં ગ્રહણ કર્યા, તેથી જાણે એ વસ્ત્રને જુદા વર્ણના તંતુ વડે મંડિત કરતા હોય એમ જણાતું હતું. પ્રભુએ પાંચમી મુષ્ટિથી બાકીના કેશનો લોચ કરવા ઇચ્છા કરી ત્યારે ઇન્દ્રે કહ્યું કે–'હે સ્વામિન્! હવે તેટલી કેશાવલી રહેવા દ્યો; કેમકે જ્યારે પવનથી ઊડીને તે તમારી સુવર્ણ જેવી કાંતિવાળા ખભાના ભાગ ઉપર આવે છે ત્યારે મરકતમણિના જેવી શોભે છે.' પ્રભુએ યાચના સ્વીકારીને તેટલી કેશવલ્લીને તેવી રીતે જ રહેવા દીધી. કેમકે સ્વામીઓ પોતાના એકાંત ભક્તોની યાચનાનું ખંડન કરતા નથી."

પ્રસ્તુત ઉલ્લેખો સિવાય 'કલ્પસૂત્ર' મૂળ, 'ધનપાલ પંચાશિકા' વગેરે બીજા પણ જૈન ગ્રંથોમાં જ્યાં જ્યાં ઋષભદેવની દીક્ષાના પ્રસંગનું વર્ણન આવે છે, ત્યાં ત્યાં બધે તેમણે ચારમુષ્ટિ લોચ કર્યા હોવાનો જ ઉલ્લેખ મળી આવે છે.

ચિત્ર નંબર ૩ વાળી શ્રી પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ, મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી ઇ૦ સ૦ ૧૮૯૦ ના ફેબ્રુઆરી માસમાં ખોદકામ કરતાં મળી આવી હતી. સ્વર્ગસ્થ મિ૦ સ્મિથે આ મૂર્તિને ઉક્ત પુસ્તકમાં ચિત્ર પ્લેટ નંબર ૯૮ તરીકે રજુ કરી છે, અને તેના જ ઉપરથી બ્લૉક કરાવીને મેં આ ચિત્ર અત્રે રજુ કર્યું છે. આ ચિત્રની ઓળખાણ એ પુસ્તકના પાન ૫૫ ઉપર નીચેના શબ્દોમાં આપી છેઃ–

Image of Rishabhanāth or Adināth, the first Tīrthankara.

"The elaborate sculpture, found in the Kankālī mound in February 1890, is unfortunately much mutilated. The head of the principal figure has been lost, and of the inscription on the pedestal nothing remains but faint traces. The chara-

cters seem to be of early form. The attendant figures, male and female, are unusually numerous, and seem to include deities of the Hindu pantheon. The supporters of the pedestal (simhāsan) are lions, as in plates XCI and XCIII. But in the sculptures figured in those plates the lions are alone, and thus indicate that the Jina represented is Vardhamāna. In this case the presence of two diminutive bulls between the lions indicates that the personage honoured is Rishabhanāth, "the Bull-lord."

ભાવાર્થઃ–પ્રથમ તીર્થંકર, શ્રી ઋષભદેવ ઉર્ફે આદિનાથની મૂર્તિ.

ઇ૦ સ૦ ૧૮૯૦ ના ફેબ્રુઆરી મહિનામાં કંકાલી ટીલામાંથી મળી આવેલું આ શ્રમસાધિત શિલ્પ કમનશીબે ઘણું ખંડિત છે. મુખ્ય આકૃતિના મસ્તકનો ભાગ ખોવાઈ ગયો છે, અને પબાસન પરના લેખમાંથી પણ માત્ર ઝાંખી નિશાનીઓ શિવાય કાંઈ બાકી રહ્યું નથી. અક્ષરો પુરાતનકાલના હોય એમ લાગે છે. પરિચારક સ્ત્રી અને પુરુષની આકૃતિઓ અસાધારણ સંખ્યાવાળી છે, જેમાં હિંદુધર્મની પણ સમસ્ત દેવ કોટિનો સમાવેશ થાય છે. ચિત્ર નંબર ૯૧ અને ૯૩ની માફક પબાસન (સિંહાસન)ને ધરી રહેલી આકૃતિઓ સિંહોની છે. પણ ઉપરનાં નંબરવાળાં શિલ્પોમાં સિંહો એકલા જ છે અને તે જિન વર્દ્ધમાન (મહાવીર) હોવાની સાબિતી આપે છે; જ્યારે આ શિલ્પમાંના સિંહોની વચ્ચે રજુ થએલા નાના આકારના બળદો, આ મુખ્ય મૂર્તિ ઋષભનાથ એટલે કે વૃષભદેવની હોય એમ દર્શાવે છે."

વાસ્તવિક રીતે આ મૂર્તિ ઋષભદેવની નથી, પરંતુ પાર્શ્વનાથની હોય એમ લાગે છે. હું ઉપર ચિત્ર નંબર ૨ ના વર્ણનમાં જણાવી ગયો છું તેમ મિ૦ સ્મિથે અહીં પણ આ મૂર્તિને ઓળખવા માટે જે લાંછનનું કારણ દર્શાવ્યું છે તે બરાબર નથી; કારણ કે શિલ્પીની ઇચ્છા, મિ૦ સ્મિથ જેને બળદ તરીકે ઓળખાવે છે તે આકૃતિને, લાંછન તરીકે રજુઆત કરવાની હોત તો તેવી એક જ આકૃતિની રજુઆત તેણે કરી હોત. પરંતુ વાસ્તવિક રીતે શિલ્પીએ જે બે આકૃતિઓની રજુઆત કરી છે, તે પૈકી ધર્મચક્રની જમણી તરફની (યક્ષ બાજુની) આકૃતિ, ભૂલથી શિલ્પીએ હરણના બદલે બળદની રજુ કરી છે અને ડાબી તરફની (યક્ષીની બાજુની) આકૃતિ હરણની રજુ કરી છે; કારણ કે પ્રાચીન કે અર્વાચીન દરેક જૈન શિલ્પમાં ધર્મચક્રની બંને બાજુએ એકેક હરણની આકૃતિ કોતરેલી હોય છે.

આ શ્રમસાધિત શિલ્પની વાસ્તવિક ઓળખાણ આ પ્રમાણે છેઃ મધ્યમાં પબાસનની બેઠકે ધ્યાનમુદ્રાએ બેઠેલી મૂર્તિ પાર્શ્વનાથ (જૈનોના ત્રેવીશમા તીર્થંકર)ની છે. તેનો મસ્તકનો ભાગ ખોવાઈ ગએલો છે, એટલે નાગની ફણા વગેરેનું ચિહ્ન દેખાતું નથી; પરંતુ તેની જમણી બાજુએ ઊભેલી પુરુષાકૃતિના મસ્તક ઉપરની નાગફણાઓ સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે બતાવી આપે છે કે, તે પુરુષાકૃતિ પાર્શ્વનાથના પરમ ઉપાસક નાગરાજ (ધરણેન્દ્ર)ની છે. ધરણેન્દ્રની બાજુમાં, જમણો હાથ પોતાના જમણા પગ ઉપર ટેક-

વીને તથા ડાબો હાથ—જેમાં મૃણાલદંડ પકડી રાખવામાં આવ્યો છે તે—ઉંચો રાખીને ઊભી રહેલી એક સ્ત્રીની આકૃતિ છે. એની છાતીનો ભાગ ખંડિત થઈ ગએલો હોવાથી સ્તનની આકૃતિ સ્પષ્ટ દેખાતી નથી. આ સ્ત્રી તે નાગરાજ (ધરણેન્દ્ર)ની પત્ની હોવી જોઇએ. ડાબી બાજુએ ઊભેલી પુરુષાકૃતિના જમણા હાથમાં વીણા તથા ડાબા હાથમાં શંખની આકૃતિ સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે સૂચિત કરે છે કે આ આકૃતિ પાર્શ્વનાથની પાસે ભક્તિથી નૃત્ય કરતા કોઈ કિન્નરદેવની છે. કિન્નરદેવની બાજુમાં, પોતાનો ડાબો હાથ ડાબા પગ ઉપર ટેકવીને અને ઉંચા રાખેલા જમણા હાથમાં ફૂલ પકડીને ઊભી રહેલી એક સ્ત્રી છે. આ આકૃતિ અખંડિત હોવાથી તેની સ્તનની આકૃતિઓ સ્પષ્ટ દેખાય છે. આ સ્ત્રી તે કિન્નરદેવની સ્ત્રી હોવી જોઇએ. કિન્નરદેવના મસ્તકના ઉપરના ભાગમાં પદ્માસનની બેઠકે ધ્યાનમુદ્રામાં બેઠેલી પાર્શ્વનાથની નાની મૂર્તિ સ્પષ્ટ દેખાય છે. આ નાની મૂર્તિના મસ્તક ઉપરની ફણા સ્પષ્ટ દેખાય છે. તે પણ એ શિલ્પમાંની મુખ્ય મૂર્તિ પાર્શ્વનાથની જ હોવાની એક વધુ સાબિતી આપે છે. વળી પાર્શ્વનાથની નાની મૂર્તિની બાજુમાં, બે હાથની અંજલિ જોડીને સ્તુતિ કરતી એક ભક્ત સ્ત્રી બેઠેલી છે, પણ કમનશીબે આ સ્ત્રીના મસ્તકનો ભાગ પણ ખંડિત થએલો છે. નાગરાજની બરાબર નીચે અને પબાસનની જમણી બાજુના ભાગમાં, ડાબા હાથમાં પોથીનું પાનું પકડીને બેઠેલી પાર્શ્વયક્ષની આકૃતિ છે. યક્ષનો જમણો હાથ નાશ પામેલો હોવાથી કાંઈ આયુધ વગેરે દેખાતું નથી. યક્ષના મસ્તકના ઉપરના તથા બંને બાજુના ભાગમાં ઝાડની આકૃતિ દેખાય છે, જે સાબિત કરે છે કે આ યક્ષ તે ન્યગ્રોધમૂલવાસી પાર્શ્વયક્ષ છે.* યક્ષની ડાબી બાજુએ એક સ્ત્રી ઊભેલી છે અને યક્ષની નીચે પણ એક પુરુષ અને એક સ્ત્રી બેઠેલાં છે. તે પૈકી સ્ત્રીના મુખનો ભાગ ખંડિત થએલો છે. કિન્નરદેવની બરાબર નીચે અને પબાસનની ડાબી બાજુના ભાગમાં પોતાના જમણા હાથમાં આમ્રલુંબી (પલ્લવ) અને ડાબા હાથમાં બાળક રાખીને બેઠેલી દેવી અંબિકા છે. અંબિકાની બરાબર નીચેના ભાગમાં તેનું વાહન સિંહ સ્પષ્ટ દેખાય છે. યક્ષની મૂર્તિની માફક અંબિકા યક્ષીની નીચેના ભાગમાં બે આકૃતિઓ સ્તુતિ કરતી કોતરેલી છે, જે પૈકી એક આકૃતિનું એકલું મસ્તક અને બીજી આકૃતિનું અડધું શરીર માત્ર દેખાય છે. મુખ્ય તીર્થંકરની નીચેના પબાસનના બંને છેડે એકેક સિંહની આકૃતિ છે, અને બરાબર મધ્યમાં ચિત્ર નંબર ૧ અને ૨ ની માફક ધર્મચક્ર કાઢેલું છે, જેની બંને બાજુએ અંદર પડતા એકેક ભક્તપુરુષ અંજલિ જોડીને ધર્મચક્રની સ્તુતિ કરતા દેખાય છે. મુખ્ય તીર્થંકરની બંને બાજુએ, એકેક ચામર ધરનાર વ્યક્તિ ઊભેલી છે.

આ સાથે રજુ કરેલી ચિત્ર નંબર ૪ વાળી જિનમૂર્તિને માન્યવર શાસ્ત્રીજીએ પ્રસ્તુત અહેવાલમાં ચિત્ર પ્લેટ ૫ અ તરીકે રજુ કરેલી છે, અને તેની ઓળખાણ અહેવાલના પાના ૭ ના પેરેગ્રાફ ૯૪માં આપતાં જણાવ્યું છે કે—

---

* दशलक्षजाप्यहोमात् प्रत्यक्षो भवति पार्श्वयक्षोऽसौ ।
न्यग्रोधमूलवासी श्यामाङ्गस्त्रिनयनो नूनम् ॥ ३८ ॥
—श्रीभैरवपद्मावतीकल्प, ३ अधिकार.

વડના ઝાડના મૂળમાં રહેનાર, શ્યામવર્ણ અને ત્રણ નેત્રવાળો એવો પાર્શ્વનામનો યક્ષ દશ લાખ જાપ અને (એક લાખ) હોમ કરવાથી નિશ્ચયે કરીને પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ થાય છે.

"One of the smaller images (plate Va) has on the right a Yaksha who is certainly Jambhala or Kubera, and on the left, his consort the Yakshī Hāriti bearing a child on her left arm. ....The symbols of the Yaksha, namely, Jambhala, are not distinct but should be the जंमीर and the pearl-emitting mongoose which characterises him. Hāriti's child is too clear to be doubted."

"(ચિત્ર પ્લેટ ૫ અ વાળી) નાની મૂર્તિઓમાંની એક મૂર્તિની જમણી બાજુ યક્ષ છે, જે ચોક્કસ જંભલ અથવા કુબેર છે, અને ડાબી બાજુએ પોતાના ડાબા હાથ ઉપર બાળક તેડી ઊભેલી તેની પત્ની હારિતી યક્ષિણી છે.........જંભલ નામના યક્ષનાં ચિહ્નો સ્પષ્ટ નથી, પણ તે જંભીર (એક જાતનું ફલ) અને નોળીઓ હોવાં જોઇએ, કે જે તેનાં લક્ષણો છે. હારિતીનું બાળક તો લેશ માત્ર શંકા ન આવે એવું સ્પષ્ટ છે."

માન્યવર શાસ્ત્રીજીએ, પોતે બાંધી લીધેલા પૂર્વગ્રહાનુસાર, એ મૂર્તિને બૌદ્ધમૂર્તિ તરીકે ઓળખાવી છે અને તેથી જ તેની જમણી બાજુની યક્ષની આકૃતિને જંભલ ઉર્ફે કુબેર તરીકે, અને ડાબી બાજુની યક્ષિણીની આકૃતિને હારિતીની આકૃતિ તરીકે ઓળખાવી છે.

આ મૂર્તિની વાસ્તવિક ઓળખાણ આ પ્રમાણે છે: મધ્યમાં પદ્માસનની બેઠકે ધ્યાનાવસ્થામાં બેઠેલી મુખ્ય મૂર્તિ બુદ્ધ ભગવાનની નથી, પરંતુ જૈનોના ત્રેવીશમા તીર્થંકર પાર્શ્વનાથની છે અને તેની જમણી બાજુની યક્ષની આકૃતિ તે તેમના યક્ષ પાર્શ્વયક્ષની છે, અને ડાબી બાજુની યક્ષિણીની આકૃતિ છે તે અંબિકાદેવીની છે, જેના ડાબા હાથમાં બાળક પકડેલું સ્પષ્ટ દેખાય છે. (સરખાવો ચિત્ર નંબર ૩ ની યક્ષ તથા યક્ષિણીની આકૃતિઓ.)

ચિત્ર નંબર ૧ ની માફક આ મૂર્તિના પણ શરીરના કોઈપણ ભાગ ઉપર, ઉપવીત (જનોઈ)નું અથવા વસ્ત્રનું જરાએ પણ નિશાન દેખાતું નથી; અને આ મૂર્તિની ધાતુ હલકી હોવાને લીધે અથવા તો ગમે તે કારણને લીધે, ઘણો ખરો ભાગ ખવાઈ ગએલો હોય એમ લાગે છે, છતાં પણ છાતી (સ્તન)ની ડીંટડીઓ સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે સાબિતી આપે છે કે આ મૂર્તિ પણ જૈન તીર્થંકરની છે.

ચિત્ર નંબર ૫ વાળી મૂર્તિને પણ બૌદ્ધ મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવતાં માન્યવર શાસ્ત્રીજી રિપોર્ટના પાના ૮ ઉપરના પેરા નંબર ૧૫ માં જણાવે છે કે –

"The third image (pl. V b) shows a Nāga and a Nāgi under the Yaksha and the Yakshī figures respectively. The Yaksha is squatting above the Nāga, and the Yakshī is squatting on the Nāgī. The बीजपूरक in the right hand of the image is clear enough in this case and supports the proposed identification of the subject with Jambhala or Kubera, the Buddhist deity of wealth.

ચિત્ર પ્લેટ (૫ બ વાળી) ત્રીજી મૂર્તિમાં યક્ષની નીચે નાગ અને યક્ષીની નીચે નાગિણી, અનુક્રમે બતાવવામાં આવ્યાં છે. યક્ષ નાગના ઉપલા ભાગમાં બેઠેલો છે, અને યક્ષી નાગિણીના ઉપલા ભાગમાં બેઠેલી છે. યક્ષના જમણા હાથમાંનું બીજોરૂં આ ઉદાહરણમાં તો સ્પષ્ટ છે અને તે બૌદ્ધ ધર્મના ધનના દેવતા જંભલ ઉર્ફે કુબેર હોવાની મારી સંભાવનાની સચ્ચાઈની સાબિતી આપે છે."

આ પ્રમાણે, આ મૂર્તિની ઓળખાણ આપીને માન્યવર શાસ્ત્રીજી, ભાવદેવસૂરિ વિરચિત શ્રી પાર્શ્વનાથ ચરિત્રમાંથી, સૂત્રધાર મંડનના દેવતામૂર્તિ પ્રકરણમાંથી, તથા ઠક્કર ફેરૂ વિરચિત વાસ્તુસાર પ્રકરણ નામના વિક્રમની તેરમી તથા ચઉદમી સદીના ગ્રંથોમાંથી, પાર્શ્વનાથના યક્ષ અને યક્ષીનાં સ્વરૂપોનાં વર્ણન આપીને આ મૂર્તિ જૈન નહિ હોવાનું પ્રતિપાદન કરે છે.

પ્રસ્તુત ઉલ્લેખોમાં તેમણે જે ઉલ્લેખો રજુ કર્યા છે, તે બધા ઉલ્લેખો પદ્માવતીદેવીને પાર્શ્વનાથની યક્ષી તરીકે માનીને કર્યા છે, અને તે બધા ઉલ્લેખો અગિયારમી સદી પછીના ગ્રંથોના છે; પરંતુ અગિયારમી સદી પહેલાંની અને કેટલાક દાખલાઓમાં તો બારમી અને તેરમી સદીની પણ પાષાણની અને ધાતુની એવી જૈન મૂર્તિઓ મળી આવે છે – જેમાં જમણી બાજુએ બે હાથવાળા યક્ષની અને ડાબી બાજુએ બે હાથવાળી અંબિકા યક્ષીની મૂર્તિ આપેલી હોય છે.

માન્યવર શાસ્ત્રીજી આ મૂર્તિને બૌદ્ધ મૂર્તિ સાબિત કરવા માટે સાધનમાલામાંથી (જંભલ-સાધનનો) ઉલ્લેખ કરે છે: – **सुवर्णवर्णं लम्बोदरं...वामदक्षिणहस्ताभ्यां नकुलीबीजपूरकधरं**........[કુબેર] સુવર્ણવર્ણ, લાંબુ પેટ...તથા ડાબા હાથમાં નોળીઓ અને જમણા હાથમાં બીજોરાવાળો [હોય] છે."

તેઓશ્રીએ જે સ્વરૂપ પોતાના મતના સમર્થનમાં દર્શાવ્યું છે, તેની સાથે આ યક્ષની મૂર્તિ મળતી આવતી નથી. કારણ કે ચિત્ર નંબર ૫ વાળી જમણી બાજુની યક્ષની મૂર્તિના ડાબા હાથની આકૃતિ એટલી બધી સ્પષ્ટ છે કે જોતાંની સાથે જ જણાઈ આવે છે કે તેના હાથમાં પોથીનું પાનું છે અને નોળીઆનું તો નિશાન સુદ્ધાં પણ નથી. આને જ મળતી યક્ષની આકૃતિનું વર્ણન જે ઉપર ચિત્ર નંબર ૩ ના વર્ણનમાં આપવામાં આવ્યું છે તે ખ્યાલમાં લેવાથી સાબિત થશે કે આ મૂર્તિ શાસ્ત્રીજીની સંભાવનાને સમર્થિત કરતી નથી, પરંતુ આ મૂર્તિ જૈન હોવાની વધુ સાબિતી આપે છે.

પાર્શ્વનાથની ડાબી બાજુ અંબિકાદેવીની મૂર્તિ તથા જમણી બાજુ બે હાથવાળા યક્ષની મૂર્તિ સાથેની પાષાણની મૂર્તિઓ પૈકી, સૌથી પ્રાચીન મૂર્તિ કાઠિયાવાડમાં આવેલા ઢાંક પર્વતપરની ગુફાઓના ખડકની ભીંતમાં કોતરેલી છે, જે મેં આ લેખ સાથે ચિત્ર નંબર ૧૧ તરીકે રજુ કરી છે. એ મૂર્તિ ત્રીજા સૈકાની છે. મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થએલી કુશાન સમયની મૂર્તિ મેં ચિત્ર નંબર ૩ તરીકે ઉપર રજુ કરેલી જ છે અને લગભગ બારમી સદીની સફેદ આરસની બે મૂર્તિઓ તલાજા(કાઠિયાવાડ)ના સુમતિનાથ પ્રભુના જૈન મંદિરના ગભારામાં બંને બાજુએ ઊભેલી છે. જે પૈકી એક મૂર્તિ મારા તરફથી પ્રસિદ્ધ થનાર "ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પ સ્થાપત્ય" નામના પુસ્તકમાં પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવનાર છે.

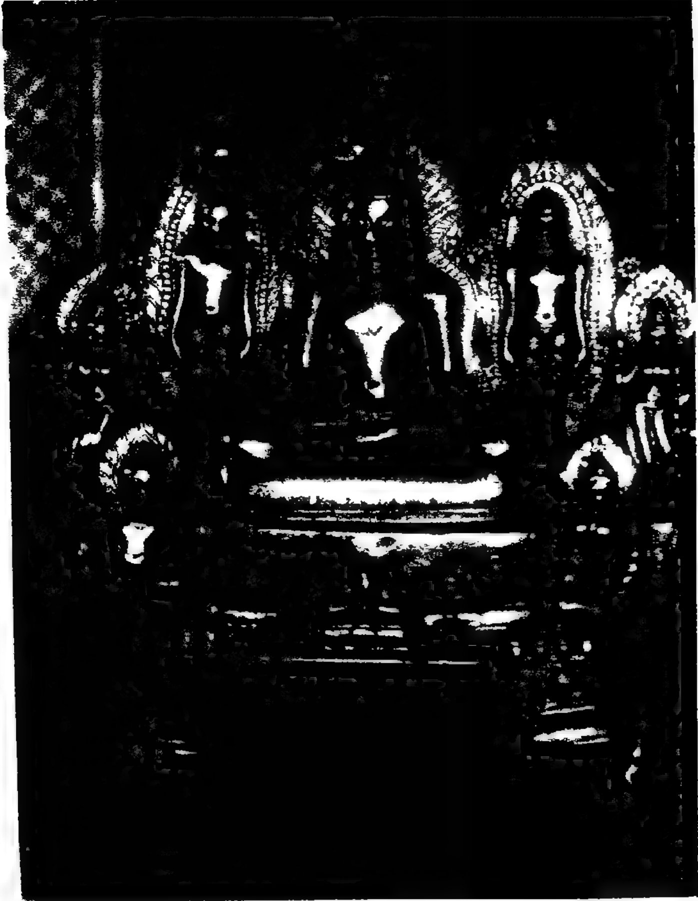
૧.૨.૧૧.

આવી જાતની બીજી ધાતુની મૂર્તિઓ પૈકીની, લગભગ આઠમા સૈકા જેટલી જૂની એક મૂર્તિ, શિરોહી રાજ્યના તાબાના પિંડવાડા નામના ગામના મહાવીરસ્વામીના મંદિરમાં આવેલી છે. એ મૂર્તિનો એક બ્લૉક પ્રિન્ટ, મેં આ ત્રૈમાસિકના વિદ્વાન સંપાદક મહાશય પાસે જોયો હતો. તેઓશ્રી પાસે હાલમાં આ બ્લૉકનો પત્તો નહીં લાગવાથી અત્રે હું રજુ કરી શક્યો નથી, પરંતુ માન્યવર રવિશંકર રાવળ પાસેથી તેના ફોટોગ્રાફની એક નકલ મને બ્લૉક કરાવી લેવા માટે મળી છે, જે મારા તરફથી તાજેતરમાં પ્રસિદ્ધ થનાર ગ્રંથમાં પ્રસિદ્ધ થશે. બીજી મૂર્તિનો એક ફોટોગ્રાફ મારા મિત્ર તરફથી મને મળ્યો હતો અને તેમના કહેવા પ્રમાણે તે મૂર્તિ કાઠિયાવાડના વાંકાનેર શહેરમાંના કોઈ જૈનમંદિરમાં છે. આ સાથે મેં તે મૂર્તિ ચિત્ર નંબર ૯ તરીકે રજુ કરેલી છે. મૂર્તિનું શિલ્પ જોતાં તે આઠમા અથવા નવમા સૈકાની હોય તેમ લાગે છે. ત્રીજી મૂર્તિ લગભગ દશમા સૈકાની મારા પોતાના સંગ્રહમાં છે, જે મને વડોદરાના એક મુસલમાન વ્યાપારી પાસેથી મળી હતી. આ મૂર્તિની પાછળ એક નાનો લેખ છે, જેનું વર્ણન ચિત્ર નંબર ૧૦ ના વર્ણન તરીકે આ મૂર્તિના ચિત્ર સાથે, આ લેખમાં મેં રજુ કર્યું છે. ચોથી મૂર્તિ મુંબાઈમાં પાયધુનીપર આવેલા ગોડીજીના દેરાસરમાં છે, જે વિક્રમ સંવત ૧૦૬૩ ની છે. આ મૂર્તિનો ફોટોગ્રાફ મોડો મળવાથી આ લેખ સાથે રજુ કરી શકાયો નથી, પરંતુ મારા છપાતા ગ્રંથમાં પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવશે. પાંચમી મૂર્તિ વિ૦ સં૦ ૧૦૭૭ ની સ્વર્ગસ્થ જૈન વિદ્વાન પૂર્ણચંદ્ર નાહરના સંગ્રહમાં છે, જેનું ચિત્ર "જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ" એ નામના પુસ્તકના પહેલા જ પૃષ્ઠની સામે ચિત્ર નંબર ૩ તરીકે છપાયું છે. પણ ત્યાં (ચિત્ર નંબર ૩ વાળી મૂર્તિની માફક) એ પુસ્તકના વિદ્વાન્ સંપાદક શ્રીયુત મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઇએ, એ મૂર્તિ પાર્શ્વનાથની હોવા છતાં એને આદિનાથની મૂર્તિ તરીકે ઓળખાવી છે. આ મૂર્તિનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ પણ મારા ગ્રંથમાં પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવનાર છે. આ સિવાય બીજી પણ આવા જ પ્રકારની ધાતુની જિનમૂર્તિઓ તપાસ કરતાં મળી આવવાનો સંભવ છે.

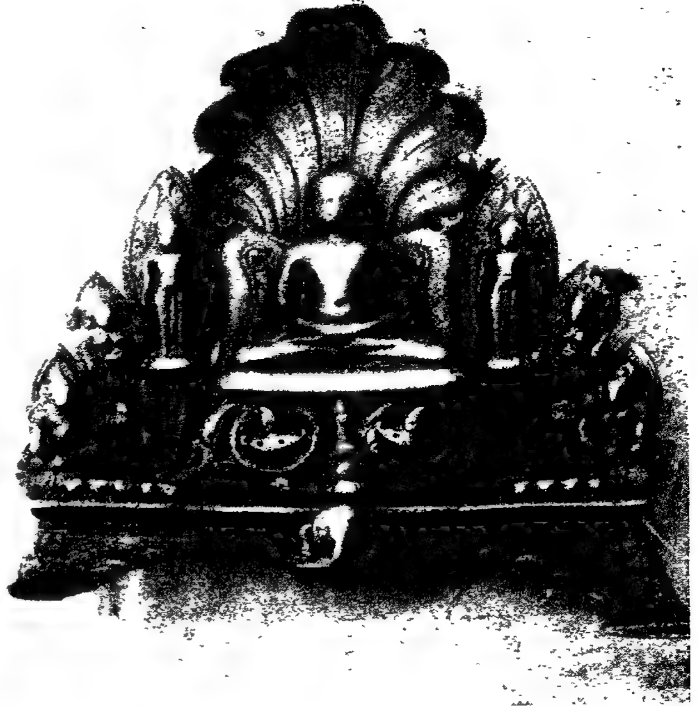
ચિત્ર નંબર ૬ વાળી શ્રી ઋષભદેવ (પ્રથમ તીર્થંકર)ની મૂર્તિને, માન્યવર શાસ્ત્રીજીએ પોતાના અહેવાલમાં ચિત્ર પ્લેટ ૬અ તરીકે છપાવેલી છે, અને તેના ઉપરથી જ બ્લૉક કરાવીને મેં આ સાથે રજુ કરેલી છે. આ મૂર્તિની ઓળખાણ આપતાં અહેવાલના પાના ૧૦, પેરેગ્રાફ ૧૭ માં શાસ્ત્રીજી જણાવે છે કે–

"There is yet another image (pl. VI a) in the lot which, though broken, yet certainly represents the Buddha. Kubera or Jambhala is quite clear here, so is the Ushṇisha mark. long-lobed ears, such as are seem in Buddha figured are quite distinct. The Buddha had these Lakhsaṇa of a Mahā-purusha.

–એક બીજી પણ મૂર્તિ (સંગ્રહમાંની પ્લેટ ૬ અ વાળી) છે, જે ભાંગેલી છે, છતાં ચોક્કસપણે બુદ્ધની જ લાગે છે. કુબેર ઊર્ફે જંભલ તથા ઉષ્ણીષ (શિખા)નું ચિન્હ અહીંયાં એકદમ સ્પષ્ટ છે. બુદ્ધમૂર્તિઓમાં દેખાતા લાંબી બૂટવાળા કાન એકદમ સ્પષ્ટ છે. બુદ્ધને આ પ્રકારનાં મહાપુરૂષનાં લક્ષણો હતાં."



चित्र ९, श्रीपार्श्वनाथ - वांकानेर



चित्र १० श्रीपार्श्वनाथ. साराभाई नवाबनो संग्रह
(ब्लोक साराभाई नवाबना सौजन्यथी)



चित्र ८ श्रीआदिनाथ · पिंडवाडा (मारवाड)

(ब्लोक साराभाई नवाबना सौजन्यथी)

માન્યવર શાસ્ત્રીજી કહે છે તેમ, આ મૂર્તિને લાંબી બૂટવાળા કાન છે અને બારીકીથી જોતાં તે સાથે બંને બાજુના ખભા ઉપર વાળની બબ્બે લટો પણ લટકતી સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે સાબિત કરે છે કે આ મૂર્તિ ઋષભદેવ (જૈનોના પ્રથમ તીર્થંકર)ની છે. કારણ કે પાષાણની અને ધાતુની અગિયારમી સદી પહેલાંની જૈનમૂર્તિઓમાંની કેટલીક મૂર્તિઓમાં વાળની લટો સ્પષ્ટ દેખાડવામાં આવેલી હોય છે.

વાળની લટોવાળી, કુશાન સમયની—લગભગ ઇસવી સનના પાંચમા સૈકાની—મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થએલી એક મૂર્તિ, ચિત્ર નંબર ૨ તરીકે હું રજુ કરી ગયો છું. બીજી ચિત્ર નંબર ૭ તરીકે રજુ કરી છે. આચાર્ય શ્રી વિજયનીતિસૂરિના જણાવવા પ્રમાણે ત્રીજી મૂર્તિ મેવાડ પ્રાંતના શાહપુરા રાજ્યના પારોલી ગામના જૈન-મંદિરમાં છે. ચોથી મૂર્તિ પાટણમાં આવેલા પંચાસરા પાર્શ્વનાથના જૈન મંદિરમાં છે.

આવી જ જાતની ધાતુની મૂર્તિઓ ઊભી અને બેઠેલી બંને પ્રકારની મળી આવે છે. ઊભી મૂર્તિઓ પૈકીની ઇસવી સનના સાતમા સૈકાની લેખવાળી એક મૂર્તિ પિંડવાડાના મહાવીરસ્વામીના મંદિરમાં છે, જે ચિત્ર નંબર આઠ તરીકે આ સાથે રજુ કરી છે; અને લગભગ આઠમા જ સૈકાની બીજી બે ઊભી મૂર્તિઓ અમદાવાદની દોસીવાડાની પોળમાં આવેલા શ્રી સીમંધરસ્વામીના દેરાસરમાં છે, જે હવે પછી મારા તરફથી પ્રસિદ્ધ થનાર ગ્રંથમાં પ્રકટ કરવામાં આવશે. બેઠેલી મૂર્તિઓ પૈકીની એક મૂર્તિ, બીકાનેર (રાજપુતાના)ના શ્રીચિંતામણિ પાર્શ્વનાથના મંદિરમાં છે, જેનો ફોટોગ્રાફ, મેં ખરતરગચ્છાચાર્ય શ્રીજિનહરિસાગરસૂરિજી પાસે છ મહિના પહેલાં લોહાવટ (મારવાડ)માં જોયો હતો. બીજી એક મૂર્તિ સાદડી (મારવાડ)ના જૈન દેરાસરની ફરતી ભમતીમાં છે, જે મેં દોઢ વર્ષ ઉપર જોઈ હતી; અને ત્રીજી મૂર્તિ મુંબઈના ગોડીજીના દેરાસરમાં છે, જેના ઉપર વિક્રમ સંવત ૧૦૯૦ની સાલનો લેખ પણ છે. (આ મૂર્તિનું ચિત્રપણ પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવનાર છે.) આ સિવાય બીજી પણ આવી ધાતુની મૂર્તિઓ તપાસ કરતાં મળી આવવા સંભવ છે. આ બધાં પ્રમાણો સાબિતી આપે છે કે ચિત્ર નંબર ૬ વાળી મૂર્તિ પણ જૈન મૂર્તિ જ છે. લાંબી બૂટવાળા કાન અને ઉષ્ણીષ તો બૌદ્ધ મૂર્તિઓની માફક પ્રાચીન જૈનમૂર્તિમાં પણ ઘણા ભાગે સમાન હોય છે.

ચિત્ર નંબર ૭: મથુરાના કંકાલી ટીલામાંથી પ્રાપ્ત થએલી કુશાન સમયની ઋષભ-દેવની આ મૂર્તિના મસ્તકનો ભાગ ખંડિત થએલો છે, પરંતુ બંને ખભા પરની વાળની લટો ચિત્રમાં સ્પષ્ટ દેખાતી હોવાથી આ આકૃતિ શ્રી ઋષભદેવની જ છે એ વાતની સાબિતી આપે છે. આ મૂર્તિ હાલ લખનૌ મ્યુઝીઅમમાં છે.

ચિત્ર નંબર ૮: પિંડવાડા (મારવાડ)ના શ્રીમહાવીરસ્વામીના દેરાસરમાં આવેલી ઋષભદેવની આ મૂર્તિનું વિસ્તૃત વર્ણન ઇતિહાસપ્રેમી શ્રીકલ્યાણવિજયજીએ 'નાગરી-પ્રચારિણી પત્રિકા'ના અંકમાં આપેલું છે, જેની એક નકલ તેમણે મને મોકલાવી આપી હતી. તે ઉપરથી તેનું ટુંક વર્ણન આ પ્રમાણે છે:—આ મૂર્તિની ઉંચાઈ ચાર ફૂટથી કાંઈક વધારે છે, અને આવી જ એક બીજી મૂર્તિ પણ એ મંદિરમાં છે.* એમાંની

એક મૂર્તિના પાદપીઠ ઉપર પાંચ લીટીનો સંસ્કૃત ભાષામાં એક લેખ છે. લેખની ચોથી લીટીમાં સંવત્ ૭૪૪ નો સ્પષ્ટ નિર્દેશ છે અને પાંચમી લીટીમાં મૂર્તિનો ઘાટ ઘડનાર શિલ્પીનું નામ આપેલું છે.

ચિત્ર નંબર ૯ : કાઠિયાવાડમાં આવેલા વાંકાનેર શહેરના એક જૈન દેરાસરમાં આ મૂર્તિ બિરાજમાન છે. મૂર્તિ પદ્માસનની બેઠકે ધ્યાનમુદ્રામાં સ્થિત છે. બંને બાજુ બે કાયોત્સર્ગસ્થિત જિનમૂર્તિઓ ઊભેલી છે. જેના કટીભાગથી છેક નીચે સુધી વસ્ત્રની સ્પષ્ટ આકૃતિ શિલ્પીએ રજુ કરેલી છે; જે પૂરવાર કરે છે કે એ મૂર્તિ શ્વેતાંબર સંપ્રદાયની છે. મુખ્ય મૂર્તિના મસ્તકના ઉપરની સાત ફણાઓ જાહેર કરે છે કે એ મૂર્તિ ત્રેવીશમા તીર્થંકર શ્રીપાર્શ્વનાથની છે. તેની નીચેની જમણી બાજુએ બે હાથવાળો યક્ષ છે, જેના આયુધો સ્પષ્ટ દેખાતાં નથી; પરંતુ ડાબી બાજુની યક્ષીની આકૃતિના ડાબા હાથનું બાળક ચિત્રમાં સ્પષ્ટ દેખાય છે, જે જાહેર કરે છે કે એ મૂર્તિ યક્ષી અંબિકાની છે. આ મૂર્તિનું શિલ્પ જોતાં તે આઠમા અથવા નવમા સૈકાની હોય એમ લાગે છે. કાઉસગીયાની બાજુમાં બંને બાજુ ચામરધારિણી સ્ત્રીઓની એકેક આકૃતિ છે.

ચિત્ર ૧૦ : આ મૂર્તિ મારા પોતાના સંગ્રહમાંની છે. મૂર્તિના મસ્તક ઉપરની ફણાઓ બહુ જ સુંદર રીતે રજુ કરવામાં આવી છે. મુખ્ય મૂર્તિની બંને બાજુની કાયોત્સર્ગસ્થિત એકેક મૂર્તિ દ્વારા શિલ્પીએ પ્રાચીન ત્રિતીર્થીનો નમૂનો પૂરો પાડ્યો છે. ચિત્ર નંબર ૯ ની માફક, બંને કાઉસગીયાનું કટિવસ્ત્ર પણ સ્પષ્ટ દેખાય છે પરંતુ નંબર ૯ ના કાઉસગીયાનું કટિવસ્ત્ર ચિત્ર નંબર ૭ ની મૂર્તિને વધારે મલતું છે; જ્યારે આ કટિવસ્ત્રની પાટલી છુટી રાખવામાં આવી છે, જે સૂચવે છે કે આ શિલ્પ, ચિત્ર નંબર ૭ તથા ૯ ના શિલ્પના સમય પછીના સમયનું છે. આ ત્રિતીર્થીના પાછળના ભાગમાં એક ટુંકો લેખ છે, જેની લિપી દશમા સૈકાની છે અને તેથી જ આ શિલ્પને હું દશમા સૈકાના શિલ્પ તરીકે ઓળખાવું છું. મુખ્ય મૂર્તિના પદ્માસનની અંદર કમળની સુંદર આકૃતિઓ છે અને બાજુમાં ઊભેલી કાઉસગીયાની બંને મૂર્તિઓ પણ કમલના ઉપર જ ઊભેલી છે. બંને કાઉસગીયાની બાજુમાં કમલ ઉપર જ ઉભી રહેલી એકેક ચામરધારિણી સ્ત્રી છે. જમણી બાજુની ચામરધારિણી સ્ત્રીની બરાબર નજીકમાં, બે હાથવાળા યક્ષની આકૃતિ છે, અને ડાબી બાજુની ચામરધારિણી સ્ત્રીની બરાબર નજીકમાં બે હાથવાળી યક્ષીની આકૃતિ છે જેના ડાબા હાથનું બાળક પણ (જો કે અસ્પષ્ટ) દેખાય છે. કમનશીબે આ શિલ્પમાંની દરેક આકૃતિના મુખનો આકાર એટલો બધો ઘસાઈ ગયો છે કે, તેથી જો તેના મસ્તક ઉપર ફણાઓની આકૃતિ ન હોત અને પ્રભાવલીના પાછળના ભાગ ઉપર લેખ ન હોત તો આ મૂર્તિ કયા તીર્થંકરની છે, તે શોધી કાઢવું બહુ જ મુશ્કેલ પડત. આવી સુંદર રીતે ગોઠવેલી ફણાઓવાળી પાર્શ્વનાથની મૂર્તિઓ ક્વચિત જ મળી આવશે.

ચિત્ર ૧૧ : કાઠિયાવાડમાં આવેલા વળા ગામની (પ્રાચીન વલભીપુરની) નજીકમાં ઢાંકનો પર્વત આવેલો છે. તેની ગુફાઓના ખડક ઉપર આ ઊભી પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ

---

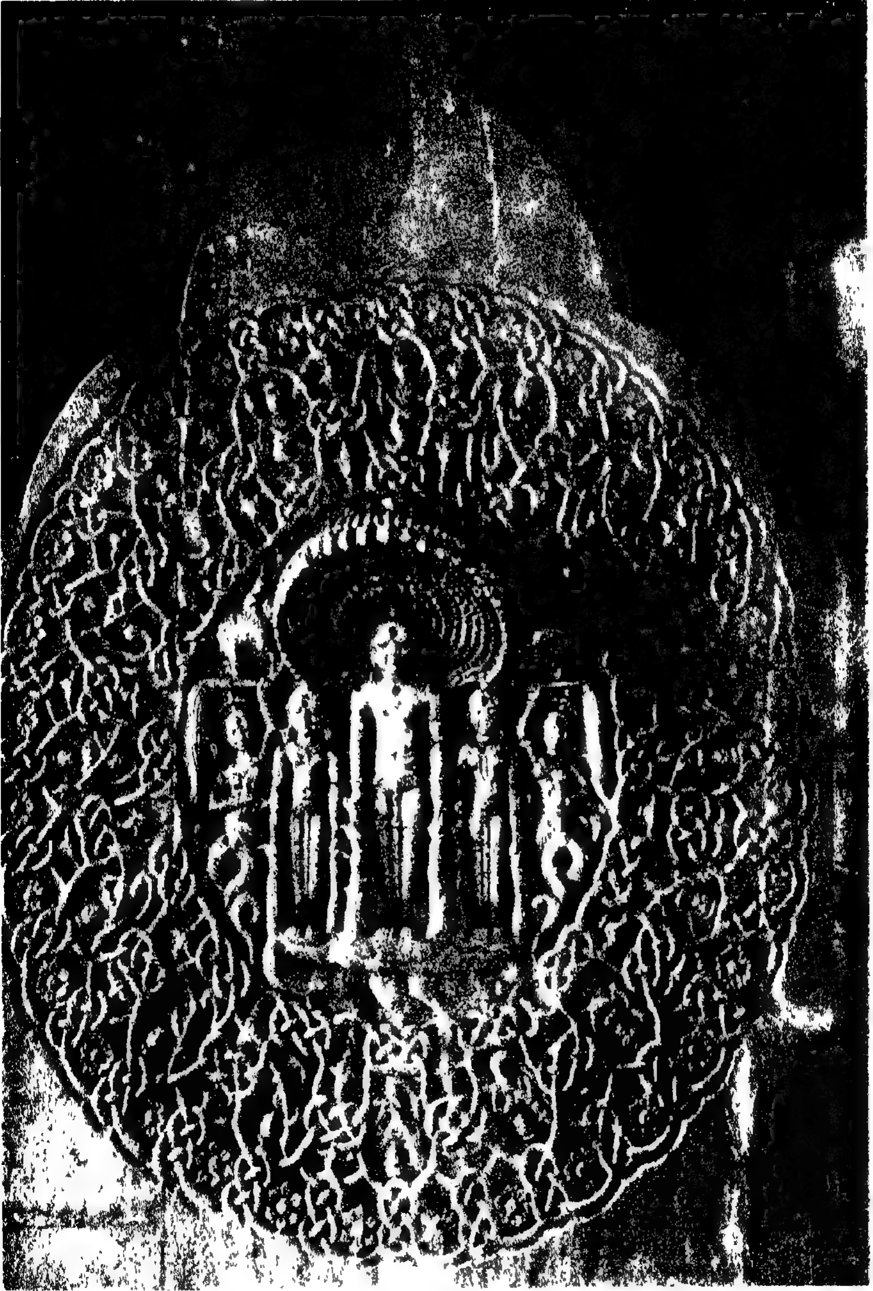
* બીજી મૂર્તિનું ચિત્ર પણ મારા પુસ્તકમાં પ્રસિદ્ધ થનાર છે.—લેખક.



चित्र ११ श्रीपार्श्वनाथ · ढांक



चित्र १२ सहस्रफणा पार्श्वनाथ · जोधपुर (मारवाड)
(ब्लोक साराभाई नवाबना सौजन्यथी)



चित्र १३ श्रीसहस्रफणा पार्श्वनाथ · राणकपुर (मारवाड)

(ब्लोक साराभाई नवाबना सौजन्यथी।)

કોરેલી છે. આ મૂર્તિને સૌથી પ્રથમ, જૈન શિલ્પ તરીકે ઓળખાવનાર શ્રીયુત ડૉ૦ હસમુખલાલ સાંકળીઆ છે. "જૈન સત્યપ્રકાશ" ના ચોથા વર્ષના અંક ૧–૨ માં આ મૂર્તિનું વિસ્તૃત વર્ણન આપતાં તેમણે એ મૂર્તિને ઇ૦ સ૦ ના ત્રીજા સૈકાની જણાવી છે, અને તેમની તે માન્યતા મને પણ યથાર્થ લાગે છે. આવી જ જાતનું એક શિલ્પ, મેં મારા કાઠિયાવાડના પ્રવાસ દરમ્યાન, જુનાગઢ સ્ટેટના અજારા ગામની સીમમાં જોયું હતું, જેનું ચિત્ર પણ મારા પ્રસિદ્ધ થનારા ગ્રંથમાં આપવામાં આવશે. આ મુખ્ય મૂર્તિની જમણી બાજુ જે યક્ષની મૂર્તિ છે તેનો આકાર એટલો બધો ઘસાઈ ગએલો છે કે તેના કાનનું કુંડલ માત્ર કાંઈક સ્પષ્ટ દેખાય છે. યક્ષની બાજુમાં બે હાથમાં ફૂલની માળા લઇને ઊભેલી એક સ્ત્રી છે. પાર્શ્વનાથની (મુખ્ય મૂર્તિની) ડાબી બાજુએ, ડાબા ખોળામાં ડાબા હાથથી પકડી રાખેલા બાળકની આકૃતિવાળી યક્ષી અંબિકાની આકૃતિ છે. તેનો જમણો હાથ ઊંચો છે, પરંતુ કાંડા ઉપરના પંજાનો ભાગ બીલકુલ નષ્ટ થઈ ગએલો છે, અને તે સાથે પંજામાંની આંબાની લુંબ પણ નાશ પામેલી છે. યક્ષીની નીચે તેના વાહન સિંહના મુખની અસ્પષ્ટ આકૃતિ દેખાય છે. આ ત્રીજા સૈકાનું શિલ્પ આપણને ખાત્રી આપે છે કે ચિત્ર નંબર ૪ અને ૫ વાળી યક્ષીની આકૃતિઓ, માન્યવર શાસ્ત્રીજી કહે છે તેમ, બૌદ્ધધર્મની હારિતી દેવીની નથી, પરંતુ જૈનધર્મની અંબિકા દેવીની છે.

ચિત્ર ૧૨: જોધપુર (મારવાડ)ના શ્રીપાર્શ્વનાથના જૈન દેરાસરમાં, મળ નાયકરૂપે આ સહસ્રફણા પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ બિરાજમાન છે. ચિત્ર નંબર ૫ માંના અડધા નાગના શરીરવાળા નાગ અને નાગીની આકૃતિ સાથે સરખામણી કરવા માટે આ ચિત્ર મેં રજુ કર્યું છે. બંને શિલ્પમાં ફરક માત્ર એટલો જ છે કે ચિત્ર નંબર ૫ વાળી બંને આકૃતિઓ હાથ જોડેલી છે, જ્યારે આ મૂર્તિઓમાં તે અક્કેક હાથે ચામર વીંઝતી બતાવેલી છે. બંને શિલ્પીઓનો આશય નાગ અને નાગીનો શ્રી પાર્શ્વનાથ પ્રત્યે ભક્તિભાવ દર્શાવવાનો છે.

ચિત્ર ૧૩: રાણકપુર (મારવાડ)ના ધરણવિહાર નામના વિશાળ જૈનમંદિરની ભમતીમાં આવેલું સહસ્રફણા પાર્શ્વનાથનું આ શિલ્પ બહુ જ સુંદર છે, અને તેના શિલ્પીની અજોડ શિલ્પકળાનો આ એક ઉત્તમ નમૂનો છે. ચિત્ર નંબર ૧૨ ની માફક આમાં પણ શિલ્પીએ નાગ અને નાગીના અક્કેકા હાથમાં ચામર આપીને દેવ પ્રત્યેનો ભક્તિભાવ પ્રદર્શિત કરવા પ્રયત્ન કરેલો છે. મુખ્ય આકૃતિઓની ફરતું, નાગિણીઓની આકૃતિવાળું શિલ્પકામ, ગુજરાતના શિલ્પીઓના અત્યુત્તમ બુદ્ધિકૌશલ્યનું એક જ્વલંત ઉદાહરણ જેવું છે. હું જાણું છું ત્યાં સુધી, ગુજરાતના શિલ્પીઓની અત્યુત્તમ કારીગરીના પ્રતીક સમાં આવાં કળાસર્જનો, ભારતના બીજા પ્રાંતોમાં ક્વચિત જ મળી આવશે.

આ લેખ સાથે રજુ કરેલા ચિત્ર નંબર ૧, ૪, ૫ અને ૮ ના ફોટોગ્રાફો વિદ્વદ્વર્ય મુનિરાજ શ્રીપુણ્યવિજયજી પાસેથી મને મળેલા છે; ચિત્ર નંબર ૨ અને ૩ ભારત સરકારના પુરાતત્ત્વ સંશોધનખાતા તરફથી પ્રકટ થએલ "Jain stupa of Mathura" નામના પુસ્તકમાંથી લીધેલા છે; ચિત્ર નંબર ૬ વડોદરા રાજ્યના પુરા-

તત્ત્વ સંશોધનખાતાના ઇ૦ સ૦ ૧૯૩૭–૩૮ ના અહેવાલ ઉપરથી લીધેલું છે; ચિત્ર નંબર ૭ નો બ્લૉક 'જૈન સત્યપ્રકાશક સમિતી'એ વાપરવા આપેલો છે; તેમ જ ચિત્ર નંબર ૧૧ નો ફ્રોટોગ્રાફ પણ સમિતીએ જ આપેલો છે. ચિત્ર નંબર ૯, ૧૦ અને ૧૨ મારા પોતાના સંગ્રહમાંના છે; તથા ચિત્ર નંબર ૧૩ નો ફ્રોટોગ્રાફ શેઠ આણંદજી કલ્યાણજીની પેઢીએ બ્લૉક બનાવવા માટે આપેલો છે. એ માટે હું અહિં તે તે સજ્જન વ્યક્તિઓ તથા સંસ્થાઓનો આભાર માનું છું.

ચિત્ર નંબર ૧, ૪, ૫ અને ૬ વાળી મહુડીની આ જિનમૂર્તિઓનો ટુંક પરિચય સૌથી પ્રથમ મુનિ શ્રીહેમેન્દ્રસાગરજીએ ટુંકાણમાં "જૈનજ્યોતિ" સાપ્તાહિક દ્વારા આશરે દોઢેક વર્ષ ઉપર આપ્યો હતો. ત્યારપછી એક વર્ષ ઉપર, ચિત્ર નંબર ૪, ૫ અને ૬ વાળી જિનમૂર્તિઓ મેં માન્યવર શાસ્ત્રીજીની ઑફિસમાં, તેઓશ્રીના ટેબલ ઉપર જોઈ હતી, તે વખતે તેઓશ્રીએ એ વિષે મને પૂછતાં, મેં આ ત્રણે મૂર્તિઓ જૈન હોવાનું તેમની આગળ પ્રતિપાદન કર્યું હતું અને તેના ફ્રોટોગ્રાફોની માગણી પણ કરી હતી. પરંતુ તે ફ્રોટાઓ એમના અહેવાલમાં છપાયા પછી જ મને આપવાનું તેઓ-શ્રીએ કહ્યું હતું. તે પછી જ્યારે તે અહેવાલ તૈયાર થઈ પ્રકટ થઈ ગયો ત્યારપછી મેં રૂબરૂમાં (એની ફરી) માગણી કરી હતી, પણ તેનો સ્વીકાર નહીં થવાથી, પ્રસ્તુત ત્રણે ચિત્રો વિદ્વદ્વર્ય શ્રી પુણ્યવિજયજી મહારાજ પાસેથી મેળવીને અને એક ચિત્ર તેમના અહેવાલ ઉપરથી જ બ્લૉક કરાવીને અત્રે રજુ કર્યું છે.

આશા રાખું છું કે આ લેખની દલીલો વાંચીને માન્યવર શાસ્ત્રી મહાશય હવે પોતાનો એ બાંધી લીધેલો ભૂલ ભરેલો મત ફેરવવા ઉદાર થશે; અને જો મારી એમાં ભૂલ થતી હોય તો તે યુક્તિ અને પ્રમાણ પુરસ્સર જાહેરમાં મુકી મારા માર્ગદર્શક થશે.

અંતમાં, આ લેખ લખવા માટે ખાસ પ્રેરણા આપનાર અને ગુજરાતની સંસ્કૃતિના ઇતિહાસમાં ઊંડો રસ લેનાર શ્રી મુનિ જિનવિજયજીનો હું હાર્દિક આભાર માની મારૂં આ લખાણ સમાપ્ત કરૂં છું.

कवि समयसुन्दर उपाध्यायकृत

सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी

(सं० १६८७ के भीषण दुष्कालके वर्णनकी रोमाञ्चक कविता)

*

ले० — श्रीयुत अगर चंदजी नाहटा

[सह संपादक—'राजस्थानी' त्रैमासिक पत्रिका, कलकत्ता]

कविका परिचय

सतरहवीं शताब्दीके विद्वान् जैन यति — साधुओं एवं कवियोंमें महोपाध्याय **समयसुन्दरजी**का स्थान बहुत ऊँचा है। इनकी रचनायें बहुत ही लोकप्रिय और परिमाणमें प्रचुर हैं। जिस किसी भंडारमें देखें इनकी रचनायें अवश्य ही दृष्टिगोचर होंगीं। संख्यामें वे इतनी प्रचुर हैं कि हम दस वर्षोंसे उनका अन्वेषण एवं संग्रह कर रहे हैं तो भी अभीतक नई नई रचनाओंका पता मिलता ही जा रहा है। कई वर्ष पूर्व हमने इनकी रचनाओंके सम्बन्धमें "कविवर समयसुंदरका साहित्य" शीर्षक दो लेख, 'जैन' पत्रके पु० ३३, अंक २३–२४ में प्रकाशित किये थे। उसके पश्चात् हमने अपने 'युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि' ग्रन्थके पृ० १६७ से १७१ में इनका अति संक्षिप्त परिचय एवं कृतियोंकी सूचि प्रकाशित की थी। उस सूचिके अतिरिक्त, १ कथाकोष (देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फंडके पास इसकी प्रेस कापी है) और २ ज्योतिष विषयक ग्रन्थ (बीकानेरके खरतरगच्छीय आचार्य शाखाके भंडार में) का पता और चला है[1]। उपाध्याय श्री सुखसागरजी के सुप्रयत्नसे इनकी रचित 'कल्याणमंदिरवृत्ति' पूर्व छप चुकी है; एवं १ कल्पलता, २ सामाचारीशतक और ३ गाथासहस्री ये ३ ग्रंथ अभी हाल ही में प्रकाशित हुए हैं।

सं० १६८७ का दुष्कालका परिचय

भारतवर्षमें समय समय पर बहुत दुष्काल पड़ा करते हैं जिनमें कई कई तो बहुत ही घातक एवं बिकराल हुवा करते हैं। कविवरके समय सं० १६८७

---

1 लोक भाषामें रचित छुटकर रचनायें तो समय समय पर अनेक मिल ही रही हैं। बड़ी कृतियोंमें मोहनलालजी देशाईको स्थूलिभद्ररासकी १९ पत्रोंकी प्रति महावीर विद्यालयसे मिली है। देशाईजीने उसका रचनाकाल सं० १६२२ लिखा है जिसमें हमें कुछ सन्देह है।

में गुजरातमें एक ऐसा ही बड़ा भयंकर दुष्काल पड़ा था और उसके कष्ट-भोगी कविवर स्वयं भी हुए थे, इसलिये उन्होंने उसका रोमाञ्चकारी विशद-वर्णन "सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी" नामक कविता बना कर किया है। दुष्कालका ऐसा रोमहर्षण और विस्तृत वर्णन किसी दूसरे कविका किया हुआ अभी तक हमारे अवलोकनमें और कोई नहीं आया। हमारे भाषासाहित्यमें, अपने ढंगका यह वर्णन एक ही और अनूठा है।

इस दुष्कालका अधूरा वर्णन कई वर्षपूर्व श्रीयुत मोहनलाल दलीचंद देशाई महाशयको मिला था और उसे उन्होंने "जैनयुग" के वर्ष ५, पृ० ६९ में प्रकाशित किया था। उसके पश्चात् हमने अपने संग्रहकी एक प्रति उनको भेजी थी, जिसमें जो नवीन छप्पय और मिले, उन्हें भी उसी वर्ष जैनयुगके पृ० ३५५ से ५७ तकमें उन्होंने प्रगट कर दिये थे। फिर भी वह वर्णन अधूरा ही था। हमारा अन्वेषण कार्य सतत चालू था; फलतः उसके कुछ समयके पश्चात्, हमें यह पूरा वर्णन उपलब्ध हो गया जो पठनीय होनेके साथ साथ ऐतिहासिक महत्त्व भी रखता है। अतः आज यहां पर यह पूर्ण-रूपमें प्रगट किया जा रहा है। आशा है साहित्य प्रेमियोंको यह प्रयत्न रुचिकर एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

इस दुष्कालको कविवरने स्वयं अपनी आंखों देखा था और उसके प्रभावका अनुभव भी किया था; अतएव उन्होंने सं० १६८७ में (जब यह दुष्काल पड़ा था, तब वे पाटण[3] में थे) अपने रचित 'विशेष शतक' ग्रन्थके लेखक-प्रशस्तिरूप ६ संस्कृत श्लोकोंमें, तथा सं० १६९५ में रचित 'चंपक चौपाइ'में भी इसका प्रसंगवश मार्मिक उल्लेख किया है। अर्थात् प्रस्तुत दुष्काल वर्णन कवित्तोंकी रचनाके अतिरिक्त भी, इस रचनासे पूर्व एवं पीछे, उन्होंने इस दुष्कालका स्मरण किया है। वे उल्लेख भी इस लेखके साथ दे दिये जाते हैं।

---

2 जैन कवियोंकें रचित छोटे २ कई दुष्कालवर्णन मिलते हैं जिनमेंसे कविवर धर्म-वर्धन रचित सं० १७५१ का वर्णन मेरे "राजस्थानी साहित्य और जैनकवि धर्मवर्द्धन" शीर्षक निबंध, राजस्थान वर्ष २, अंक २ में प्रकाशित हो चुका है और सं० १८१२ आदिके कुछ और वर्णन हमारे संग्रहमें हैं।

3 सं० १६८७ में, यहां मुनि सहजविमल एवं मेघविजयके लिये रचित 'जयति-हुअणवृत्ति' उपलब्ध है।

दुष्काल वर्णन छत्तीसीकी प्राप्ति

१. देशाई महाशयको एक पत्रकी अधूरी प्रति मिली थी जिसमें १६ कवित्त थे। देशाईजीने इसी प्रतिके आधारसे सर्व प्रथम १६ कवित्त प्रगट किये थे। इस प्रतिके लेखकने ये कवित्त, जैसे उसे याद थे या सुने थे, वैसे ही लिख लिये प्रतीत होते हैं। क्यों कि ये १६ कवित्त क्रमबद्ध नहीं हैं – इनका क्रम अन्य प्रतियोंसे नहीं मिलता।

२. हमारे संग्रहमें दो पत्रोंकी प्रति है, जिसमें क्रमबद्ध सं० १६८७ तक के वर्णनात्मक २४ कवित्त हैं। इसके पश्चात् 'अगमवाणी' नामक कविता लिखी हुई है जिससे प्रतीत होता है कि यह प्रति सं० १६८७ में लिखी हुई प्रतिकी प्रतिलिपि है और इसकी मूलभूत प्रतिके लेखन-समय तक कविवरने इस 'सत्यासीया' दुष्कालके वर्णनात्मक इतने ही कवित्त रचे थे। अवशेष 'अठ्यासीया'के वर्णनात्मक १२ कवित्त कविने सं० १६८८ में रच कर पूरी 'दुष्कालवर्णन छत्तीसी' बनाई।

३. हमारे संग्रहमें सं० १८१६ की लिखी हुई पूरे ३६ कवित्तोंकी ५ पत्रों की प्रति है, पर इसमें कहीं कहीं पाठ अशुद्ध लिखा हुआ मिलता है।

४. सुकनचंदजी यतिके संग्रहमें १ मध्य पत्र और वह भी कटा हुआ मिला, जिसमें कवित्त क्रमांक २४ के अंतिम चरणसे क्र० ३३ तकके पूरे एवं ३४ वें का त्रुटित अंश मिला।

५. बीकानेरके बड़े ज्ञान-भंडारके अंतर्गत, महरचंदजीके भंडारमें, ३ पत्रोंकी एक अपूर्ण प्रति है, जो उन्नीसवीं शताब्दीकी लिखी हुई है।

उपर्युक्त पांच प्रतियोंका मिलान कर इन कवित्तोंकी पाठशुद्धि की गई है। सामान्य पाठान्तर जो कि अशुद्ध एवं क्रियापरिवर्त्तनरूप मात्र प्रतीत हुए, उन्हें छोड़ कर महत्त्वके पाठान्तरोंको ही फुटनोटमें स्थान दिया गया है।

एक दो प्रतियां अन्यत्र और भी देखनेमें आईं पर उनको प्राप्त न कर सकनेके कारण, उपयोग नहीं हो सका।

इस दुष्कालसम्बंधी जो उल्लेख ग्रन्थान्तरोंमें हमारे अवलोकनमें आये वे भी इस लेखमें दे दिये जाते हैं।

१.२.१२.

आभ्यंतरिक अवलोकन—इन ३६ कवित्तोमेंसे नं० १७ तकमें दुष्कालके प्रभावसे जो परिस्थिति उपस्थित हुई थी उसका वर्णन है। ७ वें कवित्तमें उस समयके धान्यादिके भावोंका सूचन है, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे उपयोगी है। पद्य १८ में जिन जैनाचार्योंका, इस दुष्कालके समयमें, स्वर्गवास हुआ था उनका निर्देश है। पद्य १९–२० में आपबीती आत्मकथा कही है। नं० २१ में शांतिदास सेठ द्वारा सागरगच्छके पोषणका हाल, नं० २२ से २५ में दुष्कालपीडित जनताकी सहायता करनेवाले दानीयोंका उल्लेख, नं० २७ से अठ्यासीयाका वर्णन कर, नं० ३२ से ३६ में फिर सुकाल-सुभिक्षके होनेका वर्णन करके कविने अपना यह दुष्काल वर्णन समाप्त किया है।

इस दुष्कालका प्रभाव सं० १६८८ के कार्त्तिकमास तक बना रहा, ऐसा कविवरकी रचित 'नवतत्त्ववृत्ति'से ज्ञात होता है। यथा—

"संवति वसु-गज-रस-शशिमिते च दुर्भिक्षकार्तिके मासे।
अमदावादे नगरे पटेलहाजाभिधप्रोल्याम्॥

इस चालू=वर्तमान वर्ष भी गुजरात, काठियावाड़, सिन्ध, मारवाड़ आदिमें दुष्काल पड़ा है और कहीं कहीं तो स्थिति बहुत ही भयानक हो उठी है। मारवाड़ प्रान्तके कई ग्राम सुनसानसे हो गये हैं। गाय भेंस इत्यादि जानवर बहुत अधिक संख्यामें मरचुके हैं। मनुष्य अभी सहीसलामत हैं यही गनीमत है। यह रेल आदि साधनोंका ही सुफल है, जिससे अन्य प्रान्तोंमेंसे गेहुं, घास आदि दुःकाल पीडित प्रदेशोंमें सरलता और शीघ्रताके साथ पहुंचाये जाते हैं; अन्यथा उसी 'सत्यासीया' वाली परिस्थितिका अनुभव हमको भी आज करना पडता।

*

'सत्यासीया दुष्काल'के ग्रन्थान्तरोंके उल्लेख

"ऐतिहासिक चित्र" नामक बंगला भाषाके पत्रके चतुर्थ वर्ष (१३१६ साल) की १२ वीं किरण (संख्या) में **"सप्तदश शताब्दीर दुर्भिक्ष"** शीर्षक एक लेख प्रगट हुवा है, जिसमें इस 'सत्यासीया दुष्काल'का रोमांचकारी और तादृश वर्णन दिया गया है। पाठकोंके ज्ञानार्थ उसका आवश्यक सार यहां दिया जाता है—

'ई० सन् १६२८ में सम्राट् शाहजहाँ सिंहासनारूढ हुये । उसके थोड़े ही अर्से बाद वि० सं० १६८७ में दाक्षिणात्य प्रदेशोंमें एक भीषण दुष्काल पडा । संहारमूर्त्ति उस दुष्कालका विस्तार गु ज रा त तक व्याप्त हो गया था । इसके पहले वर्ष (सं० १६८६) में भी सामान्य ही वृष्टि होनेसे बालाघाट और दौलताबादकी ओर धान्यकी फसल अच्छी नहीं हुई थी और उसके लगते ही इस दूसरे वर्षमें दक्षिण एवं गुजरात व्यापी अनावृष्टिके कारण दक्षिण भारत दुर्भिक्षकी क्रूर छायासे आछन्न हो गया । एक टुकडा रोटीके लिये लोक जीवन विक्रय करनेको प्रस्तुत हो गये, फिर भी कोई उन्हें खरीदनेवाला नहीं मिलता था । सामान्य खाद्य पदार्थोंके लिये लोक अपने मान इज्जतको जलाञ्जलि देने लगे, फिर भी अपनी ओर किसीका मनोयोग नहीं देख उनके दुःखका पारावार नहीं रहता था । जिन दानियोंका हाथ सदा दूसरोंको इच्छित प्रदान करनेमें ही व्यस्त रहता था, आज वे ही स्वयं उन हाथोंको दूसरोंके सामने प्रसारित करते हुए नजर आते थे । जो लोग कभी घरसे भी बाहर नहीं निकलते थे, वे आज गली गलीमें भटक रहे थे । अनेक दिनों तक कुत्तेका मांस, बकरीका मांस कहा जा कर, विक्रय हुआ; और हड्डियोंका चूर्ण गेहूंके चूर्णके साथ मिश्रित हो कर लोगोंकी उदरपूर्त्तिका साधन बना । क्रमशः नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि मनुष्य, मनुष्यका मांस खाने लगे । पुत्रका मांस उसके स्नेहकी अपेक्षा प्रिय प्रतीत होने लगा, रास्ते मृतदेहों (शवों)की परिपूर्णतासे श्मशानसे प्रतीत होने लगे । जो लोग किसी प्रकार अपनी जीवनरक्षा करनेमें समर्थ हुए वे देश-विदेशोंमें घूमने लगे । जो जमीन उर्वरा रूपसे प्रसिद्ध थी आज वही मरुभूमिसे भी अधिक भयानक दिखाई देने लगी । फलतः इस प्रकारके भीषण दुर्भिक्षसे दक्षिण और गुजरातमें भयावह दृश्य दिखाई देने लगे । अन्नकष्ट और जलकष्ट दोनों मिल कर दिनोंदिन प्राणियोंको मरणव्यथाकी यात्रा कराने लगे । उस समय कितने मनुष्य यमलोक पहुँचे इसकी संख्या बताना असंभव है । जो किसी प्रकारसे जीवित थे वे देश परित्याग कर उदरपूर्त्तिके लिये स्थानान्तरोंमें परिभ्रमण करनेको बाध्य हुए । इस प्रकार दक्षिण और गुजरातके अनेक स्थान मरुभूमि और श्मशान तुल्य हो उठे ।

सम्राट् शाहजहां इस समय दक्षिणमें उपस्थित थे । अपनी आंखोंके आगे लोगोंकी ऐसी महान दुर्दशा देख वे अत्यंत कातर हो गये । उदारहृदय और

न्यायपरायण सम्राट् अकबर जैसे प्रजावत्सलके सिंहासनको जो सुशोभित करते थे उनका प्रजाके दुःखोंसे चंचल हो उठना कोई विस्मयकी बात नहीं है। अपने नेत्रोंके समक्ष हजारों लोगोंको अनाहारवश प्राण विसर्जन करते देख उनसे रहा नहीं गया। उनका उदार हृदय अविलम्ब उन दुःखोंके प्रतीकारार्थ व्याकुल हो उठा और बरहानपुर, अहमदाबाद और सूरतके अधिकारियोंको दानशालायें (अन्नछत्र) खोलनेका आदेश प्रदान किया। उन सारे अन्नछत्रोंसे दरिद्र और निराहारियोंको खाद्य पदार्थ वितरण किये जाने लगे, इससे क्षुधार्त्त लोगोंकी उदरपूर्त्ति होने लगी। सम्राट्ने और भी शुभ आदेश किया कि जहाँतक वे बरहानपुरमें रहें वहाँतक दरिद्रोंको प्रति सोमवार ५ हजार मुद्रायें दान की जायँ। सोमवारको ही वे सिंहासनारूढ हुए थे अतः इस आदेशका आधार वही वार था। उनके इस आदेशसे २० सोमवारोंमें १ लक्ष मुद्रायें वितरित की गईं।

अहमदाबादके निवासी सबसे अधिक दुर्भिक्ष पीडित थे, अतः उनके लिये ५० हजार मुद्रायें व्यय की गईं। साम्राज्यके अनेक स्थानोंमें दुर्भिक्ष और जलकष्ट व्याप्त होनेके कारण सम्राट्ने राज-स्व (टॅक्स) विभागके अधिकारियोंको, टॅक्स (कर) ग्रहणके लिये, लोगोंको पीडित करनेका निषेध कर दिया। उनके आदेशसे राज्यकर्मचारियोंने प्रायः ७० लाख रुपयोंको राज-स्वमें बाद दे दिया था। हिसाब करनेसे ज्ञात होता है कि तत्कालीन राज-स्वका प्रायः इग्यारहवां भाग प्रजासे नहीं लिया गया था। सम्राट्के अनुकरणमें, संभ्रान्त जमींदार और मनसबदारोंने भी प्रजाके पाससे बहुतसे रुपयोंका कर वसूल नहीं किया। इस प्रकारकी सुव्यवस्थासे सम्राट् शाहजहाँने महान दुर्भिक्षके समय अपनी प्यारी प्रजाका उद्धार किया था।'

गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी द्वारा प्रकाशित 'दुकालविषे निबंध'[1] नामक ग्रन्थके पृ० १५ में भी इस दुष्कालका कुछ हाल लिखा हुआ है। पाठकोंकी जानकारी के लिये हम उसका ज्यों-का-त्यों अवतरण नीचे देते हैं—

"अमदाबाद अंग्रेज सरकारना ताबामां आव्युं तेनी आगळ ते मुसलमान बादशाहनी सत्ता हेठळ हतुं. ए बादशाहोना वखतमां, ई. स. १६३१ (वि. १६८७)नुं

1 इस ग्रन्थमें, १ गुजरात, २ सिंध, ३ कच्छ, ४ दक्षिण (महाराष्ट्र देश,) ५ मद्रास, ६ निजाम राज्य व महिसूर, ७ बंगाल, और ८ काश्मीर प्रान्तोंमें समय समय पर पड़े हुए दुष्कालोंका ज्ञातव्य और पठनीय वृत्तान्त है। २०० पृष्ठोंका यह ग्रन्थ संग्रहणीय है।

वर्ष जे 'सत्यासीओ दुष्काल' एवा नामथी ओळखाय छे ते वर्षमां लोकोने जबरुं संकट पड्युं हतुं. ते एटले सुधी के माणस माणसने खावा लाग्यां हतां. ते वखते बादशाहे अमदाबाद, सुरत अने बरानपुर मध्येना पोताना सुबाओने दिल्हीथी हुकम लख्या हता के सरकारी लंगरखाना उघाडी तेमांनुं अनाज लोकोने वहेंचवुं. ए उपरांत अमदाबादना लोकोने त्यांनी (अमदाबादनी) सरकारी तिजोरीमांथी पचास हजार रुपियां वहेंचवानो हुकम आव्यो हतो. आ दुष्काळ वरसाद न आववाथी पड्यो हतो. बादशाहे दया करीने ए वर्षनुं जमीननुं महेसूल खेडुतो पासेथी लीधुं न होतुं, एटलुं ज नहीं, परन्तु बीजी पण सारी मदद करी हती." इत्यादि ।

श्रीयुत रत्नमणिराव भीमराव लिखित **गुजरातनुं पाटनगर अमदाबाद**के पृ० ९४में इस सत्यासीया दुष्कालका वर्णन इस प्रकार मिलता है –

"आ पहेलां ई. स. १६३१–३२ एटले सं० १६८७ मां गुजरातमां मोटो दुष्काळ पड्यो ते सत्याशीआ कालने नामे प्रसिद्ध छे. आ वखते बादशाहना हुक्मथी अमदावादमां गरीबोने अन्न वहेंचवा माटे लंगरखाना उघाडवामां आव्या अने अमदावादमां अनाजनी ताण पडवाथी फरीथी हुक्म आव्यो के शहेरमां दाणा लावनार वेपारीओने रुपीया पचास हजार खजानामांथी वहेंची आपवा (मीराते अहमदी, पृ० २११) गु० गेजेटीयरमां (पृ० २७७) पांच हजार रुपीया लख्या छे. मीराते अहमदीमां लखे छे के आ दुष्काळमां ढोर रह्यां नहिं अने सीत्तेर रुपीआनी कीमत भैंशो चांपानेरथी लाववी पडी ।"

[१] सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी

*

गरूई[१] श्रीगुजरातदेश, सगलां मांहे दाखी;
धरम करम परधान[२], लोक मुख मीठुं भाखी ।
सुखी रहइ सरीर, साग तो मखरा भावइ;
ऊंचा करइ आवास, लाख कोडि द्रव्य लगावइ ।
गेहणी देह गहणै भरइ, हुंसी[३] लोकतणो हीयउ;
'समयसुन्दर' कहइ, सत्यासीयउ इसउ(ह)[४] पड्यउ अभागीयउ ॥१॥
जोयउ टीपणउ जांण, साठि संवच्छरि साथइ;
गुराचार शनिचार, हुंता ते लीधा हाथइ ।

पाठ भेदः – १ रूडी. २ सुविवेक. ३ हौंसि. ४ असइ.

कपूरचक्र पिण काढी, जांण ज्योतिषीए जोयउ;
आराधक थया अंध, खिजमति फल सगलउ खोयउ ।
निपट किणइ जाण्यउ नहीं, खरो शास्त्र खोटो कीयउ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीयउ, पड्यो अजांण्यउ[5] पापीयउ ॥ २ ॥
महियलि न हुवा मेह, हुवा तिहां थोडा हूआ;
खड्या पड्या रह्या खेत्र, कलंबी जोतरिया कूआ ।
कदाचि निपनो केथ, कोली ते लीधुं कापी;
घटा करी घनघोर, पिण बूठो नहीं पापी ।
खलक लोक सहु खलभल्या, जीवइं किम जलबाहिरा;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते करतूत सहू[6] ताहरा ॥ ३ ॥
गद्दह गाइ नइ भेंइसि, ऊंट छाली नइ[7] एवड;
अम्हनइ ए आधार, तियां धणीयां नैं[8] त्रेवड ।
चरिवा मूक्या च्यारि[9], निजीक निज नगरनी सीमइ;
खड त्रणा पिण खाइ, कदाचि ते जीवइ कीमइ ।
तेहवइ धाडि कोलीतणी, सगला लेइ[10] सामठा;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया; तुं तो पड्यउ जठा तठा ॥ ४ ॥
लागी लुंटालूंट, भयै करि मारग भागा;
लतो न मूकइ लंठ, नारी नरनिं[11] करइ नागा ।
बइयर[12] झाले बंदि[13], मांटीनइ मुह कडा मारइ;
बंदीखानइ बंधि ऊन्हीं[14], घिसी उपरि झारइ ।
दोहिलउ दंड माथइ करी, भीख मंगावि भीलड़ा;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, थारो कालो मुंह पग नीलड़ा ॥५॥
भला हुंता भूपाल, पिता जिम पृथ्वी पालइ;
नगरलोक नर-नारि, नेहसुं नजरि निहालइ ।
हाकिमनइ हुवो लोभ, धान ले पोतइ धारइ;
महामुंहगा करि मोल, देखि बेचइ दरबारइ ।
मसकीन लोक पामइ नहीं, लेतां धान[15] लागइ धका;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तइं कुमति दीधी तिका ॥ ६ ॥

---

५ अचिंत्यो. ६ सहि. ७ ना. ८ नीआत्रेवडु. ९ चारि. १० लेगया. ११ नै.
१२ बइरनि. १३ बंद. १४ उन्हां (उभी) थी (थइ). १५ धडना.

धान्यादिके भाव –

सूंठि रूपइयै सेर, मुंग अढी सेर माठा;
साकर घी त्रिण सेर, भुंडौ गुलमाहि भाठा ।
चोखा गोहुं च्यार सेर, तूंअर तो न मिले तेही;
बहुला बाजरि बाड[16], अधिक ओछा हुवै एही ।
शालि दालि घृत घोल, जे नर जीमता सामठउ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तइं खवराव्यो बावटउ[17] ॥ ७ ॥

अध पा न लहै अन्न, भला नर थया भिखारी;
मूकी दीधउ मान, पेट पिण भरइ न भारी ।
पमाडीयाना[18] पांन, केइ वगरौ नइं कांटी;
खावै खेजड छोड, शालितूस सबला वांटी ।
अन्नकण[19] चुणइ के अइंठिमें, पीयइ अइंठि पुसली भरी;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, एह अवस्था तइं करी ॥ ८ ॥

मांटी मुंकी बइर[20], मुक्या बइरै पणि मांटी;
बेटे मुक्या बाप, चतुर देता जे चांटी ।
भाइ मुंकी भइण, भइणि पिण मूक्या भाइ;
अधिको व्हालो अन्न, गइ सहु कुटुंब सगाइ ।
घरबार मुकी माणस घणा, परदेशइ गया पाधरा;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तेही[21] न राख्या आधरा ॥ ९ ॥

आपणा वाल्हा आंत्र[22], पड्या जे आपणां पेटा;
नाण्यो नेह लिगार, बापइ पिण वेच्या बेटा ।
लाधउ जतीए लाग, मूंडिनइं मांहइ लीधा;
हुंती जितरी[23] हुंस, तीए तितराहिज कीधा ।
कूकीया[24] घणुं श्रावक किता, तदि दीक्षा लाभ देखाडीया;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तइं कुटुंब विछोहा पाडीया ॥१०॥

---

१६ पाड. १७ बावठो. १८ पमाडिया. १९ कुण. २० बैरि (वयरि). २१ तइ इहां नव राषा आधरा. २२ अंत्र, अत्रे. २३ जितांनी. २४ कूक्या.

खातां खूटा गरथ, पछइ घर बेच्या परगट;
वलि ग्रहणा दीया बेचि, किमही रहइ घरनी कुलवट ।
पणि पसर्यो दुरभिक्ष, कहउ केहीपर कीजइ;
आपइ न को उधारि, सत्त नही सगइ सुणीजइ[१] ।
लाजते[२] भीख लीधी नहीं, मुंहडइं[३] पग सूजी मूआ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते हवाल[४] ताहरा हूआ ॥ ११ ॥
तइं हींदू किया तुरक, विप्र तो मूल विटाल्या;
वणिके गइ विगत्ति, रांक करि लंगरि राल्या ।
दरसणी दुखिया कीध, जती जोगी सन्यासी;
जटाधारि जलधारि, प्रगट जे पवन अभ्यासी ।
अन्न मात्रइ ए [५]अपामेत, भागां सुंस भूखाल्लूए[६];
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते तुझ पाप त्रिकाल्लूए ॥ १२ ॥
दुखी थया दरसणी, भूख[७] आधी[८] न खमावइ;
श्रावक न करी सार, खिण[९] धीरज किम[१०] थायइ ।
चेले कीधी चाल, पूज्य परिग्रह परहउ छांडउ;
पुस्तक[११] पाना बेचि, जिम तिम अम्हनइं जीवाडउ ।
वस्त्र[१२] पात्र बेची करी, केतौक तो काल काढीयउ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तुनइ निपट[१३] निरधाटीयउ ॥ १३ ॥
घर तेडी घणीवार, भगवनना पात्रा भरता;
भागा ते सहू भाव, निपट थया वहिरण निरता ।
जिमता जडइ किमाड, कहै सवार छै केई;
घइ फेरा दस पांच, जती निठ[१४] जायइं लेई ।
आपइ दुखइ अणछूटतां, ते दूषण सहु तुझ तणउ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, विहरण नहीं विगुचणउ[१५] ॥ १४ ॥
पडिकमणउ पोसाल, करण को श्रावक नावइ;
देहरा सगला दीठ, गीत गंधर्व न गावइ ।

---

१ सणेजइ, सणीजे. २ लाजैते. ३ मुंढइ. ४ तेह चाल. ५ अणपामते. ६ भूपाल्लूए. ७ क्षुधा. ८ आघी. ९ थिर. १० नही. ११ उद्यत करउ विहार, मांड काइ बीजी मांडो. १२ पुस्तक पाना. १३ तीए. १४ नेटि. १५ विगोवणउ.

शिष्य भणइ नहीं शास्त्र, मुख भूखइ मचकोडइ;
गुरुवंदण गइ रीति, छती प्रीत माणस छोडइ।
वखाण[1] खाण माठा पड्या, गच्छ चौरासी एही गति;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, कांइ दीधी तइं ए कुमति ॥ १५ ॥
पाटण अम्हदाबाद, खरो[2] सूरत खंभाइत;
लाइक लखपति लोक, वणिक पिण हुंता विलाइत।
जगडू भीमो[3] शाह, उठ्यो को नाम उगारइ;
सबलउ सत्रूकार, मांडि महियलि साधारइ।
केतेक दिवस दीधउ कीए, पिण थिर थोभ न को थयउ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तेनइं तूं व्यापी गयउ ॥ १६ ॥
मूआ घणा मनुष्य, रांक गलीए रडवडिया;
सोजो वल्यउ सरीर, पछइ पाज मांहे पडिया।
कालइ[4] कवण बलाइं, कुण उपाडइ किहां काठी;
तांणी नाख्या तेह, मांडि[5] थइ सगली माठी।
दुरगंधि दशोदिशि ऊछली, मडा पड्या दीसइ मूआ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, किण घरि न पड्या कुकुआ ॥१७॥

जैनाचार्य जो स्वर्गवासी हुए—

श्रीललितप्रभु सूरि, पाटण पूनमिया सुगुरु[6];
प्रभु लहुडीपोसाल, पूज्य वे पींपलिया-खरतर।
गुजराती गुरु बेउ, वडउ जसवंत नइ केसव;
शालिवाडीयउ सूरि, कहूं कितो पूरो हिसव।
सिरदार घणेरा संहर्या, गीतारथ गिणती नहीं;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तुं हतियारउ सालो सही ॥ १८ ॥

कविकी आपबीति कथा—

पछि आव्यउ मो पासि, तु आवतउ मइं दीठउ;
दुरबल कीधी देह, म करि कह्यउ भोजन मीठउ।
दूध दही घृतघोल, निपट जिमिवा न दीधा;
शरीर गमाडि शक्ति, केई लंघण पणि कीधा।

---

१ पछइ माण. २ पूरो. ३ शाहनी जोडी. ४ बालक. ५ मांड. ६ सदगुरु.
१.२.११.

धर्मध्यान अधिका थर्या, गुरु दत्त गुणणउ पिण गुण्यउ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तुं नै हाक मारिनइ मइं हण्यउ ॥१९॥
पाटण थकी पांगुरी, इहां अहमदाबाद आयउ;
देखी माहरी देह, माच्छ गलबंध[1] गमायउ ।
गरढउ गीतारत्थ, गच्छ चउरासी चावउ;
श्रावक न करी सार, पिण रहिस्यइ पछतावउ ।
श्रावक दोष न को सही, मत जांणउ वांक माहरउ ।
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते दूषण[2] सहु ताहरउ ॥ २० ॥

सहायकर्त्ता – दानी श्रावक –

साबास शांतिदास, परघल अपणां गुरु पोष्या;
पात्रा भरि भरपूर, साधनइ घणा संतोष्या ।
उसा पाणि आंणि, वस्त्र पिण भला वहराव्या;
सखर कीया लघु शिष्य, गच्छ पिण गरुयडि पाया ।
सागर जिके साहमी हूया[3], सहु तेहनइ[4] संतोषिया ।
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तें सागरनै न संतापिया ॥ २१ ॥
कुंवरजी करमसी रतन, वछराज ऊदो वछियाइत;
जीवउ सुखीयो जाण, वलि वीरजी विख्याइव[5] ।
मनजी केसव मेल, साह सूरजी सवायउ;
पंचपरबी कीयउ पुन्न, मास च्यार पांच चलायउ ।
जिनसागर† समवाय जस, हाथीशाह‡ उद्यम हूयउ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तां सीम साहमी न को हूअउ ॥२२॥
नागोरी नामजाद, शार्दूलट्टको[6] सुणीयइ;
वस्यउ ते अहमदाबाद, भलउ प्रतापसी भणीयइ ।
वडउ पुत्र वर्द्धमान, भलउ तिलोकसी भाई;
कीजइ पुन्य क्रतूत, इण परि एह वडाई ।
सांभले वात सत्यासीया, तुं म करे केहनइं आकुला;
प्रतापसीसाहरी प्रौलमइं, दीजई रोटी बाकुला ॥ २३ ॥

---

१ बंध. २ क्रतूत. ३ किया. ४ जिहनि. ५ विछियाइत. ६ सादुलट्टककउ.

† सं० १६८६ में इनसे गच्छभेद हुआ। ‡ इनके आग्रहसे कविवरने १८ नात्रक सझाय रची है।

पाटणमाहि प्रसिद्ध, मोटउ सांमलदास मारू;
जयतारणियउ जाण, वित्त तिण वावर्यो वारू ।
तपा जतीनइ तेडि, अन्न बे टंक वहिराव्यउ;
सो-सवासो साधु सको, शाता सुख पायउ ।
दोहिला दुखीया दूबला, सत्रूकार दीयउ सदा;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ताहरो बल न चाल्यउ तदा ॥ २४ ॥

श्रीमाली श्रावक, गच्छ कडूआमती गिरूयउ;
पूजा करइ प्रधान, चढावइ[1] चांपउ नै मरूयउ ।
दानबुद्धि दातार, पड्यउ ते दुरभिक्ष पेखी;
खोल्या धानभखार, अन्न द्यइ अवसर देखी ।
दरमणी सहूनइ अन्न द्यइ, थिरादरे थोभी लीया;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, तिहां तुंनइ धक्का दीया ॥ २५ ॥

सत्यासीयै संहार, कीयउ नरनारी केरउ;
आणदाण वरतावि, ढुंढ ढंढेरउ फेरउ ।
महावीरथी मांडी, पड्या त्रिण वेला पापी;
बारवरषी दुःकाल, लोक लीधा संतापी ।
पणि एकलइ एक तइं ते कीयउ, स्युं बार वरसी बापडा ।
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, बारै[2] लोके न लह्या लाकडा ॥ २६ ॥

अठ्यासीया आगमन–

इसइ प्रस्तावइं इंद्र, सभा सुधर्मा बइठउ
दीठउ अवधि दुःकाल, पाप भरतमइं पइठउ ।
गिरूइ श्रीगुजराति, निपट दुखी करि नांखी;
सीदाणा सहु[3] साध, सही हुं न सकुं सांखी ।
तुरत अठ्यासीयउ तेडिनइ, ए हुकम इंद्रइ कीयउ;
'समयसुंदर' कहइ अठ्यासीया, तुं मार काढि सत्यासीयउ ॥ २७ ॥

इंद्रनुं लेइ आदेश, आयउ अठ्यासीयउ इहां;
अमदाबादइ आवि, पूछइ कासिमपुरउ किहां ।

---

१ वाटइ. २ थारै. ३ घणुं.

महि वरसाव्या मेह, धान धरती निपजाव्यउ;
आंणी नदी अ[1]थाग, प्रजा लोक धीरज पायउ ।
गुल खांड चावल गोहुं तणां, पोठे[2] आंणि परगट[3] किया;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीयउ, तुं परहो जा हिव पापीया ॥ २८ ॥
आव्यां पोठी ऊंट, धान भरि घूंना गाडा;
भरया खंभाइत भार, आंण्या इहां परठी भाडा ।
सबल थयउ संग्राम, भिडतउ[4] रण माहे भागउ;
सत्यासीयउ सत्त छोडि, लालच करि चरणे लागउ ।
घी तेल मूंग थाइस घणा, धै मुझनै एतउ दूयउ;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, कहइ पडि रहिस अधमूयउ ॥२९॥
अठ्यासीयइ इहां[5] वेढि, सजी सत्यासीयइ सेती;
सत्यासीया सुणि वात, कहिहिक जाइस केती ।
इंद्रतणउ ए क्षेत्र, भरत दक्षिण ए भणीयइ;
निरपराध नर नारि, हाहा पापी किम हणीयइ ।
निंदा करइ गुरुनी निपट, दया दान मुकी दिया;
पापीया पाप पच्या पछी, मइ कतूत माहरा किया ॥ ३० ॥
सत्यासीयउ साहसी, ऊठि बलि सामउ[6] थावइ;
पड्यउ न रहइ पापीयउ, धांन मुहगउ करि धावइ ।
अठ्यासीयउ अन्न[7] आंणि, करइ वलि सुंहगा कांई;
[8]लागी लत्थापत्थि, किस्युं थास्यइ हो सांइ ।
अन्न [9]पुण्यतणउ संचउ अधिक, लोक जिके करस्यइ लही ।
'समयसुंदर' साचउ कहइ, सुखी तिको थास्यइ सही ॥ ३१ ॥
सगलइ हुवउ सुगाल, अन्न[10] चिहुं दिसिथी आयउ;
आप आपणइ व्यापारी, सको अधिकारइ लायउ ।
बाजरी चउंला मउठ, के के धान सुंहगा कीधा;
सुंहगा-सुंहगा सर्व, लोक ते आणी लीधा ।

---

१ अतार. २ पोढ. ३ परघलि. ४ ति रिण माहेवलिभागउ. ५ इहां घडिवेढ; हिववेढि. ६ उभउ. ७ इहां. ८ काइ लागी लछापछि स्युं. ९ पुत्र. १० धान.

नर-नारि नूर वाध्यउ नगरि, चहल-बलाई चहुटइ थई ।
'समयसुंदर' कहइ अठ्यासीया, हिव चितनी चिंता गई ॥ ३२ ॥

मरगी नइ मंदवाडि, गया गुजरातथी नीसरि;
गयउ सोग संताप, घणो हरख हुयउ घरिघरि ।
गोरी गावइ गीत, वली विवाह मंडाणा;
लाडू खाजा लोक, खायइ थालीभर भांणा ।
शालि दालि घृत घोलसुं, भला पेट काठा भर्या ।
'समयसुंदर' कहइ अठ्यासीया, साध तउ अजे न सांभर्या ॥ ३३ ॥

श्रावक कहइ सुगाल, सहु धान थया सुंहगा;
दरसणी कहै दुकाल, अम्हे जाणां छां मुंहगा ।
आदरसुं को अन्न, अजी आपै नही अम्हनै;
श्रावक पिता समान, तिण कहीछइ तुम्हनै ।
दया मया दिल धर्म धरी, श्रावक सार सहु करइ ।
'समयसुंदर' कहै अठ्यासीया, धीरज तउ सहु को धरइ ॥ ३४ ॥

अठ्यासी कहै एम, म करो तुम्ह चिंता मुनिवर;
करौ क्रिया अनुष्ठान, तप जप संजम तत्पर ।
वांचो सूत्र-सिद्धांत, भलउ धरम मारग भाखउ;
महावीरनो वेश, रीति रूडीपरि राखउ ।
बखाण खाण थास्यै वली, श्रावक सार सहु करै ।
'समयसुंदर' कहै सत्यासीया, धीरज तउ सहु को धरै ॥ ३५ ॥

दुरभिक्ष महादुकाल, वरस सत्यासीयउ बूरो;
दीठा घणा दुकाल, पणि एहवउ को न हूवो ।
सत्यासीया-सरूप, दीठउ मइ तेहवो दाख्यउ;
गया मूआ गइंद, रह्यौ भगवंत तौ राख्यउ ।
रागद्वेष नही को माहरइ, मइ ख्याल-विनोदइ ए कीयउ ।
'समयसुंदर' कहइ सहु सुखी, कवि कल्लोल आणंद करउ ॥ ३६ ॥

---

[२] 'चंपकश्रेष्ठि चौपाइ'के दूसरे खंडकी छठी ढालमें अकालका इस प्रकार वर्णन किया है

*

तिण देसइ हिव एकदा रे, पापी पड्यउ दुकाल ।
बार बरस सीम बापड़ारे, कीधो लोक कराल ॥ १ ॥
वली मत पडिज्यो एहवो दुकाल,
जिणै विछोह्या माबाप बाल, जिणै भागा सबल भूपाल ।
खातां अन्न खूटी गया रे, कीजइ कवण प्रकार ।
भूख सगी नही केहनी रे, पेट करइ पोकार ॥ २ ॥
सगपण तउ गिणै को नहीं रे, मित्राई गई भूल ।
को कदाचि मांगै कदी रे, तौ माथे पडइ त्रिसूल ॥ ३ ॥
मांन मूकि वडे मांणसे रे, मांगवा मांडी भीख ।
तउ पिण को आपइ नहीं रे, दुखीए लीधी दीख ॥ ४ ॥
केई बईयर मूंकी गया रे, के मूंकी गया बाल ।
के मा-बाप मूंकी गया रे, कुण पडइ जंजाल ॥ ५ ॥
परदेसे गया पाधरा रे, सांभल्यउ जेथ सुकाल ।
मांणस संबल विण मूआ रे, मारग मांहि विचाल ॥ ६ ॥
बापे बेटा वेचीया रे, माटी वेची बयर ।
बयरे मांटी मूंकीया रे, अन्न न द्यइ ए वयर ॥ ७ ॥
गुखे बैठी गोरड़ी रे, वींजणे ढोलति वाय ।
पेटनै काजै पदमणी रे, जाचै घर घर जाय ॥ ८ ॥
जे पंचामृत जीमता रे, खाता द्राख अखोड ।
कांटी खायै कोरड़ी रे, के खेजडना छोड ॥ ९ ॥
जतीयांनै देई जीमता रे, ऊभा रहता आडि ।
ते तउ भाव तिहां रह्या रे, जीमता जडै किमाडि ॥ १० ॥
दांन न द्यै के दीपता रे, सहु बैठा सत छांडि ।
भीख न द्यइ को भावसुं रे, द्यै तो दुख दिखाडि ॥ ११ ॥
देव न पूजै देहरै रे, पडिकमइ नही पोसाल ।
सिथल थया श्रावक सहू रे, जती पड्या जंजाल ॥ १२ ॥

रडवडता गलीए मूआ रे, मड़ा पड्या ठांम ठांम ।
गलिमांहे थइ गंदगी रे, दै कुण नांखण दांम ॥ १३ ॥
संवत सोल सत्यासीयौ रे, ते दीठै ए दीठ ।
हिव परमेसर एहनइ रे, अलगौ करे अदीठ ॥ १४ ॥
हाहाकार सबल हूऔ रे, दीसै न को दातार ।
तिण वेला उठ्यौ तिहां रे, करवा काल उद्धार ॥ १५ ॥
अवसर देखी दीजियै रे, कीजै पर उपगार ।
लखमीनौ लाहौ लीजीयै रे, 'समयसुंदर' कहै सार ॥ १६ ॥



[३] विशेषशतक ग्रन्थलेखन प्रशस्तिमें इस दुष्कालका सरणोल्लेख

मुनिवसुषोडशवर्षे (१६८७) गूर्जरदेशे च महति दुःकाले ।
मृतकैरस्थिग्रामे जाते श्रीपत्तने नगरे ॥ १ ॥
भिक्षुभयात् कपाटे जटिते व्यवहारिभिर्भृशं बहुभिः ।
पुरुषैर्माने मुक्ते सीदति सति साधुवर्गेऽपि ॥ २ ॥
जाते च पंचरजतैर्धान्यमणे सकलवस्तुनि महर्घ्ये ।
परदेशगते लोके मुक्त्वा पितृमातृबन्धुजनान् ॥ ३ ॥
हाहाकारे जाते मारिकृतानेकलोकसंहारे ।
केनाप्यदृष्टपूर्वं निशि कोलिकलुंठिते नगरे ॥ ४ ॥
तस्मिन् समयेऽस्माभिः केनापि च हेतुना च तिष्ठद्भिः ।
श्रीसमयसुंदरोपाध्यायैर्लिखिता च प्रतिरेषा ॥ ५ ॥
मुनिमेघविजयशिष्यो गुरुभक्तो नित्यपार्श्ववर्ती च ।
तस्मै पाठनपूर्वं दत्ता प्रतिरेषा पठतु मुदा ॥ ६ ॥
प्रस्तावोचितमेतत्तु श्लोकषट्कं मया कृतम् ।
वाचनीयं विनोदेन गुणग्राहिविदांवरैः ॥ ७ ॥

ग्रन्थावलोकन

*

राजपूतानेका इतिहास

महामहोपाध्याय, रायबहादुर, साहित्यवाचस्पति डॉ० श्री गौरीशंकरजी हीराचंदजी ओझा डी. लिट्. (अजमेर) ने, कृपा करके 'भारतीय विद्या भवन' तथा 'भारतीय विद्या' के संपादकको अपनी 'राजपूतानेका इतिहास' नामक सुप्रसिद्ध अद्वितीय ग्रन्थावलीकी हाल ही में प्रकाशित ३ जिल्दें†, उपहार-स्वरूप – भेंट भेजी हैं जिनका सधन्यवाद सादर स्वीकार कर, महामहोपाध्याय-जीकी, इस महानुभावताके प्रति हम अपना हार्दिक विनम्र कृतज्ञभाव प्रकट करते हैं।

पण्डितप्रवर श्री ओझाजीने अपनी अखंड और असाधारण वाङ्मयोपासना तथा उज्वल एवं आदर्शभूत इतिहास-साधना द्वारा जो सुनिश्चल सेवा अपने पितृ-प्रदेशकी तथा जो भावपूर्ण भक्ति अपनी मातृ-भाषाकी की है, वह, भारतका भाग्योद्धार करनेकी इच्छा रखनेवाले हरएक सपूतके लिये एक अत्युत्तम बोधपाठ समान है।

ओझाजीने, प्रायः ८० वर्षके निकट पहुंचने वाले अपने सुदीर्घ जीवनमें, भारतके प्राचीन इतिहासकी अस्त-व्यस्त और शीर्ण-विशीर्ण सामग्रीका जिस ऐकान्तिक निष्ठा और अखण्डित उत्सुकताके साथ, जो मौलिक समवलोकन, संशोधन, संचयन और संकलन आदि किया है वह हमारे जैसे अनेक अल्पज्ञ अभ्यासियोंके लिये बहुत कुछ मार्गदर्शक और प्रेरणा-प्रदायक हुआ है।

ओझाजीने न तो वर्षों तक कॉलेजोंमें किताबें रट कर किसी विश्वविद्यालयकी कोई लंबी-चौडी डीग्री ही अपने गलेमें लटकाई थी और नाही किसी जर्मन-अमेरिकन युनिवर्सिटीके धुरन्धर प्रोफेसरोंके पास बैठ कर कोई थिसीज लिख-लिखा कर डॉक्टरेटका डिप्लोमा ही अपनी पीठ पर चिपकाया था। तो

---

† (१) पहली जिल्दकी दूसरी आवृत्ति, जिसमें समुच्चय 'राजपूतानेका प्राचीन इतिहास' दिया गया है। इसकी पृष्ठ संख्या, ५२+२+१०+३६९+५५ है। मूल्य रू० ७–०–०

(२) चौथी जिल्दका पहला भाग – इसमें जोधपुर राज्यका इतिहास लिखा गयाहै – जो चालू है। इसकी पृष्ठ संख्या १०+२२+२+४७५+२ है। मूल्य रू० ८–०–०

(३) पांचवीं जिल्दका पहला भाग – इसमें बीकानेर राज्यका इतिहास ग्रथित किया गया है – जो चालू है। इसकी पृष्ठ संख्या ८+१६+३६६+२ है। मूल्य रू० ६–०–०

भी ये आज महामहोपाध्याय, साहित्यवाचस्पति और ऑनररी डी. लिट्. के सर्वश्रेष्ठ पाण्डित्यप्रदर्शक पदोंसे विभूषित बने हैं। यह सन्मान इनको अपनी अखंड इतिहासोपासना ही से प्राप्त हुआ है। जिस सामान्य परिस्थितिमें रह-कर, जिस निश्चल निमग्नता और निराकुलताके साथ, इन्होंने जो ऐसी अद्भुत ज्ञानसंपत्ति प्राप्त की और उसका जो श्रेष्ठतर उपयोग, जिस सात्त्विक श्रद्धाके साथ, मातृभाषाभाषी देशजनोंकी ज्ञानवृद्धिके लिये किया, वह सब सचमुच ही एक आदर्शभूत और असामान्य जीवनध्येयका निदर्शक है। अविरत परिश्रमसे प्राप्त ज्ञानशक्ति और साधन-सामग्रीका जैसा सदुपयोग महामहोपाध्याय ओझा-जीने किया वैसा क्वचित् ही किसी पण्डितने किया होगा।

हमारे देशमें बहुत ऐसे प्रखर पण्डित और दिग्गज विद्वान् विद्यमान हैं जो सरकारी कालेजोंमें या अन्य दफ्तरोंमें, बडी बडी तनख्वायें इसलिये पाते हैं कि वे अपने बडे मोटे दिमागोंमें भरे हुए, और प्रतिवर्ष वेतनकी वृद्धिके साथ बढते जाते हुए ज्ञानके गहरे भंडारका, देशकी उस अज्ञान जनताके उपकारार्थ कुछ विनियोग करे, जिसको मनुष्यत्वकी भी पूरी कल्पना नहीं है और अपने नाममें कौन कौन अक्षर प्रयुक्त होते हैं इसका भी जिसको ठीक ज्ञान नहीं है। लेकिन ये भारी तौलके दिमागवाले विद्वान् पुरुष, ज्यों ज्यों इनकी वेतनवृद्धि होती जाती हैं त्यों त्यों इनको अपने दिमागकी रक्षाकी चिन्ता बढती जाती है और इसलिये, अपने दिमागको कमसे कम श्रम दिया जाय और उससे बहुत थोडा काम लिया जाय, उसकी सावचेती रखनेमें व्यस्त रहते हैं। नौकरीके नियमके कारन करना पडे उससे अधिक कहीं घंटा-आधघंटा भी ये अपनी खुशीसे अधिक काम करनेकी कभी इच्छा नहीं रखते। अपने अथाग दिमागमें दबे हुए अमूल्य ज्ञाननिधिमेंसे, कुछ थोडीसी कौडियोंकी किमतका माल भी, ये प्रजाके कल्याणकी कामनासे वितरण करना नहीं चाहते। अगर कोई कोई विद्वान् अपनी विद्वत्ताकी कुछ अधिक किंमत बढानेकी चाहना करते हैं और साथ ही में कहींसे कुछ अधिक वेतन पानेकी भी लालसा रखते हैं, तो वे फिर अपने दिमागको जरा कुछ कसनेकी कोशीश करते हैं और जिन इंग्रेजी पुस्तकोंके पन्नोंको रट रट कर उन्होंने अपने मस्तिष्कको भरा है उन्हींमेंसे कुछ पंक्तियां, कुछ वाक्य, कुछ शब्द, कुछ भाव इधर-उधर कर इंग्रेजीमें कोई किताब लिख डालते हैं। पर, साथमें उनको यह इच्छा नहीं होती कि जिस तरह इंग्रेज लोक

दुनियाभरकी भाषाओंमें भरे हुए ज्ञानको, अपने देशबान्धवोंके ज्ञानार्थ और अपनी मातृभाषाके भंडारकी अभिवृद्ध्यर्थ, इंग्रेजी भाषामें अवतारित करते हैं वैसे ही हम भी, कुछ अपने देशजनोंके हितार्थ और अपनी मातृभाषाकी उन्नत्यर्थ अपने दिमागमें भरे हुए ज्ञानका, थोडा बहुत आलेखन, अपनी भाषामें भी करें।

महामहोपाध्याय ओझाजी, ऊपर जिस प्रकृतिके विद्वानोंका वर्णन किया है, उससे सर्वथा भिन्न प्रकृतिके हैं। इन्होंने अपनी सेवा द्रव्यार्जनके निमित्त नहीं किंतु ज्ञानार्जन और ज्ञानवितरणके लिये समर्पित की। यह सेवा करते हुए इन्होंने न घंटोंका हिसाब रखा न वर्षोंका—न वेतनका विचार रखा, न पद-वृद्धिका। सेवाको अपने जीवनकी ध्येय-सिद्धिका एक उत्तम सहायक कारण मान, इन्होंने उसका उत्कृष्ट उपयोग किया। राजपूतानेके इतिहासका सुसंकलित आलेखन करना इन्होंने अपना जीवन-संकल्प बनाया और उसको पूरा करनेके लिये अपने प्रत्येक दिन और प्रत्येक साधनका पूरा उपयोग किया। ओझाजीको इंग्रेजी भाषाका यथेष्ट ज्ञान है, और चाहते तो, और और विद्वानोंकी तरह ये भी अपनी किताबें इंग्रेजीमें लिख कर, इंग्रेज प्रभुओंकी बोलीमें अपनी पूर्ण भक्ति प्रकट कर सकते और शायद उससे कुछ अधिक लाभ भी उठा सकते। पर ये तो रहे पूरे मातृभाषा-भक्त। जीवन-व्यापक साधना द्वारा जो अमूल्य सम्पत्ति प्राप्त की गई उसे यदि किसी पुत्रने, सबसे प्रथम, अपनी माताके चरणोंमें भेंट नहीं की तो, वह उस माताका सत्पुत्र नहीं किंतु कुपुत्र है। जो विद्वान्, विना किसी अत्यंत विशिष्टहेतुके, अपनी मातृभाषामें ग्रंथरचना न कर, केवल इंग्रेजीके मिथ्या मोहमें मुग्ध हो कर, उसीमें कुछ लिखते रहते हैं और मातृभाषाकी उपेक्षा करते हैं, वे दुनियाके सामने अपनी माताकी नालायकीका निंद्य प्रकाश करते हैं। दुर्भाग्यसे हमारे देशके बड़े बड़े नामी विद्वान् और देशनेता इस मातृद्रोहके पापसे कलंकित हैं। ओझाजी जैसे कोई विरल ही विद्वद्रत्न पुरुष हैं जिन्होंने अपनी प्राप्त सब ज्ञान-सामग्री मातृभाषाके चरणोंमें समर्पित की। और ग्रंथोंकी बात तो ठीक है, लेकिन **'प्राचीन लिपीमाला'** जैसी पुस्तकको भी—जो आन्तरराष्ट्रीय उपयोगकी दृष्टिसे भी बडे महत्त्वकी कृति है और जिसका इंग्रेजीमें होना बहुत ही उपयुक्त था—इन्होंने हिन्दी ही में लिखा और वैसा करके अपनी भाषाका उत्कृष्ट गौरव बढाया।

ओझाजी राजस्थानकी रत्नप्रसू भूमिके कर्तव्यनिष्ठ पुत्ररत्न हैं। अपनी मातृ-भूमिकी पुरातन गौरव-गाथा और कीर्ति-कथाके अवशेषोंको प्रकाशमें लानेका जैसा अविरत उद्योग इन्होंने किया है वैसा शायद ही अन्य किसी विद्वान्ने, अपनी जन्मभूमिके लिये किया हो। आज कोई ५०–६० जितने वर्ष बीत चुके, ओझाजी राजपूतानेके इतिहासका समुद्धार करनेके लिये एकनिष्ठ हो कर अपना सर्व सामर्थ्य खर्च कर रहे हैं। यौवनके प्रारंभ होनेके पूर्व ही से इन्होंने राजपूतानेके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें परिभ्रमण करना शुरू किया था और उसके इतिहासके उपादानोंका अवलोकन और अनुसन्धान करना आरंभ किया था। अपने सुदीर्घ जीवनमें इन्होंने राजपूतानेके एक-एक कौनेको कई कई बार देख डाला और उसके इतिहासकी कुछ बात बताने वाले एक-एक पत्थरको टटोल डाला।

किसी एक देश या जातिके पुरातन इतिहासके लेखकके लिये यह परम आवश्यक है कि वह अपने आलेख्य विषयकी समुच्चय प्राचीन संस्कृतिका केवल ज्ञाता ही न हो लेकिन पूर्ण मर्मज्ञ हो। उसको अपने उद्दिष्ट देशके जनसमूहकी समाजरचना, धर्मभावना, साहित्यसृष्टि, भाषाउक्ति, जीवनप्रक्रिया, प्रकृतिवैशिष्ट्य, भौगोलिक परिस्थिति आदि आदि अनेक विषयोंका आमूल-चूल ज्ञान होना चाहिए। श्रेष्ठ इतिहासकारको किसी भी जाति, धर्म, मत, पंथ या समूहके पक्ष-विपक्षसे निर्लेप होना चाहिए। उसमें भिन्न भिन्न प्रकारके उल्लेखोंमेंसे सत्यासत्यका पृथक्करण करनेकी और परस्पर विरुद्ध ऐसे अभिप्रायों पर निष्पक्ष निर्णय देनेकी यथेष्ट शक्ति होनी चाहिए। ओझाजीमें यह सब गुण यथायोग्य प्रमाणमें विद्यमान हैं और इसलिये अपने देशका ठीक प्रामाणिक इतिहास लिखनेके लिये ये पूर्ण अधिकार और सामर्थ्य रखते हैं।

जीवनभर जिस सामग्रीको ओझाजीने इस तरह संग्रहित और संकलित किया उसको ये अब **'राजपूतानेका इतिहास'** नामक विशद ग्रंथावलिके रूपमें ग्रथित कर प्रकाशित कर रहे हैं। संवत् १९८३ में इस ग्रंथावलिकी पहली जिल्द प्रकाशित हुई और अब तक कोई ७–८ जिल्दें प्रकाशित हो चुकी हैं—जिनमें उदयपुर, डुंगरपुर, बांसवाडा, प्रतापगढ आदि राज्योंके सांगोपांग इतिहास पूर्ण हो चुके हैं और जोधपुर बीकानेर राज्योंके इतिहास चालू है। प्रकाशित ग्रंथोंकी देश और विदेशके मर्मज्ञ इतिहासकोंने और पुरातत्त्वज्ञोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। भारतकी देशभाषाओंमें लिखे गये ऐतिहासिक ग्रंथोंमें इन ग्रंथोंका स्थान बहुत ऊंचा है और हिन्दी भाषाके तो ये सर्वश्रेष्ठ रत्न-ग्रंथ हैं इसमें कोई शंका नहीं।

प्री-बुद्धिष्ट इन्डिया अर्थात् बौद्धकालीन भारत

लेखक—श्रीयुत रतिलाल एन्. मेहता, एम्. ए.

[બૌદ્ધ જાતક કથાઓના વર્ણનોના મુખ્ય આધાર ઉપર આલેખાએલ પ્રાચીન ભારતની રાજકીય, આર્થિક, સામાજિક અને ભૌગોલિક પરિસ્થિતિ વિષેનો વિવેચનાત્મક ઇતિહાસ]

બૌદ્ધ ધર્મ સાથે સંબંધ ધરાવતા પાલી વાઙ્મયમાં જાતકકથા નામે એક ગ્રંથવિભાગ છે જે એકંદર બૌદ્ધ સાહિત્યમાં સૌથી વધારે લોકભોગ્ય અને લોકપ્રિય સાહિત્ય-સર્જન છે. એ સાહિત્યમાં ધર્મ, નીતિ, સદાચાર અને સુવિચારને પોષે એવા સદુપદેશોનો એવી સરસ અને સરલ રીતે સદ્બોધ આપવામાં આવ્યો છે કે જેથી સામાન્ય પ્રાકૃત-જન પણ એમાંથી હૃદયગ્રાહી ભાવો ગ્રહણ કરી શકે અને તે ભાવોને પોતાના આચરણમાં ઉતારી શકે.

ભારતવર્ષના બ્રાહ્મણ, બૌદ્ધ અને જૈન એ ત્રણેય આર્ય ધર્મોના મૂળભૂત સદાચાર અને નીતિવિષયક સિદ્ધાંતો પ્રાયઃ સમાન છે. પુણ્ય-પાપની કલ્પનાઓ અને ભાવનાઓ એ ત્રણે ધર્મોમાં લગભગ એક જેવી જ છે. ત્રણે ધર્મો પૂર્વકૃત કર્મમાં માનનારા છે. દરેક જીવને પોતે કરેલા સારા-નરસા કર્મનું ફળ ભાવિ જન્મમાં અવશ્ય ભોગવવું પડે છે એવી માન્યતા આ ત્રણે ધર્મોમાં લગભગ સરખી છે. એ માન્યતા અનુસાર સત્કર્મનું ફળ સુખદાયક અને દુષ્કર્મનું ફળ દુઃખદાયકરૂપે જીવને ઉપસ્થિત થાય છે, એવો સિદ્ધાન્ત પ્રસ્થાપિત કરવામાં આવ્યો છે. એ સિદ્ધાન્તનું સુવ્યવસ્થિત પ્રતિપાદન કરવાની દૃષ્ટિએ બૌદ્ધ અને જૈન શાસ્ત્રકારોએ, એક વિશાળ પ્રકારની સાહિત્ય-સૃષ્ટિ રચી છે જે કથા-સાહિત્ય તરીકે ઓળખાય છે. જૈનોનું કથા-સાહિત્ય પ્રમાણમાં સૌથી વધારે વિશાળ અને વિવિધતાવાળું છે પરંતુ તે કાલક્રમની દૃષ્ટિએ કાંઈક અર્વાચીન છે. બૌદ્ધ કથા-સાહિત્ય તેટલું વિસ્તૃત નથી પણ તે કાંઈક વધારે પ્રાચીન મનાય છે. એ બૌદ્ધ કથા-સાહિત્યમાં થેર અને થેરીગાથા, धम्मपदअट्ठकथा અને जातकअट्ठकथा મુખ્ય છે. થેર અને થેરીગાથાની કથાઓમાં તેમ જ ધમ્મપદની કથાઓમાં બૌદ્ધ ધર્મના સુપ્રસિદ્ધ અરહતો, સ્થવિરો, શ્રમણો, ભિક્ષુ ભિક્ષુણીઓ અને ઉપાસક-ઉપાસિકાઓ આદિના જીવનની વર્ણન કરતી કથાઓ આપવામાં આવેલી છે ત્યારે જાતક કથાઓમાં ભગવાન બુદ્ધના અર્થાત્ બોધીસત્ત્વના જીવન સાથે સંબંધ ધરાવતી—ખાસ કરીને પૂર્વના અનેક જન્મોનાં જીવનને લગતી—કથાઓ આપેલી છે. એ કથાઓની સંખ્યા ઘણી મોટી—લગભગ પાંચસોથી સાડા પાંચસો જેટલી છે.

ખરી રીતે એ બધી જ કથાઓ બુદ્ધના પૂર્વ જન્મ કે જીવન સાથે સંબંધ ધરાવતી નથી; પણ પ્રાચીન કાળમાં ભિન્નભિન્ન પ્રકારની જે લોક-કથાઓ લોકોમાં પ્રચલિત હતી તેમનો સંબંધ કોઈ-ન-કોઈ રીતે બુદ્ધના જીવન સાથે જોડી દઈ એ કથાઓના સંગ્રહકારે એ બધી કથાઓને જાતક કથાઓના નામે સંકલિત કરી છે. એ સંકલનાનું વર્તમાન રૂપ મોડામાં મોડું ઈસ્વી સનના પાંચમા સૈકામાં થયું હશે એવી વિદ્વાનોની માન્યતા છે. પણ એમાંની ઘણી ઘણી કથાઓ સૂત્રરૂપે કે અર્થરૂપે બહુ પ્રાચીન છે. કેટલીક બુદ્ધના સમયની છે અને કોઈ કોઈ તેથી ય પણ પ્રાચીન સમજાય છે.

સીલોન અને બર્મા જેવા બૌદ્ધધર્મના પ્રચારવાળા દેશોમાં એ કથાઓનાં ખૂબ વ્યાખ્યાન, વાચન અને શ્રવણ આદિ થયાં કરે છે, તેમ જ એ દેશોની લિપિમાં એ

કથાઓના મૂળ પાલી સંગ્રહો તથા એ દેશની લોકભાષાઓમાં ભાષાંતરો વિગેરે પણ પ્રકટ થયા છે. વી ફુસબ્યોલ (V. Fousböll) નામના એક યુરોપીય વિદ્વાને એ સમગ્ર પાલી કથાસંગ્રહને રોમનાક્ષરોમાં, ૭ ભાગોમાં, ઘણા વર્ષો પૂર્વે લંડનથી પ્રસિદ્ધ કર્યો છે અને તેનું સંપૂર્ણ ઇંગ્રેજી ભાષાંતર, પ્રો૦ ઈ૦ બી૦ કૅાવેલના સંપાદકપણા નીચે કેંબ્રીજથી પ્રકટ થયું છે. મુંબઈ, કલકત્તા આદિ યુનિવર્સિટીઓના પાલીભાષાના અભ્યાસક્રમમાં, અવાર-નવાર એ કથાસંગ્રહમાંના કોઈ કોઈ ભાગો, નિયત કરવામાં આવે છે અને તેથી એ ભાગોના કેટલાક નાના નાના સંગ્રહો આપણા દેશમાં પણ દેવનાગરી અક્ષરોમાં છપાયા છે. ગુજરાત પુરાતત્ત્વ મન્દિરની ગ્રંથાવલીમાં એવો એક સંગ્રહ – પાલી પાઠાવલીના નામથી – મેં પણ પ્રસિદ્ધ કર્યો હતો. બંગાલી, હિન્દી, મરાઠી અને ગુજરાતી ભાષામાં પણ એ જાતક કથાએમાંની કેટલીક કથાઓ અનુવાદરૂપે કે સારરૂપે જ્યાં ત્યાંથી પ્રકાશમાં આવેલી ઉપલબ્ધ થાય છે.

જે વિદ્યાર્થીઓ અને અભ્યાસીઓને આ જાતકકથાઓનો થોડો ઘણો પરિચય થયો હશે તેમને એની કાંઈક સામાન્ય કલ્પના આવી જ હશે, કે એ કથાઓમાં ધર્મ અને નીતિગર્ભિત ઉપદેશો સાથે ભારતવર્ષની તત્કાલીન વ્યાપક સંસ્કૃતિનું વૈવિધ્ય ભરેલું ગર્ભિત ચિત્ર પણ આલેખાએલું છે. એ ચિત્રના કેટલાક અંગોનું વ્યક્તીકરણ અને વિશદીકરણ કરવાની દૃષ્ટિએ રાઇસ ડેવીડસ્, ફિક, વિટરનિત્સ આદિ અનેક યુરોપીય વિદ્વાનોએ; તેમ જ બી૦ સી૦ સેન, એન્૦ એસ્૦ સુબ્બારાવ, બી૦ સી૦ લૉ, જી૦ ડી૦ દે આદિ ભારતીય પંડિતોએ પણ નાના મોટા અનેક નિબંધો – પ્રબંધો લખ્યા છે જેમાં અનેક ઐતિહાસિક વિષયોની વધતા ઓછા પ્રમાણમાં વિવેચના અને વિચારણા કરવામાં આવી છે. પરંતુ એ વિશાળ કથાસંગ્રહમાં આલેખાએલા વ્યાપક સંસ્કૃતિના સંપૂર્ણ ચિત્રને સુવિસ્તૃત અને સુસ્પષ્ટ રીતે વિવેચિત કરવાનું કાર્ય અદ્યાપિ કોઇએ ન હોતું કર્યું; તે હવે ગુજરાતના એક વિદ્યારસિક વિનીત યુવક અને ઉત્સાહી અભ્યાસી શ્રીયુત રતિલાલ એન્. મહેતાએ કર્યું છે અને તે ઘણી જ ઉત્તમ રીતે કર્યું છે, તેથી આ સ્થળે અમે એમને અમારા સહર્ષ અભિનંદન આપીએ છીએ.

શ્રીયુત મહેતાને ગુજરાતના એક અભ્યાસી યુવક તરીકે સંબોધવાનો અમારો આશય સાભિપ્રાય છે. મહારાષ્ટ્ર, મદરાસ, બંગાલ આદિ પ્રાંતોના યુવકોની માફક ગુજરાતના યુવકો પણ પ્રતિવર્ષ, મોટી સંખ્યામાં વિદ્યોત્તીર્ણ થઈ, યુનિવર્સિટીના પદવીધારક બને છે અને તેમાં કેટલાક તો વિશિષ્ટ પ્રતિભા અને તીક્ષ્ણ બુદ્ધિવાળા પણ હોય છે. પરંતુ, ગુજરાતના એ બુદ્ધિશાળી પદવીધરોમાં, પરીક્ષોત્તીર્ણ કાળ પછી ભાગ્યે જ વિદ્યાની આંતરિક ઉપાસના કે ગંભીર વિષયોના અધ્યયનની અભિરુચિનું આપણને ઉલ્લેખયોગ્ય નિદર્શન પ્રાપ્ત થાય છે. એ બુદ્ધિમાન્ યુવકોનો મોટો ભાગ તો લક્ષ્મીદેવીની આરાધનામાં જ તલ્લીન થઈ જાય છે; અને જેમને પોતાના ઉપર લક્ષ્મીદેવીની મહેર નજર કોઈ પણ રીતે થતી ન દેખાતી હોય, તેવાઓ પછી ન છુટકે સરસ્વતી દેવીના કોઈ મંદિરમાં પ્રવિષ્ટ થઈ તેની ઉપાસનામાં જોડાય છે. સંપૂર્ણ ઉમંગ વિના સરસ્વતી-મંદિરમાં પ્રવિષ્ટ થએલા ઉપાસકો દ્વારા પ્રૌઢ અને પાંડિત્યપૂર્ણ કોટિના સાહિત્ય-સર્જનની ભાગ્યે જ આશા રાખી શકાય. આથી આજે આપણે અનુભવીએ છીએ કે મહારાષ્ટ્ર, મદરાસ અને બંગાલના વિદ્યા-સ્નાત પદવીધરો જે જાતની વિવિધ વાઙ્મય સેવા કરી રહ્યા છે અને તે દ્વારા વિદ્વત્પરિષદોમાં જે ખ્યાતિ મેળવી રહ્યા છે તેની સરખામણીમાં આપણા ગુજરાતી ગ્રેજ્યુએટ-વર્ગની વાઙ્મયસેવા કે સાહિત્ય-સૃષ્ટિ

સાવ નગણ્ય કોટિની ગણાય છે. બહુ બહુ તો આ મનાતા સરસ્વતી-ભક્તોમાંના કેટલાકને આપણે વાર્તા કે કવિતાના કર્તન–પિંજનની હળવી પરીક્ષામાં થોડા ઘણા સારા માર્ક મેળવવા પ્રયાસ કરતા જોઈ શકીએ. એથી વધારે આગળ વધીને, વિદ્યાના વિવિધ પ્રકારના વિશાલ અને ગહન વનોમાં વિચરી, તેમાંથી નાના પ્રકારના વિષયોના વિચાર પુષ્પોનું સંચયન કરી, પરિશ્રમ-પૂર્વક, તેમને જાતજાતના સમૃદ્ધ આકાર-પ્રકારના મૂલ્યવાન્ અને મનોવેધક ગ્રંથ-ગુચ્છકોના રૂપમાં ગ્રથિત કરી, અથવા કોઈક વિષયમાં કશુંક સારભૂત મૌલિક વસ્તુસંશોધન કે વિચારાવિષ્કરણ કરી ગુજરાતી વિદ્વત્તાની આંતરરાષ્ટ્રીય દૃષ્ટિએ પ્રતિષ્ઠા વધારવાની ભાગ્યે જ કોઈની આકાંક્ષા કે પ્રવૃત્તિ દેખાય છે.*

આવી પરિસ્થિતિમાં, શ્રીયુત રતિલાલ મહેતાનો એ વ્યાસંગપૂર્ણ પ્રયાસ કે જે એમણે આ પ્રી-બુદ્ધિષ્ટ ઇન્ડિઆ નામના વસ્તુપરિપૂર્ણ અને મૂલ્યવાન્ મૌલિક પુસ્તકના નિર્માણ માટે લીધો છે, તે અમને એક ગુજરાતી વિદ્વાન્ યુવકની ઉચ્ચતર વિદ્યાભિરુચિના સુંદર નિદર્શક કાર્ય તરીકે વધારે આનંદદાયક લાગ્યો છે. શ્રી મહેતાની આ કૃતિ આંતરરાષ્ટ્રીય વિદ્વાનોમાં સુંદર સત્કાર પામે તેવી છે અને એ વિષયના કોઈ પણ અભ્યાસી તેમ જ અધ્યાપકને એક ઉત્તમ માહિતીપૂર્ણ સ્થાયી આધારભૂત ગ્રંથની આવશ્યકતા પૂર્ણ કરે તેમ છે.

શ્રી મહેતાનું આ પુસ્તક કદમાં સારી પેઠે મોટું છે. ખીચોખીચ અને ઠોસ લખાણથી ભરેલા, રૉયલ સાઇઝના લગભગ ૫૦૦ પાના જેટલું એનું દળ છે. એમાંનું દરેક પ્રકરણ અને દરેક પૃષ્ઠ, પરિમિત અને પરિમાર્જિત શબ્દ રચનાવાળા વિધાયક વાક્યો અને પંડિતોને અભિમત એવા પ્રમાણભૂત અવતરણોથી અંકિત છે. લેખકે, આની ગ્રંથરૂપે સંકલના કરતાં પહેલાં, પ્રથમ પાંચસો કરતાં ય વધારે સંખ્યાવાળી એ વિચિત્ર જાતક કથાઓમાં વર્ણવવામાં આવેલ પ્રત્યેક વસ્તુ અને પ્રત્યેક વિધાનને, ખૂબ મનનપૂર્વક હૃદયંગમ કરી તેનો નિષ્કર્ષ તારવી કાઢ્યો; અને તે પછી રાજકીય, સામાજિક, આર્થિક આદિ ભિન્નભિન્ન વિષયોના અનેક ભેદોપભેદો સૂચવનારા નામનિર્દેશો નીચે, બહુ જ વ્યવસ્થિતરીતે, એ નિષ્કર્ષનું પદ્ધતિપુરસ્સર પૃથકકરણ કરી, શુદ્ધ નવનીત જેવું ચોખ્ખું તારણ કાઢી, તદનુસાર ક્રમપૂર્વક આ પુસ્તકનું સુસંબદ્ધ આલેખન કર્યું છે.

આખું પુસ્તક મુખ્ય ૫ વિભાગોમાં વિભક્ત કરવામાં આવ્યું છે; અને તે દરેક વિભાગને તેના સમુચ્ચાયક અનેક ઉપવિભાગો, અને તે દરેક ઉપવિભાગને પણ તદનુષંગી અનેક અવાન્તર પ્રકરણોથી મંડિત કરવામાં આવ્યું છે. મુખ્ય વિભાગોનો નામ–નિર્દેશ આ પ્રમાણે છે.

(૧) રાજકીય ઇતિહાસની આછી રૂપરેખા, (૨) રાજતંત્રની વ્યવસ્થાપદ્ધતિ, (૩) આર્થિક અવસ્થા, (૪) સામાજિક પરિસ્થિતિ, (૫) ભૌગોલિક માહીતી.

---

* અલબત્ત, અમારૂં આ કથન વ્યાપક દૃષ્ટિએ છે. આના અપવાદરૂપે, કેટલીક એવી વિદ્વાન્ યુવક વ્યક્તિઓ પણ હવે ગૂર્જરમાતાના ખોળામાં ખેલતી દેખાય છે જેઓ ગુજરાતની જ્ઞાનગરિમાની પ્રતિષ્ઠા વધારવાનાં ઉત્કટ કોડ સેવી રહી છે. શ્રીયુત રસિકલાલ છો૦ પરીખ, શ્રી ઉમાશંકર જોષી, શ્રી મધુસૂદન મોદી, ભાઈ ભોગીલાલ સાંડેસરા, શ્રી કેશવરામ શાસ્ત્રી, પંડિત શ્રી બેચરદાસ દોસી, શ્રી શાંતિલાલ ઉપાધ્યાય, ડૉ૦ હસમુખ સાંકળીયા, ડૉ૦ શ્રી મણીલાલ પટેલ, શ્રી સારાભાઈ નવાબ, શ્રી રત્નમણીરાવ જોધ, શ્રી મંજુલાલ મજમુદાર–આદિ અનેક યુવક મિત્રો યથાસાધન સરસ્વતી દેવીની ગંભીર ઉપાસનામાં તલ્લીન થવા પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે. તેઓ ભવિષ્યમાં, ગુજરાતની જ્ઞાનદરિદ્રતાને દૂર કરવાના પ્રારંભકોમાં એક પ્રશસ્ય સ્થાન મેળવે એવી આશા રાખીએ.

પ્રથમ વિભાગમાં આ પ્રમાણે ઉપવિભાગો પાડવામાં આવ્યા છેઃ–પ્રાસ્તાવિક, (૧) પ્રાચીન કાળ, (૨) કુરુ-પાંચાલ રાજાઓ, (૩) વિદેહ અને બીજા નાના રાજ્યો, (૪) મહાજનપદોનો સમય.

બીજા વિભાગમાં આ પ્રમાણે ઉપવિભાગો કરવામાં આવેલા છેઃ–પ્રાસ્તાવિક, (૧) રાજકીય વાતાવરણ, (૨) કેન્દ્રસ્થ રાજતંત્ર, (૩) રાજકર વ્યવસ્થા પદ્ધતિ, (૪) ન્યાય વ્યવસ્થા પદ્ધતિ, (૫) સૈનિક તંત્રરચના.

ત્રીજા વિભાગના ઉપવિભાગો આ પ્રમાણે છેઃ–પ્રાસ્તાવિક, (૧) ઉત્પાદન, (૨) વિભાજન. (૩) પરિવર્તન, (૪) ઉપયોગ.

ચોથા વિભાગના ઉપવિભાગો આ મુજબ છેઃ–પ્રાસ્તાવિક, (૧) સામાજિક બંધારણ, (૨) કુટુંબ, (૩) મિત્ર અને સંબંધી, (૪) સ્ત્રીનું સ્થાન, (૫) શિક્ષણ, (૬) કળા અને વિજ્ઞાન, (૭) ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાન, (૮) રીતિ–રિવાજ.

પાંચમા વિભાગના આ પ્રમાણે ઉપવિભાગો છેઃ–પ્રાસ્તાવિક, (૧) સામાન્ય અવલોકન, (૨) ભારતવર્ષના વિભાગો, (૩) ભૌગોલિક નામાવલી, ઉપસંહાર.

આરીતે આ આખા ગ્રંથની સુવિશદ યોજના કરવામાં આવી છે; અને એમાં, પ્રાચીન ઇતિહાસના આલેખ્યની દૃષ્ટિએ જાતકોમાંથી મળી આવતી દરેકે દરેક સૂક્ષ્મ બાબતની નોંધ લેવામાં આવી છે. અમે જેમ ઉપર કહ્યું છે તેમ, જાતક કથાઓનો આટલી ઝીણવટથી આજ સુધી કોઇએ અભ્યાસ કર્યો ન હતો અને તે ઉપર આવો વિશદ ગ્રંથ કોઇએ લખ્યો ન હતો. શ્રીયુત રતિલાલને આવી મૌલિક અને મૂલ્યવાન્ કૃતિના નિર્માણ માટે અમારા ફરી હાર્દિક અભિવાદન.

ગ્રંથના નામનિર્દેશવિષે લેખકને પોતાને જ પૂર્ણ સંતોષ નથી–એ એમની પ્રસ્તાવના ઉપરથી જોઇ શકાય છે. અમને પણ એ આપેલું નામ બરાબર વિષયસંગત હોય તેમ લાગતું નથી. અમને એમાં બે અસંગતિઓ દેખાય છે પ્રથમ તો એ કે 'બુદ્ધિષ્ટ ઇન્ડિયા' એવા નામાભિધાનથી નિર્દિષ્ટ કરવા જેવી ભારતવર્ષના ઇતિહાસમાં કોઈ વાસ્તવિક પરિસ્થિતિ ક્યારેય નિર્માણ થઈ ન હતી. ભારતવર્ષની તત્કાલીન ધાર્મિક અને સામાજિક પરિસ્થિતિનું કાંઇક ભ્રાંત જ્ઞાન મેળવીને, યુરોપીય વિદ્વાનોએ 'વૈદિક ઇન્ડિયા' 'બુદ્ધિષ્ટ ઇન્ડિયા' આદિ ભ્રમાત્મક નામો, આપણા દેશના પ્રજાકીય ઇતિહાસને લાગુ કરી, આપણી જાતીય એકતાની ભાવનામાં મિથ્યા ભેદબુદ્ધિ ઉત્પન્ન કરવાનો જાણે અજાણે ભૂલભરેલો પ્રયત્ન કર્યો છે. જેમ અત્યારે કેટલાક રાજપ્રકરણી સ્વાર્થીજનો 'મુસ્લીમ ઇન્ડિયા' અને 'હિંદુ ઇન્ડિયા' ના પ્રજાવિઘાતક ખોટા ભેદો કલ્પિત કરી ભારતની રાષ્ટ્રીય એકતાનો ભંગ કરવા મિથ્યા પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે. પણ વાસ્તવિક રીતે ભારતમાં ધર્મભેદના લીધે રાષ્ટ્રભેદ કરી શકાય એવી કશી જ વસ્તુસ્થિતિ છે નહિં. ભારતવર્ષની, જો એકતા હોય તો તે ધર્મ, ભાષા કે જાતિના લીધે નહિં પણ ભૌગોલિક પરિસ્થિતિને લીધે છે; અને જ્યાં સુધી ભારતવર્ષનો ઉત્તરભાગ હિમાલયના કોટથી અને પૂર્વ, પશ્ચિમ, દક્ષિણભાગ મહાસાગરની ખાઈથી રક્ષાએલો છે ત્યાં સુધી એની અખંડતાનો કોઈ નાશ કરી શકે તેમ નથી. 'બુદ્ધિષ્ટ ઇન્ડિયા'નો ખરો અર્થ શો છે અને શા માટે એ નામ ઉત્પન્ન કરવામાં આવ્યું છે અમને તો એ જ પૂરેપૂરૂં સમજાતું નથી. ભારતવર્ષના કોઈ પણ ભાગને બૌદ્ધ પ્રદેશ તરીકે, અથવા કોઈ પણ કાળને બૌદ્ધ કાળ તરીકે, ઓળખાવવો એ ઇતિહાસથી અસંબદ્ધ છે. ભારતના ઇતિહાસમાં એવો કોઈ કાળ નહિં આવ્યો કે જેમાં માત્ર બૌદ્ધ ધર્મ જ અખિલરાષ્ટ્રવ્યાપી ધર્મ બની ગયો હોય. બૌદ્ધધર્મનો મોટામાં મોટો ઉપાસક અને પ્રચારક

રાજા મૌર્ય સમ્રાટ્ અશોક થઈ ગયો–પણ તેના સમયમાં ય બૌદ્ધધર્મ અખિલરાષ્ટ્રવ્યાપી ધર્મ ન હોતો બન્યો. એના સમયમાં પણ વૈદિક અને જૈન આદિ બૌદ્ધેતર ધર્મો યથેષ્ટ શક્તિશાળી અને પોત-પોતાના અનુયાયી વર્ગમાં સુપ્રતિષ્ઠિત હતા. અલબત્ત રાજ્યાશ્રયના લીધે એ ધર્મના અનુયાયીઓની સંખ્યાવૃદ્ધિકે બલવૃદ્ધિમાં કેટલીક ફેરફાર થાય એ સ્વાભાવિક જ છે. પણ તેથી કાંઈ એનો અખિલરાષ્ટ્રવ્યાપી નામનિર્દેશ ન કરી શકાય. અશોકના સમયમાં ય વૈદિકધર્માનુયાયી પ્રજાજનોની મોટી બહુમતી હતી. તેથી ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ ભારતમાં કોઈ પણ સમયને કે કોઈ પણ પ્રદેશને 'બુદ્ધિષ્ટ' એ વિશેષણ આપવું બરાબર અન્વર્થક નથી લાગતું. અલબત્ત બુદ્ધના સ્વકીય વ્યક્તિત્વની દૃષ્ટિએ આપણે એમના સમયને 'બુદ્ધના સમય' તરીકે ઓળખી શકીએ–જેમ મહાવીર કે અન્ય તેવા ઐતિહાસિક પુરુષોના સમયને તેમના નામ સાથે સંબોધી શકીએ તેમ. અસ્તુ, એ તો એક અમારી સામાન્ય વિચારણા છે. 'બુદ્ધિષ્ટ ઇન્ડિયા' એ શબ્દ વિદ્વાનોમાં એટલો બધો રૂઢ અને પ્રચલિત થઈ ગયો છે કે એમાં ફેરફાર થવો સુલભ નથી અને તેથી શ્રી રતિલાલના પ્રસ્તુત ગ્રંથના એ વિશેષણમાં અમે કાંઈ ખાસ ભૂલ તરીકે એનું સૂચન કરતા નથી. અમને જે ખાસ કાંઈક કહેવા જેવું લાગે છે તે પ્રી-બુદ્ધિષ્ટ નિર્દેશમાં છે. આ જાતક કથાઓમાં જે વર્ણનો આપેલાં છે તે બધાં જ બુદ્ધ પૂર્વકાલીન હશે એમ માનવાને કશું જ કારણ નથી. બલ્કે એ વર્ણનસૂચિત વસ્તુસ્થિતિ બુદ્ધપૂર્વકાલમાં કેટલે અંશે વાસ્તવિક હશે અમને તો એની જ કાંઈક શંકા છે. એ વિધાન તો આપણે ત્યારે જ કરી શકીએ જ્યારે એ જાતક કથા-સંગ્રહની રચના નિ:સંદેહરીતે બુદ્ધપૂર્વકાળમાં થએલી માની શકીએ. બાકી ખરી રીતે તો એ કથાઓમાંના વર્ણનોની કાળમર્યાદા આપણે એક પ્રાચીનકાળથી લઇ એમનું અંતિમરૂપ જ્યારે સ્થિર થયું હોય ત્યાં સુધીની ગણવી જોઇએ. એટલે જો એનું નામ, જેમ શ્રી રતિલાલ પોતે જ પોતાની પ્રસ્તાવનામાં સૂચવે છે તેમ India in the Jatkas કે એના જેવું જ કોઈ વધારે અન્વર્થક નામ મુકયું હોત તો કદાચ વધારે સંગત થાત. અસ્તુ.

અંતે અમે એક ખાસ સૂચના શ્રી મહેતાને કરવા ઇચ્છીએ છીએ, તે એ કે, જેવી રીતે અથક પરિશ્રમ લઈ એમણે એ અમૂલ્ય ગ્રંથ ઇંગ્રેજી ભાષામાં લખ્યો છે તેવી જ રીતે એની કોઈ પ્રતિમૂર્તિ બનાવી પોતાની માતૃભાષાના ખોળામાં પણ એમણે ભેટ ધરવી જોઇએ. વધારે યોગ્ય તો એ ગણાય, કે આપણા પ્રતિભાશાળી વિદ્વાન્ લેખકોએ, પ્રથમ પોતાની આદર્શ કૃતિઓ માતૃભાષામાં જ નિર્માણ કરવી જોઇએ અને તે પછી તેની પ્રતિમૂર્તિઓ પરભાષામાં ઢાળવી જોઇએ. તો જ આપણે આપણી ભાષાના ભંડારને સમૃદ્ધ કરી શકીએ અને સ્વભાષાનું ગૌરવ વધારી શકીએ. ઇંગ્રેજી એ આપણી રાજભાષા છે, તેમ જ આંતરરાષ્ટ્રીય ભાષા તરીકે એણે મોટી પ્રતિષ્ઠા મેળવી છે, તેથી એમાં આપણે આપણી વિશિષ્ટ કૃતિઓનાં રૂપાન્તરો આલેખિત કરીએ તે ઉચિત છે. પણ, ભૂખે મરતી પોતાની સગી માને રોટલીનું સૂકું બટકુંએ ન આપીએ, અને જે આપણને અસભ્ય ગુલામ તરીકે મનમાં ગણતી હોય અને આપણી છાયા પણ સ્પર્શવા ન ઇચ્છતી હોય તેની આગળ હાથ જોડી નૈવેદ્યના થાળ ધરવાની રજા માંગવા આજીજી કરીએ, તે જેટલું તિરસ્કરણીય અને લજ્જાજનક છે, તેટલું જ સ્વભાષાની ઉપેક્ષા કરી વિદેશી વિજેતાઓની ભાષાના ચરણે પોતાનું સર્વસ્વ મુકી તેનાથી ગર્વ ધારણ કરવું તિરસ્કરણીય અને લજ્જાજનક હોવું જોઇએ. ગુર્જરભૂમિ અને ગૂર્જરભાષાની નવજ્યોતિને પ્રજ્જ્વલિત કરવાની અભિલાષાવાળા ગૂર્જર યુવક વિદ્વાનો એ આશા સફળ કરે.

–जिन विजय

भारतीय विद्या भवन

अध्यापकमण्डल

*

संस्कृत वाङ्मय और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

१. डॉ० मणिलाल पटेल, पीएच्. डी. नियामक; तथा श्रीमुंगालाल गोयनका अध्यापक, संस्कृत साहित्य और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

२. पं० मोतीराम शास्त्री, मुख्याध्यापक मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला

३. पण्डित बी. एल्. शाम्भोग

प्राकृत भाषावर्ग और हिन्दी वाङ्मय

श्री जिन विजयजी मुनि

भागवत धर्मशास्त्र

१. श्रीदुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री
अवैतनिक अध्यापक भागवत धर्मसाहित्य

२ श्री अ० डी० पुसालकर, एम. ए., एलएल. बी.
श्रीस्वामीनारायण व्याख्याता, भागवत धर्म

३ श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम. ए., एलएल. बी.
श्रीगोवर्धनदास सुन्दरदास भागवतधर्म रीसर्च फेलो

जैन वाङ्मय

श्री अ० स० गोपाणी, एम. ए.
सर् कीकाभाई प्रेमचंद अध्यापक-जैनशास्त्र

भारतीय इतिहास

श्री शिवदत्त ज्ञानी, एम. ए.
श्रीरामेश्वरदास बिड़ला अध्यापक, भारतीय इतिहास

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भारतीय विद्या-ग्रन्थावली

*

उक्तिव्यक्तिप्रकरण [संस्कृत] पं० दामोदरकृत – सं० श्री जिन विजयजी मुनि

प्राचीन गुजराती गद्यनिदर्शन -:- तरुणप्रभाचार्यग्रन्थोद्धृत ,,

ऋग्वेद-संहिता, षष्ठ मण्डल; सं० डॉ० मणिलाल पटेल

विसुद्धिमग्ग [बुद्धघोषकृत पालीभाषाग्रंथ] सं० श्री धर्मानन्द कोसंबी

नाणपंचमीकहा – [महेश्वरसूरिकृत प्राकृत भाषामय] } सं० श्री
रिष्टसमुच्चय – [दुर्गदेवकृत ,, ,,] } अ० स० गोपाणी

भारतीय विद्या [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका] सं० श्री जि० वि० मुनि

*

BHARATIYA VIDYA (JOURNAL OF THE B. V. B.)
Editor Dr. Manilal Patel Ph. D.

JACOBI'S ESSAYS ON THE APABHRAMSHA
by Dr. Manilal Patel

VAISHNAVISM: A HISTORICAL RETROSPECT
by Shri Durgashanker K. Shastri
assisted by Miss Sushila Mehta, M. A., LL. B.

COMPARATIVE STUDIES IN THE PURANAS
by Shri A. D. Pusalkar

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press, 26-28, Kolbhat Street, Bombay.

Published by DR. MANILAL PATEL, Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Andheri, Bombay.

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

वर्ष १] ऑगस्ट, ई० स० १९४० * श्रावण, संवत् १९९७ [अंक ३



संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-० * वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक]  [इंग्रेजी षाण्मासिक

*

भारतीय विद्या

वर्ष १] श्रावण, सं० १९९६ [अंक ३

लेखानुक्रम

*

भारतीय विद्या

। हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका ।

नियमावली

(अ) 'भारतीय विद्या' त्रैमासिकके वर्षभरमें ४ अंक प्रकाशित होते हैं। उनका प्रकाशन क्रमशः, माघ, वैशाख, श्रावण और कार्तिक मासके अन्तमें होता है।

(आ) 'भारतीय विद्या'में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषामें लिखे हुए लेख-निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं। गुजराती लेख, लेखकोंकी इच्छानुसार गुजराती लिपि अगर देवनागरी लिपिमें भी छापे जा सकते हैं।

(इ) 'भारतीय विद्या'में भारत वर्षके प्राचीन इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, तत्त्व-ज्ञान इत्यादि सभी विषयोंके परिचायक और विवेचक लेख-निबन्ध-टीका-टिप्पणी आदि प्रकाशित किये जाते हैं।

(ई) 'भारतीय विद्या'की अनुपूर्तिके रूपमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश और प्राचीन देश्य भाषामें ग्रथित कुछ प्रकीर्णक कृतियोंके मूलरूपमें भी प्रकाशित किये जानेकी योजना है।

(उ) 'भारतीय विद्या'में प्रकाशित होनेके लिये लेखादि भेजने वाले लेखक-विद्वानोंको, उनके लेखकी (यदि वह लेख कमसे कम ४ पृष्ठसे छोटा न हो तो) २५ प्रतियां अधिक छपवा कर उन्हें भेट दी जायगी।

(ऊ) लेखके साथ यदि कोई चित्रादि देनेकी योजना होगी तो उसके दिये जानेका भी प्रबन्ध किया जायगा; पर उन चित्रादिके भेजनेका कार्य लेखकको करना होगा।

(ए) विद्वानोंको विज्ञप्ति है कि-'भारतीय विद्या'में प्रकट होनेके लिये जो लेखादि भेजे जायं वे स्पष्ट और सुवाच्य लिपिमें लिखे होने चाहिए। कागजके एक ही पार्श्वमें लिखान रहना चाहिए। टिप्पणी आदिके संकेत सुबोध्य और सुव्यवस्थित हों।

(ऐ) छपनेके लिये भेजे हुए लेखोंकी योग्यायोग्यताका निर्णय करनेका अधिकार संपादकको है।

(ओ) संपादनकार्यके साथ संबन्ध रखने वाला सब प्रकारका पत्र-व्यवहार-'संपादक-भारतीय विद्या' इस नामसे करना चाहिए और ग्राहक वगैरह होनेके विषयका पत्र-व्यवहार-'मंत्री, भारतीय विद्या भवन' इस नामसे करना चाहिए।

(औ) 'भारतीय विद्या'-**BHARATIYA VIDYA**-इसी नामका एक पत्र, इंग्रेजी भाषामें भी भवन प्रकाशित करता है जो षाण्मासिक है। उसके वर्षमें दो अंक प्रकाशित होते हैं। उसका वार्षिक मूल्य ४-०-० है।



भारतीय विद्या

प्रथम वर्ष, तृतीय अंक] [वैशाख, वि० सं० १९९०

राजर्षि कुमारपाल

*

[संपादकीय निबन्ध[1]]

*

કુમારપાલરાજાનું જીવન ગુજરાતના ઇતિહાસમાં એક અનેરું સ્થાન ભોગવે છે. કેવળ ગુજરાતના ઇતિહાસમાં જ નહિ આખાયે ભારતના ઇતિહાસમાં પણ તેનું વિશિષ્ટત્વ ખાસ તરી આવે છે. તેનું જીવન એક સાધારણ રાજજીવન જેવું સામાન્ય ન હતું. તેનામાં અનેક અસાધારણતાઓ હતી. મનુષ્યજીવનની ઉચ્ચ-નીચ એવી બધી દશાઓ તેના જીવનસાથે સંકળાયેલ હતી. સુખ અને દુઃખની અનેકવિધ અનુભૂતિઓનો તેના આત્માને સાક્ષાત્કાર થયો હતો. તેનું જીવન એક મહાકાવ્ય જેવું હતું જેમાં શૃંગાર, હાસ્ય, કરુણ, રૌદ્ર, વીર, ભયાનક, બીભત્સ, અદ્ભુત અને શાન્ત એમ નવે રસોનો પરિપાક થયો હતો. માધુર્ય, ઓજસ અને પ્રસાદ એ ત્રણે ગુણો તેની જીવનકવિતામાં ઓતપ્રોત થયા હતા. સુકુલજન્મ દૈવકોપ કુટુંબવિયોગ, દેશત્યાગ, સંકટસહન, સાહાય્ય-અસાહાય્ય, ક્ષુધા-તૃષા પીડન, ભિક્ષાયાચન, હર્ષ-શોકપ્રસંગ, અરણ્યાદિ પરિભ્રમણ, જીવિતાપત્તિ, રાજ્યપ્રાપ્તિ, યુદ્ધપ્રવૃત્તિ, શત્રુસંહાર, વિજયયાત્રા, નીતિ પ્રવર્તન, ધર્મપાલન, અભ્યુદયારોહણ અને અંતે અનિચ્છિતભાવે મરણ: ઇત્યાદિ ઇત્યાદિ એક મહાખ્યાયિકાના વિવિધ વર્ણન માટે આવશ્યક એવી સર્વ રસોત્પાદક સામગ્રી,

1 ગતવર્ષ (સંવત ૧૯૮૯)ના જેઠ માસમાં પાટણ મુકામે ભરવામાં આવેલા હૈમસારસ્વત સત્રના પ્રસંગ ઉપર વાંચવા માટે લખાયેલો નિબંધ

તેની જીવનાખ્યાયિકામાં અંતર્ગ્રથિત થઈ હતી. કાવ્યમીમાંસકોએ ઉત્તમકાવ્યની સૃષ્ટિ માટે કાવ્યશાસ્ત્રમાં જે એક ધીરોદાત્ત નાયકની રમ્ય વર્ણના કરેલી છે તેનો તે યથાર્થ આદર્શ હતો. મનુષ્યજીવનમાં અનુભવાતી અપકર્ષ અને ઉત્કર્ષની ભિન્ન ભિન્ન પરિસ્થિતિઓનું તેના એ એક જ જીવનમાં વિચિત્ર સમ્મેલન થયું હતું. તેના એવા એ અસાધારણ જીવનનો પૂર્ણ ઇતિહાસ આપણને ઉપલબ્ધ નથી. જે કાંઈ ઐતિહાસિક સામગ્રી ઉપલબ્ધ છે તે અપૂર્ણ, અસ્તવ્યસ્ત અને થોડીઘણી અતિશયોક્તિવાળી છે. છતાં એ સામગ્રીમાંથી, ગુજરાતના બીજા કોઈ પણ રાજા કરતાં વધારે વિસ્તૃત અને વધારે પ્રમાણભૂત ઇતિહાસ તેના જીવનમાટે ઉપલબ્ધ કરી શકાય છે. ગુજરાત બહારના પણ બીજા કોઈ તેવા પુરાતન ભારતીય રાજાનો તેટલો વિસ્તૃત જીવન-ઇતિહાસ ઉપલબ્ધ થવો શક્ય નથી. એ સામગ્રી ઉપરથી તેના કુલ, વંશ, જન્મ, બાલ્યાવસ્થા, યૌવનાવસ્થા, દેશાટન, સંકટસહન, રાજ્યપ્રાપ્તિ, રાજકારભાર, ધર્માચરણ વગેરે વગેરે અનેક બાબતોની યથાર્થ માહીતી આપણને મળે છે. તેના રાજ્યના પ્રધાન પુરુષો, નામાંકિત પ્રજાજનો, ધર્મગુરુઓ અને વિદ્વાનો આદિ બીજી અનેક વ્યક્તિઓનો પણ ઘણો ઘણો પરિચય એ સામગ્રીદ્વારા આપણે મેળવી શકીએ છીએ. તેણે કરેલા લોકોપયોગી અને ધર્મોપયોગી કાર્યોની ઠીક જેવી રૂપરેખા પણ આપણે એમાં જોઈ શકીએ છીએ. હું અહિંઆ એ રૂપરેખાનું કેટલુંક વિશિષ્ટ દર્શન આપને આજે કરાવવા માંગું છું.

ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ કુમારપાલના રાજજીવનનું જે રેખાચિત્ર હું અહિ આલેખવા ઇચ્છું છું તેની સામગ્રી પ્રમાણભૂત અને સર્વથા વિશ્વાસપાત્ર છે. એ સામગ્રી મુકી જનારા, પ્રાયઃ કુમારપાલના, વધતા યા ઓછા, પણ ખાસ પરિચયમાં આવેલા પુરુષો છે. એમાં જે મુખ્ય સૂત્રધાર છે તે તો ખુદ કુમારપાલના પરમ ગુરુ અને ગુજરાતના સમગ્ર વિદ્વાનોના મુકુટમણિ આચાર્ય હેમચંદ્ર છે. હેમચંદ્રાચાર્યના વ્યક્તિત્વ અને કૃતિત્વ વિષે, હવે ઘણું ઘણું કહેવામાં આવ્યું છે તેથી તેનું પુનરાવર્તન કે પિષ્ટપેષણ કરવાની આવશ્યકતા નથી. **संस्कृतद्व्याश्रय** કાવ્યના છેલ્લા પાંચ સર્ગોમાં અને **प्राकृतद्व्याश्रय**ના ૮ સર્ગોમાં એ આચાર્યે કુમારપાલનું કાવ્યમય જીવનચિત્રણ કર્યું છે. હેમચંદ્રનું એ ચિત્રણ કુમારપાલના રાજ્યાભિષેકથી જ શુરુ થાય છે એમાં ઐતિહાસિક ઘટનાઓનું સૂચન તો નહિ જેવું જ છે, પણ એના રાજજીવનનું રેખાંકણ કરવા માટેની સાધનસામગ્રી સારા પ્રમાણમાં સમાએલી છે. હેમાચાર્ય કેવળ કવિકલ્પનાનાં આકાશી ચિત્રો નથી આલેખતા. જે દ્વ્યાશ્રયપદ્ધતિનું એ કાવ્ય છે તેમાં એવાં કલ્પનાચિત્રો દોરવા માટેની મૂળ ભૂત એવી શબ્દ સામગ્રી જ નથી. એ કાવ્યમાં અર્થાનુસારી શબ્દરચના નથી પરંતુ શબ્દાનુસારી અર્થરચના છે. જે જાતના શબ્દપ્રયોગો વ્યાકરણના ક્રમમાં ચાલ્યા આવ્યા તે જાતના શબ્દોમાં બંધ બેસે તેવો અર્થ તેમણે કુમારપાલના રાજજીવનના ઇતિહાસમાંથી પોતાના વર્ણન માટે તારવી લીધો અને તેને શ્લોકબદ્ધ કરી દીધો. એટલા જ અંશમાં એ કાવ્યનું ખાસ કવિત્વ છે. બાકી એનામાં કવિતાની સરસતાની દૃષ્ટિએ કહેવાય તેવી વિશિષ્ટ વિભૂતિ નથી. પણ આપણને તો આપણા પ્રસ્તુત વિષયની દૃષ્ટિએ એ કાવ્યવિભૂતિ કરતાં આ રુક્ષ શબ્દરચના જ વધારે ઉપયોગી છે.

હેમચંદ્રાચાર્યે કરેલું કુમારપાલ વિષેનું બીજું વર્ણન **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**-માંના છેલ્લા **महावीरचरित्र**માં છે. એ ચરિત્રની રચના હેમાચાર્યે કુમારપાલની પ્રાર્થનાથી જ કરી હતી અને તે તેમના જીવનની છેલ્લી કૃતિ છે.

કુમારપાલે જૈનધર્મનો સ્વીકાર કરી, તેના આચરણરૂપે શું શું કર્યું તેનું બહુ જ ટુંકું પણ સારભૂત વર્ણન એ ગ્રંથમાં ગુંફિત કરવામાં આવ્યું છે

હેમચંદ્રાચાર્ય પછીની બીજી કૃતિ તે **मोहराजपराजय** નામના નાટકરૂપે છે. એ નાટક, કુમારપાલના ઉત્તરાધિકારી **અજયપાલ** યા **અજયદેવ**ના જ એક રાજ્યાધિકારી મોઢવંશીય મન્ત્રી યશઃપાલનું બનાવેલું છે. કુપારપાલના મૃત્યુપછી માત્ર બે ત્રણ વર્ષની અંદર જ એ નાટક રચવામાં આવ્યું, અને ગુજરાત અને મારવાડની સરહદ ઉપર આવેલા થારાપદ્ર—હાલના થરાદ—નગરના કુમારવિહાર નામના જૈનમંદિરમાં મહાવીરસંબંધી યાત્રા-મહોત્સવના પ્રસંગે ભજવવામાં આવ્યું. કુમારપાલે જૈનધર્મનો સ્વીકાર કરી, પોતાના રાજ્યમાંથી જીવહિંસા, શિકાર, જુગાર અને મદ્યપાન આદિ જે દુર્વ્યસનોનો રાજાજ્ઞાપૂર્વક નિષેધ કરાવ્યો હતો તે વસ્તુને રૂપક આપી આ નાટકની રચના કરવામાં આવી છે. એ નાટકની સંકલના હૃદયંગમ અને કલ્પના મનોહર છે. એમાં સ્પષ્ટ એવો ઐતિહાસિક ઉલ્લેખ કશો ય નથી પણ ગર્ભિતરૂપે એવા ઉલ્લેખોમાટેનું કેટલું ય વિશિષ્ટ સૂચન છે જે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ ઉપયોગી થઈ પડે તેમ છે, અને તે તદ્દન પ્રમાણભૂત ગણી શકાય છે.

ત્રીજી કૃતિ તે **सोमप्रभाचार्यकृत कुमारपाल प्रतिबोध** નામે છે. કુમારપાલના મૃત્યુ પછી ૧૧ વર્ષે, પાટણમાં જ, કુમારપાલના રાજકવિ તરીકે ઓળખાતા મહાકવિ સિદ્ધપાલના ધર્મસ્થાનમાં એ ગ્રંથની રચના પૂરી થઈ હતી. ખુદ હેમચંદ્રાચાર્યના જ મહેન્દ્ર, વર્ધમાન અને ગુણચંદ્ર નામના એ ત્રણ પ્રસિદ્ધ શિષ્યોએ એ ગ્રન્થને આદ્યંત સાંભળ્યો હતો. આ ગ્રંથ છે તો બહુ મોટો—કોઈ ૧૨ હજાર જેટલા શ્લોકનો—પણ એમાં ઐતિહાસિક વિગત માંડ માંડ ૨૦૦–૨૫૦ શ્લોક જેટલી મળી આવે છે. એ ગ્રંથકારનો ઉદ્દેશ, કુમારપાલનો જીવનઇતિહાસ લખવાનો ન હતો, પણ જે જાતની ધર્મકથાઓના બોધ દ્વારા હેમાચાર્યે કુમારપાલને જૈનધર્માભિમુખ બનાવ્યો હતો, તેને અનુલક્ષીને તે જાતની કથાઓનો એક સંગ્રહગ્રંથ બનાવવાનો તેનો પ્રયત્ન હતો અને એ વાતનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ ગ્રંથકાર, ગ્રંથની શુરુઆતમાં કરી પણ દે છે. તે કહે છે કે—"આ જમાનામાં હેમચંદ્રસૂરિ અને કુમારપાલ રાજા બંને અસંભવ-ચરિત્રવાળા પુરુષો થયા છે. એમણે જૈનધર્મની આવી મહાન પ્રભાવના કરીને કલિયુગમાં સત્યયુગનો અવતાર કર્યો છે. જો કે આ બંને પુરુષોનું જીવનચરિત્ર ઘણી ઘણી રીતે મનોહર છે પણ હું તો માત્ર અહિ જૈનધર્મના પ્રતિબોધના સંબંધે જ કાંઈક કહેવા ચાહું છું." આ રીતે એ ગ્રંથનો ઉદ્દેશ જુદી જાતનો હોવાથી એમાં આપણે ઐતિહાસિક વિગતોની વિશેષ આશા ન રાખી શકીએ; છતાં પ્રસંગવશ એમાં પણ કેટલીક એવી મહત્ત્વની વિગતો મળી આવે છે જે કુમારપાલનું રેખાચિત્ર દોરવવામાં કેટલેક અંશે સહાયભૂત થઈ પડે છે.

આ ત્રણે સમકાલીન – અથવા છેવટે જેમણે કુમારપાલના રાજકારભારને નજરે તો ચોક્કસ જોયો હતો, – એવા પુરુષોનાં લખાણોનો જ મુખ્ય આધાર મેં આજના આ નિબંધમાં લીધો છે. અને ક્વચિત્ જ્યાં પાછળના લખાણોનો આધાર લેવામાં આવ્યો છે તે મૂળ હકીકતને સાધાર બતાવવા પુરતો જ છે.

કુમારપાલના ધાર્મિક જીવન વિષે આપણા દેશના લોકોમાં, – ઇતિહાસના અભ્યાસી ગણાતા વિદ્વાનોમાં ય – એક જાતની અજ્ઞાનતા કે ગેરસમજુતી રહેલી જોવાય છે. કુમારપાલે હેમચંદ્રાચાર્યના ઉપદેશને અનુસરી જૈનધર્મનો સંપૂર્ણ સ્વીકાર કર્યો હતો અને પોતે **परमार्हत** બન્યો હતો એ સત્યવસ્તુ કેટલાક સંકીર્ણ માનસવાળા અજૈન વિદ્વાનોને રુચિકર લાગતી નથી અને તેથી તેઓ એ વસ્તુનો અસ્વીકાર કરવા – કરાવવા ભ્રમપૂર્ણ લેખો વગેરે લખતા જોવામાં આવે છે. પરંતુ કુમારપાલના જૈનત્વવિષેની વાત એટલી જ સાચી છે જેટલી તેના અસ્તિત્વ વિષેની હોઈ શકે છે. એ વિષેની માહીતી આપનારી સામગ્રી એટલી બધી સ્વયપ્રતિષ્ઠિત છે કે જેની સાબીતી પુરવાર કરવા માટે બીજી કશી સાબીતીની જરૂર રહેતી નથી. યુરોપિઅન સ્કોલરોએ એ વાત ક્યારની ય સિદ્ધ કરી મુકી છે. પણ આપણા લોકોની ધાર્મિક સંકીર્ણતા ઘણી વખતે આપણને સત્યદર્શન થવા દેતી નથી અને તેથી આપણે અનેક રોગોના ભોગ થઈએ છીએ. કુમારપાલ જૈન હોય તો શું અને શૈવ હોય તો શું- મારા મનતેનાં કશું વિશેષત્વ નથી. મારા મને મહત્ત્વ છે તેના વ્યક્તિત્વનું. સિદ્ધરાજ જૈન બન્યો ન હતો પણ ચુસ્ત શૈવ જ રહ્યા હતો તેથી સિદ્ધરાજનું મહત્ત્વ જો હું ન સમજી શકુ તો મારામાં સારાસારની વિવેકબુદ્ધિનું દીવાળું જ નીકળેલું હું માનું. અમુક વ્યક્તિ અમુક ધર્માનુયાયી હતી એટલામાત્રથી જ તેના વ્યક્તિત્વને સમજવાની અને અપનાવવાની જો આપણે બેદરકારી બતાવીએ તો તેથી આપણે આપણી જાતિનુ – રાષ્ટ્રીયતાનું જ અહિત કરીએ છીએ. **શૈવ હો કે વૈષ્ણવ હો, બૌદ્ધ હો કે જૈન હો – ધર્મથી ગમે તે હો – જેણે જેણે આપણી પ્રજાની ઉન્નતિ અને સંસ્કૃતિમાં જે જે કોઈ વિશિષ્ટ ફાળો આપ્યો છે તે બધા જ આપણા ઉત્કર્ષક અને સંસ્કારક પુરુષો હતા. એ પુરુષો આપણી પ્રજાની સંયુક્ત અચળ સંપત્તિ છે.** એમના ગુણોનું જો યથાર્થ ગૌરવ આપણે ન કરીએ તો આપણે એક પ્રજાતરીકે નાલાયક ઠરીએ. શૈવ, બૌદ્ધ, જૈન એ બધા મતો એક જ આર્યતત્ત્વજ્ઞાનરૂપ મહાવૃક્ષની જુદી જુદી દાર્શનિક શાખાઓ જેવા છે. વૃક્ષની વિભૂતિ એની શાખાઓને લઈને છે. જ્યાં સુધી વૃક્ષ સજીવ છે ત્યા સુધી તેમાં શાખા – પ્રશાખાઓ નીકળે જ જવાની. શાખા – પ્રશાખાઓ નીકળતી બંધ થઈ એટલે વૃક્ષના જીવનનો અંત આવ્યો. ધર્માનુયાયીઓ અને મુમુક્ષુઓ બધા પક્ષી જેવા છે. શાન્તિ અને વિશ્રાંતિની ખાતર એ બધા એવા મહાવૃક્ષનો આશ્રય લે છે. જેને જે શાખા ઠીક અને અનુકૂળ આવે તે પક્ષી તે શાખાનો આશ્રય લે છે અને આરામ મેળવે છે. જેમ કોઈ એક પક્ષીને અમુક શાખા અનુકૂળ ન આવે તો, તે, તે શાખાને છોડીને બીજી શાખાનો આશ્રય ખોળે છે, તેમ વિચારશીલ મનુષ્યને પણ જો કોઈ એક ધર્મવિચાર અનુકૂળ ન આવે તો તે ધર્માંતર કરે છે અને પોતાની મનઃસમાધિ મેળવે છે. કુમારપાલે જે ધર્માન્તરનો સ્વીકાર કર્યો હતો તે આવી જ

મનઃસમાધિ મેળવવા માટે. સાત્ત્વિકભાવે કરેલો ધર્માંતર એ દોષરૂપ નથી પણ ગુણરૂપ છે. એવા ધર્માંતરથી નવીન બળ અને ઉત્સાહનો સંચાર થાય છે. પ્રજાની માનસિક અને નૈતિક ઉન્નતિ થાય છે. જૈનધર્મનો સ્વીકાર કરીને કુમારપાલે પોતાની પ્રજાનું જે અનન્ય કલ્યાણ કર્યું તે, તે બીજી રીતે ન કરી શક્યો હોત. તેના ધર્માંતરે પ્રજાનો પરસ્પરનો ધાર્મિક વિદ્વેષ ઓછો કર્યો અને સામાજિક ઉત્કર્ષ વધાર્યો. અને ખરીરીતે તો એ જમાનામાં, ધર્માંતર વિષેની જે સંકીર્ણ વિચારશ્રેણી આજે દેખાય છે તેવી હતી જ નહિ. સામાજિક દૃષ્ટિએ ધર્માંતર કશું વિશેષત્વ નહોતું ધરાવતું. જૈન અને શૈવ બંને ધર્મો ગુજરાતના અનેક પ્રતિષ્ઠિત કુટુંબોમાં સરખીરીતે પળાતા હતા. કોઈ ઘરમાં પિતા શૈવ હતો તો પુત્ર જૈન હતો અને કોઈ ઘરમાં સાસુ જૈન હતી તો વહુ શૈવ હતી કોઈ ગૃહસ્થનુ પિતૃકુળ જૈન હતું તો માતૃકુળ શૈવ હતું અને કોઈનું માતૃકુળ જૈન હતું તો પિતૃકુળ શૈવ હતું. એમ ગુજરાતનો આખો ય વૈશ્ય વર્ગ પરસ્પર બંને ધર્માનુયાયી હતો. તેથી આવું ધર્માંતર ગુજરાતના સભ્ય સમાજમા બહુ જ સામાન્ય હતું. રાજકારભારમાં પણ બંને ધર્માનુયાયીઓનો સરખો દરજ્જો અને સરખો ફાળો હતો. કોઈ વખતે જૈન મહામાત્યના હાથમાં રાજ્યનાં સર્વ સૂત્રો આવતાં તો કોઈ વખતે શૈવ મહામાત્યના હાથમાં. પણ એથી કોઈ પણ પ્રકારની રાજનીતિમાં ફેરફાર નહોતો થતો. શૈવોની અને જૈનોની કોઈ જુદી જાતની સમાજરચના ન હતી. સામાજિક વિધિ-વિધાનો નિયમપ્રમાણે બધા બ્રાહ્મણો દ્વારા જ થતા. શૈવ કુટુંબોની કે જૈનકુટુંબોની કુલદેવતાઓ એક જ હતી અને તે કુલદેવતાઓનાં પૂજન-અર્ચન બંને કુટુંબોવાળા કુળપરંપરાના નિયમપ્રમાણે સાથે સાથે અને એક જ રીતે કરતા. આમ બંને ધર્મોવચ્ચે સામાજિક દૃષ્ટિએ તો સર્વથા અભેદ જ હતો. માત્ર ધર્મભાવના અને ઉપાસ્યદેવની દૃષ્ટિએ પરસ્પર થોડોક ભેદ હતો. શૈવો પોતાના ઇષ્ટદેવ શિવની ઉપાસના અને પૂજા-સેવા કરતા; જૈનો પોતાના ઇષ્ટદેવ જિનની પૂજા-અર્ચા કરતા. શિવપૂજકોના કેટલાક વર્ગમાં મદ્યમાંસનું સેવન ત્યાજ્ય નહોતું ગણાતું ત્યારે જૈનોમાં એ વસ્તુ સર્વથા ત્યાજ્ય મનાતી. કોઈ પણ શૈવ જો જૈન થાય તો તેનો મુખ્ય અર્થ જ એ મનાતો કે તેણે મદ્ય અને માંસનો સર્વથા ત્યાગ કર્યો. અને તેમ કરી તેણે જીવહિંસા ન કરવાનો મુખ્ય જૈન નિયમ લીધો. મુખ્ય રીતે ગુજરાતના શૈવ અને જૈન એ બંને પ્રજાધર્મ હતા. અલબત, રાજધર્મ સામાન્યરીતે શૈવ જ ગણાતો. ગુજરાતના રાજાઓના ઉપાસ્યદેવ શિવ હતા. રાજપુરોહિત શિવધર્મી નાગર બ્રાહ્મણ હતા અને રાજગુરુ શિવોપાસક તાપસ હતા. પરંતુ અણહિલપુરના સંસ્થાપક વનરાજ ચાવડાથી લઈ કર્ણવાઘેલા સુધીના ગુજરાતના હિંદુરાજત્વકાળમાં, જૈનધર્માનુયાયીઓનો સામાજિક દરજ્જો સૌથી ઉંચા પ્રકારનો હતો અને જૈનો પ્રજાવર્ગના પ્રતિષ્ઠિત અગ્રણી હતા તથા રાજકારભારમાં પણ તેમનો હિસ્સો સૌથી અધિક હતો. તેથી રાજાઓ શૈવ હોઈને પણ જૈનધર્મ તરફ પણ તેટલી જ આદરની દૃષ્ટિ રાખતા. જૈન વિદ્વાન્ આચાર્યો રાજાઓ પાસે સતત આવતા જતા અને રાજાઓ પણ તેમને પોતાના ગુરુઓના જેટલો જ આદર આપતા. કેટલીક વખતે તો રાજકુટુંબોમાંથી પણ કોઈ કોઈ વ્યક્તિ જૈનધર્મની સન્યસ્ત દીક્ષા ધારણ કરતી. અનેક રાજપુત્રો જૈન આચાર્યોપાસે વિદ્યાગ્રહણ

કરતા. એમ રાજાઓ જૈનો સાથે પ્રાયઃ સર્વ પ્રકારના નિકટ સંબંધમાં રહેતા હતા તેથી તેમના મનમાં ધર્મસંબંધી તેવો કશો વિશેષ ભેદભાવ નહોતો રહેતો. શૈવધર્મના આદર્શ પ્રતિનિધિસમો સિદ્ધરાજ પણ જૈન સંબંધોથી તેટલો જ સંકળાએલો હતો. સિદ્ધપુરમાં **રુદ્રમહાલય** સાથે તેણે **રાયવિહાર** નામનું આદિનાથનું જૈનમંદિર પણ બંધાવ્યું હતું. ગિરનારપર્વત ઉપર નેમિનાથનું જે મુખ્ય જૈન મંદિર આજે વિદ્યમાન છે તે પણ સિદ્ધરાજની ઉદારતાનું કાર્ય છે. સોમનાથની યાત્રા સાથે ગિરનાર અને શત્રુંજયના જૈન તીર્થોની યાત્રા પણ સિદ્ધરાજે તેવા જ ભાવથી કરી હતી અને શત્રુંજય તીર્થના નિર્વાહમાટે ૧૨ ગામોનું વર્ષાસન બાંધી આપવા તેણે પોતાના મહામાત્ય અશ્વાકને આજ્ઞા કરી હતી. આથી સમજી શકાય છે કે સિદ્ધરાજ કાંઈ જૈન ધર્મ સાથે ઓછી મમતા નહોતો ધરાવતો. તેનામાં અને કુમારપાલમાં જે તફાવત હતો તે એ કે સિદ્ધરાજ પોતાના મનમાં શૈવ ધર્મને મુખ્ય માનતો હતો અને જૈન ધર્મને ગૌણ માનતો હતો ત્યારે કુમારપાલ પોતાના પાછલા જીવનમાં જૈનધર્મને મુખ્ય માનતો થયો હતો. સિદ્ધરાજના ઇષ્ટદેવ આખરસુધી શિવ જ હતા ત્યારે કુમારપાલના ઇષ્ટદેવ અંતિમ જીવનમાં જિન થયા હતા. તેણે દેવતરીકે જિનને અને ગુરુતરીકે આચાર્ય હેમચન્દ્રને પોતાના કલ્યાણકારક આપ્તપુરુષ માન્યા હતા, અને અહિંસાપ્રબોધક ધર્મને તેણે પોતના મોક્ષદાયક ધર્મ તરીકે શ્રદ્ધાપૂર્વક સ્વીકાર્યો હતો; અને એ રીતે તે પોતે જૈન ધર્મનો એક આદર્શ પ્રતિનિધિ બન્યો હતો. આટલું પૂર્વભૂમિકા તરીકે કહી હવે હું કુમારપાલના રાજજીવનનું કેટલુંક રેખાચિત્ર આપની આગળ રજુ કરવા ઇચ્છું છું.

કુમારપાલનું રાજજીવન, ઘણીક રીતે, મૌર્યસમ્રાટ્ અશોકના રાજજીવન સાથે મળતું આવે છે. રાજગાદી ઉપર આવ્યા પછી જેમ અશોકને અનિચ્છાયે શત્રુ રાજાઓ સાથે લડવાની ફરજ પડી હતી તેમ કુમારપાલને પણ અનિચ્છાયે જ પ્રતિપક્ષી રાજાઓ સાથે લઢવાની ફરજ પડી હતી. અશોકના રાજગાદી પર બેઠા પછી પણ ત્રણેક વર્ષ સુધી તેનું રાજ્ય થાળે નહોતું પડ્યુ, તેમ કુમારપાલનું રાજ્ય પણ ત્રણેક વર્ષ સુધી થાળે નહોતું પડ્યું. અશોકને જેમ રાજસિંહાસન ઉપર આવ્યાં પછી ૭-૮ વર્ષસુધી શત્રુઓને વિજિત કરવામાં વ્યગ્ર રહેવું પડ્યુ તેમ કુમારપાલને પણ એટલો સમય શત્રુઓ સાથે બાથ ભીડવામાં લાગ્યા રહેવું પડ્યું હતું. આમ આઠ-દશ વર્ષસુધી વિગ્રહો ચલાવી શત્રુઓને પરાજિત કર્યા પછી, જીવનના શેષ ભાગમાં, જેમ અશોકે પોતાની પ્રજાની નૈતિક અને સામાજિક ઉન્નતિ થાય તે માટે અનેક રાજાજ્ઞાઓ જાહેર કરી આખાયે રાજ્યમાં શાન્તિ અને આબાદી ફેલાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો હતો, તેમ કુમારપાલે પણ તેવો જ પ્રયત્ન આદર્યો હતો. અશોક જેમ પૂર્વાવસ્થામાં શૈવ હતો અને પછી બૌદ્ધ થયો તેમ કુમારપાલ પણ પ્રથમ શૈવ હતો અને પછી જૈન થયો. જેમ અશોકે બૌદ્ધ ધર્મનો સ્વીકાર કરી તે ધર્મના પ્રસાર અર્થે પોતાનું સર્વ સાત્ત્વિક સામર્થ્ય ખર્ચ કર્યું તેમ કુમારપાલે પણ જૈનધર્મનો સ્વીકાર કરી તેના પ્રચાર અર્થે પોતાની સાત્ત્વિક શક્તિનો પૂરેપૂરો ઉપયોગ કર્યો. અશોકે જેમ બૌદ્ધધર્મપ્રતિપાદિત શિક્ષાપદ આદિ ઉચ્ચ પ્રકારના ધાર્મિક નિયમોનો ભાવુક થઈ સ્વીકાર કર્યો અને તેમ કરી તે परम सुगतोपासक બન્યો તેમ કુમારપાલે પણ જૈનધર્મમાં ઉપદેશેલા

ગૃહસ્થજીવનને આદર્શ બનાવવામાટે આવશ્યક એવા અણુવ્રતાદિ નિયમોનો શ્રદ્ધાળુ થઈ સ્વીકાર કર્યો અને તેથી તે જૈનોમાં પરમાર્હત બન્યો. અશોકે જેમ પ્રજામાંથી દુર્વ્યસનો દૂર થાય તે માટે અનેક ધર્માજ્ઞાઓ જાહેર કરી તેવી જ રીતે કુમારપાલે પણ પોતાના રાજ્યમાંથી દુર્વ્યસનોના નિવારણ માટે અનેક રાજાજ્ઞાઓ જાહેર કરી. અશોકે જેમ બૌદ્ધ ધર્મની પૂજા માટે અનેક સ્તૂપો ઉભા કરાવ્યા તેવી જ રીતે કુમારપાલે પણ જૈનધર્મની પૂજા ખાતર અનેક જૈન વિહારો બંધાવ્યા. અને એ બધા ઉપરાંત કુમારપાલે જે એક વિશિષ્ટ પ્રજાહિતકર આદેશ જાહેર કર્યો હતો – કે જે કદાચિત્ અશોકે પણ નહિ કર્યો હોય – તે એ કે પ્રાચીનકાળથી ચાલી આવેલી રાજનીતિ પ્રમાણે નાવારસ મરી જનાર પુરુષની સઘળી સંપત્તિ રાજા લઈ લેતો હતો અને તેના લીધે મરનારના સ્ત્રી – માતા આદિ કુટુંબીજનો અનાથદશાના ભોગ થઈ મૃત્યુ કરતાંયે વધારે કષ્ટકારક વિટંબનાઓના ભોગ થતા હતા, અને અનેક અનાથ અબળાઓ આ ક્રૂર રાજનીતિથી પીડિત થઈ જીવતી મુઆ સમાન થઈ જતી હતી. દાઝયા ઉપર ડામ દેવા જેવી એ અતિ નિષ્ઠુર રાજનીતિનો કુમારપાલે પોતાના રાજ્યમાં સર્વથા પ્રતિષેધ કર્યો હતો.

કુમારપાલને આ નીતિની નિષ્ઠુરતાનો કેવી રીતે ભાસ થયો અને કયા કારણે એણે એ નીતિનો બહિષ્કાર કર્યો તેનું વર્ણન હેમાચાર્ય દ્વયાશ્રયમાં આ પ્રમાણે કરે છે.

એક રાત્રે રાજા પોતાના મહેલમાં સૂતો હતો ત્યારે દૂરથી એક સ્ત્રીનું બહુ જ કરુણરૂદન તેના કાનને સંભળાયું. રાજા એ હકીકત જાણવામાટે, જાતે રાતના ચોકીદારનાં નીલવર્ણાં વસ્ત્રો પહેરી મહેલમાંથી બહાર નીકળ્યો અને કોઈ ન જાણે તેવી રીતે ફરતો ફરતો જ્યાંથી એ અવાજ આવતો હતો ત્યાં ગયો. જુએ છે તો એક ઝાડનીચે એક સ્ત્રી પાસો ખાઈ મરી જવાની તૈયારી કરી રહી છે અને રડી રહી છે. રાજા ધીમેથી એની પાસે જઈ મીઠા અને આદર ભરેલા શબ્દોથી શી વાત છે તે પૂછવા લાગ્યો. વિશ્વાસપામીને સ્ત્રીએ કહ્યું કે 'મારો પતિ યુવાવસ્થામાં પ્રદેશથી આ શહેરમાં વ્યાપાર કરવા અર્થે આવ્યો હતો અને મને પણ સાથે લાવ્યો હતો. આ સુરાજ્યવાળા શહેરમાં વ્યાપાર કરતાં કરતાં ઘણી મોટી મિલ્કત મારા પતિએ મેળવી. મને તેનાથી એક પુત્ર થયો. પાળી – પોષીને અમે એ પુત્રને મોટો કર્યો અને ભણાવી – ગણાવીને હુશીયાર કર્યો. યોગ્ય ઉમરે સારા ખાનદાન કુટુંબની કન્યાસાથે તેનું લગ્ન કરી દીધું. એ મારો પુત્ર વીસ વર્ષની ઉમરનો થયો ત્યારે તેના પિતા મરી ગયા. પિતાના શોકનો એવો સખત આઘાત લાગ્યો કે જેથી થોડા દિવસ પછી એ મારો પુત્ર પણ સ્વર્ગે ગયો અને તેથી હું અનાથ અને નિરાધાર થઈ પડી. રાજ્યના નિયમ પ્રમાણે હવે મારી બધી સંપત્તિ રાજા લઈ લેશે અને મારું જીવન ધૂળધાણી થઈ જશે; તેથી એ દશા નજરે જોવી પડે તેના પહેલાં જ મરી જવું એ વધારે સારું છે એમ વિચાર કરીને હું હવે મરવામાટે તૈયાર થઈ છું.' રાજા તે સ્ત્રીનું આ બધું કથન સાંભળી મનમાં બહુ વ્યગ્ર થયો અને તેને કેટલુંક આશ્વાસન આપીને જણાવ્યું કે – 'માતા! તું તારે ઘેર જા અને આ રીતે આપઘાત કરીને મરીશ નહિ. રાજા તારું ધન નહિ લે એની હું તને ખાતરી આપું છું. તું તારા ધનથી યથેષ્ટ દાનપુણ્ય કર અને તારું કલ્યાણ કર.' એમ કહી રાજા પોતાના મહેલમાં આવ્યો અને સવાર થતાં

જ પોતાના મંત્રીઓને બોલાવીને તેણે આજ્ઞા કરી કે મારા આખા રાજ્યમાં એવી આજ્ઞા જાહેર કરી દો કે – 'પરાપૂર્વથી ચાલી આવતી રાજ્યની નીતિ પ્રમાણે, મરી ગએલા નાવારસ માણસની સંપત્તિનો જે અધિકાર રાજસત્તા લઈ લે છે તે નીતિ આજથી બંધ કરવામાં આવે છે અને આજ પછી કોઈ પણ એવા માણસની કશીય સંપત્તિને રાજના માણસો ન અડકે તેવી રાજાજ્ઞા જાહેર કરવામાં આવે છે.' રાજાની આજ્ઞા પ્રમાણે મંત્રીઓએ આખા રાજ્યમાં તેવું આજ્ઞાપત્ર જાહેર કર્યું અને એ રીતે લેવાતું મૃતકધન બંધ કર્યું. પ્રબંધકારોના જણાવ્યા પ્રમાણે રાજ્યના ખજાનામાં આ જાતના ધનથી દરવર્ષે એક ક્રોડ રૂપીઆની આવક થતી હતી પણ રાજાએ તેનો જરાય લોભ ન કરતાં એ અધમતમ અને પ્રજાપીડક નીતિનો સદંતર પ્રતિબંધ કર્યો.

મંત્રી યશઃપાલે પોતાની નાટકકૃતિમાં આ બાબતને એથીય વધારે હૃદયંગમરીતે વર્ણવી છે. હેમાચાર્યે માત્ર અમુક ઘટનાને લક્ષ્યમાં રાખી કાવ્યની પદ્ધતિ પ્રમાણે તે ઘટનાનું સૂચનમાત્ર કર્યું છે. યશઃપાલે તેમાં કેટલીક ઐતિહાસિકતાને પણ અંતર્નિહિત કરી હોય તેમ લાગે છે. એ આખું નાટક એક રૂપકરૂપે છે તેથી વધારે વાસ્તવિકતાને તો એમાં અવકાશ ન હોય તે સ્વાભાવિક જ છે યશઃપાલનું વર્ણન આ રીતે છે – એક દિવસે રાજા પોતાના સ્થાનમાં બેઠેલો છે તે વખતે એક મોટા મહાલય જેવા મકાનમાંથી સ્ત્રીઓના રુદનનો કર્ણોદ્વેગકારક ધ્વનિ સાંભળે છે. થોડી વાર પછી નગરના ૪ મહાજનો આવીને રાજાને વિનંતી કરે છે કે નગરનો એક ક્રોડાધીશ સેઠ, જેનું નામ કુબેર હતું, તે નિઃસંતાન દશામાં મરી ગયો છે તેથી તેની સંપત્તિનો કબ્જો મેળવવા માટે અધિકારી પુરુષોને મોકલવામાં આવે અને અમને તેના મૃત્યુને લગતી ઉત્તર-ક્રિયા કરવાની આજ્ઞા આપવામાં આવે. રાજા એ સેઠના મૃત્યુના સમાચાર સાંભળી બહુ ઉદ્વિગ્ન થાય છે અને જીવનની અસ્થિરતાનો ગંભીર વિચાર કરવા લાગી જાય છે અને તેની સાથે જ મૃતજનના કુટુંબની કરુણદશાનું અને તેમાં વળી રાજતરફથી થતી આવી ક્રૂરતાનું બીભત્સ ચિત્ર તેને દેખાય છે.

आशाबन्धादहह सुचिरं संचितं क्लेशलक्षैः
केयं नीतिर्नृपतिहतका यन्मृतस्वं हरन्ति ।
क्रन्दन्नारीजघनवसनाक्षेपपापोत्कटाना-
माः किं तेषां हृदि यदि कृपा नास्ति तत्किं त्रपाऽपि ॥

રાજા કાંઈક વિચાર કરીને કહે છે કે હું જાતે જ ત્યા આવું છું. પછી રાજા પાલખીમાં બેસીને રાજમહાલય કરતાં પણ વધારે શોભિત એવા એ કુબેરના ભવન પાસે આવે છે. ભવન ઉપર ક્રોડાધીશપણાને સૂચવતી ફરફરાટ કરતી કેટલીક ધ્વજાઓ ઉડી રહી છે. એક બાજુના મોટા દરવાજા આગળ ગામના સેંકડો મહાજનો શોકવિહ્વલ ચહેરા-સાથે ઉભા રહેલા છે. મકાનની અંદરથી કરુણરૂદનનો અવિરત ધ્વનિ કાન ઉપર અથડાયાં કરે છે. રાજા બહાર ઉભેલા મહાજનોને જોઇને આગેવાન સેઠને પૂછે છે કે આ બધા લોકો બહાર કેમ ઉભા છે? સેઠ કહે છે કે રાજાના હુકમની વાટ જુએ છે. રાજા પૂછે છે કે એમાં રાજાની હુકમની શી જરૂર છે? તો સેઠ કહે કે – રાજ્યના નિયમ પ્રમાણે, જ્યારે રાજ્યાધિકારીઓ ઘરની બધી સંપત્તિનો પોતે કબ્જો લઈ લે ત્યાર પછી

જ એમનાથી ઘરમાં પેસી શકાય, અન્યથા એ દંડના પાત્ર થાય. રાજા પાલખીમાંથી ઉતરી કુબેરના ભવનમાં જાય છે. એક આગેવાન સેઠ તેને કુબેરની બધી ઋદ્ધિ-સમૃદ્ધિનો પરિચય કરાવે છે. રાજમહેલોમાં પણ નથી એવી વસ્તુઓ જોઈ રાજા આશ્ચર્યચકિત થાય છે. પછી રાજા કુબેરની માતા પાસે જઈને બેસે છે અને કઈ રીતે અને કયાં કુબેરનું મૃત્યુ થયું એ બધું પૂછે છે. કુબેરનો એક મિત્ર બધી હકીકત કહે છે—'પરદેશ સાથેનો વેપાર ખેડવા માટે, કુબેર પાટણથી ભરુચ ગયો હતો અને ત્યાંથી ૫૦૦-૫૦૦ માણસો જેની અંદર હતા એવાં ૫૦૦ વહાણો માલ ભરી તે પરદેશ ગયો હતો. ત્યા તેણે એ બધો માલ વેચ્યો અને ૪ કરોડ રૂપીઆનો નફો મેળવ્યો. ત્યાંથી પાછા સ્વદેશ આવતાં રસ્તામાં ભયંકર વાવાઝોડું નડ્યું અને તેનાલીધે બધાં વાહણો ખરાબે ચઢી નષ્ટભ્રષ્ટ થયાં અને કેટલાંક આમ તેમ ભટકતાં ભરુચ બંદરે પહોંચ્યાં. કુબેરનું શું થયું તે જણાયું નથી અને તેથી આજે આ પ્રસંગ ઉપસ્થિત થયો.' રાજા આ બધું સાંભળી, બહુ જ સહાનુભૂતિભરેલા સ્વરે કુબેરની માતાને આશ્વાસન આપે છે—માતા! આમ અવિવેકીની જેમ શોકથી એટલા બધા કેમ વિહ્વલ થાઓ છો.

आकीटाद्यावदिन्द्रं मरणमसुमतां निश्चितं बान्धवानां
सम्बन्धश्चैकवृक्षोषितबहुविहगव्यूहसांगत्यतुल्यः ।
प्रत्यावृत्तिर्मृतस्योपलतलनिहितक्षुण्णबीजप्ररोह-
प्रायः प्राप्येत शोकात् तदयमकुशलैः क्लिश्यतात्मा मुधैव ॥

માતા કહે છે કે—પુત્ર! બધું જાણું છું, પણ પુત્રના મરણના શોકદુઃખથી બધું ભૂલી ગઈ છું. રાજા કહે છે કે—માતા! હું પણ તમારો પુત્ર જ છું, માટે આ શોક કરવો ન ઘટે. એટલામાં રાજનોકરો કુબેરના ઘરનું બધું ધન ભેગું કરી રાજાની આગળ ઢગલો કરી મુકે છે. રાજા તેનો નિષેધ કરી મહાજનોને કહે છે કે—હું આજથી મૃતજનોના ધનને રાજભંડારમાં દાખલ કરવાનો નિષેધ કરું છું. એ કેટલી બધી અધમનીતિ છે કે જે જે નિષ્પુત્ર માણસ મરી જાય તે તે માણસના ધનગ્રહણની ઇચ્છાથી હતાશય એવા રાજાઓ તેના પુત્રત્વને પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છે છે! રાજા ત્યાંથી નીકળી મહેલમાં આવે છે અને મંત્રીઓદ્વારા આખા નગરમાં ઉદ્‌ઘોષણા કરાવે છે કે—

निःशूकैः शकितं न यन्नृपतिभिस्त्यक्तुं क्वचित् प्राक्तनैः
पत्न्याःक्षार इव क्षते पतिमृतौ यस्यापहारः किल ।
आपाथोधि कुमारपालनृपतिर्देवो रुदत्या धनं
विश्राणः सदयं प्रजासु हृदयं मुञ्चत्ययं तत्स्वयम् ॥

કવિપ્રતિભાએ ચિતરેલા આ ચિત્રમાંનો નામનિર્દેશ ભલે કાલ્પનિક હશે પરંતુ એ આખું ચિત્ર કાલ્પનિક નથી. એમાં વર્ણવેલી ઘટના અનૈતિહાસિક નથી. એ ઘટનાને અનુરૂપ બનાવ તે વખતે અવશ્ય બનેલો. આ ચિત્ર કુમારપાલની મહાનુભાવતાને અતિ ઉત્તમરૂપે પ્રતિબિંબિત કરે છે.

આ રીતે મૃત-સ્વ-મોચનનું પ્રજાહિતકર કાર્ય કરીને કુમારપાલ સતયુગમાં થઈ ગએલા રઘુ, નઘુષ, નાભાક અને ભરત આદિ પરમ ધાર્મિક રાજાઓ પણ જે કીર્તિ

નહોતા મેળવી શકયા તેવી કીર્તિ મેળવવા ભાગ્યશાળી થયો. અને આથી જ આચાર્ય હેમચંદ્ર પરમ પ્રસન્ન થઇને તેની સ્તુતિ કરે છે કે –

न यन्मुक्तं पूर्वैं रघु-नघुष-नाभाक-भरत-
 प्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि ।
विमुञ्चन् सन्तोषात् तदपि रुदतीवित्तमधुना
 कुमारक्ष्मापाल ! त्वमसि महतां मस्तकमणिः ॥
अपुत्राणां धनं गृह्णन् पुत्रो भवति पार्थिवः ।
त्वं तु सन्तोषतो मुञ्चन् सत्यं राजपितामहः ॥

*

ગુજરાતનો એ સૌથી વધારે આદર્શ રાજા હતો. એ જેવો વીર હતો તેવો જ સંયત હતો. જેવો નીતિનિપુણ હતો તેવો જ ધર્મપરાયણ હતો. જેવો દુર્ધર્ષ હતો તેવો જ સૌમ્ય પણ હતો. એનામાં અનુભવજ્ઞાનની જેટલી વિશાલતા હતી તેટલી જ તાત્ત્વિકબુદ્ધિની પણ ગંભીરતા હતી. એ જેવો ત્યાગી હતો તેવો જ મિતવ્યયી પણ હતો. જેવો પરાક્રમી હતો તેવો જ ક્ષમવાન્ પણ હતો. ગુજરાતના સામ્રાજ્યના સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રભુતાવાળા રાજા બે જ: સિદ્ધરાજ અને કુમારપાલ. બંનેના પરાક્રમ અને કૌશલથી ગુજરાતનું ગૌરવ ચરમ શિખરે પહોંચ્યું. પ્રબંધકારો કહે છે કે સિદ્ધરાજમાં ૯૮ ગુણ હતા અને બે દોષ હતા, કુમારપાલમાં ૯૮ દોષ હતા અને બે ગુણ હતા. છતાં તેમાં કુમારપાલ શ્રેષ્ઠ હતો. સિદ્ધરાજે ગુજરાતના નાગરિકોના નિવાસ માટે મહાસ્થાનો વસાવ્યાં તો કુમારપાલે મહાસ્થાનોના સંરક્ષણ માટે દૃઢ પરકોટાઓ બંધાવ્યા. સિદ્ધરાજે ગુજરાતના પરાક્રમને ગજવનારી મહાયાત્રાઓ કરી તો કુમારપાલે એ યાત્રાઓને અમરતાના ઉલ્લેખોથી અંકિત કરવા માટે એની મહાપ્રશસ્તિઓ રચાવી. સિદ્ધરાજે ગુજરાતના ગૌરવધામ ગિરિવર ઉપર મહાતીર્થની સ્થાપના કરી તો કુમારપાલે ગુજરાતના આબાલવૃદ્ધોને એ પુણ્યતીર્થની દુર્લભ યાત્રા સદા સુલભ થાય તે અર્થે ગિરિવર પર ચઢવામાટે સુગમ પદ્યાઓ કરાવી. આવી રીતે સિદ્ધરાજે જો ગુજરાતની અસ્મિતાના મહાલયો બંધાવ્યા તો કુમારપાલે તેમનાપર સુવર્ણકળશ અને ધ્વજદંડ ચઢાવી તેમને સુપ્રતિષ્ઠિત બનાવ્યા. ગુજરાતની ગરિમાનો કુમારપાળ ખરેખર ગુરુશિખર હતો. એના સમયમાં ગુજરાતીઓ વિદ્યામાં અને વિભુતામાં, શૌર્યમાં અને સામર્થ્યમાં, સમૃદ્ધિમાં અને સદાચારમાં, ધર્મમાં અને કર્મમાં ઉત્કર્ષના ઉચ્ચતમ શિખરે પહોંચ્યા હતા. એના રાજ્યમાં, પ્રકૃતિકાતર વૈશ્યો પણ મોટા સેનાપતિઓ થયા, દ્રવ્યલોલુપ વણિગ્જનો પણ મહાકવિઓ થયા, અને ઇર્ષાપરાયણ બ્રાહ્મણો તથા નિન્દાપરાયણ શ્રમણો પણ પરસ્પર મિત્રો થયા. વ્યસનાસક્ત ક્ષત્રિયો પણ સંયમી સાધકો થયા અને હીનાચારી શૂદ્રો પણ સારીપેઠે ધર્મશીલ થયા. રાજાએ વિશિષ્ટ ઉત્સાહપૂર્વક ધર્માંતર સ્વીકાર્યાં છતાં ધાર્મિકસહિષ્ણુતા જેટલી એના રાજ્યમાં જોવામાં આવતી હતી તેટલી બીજા કોઈનાયે રાજ્યમાં નહિ. ભારતના પુરાતન ઇતિહાસમાં કદાચિત્ એ એક જ પહેલો અને છેલ્લો દાખલો હશે કે જેમાં હેમચંદ્ર જેવો જૈનધર્મનો સૌથી મહાન્ આચાર્ય શિવમંદિરમાં જઈ, શ્રદ્ધાળુ શૈવની માફક—

यत्र तत्र समये यथा तथा
योऽसि सोऽसि मिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद् भवान्
एक एव भगवन्नमोऽस्तु ते ॥

આવી અદ્ભુત કલ્પના અને અનુપમ રચના દ્વારા શિવની સ્તુતિ કરે છે; તથા ગંડ બૃહસ્પતિ જેવો મહાન્ શૈવ મઠાધીશ જૈન આચાર્યના ચરણમાં વંદન કરી–

चतुर्मासीमासीत्तव पदयुगं नाथ निकषा
कषायप्रध्वंसाद् विकृतिपरिहारव्रतमिदम् ।
इदानीमुद्भिद्यन्निजचरणनिर्लोठितकले-
र्जलक्लिन्नैरन्नैर्मुनितिलक वृत्तिर्भवतु मे ॥

આવી સ્તુતિદ્વારા, એક સુશિષ્યની જેમ અનુગ્રહની યાચના કરે છે.

ઇતિહાસના સેંકડો પ્રબંધો તપાસતાં, તેમાં માત્ર આ એક જ એવો રાજા જડી આવે છે જે કુલપરંપરાપ્રાપ્ત 'ઉમાપતિવરલબ્ધપ્રૌઢપ્રતાપ' બિરુદમાં અભિમાન ધારણ કરતો છતો પણ સ્વરુચિસ્વીકૃત 'પરમાર્હત' બિરુદથી પોતાને કૃતકૃત્ય માને છે. જે ભાવ અને આદરથી એ સોમેશ્વરના પુણ્યધામનો જીર્ણોદ્ધાર કરાવે છે, તે જ ભાવ અને આદરથી તેની જ પડોશમાં પાર્શ્વનાથનું જૈનચૈત્ય પણ એ પ્રતિષ્ઠિત કરાવે છે. ગુજરાતની ગર્વોન્નત રાજધાની અણહિલપુરમાં, કુમારપાલ શંભુનાથના નિવાસ માટે કુમારપાલેશ્વર અને પાર્શ્વનાથના નિવાસ માટે કુમારવિહાર એમ બે મંદિરો પાસે પાસે બંધાવે છે. ધાર્મિક સહિષ્ણુતાના આદર્શનું આના કરતાં વધારે આકર્ષક ઉદાહરણ બીજું મળવું મુશ્કેલ છે.

કુમારપાલ સ્વભાવથી જ ધાર્મિકવૃત્તિવાળો હતો, તેથી તેનામાં દયા, કરુણા, પરોપકાર, નીતિ, સદાચાર અને સંયમની વૃત્તિઓનો વિકાસ ઘણા ઉંચા પ્રકારનો થયો હતો. તેનામાં એ ગુણો કેટલેક અંશે તેના પૈત્રિક વારસા તરીકે ઉતરી આવેલા હોવા જોઈએ. કારણ, તેના પ્રપિતાનો પિતા ક્ષેમરાજ, જે પરાક્રમી ભીમદેવનો જ્યેષ્ઠ પુત્ર અને સિદ્ધરાજના પિતા ભોગી કર્ણનો મોટો ભાઈ થતો હતો, તેને જ્યારે ભીમદેવે પોતાની રાજ્યગાદી આપવા માંડી ત્યારે તેણે તેનો સ્વીકાર ન કરતાં પોતાના લઘુબંધુ કર્ણને તે ગાદી અપાવી અને પોતે મંડૂકેશ્વર તીર્થમાં જઈ શંકરની ઉપાસનામાં તપસ્વી તરીકેનું પુણ્યજીવન જીવવાનો મનોરથ સિદ્ધ કર્યો. તેનો પુત્ર દેવપ્રસાદ પણ રાજકાજની ખટપટોથી દૂર રહી પોતાના પિતાના જીવનનું અનુકરણ કરતો રહ્યો અને જ્યારે વિલાસી કર્ણનું જીવન અકાલે જ અવસાન પામ્યુ ત્યારે તે એટલો બધો ઉદ્વિગ્ન થયો કે સજીવ દેહે ચિતાગ્નિમાં પ્રવેશ કરી જીવનમુક્ત થયો. કુમારપાલનો પિતા ત્રિભુવનપાલ પણ એક સદાચારી અને ધર્મપરાયણ ક્ષત્રિય હતો. સિદ્ધરાજનો તે અત્યંત આદરપાત્ર આપ્તજન હતો. તેના નીતિપરાયણ જીવનનો પ્રભાવ, સિદ્ધરાજના સ્વચ્છંદ જીવન ઉપર અનેકરીતે અંકુશનું કામ કરતો. આ રીતે કુમારપાલને પોતાના પૂર્વજોના ઉત્તમ ગુણોનો અમૂલ્ય વારસો મળ્યો હતો અને

તેથી તે છેવટે હેમચંદ્ર જેવા મહાન્ સાધુપુરુષના સત્સંસર્ગથી, ગુજરાતના ઇતિહાસમાં ધર્માત્મા રાજર્ષિની લોકોત્તર પદ્મીના મહાન્ યશનો ઉપભોક્તા થયો. હેમચંદ્રસૂરિએ તેના એ યશને અમર કરવા માટે **अभिधानचिंतामणि** જેવા પ્રમાણભૂત શબ્દ-કોશના સુપ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાં તેના માટે

कुमारपालश्चौलुक्यो राजर्षिः परमार्हतः ।
मृतस्वमोक्ता धर्मात्मा मारिव्यसनवारकः ॥

આવાં ઉપનામો ગ્રથિત કરી સાર્વજનીન સંસ્કૃત વાઙ્મયમાં તેના નામને શાસ્વત સ્થાન આપ્યું છે.

એમાં શંકાને જરાયે સ્થાન નથી કે કુમારપાલ અંતિમજીવનમાં એક પરમ જૈન રાજા હતો. તેણે જૈનધર્મપ્રતિપાદિત ઉપાસક એટલે ગૃહસ્થ – શ્રાવક ધર્મનું ઘણી ઉત્કટતા-પૂર્વક આચરણ કર્યું હતું. ઐતિહાસિક કાળમાં કુમારપાલ જેવો બીજો કોઈ પણ રાજા જૈનધર્મનો ચુસ્ત અનુયાયી થયો હોય તેની મને શંકા છે. એમ તો જૈન સાહિત્યમાં ઘણા રાજાઓને જૈન થએલા ઉલ્લેખેલા છે. જેમકે, ઉજ્જયિનીનો વિક્રમાદિત્ય, પ્રતિષ્ઠાનપુરનો સાતવાહન, વલભીનો શિલાદિત્ય, માન્યખેટનો અમોઘવર્ષ, ગોપગિરિનો આમરાજ ઇત્યાદિ. પણ એ બધા જે જૈનધર્મના અનુરાગી થયા હશે તો તેનો અર્થ એટલો જ છે કે તેમણે જૈનધર્મ અને તેના અનુયાયીઓ તરફ પોતાનો સવિશેષ અનુરાગ કે પક્ષપાત બતાવ્યો હશે. વખતે જૈન ગુરુઓને સૌથી વધારે આદર આપ્યો હશે અને તેમના ઉપદેશ પ્રમાણે કેટલાંક જૈનમંદિરો વગેરે બાંધી – બંધાવી આપ્યાં હશે. કેટલાકે તેથી આગળ જઈ વર્ષના અમુક દિવસો કે માસો સુધી જીવહિંસાપ્રતિબંધક રાજાજ્ઞાઓ જાહેર કરી હશે અને સ્વયં પણ મદ્ય – માંસના સેવનની પ્રતિજ્ઞાઓ લીધી હશે. પણ કુમારપાલની જેમ ગૃહસ્થધર્મના આદર્શને દર્શાવનારા પૂરા દ્વાદશવ્રતોનો સ્વીકાર તો કોઈએ નહિ કર્યો હોય.

તેણે સ્વીકારેલા એ દ્વાદશ જૈનવ્રતોનું સવિસ્તર વર્ણન જૈન પ્રબંધોમાં કેટલીક વિગતો સાથે આપવામાં આવેલું છે. વિગતોમાંની કેટલીક, અતિશયોક્તિ ભરેલી હોઈ શકે, પરંતુ મૂળ હકીકત મિથ્યા નથી એટલી વાત તો ચોકકસરીતે કહી શકાય તેમ છે. અને જે વાત ખુદ હેમચંદ્ર પોતે જ જણાવે છે તેમાં તો મિથ્યાને અવકાશ જ શી રીતે હોય. મંત્રી યશઃપાલ અને સોમપ્રભાચાર્યની જે કૃતિઓનો પરિચય, મેં ઉપર આપ્યો છે તેમાંનાં વર્ણનો પરથી જણાય છે કે કુમારપાલે વિક્રમસંવત્ ૧૨૧૬ માં હેમચંદ્રાચાર્ય પાસે સકલ જન સમક્ષ જૈનધર્મની ગૃહસ્થદીક્ષા સ્વીકારી હતી. એ દીક્ષા સ્વીકારતી વખતે એણે મુખ્યપણે આવી પ્રતિજ્ઞાઓ લીધી હતીઃ – રાજ્યરક્ષાનિમિત્ત કરવા પડતા યુદ્ધસિવાય યાવજ્જીવન કોઈ પણ પશુ – પ્રાણીની હિંસા ન કરવી; મૃગયાદિનો શિકાર ન કરવો; મદ્ય અને માંસનું સેવન ન કરવું; પરિણીત પત્ની સિવાય અન્ય કોઈ સ્ત્રીસાથે કામાચાર ન સેવવો; દરરોજ જિનપ્રતિમાની પૂજાઅર્ચા કરવી અને હેમ-ચંદ્રાચાર્યનું પાદવંદન કરવું; અષ્ટમી અને ચતુર્દશીના દિવસે સામાયિક અને પૌષધ આદિ વિશેષવ્રતનું પાલન કરવું; રાત્રિએ ભોજન ન કરવું; ઇત્યાદિ ઇત્યાદિ.

આવી જાતની પ્રતિજ્ઞાઓ જાતે લઈને પછી એણે પોતાના રાજ્યમાં, બીજા બીજા લોકો પણ પોતે સ્વીકારેલા ધર્મના કેટલાક મોટા નિયમોનું પાલન કરે તે માટે, તેવી કેટલીક રાજાજ્ઞાઓ પણ બહાર પાડી. તેમાં સૌથી મુખ્ય આજ્ઞા હતી જીવહિંસા-પ્રતિબંધ વિષેની. આપણા દેશમાં ઘણા પ્રાચીન કાળથી બે કારણે જીવહિંસા થતી આવે છેઃ એક તો ધર્મના નિમિત્તે એટલે યજ્ઞયાગાદિ ધાર્મિક કર્મકાંડ અને દેવી-દેવતાઓની બલીપૂજાનિમિત્તે; અને બીજી ખોરાક નિમિત્તે. કુમારપાલે એ બંને પ્રકારની જીવહિંસાનો નિષેધ કરવા માટે રાજાજ્ઞા જાહેર કરી. હેમચંદ્રાચાર્યના દ્વયાશ્રયકાવ્યમાં આવેલા વર્ણન ઉપરથી જણાય છે કે માંસાહાર માટે થતી જીવહિંસાનો નિષેધ તો, કુમારપાલે, કદાચિત્ શ્રાવકધર્મના વ્રતો લીધા પહેલાં જ જાહેર કરી દીધો હતો. શાકંભરીના ચાહમાન રાજા અર્ણોરાજ અને માલવાના પરમાર રાજા બલ્લાલદેવનો પરાજય કર્યાં પછી એક દિવસે કુમારપાલે રસ્તામાં કોઈ દીન દરિદ્ર દેખાતા ગામડિઆ માણસને બકરાં આદિ બેચાર પશુઓને કસાઈખાને તાણી જતો જોઈ, તેની સાથે તે વિષેની કેટલીક પૂછપાછ કરી; અને તે વસ્તુસ્થિતિની જાણ થતાં, એ પામર મનુષ્યની અને પશુઓની દશા જોઈ રાજાના મનમાં બોધિસત્ત્વની જેમ કરુણાભાવ ઉત્પન્ન થયો. તેના મનમાં વિચાર આવ્યો કે—દુષ્ટ-જાતિવાળા અને કૂતરા જેવા, ધર્મવિમુખ આ લોકો પોતાના નઠારા પેટ માટે જે આવા પ્રાણીઓના જીવ લે છે, તેમાં ખરેખર શાસન કરનારનો જ દુર્વિવેક છે. કારણ કે જેવા રાજાના ગુણ તેવા જ લોકોના ગુણ થાય છે. મને ધિક્કાર છે કે હું માત્ર મારા શરીર માટે જ પ્રજાપાસેથી કર લઉં છું પણ પ્રજાના રક્ષણમાટે નહિ—ઇત્યાદિ વિચાર કરી તેણે પોતાના અધિકારીઓને આજ્ઞા કરી કે મારા રાજ્યમાં જો કોઈ પણ જીવહિસા કરે તો તેને ચોર અને વ્યભિચારી કરતાં પણ વધારે સખ્ત શિક્ષા કરવી.

આપણી આર્ય પ્રજામાંના જે લોકો માંસાહારી હોય છે તેઓ પણ એકરીતે જીવ-હિંસાને ઘૃણાસ્પદ તો માને છે જ. કારણ, દયામૂલ ધર્મની ભાવના આપણી પ્રજામાં ઘણા સૈકાઓથી રૂઢ થઈ ગએલી છે. 'અહિંસા પરમો ધર્મ'નો સિદ્ધાંત ભારતના બધાયે ધર્મોમાં વધતે ઓછે અંશે સ્વીકારવામાં આવ્યો છે. તેથી માંસાહારી મનુષ્યો, જીહ્વા-ઇન્દ્રિયની લોલુપતાને લઇને આવી રાજાજ્ઞાને મનથી ભલે પ્રિય ન ગણે પણ જાહેરરીતે તેનો વિરોધ કરવા જેટલી નૈતિક બાજુ તેમની તરફ ન હોવાથી તેઓ તે વિષે કશું ન બોલી શકે. પણ ધર્મના બ્હાને જીવહિંસા કરનારાઓની સ્થિતિ જુદી હોય છે. તેઓની હિંસાને ધર્મશાસ્ત્રોનું, સનાતન પરંપરાનું, ચાલુ આવતી રૂઢીનું અને જન-તામાં વ્યાપેલી અન્ધશ્રદ્ધાનું યથેષ્ટ સમર્થન હોય છે; તેથી, તેઓ તરફથી, રાજાની આવી જાતની આજ્ઞાસામે થવાની હીલચાલ થાય એ સર્વથા અપેક્ષિત જ હોય. પરંતુ, ગુજરાતની કેટલીક સામાજિક વિશિષ્ટતાને લઇને તેમ જ તે કાળે જૈનોની સર્વોપરિતાને લઇને, એ વર્ગ તરફથી પણ એ આજ્ઞાના વિરોધનો કશો વિશેષ ઉપદ્રવ કુમારપાલને નડ્યો નહિ. છતાં વિરોધનો સર્વથા અભાવ પણ નહોતો જ. કેટલાક પ્રબંધકારોના કથન ઉપરથી જણાય છે કે, પાટણની અધિષ્ઠાત્રી કંટેશ્વરી માતાના રાજપૂજારીઓએ,

છેવટે, નવરાત્રના દિવસોમાં તો નગરદેવીની પશુબલિદ્વારા પૂજા કરવી જ જોઇએ; નહિ તો દેવી કુપિત થશે અને તેના કોપના પ્રતાપે રાજા અને રાજ્ય ઉપર ભયાનક આપત્તિ આવી પડશે, એવો ભય બતાવી, કુમારપાલને એકવાર પોતાની પ્રવૃત્તિમાં સંદેહશીલ બનાવી દીધો હતો. રાજાએ પોતાના મહામાત્ય વાગ્ભટ્ટની, જે કુલપરંપરાથી જૈન હતો, એ બાબતમાં સલાહ માંગી. મહામાત્ય ગમે તેટલો શૂરવીર અને રાજનીતિનિપુણ હતો છતાં છેવટે હતો તે વણિક જ. રખેને એ માતા ખરેખરી કોપાયમાન થાય અને રાજા તથા રાજ્ય ઉપર જો સાચે જ કોઈ આફત ઉતરી પડે તો પછી શું કરાય, અને તેમ થવાથી ધર્મ અને કોમ બંનેની ભારે અપકીર્તિ થાય — આવી આવી કેટલીક કલ્પનાઓ કરી દાક્ષિણ્યતાથી અસ્પષ્ટ સ્વરે અને અવ્યક્ત ભાવે તેણે શબ્દો ઉચ્ચાર્યા કે દેવ! दीयते એટલે કે પશુબલિ દેવાય! આવું હોય ત્યાં બીજું શું કરાય. પણ કુમારપાલ તો ક્ષત્રિય હતો. 'પ્રાણ જાય પણ આન ન જાય' એ સંસ્કારોનો પાર્થિવપિંડ હતો. જગત્ સમક્ષ લીધેલી પ્રતિજ્ઞા અને જાહેર કરેલી આજ્ઞાનો ભંગ સાચો ક્ષત્રિય શી રીતે થવા દે. પ્રતિજ્ઞાપાલનના ગૌરવમણિ આગળ, ક્ષત્રિયના મને, જીવિત અને સમ્પત્તિ તો તુચ્છ તૃણ જેવા હોય છે. મહામાત્ય વાગ્ભટ્ટનો અર્દ્ધદગ્ધ ઉદ્‌ગાર સાંભળી કુમારપાલ હસી પડ્યો અને મર્મયુક્ત સ્વરે બોલ્યો કે 'मंत्रिन् वणिगसि यदेवं ब्रूषे — મહામાત્ય! વાણિયો છે જેથી આવું બોલે છે. રાજ્ય શું ને જીવિત શું બધુંયે નષ્ટ થઈ જાય પણ લીધેલી પ્રતિજ્ઞા નષ્ટ ન થઈ શકે.

પણ રાજાની આ મુંઝવણનો, હેમચંદ્રસૂરિએ પોતાની અદ્‌ભુત કુશલતા અને વ્યાવહારિકતાની બુદ્ધિદ્વારા સરસરીતે ઉકેલ કરી દીધો. તેમણે એક કાંકરે બે પક્ષીને ઘા કર્યા જેવી કળા વાપરી. પોતાની એ કળાનો મંત્ર તેમણે ધીમેથી રાજાના કાનમાં ફુંક્યો અને રાજાએ હર્ષગદ્‌ગદ થઈ હાસ્યરસ ઉપજાવે તેવો તેનો પ્રયોગ ભજવી બતાવ્યો. બલિપૂજાના અવસરે રાજા કેટલાક પશુઓને સાથે લઈ માતા કંટેશ્વરીના મંદિરમાં પહોંચ્યો અને પૂજારીઓને કહેવા લાગ્યો કે આ પશુઓ હું માતાને ચઢાવા માટે લાવ્યો છું. હું એમને, આમના આમ જીવતા જ માતાના હવાલે કરૂં છું. તેથી જો માતાને આમના માંસની જરૂર હશે તો તે પોતાની મેળે જ આમાંથી પોતાનું ભક્ષ્ય મેળવી લેશે—તમારે કોઇએ એ ભક્ષ્ય તૈયાર કરવાની મહેનત લેવી જરૂર નથી. આમ કહી રાજાએ માતાના મંદિરમાં પશુઓને પૂરી દીધા અને બહારથી તાળું મારી દીધું. બીજી સવારે રાજપરિવારસાથે રાજા ત્યાં આવ્યો, અને હજારો લોકોની મેદિની વચ્ચે માતાના મંદિરના દરવાજા ઉઘડાવી જોવા લાગ્યો તો જણાયું કે રાત્રે પુરેલા પશુઓ શાન્તિથી મંદિરના પ્રાંગણમાં પોતાનું ચર્વણ કરી રહ્યા છે. માતાએ એકેનું ભક્ષણ ન કર્યું. રાજાએ સર્વેની સમક્ષ, ઉત્સાહ સાથે ઉપદેશ આપ્યો કે—'માતાને પશુઓના માંસની જરાયે જરૂર નથી. એને તેની ભૂખ નથી. જો એને ભૂખ હોત તો આ પશુઓને જરૂર પોતે ખાઈ ગઈ હોત. આથી સમજાય છે કે માતાના નિમિત્તે આ પૂજારીઓને, આ પામર પશુઓના પિંડની ભૂખ છે; પણ તે ભૂખ હવે મારા રાજ્યમાં ભાગી શકાય તેમ નથી.' આમ કહી રાજાએ દેવી — દેવતાઓના નિમિત્તે થતી જીવહિંસાનો પણ સમૂલ ઉચ્છેદ કર્યો.

કુમારપાલની આવી અહિંસાપ્રવર્તક સાધનાની સફળતા જોઈને, બ્રાહ્મણ પંડિત શ્રીધરે એક વિશેષ પ્રસંગે હેમાચાર્યની સ્તુતિ કરતાં કહ્યું છે કે–

पूर्वं वीरजिनेश्वरे भगवति प्रख्याति धर्मं स्वयं
प्रज्ञावत्यभयेऽपि मन्त्रिणि न यां कर्तुं क्षमः श्रेणिकः ।
अक्लेशेन कुमारपालनृपतिस्तां जीवरक्षां व्यधात्
यस्यासाद्य वचस्सुधां स परमः श्रीहेमचन्द्रो गुरुः ॥

અર્થાત્–જે વખતે સાક્ષાત્ ભગવાન્ મહાવીર તો જેને ધર્મબોધ કરનાર હતા અને અભયકુમાર જેવો જેનો પ્રજ્ઞાવાન્ પુત્ર સ્વયં મંત્રી હતો તે રાજા શ્રેણિક પણ જે જીવરક્ષા ન કરી શક્યો તે જીવરક્ષા, જેના વચનામૃતનું પાન કરી કુમારપાલ અનાયાસરીતે સાધી શક્યો, તે હેમચંદ્ર ખરેખર એક મહાન્ ગુરુ છે.

સ્વયં આચાર્ય હેમચંદ્ર પણ, ઉપર કહેલા મહાવીરચરિત્ર નામના પુરાણગ્રંથમાં, મહાવીરના મુખેથી ભાવી રાજા કુમારપાલવિષે ભવિષ્યકથનરૂપે વર્ણન કરતાં, લખે છે કે–

पांडुप्रभृतिरपि त्यक्ता या मृगया नहि ।
स स्वयं त्यक्ष्यति जनः सर्वोऽपि तदाज्ञया ॥
हिंसानिषेधके तस्मिन् दूरेऽस्तु मृगयादिकम् ।
अपि मत्कुटयूकादि नान्त्यजोऽपि हनिष्यति ॥
तस्मिन्निषिद्धे पापार्द्धावरण्ये मृगजातयः ।
सदाऽप्यविघ्नरोमन्था भाविन्यो गोष्ठधेनुवत् ॥
जलचरस्थलचरखेचराणां स देहिनाम् ।
रक्षिस्यति सदा मारिं शासने पाकशासनः ॥
ये चाजन्मापि मांसादास्ते मांसस्य कथामपि ।
दुःस्वप्नमिव तस्याज्ञावशान्नेष्यन्ति विस्मृतिम् ॥

ભગવાન્ મહાવીર પોતાના શિષ્યોને કહે છે કે–ભાવિકાળમાં જે કુમારપાલ રાજા થનાર છે તેની આજ્ઞાથી સર્વ મનુષ્યો મૃગયા એટલે શિકારનો ત્યાગ કરશે કે જે મૃગયાને પાંડુ જેવા ધર્મિષ્ઠરાજાઓ પણ છોડી–છોડાવી શક્યા ન હતા. હિંસાનો નિષેધ કરનાર એ રાજાના સમયમાં શિકારની વાત તો દૂર રહી માંકણ અને જૂ જેવા જીવોનેય અન્ત્યજો સુધાં પણ હણી શકશે નહિ. આ રીતે મૃગયાવિષે તેની નિષેધાજ્ઞા થવાથી મૃગ આદિ પશુજાતિઓ નિર્ભય થઈને, વાડામાં ગાયો ચરે તેવીરીતે સદા ચર્યા કરશે. એ રીતે જલચર પ્રાણીઓ, પશુઓ અને પક્ષીઓ માટે સદા તે અમારિ પ્રવર્તાવશે અને તેની આવી આજ્ઞાથી, જેઓ આજન્મ માંસાહારીઓ હશે તેઓ પણ ખરાબસ્વપ્નની માફક, સદામાટે માંસની વિસ્મૃતિ કરશે.

કુમારપાલની આવી અમારિપ્રિય વૃત્તિને જોઈને તેના પડોશી અને ખંડિઆ રાજાઓએ પણ અમારિપ્રવર્તનની ઉદ્‌ઘોષણા કરનારાં કેટલાક શાસનો જાહેર કર્યાં હતાં જેનાં પ્રમાણસૂચક કેટલાક શિલાલેખો ઠેઠ મારવાડની પેલી સરહદ ઉપરથી મળી આવ્યા છે.

કુમારપાલની જ આવી અહિંસાપ્રવર્તક નીતિનું એ પરિણામ છે, કે, **વર્તમાન સમયમાં, જગતમાં સૌથી વધારે અહિંસક પ્રજા ગુજરાતની પ્રજા છે અને સૌથી વધારે અહિંસાધર્મનું પાલન ગુજરાતમાં થાય છે.** ગુજરાતમાં હિંસક યજ્ઞ-યાગ પ્રાયઃ ત્યારથી જ બંધ થએલા છે અને દેવી–દેવતાઓની આગળ થતો પશુવધ પણ, બીજા દેશોની તુલનામાં ગુજરાતમાં, ઘણો ઓછો છે. ગુજરાતનો પ્રાયઃ સઘળોય શિષ્ટ અને ઉચ્ચ પ્રજાવર્ગ ચુસ્ત નિરામિષભોજી છે. ગુજરાતનો પ્રધાન ખેડુતસમૂહ પણ માંસત્યાગી છે. ભલે અતિશયોક્તિ ગણાય અને તેનો ઉપહાસ પણ થાય છતાં મને કહેવાનું મન થાય છે કે – ગૂજરાતના એ જ પુણ્યમય વારસાના પ્રતાપે ગુજરાતે જગત્ના **સૌથી શ્રેષ્ઠ અહિંસામૂર્તિ મહાત્માને** જન્મ આપવાનું આજે અદ્વિતીય ગૌરવ પ્રાપ્ત કર્યું છે.

જીવહિંસા સાથે બીજી જે પાપકર પ્રવૃત્તિઓનો કુમારપાલે પોતાની પ્રજામાંથી નિષેધ કરાવ્યો તેમાં મુખ્ય હતી મદ્યપાનની પ્રવૃત્તિ. મદ્ય એ મનુષ્ય જાતિનો મોટો શત્રુ છે એ સૌ કોઈ જાણે છે. મદ્યની સાથે શિકાર, જુગાર, વ્યભિચાર અને તેવા બીજા અનેક અનાચારોનો ઘનિષ્ઠ સંબંધ છે. મદ્યના કારણે જગત્માં ઘણાં ઘણાં અનર્થો થયા છે અને થાય છે. પૌરાણિક કાળમાં જાદવોનો નાશ મદ્યપાનને લઇને થયો હતો એમ પુરાણો વર્ણવે છે. ઐતિહાસિક કાળમાં પણ મદ્યપાનને લીધે અનેક સમ્રાટો અને તેમનાં સામ્રાજ્યો નષ્ટ થયાંનાં ઉદાહરણો જોઈએ એટલાં મળી આવે છે. વર્તમાનમાં ક્ષત્રિયજાતિનું જે ભયંકર પતન થયું છે અને હજીએ વધારે થતું જાય છે, તેમાં મોટો ભાગ મદ્ય જ ભજવી રહ્યું છે. આપણા ગરીબ અને મહેનતુ પ્રજાવર્ગની જે આટલી બધી અવદશા થઈ રહેલી છે તેમાં પણ મદ્ય એક પ્રધાન કારણ છે એ આપણે સારી પેઠે જાણીએ છીએ. મદ્યની આવી માઠી અસરને લક્ષ્યમાં લઈને મધ્યકાળના કેટલાક મુસલમાન સમ્રાટોએ પણ તેના પાનનો જે તીવ્ર નિષેધ કર્યો હતો તે ઇતિહાસના અભ્યાસીઓને અપરિચિત નથી. અમેરિકા જેવા કેવળ ભૌતિકસંસ્કૃતિના ઉપાસક રાષ્ટ્રને પણ, આ વર્તમાન વીસમી શતાબ્દીસુધામાં, એ ઉન્માદક મદ્યપાનના નિષેધ માટે રાજાજ્ઞાનો કઠોર ઉપયોગ કરવો પડે છે.

પ્રબંધગત પ્રમાણોના વર્ણન ઉપરથી જણાય છે કે, કુમારપાલ જૈનધર્માનુયાયી થયો તે પહેલાં માંસાહાર તો તે કરતો હતો પરંતુ મદ્યપાન તરફ તેને ઠેઠથી તિરસ્કાર હતો. ઘણું કરીને એના કુલમાં જ એ વસ્તુ ત્યાજ્ય મનાતી હતી. હેમચંદ્રના યોગશાસ્ત્રમાં આવેલા એક ઉલ્લેખ ઉપરથી જણાય છે કે ચૌલુક્યોના કુલમાં મદ્યપાન નિન્દ્ય ગણાતું હતું, જેમ બ્રાહ્મણ જાતિમાં ગણાતું તેમ.

પરંતુ ચૌલુક્યોના પુરોગામી ચાવડાઓ સારી પેઠે મદ્યપી હતા. સ્વયં અણહિલપુરના સંસ્થાપક વનરાજને મદ્ય બહુ પ્રિય હતું, તથા એણે બાંધેલા અણહિલપુરના રાજમહેલોમાં, એની પાછળ પણ મદિરા દેવીનો ખૂબ સત્કાર થતો હતો અને તેના જ પરિણામે, જાદવોની માફક, એ ચાવડાવંશનો પણ આખરે ક્ષય થયો હતો, એમ મોહરાજપરાજય નાટકનો કર્તા મંત્રી યશઃપાલ ગર્ભિતરૂપે સૂચન કરે છે. અંતિમ ચાવડા રાજા સામંતસિંહનું રાજ્યસિંહાસન કેવીરીતે ચૌલુક્યવંશના પ્રતિષ્ઠાતા મૂળ-

રાજના હાથમાં આવ્યું, તેની જે હકીકત પ્રબંધચિંતામણિમાં આપવામાં આવી છે તે પરથી પણ ચાવડાઓના મદ્યપાનની હકીકત સ્પષ્ટપણે જણાઈ આવે છે.

મદ્યપાનના નિષેધની સાથે જુગાર ખેલવાની મનાઈ પણ કુમારપાલે તેટલી જ સખ્તાઈથી જાહેર કરી હતી. જુગારના લીધે પાંડવો જેવાઓને પણ કેવી કષ્ટાવસ્થા ભોગવવી પડી હતી તેમ જ નળ જેવા રાજા ઉપર પણ કેવી આપત્તિ આવી પડી હતી,–એ વગેરેની કથાઓ કુમારપાલે હેમચંદ્રસૂરિપાસેથી ઘણી વાર સાંભળી હતી અને પોતાના આસપાસના લોકોમાં પણ એણે જુગારની ખૂબ જ બદી ફેલાએલી જોઈ હતી તેથી તેણે એ જુગાર ખેલવાનો પણ પ્રતિબંધ જાહેર કર્યો હતો. યશઃપાલ મંત્રીના કથનથી જણાય છે કે તે વખતે લોકોમાં જુગારનું વ્યસન ઘણા મોટા પ્રમાણમાં ફેલાએલું હતું. મોટા મોટા રાજપુરુષો એ વ્યસનમાં વ્યાસક્ત થએલા હતા. એવા રાજપુરુષોમાંના કેટલાકનો તો સ્પષ્ટ નિર્દેશ પણ એ નાટકકારે કરેલો છે જે બહુ જ સૂચક છે. એ નિર્દેશ પ્રમાણે મેવાડનો રાજકુમાર, સોરઠના રાજાનો ભાઈ, ચંદ્રાવતીનો અધિપતિ, નાડોલના રાજાનો દૌહિત્ર, ગોધરાના રાજાનો ભત્રીજો, ધારાના રાજાનો ભાણેજ, શાકંભરીના રાજાનો મામો, કોંકણના રાજાનો વિમાતૃભ્રાતા, કચ્છના રાજાનો સાળો, મારવાડના રાજાની છોકરીનો છોકરો, અને ખુદ ચાલુક્ય નૃપતિ એટલે કુમારપાલદેવના કોઈ પિતૃવ્ય જેવી વ્યક્તિઓ હતી. એ ઉલ્લેખપરથી જણાય છે કે અણહિલપુરના સમ્રાટની સેવામાં રહેતા બધા ખંડિઆ રાજાઓના જે રાજપ્રતિનિધિઓ હતા તેઓ આ વ્યસનમાં સારી પેઠે આસક્ત થએલા હતા. નવરા બેઠેલા, એવા મોટા લોકોને, બીજું કામ પણ શું હોઈ શકે. રોજ, નિયત કરેલા અમુક બેત્રણ કલાકો રાજાના દરબારમાં તેઓ ઉપસ્થિત થાય અને પોતાની હાજરી પુરાવે, તે ઉપરાંત, શાંતિના સમયમાં, આવા રાજપ્રતિનિધિઓને કશું કામ હોતું નથી. તેથી તેમનો વખત હમેશાં આવા જ કોઈ વ્યસનમાં પસાર થતો હતો. આજે પણ આ વર્ગના માણસોમાં એવી જ સ્થિતિ જોઈ શકાય છે. આ જુગારને લઈને જુગારીઓમાં અનેક પ્રકારના ભયંકર કલહો ઉભા થતા, મારામારીઓ થતી અને તેવા બીજા નાના પ્રકારના અશ્લીલ દેખાવો થતા. કુમારપાલને આ વસ્તુસ્થિતિનું ચોક્કસ ભાન થયું હતું અને તેથી એના આવા દુષ્પરિણામોથી પ્રજાને બચાવવા માટે એના નિષેધનો તેણે રાજાદેશ જાહેર કર્યો હતો.

આ રીતે જે રાજનીતિ કુમારપાલે પ્રવર્તાવી તેમાં એક વાત ખાસ દેખાતી નથી. તે વાત છે વેશ્યાવ્યસન વિષેની. કુમારપાલને તેની કલ્પના તો હોવી જ જોઈએ. મદ્ય અને દ્યૂતની માફક એ વ્યસન પણ પ્રજાની દૃષ્ટિએ તેટલું જ અનિષ્ટકર છે અને ધર્મશાસ્ત્રોમાં પણ એની અનિષ્ટતા સારી પેઠે વર્ણવેલી છે. પણ કુમારપાલે ગમે તે કારણે હો, એ વ્યસનની ઉપેક્ષા કરી હતી. મોહરાજપરાજય નાટકમાં–એ વિષે પણ એક સૂચન કરેલું મળી આવી છે. ઉક્ત રીતે જ્યારે કુમારપાલે બધા દુર્વ્યસનોનો બહિષ્કાર કરાવ્યો ત્યારે વેશ્યાવ્યસનને પણ તેનો ભય લાગ્યો પરંતુ રાજાએ તેની ઉપેક્ષા કરતાં કહ્યું કે वेश्याव्यसनं तु वराकमुपेक्षणीयम् । न तेन किञ्चिद् गतेन स्थितेन वा–એટલે કે–બાપડા વેશ્યાવ્યસનની તો ઉપેક્ષા કરવી જોઈએ. તેના રહેવાથી કે

જવાથી કશું થતું નથી. આ સૂચન ગુજરાતની તે વખતની વેશ્યાવિષેની સ્થિતિ ઉપર કાંઈક પ્રકાશ પાડે છે. વેશ્યાસંબંધ, તે વખતે સમાજમાં, બીજા વ્યસનનોની જેમ બહુ નિન્દ્ય ગણાતો ન હતો. સમાજના શિષ્ટ કહેવાતા વર્ગસાથે વેશ્યાઓનો ઘણો સંબંધ રહેતો હતો. તેમ જ વેશ્યાઓની સ્થિતિ પણ આજના જેવી તદ્દન હલકી અને કેવળ વ્યભિચાર પોષનારી ન હતી. વેશ્યાઓનું સ્થાન સમાજમાં એક પ્રકારે ઉચ્ચ પ્રતિનું ગણાતું. રાજદરબારમાં હમેશાં તેમની ઉપસ્થિતિ રહેતી. દેવમંદિરોમાં પણ નૃત્ય અને ગાનાદિ માટે તેમની હાજરી આવશ્યક ગણાતી. સાર્વજનિક કે ખાનગી ઉત્સવ–મહોત્સવોમાં તેઓ અગ્રભાગ ભજવતી. કળા અને કુશળતાની તેઓ શિક્ષિકા ગણાતી. રાજપુત્રો વગેરે લક્ષ્મીદેવીના કૃપાપાત્રો તેમની પાસે કળાભ્યાસ પણ કરતા. અનેક રાજાઓ આવી કળાધામ વેશ્યાઓને પોતાની પ્રિયતમા બનાવતા. ખુદ કુમારપાલનું પિતૃકુલ પણ આવી જ એક વેશ્યાવર્ગમાં અવતરેલી કળાનિધિ રાજરાણીની સંતતિરૂપે હતું. તેના દરબારમાં પણ આ વેશ્યાવર્ગ સારા પ્રમાણમાં અને સારી સ્થિતિમાં વિદ્યમાન હતો. તેથી તેણે તેમની પ્રવૃત્તિવિષે કોઈ પણ પ્રકારનો વિધિ કે નિષેધ કરવાનો કશોય વિચાર નહિં કર્યો હોય.

આ પ્રમાણે કુમારપાલે જૈનધર્મમાં દીક્ષિત થઈ, તેના સિદ્ધાન્તો પ્રમાણે કેટલાક મોટા ધાર્મિક અને નૈતિક નિયમો જાહેર કર્યા હતા અને એ નિયમોનું પાલન પ્રજા બરાબર કરે તે માટે તેણે પૂરેપૂરી સાવચેતી પણ રાખી હતી. હેમચદ્રાચાર્ય કહે છે કે તેના અહિંસાના આદેશને અનુસરીને, અંત્યજો જેવા પણ જૂ માંકણ સુધાંની હત્યા નહોતા કરતા. એ કથનમાં ભલે કાંઈક અતિશયોક્તિ હશે પણ રાજા એ બાબતમાં પૂરેપૂરો સતર્ક હતો એમાં તો જરાયે શંકા નથી. પ્રબંધચિંતામણિ અને તેવા બીજા પ્રબંધોમાં જે એક યૂકાવિહાર મંદિર બંધાયાનો ઇતિહાસ મળી આવે છે તેનાથી આ હકીકતને ચોક્કસ પુષ્ટિ મળે છે.

કુમારપાલે આ રીતે નૈતિક કાર્યો કરવા ઉપરાંત જૈનધર્મનો પ્રચાર અને પ્રભાવ વધારવા અર્થે તેણે ઠેક-ઠેકાણે સેંકડો જૈન મંદિરો બાંધ્યાં–બંધાવ્યાં હતાં. શત્રુંજય અને ગિરનાર જેવા જૈનતીર્થોની, રાજસાહી ઠાઠ સાથે મોટાસંઘો કાઢી તેણે યાત્રા કરી હતી અને રાજધાનીમાં દરવર્ષે તે મોટા મોટા જૈન મહોત્સવો ઉજવતો હતો અને બીજા શહેરોમાં પણ તેવા મહોત્સવો ઉજવવાની પ્રેરણા કરતો હતો.

તે રાજકાજ બહુ જ નિયમિત રીતે જોતો. તેની દિનચર્યા બરાબર વ્યવસ્થિત હતી. વિલાસ કે વ્યસનને તેના જીવનમાં સ્થાન જ ન હતું. તે બહુ જ દયાળુ અને ન્યાયપરાયણ હતો. તે અંતરથી ખરેખરો મુમુક્ષુ હતો અને ઐહિક કામનાઓથી તેનું મન ઉપશાંત થયું હતું. રાજધર્મ છે એમ જાણીને તે રાજની સર્વ પ્રવૃત્તિ કાળજીપૂર્વક જોતો પણ તેમાં તેની આસક્તિ ન હતી. તેની દિનચર્યાના સંબંધમાં હેમચંદ્રાચાર્યે, **प्राकृतद्व्याश्रय** કાવ્યમાં અને સોમપ્રભાચાર્યે **कुमारपाल प्रतिबोध** નામના ગ્રંથમાં જે સૂચવ્યું છે તે પરથી સમજાય છે કે–તે સવારના વખતમાં, સૂર્યોદય થયાં પહેલાં જ શય્યામાંથી ઉઠી જતો અને સૌથી પ્રથમ જૈનધર્મમાં મંગલભૂત ગણાતા અરિહંત, સિદ્ધ, આચાર્યાદિ પાંચ નમસ્કારપદોનું સ્મરણ કરતો. પછી શરીરશુદ્ધિની ક્રિયાવગેરેથી

નિવૃત્ત થઈ, પોતાના રાજમહાલયમાં જે ગૃહચૈત્ય હતું તેમાં જઈ પુષ્પાદિ વગેરેથી જિનપ્રતિમાની પૂજા કરી સ્તવના સાથે પંચાંગ પ્રણિપાત કરતો. ત્યાંથી નીકળી, પછી તે તિલકાવસર નામના મંડપમાં જઈને સુકોમલ ગાદી ઉપર બેસતો. ત્યાં તેની સામે બીજા સામંત રાજાઓ આવીને બેસતા. પાસે ચામર ધારણ કરનારી વારાંગનાઓ ઉભી રહેતી. પછી રાજપુરોહિત કે બીજા બ્રાહ્મણો આવીને રાજાને આશીર્વાદ આપતા અને તેના કપાળમાં ચંદનનો તિલક કરતા. તે પછી બ્રાહ્મણો તિથિવાચન કરતા, તે સાંભળતો. ત્યાર બાદ બ્રાહ્મણોને દાન આપી તેમને વિદાય કરતો અને પછી તરત જ અર્જદારોની અર્જીઓ સાંભળતો. પછી ત્યાંથી ઉઠીને મહેલોની અંદર, જ્યાં માતા અને તેની બીજી માતાજેવી રાજવૃદ્ધા સ્ત્રીઓ રહેતી ત્યાં જઈ તેમને નમસ્કાર કરતો અને તેમના આશીર્વાદ મેળવતો. તે પછી ફળ–ફુલ આદિવડે રાજલક્ષ્મીની પૂજા કરાવતો અને બીજા પણ દેવી–દેવતાની જે પ્રતિમાઓ રાજમહેલમાં રહેલી હતી તેમની સ્તુતિ વગેરે કરાવતો. વૃદ્ધસ્ત્રીઓ વગેરેને સહાયતાર્થે ધન આપતો. ત્યાંથી પછી તે વ્યાયામશાળામાં જતો અને યથાયોગ્ય વ્યાયામ કરતો. તે પછી સ્નાન કરી, વસ્ત્ર વગેરે પહેરી, રાજમહેલના બહારના ભાગમાં આવતો. ત્યાં તે પહેલાંથી જ સવારી માટે તૈયાર કરી રાખેલા રાજગજ ઉપર આરૂઢ થઈ, સઘળા સામંત મંત્રી આદિના પરિવાર સાથે, પોતાના પિતાના પુણ્યનામથી અંકિત **ત્રિભુવનપાલવિહાર** નામનું જે મહાવિશાળ અને અતિભવ્ય જૈનમંદિર ક્રોડો રૂપીઆ ખર્ચ કરી, તેણે બંધાવ્યું હતું તેમાં દર્શન અને પૂજન કરવા અર્થે તે જતો. જે વખતે તે જિનમૂર્તિને અભિષેક કરાવતો તે વખતે રંગમંડપમાં વારાંગનાઓ ઘણા આડંબર સાથે નૃત્ય અને ગાન કરતી. જિનમંદિરમાં પૂજાવગેરેનો વિધિ સમાપ્ત કરી, તે પછી હેમચંદ્રાચાર્યપાસે જઈ, તેમના ચરણવંદન કરતો અને ચંદન, કપૂર અને સુવર્ણકમલોવડે તેમનાં ચરણોની પૂજા કરતો. તેમના મુખેથી યથાવસર ધર્મબોધ સાંભળી ત્યાંથી રાજમહેલ તરફ પાછો ફરતો. પાછા ફરતી વખતે તે હાથીપર ન ચઢતાં ઘોડા ઉપર સવાર થતો અને સ્વસ્થાને પહોંચતો. ત્યાં પછી યાચકાદિ જનોને યથાયોગ્ય દાન વગેરે આપી ભોજન કરતો. તેનું ભોજન બહુ જ સાત્ત્વિક પ્રકારનું રહેતું. જૈનધર્મના બોધ પ્રમાણે, તે ઘણીવાર એકાશન વગેરે તપ કરતો અને લીલા શાક વગેરે સ્વાદવાળા પદાર્થોનો ત્યાગ કરતો. જમી રહ્યા પછી તે આરામગૃહમાં બેસતો અને ત્યાં યથાપ્રસંગ વિદ્વાનોની સાથે શાસ્ત્ર અને તત્ત્વસંબંધી વિચાર કતો.

ત્રીજે પહોર ઢળ્યા પછી તે રાજપાટિકાએ નીકળતો. રાજા પોતાના બધા રાજસાહી ઠાઠસાથે રાજમહેલમાંથી નીકળી, શહેરના રાજમાર્ગે થઈ, બહાર ઉદ્યાનમાં જઈ ઘડી–બે ઘડી જે ઉદ્યાનક્રીડા કરે તેનું નામ રાજપાટિકા. ગુજરાતીભાષામાં એનું નામ છે રાયવાડી અને રાજપૂતાની ભાષામાં એનો ઉચ્ચાર છે રેવાડી. સંધ્યાસમય થતાં ત્યાંથી તે રાજમહેલ તરફ પાછો ફરતો, અને મહેલોમાં આવી, દેવની આરતી વગેરેનું સંધ્યાકર્મ કરતો. પછી, તે વખતે વારાંગનાઓ વગેરે જે નૃત્ય અને ગાન કરતી, તે એક પાટ પર બેસીને સાંભળતો. સ્તુતિપાઠકો અને ચારણો વગેરે તે વખતે ખૂબ તેની સ્તુતિઓ કરતા. ત્યાંથી પછી તે સર્વાવસર નામના મુખ્ય સભામંડપમાં આવીને

સિંહાસનાસીન થતો. સર્વ રાજવર્ગીય અને પ્રજાવર્ગીય સભાજનો ત્યાં ઉપસ્થિત થતા. રાજપુરોહિત આવીને રાજા અને રાજ્યના કલ્યાણાર્થે મંત્રપાઠ ભણતા. પછી ચામર ધારણ કરનારી વારસ્ત્રીઓ આસપાસ ચામરાદિ રાજ-ઉપકરણો ધારણ કરીને ઉભી રહેતી. પછી મંગલવાજિંત્રો વાજતા. તે પછી બીજી બીજી તેવી સ્ત્રીઓ પોતપોતાનું કામ કરવા માટે હાજર થતી. પછી વારાંગનાઓ આવીને રાજાનાં ઉવારણાં લેતી. બીજા સામંતો અને ખંડિઆ રાજાઓ તે વખતે હાથજોડીને ઉભા રહેતા. રાજાની સન્મુખ રાજ્યના બીજા મહાજનો જેવા કે સેઠિયાઓ, વ્યાપારીઓ, પ્રધાન ગ્રામજનો વગેરે આવીને બેસતા. પરરાજ્યોના જે દૂતો આવતા તે દૂર, બધાની પાછળ, બેસતા. વારવનિતાઓનો નીરાજનાવિધિ પૂરો થતો એટલે પછી તેઓ પણ એક બાજુ બેસી જતી; અને આખી સભા પછી એકાગ્ર થઈ રાજ્યકાર્યની પ્રવૃત્તિ જોતી. રાજ્યકાર્યમાં સૌથી પ્રથમ સાન્ધિવિગ્રહિક–એટલે પરદેશ મંત્રી (ફોરિન મિનિસ્ટર)–પરરાજ્યોસાથેના સંબંધોની કાર્યવાહી રાજાને નિવેદન કરતો. કયા રાજા સાથે શી સન્ધિ થઈ છે, કયા રાજાએ શું ઇષ્ટ–અનિષ્ટ કર્યું છે, કોના ઉપર લશ્કર મોકલ્યું છે, કયા લશ્કરે શું કર્યું છે, કોણ શત્રુ-મિત્ર થાય છે–ઇત્યાદિ પરરાજ્યસાથે સંબંધ ધરાવતી સઘળી કાર્યવાહીઓ તે રાજાને નિવેદન કરતો. રાજા તે સાંભળી તેના વિષે યથાયોગ્ય વિચાર જાહેર કરતો. તે પછી બીજી બધી રાજ્યકાર્યવાહી થતી, તે સાંભળી તેનો યથાયોગ્ય નીકાળ કરતો અને આખરે સમય થતાં સભા બરખાસ્ત કરી, યથાવસરે શયનાગારમાં જઈ શય્યાધીન થતો. જૈનધર્મના વ્રતોનો વિશિષ્ટ સ્વીકાર કર્યા પછી, ઘણા ભાગે તે બ્રહ્મચર્ય વ્રત પાળતો હતો, અને પૂર્ણ પત્નીનિષ્ઠ હતો. એ બાબતમાં એ પહેલેથી જ બહુ સદાચારી હતો અને તેને લઈને એના આશ્રિત સમસ્ત રાજવર્ગીય જનોમાં એનો મોટો પ્રભાવ હતો.

આ પ્રમાણે કુમારપાલની નિયત દિનચર્યા હતી. વિશેષ અવસરો ઉપર એ ચર્યામાં જે ફેરફાર થતો તે પ્રાસંગિક હતો. દાખલા તરીકે, પ્રજાજનોના આનંદ માટે અમુક અમુક વખતે રાજમહેલના ક્રીડાંગણમાં હાથીઓની સાઠમારી થતી, કે મલ્લોની કુસ્તી થતી કે તેવા બીજા ખેલો વગેરે થતા, તો તે વખતે રાજા પણ, રાજધર્મને અનુસરી સપરિવાર ત્યાં જઈને બેસતો અને એ ખેલો વગેરે જોતો અને નિત્યના કાર્યક્રમમાં ફેરફાર કરતો. રથયાત્રા વગેરેના જે ધાર્મિક ઉત્સવો થતા તો તેમાં પણ તે તેવી જ રીતે સામેલ થતો. કેટલાક પર્વ દિવસોના પ્રસંગોપર મંદિરમાં રાત્રે નાટ્યપ્રયોગો કે સંગીતોત્સવ થતા અને તેમાં પણ તે પોતાની હાજરી આપતો.

કુમારપાલના જીવનનું અવલોકન કરતાં જણાય છે કે તે તેના પૂર્વગામી સિદ્ધરાજ જેટલો પ્રતિભાશાલી અને વિદ્યારસિક નહિ હોય છતાં બુદ્ધિમાન તો હતો જ. તેને યુવાવસ્થામાં વિદ્યાપ્રાપ્તિનો પૂરતો અવસર પણ ક્યાં મળ્યો હતો? તેની જવાનીનો મુખ્ય હિસ્સો, સિદ્ધરાજથી પોતાનો જીવ બચાવવા માટે, ભટકવામાં અને કષ્ટો વેઠવામાં જ વીત્યો હતો. પચાસ વર્ષની ઉમરે એનું ભાગ્યપરિવર્તન થયું અને એ ગુજરાતના વિશાલ સામ્રાજ્યનો ભાગ્યવિધાતા બન્યો. રાજ્ય મળ્યાં પછી પણ, એના ૫–૭ વર્ષ તો, વિપક્ષિઓને થાળે પાડવામાં ગયા એટલે વયના ૫૬–૫૭ વર્ષ પછી એનું સિંહાસન

સ્થિર થયું અને એના પ્રતાપનો સૂર્ય સહસ્રકિરણોથી તપવા લાગ્યો. એ ઉમરમાં વિદ્યાધ્યયનને કેટલો અવકાશ હોય. છતાં પ્રબંધકારો કહે છે તેમ, પ્રસંગ પડતાં એણે એટલી ઉમરે પણ સખ્ત મહેનત કરી સંસ્કૃત ભાષાનો સારો સરખો અભ્યાસ કરી લીધો હતો અને તે દ્વારા વિદ્વાનોની તત્ત્વચર્ચાનો એ યથેષ્ટ આકલન કરી શક્તો હતો. હેમચંદ્રાચાર્યે, એના માટે જ બનાવેલા યોગશાસ્ત્ર અને વીતરાગસ્તોત્રનો એ હમેશાં સ્વાધ્યાય કરતો હતો. યોગશાસ્ત્રના અંતે હેમાચાર્યે કરેલા ઉલ્લેખ પરથી જણાય છે કે એને યોગની ઉપાસની વધુ પ્રિય હતી અને તેથી એણે કેટલાંક યોગશાસ્ત્રો સારી પેઠે જોયાં હતાં. ત્રિષષ્ઠિશલાકાપુરુષચરિત્ર નામનો, જૈન તીર્થંકરો ઈત્યાદિ મહાપુરુષોના ચરિત્ર-વર્ણનવિષેનો જે મોટો ગ્રંથ, હેમચંદ્રાચાર્યે બનાવ્યો તે ખાસ કુમારપાલની પ્રેરણાથી જ બનાવ્યો હતો એ ઉપર જણાવેલું છે. એથી જણાય છે કે તેને એવા ગ્રંથો વાંચવાનો શોખ હતો. કદાચિત્ જૂની વાતો જાણવાની જિજ્ઞાસા એને વધારે હશે. રાજ્યપ્રાપ્તિ પહેલાં જ્યારે એ ભટકતો ભટકતો એક વાર ચિત્તોડના કિલ્લા ઉપર જઈ ચઢ્યો અને ત્યાં એને જે એક દિગબર વિદ્વાન મળી આવ્યો, ત્યારે એણે તેને એ કિલ્લાની ઉત્પત્તિ વગેરે કેવી રીતે થઈ એ બધી હકીકત પૂછી હતી; તેમ જ રાજ્યપ્રાપ્તિ પછી જ્યારે એ મોટો સંઘ કાઢી ગિરિનારની યાત્રાયે ગયો અને જૂનાગઢમાં દશદશારમંડપ વગેરે પ્રાચીન સ્થળો જોયાં, ત્યારે તે વિષે પણ, આચાર્ય હેમચંદ્રને એણે જૂની હકીકત જણાવવા વિજ્ઞપ્તિ કરી હતી.

કુમારપાલ ભાવુક વધારે હતો અને તેથી જ તે આવી જાતની ધાર્મિક વૃત્તિમાં દૃઢ શ્રદ્ધાશીલ થઈ શક્યો હતો. હેમચંદ્રાચાર્ય ઉપર તેની અનન્ય ભક્તિ હતી. કાંઈક તો, તે, પોતાની પ્રવાસી દશામાં હેમચંદ્રદ્વારા ખંભાતમાં જે ઉદયનમંત્રી પાસેથી મદત મેળવી શક્યો તેના આભારને લઇને; કાંઈક, હેમચંદ્રાચાર્યે પોતાના જ્યોતિષ-જ્ઞાન બળે એને ભવિષ્યમાં ચોક્કસ રાજ્યગાદી મળવાની ખાતરી આપીને એના જે નિરાશજીવનને આશાવાન્ બનાવ્યો હતો તેના સ્મરણને લઇને; અને કાંઈક, રાજ્યગાદી મળ્યા પછી પણ આચાર્યે એને અમુક અમુક પ્રસંગોમાં, પોતાની વિદ્યાશક્તિના બળે આશ્ચર્યચકિત કરી દીધો હતો તેના પ્રભાવને લઇને, એ હેમચંદ્રનો અનન્ય અનુરાગી થઈ ગયો હતો. અને પછીથી જેમ ધીમે ધીમે એ આચાર્યના વિશેષ પ્રસંગમાં આવતો ગયો અને તેમના ચારિત્ર, જ્ઞાન, તપ આદિના બળનો એને વિશિષ્ટ પરિચય થતો ગયો તેમ, એ તે આચાર્યનો શ્રદ્ધાળુ શિષ્ય થતો ગયો. જ્યારે એને ખાત્રી થઈ કે એ આચાર્યનું જીવનધ્યેય કેવળ પરોપકારવૃત્તિ છે અને આટલા મોટા સમ્રાટ્ પાસેથી પણ એ સૂકી રોટલીઓય મેળવવાની એમની અભિલાષા નથી, ત્યારે એણે પોતાનો સમ્પૂર્ણ આત્મા એ આચાર્યના ચરણમાં સમર્પણ કર્યો અને એ મહર્ષિનો આદેશ આદરી પોતે પણ રાજર્ષિ બન્યો.

કુમારપાલ મોટો પરાક્રમી પુરુષ હતો છતાં મિથ્યા મહત્ત્વાકાંક્ષી ન હતો. એના સામ્રાજ્યનો વિસ્તાર સહેજે જ એટલે બધો થઈ ગયો હતો. સામ્રાજ્ય વિષેની એની નીતિ રક્ષણાત્મક હતી– આક્રમણાત્મક નહોતી. પરરાજ્યો પર ચઢાઈ કરવાની એને ફરજ પડી એટલે જ એણે ચઢાઇઓ કરી. એ મહત્ત્વાકાંક્ષી ન હતો છતાં સ્વાભિમાની પૂરો હતો. એ પોતાનો તેજોવધ જરા પણ સહન કરે તેવો ન હતો

અને સાથે રાજનીતિનો પૂર્ણ અનુભવી હતો. જે મનુષ્યના વિશેષ પ્રયત્નથી એ રાજગાદી મેળવવા નસીબદાર થયો હતો અને જે પોતાનો એક સગો બનેવી પણ થતો હતો, તે કાન્હડદેવને પણ, જ્યારે એણે પોતાની પૂર્વાવસ્થાને ઉપલક્ષી ઉપહાસ કરતો જોયો ત્યારે તેના તત્કાલ ગાત્રભંગ કરાવી તેને નિર્જીવ બનાવી દીધો. અને તેવી જ રીતે બીજા કંટકોનો પણ તત્કાળ જીવિતનાશ કરાવી નાંખ્યો. પૂર્વાવસ્થામાં એ ભલે રંકની માફક ભટક્યો હોય, પણ હવે ભાગ્યે એને રાજા બનાવ્યો છે અને એ ભાગ્યદત્ત રાજ્યનું રક્ષણ પોતાની સમશેરના બળે કરવા પોતે સમર્થ છે, એ જાતનું દૃઢ સ્વાભિમાન એના પૌરુષમાં ઉછળતું હતું અને તેથી એ અભિમાનનો પ્રભાવ બતાવવા માટે એણે પોતાના આપ્તજનનો નાશ કરવામાં પણ કશી વાર ન લગાડી. એથી ઉલટું, જે સાજણ કુંભારે એક વખતે કાંટાના ઢગલા તળે છુપાવી સિદ્ધરાજના સૈનિકોથી એના જીવિતનું રક્ષણ કર્યું, તેને, રાજ્ય મળતાંની સાથે જ પોતાની સેવામાં બોલાવી, તેણે કરેલા ઉપકારના બદલામાં સાતસો ગામના પટાવાળું ચિત્તોડનું વર્ષાસન એણે બાંધી આપ્યું. એનું આવું વર્તન જોઈ અંદરના વિરોધીઓ થરથરી ગયા અને બધો વિરોધભાવ છોડી દઈ એના અનન્ય સેવાપરાયણ થયા. એવા વિરોધીઓમાંનો એક અગ્રણી બાહડનામનો ખાનદાન રાજકુમાર, જે રાજ્યના લશ્કરમાં ઘણો માનીતો હતો અને જેને સિદ્ધરાજે પોતાના પુત્ર તરીકે પાળ્યો હતો, તે કુમારપાલનું સાંનિધ્ય છોડી શાકંભરીના ગર્વિષ્ઠ ચાહમાન અર્ણોરાજની સેવામાં જઈ રહ્યો અને તે રાજાને કુમારપાલની વિરુદ્ધ ઉભો કરી, એના રાજ્યની જડ ઉખેડવા, તેણે ગુજરાતની સીમાસામે લડાઇના મોર્ચા મંડાવ્યા. કુમારપાલના ભવિષ્યમાટે એ સમય અત્યંત કટોકટીનો હતો. એના સામંતોમાંના ઘણા ખરા, ઉપરથી પક્ષમાં પણ અંતરથી વિપક્ષમાં જણાતા હતા. બાહડ રાજકુમારની ચાલાકીથી માલવાનો સ્વામી બલ્લાલદેવ પણ, બીજી બાજુથી ગુજરાત ઉપર આક્રમણ કરવા તૈયાર થયો હતો, અને તેમ કરી તેણે કુમારપાલની સ્થિતિ સૂડીવચ્ચે સુપારી જેવી કરી મુકી હતી. પરંતુ, કુમારપાલના ભાગ્યબળે એના રાજકારભારીઓ, જેમની નિયુક્તિ એણે જાતે જ કરી હતી તેઓ, વધારે સમર્થ અને વિશ્વાસુ નીવડ્યા. તેમની કુશળતાથી ગુજરાતનો પ્રજાવર્ગ નવા રાજા તરફ પૂર્ણ સહાનુભૂતિવાળો બન્યો હતો અને સૈનિકવર્ગ પણ પરાક્રમી અને રણશૂર રાજાની છત્રછાયાનીચે ઉન્નતિની આશાથી ઉત્સાહિત થયો હતો. કુમારપાલે પોતાના વિશ્વાસુ દંડનાયક કાકભટની સરદારી નીચે ચુનંદા સૈનિકોની એક જબ્બર ફોજ માલવાના બલ્લાલ ઉપર મોકલી દીધી અને પોતે પોતાના બધા સામંતોને સાથે લઈ મારવાડના અર્ણોરાજનો સામનો કરવા ગયો. સામંતોમાંથી મુખ્ય જે ચંદ્રાવતીનો મહામંડળેશ્વર વિક્રમસિંહ હતો, તેણે વચ્ચે આબુની નીચે જ કુમારપાલનો જીવ લઈ લેવાની વિશ્વાસઘાત ભરેલી રમત રમી; પણ કુમારપાલ તે રમતને ઝટ ઓળખી ગયો અને ત્યાં ન થોભતાં સીધો શત્રુના સૈન્ય ઉપર ચાલી ગયો. પરંતુ સમરાંગણમાં પણ તેણે પોતાના સામંતો અને સૈનિકોને શત્રુપક્ષે ભેદેલા જોયા. કુમારપાલ પોતાના ભાગ્યના પાશા નાખવા માટે, સમયકુશળતા વાપરી, એક જ ઝપાટે શત્રુના હાથી ઉપર ધસી ગયો અને પહેલા જ વારમાં તેને આહત કરી શરણાગત થવાની તેને ફરજ પાડી. બલ્લાલ ઉપર ચઢી ગએલા સેનાપતિએ પણ

તેટલી જ ઝડપથી શત્રુનો શિરશ્છેદ કરી કુમારપાલની વિજયપતાકા ઉજ્જયિનીના રાજમહેલ ઉપર ઉડતી કરી.

ગુજરાતનાં તદ્દન પડોસી અને લાંબા સમયનાં પ્રતિસ્પર્ધી એવાં મારવાડ અને માલવાનાં બંને મહારાજ્યોને, સિદ્ધરાજ જયસિંહે જ ગૂર્જરપતાકાની છાયા નીચે વિશ્રાન્તિલેતાં કરી મુકયાં હતાં; પરંતુ તેના મૃત્યુ પછી ગાદીએ આવેલા નવીન રાજા કુમારપાલના વાસ્તવિક સ્વરૂપથી અજ્ઞાત રહેલાં એ રાજ્યોએ, ગુજરાતની પતાકાને ઉખાડી ફેંકી દેવાનો પ્રયત્ન કર્યો અને એ પ્રયત્નને કુમારપાલે પોતાના પરાક્રમથી આ રીતે નિષ્ફળ બનાવ્યો. પણ એનું ભાગ્ય હજી વધારે સફળતા મેળવવા માટે સર્જાએલું હતું. ગુજરાતની દક્ષિણસીમા ઉપર કોંકણનું રાજ્ય આવેલું હતું. તેનું પાટનગર, મુંબઈ પાસેનું ઠાણાપત્તન હોઈ ત્યાં શિલાહારવંશી રાજાઓ રાજ્ય કરતા હતા. એ કોંકણરાજ્યની પેલી બાજુની દક્ષિણસીમા ઉપર કર્ણાટકના કદંબવંશીઓનું રાજ્ય હતું જેની રાજધાની ગોપાકપટ્ટન એટલે હાલનું પોર્તુગીજ બંદર ગોવા હતી. સિદ્ધરાજની મતા મયણલ્લાદેવી એ રાજવંશની કન્યા હોવાથી કર્ણાટક અને ગુજરાતવચ્ચે ગાઢ સગાઇનો સંબંધ હતો. એટલે એ સંબંધી રાજ્યો વચ્ચે આવેલું કોંકણનું રાજ્ય ગુજરાત સાથે બાથ ભીડી શકે તેમ ન હોવાથી સિદ્ધરાજના સમયમાં તો તે આ દેશ સાથે મૈત્રીભાવે વર્તતું હતું. સિદ્ધરાજના મૃત્યુ પછી જ્યારે કુમારપાલ ગાદીએ આવ્યો ત્યારે એ મૈત્રીસંબંધ વિચ્છિન્ન થયો હતો અને મારવાડના અને માલવાના રાજાઓને કુમારપાલ સામે માથું ઉંચકતા જોઈ એ કોંકણના ગર્વિષ્ઠ મલ્લિકાર્જુન રાજાને પણ ગુજરાત ઉપર આક્રમણ કરવાનો મનોરથ થઈ આવ્યો. કુમારપાલે તેના એ મનોરથને નિષ્ફળ કરવા માટે મંત્રીરાજ ઉદયનના પુત્ર દંડનાયક આંબડભટને સેનાની બનાવી એક લશ્કર કોંકણ ઉપર રવાના કર્યું. મારવાડ અને માલવા વગેરેના પ્રદેશોની રક્ષામાં ગુજરાતનું ઘણું ખરૂં સૈન્ય રોકાએલું હોવાથી આંબડ પાસે પુરતું સૈન્યબળ ન હતુ અને તેથી પહેલી વારની ચઢાઇમાં ગુજરાતના સૈન્યને કેટલીક હાર ખમીને, પાછા ફરવાની ફરજ પડી. પણ પાછળથી જ્યારે મારવાડ વગેરે તરફથી મોટી સંખ્યામાં સૈન્ય આવી પહોંચ્યું ત્યારે ફરીવાર એ જ દંડનાયકના અધિકાર નીચે ગુજરાતની એક પ્રબળ સેના તે કોંકણચક્રવર્તીના દર્પને ચૂર્ણ કરવા માટે બમણા ઉત્સાહથી રવાના થઈ. રણભૂમિમાં બંને લશ્કરો વચ્ચે ખુનખ્વાર લઢાઈ થઈ અને તેમાં છેવટે ગુજરાતીઓનો જય થવાથી વિજયદેવીએ સેનાનાયક આંબડના ગળામાં વરમાળા પહેરાવી. રાજપિતામહ બિરુદધારક મલ્લિકાર્જુનનું માનોન્નત મસ્તક, ગુજરાતના એક દયાધર્મી વણિકસુભટે, પોતાની તીક્ષ્ણ તરવારથી કમળપુષ્પની માફક, કાપી લીધું અને તેને સુવર્ણપત્રમાં વીંટાળી, શ્રીફળની માફક, પોતાના સ્વામીના ચરણમાં ભેટ કર્યું. કુમારપાલે તેના પરાક્રમના પ્રભાવને સત્કારવામાટે, એ નિહત-રાજાનું પ્રિય બિરુદ, આંબડભટ્ટને અર્પિત કરી તેને 'રાજપિતામહ' બનાવ્યો.

આ રીતે કોંકણના રાજાનો ઉચ્છેદ થવાથી કુમારપાલની રાજ્યસત્તા દક્ષિણ પ્રાંતમાં પણ ઘણા દૂરના પ્રદેશ સુધી લંબાઈ હતી; અને કદાચિત્, સહ્યાદ્રિના સુદૂર શિખર સુધી ગુજરાતનો તામ્રચૂડ વિજયધ્વજ ઉડતો થયો હતો. ગુજરાતના સામ્રાજ્યની

સીમા સૂચવનારી આટલી બધી વિશાળરેખા, ભારતવર્ષના માનચિત્રમાં, માત્ર કુમારપાલના પરાક્રમે જ અંકિત કરી હતી. એના સમકાલીન ભારતીય રાજાઓમાં કુમારપાલ સૌથી વધારે મોટા રાજ્યનો સ્વામી હતો. હેમચંદ્રાચાર્ય એના રાજ્યની ચતુસ્સીમાઓ આ પ્રમાણે વર્ણવે છે–

स कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगाम् ।
याम्यामाविन्ध्यमावार्धि पश्चिमां साधयिष्यति ॥

અર્થાત્–કુમારપાલની રાજાજ્ઞા ઉત્તરમાં તુરુષ્કલોકોના પ્રાન્તસુધી, પૂર્વમાં ગંગા નદીના તીરસુધી, દક્ષિણમાં વિન્ધ્યાચલ સુધી અને પશ્ચિમમાં સમુદ્રસુધી વર્તતી હતી. પ્રબંધકારો જણાવે છે તે પ્રમાણે–હેમાચાર્યે બતાવેલી એ ચતુસ્સીમામાં કોંકણ, કર્ણાટક, લાટ, ગૂર્જર, સૌરાષ્ટ્ર, કચ્છ, સિન્ધુ, ઉચ્ચા, ભંભેરી, મારવાડ, માલવા, મેવાડ, કીર, જાંગલ, સપાદલક્ષ, દિલ્લી, જાલંધર અને રાષ્ટ્ર એટલે મહારાષ્ટ્ર આટલા અઢાર દેશોનો સમાવેશ થતો હતો. હેમચંદ્રસૂરિ, એક બીજે ઠેકાણે, પણ કુમારપાલે આ બધા દેશોને પોતાના પરાક્રમથી જીત્યા હતા તેવું ગર્ભિત સૂચન કરે છે. જેમ કે–

जिष्णुश्चेदिदशार्णमालवमहाराष्ट्रापरान्तान् कुरून्
सिन्धूनन्यतमांश्च दुर्गविषयान् दोर्वीर्यशक्त्या हरिः ।
चौलुक्यः परमार्हतः विनयवान् श्रीमूलराजान्वयी –ઇત્યાદિ

કુમારપાલનો રાજ્યકારભાર ઘણીરીતે અદ્ભુત સફળતાવાળો નીવડ્યો હતો. એના લગભગ ૩૦ વર્ષ જેટલા લાંબા રાજ્યસમયમાં પ્રજાએ અદ્વિતીય શાન્તિ અને ઉન્નતિ પ્રાપ્ત કરી હતી. દેશમાં સમૃદ્ધિની રેલમછેલ થઈ હતી. કોઈપણ પ્રકારનો સ્વચક્ર-સંબંધી કે પરચક્રસંબંધી કશોય ઉપદ્રવ નહોતો થયો. લક્ષ્મીદેવીની માફક પ્રકૃતિદેવી પણ એના રાજ્ય ઉપર જાણે તુષ્ટમાન થઈ હતી અને તેથી એના સમયમાં દેશમાં એકે દુકાળ પણ નહોતો પડ્યો. એની આવી ભાગ્યસફળતા નજરે જોનાર આચાર્ય સોમપ્રભ, એ વાત ખાસ ભારપૂર્વક લખે છે.

स्वचक्रं परचक्रं वा नानर्थं कुरुते क्वचित् ।
दुर्भिक्षस्य न नामापि श्रूयते वसुधातले ॥

આચાર્ય હેમચંદ્ર એના સર્વગુણોનો સમુચ્ચય બહુ જ પરિમિત અને સર્વથા યથાર્થ શબ્દોમાં, પોતાની છેલ્લી રચનામાં આ પ્રમાણે આપે છે–

कुमारपालो भूपालश्चौलुक्यकुलचन्द्रमाः ।
भविष्यति महाबाहुः प्रचण्डाखण्डशासनः ॥
स महात्मा धर्मदानयुद्धवीरः प्रजां निजाम् ।
ऋद्धिं नेष्यति परमां पितेव परिपालयन् ॥
ऋजुरप्यतिचतुरः शान्तोऽप्याज्ञादिवस्पतिः ।
क्षमावानप्यधृष्यश्च स चिरं क्ष्मामविष्यति ॥
स आत्मसदृशं लोकं धर्मनिष्ठं करिष्यति ।
विद्यापूर्णमुपाध्याय इवान्तेवासिनं हितः ॥

शरण्यः शरणेच्छूनां परनारीसहोदरः ।
प्राणेभ्योऽपि धनेभ्योऽपि स धर्मं बहुमंस्यते ॥
पराक्रमेण धर्मेण दानेन दययाज्ञया ।
अन्यैश्च पुरुषगुणैः सोऽद्वितीयो भविष्यति ॥

હેમચંદ્રસૂરિ, અહિ ભવિષ્યપુરાણની વર્ણનપદ્ધતિ પ્રમાણે, મહાવીરના મુખેથી કુમારપાલનું આ પ્રકારે ભાવિ વર્ણન કરાવે છેઃ અર્થાત્–"ચૌલુક્યવંશમાં ચદ્રમા સમાન અને પ્રચંડરીતે પોતાનું અખંડ શાસન ચલાવનાર કુમારપાલ રાજા થશે. એ ધર્મવીર, દાનવીર અને યુદ્ધવીરના ગુણોથી મહાત્મા કહેવાશે અને પિતાની માફક પોતાની પ્રજાનું પાલન કરી તેને પરમસંપત્તિવાન્ બનાવશે. એ સ્વભાવે સરલ હોઇને પણ અતિચતુર થશે, શાંત હોઇને પણ પોતાની આજ્ઞાના પાલન માટે પ્રતાપવાન્–સૂર્ય જેવો પ્રખર તેજવાન્ થશે, ક્ષમાવાન્ થઇને પણ કોઇથી એ ધૃષ્ય નહિ થશે અને એ રીતે ચિરકાલસુધી પૃથ્વીનું પાલન કરશે. પોતાની માફક તે બીજા લોકોને ધર્મનિષ્ઠ બનાવશે; જેમ ઉપાધ્યાય પોતાના શિષ્યને પૂર્ણવિદ્યાવાન્ બનાવે તેમ. શરણાર્થીઓને તે શરણભૂત થશે પરસ્ત્રીઓ માટે તે ભ્રાતા જેવો નિષ્કામ હશે અને પ્રાણથી અને ધનથીય તે ધર્મને વધારે પ્રિય ગણશે. એ રીતે, પરાક્રમથી, ધર્મથી, દાનથી, દયાથી આજ્ઞાથી, અને તેવા બીજા પુરુષ ગુણોવડે તે અદ્વિતીય થશે."

હેમચદ્રસૂરિએ આલેખેલા કુમારપાલના ગુણોના આ રેખાચિત્રમાં, વાસ્તવિકતાની દૃષ્ટિએ યત્કિંચિત્ પણ વ્યગ્ય નથી, એ વસ્તુ, કુમારપાલના જીવનવિષે જે કેટલીક મુખ્ય મુખ્ય વાતો મે અહિ ટુંકમાં વર્ણવી છે તે પરથી નિસ્સંદેહ રીતે સિદ્ધ થાય છે. ગૂર્જરેશ્વરે ના રાજપુરોહિત નાગરશ્રેષ્ઠ મહાકવિ **સોમેશ્વરે**, **कीर्ति कौमुदी** નામના પોતાના કાવ્યમાં, કુમારપાલની કીર્તિ કથાનું વર્ણન કરતાં, હેમાચાર્યના ઉપર આપેલા ૫–૬ શ્લોકોના ભાવનો તાદૃશ નીચોડ માત્ર બે જ શ્લોકોમાં આપી દીધો છે અને તે નીચોડ હેમાચાર્યના ભાવ કરતાંયે વધારે સત્ત્વશાલી છે. સોમેશ્વર કહે છે કે

पृथुप्रभृतिभिः पूर्वैर्गच्छद्भिः पार्थिवैर्दिवम् ।
स्वकीयगुणरत्नानां यत्र न्यास इवार्पितः ॥
न केवलं महीपालाः सायकैः समराङ्गणे ।
गुणैर्लोकंपृणैर्येन निर्जिताः पूर्वजा अपि ॥

અર્થાત્–"પુરાણકાળમાં પૃથુ આદિ જે મહાગુણવાન્ રાજાઓ થઈ ગયા છે તેમણે જાણે પોતાના ગુણરૂપી રત્નોની થાપણ, સ્વર્ગમાં જતી વખતે, આ કુમારપાલને સોંપી દીધી હોય તેમ લાગે છે. [જો આમ ન હોય તો આ કલિકાલમાં જન્મેલા રાજામાં આવા સાત્ત્વિકગુણોનો સમુચ્ચય ક્યાંથી હોય.!]

કુમારપાલે પોતાના બાણોવડે કેવલ રાજાઓને જ સમરાંગણમાં જીત્યા હતા એમ નથી પણ પોતાના લોકપ્રિય ગુણોવડે તેણે પોતાના પૂર્વજોને પણ જીતી લીધા હતા." સોમેશ્વરનું આ કવન કુમારપાલની જીવનસિદ્ધિના ભાવને સંપૂર્ણરૂપે વ્યક્ત કરનારું સર્વોત્કૃષ્ટ રેખાચિત્ર છે. ગુજરાતની પુરાતન સંસ્કૃતિના સર્વસંગ્રહાલયમાં આ ચિત્ર કેન્દ્રસ્થાને સુશોભિત થાઓ.

૧.૩.૪.

सूचनात्मक - अनुपूर्ति

*

કુમારપાલના જીવનવિષેનું રેખાચિત્ર જેવું આ કેટલુંક શબ્દાલેખન ૫-૭ વર્ષ ઉપર મેં કરી રાખ્યું હતું, તેને, ગતવર્ષે, પાટણમુકામે ગુજરાતી સાહિત્ય સમ્મેલનના ઉપક્રમથી, એ સમ્મેલનના વર્તમાન પ્રમુખ શ્રીમાન્ કનૈયાલાલ મા. મુનશીની એકમાત્ર પ્રશંસનીય પ્રેરણા અને એમનાજ પ્રમુખત્વનીચે ઉજવવામાં આવેલ હૈમસારસ્વત સત્રને પ્રસંગે વાચન અર્થે પ્રસ્તુત કરવામાં આવ્યું હતું. કુમારપાલના ધાર્મિક જીવન વિષે ગુજરાતના જૈન-જૈનેતર વિદ્વાનોમાં કેટલીક પરસ્પર વિસંવાદી ચર્ચા થતી જોવામાં આવે છે. એ વિષયમાં, ઐતિહાસિક સાધનોના નિષ્કર્ષ ઉપરથી જે તથ્ય જણાય છે તેનું કેટલુંક સામાન્ય સૂચન તો મેં આ નિબંધમાં કરેલુંજ છેઃ પણ એ કરતાં વધારે વિસ્તૃતરૂપે ઐતિહાસિક પુરાવાઓની સૂક્ષ્મ છાનબીન કરવાનો આ નિબંધમાં અવકાશ યે નથી અને પ્રયોજન યે નથી. **सिंघी जैन ग्रन्थमाला** માં અત્યારે **कुमारपाल चरित्र संग्रह** નામનો એક પ્રબંધાત્મક સંગ્રહ છપાય છે જેમાં અપ્રકાશિત એવા કેટલાક પ્રાચીન પ્રબંધોનો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે. એ સંગ્રહની પ્રસ્તાવનામાં મે એ વિષયની સવિસ્તર અને સપ્રમાણ ચર્ચા કરવાનું ધાર્યુ છે. તેથી એ ચર્ચાનું વિશેષ હાર્દ સમજવા ને જાણવાની ઇચ્છા હોય તેમને, એ પ્રકટ થનાર સંગ્રહનું અવલોકન કરવાની ભલામણ છે.

જિનવિજય મુનિ

* *
*

શ્રીમદ્ ભાગવત પુરાણ

લે૦ શ્રીયુત દુર્ગાશંકર કેવલરામ શાસ્ત્રી

*

અઢાર પુરાણ અને અઢાર કે તેથી વધારે ઉપપુરાણના વિશાળ પૌરાણિક સાહિત્યમાં શ્રીમદ્ભાગવત શ્રેષ્ઠ છે. ભાગવત પ્રાચીનતમ પુરાણ નથી, અલબત્ત મહાભારત અને બધાં પુરાણો વ્યાસજીએ રચેલાં છે એવું જેઓ ધાર્મિકશ્રદ્ધાથી માને છે તેઓને આ કથન નહિ રુચે; પણ આ લેખ જ જેઓને ઐતિહાસિક વિચારણા માન્ય છે, તેઓને માટે છે. વાયુ, મત્સ્ય, બ્રહ્માંડ, બ્રહ્મ, વિષ્ણુ અને કૂર્મ, એટલાં કે એથી એકાદ વધારે, પુરાણો રચાયા પછી ભાગવત રચાયું છે અને બીજાં પુરાણો ભાગવત પછી રચાયાં છે. પુરાણોને પરસ્પર સરખાવીને વાંચવાથી આ પૌર્વાપર્ય, ઐતિહાસિક દૃષ્ટિ જેનામાં હોય તેને, સ્પષ્ટ દેખાય છે.

ઇતિહાસ-પુરાણનો ઉલ્લેખ વૈદિક સાહિત્યમાં મળે છે અને મૂળ પુરાણ મહાભારતની પ્રથમ રચના વખતે એટલે પ્રાચ્યવિદોના સામાન્ય મતે ઈ. સ. ચોથા શતકમાં રચાયું હોવાનો સંભવ છે. અલબત્ત એ પુરાણમાં જે વંશાદિ વસ્તુનો સંગ્રહ થયો હશે તે તો સૂતોએ શ્રુતપરમ્પરાથી જાળવી રાખેલ ઘણું પ્રાચીન વસ્તુ હોવાનો સંભવ છે અને એ કારણથી પુરાણોનું ઐતિહાસિક મૂલ્ય ઘણું છે. સુધારાની પહેલી ભરતીના વેગમાં, પુરાણો બ્રાહ્મણોએ પેટ ભરવા માટે રચેલાં છે એવી માન્યતા કેળવાયેલા વર્ગમાં ફેલાવાથી પુરાણોની ઘણી ઉપેક્ષા થઈ હતી. અલબત્ત વીલ્સન જેવા પાશ્ચાત્ય સંસ્કૃતજ્ઞોએ સો વર્ષ પહેલાંયે પુરાણોમાં શું છે એ જોવાનો પ્રયાસ કર્યો હતો. પણ પુરાણવિદ્ પાર્જિટરે પુરાણોનાં ભૂગોલવર્ણન તથા વંશવર્ણનનો અભ્યાસ કરી એ સાહિત્યનું ઐતિહાસિક મૂલ્ય આંકી બતાવ્યું ત્યારથી પુરાણોની કિંમત વધી.

પણ ભાગવત પુરાણ બીજાં પુરાણોથી ઘણી રીતે જુદું પડે છે. એમાં ત્રણ ભિન્ન પ્રવાહો એકત્ર થયા છે અને એ કારણની ત્રિવિધ દૃષ્ટિથી ભાગવતનો અભ્યાસ થઈ શકે છે. સામાન્ય જનસમાજમાં ભાગવત ધાર્મિક દૃષ્ટિથી સંભળાય છે અથવા વંચાય છે, અને ધાર્મિક ગ્રન્થ તરીકે એ ઘણો ઉંચો ગ્રંથ છે. શ્રી વલ્લભસમ્પ્રદાય અને શ્રી ગૌરાંગસમ્પ્રદાયમાં ભાગવતનું વેદ અને ગીતા કરતાં પણ અધિક પ્રામાણ્ય મનાય છે. છેલ્લાં સાતસો વર્ષ દરમીઆન સંસ્કૃત સાહિત્ય ઉપર અને તે કરતાં પણ વધારે વ્રજ, બંગાળી, મરાઠી, ગુજરાતી, તેલગુ, કાનડી વગેરે દેશીભાષાના સાહિત્ય ઉપર ભાગવતે અસર કરી છે. ભાગવતમાંથી વસ્તુ લઈને અથવા અનુવાદરૂપે જુદી જુદી ભાષાઓમાં સંખ્યાબંધ રચનાઓ થઈ છે.

ભાગવતનો સમય—ભાગવત ઈ. સ. બારમા શતકમાં પ્રસિદ્ધ થયું છે, તે પહેલાં એની પ્રસિદ્ધિ હોવાના પુરાવા નથી. બારમા શતકના મધ્વાચાર્યે ભાગવતને પ્રમાણગ્રન્થ ગણીને એક ગ્રન્થ "ભાગવતતાત્પર્યનિર્ણય" લખ્યો છે. એજ શતકના જયદેવ કવિએ ભાગવત પરથી "ગીતગોવિન્દ" નામનું સુંદર કાવ્ય લખ્યું છે. બારમા શતકમ

આટલી પ્રસિદ્ધિ પામવા માટે એ પુરાણ બસોએક વર્ષ પહેલાં રચાયું હોવું જોઇએ. અને દશમા શતકમાં ભાગવતનો એકાદ ઉલ્લેખ મળે છે એ ઉપરથી તે પહેલાં રચાયું હોવાનો સંભવ છે.

બીજી તરફથી, સાતમા–આઠમા શતકના કવિ માઘના શબ્દોને તથા આઠમા–નવમા શતકના ગૌડપાદ અને શંકરાચાર્યના વિચારોને તથા શબ્દોને ભાગવતમાં ઉતારેલા છે. એ પુરાવાને આધારે ઈ. સ. નવમા શતકમાં ભાગવત રચાયું છે એવો મારો મત મેં અન્યત્ર સપ્રમાણ દર્શાવ્યો છે.[1]

ભાગવતના ત્રણ પ્રવાહો–ભાગવતમાં ત્રિવિધ–પ્રવાહ એકત્રિત થયાનું જે ઉપર કહ્યું છે તે ત્રિવિધ પ્રવાહો (૧) પૌરાણિક પ્રવાહ, (૨) ભક્તિમાર્ગનો પ્રવાહ, અને (૩) શ્રીકૃષ્ણચરિત્રનો પ્રવાહ. આ ત્રણે પ્રવાહોનું મૂળ ભાગવત કરતાં ઘણા જૂના કાળમાં રહેલું છે.

(૧) પૌરાણિક પ્રવાહમાં ઈ. સ. પૂર્વે ચોથા–પાંચમા શતકમાં લખાયેલું મૂળ પુરાણ કે જેમાંથી ઈ. સ. પૂર્વે બીજા શતકમાં ઉતારો થયો છે તે ભવિષ્યપુરાણ અત્યારે મળતાં નથી. અને એ મૂળ પુરાણના "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥" આ પુરાણલક્ષણમાં કહેલા પાંચે વિષયોના પ્રાચીનતમ પાઠ અત્યારે તો માત્ર વાયુપુરાણમાં મળે છે. એ પુરાણનું કલિવંશવર્ણન ઈ. સ. ચોથા શતકના આરંભનું છે; પણ એનું બાકીનું વંશવર્ણન અર્થાત્ બસ્સો વર્ષ જૂનું હોવાનો સંભવ છે. જ્યારે શૈવઅધ્યાયો ઈ. સ. ચોથા શતક પછી ઉમેરાયા છે બ્રહ્માંડ અને મત્સ્યનો વંશવર્ણનનો પાઠ વાયુપુરાણનો લગભગ સમકાલીન છે ત્યારે વિષ્ણુપુરાણનો તે પછીનો અને ભાગવતે તો વિષ્ણુપુરાણમાંથી ઉતારો કર્યો છે. પુરાણવિદ્ પાર્જિટરે "Dynasties of the Kali Age" માં વાયુ આદિ પુરાણોના કલિવંશવર્ણનના પાઠોની ઐતિહાસિક તુલના કરી છે. અને એ રીતે "સર્ગાદિ" બીજા પૌરાણિક વિષયો પણ વિદ્વાનોના અભ્યાસની રાહ જુએ છે. ભાગવતપુરાણ એ પૌરાણિક સાહિત્યના પ્રવાહમાં મધ્યમાં રહેલું છે.[2]

(૨) ભક્તિશાસ્ત્ર તરીકે ભાગવતપુરાણનું સ્થાન ઘણું ઉંચુ છે. ભક્તિનું મૂળ તો છેક વેદકાળમાં મળે છે.[3] ભક્તિમાર્ગનો "અનુગ્રહ" જેવો મૌલિક સિદ્ધાન્ત કઠ અને મુણ્ડક ઉપનિષદમાં મળે છે. અને ભગવદ્ગીતા તો ભક્તિનું આદિ શાસ્ત્ર છે. ભગવદ્ગીતાથી ચાલેલો ભક્તિમાર્ગનો પ્રવાહ મહાભારતના નારાયણીયપર્વ જેવા ભાગો અને વિષ્ણુપુરાણમાં થઇને ભાગવતમાં ઉતર્યો છે, પણ ભાગવતની ભક્તિ અને ભગવદ્ગીતાની ભક્તિ એક નથી. દા. ત., ભક્તિ, જ્ઞાન, યોગ, અને કર્મ ચારેના સમન્વય ઉપર તથા માનવચિત્તની ઉચ્ચકોટિની સામ્યાવસ્થા અથવા સ્થિતપ્રજ્ઞતા ઉપર ગીતામાં જે ભાર મૂક્યો છે તે ભાગવતમાં નથી. ભક્તિની ગાઢતા ઉપર ભગવદ્ગીતા કરતાં ભાગવતમાં

---

૧ "ભાગવતના સમય" નામનો પુરાતત્ત્વ પુ. ૫, પૃ. ૧૧૧ માં મારો લેખ, તથા, "ભાગવતના સમયની ચર્ચા" પ્રસ્થાન, શ્રાવણ, ૧૯૯૬

૨ જુઓ, મારૂં "પુરાણવિવેચન", પૃ. ૯૭

૩ જુઓ, મારો "વૈષ્ણવધર્મનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ", આ. ૨, પૃ. ૩૩, પ્ર. ૧

વધારે ભાર છે, અને ભાગવતની અસરથી તે પછીના કાળમાં એ તત્ત્વ વધતું ગયું છે. ભાગવતમાં ભક્તિ સાથે જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પણ છે, જો કે ભક્તિ મુખ્ય અને જ્ઞાન-વૈરાગ્ય ગૌણ છે. જ્યારે પાછલા કાળમાં જ્ઞાન-વૈરાગ્યનો અંશ ઘણો ઓછો થઈ ભક્તિની ગાઢતા ઉપર અતિશય ભાર આપવામાં આવ્યો છે. ઐતિહાસિકદૃષ્ટિએ જોતાં પુષ્ટિમાર્ગની અને ચૈતન્યસંપ્રદાયની ભક્તિ ભાગવતની ભક્તિથી આ રીતે જુદી પડે છે. એક રીતે ભક્તિવૃત્તિનો એમાં ઐતિહાસિક વિકાસ છે. પણ માનવચિત્તવૃત્તિઓના સમન્વયની દૃષ્ટિએ આ પાછળના સમ્પ્રદાયોની ભક્તિમાં અવનતિ થઈ છે. જેઓ ધાર્મિકદૃષ્ટિએ વિચાર કરે છે તેને માટે મારું આ વક્તવ્ય નથી.

ભક્તિના વિકાસમાં કાળક્રમે સ્તોત્રોએ પ્રાપ્ત કરેલું સ્થાન ઐતિહાસિક વિચારકોનું ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે. વિષ્ણુપુરાણ કરતાં પણ ભાગવતની સ્તુતિઓ વધારે ભાવપૂર્ણ અને ગાઢ ઉર્મિવાળી છે. ભક્તિના અંગ તરીકે પણ સ્તોત્રનો મહિમા કાળક્રમે વધતો ગયો છે, ને એ કારણથી ભાગવતમાં વારંવાર આવતી સ્તુતિઓ સ્વાભાવિક બને છે.

ભક્તિવૃત્તિને કેળવવામાં અવતારકથાઓ અને ભક્તોના ચરિત્રો ઘણો અગત્યનો ભાગ ભજવી શકે છે એ તત્ત્વ તો ભાગવત પહેલાં જ ધ્યાનમાં આવેલું. વિષ્ણુપુરાણમાં અવતારકથાઓ છે તેમ જ પ્રહ્લાદ, ધ્રુવ જેવા ભક્તોનાં ચરિત્રો પણ છે. પણ ભાગવત આ બાબતમાં વિષ્ણુપુરાણ કરતાં ઘણું આગળ વધ્યું છે. વિષ્ણુના અવતારોનું બીજ તો ભગવદ્ગીતામાં છે. ભગવાન્ કૃષ્ણ પોતાની "વિભૂતિ"ઓ ગણાવે છે અને "હું મને પોતાને વારંવાર સૃજું છું" એમ કહે છે, તેમાંથી અવતારવાદનો વિકાસ થયો છે, અને રામાનુજ સમ્પ્રદાયમાં અવતારોને "વિભવ" જ કહે છે. વિષ્ણુના અવતારોના નામો વિષ્ણુપુરાણ તેમ જ હરિવંશમાં મળે છે અને વરાહ, વામન જેવા અવતારોની કથાઓ હરિવંશમાં છે. જ્યારે ભાગવતમાં ઘણા અવતારોની સવિસ્તર કથાઓ છે. વળી એમાં અનેક ભક્તોનાં ચરિત્રો છે, જેમાં સુદામા જેવા કેટલાક ભક્તોની તો પહેલી જ વાર ઓળખાણ થાય છે. "અજામિલાખ્યાન" જેવામાં 'નામમહિમા' છેલ્લી કોટિએ પહોંચે છે. ભાગવત ભક્તિ, જ્ઞાન, વૈરાગ્યનો ગ્રન્થ છે એ ઉપર કહ્યું જ છે, અને કૃષ્ણચરિત્ર સિવાયના ભાગવતના ભાગોમાં યોગ અને વૈરાગ્યનો પુષ્કળ ઉપદેશ છે. ભાગવતના જ્ઞાનમાં અદ્વૈતવાદ છે ને એ અદ્વૈતવાદ ઉપનિષદો અને મહાભારતમાંથી ઉતરી આવ્યો છે, પણ ભાગવતનું અદ્વૈત એ શંકરાચાર્યનું 'કેવલાદ્વૈત' રામાનુજનું 'વિશિષ્ટાદ્વૈત' કે વલ્લભાચાર્યનું 'શુદ્ધાદ્વૈત' નથી. પણ ભાગવતનો અદ્વૈતવાદ સ્વતંત્ર છે. જો કે ભાગવતકારે આચાર્યો પેઠે પોતાનો વાદ સુસંકલિત રૂપે મૂક્યો નથી, પણ એનું કાંઈક સ્વરૂપ પકડી શકાય છે ખરું. તેનો પોતાનો વાદ સુસંકલિત ન હોવાથી જ કદાચ ભાગવતના સમયના વિચારમાં કહ્યું છે તેમ શંકરાચાર્યના વિચારો અને વચનોની અસર ભાગવતમાં જોઈ શકાય છે.

(૩) શ્રીકૃષ્ણચરિત્ર ભાગવતમાં બીજા કોઈ પણ પુરાણ કરતાં વધારે વિસ્તારથી અને એ જ જાણે મુખ્ય વિષય હોય એ રીતે કહેવામાં આવ્યું છે. ભાગવતનો ત્રીજો ભાગ શ્રીકૃષ્ણચરિત્રે રોક્યો છે. કૃષ્ણચરિત્રનો ઇતિહાસ જોઇએ તો મહાભારત તેનું મૂળ છે. વૈદિકસાહિત્યમાં કૃષ્ણનું નામ ક્વચિત્ મળે છે; પણ મથુરાના વૃષ્ણિવંશના

વાસુદેવ કૃષ્ણના મહાભારત પહેલાં દર્શન નથી થતાં. મહાભારતમાં કૃષ્ણનું ઉત્તરકાળનું જ ચરિત્ર મળે છે. ત્યારે હરિવંશમાં કૃષ્ણનું બાલચરિત્ર સવિસ્તર આપેલું છે. મહાભારતમાં પોતામાં પણ કૃષ્ણના સ્વરૂપનું કથન એકસરખું સર્વત્ર નથી. કેટલાક ભાગમાં કૃષ્ણને સામાન્ય 'ક્ષત્રિયવીર' જ કહેવામાં આવ્યા છે; ત્યારે બીજે 'યોગેશ્વર' અને 'નારાયણનો અવતાર' પણ કહ્યા છે. હરિવંશમાં કૃષ્ણને નારાયણનો અવતાર જ ગણ્યા છે. વિષ્ણુપુરાણનું કૃષ્ણચરિત્ર હરિવંશથી થોડું આગળ વધે છે. જ્યારે ભાગવતમાં કૃષ્ણચરિત્રમાં વધારેમાં વધારે વિકાસ જોવામાં આવે છે. ભાગવતમાં કૃષ્ણ ભગવાનના એક અવતાર નહીં પણ कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् એ રીતે કૃષ્ણ એ જ પરમાત્મા અને મત્સ્યાદિ અવતારો એ કૃષ્ણના અવતારો, એવી માન્યતા જોવામાં આવે છે અને પાછળથી ભાગવતાનુસારી વૈષ્ણવોમાં એ જ માન્યતા રૂઢ થઈ છે.

કૃષ્ણના બાલચરિત્રમાં, હરિવંશમાં કે વિષ્ણુપુરાણમાં નથી એવું ઘણું ભાગવતે ઉમેર્યું છે. વસ્ત્રહરણલીલા, કૃષ્ણે માટી ખાઈ મોઢામાં જશોદાને વિશ્વ દેખાડ્યું, વિગેરે એના દાખલાઓ છે. મારા મતે ભાગવતના કર્તા દ્રાવિડ હતા અને દ્રવિડમાં સાતમાથી નવમા શતકમાં થયેલા આલવારો અને બીજા ભક્તોમાં પ્રચલિત કથાઓનો તેણે લાભ લીધો છે. મારું વક્તવ્ય એ છે કે હરિવંશ, વિષ્ણુપુરાણ કે ભાગવતમાંથી શ્રીકૃષ્ણનું જે ચરિત્ર મળે છે તે એક સરખું નથી તેમ જ કૃષ્ણ ઐતિહાસિક પુરુષ હોય તોપણ તેનું યથાર્થ ચરિત્ર નથી, પણ કૃષ્ણભક્તિના વિકાસ સાથે વિકાસ પામેલું ઇષ્ટદેવતાનું વર્ણન છે. વળી ભગવદ્ગીતાના ઉપદેશક તરીકેનું વાસુદેવનું સ્વરૂપ પાછળ રહી ગયું છે; અને ગોકુળવૃન્દાવનમાં ગોપીઓ સાથે ક્રીડા કરનાર બાલકૃષ્ણનું સ્વરૂપ ભાગવતથી આગળ આવીને તે પછીના કાળમાં સર્વવ્યાપી થઈ ગયું છે. શ્રીકૃષ્ણચરિત્રના ઐતિહાસિક વિકાસનો અભ્યાસ કરવા માટે આ કારણથી ભાગવત ઘણું અગત્યનું સાધન છે.

ઉપર ભાગવતના જે ત્રણ પ્રવાહોનું સૂચન કર્યું તે ત્રણમાંથી કોઇના અભ્યાસની ઇચ્છા જેને ન હોય, તેઓએ કેવળ કથાગ્રન્થ કે કાવ્ય તરીકે પણ ભાગવત વાંચવા યોગ્ય છે. લાંબાં સ્તોત્રો અને જ્ઞાન-વૈરાગ્યની ચર્ચાઓ સાથે અનેક કથાઓ આકર્ષક રીતે કહેલી છે, ત્યારે રસપંચાધ્યાયી જેવા ભાગો ઉર્મિકાવ્યો જેવાં છે. ભાગવતકારે અનેક વૃત્તો વાપર્યાં છે અને અલંકારોનો પુષ્કળ ઉપયોગ કર્યો છે. સંસ્કૃતભાષાની દૃષ્ટિએ પણ ભાગવત અભ્યાસ કરવા યોગ્ય ગ્રન્થ છે. विद्यावतां भागवते परीक्षा એ ઉક્તિ સંસ્કૃતજ્ઞોમાં પ્રસિદ્ધ છે. વૈદિકમંત્રોથી આરંભી સાતમા – આઠમા શતક પર્યન્તના સંસ્કૃત સાહિત્યનો ભાગવતકારને સારો પરિચય છે. મંત્રોના શબ્દો, ઉપનિષદોના કટકાઓ, મહાભારતના વચનો અને બીજા સાહિત્યમાંથી કટકાઓનો ભાગવતકારે છૂટથી ઉપયોગ કર્યો છે. ટુંકામાં, ભાગવતના કર્તા એક મહાન્ વિદ્વાન્, પરમ વિરક્ત અને ઉત્તમ જ્ઞાની કવિ હતા. ભાગવતમાં શુકદેવની જે પ્રશંસા કરી છે અને 'ભાગવતોત્તમ' કે 'ઉત્તમભક્ત'ના જે લક્ષણો વર્ણવ્યાં છે તે બધાં ભાગવતના કર્તાને લાગુ થઈ શકે તેમ મને લાગે છે.

*

एक चर्चाविषयक खुलासो

*

भारतीय विद्याना २ जा अंकमां श्रीमती कुमारी सुशीला महेता एम्. ए. एल्‌एल्. बी. नो **"वल्लभाचार्य अने तेमनो संप्रदाय"** ए शीर्षक जे लेख प्रकट थयो छे तेमां पृ० १५३ उपर लखायेला–

"भागवतनी भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्तिथी अनेकधा भिन्न छे. भागवत गोपीओनी भक्तिने सर्वोत्तम मानतुं नथी. तेमां तो गोपीओना वर्तन माटे बचावनो प्रयास जोवामां आवे छे, त्यारे पुष्टिमार्गमां तो गोपीओनी भक्ति ज आदर्श गणाय छे." ए कथन माटे; तेम ज पृ० १५५ उपर नोंधायेला "ज्यां इष्टदेवता रासविहारी श्रीकृष्णदेव होय, ज्यां भक्तिनो आदर्श गोपी भक्ति होय अने जेमां आचार्य ज देवरूप मनाता होय त्यां स्वच्छंदतानो प्रवेश सुलभ बने तो तेमां आश्चर्य जेवुं नथी"

आ विचारो सामे "नवप्रकाश" नामना एक पुष्टिमार्गीय सांप्रदायिक साप्ताहिक पत्रना ता. १४, जुलाई, ४० ना अंकमां, श्रीसुंदरदास वीरभानु नामना सज्जने एक टूंको लेख प्रकाशित कराव्यो छे जेना तरफ अमारुं लक्ष्य खेंचवामां आव्युं छे.

'भागवत गोपीओनी भक्तिने सर्वोत्तम मानतुं नथी' ए कथनने ए लेखक भाई 'हास्यास्पद' माने छे अने भागवतना अभ्यासना अभावे आ भूल भरेलुं कथन करवामां आव्युं छे एम ए सज्जन जणावे छे. ए लेखने 'भारतीय विद्या'मां प्रकट करवा माटे अमने सूचना करवामां आवी छे, परंतु एक तो ए लेख अन्यत्र प्रकट थई चुकेलो होवाथी, तेम ज लेखकबंधुनी कथनशैली जरा अशिष्ट अने असंस्कारी होवाथी एवा लेखोने भारतीय विद्यामां 'यथावत्' रीते स्थान न आपी शकाय.

'भारतीय विद्या' ए कोई पण धर्म, मत, संप्रदाय के सिद्धान्तनुं प्रचारक के प्रसारक पत्र नथी. ए तो मात्र शुद्ध ऐतिहासिक अन्वेषण अने तात्त्विक संशोधनना परिणामे जणाई आवता दृष्टिबिंदुओ अने विचार–ग्रन्थिओने सात्त्विकभावे समजवा समजाववा प्रयत्न करनारुं निष्पक्ष विवेचक पत्र छे. एमां प्रकट थता लेखो अने तेमां प्रतिपादित करवामां आवता विचारो कोई पण मान्यता के श्रद्धाना खंडन–मंडनरूपे होता नथी तेम ज कोई पण प्रकारना मताग्रह के मतभेदने उत्तेजन आपनारा होता नथी. अभ्यासी अने विद्वान् लेखकने पोताना अभ्यास के स्वाध्याय द्वारा ते ते विषयमां कांई विशिष्ट वस्तु समजाई होय अने कांईक नवुं दृष्टिबिंदु के नवो विचार-कोण देखायो होय तो तेने प्रकाशमां मुकवा अने ते द्वारा अन्यान्य विचारको अने विद्वानोना विचारो जाणवा–समजवाना एकमात्र विशुद्ध ज्ञानवर्धक हेतुनी दृष्टिए ज लखायेला लेखो आ पत्रमां प्रकट करवामां आवे छे.

आवा तात्त्विक अने संशोधनात्मक लेखोनां प्रतिपादनोमां अने विवेचनोमां मत-भेदने पूर्ण अवकाश होय ए स्वाभाविक ज छे. एक विद्वान् अभ्यासीने कोईएक विचार के सिद्धांत जे रीते समजायो होय तेना करतां अन्य अभ्यासीने ए भिन्नरीते

સમજાય તો એમાં કાંઈ આશ્ચર્ય પામવા જેવું નથી. અને એ પ્રકારના ભિન્નભિન્ન અભિપ્રાયોને જાણવા – સમજવા માટે જ તો, બહુ શ્રમ અને દ્રવ્યનો વ્યય કરી, આવાં પત્રોનું સંચાલન અને પ્રકાશન કરવામાં આવે છે. તેથી આમાં પ્રકટ થતા આવા મત-ભેદ પ્રદર્શક લેખો કે વિચારોના વિષયમાં કોઈ પણ સજ્જને એમ ન ધારવું જોઇએ કે તે વિચારો ખાસ કોઈ પ્રકારની આક્ષેપક કે વિરોધક વૃત્તિની દૃષ્ટિએ પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે. અલબત્ત એ સંભવિત છે કે અભ્યાસી કે લેખકને પોતાનો વિચાર – વિષય બરાબર ન સમજાયો હોય કે ભ્રમવશ ભૂલ ભરેલી રીતે સમજાયો હોય તો તેના પરિણામે તે પોતાના ભૂલ ભરેલા વિચારો પ્રકટ કરવા પ્રેરાય. પરંતુ એવા નિષ્પક્ષ અભ્યાસીને જ્યારે સમજાય કે તેના વિચારો ભૂલ ભરેલા છે તો તે તત્કાળ તેમાં સંશોધનકરવા કે પોતાની ભૂલ કબુલ કરવા પણ તેટલો જ ઉત્સુક હોય છે.

'ભારતીય વિદ્યા' માં પ્રકટ થતા લેખો કે વિચારોના વિષયમાં જે કોઈ અભ્યાસી કે વિદ્વાનને આવા કોઈ ભૂલભરેલા કે ભ્રમજનક વિચારો જણાતા હોય, તો તેના સંશો-ધન માટે તેમણે પોતાના વિચારો પ્રમાણપુરસ્સર અને શિષ્ટ શૈલીમાં લખી મોકલવાથી તેને અવશ્ય આદરયુક્ત સ્થાન આપવામાં આવશે જ. માત્ર શરત એટલી કે કથનની શૈલી માધ્યસ્થ્ય ભરેલી અને પ્રતિપાદનની વસ્તુ શાસ્ત્રીય હોવી જોઇએ.

જિન વિજય મુનિ

(–સંપાદક)



अपभ्रंश कविओः

चतुर्मुख स्वयंभू अने त्रिभुवन स्वयंभू

[उत्तरभाग—चतुर्मुख स्वयंभूनुं अपभ्रंशपुराणकाव्य, पउमचरिउ, संधि १–२]

*

लेखक—श्रीयुत प्रो० मधुसूदन चिमनलाल मोदी, एम्. ए., एलएल्. बी.

[अपभ्रंशना युनिवर्सिटी पोष्ट ग्रेज्युएट अध्यापक, गु० व० सो० रिसर्च डिपार्टमेंट, अमदावाद]

---

§ **१.** 'ભારતીય વિદ્યા' ના ગયા અંકમાં ચતુર્મુખ સ્વયંભૂ અને તેના પુત્ર ત્રિભુવન સ્વયંભૂના જીવન અને કવનની વિસ્તૃત ચર્ચા મેં કરી હતી. એ કવિની વાણીના આસ્વાદ માટે વાચક સમક્ષ કાંઈક આપવું જોઇએ, તોજ એમના વિષે સર્વગ્રાહી ખ્યાલ આવી શકે. અત્યાર સુધી આ કવિઓનાં કાવ્ય પ્રસિદ્ધ થયાં નથી. અપભ્રંશપાઠાવલીનું સંકલન કરતી વખતે, હું તેનાં બધાંય લખાણો હાથપ્રતમાં જોઈ ગયો હતો. પઉમચરિય સંધિ. ૧૪, અને સંધિ ૮૩, 'અપભ્રંશ પાઠાવલી'માં પાઠ તરીકે મેં મૂક્યા હતા. તે સમયે આખા 'પઉમચરિય' ની નકલ કરી લેવી એવો મારો વિચાર હતો. પરંતુ પહેલા બે સંધિ અને ત્રીજા અર્ધા સંધિની નકલ કરી એટલામાં તો કોઈ કારણસર એ હાથપ્રત મારે પાછી મોકલવી પડી. પ્રસ્તુત લેખમાં મારી એ નકલ ઉપરથી પ્રથમ બે સંધિઓનું મેં સંપાદન કર્યું છે. મને ખાતરી છે કે આ લેખ ચતુર્મુખની અપભ્રંશ વાણીનો આસ્વાદ લેવા સુજ્ઞ વાચકને સહાયભૂત થશે.

§ **૨.** ચતુર્મુખની 'પદ્ધડિઆ' છંદમાં નિપુણતા પ્રસિદ્ધ છે. 'પદ્ધડિઆ' સોળ માત્રાનો છંદ છે. હેમચંદ્રાચાર્ય 'પદ્ધડિઆ' ની વ્યાખ્યા બહુ વ્યાપક આપે છેઃ ચીઃ પદ્ધડિકા એટલે ચાર ચાર માત્રાનાં ચાર જૂથ;—એટલે એક ચરણમાં કુલ ૧૬ માત્રા હોવી જોઇએ. હેમચંદ્ર લઘુ-ગુરુની કશીય નિયંત્રણા મૂકતા નથી. બન્નેય સંધિના કડવકદેહનો છંદ આ રીતે પદ્ધડિયા જ છે. પ્રાકૃત પિંગલ પ્રમાણે 'પાદાકુલક'=૧૬ માત્રાનો લઘુ-ગુરુના નિયમ વિનાનો છંદ છે; જ્યારે પ્રા. પિં. પ્રમાણે 'પદ્ધડિઆ' ના છેલ્લા ચાર જૂથ ઉપર નિયંત્રણ છેઃ છેલ્લું ચાર માત્રાનું જૂથ લગાલ= ⏑ – ⏑ એમ હોવું જોઇએઃ દા. ત. સંધિ. ૧. પં ૬૦–૬૧

जहि णंदणवणइं मणोहराइं णच्चंति व चलपल्लवकराइं ।
जहिं फाडिमवयणइं दाडिमाइं णज्जंत ताइं णं कइमुहाइं ।

ઉપરના દાખલામાં છેલ્લું ચાર માત્રાનું જૂથ 'લગાલ' છે; એટલે પ્રા. પિં.ની દૃષ્ટિએ શુદ્ધ 'પદ્ધડિઆ' ઉપર પ્રમાણે છે. પ્રા. પિં. બીજો 'અડિલ્લા' નામે સોળ માત્રાનો છંદ નોંધે છે. પદ્ધડિઆ અને અડિલ્લામાં ફેર એટલો જ કે અડિલ્લાના ચરણને છેડે ચાર માત્રાનું જૂથ ગાલલ= – ⏑ ⏑ ના ક્રમમાં હોય છેઃ દા. ત. સંધિ. ૨. પં. ૫–૬

वेंतरभवणेहिं पडहसहासइ दसदिसि बहु णिग्गय णिग्घोसइं ।
जोइसभवणंतरेहिं अहिट्ठिय भीसणसीहणिणाय समुट्ठिय ।

'અડિલ્લા' અને 'પદ્ધડિઆ' સિવાયનો નિયંત્રણ રહિત સોળ માત્રાનો છંદ તે 'પાદાકુલક'. સામાન્ય વપરાશમાં અડિલ્લા અને પદ્ધડિઆનું એટલું તો સંકુલ મિશ્રણ હોય છે કે હેમચંદ્રની 'પદ્ધડિઆ' ની વ્યાખ્યા વ્યાપક અને ઇષ્ટ બને છે.[1]

ઘત્તાના છંદોમાં સંધિ ૧ માં ૧૧+૧૨=૨૩ માત્રાનો છંદ યોજવામાં આવ્યો છે. બીજા સંધિમાં ૧૧+૧૩ કે કોઇવાર ૧૧+૧૪=૨૫ માત્રાના છંદની યોજના કરવામાં આવી છે.

કેટલાંક કડવાંઓ બાદ કરતાં, સામાન્ય રીતે બીજાં બધાં કડવાંનો દેહ ૮ પંક્તિઓનો બનેલો જણાય છે. ઘત્તાની બે પંક્તિઓ ઉમરેતાં આખું કડવું ૧૦ પંક્તિઓનું બને છે.

§ ૩. આ કાવ્યની ભાષા સાહિત્યિક અપભ્રંશ છે. સાહિત્યિક અપભ્રંશ ભાષા સામાન્ય રીતે એક જ પ્રકારની હતી. હેમચન્દ્રના વ્યાકરણમાં મુખ્ય રીતે સાહિત્યિક અપભ્રંશની ચર્ચા કરવામાં આવેલી છે. એજ સાહિત્યિક અપભ્રંશમાં આ 'પઉમચરિય' લખવામાં આવેલું છે. પુષ્પદન્ત પણ એક સ્થળે સાહિત્યિક અપભ્રંશનો ઉલ્લેખ કરે છેઃ

अत्थें सद्देण वि सोहिल्लउ गहु अगहु दुविहु कव्वुल्लउ ।
सक्कउ पायउ पुणु अवहंसउ वित्तउ उप्पाइउ सुपसंसउ ।[2]

આમાં સંસ્કૃત, પ્રાકૃત [મહારાષ્ટ્રી] અને અપભ્રંશનો ઉલ્લેખ કવિ કરે છે. આ અપભ્રંશ તે એક જ સાહિત્યિક અપભ્રંશ છે; અને એ રીતે કુવલયમાલાના વિધાનને[3] પુષ્ટિ મળે છે. કેટલીક બાબતો આ કાવ્યમાંથી ટાંકી શકાય. દા. ત.

(૧) ढक्करिवंतएहिं १. ११९. આ શબ્દને અપભ્રંશના ખાસ શબ્દ તરીકે હેમચંદ્રે નોંધ્યો છે. જુઓ સિ. હે. ૮.૪. ૪૨૨ ઉદા. ૧૧. अद्भुतस्य ढक्करिः ।

(૨) एक्कसि=एकशः ૨. ૧૩૪. આ શબ્દને માટે સિ. હે. ૮. ૪. ૪૨૮. एकशसो डिः । એ સૂત્રમાં ખાસ આદેશ કરવામાં આવ્યો છે.

(૩) બીજા કેટલાક શબ્દો જેવા કે रवण्ण (સંધિ ૨. પં. ૧૪), जि વગેરે અપભ્રંશના હેમચન્દ્રે નોંધેલા વિશિષ્ટ શબ્દો આ કાવ્યમાં દેખાદે છે. જુઓ સિ. હે. ૮. ૪. ૪૨૨. ઉદા. ૧૦ रम्यस्य रवण्णः । સિ. હે. ૮.૪. ૪૨૦ जि=एव.

સામાન્યતઃ આ કાવ્યમાં વ્યાકરણનું સ્વરૂપ હેમચંદ્રના વ્યાકરણના સ્વરૂપથી ખાસ જુદું નથી.

અપભ્રંશ એ અર્વાચીન દેશ્ય ભાષાની પુરોગામિની ભાષાનું સ્વરૂપ રજુ કરે છે. પ્રાકૃતનું સ્વરૂપ અપભ્રંશમાં વધારે છૂટવાળું બને છે. સમાસ, લિંગ અને વિભક્તિઓની ચિવ્વટ ઓછી થતી જાય છે. સુજ્ઞ વાચક આ દૃષ્ટિથી કાવ્યને વાંચશે તો તે

---

૧. ચર્ચા માટે જુઓ छंदोऽनुशासन પત્ર. ૪૩ (अ) પંક્તિ ૯; તથા प्राकृतपिंगल (કલકત્તા આવૃત્તિ) પાન ૨૧૭–૨૨૪. ૨. Dr. P. L. Vaidya पुष्पदन्त–महापुराण સંધિ ૫., કડવક ૧૮. પં. ૫–૬. ૩. ભારતીયવિદ્યા અંક ૨, પા. ૧૭૭, પાદનોંધ ૨૫–૨૬–૨૭.

ભાષાની શિથિલતા જરૂર જોઈ શકશે; અને તેને માલમ પડશે કે અર્વાચીન દેશ્ય ભાષાઓનાં મૂલ અપભ્રંશમાં છે. એક મુદ્દો અહીં ખાસ નોંધવા યોગ્ય છે. અર્વાચીન દેશ્યભાષાના અનુગો (Post-positions) અપભ્રંશમાં દેખાતા જાય છે: દા. ત.

૧. જૂ૦ ગૂ૦ लगी=થી, આરંભીને: અપભ્રંશમાં लग्गेवि. જુઓ સંધિ ૧, પં. ૧૮૨:

तहो दिवसहो लग्गेवि अद्धु वरिसु गिव्वाणपवरिसिय रयणवरिसु ।

૨. ગૂ૦ ભણી=તરફ: અપભ્રંશમાં भणेविः સંધિ ૨, પં. ૪૨:

तिहुअणसामि भणेवि णियणियविण्णाणु पयासिउ

૩. જૂની ગૂ૦ भणी= ને લીધે; થી. અપભ્રંશ भणेवि (સં. ૨, પં. ૧૭૧.)

अक्खयदाणु भणेवि सेयंसहो अक्खयतइय णाउं किउ दिवसहो ।

આ ઉપરાંત અન્ય ઘણી વિશિષ્ટતાઓ આ કાવ્યના અપભ્રંશમાં દેખા દે છે—જે અર્વાચીન દેશ્યભાષાઓના ઘડતર ઉપર સારો પ્રકાશ ફેંકી શકે.[૪]

§ ૪. આ બે સંધિઓનું વસ્તુ નીચે પ્રમાણે છે:

પ્રથમ સંધિમાં ૧૬ કડવાં છે. કુલ પંક્તિસંખ્યા ૧૯૦ છે. તેમાં પ્રારંભિક બે પ્રાકૃત ગાથા અને એક અંત્ય પ્રાકૃતગાથા—એમ કુલ છ પંક્તિઓ પ્રાકૃતમાં છે. પ્રથમ સંધિનો વિષય ઋષભદેવનો જન્મ છે. કડવકવાર પ્રથમ સંધિનો સાર નીચે પ્રમાણે છે:

(૧) ૨૪ તીર્થંકરોની સ્તુતિ: (૨) રામાયણની કથાનું સરિતાના રૂપકથી વર્ણન; તેની રચનાની પરંપરા; કવિરાજ સ્વયંભૂ તેની રચના કરે છે. પોતાનાં માતા પિતા અને પોતાના પૂર્વાચાર્ય રવિષેણનો કવિ ઉલ્લેખ કરે છે. કવિ આત્મનિંદા કરે છે. (૩) કવિ વ્યાકરણ, છંદ, કાવ્ય વગેરેનાં પોતાનું અજ્ઞાન બતાવી વિનય કરે છે. (૪) મગધદેશનું વર્ણન; (૫) રાજગૃહનું વર્ણન. (૬) શ્રેણિક રાજાનું વર્ણન. (૭) મહાવીર સમવસરણમાં બેઠેલા છે; સમવસરણનું વર્ણન; શ્રેણિક રાજાને તીર્થંકરના આગમનની ખબર એક માણસ આપે છે. (૮) સમવસરણના બાર કોઠાઓમાં જુદા જુદા દેવ, માનવ અને તિર્યંચનાં જૂથ બેઠાં છે. તેમની વચ્ચે આસન ઉપર મહાવીર બેઠા છે. (૯) શ્રેણિકરાજાએ મહાવીરની કરેલી સ્તુતિ. (૧૦) શ્રેણિકરાજા મહાવીરને રામાયણની કથા પૂછે છે. જુદા જુદા સંપ્રદાયના કથાકારોએ રામની કથા જુદી જુદી રીતે કહી ભ્રાન્તિઓ પેદા કરી છે. માટે યથાર્થ કથા કહેવા શ્રેણિક મહાવીરને વિજ્ઞપ્તિ કરે છે. (૧૧) વિશ્વવર્ણન અને તેમાં જંબુદ્વીપનુ સ્થાન. ચૌદ કુલકરોની ઉત્પત્તિ. (૧૨-૧૩) ચૌદ કુલકરોનાં નામ. છેલ્લા કુલકર નાભિરાજને મરુદેવી નામે રાણી હતી. મરુદેવીનું વર્ણન. (૧૪) કીર્તિ, બુદ્ધિ, શ્રી, હ્રી, ધૃતિ, લક્ષ્મી વગેરે દેવીઓ ઇન્દ્રના આદેશથી ભૂમિ ઉપર આવી મરુદેવીની સેવિકાઓ બને છે. મરુદેવીને સ્વપ્ન આવે છે. (૧૫) સોળ સ્વપ્નનું વર્ણન. (૧૬) દેવોએ કરેલી રત્નની વૃષ્ટિ અને ઋષભદેવનો જન્મ.

---

૪. भणिवि ના પ્રયોગ માટે જુઓ ધનપાળ भविसयत्त कहा ૧. ૮. ૭; ૫. ૩. ૧૦; ૭. ૪૦. ૯; ૧૬. ૯. ૯. ઇત્યાદિ.

સંધિ ૨ માં, ૧૭ કડવક છે; અને ૧૭૫ પંક્તિ છે. છેવટની બે પંક્તિઓ અન્ય ગાથાની છે. વિષય ઋષભદેવનું નિષ્ક્રમણ છે. કડવકવાર દ્વિતીય સંધિનો સાર નીચે પ્રમાણે છે.

(૧) ઋષભદેવનો જન્મ થતાં ચાર પ્રકારના દેવો પોતાનાં વાદ્યો વગાડવા લાગ્યા. ઇન્દ્રનું આસન કંપ્યું. પોતાના ઐરાવત હાથી ઉપર બેસી ઇન્દ્ર સાકેતનગરી તરફ ચાલ્યો. (૨) સાકેતનગરીને કુબેરે સુશોભિત કરી. ઉપસ્વાપિની નિદ્રામાં મરુદેવીને નાખી, માયાવી બાળકને તેની પાસે મૂકી, ઇન્દ્રે ઋષભદેવને લીધા. (૩) અનેક નક્ષત્રો વગેરે ઓળંગી પાંડુશિલા ઉપરના સિંહાસન ઉપર ઋષભદેવને ઇન્દ્રે મૂક્યા. (૪) શંખ, વાદ્ય, નાટ્ય, ગીત, માલતીમાલા, ધ્વજ વગેરે વડે ઋષભદેવનો બધા દેવોએ સત્કાર કર્યો. (૫) જુદા જુદા દેવોએ ઋષભદેવ ઉપર કળશોથી અભિષેક કર્યો. (૬) સહસ્રાક્ષ ઇન્દ્ર ઋષભદેવને અલંકાર પહેરાવી તેમની સ્તુતિ કરે છે. (૭) પોતાના ડાબા હાથના અંગુઠાથી ઋષભદેવનું મુખ ઉઘાડી તેમના મુખમાં અમૃતનો સંચાર કરે છે, અને પછીથી તેમને અયોધ્યા મૂકી આવે છે. સ્વપ્નામાં પ્રથમ વૃષભ જોયો હોવાને લીધે તેમનાં માતા તેમનું નામ ઋષભદેવ પાડે છે. (૮) ઋષભદેવ મોટા થાય છે. કલ્પવૃક્ષો ઉચ્છિન્ન થવાને લીધે પ્રજાને કાંઈપણ મળતું નથી તેથી ઋષભદેવ પાસે આવે છે. ઋષભદેવ તેમને કળાઓ શિખવે છે. (૯) ઋષભદેવને વૈરાગ્યનું કારણ ઉત્પન્ન કરવા ઇન્દ્ર નીલજશા નામે અપ્સરાને મોકલે છે; નીલજશા ત્યાં જ નૃત્ય કરતાં મરણ પામે છે. (૧૦) ઋષભદેવને વૈરાગ્ય થઈ આવે છે. લોકાંતિક દેવો પણ ત્યાં આવી તે પ્રમાણે ઉપદેશ કરે છે. (૧૧) દેવો શિબિકામાં ઋષભદેવને લઈ જાય છે. સિદ્ધાર્થ ઉદ્યાનમાં થોડી વાર ઉભા રહી તે ભરતને રાજ્ય સોંપે છે. પ્રયાગમાં જઈ નિષ્ક્રમણ કરે છે. પંચમુષ્ટિ લોચ કરે છે; અને તે લોચના વાળ ઇન્દ્ર સુવર્ણવસ્ત્રમાં લઈ સમુદ્રમાં નાખી આવે છે. તેમની સાથે બીજા કેટલાક રાજાઓ પણ વૈરાગ્ય લે છે. (૧૨) જ્ઞાનના અભાવે વૈરાગ્ય લીધેલો હોવાથી રાજાઓથી દુઃખ સહન થતાં નથી અને તેથી વ્રતભંગ કરવાનું તેઓ આરંભે છે. (૧૩) તેમને તેમ ન કરવા આકાશવાણી થાય છે; પરંતુ આ દુઃખી બનેલાઓથી ખરી પ્રવ્રજ્યાનાં દુઃખ સહન થતાં નથી એટલે વિવિધ પ્રકારના સિદ્ધાન્તો તેઓ ઉપજાવી કાઢે છે. એટલામાં નમિ અને વિનમિ ત્યાં આવી પહોંચે છે. (૧૪) નમિ અને વિનમિ ઋષભદેવ પાસે રાજ્ય માગે છે. ઇન્દ્ર આવી તેમને, 'તમારે શું જોઇએ?' એમ પૂછે છે. (૧૫) ઇન્દ્ર વૈતાઢ્યની ઉત્તરના પ્રદેશનું રાજ્ય અને દક્ષિણના પ્રદેશનું રાજ્ય નમિ અને વિનમિને આપે છે. પણ નમિ વિનમિ તે લેતા નથી. તેમને તો ઋષભદેવને હાથે રાજ્ય જોઇએ છે. ઇન્દ્ર ઋષભદેવનું રૂપ લઈ રાજ્ય આપે છે. (૧૬) ઋષભદેવ વિહાર કરે છે. શ્રેયાંસ તેમને હસ્તિનાપુરમાં મળે છે. શ્રેયાંસને જ્ઞાન થાય છે. (૧૭) ઇક્ષુરસની અંજલિથી ત્યાં ઋષભદેવ પારણું કરે છે. દેવો રત્નનો વરસાદ વરસાવે છે. તે દિવસની યાદગીરીમાં તે દિવસનું નામ અક્ષયતૃતીયા પડે છે. શ્રેયાંસને આનંદ થાય છે અને ઋષભદેવને નમસ્કાર કરે છે.

*

पढमो संधि

*

णमह णवकमलकोमलमणहरवरवहलकंतिसोहिल्लं ।
उसहस्स पायकमलं ससुरासुरवंदियं सिरसा ॥
दीहरसमासनालं सद्दलं अत्थकेसरुग्घवियं ।
बुहमहुयरपीयरसं सयंभुकव्वुप्पलं जयउ ॥

१

तिहुयणलग्गणखंभु गुरु परमेट्ठि नवेप्पिणु ।
पुणु आरंभिय रामकहा आरिसु जोएप्पिणु ॥
पणवेप्पिणु आइभडाराहो संसारसमुद्दुत्ताराहो ।
पणवेप्पिणु अजियजिणेसरहो दुज्जयकंदप्पदप्पहरहो ।
पणवेप्पिणु संभवसामियहो तइलोक्कसिहरपुरगामियहो ।
पणवेप्पिणु अहिणंदणजिणहो कम्मट्ठदुट्ठरिउणिज्जणहो ।
पणवेप्पिणु सुमइतित्थंकरहो वयपंचमहादुद्धरधरहो ।
पणवेप्पिणु पउमप्पहजिणहो सोसियभवलक्खदुक्खरिणहो ।
पणवेप्पिणु सुरवरसाराहो जिणवरहो सुपासभडाराहो ।
पणवेप्पिणु चंदप्पहगुरुहो भवियायणसउणकप्पतरुहो ।
पणवेप्पिणु पुप्फयंतमुणिहे सुरभवणुच्छलियदिव्वज्झुणिहे ।
पणवेप्पिणु सीयलपुंगवहो कल्लाणज्झाणणाणुग्गमहो ।
पणवेप्पिणु सेयंसाहिवहो अच्चंतमहंतपत्तसिवहो ।
पणवेप्पिणु वासुपुज्जमुणिहो विप्फुरियणाणचूडामणिहो ।
पणवेप्पिणु विमलमहागिरिहे संदरिसियपरमागमदिसिहे ।
पणवेप्पिणु मंगलगाराहो साणंतहो धम्मभडाराहो ।
पणवेप्पिणु संतिकुंथअरहं तिण्णिमि तिहुअणपरमेसरहं ।
पणवेवि मल्लि[A 1]तित्थंकरहो तइलोक्कमहारिसिकुलहरहो ।
पणवेप्पिणु मुणिसुव्वयजिणहो देवासुरदिण्णपयाहिणहो ।
पणवेप्पिणु णमिणेमीसरहो पुणु पासवीरतित्थंकरहो ।
॥ घत्ता ॥ इय चउवीस वि परमजिण पणवेप्पिणु भावें ।
पुणु अप्पाणउं पायडमि रामायणकावें ॥ १ ॥

२

वद्धमाणमुहकुहरविणिग्गय रामकहाणइ एह कमागय ।
अक्खरवासजलोहमणोहर सुयलंकारछंदमच्छोहर ।
दीहसमासपवाहावंकिय सक्कय-पायय-पुलिणालंकिय ।
देसीभासाउभयतडुज्जल कविदुक्करघणसद्दसिलायल ।

---

१. गुणालंकारिएं એમ હોવું જોઈએ.

अत्थबहलकल्लोलाणिट्ठिय आसासयसमतूहपरिट्ठिय ।
एह रामकहसरि सोहंती गणहरदेवहिँ दिट्ठ वहंती ।
पच्छइ इंदभूअआयरियं पुणु धम्मेण गुणालंकरियं[1] ।
पुणु एवहिँ संसाराराएं कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं ।
पुणु रविसेणायरियपसाएं बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ।
पउमिणिजणणिगब्भसंभूएं मारुएएव[2]रूवअणुराएं ।
अइतणुएण पईहरगत्तें छिव्वरणासें पविरलदत्तें ।

॥ घत्ता ॥ णिम्मलपुण्णपवित्तकहकित्तणु आढप्पइ ।
जणइ समाणिज्जंतएण थिर कित्ति विढप्पइ ॥ २ ॥

३

बुहयण सयंभु पइं विण्णवइ मइ सरिसउ अण्णु ण्णाहिँ[3] कुकइ ।
वायरणु कयाइ न जाणिअउ णउ वित्ति सुत्तु वक्खाणियउं ।
णउ पच्चाहारहो तत्ति किय णउ संधिए उपरि[4] बुद्धि ट्ठिय[5] ।
णउ णिसुअउ सत्त विहत्तियाउ छव्विहउ समासपउत्तियाउ ।
छक्कारय दस लयार ण सुय वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ।
णच भाव लद्धउ णिवायगणु णउ लिंगु उणाइ वक्कु वयणु ।
णउ णिसुणिउ पंच महायकव्वु णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु ।
णउ बुज्झिउ पिंगलपत्थारु णउ भम्मह-दंडियलंकारु ।
ववसाउ तोवि णउ परिहरमि वरि रयडावुत्तु कव्वु करमि ।
सामाणभास छुडु म विहडउ छुडु आगमजुत्ति किंपि घडउ ।
छुडु होंति सुहासुहवयणाइं गामेल्लभासपरिहरणाइं ।
इहु सज्जणु लोयहु किउ विणउ जं अवुहु पदरिसिउ अप्पणउ ।
जं एव वि रूसइ कोवि खलु तहो हत्थुत्थल्लिउ लेइ छलु ।

॥ घत्ता ॥ पिसुणें किं अब्भत्थिएण जसु कोवि ण रुच्चइ ।
किं च्छणइं[6] चंदु महग्गहेण कंपंतु विमुच्चइ ॥ ३ ॥

४

अवहत्थिवि खलयणु णिरवसेसु पहिलउ णिरु वण्णमि मगहदेसु ।
जहि पक्ककलमि कमलिणिणिसण्णु अलहंत तरणि थेर व विसण्णु ।
जहि सुयपंतिउ सुपरिट्ठिआउ णं वणसिरिमरगयकंट्ठिआउ[7] ।
जहि उच्छवणइं पवणाहयाइं कंपंति व पीलणभयगयाइं ।
जहि णंदणवणइं मणोहराइं णच्चंति व चलपल्लवकराइं ।
जहिं फाडिमवयणइं दाडिमाइं णज्जंत ताइं णं कइमुहाइं ।

---

२. मारुएएव ને બદલે माउरएव પાઠ હોવો જોઇએ. ३. ण्णाहिं ને સ્થાને णाहिं. ४. उपरि ને સ્થાને उप्परि. ५. ट्ठिय ને સ્થાને ठिय. ६. छणइं, च्छणइं ને સ્થાને. ७. कंठियाउ, कंट्ठियाउ ને સ્થાને. ८. तिपयारवंतु વાંચો.

जहि महुयरपंतिउ सुंदराउ केयइकेसररयधूसराउ ।
जहिं दक्खामंडव परिवलंति पुणु पंथिअ रससलिलइं पियंति ।
॥ घत्ता ॥ तहिं पट्टणु णामें रायगिहु धणकणयसमिद्धु ।
णं पुहइए णवजोव्वणए सिरि सेहरु आइद्धउ ॥ ४ ॥

५

चउगोउरु त्तिपयारवत्तु हसइ व मुत्ताहलधवलदंतु ।
णच्चइ व मरुद्धुयधयकरग्गु धरइ व णिवडंतउ गयणमग्गु ।
सूलग्गभिण्णु देउलसिहरु कणइ व पारावयसद्दगहिरु ।
घुम्मइ व गएहिं मयभिंभलेहिं उड्डइ व तुरंगेहिं चंचलेहिं ।
ण्हाइ व ससिकंतजलायरेहिं पणवइ व सारमेहलहरेहिं ।
पक्खलइ व णेउरणियलएहिं विप्फुरइ व कुंडलजुयलएहिं ।
किलकिलइ व सव्वजणोच्छवेण गज्जइ व मुरयभेरीरवेण ।
गायइ व आलावणिमुच्छणेहिं पुरइ व धम्मु धणकंचणेहिं ।
॥ घत्ता ॥ णिवडियपण्णेहिं पोंफलेहिं छुहचुण्णासंगें ।
ज[A2]णचलणग्ग वि महिएण महि रंगिय रंगें ॥ ५ ॥

६

तहिं सेणिउ णामें[10] णयणिवासु उवमिज्जइ णरवइ कवणु तासु ।
किं तिणयणु णं णं विसमचक्खु किं ससहरु णं णं एक्कुपक्खु[11] ।
किं दिणयरु णं णं दहणसीलु किं हरि णं णं कमसुयणलीलु ।
किं कुंजरु णं णं णिच्चमत्तु किं गिरि णं णं ववसायचत्तु ।
किं सायरु णं णं खारनीरु किं वम्महु णं णं हयसरीरु ।
किं फणिवइ णं णं कूरभाउ किं मारुउ णं णं जलसहाउ ।
किं महुमहु णं णं कुडिलसक्खु किं सुरवइ णं णं सहसअक्खु ।
अणुहरइ पुणु वि जइ सो जे तासु वामद्धुअ दाहिणअद्धु जासु ।
॥ घत्ता ॥ ताव सुरासुरवाहणेहिं गयणंगणु छाइउ ।
वीरजिणिंदहो समसरणु विउलइरि पराइउ ॥ ६ ॥

७

परमेसरु पच्छिम जिणवरिंदु चलणग्गें चालियमहिहरिंदु ।
णाणुज्जलचउकल्लाणपिंडु चउकम्मडहणु कलिकालदंडु ।
चउतीसातिसयविसुद्धगत्तु भुयणत्तयवल्लहु धवलछत्तु ।
पण्णारहकमलायत्तपाउ अल्ललफुल्लमंडवसहाउ ।
चउसट्ठिचामरुद्धूयमाणु थिउ विउलुमहीहरे[12] वद्धमाणु ।
चउसुरणिकायसंथुव्वमाणु समसरणु वि जसु जोयणपमाणु ।

१०. सेणिउ ११. एक्कपक्खु वांचो. १२. विउलमहीहरे वाचना जोईए.

पायार तिण्णि चउ गोउराइं बारह गण बारह मंदिराइं ।
उब्भियचउमाणवथंभ जाव तुरमाणि केण वि णरेण ताव ।
॥ घत्ता ॥ चलण णवेप्पिणु विण्णविउ सेणिय महराउ ।
'जं वायहि जं संभरहि सो जगगुरु आउ" ॥ ७ ॥

८

जिणवयणु कण्णुप्पले करेवि सिंहासणसिहरहो उववरेवि ।
गउ पयइं सत्त रोमंचियंगु पुणु महिअले नासियउत्तमंगु ।
देवाविय लहु आणंदभेरि थरहरिय वसुंधरि जगजणेरि ।
सकलत्तु सपुत्तु सपिंडवासु सपरियणु ससाहणु सट्टहासु ।
गउ वंदिणभत्तिए जिणवरासु आसण्णीहूअमहीहरासु ।
समसरणु दिट्ठु हरिसियमणेण परिवेढिउ बारहविहगणेण ।
पहिलए कोट्ठे रिसिसंघु दिट्ठु बीयए कप्पंगणजण णिविट्ठु ।
तइअइ अज्जिअगणु साणुराउ चउथइ जोइसवरअच्छराउ ।
पंचमे वेंतरेंउ सुहासिणिउ छट्ठमि पुणु भवणणिवासिणीउ ।
सत्तमि भावण गिव्वाण साव अट्ठमि वेंतर संसुद्धभाव ।
नवमए जोइस नमिउत्तमंग दहमए कप्पामर पुलइअंग ।
एयारहमए णरवर णिविट्ठ बारहमए तिरिय णमंत दिट्ठ ।
॥ घत्ता ॥ दिट्ठु भडारउ वीरजिणु किह आसणसंट्ठिउ ।
तिहुअणमत्थए सुहणिलए णं मोक्खु परिट्ठिउ ॥ ८ ॥

९

सिरिसिहरि चडाविय करयलग्गु मगहाहिवु पुणु वंदणहि लग्गु ।
'जय नाह सव्वदेवाहिदेव कियणागणरिंदसुरिंदसेव ।
जय तिहुवणसामिय तिविहछत्त-अट्ठविहपरमगुणरिद्धिपत्त ।
जय केवलनाणुब्भिण्णदेह वम्महणिम्महणपणट्ठणेह ।
जय जाइजरामरणपरिच्छेयं[13] बत्तीस सुरिंदकियाहिसेय ।
जय परमपरंपर वीयराग(°य) सुरमउडकोडिमणिघिट्ठपाय ।
जय सव्वजीवकारुण्णभाव अक्खय अणंत णाहयलसभाव' ।
पणवेप्पिणु जिणु तग्गयमणेण पुणु पुच्छिउ गउतमसामि तेण ।
॥ घत्ता ॥ 'परमेसर परसासणेहि सुव्वइ विवरेरी ।
कहि जिणसासणे केम ठिआ"[14] कह राहवकेरी ॥ ९ ॥

१०

जगलोयहिं रक्खरिवंतएहि उप्पाइउ भंतिउ भंतिएहि ।
जय कुम्में धरियउ धरणिवीढु तो कुम्म पडंतउ केण गीढु ।

૧૩. છેય વાંચો. ૧૪. ઠિઆ વાંચો.

जइ रामहो तिहुअणु उवरि माइ तो[A3]रावणु कहि तिय लेवि जाइ।
अण्णु वि खरदूसण सेणिण देव पहु जुंज्झइ[15] सुज्झइ भिच्चु केम।
कह तियमइकारणे कविवरेण घाइज्जइ वालि सहोयरेण।
किह वाणर गिरिवर उव्वहंति बंधेवि मयरहरु समुत्तरंति।
किह रामणु दहमुहु वीसहत्थु अमराहिवभुवबंधणसमत्थु।
वरिसद्धु सुयइ किह कुंभयण्णु महिसाकोडिहि मि ण चरइ अण्णु।
॥ घत्ता ॥ जं परिसेसिउ दहवयणु परणारीहि समणु।
सा मंदोवरि जणणिसम किह लेइ विहीसणु' ॥ १० ॥

११

तं णिसुणिवि वुच्चइ गणहरेण 'सुणि सेणिय किं बहु वित्थरेण।
पहिलउ आयासु अणंत साउ णिरवेक्खु णिरंजणु पलयभाउ।
तइलोकु परिट्ठिउ मज्झि तासु चउदह रज्जुय आयामु जासु।
तेत्थ वि उह रिमज्झाणुमाणु[16] थिउ तिरियलोय रज्जुयपमाणु।
तहि जंबूदीव महापहाणु वित्थरिण लक्खुजोयणपमाणु[17]।
चउखेत्तचउद्दहसरिणिवासु छविहकुलपव्वयतडपयासु।
तासु वि अब्भंतरे कणयसेलु णवणवइ उअरि सहसेक्कमूलु।
तहो दाहिणभाएं भरहु थकु छखंडालंकिउ एक्कुचक्कु[18]।
॥ घत्ता ॥ तहिं अवछप्पिणिकालें गयकप्पयरुछण्णा।
चउद्दहरयणविसेस जिम कुलयर उप्पण्णा ॥ ११ ॥

१२

पहिलउ पहु पडिसुइ सुयवंतउ बीयउ सम्मइ सम्मइवंतउ।
तइयउ खेमंकरु खेमंकरु चउथउ खेमंधरु रणि दुद्धरु।
पंचमु सीमंकरु दीहरकरु छट्ठउ सीमंधरु धरणीधरु।
सत्तमु फारुचक्खु चक्खुभउ तासु काले उप्पजइ विंभउ।
सहसा चंददिवायरदंसणे सयलु वि जणु आसंकइ णियमणि।
'अहो परमेसर कुलयरसारा कोउहलु महु पउ भडारा'।
तं णिसुणेवि णराहिउ घोसइ-'कम्मभूमि लइ एवहि होसइ।
पुव्वविदेहे तिलोआणंदें कहिउ आसि महुं परमजिणेंदें।
॥ घत्ता ॥ णवसंझारुणपल्लवहो तारायणपुप्फहो।
आयइं चंदसूरफलइं अवसप्पिणिरुक्खहो' ॥ १२ ॥

१३

पुणु जाउ जसुंभउ अतुलथाउं पुणु विमलवाहणु छलियणाउं।
पुणु साहिचंद चंदाहि जाउ मरुएउ पसेणे[19] णाहिराउ।

---

१५. झुज्झइ वांचो. १६. झहरि १७. लक्खजोयणपमाणु वांचवुं जोइए. १८. एक्कचक्कु वांचवुं जोइए. १९. पसेणइ वांचो; पसेणे ने बदले.

जहो णाहिहि पच्छिमकुलयरासु मरुएवि भज्ज व पुरंदरासु[20] ।
चंदहो रोहिणि व मणोहिराम कंदप्पहो रइ व पसण्णणाम ।
सा णिरलंकार जि चारुगत्त आहरणरिद्धि पर भारमत्त ।
तहे णियलायण्णु जि दिण्णु सोहु मलु केवलु पर कुंकुमरसोहु ।
पासेव फुलिंगावलि जे चारु पर गरुयउ मोत्तियहार भारु ।
लोयण जि सहावें दलविसाल आडंबरु पर कंदोट्टमाल ।
॥ घत्ता ॥ कमलासाइं भमंतएण अलिउलए मंदें ।
मुहलीहूयउं कमजुयलु किं नेउरसद्दें ॥ १३ ॥

१४

तो एत्थंतरि माणववेसें आइउ देविउ इंदाएसें ।
ससिवयणउ कंदोट्टदलच्छिउ कित्तिबुद्धिसिरिहिरिदिहिलच्छिउ ।
सप्परिवारु ढुक्किउ तेत्तहि सा मरुएवि भडारी जेत्तहिं ।
कावि विणोउ किंपि उप्पायइ पढइ पणच्चइ गायइ वायइ ।
कावि देइ तंमोलु सहत्थें सब्बाहरणु कावि सहु वत्थें ।
पाडइ कावि चमरु कय विरवइ कावि समुज्जलु दप्पणु ढोवइ ।
उक्खयखग्ग कावि पडिरक्खइ कावि किंपि अक्खाणउ अक्खइ ।
कावि जक्खकद्दमेण पसाहइ कावि सरीरु देविहे संवाहइ ।
॥ घत्ता ॥ वरपलंकपसुत्तियइं सुविणावलि दिट्ठी ।
तीस पक्ख पहुपंगणए वसुहार वरिट्ठी ॥ १४ ॥

१५

दीसइ मयगलु मयगिलगंडु[21] दीसइ वसहु कलयकमलसंडु ।
दीसइ पंचमुहु पईहरच्छि दीसइ णवकमलारूढलच्छि ।
दीसइ गंधकुडु[22] कुसुमदामु दीसइ छणइंदु मणोहिरामु ।
दीसइ दिणयरु करपज्जलंतु दीसइ झसजुयलु परिभमंतु ।
दीसइ जलमंगलकलसु [A4] वत्तु दीसइ कमलायरु कमलछत्तु ।
दीसइ जलणिहि गज्जियजलोहु दीसइ सिंहासणु दिण्णसोहु ।
दीसइ विमाणु घंटालिमुहलु दीसइ णागालउं सव्वु धवलु ।
दीसइ मणिणियरु परिफुरंतु[23] दीसइ धूमद्धउ धगधगंतु ।
॥ घत्ता ॥ इय सुविणावलि सुंदरिए मरुएविए दीसइ ।
गंपिणु णाहिणराहिवहो सुविहाणइ सीसइ ॥ १५ ॥

१६

तेण वि विहसेप्पिणु एव वुत्तु "तउ होसइ तिहुअणतिलउ पुत्तु ।
जसु मेरु महागिरि ण्हवणपीढु णहमंडउ महिहरखंभगीढु[24] ।

---

२०. पुरंदराउ ने बदले पुरंदरासु वांचो. २१. मयगिलगंडु वांचो. २२. गंधकुडु वांचो. २३. परिप्फुरंतु वांचो. २४. णहमंडउ महिहरखंभगीढु वांचो.

जसु मंगलकलसु महासमुद्द मज्जणए काले बत्तीस इंद" ।
तहो दिवसहो लग्गेवि अद्ध वरिसु गिव्वाण पवरिसिय रयणवरिसु।
लहु णाहिणरिंदहो तणय गेहु अवइण्णु भडारउ णाणदेहु ।
थिउ गब्भब्भंतरे जिणवरिंदु णवणलिणिपत्ति णं सलिलबिंदु ।
वसुहार पवरिसिय पुणु वि ताम अण्णु वि अट्ठारह पक्ख जाम ।
जिणसूरु समुट्ठिउ तेयपिंडु बोहंतु भव्वयणकमलसंडु ।
॥ घत्ता ॥ मोहंधारविणासयरु केवलकिरणायरु ।
उइउ भडारउ रिसहजिणु णं सइं भुवणदिवायरु ॥ १६ ॥
इय एत्थ पउमचरिए धणंजयासियसयंभुएवकए ।
जिणजम्मुप्पत्ति इमं पढमं च्चिय साहियं पव्वं ॥

*

बीओ संधि

१

जगगुरु पुण्णपवित्तु तइलोक्कहो मंगलगारउ ।
सहसाणेवि सुरेहि मेरुहि अहिसित्तु भडारउ ॥ छ ॥
उप्पण्णए तिहुअणपरमेसरे अट्ठोत्तरसहासलक्खणधरे ।
भावणभवणेहिं संख पवज्जिय णं णवपाउसेण घण गज्जिय ।
वेंतरभवणेहिं पडहसहासइ दसदिसि बहु णिग्गय णिग्घोसइं[२५] ।
जोइसभवणंतरेहिं अहिट्ठिय भीसणसीहणिणाय समुट्ठिय ।
कप्पामरभवणहिं जयघंटउ सइ जि गरुअटंकार विसट्टउ ।
आसणकंपु जाउ अमरिंदहो जाणेवि जम्मुप्पत्ति जिणंदहो ।
चडिउ तुरंतु सक्कु अइरावए कण्णचमरउड्डावियछप्पए ।
मेरुसिहरिसण्णिहकुंभत्थले[२६] मयसिरि सोत्तसित्तगंडत्थले ।
॥ घत्ता ॥ सुरवइ दससयनेत्तु रेहइ आरूढउ गयवरे ।
विहसिअकोमलकमलकमलायरु नाइ महीहरे ॥ १ ॥

२

अमरराउ संचल्लिउ जावेहि धणएं किउ कंचणमउ तावेहि ।
पट्टणु चउगोउरसंपुण्णउं सत्तहि पायारेहिं रवण्णउ ।
दीहियमढविहारदेवउलहिं सरपोक्खरिणितलायहिं विउलहिं ।
कच्छारामसीमउज्जाणेहिं कंचणतोरणेहिं अपमाणेहिं ।
लहु सकेयणयरि किय जक्खें परिअंचिअ तिवार सहसक्खें ।
पीणपउहराए[२७] ससिसोमए इंदमहाएविए पउलोमए ।
सव्वजणहो उवसोवणि देप्पिणु अग्गए मायाबालु ठवेप्पिणु ।
णिउ तिहुअणपरमेसरु तेत्तहिं सपरिवारु पुरंदरो[२८] जेत्तहे ।

२५. दसदिसि बहु णिग्गय णिग्घोसइं ।   २६. मेरुसिहरसण्णिह वांचो.   २७. पीणपओहराए वांचो.   २८. पुरंदरु वांचो.

॥ घत्ता ॥ झत्ति सुरेहिं विमुक्क चलणोवरि दिट्ठि विसाल ।
भत्तिए अंचणजोगु णावइ णीलुप्पलमाल ॥ २ ॥

३

वालकमलदलकोमलबाहउ अंके चडाविवि तिहुअणणाहउ ।
सुरवइणारुणबालदिवायरु संचालिउ नं मेरुमहीहरु ।
सत्तहि जोयणसयहि तहिंत्तिउ पुणु सणवइ तारायणपंतिउ ।
उप्परि दसजोयणहिं दिवायरु पुणु असीहिं लक्खिज्जइ ससहरु ।
पुणु चउहमि नक्खत्तहं पत्तिउ बुहमंडलु वि चऊहुं तहंतिउ ।
असुरमत्ति तिहि तिहिं संवच्छरु तिहि अंगारउ तिहि जि सणिच्छरु ।
अट्ठणवइ सहास कम्मेप्पिणु[29] अण्णु वि जोयणसउ लंघेप्पिणु ।
पंडुसिलोवरि सुरवरसारउ लहु सिंहासणे ठविउ भडारउ ।
॥ घत्ता ॥ नावइ सिरेण लएवि मंदरु दरिसावइ लोयहो ।
एहउ तिहुअणणाहु किं होइ ण होइ व जोयहो ॥ ३ ॥

४

ण्हवणारंभमेरि अप्फालिय पडहामरकिंकरकर ताडिय ।
पूरिअ धवलसंख किउ कलयलु केहिमि घोसिउ चउविहु मंगलु ।
केहिं मि आढत्तइ गेयाइं सरगय पयगय तालगयाइं ।
केहि मि वाय [A5] उ वज्ज मणोहरु बारह तालउ सोलहि अक्खरु[30] ।
केहि मि उव्वेलिउ भरहुत्तउ णवरसअट्ठभावसंजुत्तउ ।
केहि मि उब्भियाइं धयचिंधइं केहि मि गुरुथोत्तइं पारद्धइं ।
केहि मि लइयउ मालइमालउ परिमलवहलउ भसलवमालउ ।
केहि मि वेणु केहि वरवीणउ केहि मि तिसरियाउ लयलीणउ ।
॥ घत्ता ॥ जं परिआणिउं जेहिं तत्तेहिं सव्वु विण्णासिउ ।
तिहुअणसामि भणेवि णियणियविण्णाणु पयासिउ ॥ ४ ॥

५

पहिलउ कलसु लइउ अमरिंदें बीअउ हुअवहेण आणंदें ।
तइअउ सहरसेण जमराएं चउत्थउ णयरियदेवें आएं ।
पंचमु वरुणें समरसमत्थें छट्ठउ मारुएण सइं हत्थें ।
सत्तमउ कुबेरअहिहाणें अट्ठमु कलसु लयउ ईसाणें ।
णवमउ संभासिउं धरणिंदें दसमउं कलसु लइज्जइ चंदें ।
अण्ण कलस उच्चाइअ अण्णेहिं लक्खकोडिअक्खोहणिगणेहिं ।
सुरवर वेल्लि अछिण्ण रएप्पिणु चत्तारि वि समुद्द लंघेप्पिणु ।
खीरमहण्णवे खीरु भरेप्पिणु अण्णहो अण्णु समप्पइ लेप्पिणु ।
॥ घत्ता ॥ ण्हाविउ एम सुरेहि बहुकलसेहिं जिणवरु ।
णं णवपाउसकाले मेहेहिं अहिसित्तु महीहरु ॥ ५ ॥

---

२९. कमेप्पिणु पांचो. ३०. सोलह अक्खर ।

६

मंगलकलसहिं सुरवरसारउ जयजयसद्दें ण्हविउ भडारउ ।
तो इत्थंतरि हयपडिवक्खें गेण्हिवि वज्जसूइ सहसक्खें ।
कण्णजुयलु जणणाहहो विज्झइ कुंडलजुयलु झत्ति आइज्झइ ।
सेहरु सीसे हारु वच्छत्थले करे कंकणु कडिसुत्तउ कडियले ।
तिहुअणतिलअहो तिलउच्छवंतें मणि आसंकिउ दससयणेत्तें ।
पुणु आढत्त जिणिंदहो वंदण-"जय तिहुअण गुरुणयणाणंदण ।
जय देवाहिदेव परमप्पय जय तियसेंदविंदवंदियपय ।
जय णहमणिकिरणोहपसारण तरुणतरणिकरणियरणिवारण ।
जय णमिएहिं णमिअ पणविज्जहिं अरुह वुत्तु पुणु कहो उवमिज्जहिं ।
॥ घत्ता ॥ जगगुरु पुण्णुपवित्तु तुहु अण्णहो मणोहरगारा ।
भवे भवे अम्हहं देज्ज जिण गुणसंपत्ति भडारा" ॥ ६ ॥

७

णायणरामरणयणाणंदहो वंदणहत्ति करंतहो इंदहो ।
रूवालोयणे रूवासत्तइं तित्ति ण जंति पुरंदरणेत्तइं ।
जहि णिवडियइं तहि जे पगुत्तइ दुब्बल ढोरि व पंके खुत्तइं ।
वामकरंगुट्ठए णिहारेवि बालहो तेत्थु अमिउ संचारेवि ।
पुणु पडिवारउ मयणवियारउ[31] गंपि अउज्झहे थविउ भडारउ ।
सूरि मेरु जेम पडिअंचिउ पुणु दससयकर करेवि णच्चिउ ।
सालंकारु सडोरु सनेउरु सच्छरु सप्परिवारु अंतेउरु[32] ।
जणणिए जं जि दिट्ठु अहिसित्तउ रिसहु भणेवि पुणु रिसहु जि वुत्तउ ।
॥ घत्ता ॥ काले गलंतए णाह णियदेहरिद्धि परियट्टइ ।
विवरिज्जंतु कइहिं वायरणु गंथु जिम वड्ढइ ॥ ७ ॥

८

अमरकुमारहिं सहु कीलंतहो पुव्वहु वीस लक्ख लंघंतहो ।
एक्क दिवसि गय पय कुंवारें "देव देव मुय भुक्खामारें ।
जाहं पसाएं अम्हे धण्णा ते कप्पयरु सव्व उच्छण्णा ।
एवहि को उवाउ जीवेवउं[33] भोयणे खाणे पाणे परिहेयए" ।
तं णिसुणेवि वयणु जगसारउ सयलकलउ दक्खवइ भडारउ ।
अण्णहुं असिमसिकिसिवाणिज्जउ अण्णहुं विविहपयारउ विज्जउ ।
कइहिं दिणेहिं परिणाविउ देविउ णंदसुणंदाइउ सियसेविउ ।
सउ पुत्तहुं उप्पण्णपहाणहं भरहबाहुबलुं[34] अणुहरमाणहं ।
॥ घत्ता ॥ पुव्वहं लक्ख तिसट्ठ गय रज्जु करंतहो जावेहिं ।
चिंता मणि उप्पण्ण सुरवइ महरायहो तावेहिं ॥ ८ ॥

---

३१. पडिवारिअमयणवियारउ वांचो.=पतिवारितमदनविकारः   ३२. सपरिवारअंतेउरु वांचो.
३३. जीवेवए वांचो.   ३४. भरहबाहुबल वांचो.

९

तिहुअणजणमणणयण पियारउ भोगासत्तु णिएवि[35] भडारउ ।
मणे चिंताविउ दससयलोयणु–"करमि किंपि वइरायहो कारणु ।
जेण करइ सुहि सत्तहियत्तणु जेण पवत्तइ तित्थपवत्तणु ।
जेण सीलु वउ णियमु ण णासइ जेण अहिंसाधम्मु पयासइ" ।
एम विअप्पवि छणचंदाणण पुण्णाउस कोक्किय णीलंजण[36] ।
"तिहुअणगुरुहे जाहि उलग्गए णट्टारंभु पदरिसहि अग्गए" ।
तं आएसु लएवि गय तेत्तहे थिउ अत्थाणे भडार [A6] उ जेत्तहे ।
पाउजिएहिं पउंजिउ तक्खणे गेउ वज्जु जं वुत्तउ लक्खणे ।
॥ घत्ता ॥ रंगे पइट्ठ तुरंति करदिट्ठिभावरसरंजिय ।
विब्भमभावविलास दरिसत्तिएँ[37] पाण विसज्जिय ॥ ९ ॥

१०

जं णीलंजस पाणहिं मुक्की जाय जिणहो ता संक गुरुक्की ।
"धिग धिगत्थु संसारु असारउ अण्णहो अण्णु होइ कम्मारउ ।
अण्णहो अण्णु करइ मिच्चत्तणु तं जि होउ वइरायहो कारणु" ।
लोयंतियहिं ताव पडिबोहिउ–"चारुदेव जं सई उम्मोहिउ ।
उअहिउ णवणवकोडाकोडिउ णट्ठउ धम्मसत्थु पडिवाडिउ ।
णट्ठइं दंसणणाणचरित्तइं दाणज्झाणसंजमसंमत्तइं ।
पंच महव्वय पंचाणुव्वय तिण्णि गुणव्वय चउ सिक्खावय ।
णियमसीलउववाससहासइं पइं होंतेण हवंतु असेसइं ।
॥ घत्ता ॥ ताव विमाणारूढ चउदिसु चउदेवनिकाय ।
पइं विणु सुण्णउं मोक्खु णं जिणहक्कारा आय" ॥ १० ॥

११

सिविआजाणें सुरवरसारउ जयजयसद्दें चडिउ भडारउ ।
देवेहिं खंधु देवि उच्चाइउ णिविसें तं सिद्धत्थु पराविउ[38] ।
तिहि उववणि थोवंतरि थाएवि भरहहो रायलच्छि करे लाएवि ।
'णमह परमसिद्धाण' भणंतें किउ पयागे णिक्खवणु तुरंतें ।
मुट्ठिउ पंच भरेप्पिणु लइयउ चामीयरपडलोयरि थवियउ ।
तेहेवि जणमणणयणाणंदें घित्तउ खीरसमुद्दि सुरिंदें ।
तेण समाणु सणेहिं लइआ रायहं चउसहास पव्वइआ ।
परिमिउ ससि जिह गहसंघाएं अट्ठु वरिसु थिउ[39] काउसाएं ।
॥ घत्ता ॥ पवणुद्धुयउ जडाउ रिसहहो रेहंति विसालउ ।
सिहिहे बलंतहो णाइं धूमाउलजालामालउ ॥ ११ ॥

---

३५. णिएवि वांचो. ३६. णिलंजस वांचो; [illegible] णिलंजण [illegible]. ३७. दरिसंतिए.
३८. पराइउ वांचो. ३९. थिउ.

१२

जिणु अविचलु अचलु वि सिवसत्थउ थिउ छम्मास वि लंबियहत्थउ
जे थिय तेण समउ पव्वइया ते दारुणदुक्खाएं लइया ।
सीउण्हहिं तिसभुक्खहिं खामिय जिब्भपमिद्दालसेहिं विभाणिय ।
चालण कुंडुयणइ अलहंता अहिविच्छिय परिवेढिज्जंता ।
घोरवीरतवचरणें लग्गा णासेवि सलिलु पिएवयँ[40] लग्गा ।
केणवि महियलि घत्तउ अप्पउ हो हो केण दिट्ठु परमप्पउ ।
पाण जंति जइ एण निउयं[41] तो किर तेण काइं परलोयं ।
कोवि फलइं तोडेप्पिणु भक्खइ 'जाहुं' भणेवि कोइ काणें[42] रक्खइ ।
॥ घत्ता ॥ को विणिवारइ किंपि आमेल्लिवि चलणे जिणिंदहो ।
"कलुए देसहु काइं पच्चुत्तरु भरहणरिंदहो" ॥ १२ ॥

१३

ताहिं तेह य पडिवण्णए अवसरे दइवी वाणि समुट्ठिय अंबरे ।
"अहो अहो कवडकूड णिग्गंथहो कापुरिसहो अणायपरमत्थहो ।
एह महारिसिलिंगग्गहणे जाइजरामरणत्तयडहणें ।
जलइ म डोहहो फलइं म तोडहो णंतो णीसंगत्तणु छंडहो" ।
तं णिसुणेवि तिसभुक्खादण्णेहिं उद्धूलिउ अप्पाणउ अण्णेहिं ।
अण्णेहिं अण्ण समय उप्पाइय तहि अवसरे णमि विणमि पराइय ।
कच्छमहाकच्छाहिवणंदण वरकरवालहत्थनीसंदण ।
तेण्णवि विहि चलणहिं णिवडिप्पिणु थिय पासेहिं जिणु जयँ[43] करेप्पिणु ।
॥ घत्ता ॥ चिंतिउ णमि-विणमीहि वुत्तउ किंपि न बोलइ णाहु ।
"एउ न जाणहुं आसि किउं अम्हे किं को अवराहु ॥ १३ ॥

१४

जइ वि ण किंपि देहि सुरसारा तो वरि एक्कसि बोल्लि भडारा ।
अण्णहु देसु विहंजिवि दिण्णउ अम्हहुं किं एहु णिद्दाखिण्णउ ।
अण्णहुं दिण्ण तुरंगम गयवर अम्हहं काइं कियउ परमेसर ।
अण्हुं दिण्णउ उत्तिमवेसउ अम्हहुं आलावेण वि संसउ" ।
एम जाम गरहंत जिणेंदहो आसणु चलिउ ताम धरणिंदहो ।
अवहि पउंजिवि सप्परिवारउ आउ खणद्धें जित्थु भडारउ ।
लक्खिउ बिहिमि मज्झे परमेसरु ससिसूरंतराले णं मंदरु ।
तुरिउ तिवारउ भामरि देप्पिणु जिणवरवंदणहत्ति करेप्पिणु ।
॥ घत्ता ॥ पुच्छउ धरणिधरेण बिण्णि बिउ णाविय [A7] मत्था ।
"थिय कज्जें कवणेण उक्खयकरवालविहत्था" ॥ १४ ॥

१५

तं णिसुणेवि दिण्णु पच्चुत्तरु "पेसिवि बेवि आसि देसंतरु ।

४०. पियवए. ४१. निओएं. ४२. कण्णे. ४३. छंदोभंगने दूर करवा जयउ वांचो.

दूराट्ठाणुं[44] जाव तं पावहुं जाव वलेवि पडीवा आवहुं ।
ताव पिहिमि णियपुत्तहं देप्पिणु अम्हहं थिउ अवहेरि करेप्पिणु" ।
तं णिसुणिवि विहसियमुहयंदें दिण्णउ विज्जउ बें धरणिंदें ।
गिरिवेयड्ढहो होहु पहाणा उत्तरदाहिणसेढिहिं[45] राणा" ।
तं णिसुणिवि णमिविणमिहिं वुच्चइ–"अण्णे दिण्णी मही वि न रुच्चइ ।
जइ णिग्गंन्थु देइ सइ हत्थें तो अम्हि वि लेहुं परमत्थें" ।
तं णिसुणेवि बेवि अवलोयवि[46] थिउ अग्गए सो मुणिवरु होएवि ।
॥ घत्ता ॥ हत्थुत्थल्लिउ तेण गय बेवि लएप्पिणु विज्जउ ।
उत्तरसेढिहि एक्कु थिउ दाहिणसेढिहिं बिज्जउ ॥ १५ ॥

१६

तहि अवसरि उच्चाइयवाहहो महि विहरंतहो तिहुअणणाहहो ।
वहुलायण्णवण्णसंपुण्णउ आणइ कोवि पसाहेवि कण्णउं[47] ।
चेलिउ कोवि कोवि हय चंचल रयणइ कोवि कोवि वर मयगल ।
कोवि सुअण्णइ रुप्पयत्थालइं[48] कोवि धणइं धण्णइं असरालइं ।
कोवि अमुल्लाभरणइं ढोयइं ताइ भडारउ णउ अवलोयइं ।
सव्वइ धूलिसमइं मण्णंतउ पट्टणु हत्थिणयरु संपत्तउ ।
जहिं सेअंसें दंसणु पाविउ छुडु छुडु णियपरिवारहो साहिउ ।
"अज्जु पणट्ठु अणंगवियारउ मइ पाराविउ रिसहभडारउ"।
॥ घत्ता ॥ निग्गउ 'थाहु' भणंतु सकलत्तु सपुत्तु सपरियणु ।
भणिउ ति भामरि दिंतु मंदिरहो जेम तारायणु ॥ १६ ॥

१७

वंदिवि पइसारिअउ णिहेलणु किउ चलणारविंदपक्खालणु ।
अण्णवि गोमएण संमज्जणु दिण्ण जलेण धार पुणु चंदणु ।
पुप्फइ अक्खइयाउल दीवा धूववास जलवास पडीवा ।
करपक्खालणु देवि कुमारें ससहरसाण्णिहेणं[49] भिंगारें ।
अहिणवइक्खुरसहं भरिअंजलि ताव सुरेहिं मुक्कु कुसुमंजलि ।
साहुक्कारु देव दुंदुहिसरु गंधवाउ वसुवरिसु णिरंतरु ।
कंचणरयणहिं कोडीउ बारह पडिय लक्ख वत्तीसट्ठारह ।
अक्खयदाणु भणेवि सेयंसहो अक्खयतइय णाउं किउ दिवसहो ।
॥ घत्त ॥ जिमिउ भडारउ रंजि[50] सेअंसें अप्पउ भावेवि ।
वंदिउ रिसहु जिणेंदु सिरे सइंभु भुयजुयलु चडावेवि ॥ १७ ॥
इय एत्थ पउमचरिए धणंजयासियसयंभुएवकए ।
जिणवरणिक्खमण इमं बीयं चिय साहियं पव्वं ॥छ॥ संधि ॥ २ ॥

---

४४. दूरट्ठाणु वांचो. ४५. °सेढिहिं; ४६. अवलोएवि ४७. कण्णउ वांचो. ४८. °थालइं; ४९. °सण्णिहेण. ५०. रंजि पछी बे त्रण अक्षरो उडी गया होय एम लागेछे; कारण के छंदोभंग थाय छे.

पउमचरिय – टिप्पणी

*

हाथप्रतनुं प्रथम पान एक बाजुए लखेलुं छे; – एटले के पहेलुं पृष्ठ कोरुं छे. काव्य बीजा पृष्ठ उपरथी शरु थाय छे. आरंभमां "॥६०॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥" छे, हांसियामां तथा उपर नीचेना कोरा भागमां कोइके टिप्पणो लख्यां छे. ए टिप्पणो आ नीचे फुदडी (*) साथे नोंध्यां छे. आ हाथप्रत कोइए सुधारी पण छे; अने ते सुधारनार ज कदाच आ टिप्पण लखनार पण होय. दा० त० हाथप्रत, पत्र १ (ब) नी पं० ४ अने काव्यपंक्ति ७ मां **उत्ताहो** नी उपर **रा** उमेरी **उत्ताराहो** कर्युं छे. हा० प्र० पत्र १ (ब) नी पं० ४ अने काव्यपंक्ति १४ मां **भविय** सुधारीने **भविया** कर्युं छे.

[नीचे टिप्पणीमां संधिनो अने पंक्तिनो एम संख्याक्रम आप्यो छे.]

संधि १

१. ५–२४, चोवीस तीर्थकरोनी स्तुति छे. चोवीस तीर्थकरोनां नाम नीचे प्रमाणे छे. सरखावो अभिधानचिंतामणि १. २५–२८.

एतस्यामवसर्पिण्यां ऋषभोऽजितशम्भवौ ।
अभिनन्दनः सुमतिस्ततः पद्मप्रभाभिधः ॥
सुपार्श्वश्चन्द्रप्रभश्च सुविधिश्चाथ शीतलः ।
श्रेयांसो वासुपूज्यश्च विमलोऽनन्ततीर्थकृत् ॥
धर्मः शान्तिः कुन्थुररो मल्लिश्च मुनिसुव्रतः ।
नमिर्नेमिः पार्श्वो वीरश्चतुर्विंशतिरर्हताम् ॥

१. १०. **कमट्ठ** इ. सरखावो उमास्वाति–तत्त्वार्थसूत्र. अ० ८, सूत्र ५. **आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुष्कनामगोत्रान्तरायाः** । (१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय; (३) वेदनीय; (४) मोहनीय; (५) आयुष्; (६) नाम; (७) गोत्र; (८) अंतराय.

१. ६. ***आरिसु=आर्षे च रामायणं ।**

१. १०. ***°निज्जणहो=जयनशीलस्य ।**

१. ११. **वयपंचमहादुद्धरधरहो=दुर्धरपञ्चमहाव्रतधरस्य;** समासमां पदोना क्रमनुं अनियंत्रण. **पञ्चमहाव्रत,** उमास्वाति–तत्त्वार्थ० अ० ७. सू० १–२. **हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥**

१. १४ ***°सउण°=पक्षिणां; सउण=शकुन** 'पंखी.'

१. १०.***°दिसिहे=मार्ग्गस्य ।**

१. २० ***साणंतहो धम्मभडाराहो=सह अनंतधर्म्मनाथभट्टारकस्य।** १.५. मी टिप्पणीमां तीर्थकरोनी नोंध जुओ.

१. २१. ***तिण्णिमि, तीहिम्मि पाठे ।**

१.३.७.

१. २५. *°कावें=काव्येन। पंक्तिनो अर्थ-'हुं मारी जातने रामायण काव्य वडे प्रकट करुं छुं.' काव्येन-प्रा० कव्वें-अप० कावें.

१. २७. *°कुहर°=पर्वतात्; सं० कुहर=गुफा; *°णइ=नदी.

१. २८. अक्खरवास°=(अक्षर) निक्षेपव्यासः; व्यास=विस्तार.

१. २९ *°पवाह°=प्रवाह; *°पुलिण°=तट.

१. ३१. °कल्लोलाणिट्ठिय=कल्लोल-आनिष्ठित 'मोजांओ जेमां मूकायलां छे.' आसासय=आश्वासक. सरखावो हेमचन्द्र-काव्यानुशासन. अ० ८. सूत्र २०१. 'पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्यवृत्तसर्गाश्वास-सन्ध्यवस्कन्धकबन्धं सत्सन्धि शब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।' सामान्य रीते सर्ग संस्कृत महाकाव्य माटे, आश्वास प्राकृत महाकाव्य माटे, संधि अपभ्रंश महाकाव्य माटे अने ग्राम्यभाषा माटे अवस्कन्धक. परंतु 'प्रायः' शब्दनो प्रयोग बतावे छे के एक प्रकारनी कृतिनुं विभागनाम बीजी कृतिमां पण वपराय. *तूह=तीर्थ 'जलाशय'.

१. ३४. *संसाराराएं इत्यादि=कविराजेन स्वयंभूदेवेन संसारविषये अतीवभीरुणा। *अणुत्तरवाएं=अणुत्तरवादिना भट्टारकेण। संसाराए=संसार+अरागेण।

१. ३५. *रविसेणायरियपसाएं=रविषेणाचार्यप्रसादेन।

१. ३६. पउमिणि=पद्मिनी अने माउरदेव ए कविनां माता अने पिता छे.

१. ३८. पुण्ण=धर्मार्थकाममोक्षपदार्थैः पूर्णा। पुण्णनो पुण्य अर्थ नथी योज्यो कारण के पवित्त=पवित्र शब्द तेनी पछी ज आवे छे. आढप्पइ=आरभ्यते 'आरंभाय छे'.

१. ३९. जणइ समाणिज्जंतएण थिर कित्तिविढप्पइ=जनेन समापयमानेन स्थिरा कीर्तिः अर्ज्यते-(पोताना कार्यने) पूर्ण करता एवा माणसथी स्थिर कीर्ति संपादन कराय छे; अथवा तो जनेन (=जनैः) सन्मान्यमानेन स्थिरा कीर्तिः अर्ज्यते=माणसोथी सन्मान पामेलो स्थिर कीर्तिने प्राप्त करे छे.

१. ६१. वित्तिसुत्तु=व्याकरणनां सूत्रो अने ए सूत्रोने समझावती वृत्ति. वक्खाणियउं=विशेषेण व्याख्यापितम्-विशेषेण पठितम्।

१. ४२. *पच्चाहारहो=प्रत्याहारस्य। आ संज्ञाशब्द व्याकरणनी परिभाषानो छे. प्रत्याहारने समझावतां पाणिनि १: १: ७१: आदिरन्त्येन सहेता। एना उपरनी काशिका-आदिरन्त्येनेत्संज्ञकेन सह गृह्यमाणस्तन्मध्यपतितानां वर्णानां ग्राहको भवति स्वस्य च रूपस्य। अण्, अक्, अच्, हल्, सुप्, तिङ्। अन्त्येनेति किम्। सुडिति तृतीयैकवचनेन टा इत्यनेन ग्रहणं मा भूत्॥' दा० त० पाणिनि १. १. १. अइउण् ए सूत्र छे; ज्यारे प्रथम अ अने अन्त्य ण् लई व्याकरणनी परिभाषामां अण्नो उल्लेख करवामां आव्यो होय तो आ सूत्रना बधाय वर्णो तेनाथी समझवा. आ प्रकारनी पारिभाषिक रीत प्रत्याहार कहेवाय छे.

१. ४३. ***छव्विहउ समासपउत्तियाउ=बहुव्रीहिकर्मधारयादयः षट्.** छ प्रकारना समासो.

१. ४४. ***छक्कारय=षट्कारक षष्ठीं विना।** कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण. छट्ठी विभक्तिनो 'संबंध' नहि. ***दसलयार=लकारिसंज्ञापरिभाषादिषु.** काळनां नामोनी संज्ञाओ–**लट्, लिङ्, लोट्, लङ्, लुङ्, लिट्, लुट्, लृट्, लृङ्, आशीर्लिङ्** आ दश लकार. **वीसोवसग्ग=उपसर्ग.** संस्कृतभाषामां वीस उपसर्गो छे– **प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, अभि, निस्, दुस्, नि, आ, प्रति, परि, उत्, उप, अधि, वि, अति, सु, अपि.**

१. ४५. **भाव=धात्वर्थ; णिवायगणु**–निपातोनो समूह. **हि, खलु** इ० **लिंगु**=जाति. **उणाइ**=उणादिप्रत्ययो. **वक्कु वयणु**=वाक्य अने वचन–एक, द्वि अने बहुवचन.

१. ४६. **लक्खणु=लक्षणम्** व्याकरणशास्त्र.

१. ४७. ***रयडा=राजश्रेष्ठिना।**

१. ४८. **छुडु=यदि** ना अर्थमां सि० हे० ८. ४. ४२२. उ० १५ पूर्वे, **यदेश्छुडुः।** अहीं 'जो'नो अर्थ बेसी शकशे; पण 'भले' 'कदाच' वगेरे अर्थमां काव्योमां तेनो वपराश दृष्टिगोचर थाय छे.

१. ४९. **आगमजुत्ति=आगमयुक्तिः** शास्त्रनी युक्ति. **घडउ=घटयत** 'तमे घडो'.

१. ५०. **गामेल्लभास=ग्रामिल्लभाषा;** आ भाषामां काव्यो लखातां हतां. सरखावो काव्यानुशासन, ८. ६. उपरनी टीका–'**अपभ्रंशभाषानिबद्धसन्धिबन्धं अब्धिमथ्यादि। ग्राम्यापभ्रंशभाषानिबद्धावस्कन्धकबन्धं भीमकाव्यादि।**' **परिहाणाइ =परिधरणानि** धारण करवानी वस्तुओ–अलंकारो.

१. ५४. ***महग्गहेण=राहुणा।**

१. ५५. ***अवहत्थिवि=अवगण्य, दूरीकृत्य।**

१. ५६. **अलहंत तरणि थेर व विसण्णु**–कांई पण मेळवी शके नहि एवो घरडो माणस विषादमां पड्यो होय तेम कमलना छोडमां बेठेलो सूर्य पाकी डांगरने न प्राप्त करतां विषादमां पड्यो छे.

१. ६०. ***णज्जंत=ज्ञायंते; णज्जंति** पाठ होवो जोइए. **कइमुहाइं=कविमुखानि.**

१. ६४. **सिरि सेहरु आइद्धउ=शिरसि शेखरः आविद्धः**–माथा उपर फूलनो मांड पहेर्यो. सरखावो अमर, १६. १३६. **आपीडः शेखरः। आविद्ध=परिहित.**

१. ६५–७४. **रायगृहनुं** वर्णन एक नायक तरीके करवामां आव्युं छे.

१. ६९. **सायरमेहलहरेहिं=सायरमेहलवरेहिं** वांचवुं जोइए; **सागरमेखलावरैः** 'सागररुपी सुंदर कंदोराओ वडे'.

आलावणिमुच्छणेहिं=आलापनीमूर्च्छनाभिः–वीणानी मूर्छनाओथी.

१. ७३-७४. पडेलां पादंडाथी, पूगफळथी (सोपारीथी), सुधाना चूर्ण (=चूना) थी युक्त रंगथी अने मनुष्यना पगना आगळ लागेला दहींथी पृथ्वी रंगाई गई.

१. ७५-७६. व्यतिरेकालंकारथी श्रेणिक राजाना प्रभावनुं वर्णन कर्युं छे. **णं णं** नो प्रयोग अहिं नोंध लेवा जेवो छे. **णं** उपमावाचक निपात तरीके सि० हे० ८. ४. नोंधे छे.

१. ७७. किं हरि णंणं कमसुयणलीलु=किं हरिः ? ननु (सः) क्रममोचनलीलः 'केम हरि (जेवो) छे ? ए तो जेणे पगलुं भरवानी लीला करी छे ते छे. विष्णुना वामनअवतारनो उल्लेख छे.

१. ८२. किं महुमहु णं णं कुडिलसक्खु=किं मधुमथः ? ननु कुटिलसख्यः । मधुमथ=विष्णु: आमां कृष्णावतारनो उल्लेख छे. कौरव पांडवोना संबंधमां कृष्णनी कुटिलतानो आमां निर्देश छे.

१. ८३. 'अने वळी जो कोईनी साथे ते मळतो आवे, तो जेनुं जमणुं पडखुं होय, ते तेनुं डाबुं पडखुं थाय'.

१. ८७. चउकल्लाण-प्रत्येक तीर्थंकरने पांच कल्याणक होय छेः तेमांनां प्रथम चारः च्यवन, जन्म, दीक्षा अने केवलज्ञान; **चउकम्म**=चार प्रकारनां कर्म.

१. ८८. चउतीसातिसय-३४ अतिशयो: वर्णन माटे जुओ - अभिधानचिंतामणि, १. ५७-६८. जिनसेन-हरिवंशपुराण, २. ५७. **प्रतिहार्यैर्युतोऽष्टाभिश्चतुस्त्रिंशन्महाद्भुतैः । तत्र देवैर्वृतो भासीत् जिनश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥**

१. ८९-९०. पंदर कमळो जेना पग आगळ हतां अने अत्यंत मीनां पुष्पोना मंडप समान जेनो स्वभाव हतो, चोसठ चामरो जेना आगळ ढळती हती एवा वर्धमान (महावीर) विपुल पर्वत उपर बेठा.

१. ९१. चउसुरणिकायसंथुव्वमाणु-चार प्रकारना देवोना समूहोथी वखणायेलो. १ भवनवासी, २ व्यन्तर, ३ ज्योतिष्क, ४ वैमानिक. आ चार देव निकाय. जुओ, तत्त्वार्थ० अ० ४. सू. १, ११-१२-१३-१७.

१. ९६. *उववरेवि=अवतीर्णः ।

१. १००. जेनी पासे पर्वतो छे ते जिनवरने वंदवा माटे भक्तिपूर्वक गयो.

१. १०१-१०८. बारहविह गण-बारप्रकारना गणो: समवसरणमां पोतपोताना निश्चित कोठामां तेओ बेठा. १ ऋषिसंघ, २ कल्पवासी देवोनी अंगना, ३ आर्यिकासमूह, ४ ज्योतिषी देवोनी अप्सराओ, ५ व्यंतर देवोनी स्त्रीओ, ६ भवननिवासी देवीओ, ७ भवनवासी देवो, ८ व्यंतर देवो, ९ ज्योतिषी देवो, १० कल्पवासी देवो, ११ मनुष्य, १२ तिर्यंचो.

१. ७७. *पिंडवासु=दासीजनः; *सट्टहासु=सानंदः ।

१. १०५. *साव=सर्व्वाणि ।

१. ११२. **अट्ठविहपरमगुणरिद्धिपत्त=अष्टविधपरमगुणऋद्धिप्राप्तः**। आठ प्रकारनी लब्धिओ=परमगुण: जेणे प्राप्त करी छे ते. **'अणिमा, लघिमा, प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता॥'** अने आठ प्रकारनी ऋद्धिओ=प्रातिहार्य; **अशोक, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामंडल, दुंदुभि,** अने **त्रिछत्र.**

१. ११८. **परसासणेहि सुव्वइ विवरेरी=परशासनेषु श्रूयते विपरीता।**

१. १२०. ***ढक्करिवंतएहि=हठोक्तियुक्तैः**; सरखावो सि० हे० ८. ४. ४२२. उदा० ११, **अद्भुतस्य ढक्करि; *भंतिउ=भ्रान्तयः; *भंतिएहि=संशययुक्तैः।**

१. १२१. ***गीढु=धृतः, व्याप्तः।**

१. १२२. ***रामहो=रामावतारविष्णोः। उवरि-(उदरे)** पेटमां.

१. १२३. **से (स)ण्णि देव=संज्ञिदेवाः= विद्याधराः।**

१. १२४. ***तियमइकारणे=स्त्रीनिमित्ते; *कविवरेण=सुग्रीवेण [कपिवरेण]; *सहोयरेण=सुग्रीवेण [सहोदरेण].**

१. १२७. **महिसाकोडिहिमि** इ० करोड भेंसो वडे पण तेनुं भोजन पुरुं थतुं नथी.

१. १२८. ***समणु=अरिभक्खणशीलः [समनाः** मनवाळो: आसक्त].

१. १३१. ***अणंतसाउ=सर्वगतः; *णिरवेक्खु=कर्तृरहितः; *पलयभाउ=परिणामी.**

१. १३२. ***आयामु=ऊर्ध्वः। रज्जु** ए क्षेत्रने मापवानुं माप छे.

१. १३३. **झल्लरि**=डाखळाना जेवुं एक वाद्य: वच्चेथी ते वाद्य पातळुं होय अने बे छेडानो चामडाथी जडेलो परिघ पहोळो होय. ढोलकनी माफक ते वगाडवामां आवे छे; झालर.

१. १३५ ***चउ खेत्त=भरतैरावतौ विदेहद्वौ एवं चतुष्कं क्षेत्रम्।** तत्त्वार्थ० ३. १०, मां सात क्षेत्र गणाववामां आव्यां छे-**'तत्र भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यवत-ऐरावतवर्षाः क्षेत्राणि।'** जंबुद्वीपनी १४ मुख्य नदीओ अने छ प्रकारना कुलपर्वत. तत्त्वार्थ० ३. ११. **तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः।**

१. १३६. **कणयसेलु** इत्यादि, मेरुपर्वत, जुओ तत्त्वार्थ० ३. ९. भाष्य-**मेरुरपि काञ्चनस्थालनाभिरिव वृत्तो योजनसहस्रमधोधरणीतलमवगाढो नवनवत्युच्छ्रितो दशाधो सहस्रमुपरीति।** *पंक्तिनी उपर ९९००० लख्युं छे. ***सहसेक्कमूलु** आनी उपर १००० लख्युं छे अने **सूलु** सुधारी **मूलु** कर्युं छे.

१. १३८. **अवछप्पिणिकाले.** दश कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण ऊतरतो काल. ते समये हानि दर्शावनार छ आरा परिमित काळ विभाग. अवसर्पिणी काल अवनतिनो; अने उत्सर्पिणी काळ उन्नतिनो होय छे. **गयकप्पयरुछण्णा**=गज, कल्पतरु युक्त १४ विशिष्ट रत्नो जेवा.

१. १४०—१५२: चौद कुलकरोनां नाम गणाव्यां छे. **प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित्** अने **नाभि.**

१. १८३. **चक्खुमउ=चक्षुष्मान्.** तेना वखतमां चंद्र अने सूर्यना तेजनो ख्याल प्रजाने आव्यो. दरेक कुलकरे कोईने कोई संस्कृतिनुं महान अंग शोधी काढ्युं. पहेलां कल्पवृक्ष तेज आपतुं हतुं; परंतु सूर्य अने चंद्रना तेजनुं ज्ञान चक्षुष्माने आप्युं.

१. १५० **जसुंमउ=यशस्वी** कुलकर. **अतुलथाउं=अतुलस्थामन्.** जेनी तुलना न करी शकाय तेवा बळवाळो.

१. १५६ **पासे='पार्श्व'** पांसळीओनो भाग - छातीनो भाग.

१. १५८. ***मंदें=निबिडेन; सं० मन्द्रेण.**

१. १६०. **धृति, कीर्ति, बुद्धि, श्री, ह्री** अने **लक्ष्मी** ए छ देवीओ इन्द्रना आदेशथी मानव वेष धरी आवी अने पोते परिवारसहित मरुदेवीनी सेवामां रही.

१. ६५ ***कय विरवइ=केशं विरोलति;** संस्कृत छाया **कचं विरचयति ।**

१. १६८-१६९. सुंदर पलंग उपर सूतेली तेणे स्वप्नमाला देखी; अने त्रीस पखवाडीआं सुधी प्रभुने आंगणे वसुनी धाराओ वरसी.

१. १७०-१७१. सोळ स्वप्नो-१ मदझरतो हाथी; २ कमलनो समूह उखाडतो वृषभ; ३ सिंह; ४ कमलारूढ लक्ष्मी; ५ कुसुमनी माळा; ६ पूर्णिमानो चन्द्र; ७ सूर्य; ८ माछलांनुं युगल; ९ पाणीथी भरेलो मंगलकलश; १० कमलसरोवर; ११ गर्जतो सागर; १२ सिंहासन; १३ घंटानादथी ध्वनिवाळो सात माळनो महेल; १४ नागोनो महेल; १५ रत्नोनो समूह; १६ बळतो अग्नि.

संधि २

२. ३. **अट्ठोत्तरसहासलक्खणधरे**=१००८ लक्षण धारण करनार.

२.६. ***अहिट्ठिय=हर्षितः;** सं० छा० **आहर्षितः ।**

२. १७. यक्षे (=कुबेरे) जलदी साकेतनगरी (=अयोध्या) तैयार करी दीधी अने इंद्रे (ते नगरनी) त्रण वार प्रदक्षिणा करी.

२. १९-२०. बधां मनुष्यो उपर अवस्वापनिका नामे निद्रा दईने [पुलोमजाए=इन्द्राणीए], मायामय बाळक (माता) आगळ मूकीने, त्रिभुवन परमेश्वरने, ज्यां परिवार सहित इन्द्र हतो, त्यां लई गई.

२. २५-३०. सरखावो **पुष्पदंतनुं महापुराण,** संधि ३, कडवक १२. सात सो योजन ऊंचे नेवुथी वधारे (**=सणवइ**) तारानी पंक्तिओ छे, तेनाथी दश योजन उपर सूर्य; अने एंशी योजन चंद्र; चार योजनने अंतरे सत्तावीस नक्षत्रनी पंक्तिओ; अने तेटला ज

चार योजने बुधनुं मंडल. त्यांथी त्रण योजने शुक्र, त्रण योजने गुरु, त्रण योजने मंगळ अने त्रण योजने शनिश्चर-आ प्रमाणे २८ हजार योजन ओळंगी-तथा बीजा सो योजन ऊंचे चढी, पांडुशिला उपर ऋषभदेवने बेसाड्या.

२. ३२. **किं होइ ण होइ व जोयहो**-केम छे के नथी ते जुओ.

२. ३३. **केहि मि घोसिउ चउविहु मंगलु.**-चार प्रकारनां मंगलोनी घोषणा करी. **अरिहंतमंगल; सिद्धमंगल, साधुमंगल, केवलिप्रज्ञप्तधर्ममंगल.**

२. ३६.**बारह तालउ सोलहि अक्खरु.**-बार प्रकारना तालोनो अहिं उल्लेख छे. कया बार तालनो अहिं उल्लेख छे ते समझातुं नथी. संगीतना ग्रंथोमां तालनी जुदी जुदी संख्या आपी छे. सोल अक्षर नीचे प्रमाणे गणावाय छेः **क ख ग घ, ट ठ ड ढ, त थ द ध. स र ल ह इति षोडशाक्षरं** (सरखावो Dr. Vaidya's Ed. of **महापुराणु** P.607.)

२. ३७. **भरहुत्तउ [भरत+उक्तकम्] नाट्य. णवरस-शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत; अट्ठभाव**-आठ स्थायीभावो

'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चाष्टौ स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः॥'

२. ४०. **तिसरियाउ=[त्रि+स्वरिकाः]** मंद्र, मध्यम अने तार ए त्रणेय स्वर-नाद युक्त. संगीतमां सामान्यतः सात स्वर गणाय छे. **स, रि, ग, म, ध, प, नि.** टिप्पणमां ***तिसरियाउ=वीणा।**

२. ४१. ***विण्णासिउ=कृतम्.** सं० आ० **विन्यस्तम्.**

२. ४३-४७. देवोए कलश लई ऋषभदेवनो अभिषेक कर्यो. नीचेना देवोए कलश लई अभिषिचन कर्युं.—१. अमरेन्द्र; २. हुतवह; ३. यम; ४. नरकिकदेव; ५. वरुण; ६. मारुत; ७. कुबेर; ८. इशान इन्द्र; ९.धरणीन्द्रदेव; १०. चंद्र.

२. ५४-५५. वज्रसोयथी इन्द्रे ऋषभदेवना कान विंध्या तेनुं वर्णन. त्यार पछी आखा कडवकमां अलंकार-परिधान अने इन्द्रे करेली स्तुतिनुं वर्णन छ. ***आइज्जइ=परिधीयते.**

२. ६४. **वंदणहत्ति=वन्दन+भक्ति.**

२. ६५. ***तित्ति=तृप्ति.**

२. ६६. ***पगुत्तइ=प्रगुप्तानि.**

२. ६७. ***णिद्दारेवि=मुखं उद्वेलयित्वा।**

२. ७१. ***रिसहु भणेवि=धर्मवंतो विचार्य.** ऋषभदेवना उरु उपर वृषभनुं चिह्न हतुं अने स्वप्नमां पण प्रथम मेरुदेवाए वृषभ ज जोयो हतो एटले वृषभने लांछे तेनुं नाम ऋषभ पाड्युं एवो ज अर्थ सयुक्तिक छे.

२. ७४. **पुव्वहु वीस लक्ख**-वीस लाख पूर्वो. **पुव्वहु** छट्ठी विभक्ति ब० व०. पूर्व-सीत्तेर लाख करोड अने छप्पन हजार करोड वरस प्रमाणनो एक कालविभाग.

२. ७५. **गय पय कुंवारें=गता प्रजा कुमारम्. कुंवारें** (तृतीया वि० नो द्वितीया वि० जेवो प्रयोग); ***(भुक्त्वा) मारें=समयेन मरणेन वा।**

२. ७७. **जीवेवउ** छंदोदृष्टिए योग्य नथी; एटले **जीवेवए** जोइए. **जीवेवए=जीवितव्ये** जीववा माटे. ***परिहेवए=ताम्बूलादिभिः।** परंतु योग्य अर्थ **परिधेये=** वस्त्रो माटे.

१. ८०. **सियसेविउ=श्रीसेविताः।**

२. ८८. **पुण्णाउस=पूर्णायुः** 'जेनुं आयुष्य पूर्ण थयेलुं छे ते.' टिप्पणमां **णीलंजण** ना छेल्ला **ण**ने सुधारी तेने स्थाने **स** मूक्यो छे.

२. ९१ ***पाउजिएहिं=गीतनृत्यवादित्रयकारकैः देवैः । *पउंजिउ=प्रयुंजितः कृतः. *लक्खणे=भरतांगशास्त्रे यथोक्तं।**

२. ९२. ***कर** इ०=**हस्तादिभिः बहुविन्यासैः।**

३. ६७. **लोयंतियहिं=लोकान्तिकैः देवैः।**

२. ९८. **उअहिउ=उदधयः, सागरोपमाः।** १० कोडाकोडि पल्योपम जेटलो काळ ते एक सागरोपम. जुओ विवेचन माटे में संपादित करेल **समराइच्चकहा (भव १-२)** P. 130.

२. १००. **पंचमहव्वय**-पांच महाव्रत. तत्त्वार्थ० ७. १. **हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्॥** आ विरति संपूर्णतया श्रमण पाळी शके. ए महाव्रत कहेवाय. गृहस्थ पूरी रीते न पाळे-पण अमुक बाबतोनो अपवाद राखी पाळे, त्यारे ए अणुव्रत कहेवाय. **तिण्णि गुणव्वय**-जुओ तत्त्वार्थ० ७. १५. **दिग्विरतिव्रत, देशविरतिव्रत, अनर्थदंडविरतिव्रत. चउ सिक्खावय-सामायिकव्रत, पौषधोपवासव्रत, उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत, अतिथिसंविभाग व्रत.**

२. १०५. **तं सिद्धत्थु पराविउ**-ते सिद्धार्थ नामे (उपवनमां) आव्या.

२. १०८. पंचमुष्टिक लोचनो उल्लेख छे.

२. १२७. **णं तो—[यदि] तावत्,** सरखावो गू० नहि तो.

२. १२९-१३०. नमि अने विनमि ते कच्छ अने महाकच्छ राजाओना बे पुत्रो. कच्छ अने महाकच्छ ए बन्ने य राजाओए पण ऋषभदेव पाछळ श्रमण बन्या हता.

२. १३९. **अवहि पउंजिवि=अवधिं प्रयुज्य**-अवधिज्ञाननो उपयोग करी.

२. १५५. **कण्णउं=कन्या।**

२. १६०. **सेअंसें=श्रेयांसे**-बाहुबलिना पुत्र सोमरथनो युवराज श्रेयांस.

२.१७०-१७१. अक्षय तृतीयानी उत्पत्ति.

*

पउमचरिय-शब्दसूचि

*

[શબ્દસૂચિમાં અપભ્રંશરૂપનું સમાન સંસ્કૃતરૂપ નોંધ્યું છે. સંધિની અને સંધિની પંક્તિની સંખ્યા બે અંક અનુક્રમે સૂચવે છે. (ॱ) ફુદડી દેશ્ય શબ્દ બતાવે છે. સમાસમાંથી વિભક્ત કરેલો શબ્દ ઉપર (') કરી સૂચવ્યો છે; તેવા શબ્દ માટે કેવળ સંસ્કૃત સમાનશબ્દ મૂક્યા છે. સિ. હે.=સિદ્ધ હેમચંદ્ર: દે ના. મા.=દેશીનામમાલા: સં.=સંસ્કૃત: પ્રા =પ્રાકૃત: ગૂ.=ગૂજરાતી]

अइतणुएण १. २७ अतितनुकेन અત્યન્ત પાતળા

अइगावए २. ९. ॱगावते

अउज्झहे २. ६८. अयोध्याम्

अक्खइ १. १९५. आख्याति

अक्खइयावल २. १६६. अक्खय+यावल (=याग्ल तण्डुलाः दे. ना. मा. ३. ८.) अक्षततण्डुलान् વણભાગેલા ચોખા

अक्खय २. १७१. अक्षय

अक्खयतइय २ १७१. अक्षयतृतीया

अक्खरु २. ३६. अक्षरम्

अक्खाणउ १. १६५. आख्यानकम्

अक्खोहणि २ ४८. अक्षोहिणी

अग्गए २ १९: २. ८९. अग्रे

अंगारउ २. २८. अङ्गारकः મંગળનો ગ્રહ

अंगुट्ठए २. ६७. अङ्गुष्ठकेन

अच्छराउ २. १०२ अप्सरसः

ॱ**अच्छि** १. १७०; ॱ**अच्छिउ** १ १६० अक्षि (નપું.) ગૂ. આંખ.

अच्छिण्ण २. ४९. अच्छिन्ना

अज्जिअ° १. १०२. आर्यिका શ્રમણીઓ

अज्जु २. १६१. अद्य

अट्ठमु १. ४६. अष्टमः

अट्ठविह° १. ११०. अष्टविध

अट्ठाणवइ २. २९. अष्टानवति

अट्ठारह १. १८६. अष्टादश

अट्ठोत्तर २. ३. अष्ट+उत्तर આઠ વધારે १.३.८.

अणायपरमत्थहो २. १२६ हे अज्ञातपरमार्थाः પરમ અર્થને ન જાણનારા હે પુરુષો.

अणिट्ठिय १ ३१. आनिष्ठित

अणुत्तरवाणं १. ३४. अनुत्तरवाचा

अणुमाणु १. १३२. अनुमानम् ने અનુસરતું માપ.

अणुराए ३१. ६ अनुरागेण

अणुहरइ १. ८२. अनुहरति મળતું આવે છે.-**अणुहरमाणह** २. ८१. अनुहरताम्.

अण्णु १ १८५ अन्यः:-**अण्णहुं** २. ७९ अन्येभ्यः:-**अण्णहो अण्णु** २.५७. અન્યોઅન્ય.

अण्णु १. १२६. अन्नम्

अतिसयॱ २. ८७. अतिशय

ॱ**अंतेऊरु** २. ७०. अन्तःपुरम्

अत्थाणे २. ९०. आस्थाने સભામંડપમાં

अद्धु १ १८२. अर्धम्

अप्पउ २. ११९. आत्मा-**अप्पउ** २ १७२. आत्मानम्:-**अप्पणउ** १ ७१ आत्मा:-**अप्पणउं** १. २६ आत्मा **अप्पाणउ** २. ३३. आत्मा

अप्फालिय २. ३३. आस्फालिता

अबुहु १. ५१. अबुधः

अब्भत्थियएण १. ५३. अभ्यर्थितेन

अब्भंतरे १. १३५: १. १८४ अभ्यन्तरे

अमराहिव° १. १२५. अमराधिप
अमिउ २. ६७. अमृतम्
अमुल्ल° २. १५८. अमूल्य
अम्हे २. ७६. वयम्;–**अम्हे** २. १३३. अस्माभिः;-**अम्हहं** २. ६३; **अम्हहुं** २. १३५. अस्मभ्यम्.
अरुह २. ६१. अर्हन्
अलहंत १. ५७ अलभमानः
अलिउलए १. १५७. अलिकुलेन
अल्लल° १. ८८. आर्द्रार्द्र અત્યંત ભીનું.
अवइण्णु १. १८३. अवतीर्णः
अवछप्पिणि° १. १३७. अवसर्पिणी
अवराहु २. १३३. अपराधः
अवलोयइं २. १५८. अवलोकयतिः– **अवलोयवि** २. १५१. अवलोक्य.
अवहत्थिवि १. ५५. *अपहस्तयित्वा= दूरीकृत्य, अवगण्य.
अवहिं २. १३९. अवधिम् અવધિજ્ઞાન.
*__अवहेरि__ २. १४६. अवहेलाम्
अविउलु २. ११४ अविकलः
असरालइं २. १५७. बहूनि
असीहिं २. २६. अशीत्याम्
असुरमत्ति २. २८.=असुरमंति=असुर-मन्त्री शुक्र
असेसइं २. १०१ अशेषाणि
अहिट्ठिय उ. ६. आहष्टः
अहिसित्तु २. २. अभिषिक्तः
°**अहिहाणें** २. ४६. अभिधानेन
आइउ १ १५९ आयाताः (स्त्री.)
आइज्जइ २. ५५. आदीयते
आइद्धउ १. ६४. आविद्धः પહેરાયો, ધારણ કરાયો.
आउ १. ९४. आयातः
आएसु २. ९०. आदेशः:–°आएमिं १. १५९. आदेशेन
आएं २. ४५. आयातेन
आगमजुत्ति १. ४९. आगमयुक्तिम् શાસ્ત્ર-ની યુક્તિને
*__आढत्त__ २. ५८. आरब्धम्;–आढत्तइ २. ३७. आरब्धानि
*__आढप्पइ__ १. ३८. आरभ्यते
आणइ २. १५५. आनयति;—°आणेवि २. २. आनीय.
*__आदण्णेहिं__ २. १२८. व्याकुलैः
*__आमेल्लेवि__ २. १२२. आमुच्य
आय २. १०३. आयाताः;–आयइं १. १४८ आयातानि.
आयत्त १. ८८. आवृत्त
आयरियं १. ३५. आचार्यः–° **आयरिगं** १. ३३. आचार्येण
°**आयरु** १ १८७. °आकरः
आयामु १. १३१. आयामः લંબાઈ
आयासु १. १३०. आकाशः
आरिसु १. ६. आर्षम्
°**आलउं** १. १७५. आलयः
आलावणि° १. ७२. आलापनी એક વાદ્ય-વિશેષ
आलावेण २. १३७. आलापेन
आवहु २. १४७. आयामः અમે આવીએ.
आसंकिउ २. ५७. आशङ्कितम्
आसण° २. ८. आसन
आसण्णीहूअ° १. ९९. आसन्नीभूत
आसत्तइं २. ६५. आसक्तानि
°**आसाइ** १. १५७. आशया
आसासय° १. ३१. आश्वासक પ્રાકૃત કાવ્યના અથવા તો કોઈવાર અપભ્રંશ કાવ્યના વિભાગનું નામ. સંસ્કૃતકાવ્યના વિભાગ સર્ગના જેવો આ વિભાગ છે.
आसि २. १३३. आसीत्
आहयाइं १. ५८. आहतानि
इक्खु° २. १६९. इक्षु° શેરડી

इत्थंतरि २. ५४. अत्रान्तरे
इंदभूअ° १. ३३. इन्द्रभूति ભગવાન મહાવીરના પ્રથમ શિષ્યઃ ઇન્દ્રભૂતિ ગૌતમ ગણધર.
इय १. १८९. इति
ईसाणें २. ४६. ईशानेन ઇશાનેન્દ્ર
उइउ १. १८८. उदितः
उअरि १. १३५. उपरि
उअहिउ १. ९८. उदधयः=सागरोपमाः જુઓ ટિપ્પણી.
उक्खय° १ १६५: २. १४३. उत्खात ઊંચા કરેલા
उक्खय° १. १६९. उत्खात ખોદી કાઢેલા.
°उग्घवियं १ १. અરેલું સરખાવો સિ. હે. ४ १७६: अग्घवइ (પાઠાન્તરમાં: उग्घवइ) પૂરણાર્થે
उच्चाइउ २. १०५. ऊर्ध्वायितम्–उच्चाइअ २ ८८ उच्चायिताः
उच्छण्णा २ ७६. उत्सन्नाः
उच्छुवणइं १. ५८ इक्षुवनानि
°उच्छवेण १. ७१. उत्सवेन
उज्जल° . ८५. उज्ज्वल
उज्जाणेहिं २. १६ उद्यानैः
उड्डाविय° २ ९ उड्डायित
उणाइ १ ४५. उणादिः
उत्तिम° २. १३० उत्तम
°उत्थल्लिउ १. ५२: २. १५२. उत्स्थलायित–मू. ઊથલેલું; સરી પડેલું. સરખાવો દે. ના. મા. १. १०७: उत्थलियं उन्मुखगतमित्यन्ये ।
उद्धूयउ २. ११२. उद्धूताः;
उद्धूयमाणु १. ८५. उद्धूयमानः
उद्धूलिउ २. १२९. उद्धूलितम् વ્યાપ્ત થયેલું; ધૂળમાં વ્યાપ્ત થયેલું. સરખાવો સિ. હે. ४. २९=उद्धूलेइ.
उप्पण्ण २. ८३. उत्पन्नाः;–**उप्पण्णए** २. ६. उत्पन्ने
उप्परि २. २६. उपरि
उप्पाइय १.१६२. उत्पादयति;–**उप्पाइय** २. १२९. उत्पादिताः (पु.):–**उप्पाइउ** १. ११९. उत्पादिताः.
उब्भिय १.९२. ऊर्ध्वस्थितः–**उब्भियाइं** २. ३८. ऊर्ध्वं कृतानि.
उम्मोहिउ २. ९७. उन्मोहितः
उयरि २.१०८. उदरे અંદરના અર્થમાં
°उलग्गए २. ८९. सेवायाम्. દે. ના. મા. १. १६४. ओलुग्ग
उवमिज्जइ १. ७५. उपमीयते;–**उवमिज्जहिं** २. ६१. उपमीयन्ते
उवरि १. १२१. उदरे
°उवरि २. २१. उपरि
उववणि २. १०६. उपवने
उववरेवि १. ९५. अवतीर्य
उववास° २. १०१. उपवास
°उवसग्ग १. ४४. उपसर्गाः
उवसोवणि २. १९. उपस्वापिनीः એક પ્રકારની નિદ્રા.
उवाउ २. ७७. उपायः
उव्वेल्लिउ २. ३७. उद्वेलितम् विस्तार्य સરખાવો સિ હે. ४. २२३. उव्वेल्लइ=उद्वेष्टते
एउ १. १४४; २. १३३, एतद्
एक्क° २. ९५. एक
एक्कपक्खु १. ७६. एकपक्षः
एक्कसि २. १३४. एकशः; सि. हे. ४. ४२८.एकशसो डिः ।
एत्थ १. १९०. अत्र
एत्थंतरि १. १५९. अत्रान्तरे
एम २. ५१; २. ८८; २. १३८. एवम्, सि. हे. ४. ४१८.
एव १. ५१; १. १७९ एवम्, सि. हे. ४. ४१८.
एवहिं १. ३४; **एवहि** १. १४५: २. ७७, इदानीम्, सि. हे. ४. ४२०.

एहउ २. ३१. एषः

एहारसमए १. १०६. एकादशे

ओह° २. ६०. ओघ–સમૂહ

*°**ओहर** १. २८. =ओहार કાચબો, દે. ના. મા. ૧. ૧૫૭.

कइहिं २. ७३. कविभिः

कइमुहाइं १. ६०. कविमुखानि

कइराएं १. ३५. कविराजेन

कइहिं २. ८०. कतिभिः

कंचणमउ २. १३. काञ्चनमयः

कच्छ° २. १६. कक्षा ઓરડો, આંગણું:–कच्छ કિનારો.

कज्जें २. १४३. कार्येण

°**कंठियाउ** १. ५८. कण्ठिकाः ગળામાં પહેરવાની સોનાની કંઠીઓ

कडियले २. ५६. कटीतले=कटीतटे કેડ ઉપર.

कडिसुत्तउ २. ५६. कटीसूत्रम् કંદોરો

कणइ १. ६७. क्वणति

कण्णउं २. १५५. कन्याः

कण्णुप्पले १. ९५ कर्णोत्पले

°**कंदोट्ट**° १. १५६. नीलोत्पल, દે. ના. મા. २. ९.

कप्पंगण १. १०१. कल्पाङ्गनाः કલ્પ-વાસી દેવોની પત્નીઓ

कप्पयरु १. १३७. कल्पतरुः– **कप्पयरु** २. ७६. कल्पतरवः

कप्पामर° २. ७. कल्पामर કલ્પવાસી દેવો

कम° १. ७७. क्रम પગ.

कमजुयलु १. १५८. क्रमयुगलम्

कमलायरु १. १७२. कमलाकरः કમળથી ભરપૂર સરોવર.

कंपंति १. ५४. कम्पन्तेः–कंपंतु १. ५४. कम्पमानः

कम्मारउ २. ९५. कर्मकारः નોકર

कम्मेप्पिणु २. २९. क्रान्त्वा

कय १. १६४. कचः અંબોડો, વાળ

कयाइ १. ४१. कदापि

करमि २. ८५. करोमि–**करेप्पिणु** २. १३१. कृत्वाः–**करेवि** २. ६९. कृत्वाः–**करंतहो** २. ६४. कुर्वतः.

कलमि १. ५६. कलमे બહુ પાણીવાળા સ્થળમાં ઉત્પન્ન થયેલા વ્રીહિ.

कलयलु २. ३४. कलकलः

कलुए २. १२३. कल्ये=श्वः બીજી સવારે, આવતી કાલે

कल्लाण° १. ८६. कल्याण

कवड° २. १२५. कपट.

कवणु १. ७५. कः; કેટલાક कः+पुनः સાથે આ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ જોડે છે: જ્યારે Pischel: Grammatik der Prakrit Sprachen §428માં તેને किं=कव વિકારની સાથે યોજી વ્યુત્પત્તિ સાધે છે. (દા. ત. कवोण વગેરે.) **कवणेण** २. १४३. केन. સરખાવો સિ. હે. ४. ३६७.

कविवरेण १. १२३. कपिवरेण

कह १. ११८. कथा

कह १. १२३. कथम्

कहि १. १२१. कुत्र

कहि १. ११८. कथय

काइं २. १२३. **काइं** २. १२०. किम् સરખાવો સિ. હે. ४. ३६७. किमः काइं–कवणौ वा ।

काउसग्गएं २. १११. कायोत्सर्गेण

काणे २. १२१. कर्णे

कावि १. १६३. का+अपि કોઈક સ્ત્રી

कावें १. २६. काव्येन

कित्तिहरेण १. ३४. कीर्तिधरेण

किंपि १. ४९. किमपि

किय° १. ११०. कृत

किर. २. १२०. किल सि. हे. ८. ४१९.
किलकिलइ १. ७१. (ध्वनिशब्द) આનંદનો કિલકિલાટ કરવો.
किसि° २.७९. कृषिः ખેડવાની કળા
किह १. १२४. कथम्
किह १. १०७. कीदृशः
कीलंतहो २. ७४ क्रीडतः
कुडिलसक्खु १. ८१. कुटिलसख्यः જેની મૈત્રી કુટિલતાથી ભરપૂર છે.
°**कुंडुयणइं** २. ११७. कण्डूयनानि ખંજવાળવું તે
कुंभयण्णु १. १२८. कुम्भकर्णः
कुम्में १. १२०. कूर्मेण
कुलपव्वय १. १०८ कुलपर्वत विशेष માટે જુઓ ટિપ્પણી
कुलयर १. १३८. कुलकराः જુઓ ટિપ્પણી.
कुंवारे २. ७५. कुंवारइ=कुमारे सप्तमी वि नो प्रयोग બીજી માટે कुमारના અર્થમાં
कूड° २. १२५. कूट કપટી રમત
कूरभा[?] १. ८० क्रूरभावः
केम १ ११८, १ १२२. कथम
°**केरी** १ ११८ સંબંધાર્થસૂચક અનુગ સરખાવો ગૂ. કેરો, કેરી, કેરું. Pieshel §176=कार्य; सि. हे. ४. १४७. इदमर्थस्य केरः ।
केहिं २. ३५. कैः
कोउहल्लु १. १४४. कौतुहलम्
°**कोक्किय** २ ८८.=कोक्किय=व्याहृता. आहूताः; सि. हे. ४. ७६. कोक्कइ અને पोक्कइ=व्याહરति
कोट्टे १. १०१. कोष्ठे કોઠામાં
खग्ग १. १६५. खड्गः
खणद्धें २. १३९. क्षणार्धेन
खंधु २. १०५. स्कन्धम्
खंभ° १. १८०. स्तंभ
खार° १. ७९. क्षार
खाणे २. ७७. खादनं
खामिय २. ११६. क्षान्ताः
खीरु २. ५०. क्षीरम्
खेत्त १. १३४. क्षेत्रम्
खेमंकरु १. १४०. क्षेमकरः
गज्जइ १. ७१. गर्जति
°**गण्णेहिं** २. ४८. गण्यैः
गत्तु १. ८७. गात्रम्;-°गत्तें १. ३७. गात्रेण
गंधकुड्ड १. १७१. गन्धोत्कटम्
गंधवाउ २. १६९. गन्धवातः
गंपि २ ९८; **गंपिणु** १. १७७. गत्वा
गयणंगणु १. ८३. गगनाङ्गनम्
गरहंत २. १३८. गर्हमाणाः
गरुअ° २. ७;-**गरुयउ** १. १५५. गुरुकः
गह° २. १११. ग्रह
गामेल्लभास १. ५०. ग्राम्यभाषा
गायइ १. ७२. गायति
गिव्वाण १. १८०. गीर्वाणः
गीढु १. १२० गृहीतः °**गीढु** १. १८० गृहीतम
गुरुक्की २. ९४. गुर्वी
गेउ २ ९९ गेयम्
गेण्हवि २. ५४. गृहीत्वा
गेहेवि २. १०९. गृहीत्वा
°**गोउरु** १.६५. गोपुरः-**गोउराइं** १.९१. गोपुराणि
गोमएण २. १६५. गोमयेन
घडउ १. ४९. घटयत રચો
*__घत्तउ__ २. ११९. क्षिप्तः
घाइज्जइ १. १२३. हन्यते
घिट्ठ° १. ११४. घृष्ट
*__घित्तउ__ २. १०९. क्षिप्ताः
°**घुम्मइ** १. ६८. घूर्णति

चउ १. ८६. चतुर्
चउतीस १. ८७. चतुस्त्रिंशत
चउथउ १. १४०:–चउत्थउ २. ४४. चतुर्थः
चउदहु° १. १३१:–चउद्दह° १. १३४ चतुर्दश
चउविह २. ३४. चतुर्विधः
चउवीस १. २५. चतुर्विंशतिम्
चउमाणव° १. ९२. चतुर्मानवाः ચાર માણસની ઉંચાઈ જેટલા.
चउसट्ठि १. ८९. चतुःषष्टिः
चउहमि २. २७. चतुर्थे
चक्कु १. १३६. चक्रम्
***चडाविय** १. १०९. आरोपित સરખાવો. સિ હે. ८. ४. २०६. आरुहेश्चड–वलग्गौ–**चडाविवि** २.२३. **चडावेवि** २. १७२. आरोप्यः–**चडिउ** २. ९ आरूढः ગૂ. ચડ્યો.
चत्तु १. ६८. त्यक्तः
चत्तारि २. ४९. चत्वारि
चंदु १. ५४. चन्द्रः
चरइ १. १२६. चरिज्जइ ના અર્થમાઃ ખવાય છે
चलणग्गें १. ८५. चरणाग्रेण
चारुगत्त १. १५३ चारुगात्री
चालिय° १. ८६. चालित
चामीयर° २. १०८. चामीकर°
चिंधइं २. ३८. चिह्नानि
चेलिउ २. १५६. चेलकम् वस्त्र
छ° १. १३६. षट्
छक्कारय १. ४४. षट्कारकान् જુઓ [८०
छट्ठउ १. १४१: २. ४५. षष्ठः–**छट्ठमि** १. १०३. षष्ठे
छण° १. १७१ क्षण° पूर्णिमाः–**छणइं** १. ५४. क्षणे પૂર્ણિમાને દિવસે
***छंडहो** २. ११८. मुञ्चत. सि. हे. ८. ४. ९१. ગૂ. છોડવું.
छण्णा १. १३७. छन्नाः
°छत्तु १. ८७. छत्रम्
छप्पए २. ९. षट्पदे ભમરામાં
***छलियणाउं** १. १४९. विदग्धनामाः– જેનું નામ બહુ ચતુર છે; જેની વિદગ્ધ કીર્તિ પ્રસરેલી છે તે. छलिय=विदग्ध दे. ना. मा. ३. २४.
छविहउ १. ३४ षड्विधाः
छाइउ १. ८३. छादितम्
***छिव्वरणासें** १. ७३. चिपिटनासेन જેનું નાક ચિબુ છે તે. चिविड=ચપટું અને छिब=स्पृश् એ બન્નેની એકમેક પરની અસરને લીધે આ શબ્દ બન્યો હોવો જોઇએ. छिव्वर–એટેલુંઃ ચિબુ
***छुडु** १. ४९. કદાચ, ભલે, જો, સરખાવો स. हे. ८. ४. ४२२. (७. १५) यदे-श्छुडु।–**छुडु छुडु** २ १५०. क्षिप्रम्. હેમચંદ્ર આપેલા અર્થ કરતાં સાહિત્યમાં छुडुનો અર્થ વધારે વિસ્તૃત છે જુઓ ડૉ. પી. એલ. વૈદ્ય સંપાદિત महापुराण પા. ५५९ ઉપર નોંધ
छुहचुण्ण° १. ७३. सुधाचूर्ण ચુનાનો ભૂકો. સરખાવો ગૂ. છોઃ ચૂનો
जइ २ ११०. यदि
जक्खकद्दमेण १. १५५. यक्षकर्दमेण સ-રખાવો अमर० १५. १३३. 'कर्पूरागुरुकस्तूरीकक्कोलैर्यक्षकर्दम.'
जक्खें २. १७. यक्षेण
जगजणेरि १. ९७. जगज्जनित्री જગતની માતા.
जडाउ २. ११२. जटाः
जणणिए २. ७१. जनन्या
जंति २. ६५. २. १२०. यान्ति
जमराएं २. ४४. यमराजेन
जंबूदीव १. १३३. जम्बूद्वीपः
जम्मुप्पत्ति २. ८८. जन्मोत्पत्तिः
जय १. १२०.=**जइ**=यदि

जलइं १. १२७. जलानि
°**जलायरेहिं** १. ६९. जलाकरैः
जलाशयोथी
जसु १. ९०. यस्यः जुओ जामु
जहिं १. ५६. यत्र
*__ज्जे__ १. ८२.=जि=एव, जुओ शब्द-
सूचि जि
जाइ १. १२१. याति
जाणहुं २. १३३ जानीमः
जाणियउ १. ४१. ज्ञानम्
°**जाणें** २. १०४. यानेन
जाम १. १८५. यावत्
जाय २. ९८. जाता
जाला° २. ११३. ज्वाला
जावेहिं २. १३; २. ८२. यावत् सर-
खाओ सि. हे. ८. ४. ४०९: याव-
त्तावतोर्वादेर्मउं महिं ।
जासु १. ८२. यस्य जुओ शब्दसूचि जसु
जाहं २. ७६. येषाम्
जाहि २. ८९. याहि
जाहुं २. १२१. यामः (आपणे) जईए
*__जि__ १. १५३. एव सरखावो सि. हे.
८. ४. ४२० गू. ज.
जिणिंदहो १. ८४. जिनेन्द्रस्य
जित्थु २. १३९. यत्र सि. हे. ८. ४. ४०४
जिंभण° २. ११६. जृम्भण बगासुं
जिम २. ७३. यथा
*__जिमिउ__ २. १७२. भुक्तवान् सि. हे.
८. ४. ११०. जिमइ=भुङ्क्ते
जिह २. १११. यथा सि. हे. ८. ४. ४०१
जीवेवउ २. ७७.=जीवेवए जीवितुम्, जी-
वितव्याय. विध्यर्थ कृदंत माटे सि.
हे. ८. ४. ४३८.
जुज्झइ १. १२२. युध्यति
जुयलु १. १७२. युगलम्
°**जुयलएहिं** १. ७०. युगलकैः
जे २. ६६.=ज्जि ज जि एव ना अर्थमां

जेत्तहे २. २०; २. ९०. यावत्
जेत्तहिं १. १६१. यत्र
जेम २. ६९. यथा सरखावो जिम
जोइस° १. १०२. ज्योतिष्क
°**जोगु** २. २२. योग्यः
जोयहो २. ३२ पश्यतः-जोएप्पिणु
१. ६. दृष्ट्वा गू. जोवुं
जोयण° १ ९० योजन
झत्ति २ ७१. झटिति
झल्लरि १. १३२. झल्लरी, झालर-डाख
ळाना आकारनुं वच्चेथी पातळुं वाद्य.
झस° १. १७२. झष° मत्स्य
ठविउ २. २९. स्थापितः-ठवेप्पिणु २.
१९. स्थापयित्वा
°**डहणु** १. ८३ दहनः-डहणें २. २१६.
दहनेन
*°__डोरु__ २. ७.=दवरकः दोरो:
*__डोहहो__ २. १२१.=क्षोभक, कलुषीकृतः
गू. डहोळो: सरखावो सि. हे. ८. ४
४३९. उदा. २. अडोहिउ=अदोषितम्
*__ढक्करिवंतएहि__ १ ११९. आश्चर्यवद्भिः
सरखावो सि. हे. ८. ४ ४२२.
उदा. ११. अद्भुतस्य ढक्करिः
ढुक्किउ १ १५१. ढौकिताः-प्रेषिताः.
ढोयइ २. १५८; ढोवइ १. १६४.-ढौकते
ददाति उपस्थापयतिः भेट करवी,
पासे लाववुं
*__ढोरि__ २. ३६.=गवादयः प्राणिनः गू. ढोर
णउ १. ४१. न खलु
णज्जंत १. ६०. ज्ञायन्ते सरखावो सि. हे
८. ४ २५२.
णच्चंति १. ५९. नृत्यन्ति
णट्टारंभु २. ८९. नाट्यारंभः
णट्ठउ २. ९८. नष्टम्:-णट्ठइं २. ९८
नष्टानि
णयरिय २. ४५. नरकिक परमधार्मिक
देव जे नरकना जीवोने पीडा आपे छे.

णरवइ १. ७५. नरपतिः

णव १. ४५. नापि–प्रा. णवि. गू. नव

णवणवइ १. १३५. नवनवतिः; नवाणुं

णवेप्पिणु १. ९३. नत्वा

णहयल १. ११५. नभस्तल°

*°**णाइ** २. ११३. इव सरखावो सि. हे. ८. ४. ४४४.

णाउं २. १७१ नाम

णाण° १. ८६. ज्ञानः–**णाणदेह** १ १८३. ज्ञानदेहः

णावियमत्था २. १४२. नामितमस्तकाः

णासइ २. ८७. नश्यते

णासेवि २. ११८. नंष्ट्वा

°**णाहउ** २ ३२. नाथः

णिउ २. २० नीतः

***णिएवि** २. ८४ दृष्ट्वा. सि. हे. ८ ४. १८१. निअइ=पश्यति

णिक्खवणु २. १०२. निष्क्रमणम्

°**णिग्गंथहो** २. १२५. हे निर्ग्रन्थाः

णिग्गय २. ५. निर्गताः

णिग्घोसइं २. ५. निर्घोषाः

णिच्च° १. ७८. नित्य

°**णिणाय** २ ६. निनाद

णिद्दा° २ ११६. निद्रा

णिद्दारेवि २. ६७. निदार्य फाडीने, उखाडीने

°**णिम्महण** १. ११२. निर्मथन

णियमु २. ८७. नियमः

णियरु १. १७६. निकरः

णियलएहिं १. ७०. निगडकैः

णिरवेक्खु १. १३०. निरपेक्षः

***णिरु** १. ५५. नितराम् निश्चयं वा

णिव २. ११५. नृपाः

णिवडिय° १. ७३. निपतितः–**णिवडियइं** २. ६६. निपतितानि;–**णिवडंतउ** १. ६६. निपतन्;–**णिवडिप्पिणु** २. १३१. निपत्य.

णिवायगणु १. ४५. निपातगणः

णिविसें २. १०५. निमिषेण

णिसण्णु १. ५६. निषण्णः

णिसुअउ १. ४३. निश्रुताः

णिसुणिउ १. ४६. निश्रुतम्;–**णिसुणिवि** १. १२८. **णिसुणेवि** २. ७८. निश्रुत्य

***णिहेलणु** २. १६४. गृहम्. दे. ना. भा. ४. ५१.

णीलंजण २. ८९. नीलाञ्जना अथवा तो नीलयशाः

णीलंजस २. ९४. जुओ णीलंजण

णीसंगत्तणु २. १२८. निःसंगत्वम्

णेउर° १. ७०. नूपुर

°**णेत्तइं** २. ६५. नेत्राणि

°**णेह** १. ११२. स्नेह

णं १. ५५ इव सि. हे. ८.४.४४४

णंणं १. ७६. ध्रु.=ननुः **णंतो** २. १२८.=ननु तावत्

णाहिं १. ४०=णाहिं नास्ति. सि. हे. ८. ४. ४१९ नाहिं=नहि

ण्हविउ २.५३. **ण्हाविउ** २.५१. स्नापितः

तइअइ १. १०२. तृतीये

तइलोक्कु १ १३१. त्रैलोक्यम्–**तइलोक्कहो** २. १. त्रैलोक्यस्य

तउ १ १७९. तव

तक्खणे २. ९१. तत्क्षणे

तग्गय° १. ११६. तद्गत

°**तत्ति** १. ४३. तत्परता. चिंता . दे. ना. भा. ५. २०

तय° २. १२६. त्रय

तंमोलु १. १६३. ताम्बूलम्

तरणि १. ५६. तरणिः=सूर्य

तलायहिं २. १५. तडागैः

तहंतिउ २. २७. तहित्तिउ २. २५. तथा+इयत्यः

तहो १. ५२. तस्य

ता २ ९४. तावत्

ताइं १. ६०; २. १५८. तानि
ताम १. १८५. तावत्
तारायण° २. २५. तारागण
°**तालगयाइं** २. ३५. तालगतानि
ताव १. ८३; २. १०२. तावत् જુઓ શબ્દ ता અને ताम
तावेहिं २. १३; २. ८३. तावत्
तासु १. ७५; १. ८२. तस्मै અથવા तस्य
ति २. १६३. तिस्रः
तिणयणु १. ७६. त्रिनयनः શિવ
तिण्णि १. ९१. त्रीणि
तित्ति २. ६०. तृप्तिम्
तित्थपवत्तणु २. ७६. तीर्थप्रवर्तनम्
तिय १. १२१. त्रियम्
°**तियमइ** १. १२३. स्त्री સરખાવો અપભ્રંશપાઠાવલી ३. ६६. तीमइ=स्त्रीः હિંદી तीवईः પંજાબી तीमि
तियसेंद° २. ५९. त्रिदशेन्द्र
तिरिय १. १०६. तिर्यङ्
तिरिल्लोय १. १३२. तिर्यक्लोकः
तिलउच्छवतें २. ५७. तिलकोत्सवान्ते
तिवार २. १७. त्रिकृत्वः ત્રણવાર.–**तिवारउ** २. १४१. त्रिकृत्वः
तिस २. ११६. तृषा
तिम्मरियाउ २. ८०. तिम्बरिकाः=वीणाः
तिसट्ठ° २. ८२. त्रिषष्टि
तिहुण° १. १०८. त्रिभुवन
तीसं° १. १६८. त्रिशत्
तुरंतु २. ९. त्वरन्;–**तुरंतें** २. १०७. त्वरता;–**तुरमाणिं** १.९२. त्वरमाणेन;–**तुरंति** २. ९२. त्वरन्तीः–**तुरिउ** २. १४१ त्वरितः. सि. है. ८. ४. १७२.
*°**तूह**° १. ३१. तीर्थ. જલાશયમાં ઉતરવા માટેની પગથિયાંની પંક્તિ. સરખાવો દે. ના. મા. ५. १६. (ટીકા)=सरिदवतारः १.३.९.
तेत्तहि १.१६१. **तेत्तहिं** २.२०. **तेत्तहे** २. ९०. तावत्
तेत्थ १. १३२. **तेत्थु** २. ६७. तत्र
तेयपिंडु १. १८६. तेजःपिण्डः
तेह २. १२४. तेषाम्
तो १. १५९. ततः **तोवि** १. ४८. ततः अपि=तावद् अपि.
***तोडहो** २. १२७. त्रोटयध्वम्. सि. है. ८. ४. १७;–**तोडेपिण्णु** २. १२१. त्रोटयित्वा
थक्कु १. १५६. स्थितः. सि. है. ८. ४. २७.
°**थरहरिय** १. ९७. कम्पित
थविउ २. ६८. स्थापितः;–**थवियउ** २. १०८. स्थापिताः
°**थाउं** १. १४९. स्थामन् બળ.
थाएवि २. १०६. स्थित्वा;१. **थाहु** २. १६२. तिष्ठत
थालइं २. १५७. स्थालकानि થાળા.
थिउ १. १८४; २. ९०. स्थितः
थेर १. ५६. स्थविरः
थोत्तइं २. ३८. स्तोत्राणि
थोवंतरे २. १०६. स्तोकान्तरे
दइवि २. १२४. दैवी
°**दक्खवइ** २. ७८. दर्शयति. सि. है. ८. ४. ३२
दंडि १. ४७. दण्डिन् અલંકારશાસ્ત્રના એક ગ્રંથ–કાવ્યાદર્શનો રચયિતા.
दप्पणु १, १६४. दर्पणम्
दरिसन्तिए २. ९४. दर्शयन्त्या
दरिसावइ २. ३१ दर्शयति
दससयनेत्तु २. ११. दशशतनेत्रः ઇન્દ્ર;–**दससयणेत्तें** २. ५७. दशशतनेत्रेण
दहमुहु १. १२५. दशमुखः રાવણ
दहवयणु १. १२६. दशवदनः રાવણ
दाडिमाइं १. ६०. दाडीमानि
दाहिण° १. ८२. दक्षिण

दिट्ठु १. १०१. दृष्टः; **दिट्ठी** १. १६७. दृष्टा
दिट्ठि २. २१. दृष्टिः
दिण्णउ २. १३५. दत्तः;–**दिण्णु** १. १५४. दत्तः
दिण्णसोहु १. १७४. दत्तशोभम्
दिंतु २. १६३. ददत्
दिवसहो १. १८२. दिवसस्य
°**दिवायरु** १. १८८. दिवाकरः
दिहि° १. १६०. धृति એક દેવીનું નામ.
दीवा २. १६६. दीपकान्
दीसइ १. १६९. दृश्यते
दीहिय° २. १५. दीर्घिका
दुद्धरु १. १४०. दुर्धरः
दुंदुहि° २. १६९. दुंदुभिः
दुव्वल २. ६६. दुर्बलाः
°**दुव्वाएं** १. १५५. दुष्पाकेन; દુઃખના ખરાબ પરિણામથી.
दूराठाणु २. १४५. दूरस्थानम्
देइ १. १६३. ददातिः–**देज्ज** २. ६२. दद्याः;–**देप्पिणु** २. १९. दत्त्वाः–**देवि** २. २०५. दत्त्वाः–**देवाविय**° १. ९७. दापित. જુઓ બીજાં રૂપો શબ્દસૂચિઃ **दिण्ण, दिंतु, देसहु** વગેરે
देउल° १. ६७. देवकुलः–**देवउलहिं** २. १४. देवकुलैः
देविहे १. १६६. देव्याः
देसहु २. १२३. दास्यथ; જુઓ देइ
देसंतरु २, १४४. देशान्तरम्
देसीभासा° १. ३०. देशीभाषा
धणएं २. १३. धनदेन કુબેરે
धण्णइं २. १५७. धान्यानि
धण्णा २. ७६. धन्याः
°**धम्मु** २. ८७. धर्मः
धय° १. ६६. ध्वज
***धयधयंतु** १. १७६. ज्वलन् ધગધગતું.
धरणिंदें २. ४७. धरणीन्द्रेण
धरियउ १. १२०. धृतः
धिगत्थु २. ९५. धिक्+अस्तु
धूमद्धउ १. १७६. धूमध्वजः અગ્નિ
धूलिसमइं २. ९५९. धूलीसमानि
धूव° २. १६६. धूप
नक्खत्तहं २. २७. नक्षत्राणाम्
नवेप्पिणु १. ५. नत्त्वा
***नाइ** २. १२.=इव; જુઓ णाइ
नावइ २. ३१.=इव જુઓ णावइ
निउंएं २. १२१. नियोगेन
नेउरसद्दें १. १५८. नूपुरशब्देन
न्हवण° १. १८०. स्नान
पइट्ठ २. ९२. प्रविष्टा
पइं २. १०१. त्वयाः–**पइं** १. ४०. तुभ्यम्, त्वाम्
पइसारिअउ २. १६४. प्रवेशितः
पईहर° १. ३७; १. १७०. प्रदीर्घ
पउंजिउ १. ९१. प्रयुक्तम्ः–**पउंजिवि** २. १३९. प्रयुज्य
°**पउत्तियाउ** १. ४३. प्रवृत्तयः
पउमिणि° १. ३६. पद्मिनी–ચતુર્મુખ કવિની માતાનું નામ.
पउलोमए २. १८. पुलोमजया ઇંદ્રાણીએ
°**पउहराए** २. १८. °पयोधरायाः
पक्ख १. १६८. पक्षाः
पक्खलइ १. ७०. प्रस्खलति
°**पक्खालणु** २. १६४. प्रक्षालनम्
पगुत्तइ २. ६६. प्रगुप्तानि
पंगणए १. १६८. प्रांगणे
पच्चय १. ४४. प्रत्ययाः જુઓ ટિ.
पच्चाहारहो १. ४२. प्रत्याहारस्य જુઓ ટિ.
पच्चुत्तरु २. १२३. प्रत्युत्तरम्
पच्छिम १. ८५. पश्चिमः
पंचमुहु १. १७०. पञ्चमुखः સિંહ
पट्टणु २. १४. पत्तनम्
पडंतउ १. १२०, पतन्

पडल° २. १०८. पट+ल (स्वार्थ तद्धित) वस्त्रनो कटको
पडह° २. ५. पटह ढोल
पडिअंचिउ २. ६९. प्रत्यञ्चितः चारे बाजुए फेरववुं; प्रदक्षिणा करावी
पडिबोहिउ २. ९७. प्रतिबोधितः
पडिय २. १७० पतिताः
पडिरक्खइ १. १६५. प्रतिरक्षति
°**पडिवक्खें** २. ५४. प्रतिपक्षेण
पडिवण्णए २. १२४. प्रतिपन्ने
पडिवाडिउ २. ९८. प्रतिपादितम्
पडिवारउ° १. ६८ -पडिवारिअ°=सं. प्रतिवारित°
पडीवा २ १४६. प्रतीपाः
पडीवा २. १६६. पटीका वस्त्र.
पढइ १. १६२. पठति
पणच्चइ १. १२२. प्रनृत्यति
पणच्चिउ २. ६९. प्रनर्तितः
पणट्ठु° १. ११२. प्रणष्ट
पणवइ १. ६९. प्रणमति;-**पणविज्जहिं** २. ६१. प्रणम्यसे
पण्णारह १. ८८. पञ्चदश
°**पण्णेहिं** १. ७३. पर्णैः
पत्ति १. १८४. पत्नी
पत्तिउ २. २७. पङ्क्तयः; जुओ पंतिउ
°**पत्थारु** १. ४७. प्रस्तारः विस्तार
पदरिसहि २. ८९. प्रदर्शय;-**पदरिसिउ** १. ५१. प्रदर्शितः
पंतिउ १. ५७. पङ्क्तयः
पय २. ७५. प्रजा
पयइ १. ९६. पदानि
पयगय° २. ३५. पदगत° काव्यना चरण संबंधी.
पयागे २. १०६. प्रयागे
°**पयारउ** २. ७९. प्रकाराः
पयासइ २. ८७. प्रकाश्यते;-**पयासिउ** २. ४१. प्रकाशितम्
°**पयासु** १. १३४. प्रकाश
पयाहिण १. २३. प्रदक्षिणा
पर १. ५६. परम्, 'केवळ'ना अर्थमां
परणारीहि १. १२६. परनार्याम्
परमत्थें २. १५०. परमार्थेन
परमप्पउ २. ११९. परमात्मा
परमप्पय २. २९. परमात्मा
परमेसरु १. ८५. परमेश्वरः
परलोएं २. १२० परलोकेन
पराइउ १. ८४. परायातः;-**पराइय** २. १३० परायाताः;-**पराविउ** २. १०६. परायातः
परिअंचिअ २. १७. पर्यञ्चिता प्रदक्षिणा कराई
परिआणिउं २. ४१. परिज्ञातम्
परिट्ठिउ १. १०८; १. १३१. प्रतिष्ठितः
परिणाविउ २. ८०. परिणायिताः
परिफुरंतु १. १७६. परिस्फुरन्
परिमिउ २. १११. =परिविउ=परिवृतः अथवा परिमितः
परियट्टइ २. ७२. परिवर्तयति
परिवेढिउ १. १००. परिवेष्टितः-**परिवेढिज्जंता** २. ११७. परिवेष्ट्यमानाः
परिसेसिउ १. १२६. परिशेषितः छणाया
°**परिहरणाइं** १. ५०. परिधरणानि अलंकारो, वस्त्रो.
°**परिहेवए** २. ७७. परिधेयके=वस्त्रे
पलयभाउ १. १३०. प्रलयभावः
°**पलंक** १. १६७. पर्यङ्क°
पवइआ २. ११५. प्रव्रजिता;-**पवईआ** २. ११०. प्रव्रजिताः
पवज्जिय २. ४. प्रवादिताः
पवत्तइ २. ८६ प्रवर्तते

पवरिसिय १.१८२. प्रवृष्टः;–**पवरिसिय** १. १८५. प्रवृष्टाः

पविरलदत्तें १. ३७. प्रविरलदन्तेन

°**पसाएं** २. ७६. प्रसादेन

पसाहइ १.१६६. प्रसाधयति;–**पसाहेवि** २. १५५. प्रसाध्य

पसुत्तियइं १. १६७. प्रसुप्तया

पहाणा २. १४८. प्रधानाः;–**पहाणु** १. १३३ प्रधानः

पहिलउ १. ५५. प्रथमम् પહેલું;–**पहिलए** १. १०१. प्रथमे

पाउ १. ८८. पादः

पाउजिएहि २. ९१. प्रातोर्यिकः વાદિત્રો-વાળાઓએ

पाडइ १. १६४. पातयति

पाण २. ९३. प्राणाः;–**पाणहिं** २. ९४. प्राणैः

पाणे २. ७७. पाने

पायडमि १. २६. प्रकटयामि

°**पायय** १. २९. प्राकृत

पायार १. ९१. प्राकाराः બુરજો

पारद्धइं २. ३८. प्रारब्धानि

पावसेण २. ४. प्रावृषा વર્ષાઋતુથી

पावहुं २. १४५. प्राप्नुमः;–**पाउवि** २. १६०. प्राप्तम्.

पासे १. १५५. पार्श्वे;–**पासेहिं** २. १३१. पार्श्वे

पिएवय २. ११८.=पिएवए=पातव्ये પીવામાં

पिंडवासु १. ९८. पिण्डवासः નોકર

पियारउ २. ८४.प्रियतरः

पिहिमि २. १४६. पृथ्वीम्

पीलण° १. ८५. पीडन સરખાવો ગૂ. પીલવું

पुणु १. ८२; १. १८५. છ. पुनः

पुण्णाउस २. ८८. पूर्णायुः

पुत्तहुं २. ८१. पुत्रेभ्यः

पुप्फइ २. १६६. पुष्पाणि

पुरंदरासु १. १५१. पुरन्दरस्य

पुलइअंग १. १०५. पुलकिताङ्ग

पुव्वहो २. ७४. पूर्वाणाम् 'पूर्व' સમયના પરિમાણનું નામ.

पेसिवि २. १४४. प्रेष्य

पोक्खरिणि° २. १५. पुष्करिणी

पोंफलेहिं १. ७३. पूगफलैः ગૂ. ફોફળ

फणिवइ १. ८०. फणिपतिः

फाडिम° १. ६०. फाड्+इम (तद्धित) सि. हे. ८. १. २३२. फालेइ, फाडेइ =सं. पाटयति. ગૂ. ફાડેલાં

फारुच्चक्खु १. १४२. स्फारचक्षुः

फुलिंग° १. १५५. स्फुलिंग

फुलमंडव° १. ८८. पुष्पितमण्डप

वत्तीस १. ११३; १. १८१. द्वात्रिंशत्

वारह १. ९१ द्वादश

वारहमए १. १०६. द्वादशे

विज्जउ २. १५३. द्वितीयः

°**विहत्था** २. १४३. द्विहस्ताः

विहि २. १३१. द्वाभ्याम्

वीयए १. १०१. द्वितीये

वुज्झिउ १. ६५. वुद्धः=ज्ञातः सि. हे. ४. २१७.

वुहयण १. ६०. हे वुधजन

वे २. १४७. द्वे

वेण्ण २. १३१.=बिण्णि=द्वौ

°**वोल्लइ** २. १३२. वदति. सि. हे. ८. ४. २. **बोल्लु** २. १३४. वद

वोहंतु १. १८६. वोधयन

भक्खइ २. १२१. भक्षयति

भंतिउ १. ११९. भ्रान्तयः

भंतिएहि १. ११९. भ्रान्तकैः ભ્રાન્તિમાં પડેલા મનુષ્યોથી

भडारउ १. १८३. भट्टारकः

भणिउ २. १६३. २. १६३. भणितम् तरङ्
भणेवि २. ४१. भणित्वा तरङ्; भणेवि २. १७१. भणित्वा–ने लीधे.
भमंतएण १. १५७. भ्रमता
भम्मह° १. ४७. भामह અલંકાર ઉપરના એક ગ્રંથનો લેખક.
भरहु १. ४६. भरत· ભરતમુનિરચિત નાટ્યશાસ્ત્ર.
भरहु १. १३६. भारतः ભરતખંડનો એક પ્રદેશ.
भरहुत्तउ २. ३७. ·रतोक्तम् नाट्य
भरेप्पिणु २. ·.०· २. १०८. भृत्वा
भव्वयण १. १८६. भ·्·जन
°भसल २. ३·. भ्रमरः, दे. ना. मा. ६. १०१ टीका.
°भाणं १. १३६ भागे
भामरि २. १४१. भ्रमणम्
भारमत्त १. १५३. भारमात्रम्
भाव १. ४५. ભાવે પ્રયોગ
भावण° २. ८. भावनक દેવોનો પ્રકાર
भावेवि २. १५२. भावयित्वा
भिंगारें २. १६७. भृङ्गारेण
भिच्चत्तणु २. ५६ भृत्यत्वम्
भिच्चु १. १२२. भृत्यः
***भिंभलेहि** १. ६८. विह्वलैः
°*भुक्खा° २. ७५. वुहुक्खा > बुभुक्षा. दे. ना. मा. ६. १०६: સરખાવો वुहुक्खइ=बुभुक्षति, भक्षयति सि. टे. ८. ४. ५;–भुक्खहिं २. १६६. बुभुक्षायाम्=क्षुधायाम्. ગૂ. ભૂખ
भुयणत्तय° १. ८७. भुवनत्रय
भुव° १. १२५. भूप
भोयणे २. ७७. भोजने
म २. १२७. मा
मइ १. ४०. मया;–**मइं** २. १६१. माम्.
मउडि° १. ११४. मौलि
मगहदेसु १. ५५. मगधदेशम्
मगहाहिवु १. १०९. मगधाधिपः
मंगलगारउ २. १. मङ्गलकारकः
मज्जणए° १. १८८. मज्जनक°
मज्झि १. १३१. मध्ये
मण्णंतउ २. १५९. मन्यमानः
मढ° २. १५. मठ
°मत्थए १. १०८. मस्तके
मंदें १. १५७. मन्द्रेण=निबिडेन
मंदोवरि १. १२७. मन्दोदरी
मयगलु १. १६९. मदकलः=हस्ती. दे. ना. मा. ६. १२५.
मयगि·ु १. १६९. मदक+इल्ल (तद्धित) મદઝરતો
मयण° २. ६८. मदन
मयरहरु १. १२४. मकरधरः समुद्र
मयसिरि° २. १०. मदश्री
मरगय° १. ५७. मरकत
मरुद्धुय° १. ६६. मरुत्+उद्धृत
मसि° २. ७९. मषी શાહી–લખવાની કલા
महग्गहेण १. ५४. महाग्रहेण રાહુથી
°महण्णवे २. ५०. महार्णवे
महराउ १. ९३. महाराजः;–**°महारायहो** २. ८३. महाराजस्य
महाएविए २. १८. महादेव्या
महायकव्वु १. ८६. महाकाव्यम्, **चतुर्मुख** પાંચમહાકાવ્યો ગણાવે છે; એ કયાં છે તે કહેવું વિષમ છે. કદાચ નૈષધ અને માઘની ગણતરી તે ન પણ કરતો હોય.
महिअले १. ९६. महीतले;–**महियलि** २. ११९. महीतले
महिएण १. ७४. मथितेन દહીંથી
महिसाकोडिहिमिण १. १२६. **महि-**साकोडिहिं+इण=महिषकोटीभिः अनेन ।
महिहरिंदु १. ८५. महीधरेन्द्रः

महुं १.१४६. मह्यम्;-**महु** १.१४४. मम

महुमहु १. ८१. मधुमथः મધુ રાક્ષસનો સંહાર કરનાર કૃષ્ણ

माइ १. २२१. माति સમાય છે

मायाबालु २. १९. માયાવી બાળક

मारुउ १. ८०. मारुतः

मारुएएव १. ३६. =माउरएवः ચતુર્મુખના પિતાનું નામ

मारें २. ७५. मरणेन; જો वारें નો ફેરફાર मारें હોય તો वारेण समयेन અર્થ થાય. આથી ટિપ્પણકારે समयेन मरणेन वा એમ લખ્યું છે

मुक्की २. ९४. मुक्ता

मुच्छणेहिं १. ७२. मूर्च्छनाभिः

मुट्ठिउ २. १०८. मुष्टिकाः

मुय २. ७५. मृताः

मुयण° १. ७७. मोचन. સરખાવો સિ. હે. ८. ४. ९१. मुअइ = मुञ्चति

मुरय° १. ७१. मुरज°

मुहयंदें २. १४७. मुखचन्द्रेण

मुहुलु १. १७५. मुखरम्

मुहलीहुयउं १. १५८. मुखरी भूतम्

मेहलहरेहिं १. ६९. मेखलाभरैः

मेहेहिं २. ५२. मेघैः

मोक्खु १. १०८. मोक्षः

मोत्तिय° १. १५५. मौक्तिक

रइ १. १५२. रतिः

रएप्पिणु २. ४९. रचयित्वा

रक्खइ २. १२१. रक्षति

***रंगिय** १. ७४. रञ्जिता

***रंगें** १. ७४. रंगवडे, रञ्ज् ધાતુમાંથી આ શબ્દ આવ્યો છે

रज्जुय १. १३१. रज्जुक એક પ્રકારનું માપ

रयडावुत्तु १. ४८. रयडा+वुत्तु = राज० श्रेष्ठिना उक्तः

रयण° १. १३८. रत्न

***रवण्णउ** २. १४. सुन्दरः સરખાવો સિ. હે. ८. ४. ४२२. ઉદ ११. रम्यस्य रवण्णः

रविसेण° १. ३५. रविषेण°

°**रसोहु** १. १५४. रसौघः રસનો જથ્થો

°**राउ** २ १३. राजन्

राणा २. १४८. राजानः

रामणु १. १२५. **राम्वणु** १.१२१. रावणः

रायलच्छि २. १०६. राजलक्ष्मीम्

रायहं २. ११०. राज्ञाम्

*°**रिण** १. १२.=जल અથવા ऋण

रिसह° १. १८८. ऋषभ

रिसि° १. १०१: २. १२६. ऋषि°

रुक्खहो १. १४८. वृक्षस्य

रुच्चइ १. ५३. रोचते

रुप्पय° २. १५५. रूप्यक° રૂપું

***रेहइ** २. ११. राजति सि. हे ८.४.१००. **रेहंति** २. ११२. राजन्ति, शोभन्ते

रोमंचियंगु १. ९६. रोमाञ्चिताङ्गः

लइ १. १४५. અનર્થક નિપાત

लइआ २.२१०. लाताः= गृहीताः;-**लइया** २. ११५.=गृहीताः

लइज्जइ २. ४७. गृह्यते;-**लइयउ** २. ३९. लाताः લીધી:-**लइयउ** २. १०८. लाताः લેવાયા.-**लएवि** २. ३१: २. ९०. लात्वा,-**लाएवि** २. १०६. लात्वा જુઓ लयउ, लेइ

लक्खण° २. ३. लक्षण સામુદ્રિક લક્ષણ

लक्खणु १. ४६. लक्षणम् સંગીત શાસ્ત્ર,-**लक्खणे** २.९१. लक्षणे નાટ્યશાસ્ત્રમાં

लक्खिज्जइ २. २६. लक्ष्यते;-**लक्खिउ** २. १४०. लक्षितः

लग्गा २. ११८. लग्नाः

लग्गु १. १०९. लग्नः

लग्गेवि १. १८२. लगित्वा=પર્યન્ત

लच्छि° १. १६०. लक्ष्मी

लंबिय° २. ११४. लम्बित
लयउ २. ४६. लातः जुओ लइज्जइ
लयार १. ४४. ल-कार जुओ टिप्पणी
लहु १. ९७. लघु जलदी
लायण्णु १. १५४. लावण्यम्
लेइ १. ५२; १. १२७. लाति;-**लेहुं** २. १५०. लामः अमे लईए;-**लेवि** १. ११९; **लेप्पिणु** २. ५०. लात्वा
लोएहिं १. ११९. लोकैः;-**लोयहु** १.५१ लोकेभ्यः; **लोयहो** २. ३१. लोकम्
लोयण १ १५६. लोचने
लोयंतियहिं २. ९७. लोकान्तिकैः लोकान्तिक-एक प्रकारना देवो छे.
व १. ५९ इव
व २. ३२ वा
वइरागहो २. ८५; २. ९६. वैराग्यम्
वउ २. ८७ व्रतम
वक्कु १. ४५. वाक्यम्
वक्खाणियउं १ ४१. व्याख्यानितम=व्याख्यातम्. विवेचन कर्युं
*__वखुत्तइं__ २. ६६. निमग्नानि जुओ. खुत्त= निमग्न दे. ना. मा. २. ७४; खुप्पइ=मज्जति सि. हे. ८. ४. १०१. विशेष चर्चा माटे Pischel § 286. खुप्पइ=सं. क्षुप्यति (क्षुप् अवसादने) अने तेना उपरथी ज खुत्त. गू. खूंपीजवुं खूतीजवुं.
वच्छत्थले २. ५६. वक्षःस्थले
वज्जु २. ९१. वज्र २. ३५. वाद्यम्, गू. वाजुं
वज्जसूइ २. ५४. वज्रसूचिः वज्रनी सोय
वड्ढइ २. ७३. वर्धते
वणसिरि° १. ५७. वनश्री
वण्णमि १. ५५. वर्णयामि
वत्तु १. १७३. वृत्तः गोळाकार
वत्थें १. १६३. वस्त्रेण
वंदणहि १. १०९. वन्दनाय
वंदिण° १. ९९. वन्दन
*°**वमालउ** २. ३९. कलकलः दे. ना. मा. ६. ९०
वम्मह° १. ११२. मन्मथ;-**वम्महु** २.७९ मन्मथः कामदेव
वयणु १. ४५. वचनम्;-°**वयणाइं** १.५० वचनानि गू. वेण
°**वयणइं** १. ६०. वदनानि
ववसाउ १. ४५. व्यवसायम्;-**ववसाय** १. ७८. व्यवसाय°
वरि १. ४८. उपरि ते उपरांत
वरि २. १३४. वरम्
वरिट्ठ १. १६८. वृष्टा
वरिसद्धु १. १२६. वर्षार्धम्
वरिसु १. १८२.; २. १११. वर्षम्
वलंतहो २. ११३. वलतः;-**वलेवि** २. १४५. वलित्वा
वल्लहु° १. ८७. वल्लभः
वसह° १. १६९. वृषभ
वसुहार १. १६८; १. १८५. वसुधारा रत्नोनी धाराओ
वाणिज्जउ २. ७९. वाणिज्यम्
वामद्धुअ १. ८२. वामद्धउ=वामार्धः डाबुं पडखुं
वायइ १.१६२. वादयति;-**वायउ** २.३६ वादितम्
वायहि १. ९४. वाचयसि-वदसिना अर्थमां, जेनी तुं वात करे छे
वायरणु १. ४१. व्याकरणम्
वि १. ८२; १. १३२; १. १८५. अपि
विअप्पिवि २. ८८. विकल्प्य
विउलहिं २. १५. विपुलैः
विउलइरि १. ८४. विपुलगिरौ
°**विंछिय** २. ११७. वृश्चिक वींछी
विज्जउ २. ७९. विद्याः
विज्झइ २. ५५. विध्यति वींधवुं

*विढप्पइ १. ३९. अर्ज्यते सि. हे. ८. ४. २५१. अर्जेविढप्पः । विवेचन माटे सरखावो Pischel §223, §286.=विधापयति, वि+धा. गणु. ३. उभय. नुं प्रेरक रूप
विणउ १. ५१. विनयः
विणिवारइ २. १२२. विनिवारयति
विणु २. १०३. विना
विणोउ १. १६२. विनोदः
विण्णवइ १. ४०. विज्ञापयति
विण्णाणु २. ४१. विज्ञानम्
विण्णासिउ २. ४१. विन्यस्तम्
वित्ति १. ४१. वृत्तिः टीका
वित्थरिण १.१३३. वित्थरेण १.१२९. विस्तरेण
विंद° २. ५९. वृन्द
विप्फुरइ १. ७०. विस्फुरति
विब्भम° २. ९३. विभ्रम
विमाणिया २. ११६. विमानितः
विमुच्चइ १. ५४. विमुच्यते
विंभउ १. १४२. विस्मयः
°वियारउ २. ६८. विकारः
विरवइ १. १६४. विरचयति
विरूसइ १. ५२. विरुष्यति
विवरिज्जंतु २. ७३. विव्रियमाणं विवरणु करातां
*विवरेरि १. ११७. विपरीता सरखावो सि. हे. ८. ४. ४२४. उदा. १
विविह° २. ७९. विविध
विसज्जिय २. ९३. विसर्जिताः
*विसट्टउ २. ७. विकसितः
विसण्णु १. ५६. विषण्णः
विसमचक्खु १. ७६. विषमचक्षुः जेनां सम एटले बे, नेत्र नथी ते, त्रण नेत्रवाळा शिव
विहंजिवि २. ११५. विभज्य
विहडउ १. ४९. विघटयत छूटी पाडो
विहत्तियाउ १.४३. विभक्तयः विभक्तिओ
विहसेप्पिणु १. १७९. विहस्य
विहीसणु १. १२७. विभीषणः
°वीढु १. १२०. पृष्ठम्
वीस १. ४४. विंशतिः
वीसहत्थु १ १२५. विंशतिहस्तः
वुच्चइ १. १२९. उच्यते
वुत्तु १. १७९; वुत्तउ २. ९१. उक्तम्
वेंतरेंउ १. १०३. व्यन्तर्यः व्यन्तर नामे देवोनी पत्नीओ
वेल्लि २. ४९. हार, पंक्ति, सरखावो सि. हे. ८. १. ५८; Pischel §107; तेमज वल्ला=लता दे. ना. मा. ७. ९४. गू. वेल
व्व १. १५१. इव जुओ व
स° १. १६३. स्व
सइ २. ७ सइं १. १८८; २. ४५; सइँ २. ९७. स्वयम्
सइ १. १५१. शची
सउ° २. ८१. शत
सउण° १. १४ शकुन पंखी
सक्कय° १. २९. संस्कृत
सक्कु २. ९. शक्रः
सक्केय° २. १७. साकेत
°संघाएं २. १११. संघातेन
संक २. ९४. शङ्का
संचलिउ २. १३. संचलितः
संचारेवि २. ६७. संचार्य
सच्छरु २.७०. सह+अप्सरम् अप्सराओ सहित
संझा १. १४७. संध्या
सणवइ २.२५. सह+नवतिः नेवुंथी वधारे
सणिच्छरु २. २८. शनिश्चरः
सणेहिं २. ११०. स्नेहेन
°संडु १. ६९. षंढ क्यारो

°**संठिउ** १. १०७. संस्थितः
सण्णिह° २. १० संनिभ; –**सण्णिहेण** २. १६७. संनिभेन
सत्त १. ४३. सप्त
सत्त° २. ९६. सत्त्व
°**सत्थउ** २. ११४. सार्थः
°**सत्थु** २. ९८. शास्त्रम्
संथुव्वमाणु १. ९०. संस्तूयमानः
संधिए १. ४२. सन्धौ संधि ઉપર
सपरिवारु १. १६१. सपरिवारः
समउ २. ११५. समम् સાથે
समणु १. १२६. समनाः મનવાળો, અભિલાષાવાળો
°**समत्थें** २. ४५. समर्थेन
समप्पइ २. ४०. समर्पयति
समय २. १३०. समयाः = सिद्धान्ताः
समसरणु १. ८४. समवसरणम्
***समाणीजंतएण** १. ३९. सि. हे ८. ४. ११०. समाणइ=भुनक्ति; सि. हे. ८. ४. १४२. समाणइ=समाप्नोति. પરંતુ: सन्मान्य..नेन 'સન્માનિત થયેલાથી' એ અર્થ સયુક્તિક છે.
समाणु २. ११०. समानम्=सह
समुट्ठिउ १.९८६; **समुट्ठिय** २. ६. समुत्थितः –**समुट्ठिय** २.१२४. समुत्थिता
समुज्जलु १. १६४. समुज्ज्वलम्
सम्मइवंतउ १. १३९. सन्मतिवान्
संपत्तउ २. १५९. संप्राप्तः
संभरहि १. ५४. संस्मरसि
संभासिउं २. ४७. संभासितं પ્રકાશિત કર્યું; શોભાવ્યું
संमज्जणु २. १६५. संमार्जनम्
सरगय° २. ३५. स्वरगत
सरि° १. ३२. सरित्
सरिसउ १. ४०. सदृशः
°**सरु** २. १६९. स्वरः

संवच्छरु २. २८. संवत्सरः
संवाहइ १. १६६. संवाहयति શરીર ચાંપે છે
ससहरु १. ७६; २. २६. शशधरः ચન્દ્ર
ससि २. १११. शशी
ससिकंत° १. ६९. शशिकान्त ચન્દ્રકાન્ત નામે, પત્થર જે ચન્દ્રના કિરણોથી દ્રવે છે
संसउ २. १३७. संशयः
संसारारापं १. ३४. संसार+अरागेण સંસાર ઉપર વિરક્તિને લીધે
सहरसेण २. ४४. सहर्षेण
सहस° १. १३५. सहस्र
सहसक्खु १. ८१. सहस्राक्षः; –**सहसक्खें** २. १७; २.५४. सहस्राक्षेण
सहाउ १.८०, १.८८. स्वभावः;–**सहावें** १. ११६. स्वभावेन
सहास° २. ३. सहस्र
सहु १. १६३; २. ७४. सह
सहोयरेण १. १२३. सहोदरेण
साउ १. १३० सावु=सव्वु=सर्वः
सामाणभास १. ८९. सामान्यभाषा
सायरु १. ७९. सागरः
सार° १. ६९. सुन्दर°
साहिउ २. १६०. कथितम्; **साहियं** १. १९०. कथितम्; सि. हे. ८. ४. २. साहइ = कथयति
सित्त° २. १०. सिक्त
सिद्धत्थु २. १०५. सिद्धार्थः સિદ્ધાર્થ નામનો બગીચો
सिय° २. ८०. श्री°
सियसेविउ २. ८०. श्रीसेविताः
सिरि १. ६४. शिरसि;–**सिरें** २. १७२. शिरसा
सिरि° १. १६०. श्री
सिविआ २. १०४. शिबिका

°सिहिहे २. ११३. शिखिनः=अग्निनो
सीउण्हहो २. ११६. शीतोष्णयोः
सीलु २. ८७. शीलम्
***सीसइ** १. १७८. कथयति सि. हे. ८. ४. २.
सुअण्णइं २. १५७. सुवर्णानि
सुज्झइ १. १२२. शुध्यति
सुण्णउं २. १०३. शून्यः
सुत्तु १. ४१. सूत्रम् व्याकरणनां सूत्रो
सुपरिट्ठियाउ १. ५७. सुपरिस्थिताः
सुय° १. ५७. शुक°
सुयइ १. १२६. स्वपिति
सुयवंतउ १. १३९. श्रुतवान्
सुविण° १. १६७. स्वप्न°
***सुविहाणइ** १. १७८. सुविभानके=सुप्रभाते दे. ना. मा. ७. ९०. विहाणो =प्रभातम्.
सुव्वइ १. ११७. श्रूयते
सुहणिलए १. १०८. सुखनिलये
सुहासुह° १. ५. शुभाशुभ°
सूरि° २. ६९. सूरेण सूर्ये
सूलग्ग° १. ६७. शूलाग्र° अणीदार भालानी टोच
सेअंसें २. १६०. श्रेयांसेन
*** °सेढिहिं** २. १५३; **सेढिहिं** २. १४८. **सेढिहि** २. १५३. श्रेण्याम्
सेण्णि १. १२२. सैन्ये
सेहरु १. ६४. शेखरः
सो १. ८२. सः
सोत्त° २. १०. स्रोतस्
°सोमए २. १८. सौम्यायाः
सोलहि २. ३६.=सोलह-षोडश
°सोहिलं १. १. सोह+इल्ल=शोभा+इल्ल (तद्धित) शोभावाळुं
***हक्कारा** २. १०३. आह्वानम्
हत्थुत्थलिउ १. ५२; २. १५२. हस्त+उत्स्थलायितम्। હાથમાંથી ઊથલી પડેલું; હાથમાંથી સરેલું. સરખાવો દે. ના. મા. ટીકા उत्थलियं उन्मुखगतमित्यन्ये।
हय° २. ५४. हृत અથવા हत
हयसरीरु १. ७९. हतशरीरः
हय २. १६६. हयः
हरिसिय° १. १००. हर्षित
हवंतु २. १०१. भवन्तु
°हियत्तणु २. ८६. हृदयत्वम्
हिरी १. १६०. ह्री
हुअवहेण २. ४३. हुतवहेन
होउ २. ९६. भवतु; -**होंतेण** २. १०१. भवता હોતાં; -**होसइ** १. १७९. भविष्यति; -**होहु** २. १४८. भवथ



कवि शामळनी सर्वोत्तम कृति

लेे० श्रीयुत प्रेमशंकर ह. भट्ट. एम्. ए. भारतीय विद्या भवन

*

શામળે આશરે છવીશ પુસ્તકો, વર્ણનાત્મક અને બોધાત્મક સ્વરૂપે લખ્યાં છે. એની 'મદનમોહના', 'નંદબત્રીશી', 'પદ્માવતીની વાર્તા', 'વિદ્યાવિલાસિની', અથવા 'વિનેચટની વાર્તા', 'વિધાતાની વાર્તા', 'ભદ્રાભામિની', 'સુડાબહોતરી', 'વૈતાલપચ્ચીસી' 'સિંહાસન બત્રીસી' વગેરે કૃતિઓ વર્ણનાત્મક વાર્તાઓ છે: જ્યારે 'શિવપુરાણ મહાત્મ્ય' 'રેવાખંડ', 'અંગદવિષ્ટિ', 'રાવણમંદોદરી સંવાદ', 'રણછોડજીના શલોકા', 'કૃષ્ણજન્મનો ગરબો' વગેરે બોધાત્મક (diductic) પ્રકારની કૃતિઓ છે. એ બધામાં એની 'મદનમોહના'નામક કથાત્મક વાર્તા સર્વોત્તમ ગણાય છે. થોડાં વર્ષો અગાઉ તો કોઈ કોઈ વિવેચકો, 'આપણા સાહિત્યમાં તદ્દન અવનવી લાગે તેવી કેટલીક વસ્તુઓ એના કાવ્યોમાં સર્વત્ર છૂટે હાથે વેરાયેલી પડી છે; અને પોતાની પાસે રહેલી વસ્તુ-સામગ્રીને તે એટલી અદ્ભુત મૌલિકતાથી ઉપયોગમાં લે છે કે એક તરફથી તે સ્થાનિક લોકમાનસને અનુરૂપ બની રહે છે, અને સાથે સાથે જ તેના કલેવરમાં ક્રાન્તિની ચિનગારી સળગાવે છે'[1] કહીને, ગુજરાતના તત્કાલીન સાહિત્યમાં એણે અદ્ભુતતા અને કૌતુકપ્રિય (Romantic) કલાનો નવો પ્રવાહ ઉમેર્યો જાણી એના ઉપર પ્રશંસાની અખંડ અર્ધ્યધારા ઢોળતા. પરંતુ આજે કાળબળના આઘાતો સહીને એ અભિપ્રાય સ્થિર રહી શક્યો નથી. માત્ર શામળ માટે જ નહિ; પણ સમગ્ર મધ્ય-કાલીન સાહિત્ય માટે, આજથી અર્ધા શતક પહેલાં બંધાયલો અભિપ્રાય, નવાં નવાં પુસ્તકો ખાસ કરીને જૈન કવિઓના અપ્રગટ પુસ્તકો-પ્રાપ્ત થવાથી, પરિવર્તન પામતો ગયો છે. દિ. બા. શ્રી. કૃષ્ણલાલ ઝવેરી કહે છે તેમ 'જુના સાહિત્ય સંબંધે હાલનો જમાનો અનિશ્ચિતપણાનો – Transitional period – નો છે'[2]. જ્યાં સમગ્ર મધ્યકાલીન સાહિત્ય કે આપણા આદિ કવિ મનાતા નરસિંહ મહેતાને સમય, એનું સાહિત્ય, એ વેળાની પરિસ્થિતિ વગેરે પરત્વે બંધાયેલાં અભિપ્રાયો અનિશ્ચિત અને અસ્થિર હોય ત્યાં, શામળ કે એની કૃતિઓ પરત્વેનો કોઈ એક વિવેચકનો અભિપ્રાય અંતિમ કે નિશ્ચિત ન હોઈ શકે એ પણ એટલુંજ સ્પષ્ટ અને સ્વાભાવિક છે

પણ શામળની મૌલિકતા કે અપૂર્વતા માટે, ગોવર્ધનરામભાઈ જેવા વિવેચકો જ ગૌરવ અનુભવે છે ને 'એના ક્ષેત્રમાં એ એકલો છે, એણે કોઇનું અનુકરણ કર્યું નથી અને એને માર્ગે જનાર કોઈ નીકળી શક્યો નથી' એમ કહે છે એમ નથી: શામળ પોતે પણ પોતાની આ અપૂર્વતા માટે એટલો જ મગરૂર છે: ને મૌલિકતા કે અપૂર્વતા જેનામાં ન હોય તેના પ્રત્યે એણે પ્રયત્નપૂર્વક તિરસ્કાર કેળવ્યો હોય તેમ, પ્રેમાનંદ પ્રત્યે 'કથ્યું કથે તે શાનો કવિ , શીખી વાત તે શાની નવી?' કહી પેલી પ્રખ્યાત ઉપહાસ પંક્તિઓ ઉચ્ચારી પ્રહાર કરે છે: –

---

૧ ગોવર્ધનરામ: *Classical Poets of Gujarat* p. 56.

૨ મધ્યકાલીન સાહિત્ય. પૃ. ૧૩૦

ઘર ઘર રાગ તાણું નહિં, પુત્ર ન મુજ ગુણ ગાય,
રાજદરબારે રઝળવું, મેળવી નથી પસાય.
ભાટ બ્રાહ્મણ ને ભાંડવા, લાંબી મૂકી પોક,
રીઝી ભલા ભલા કહે, તેથી થાયે શોક.

પરંતુ એણે પોતેજ એની બધી વાર્તાઓનું વસ્તુ સંસ્કૃત કે પૂર્વે થયેલાં જૈનકવિઓ પરથી, હિંદી કે વ્રજભાષમાંથી, અને એ સમયમાં પ્રચલિત એવી દંતકથાઓમાંથી લીધું છે એ હકીકતથી હવે તો સહુ કોઈ પરિચિત છે જ.[3] અને 'રાજદરબારે રઝળવું, મેળવી નથી પસાય' એવો પોતાને માટે એ જે દાવો નોંધાવે છે એ પરત્વે આપણે એણે એના આશ્રયદાતા 'ભૂપતિ બીજો ભોજ' જેવા કણબી રખીદાસ વિષે કહેલી પંક્તિઓ સાદર અર્પણ કરી શકીએ છીએ.

અને શામળની આવી દાંભિક જાચક વૃત્તિ માટે પ્રેમાનંદ પુત્ર વલ્લભ પણ, એક સ્થળે પોતાની ઉક્તિને કટાક્ષનો પ્રાઓ દઈ, તેની મશ્કરી કરી લે છેઃ–

રખીદાસ રાજસ વડો, પ્રીછે સઘળી પેર,
ઘણે હેતે તેડાવિયો, કવિ શામળ નિજ ઘેર.
ખાન પાન શુભ વિધનાં, અમૃત મેવ આહાર,
પૃથવી કરી પસાયતે, હેતે રોપી હાર.[4]

---

3 આ માટે જુદા જુદા લેખકોનો અભિપ્રાય જુઓઃ–

(अ) 'એણે સસ્કૃત વાર્તા સાહિત્યનો ઉપયોગ કર્યો છે. 'વૈતાલપચીશી' તો કથાસરિત્સાગરમાંથી ઉતારી છે. અને રેવાખંડ (સ્કંદપુરાણ), શિવપુરાણ વગેરે ગ્રંથો સંસ્કૃત પુરાણો પરથી અને રાવણમંદો-દરી સંવાદ, અંગદવિષ્ટિ વગેરે રામાયણ ઉપરથી રચ્યાં છે. બત્રીશ પુતળીની વાર્તા અને સુડા બહોતરી (સિંહાસન દ્વાત્રિંશિકા અને શુક સપ્તતિ) પણ શામળ પ્હેલાંથી સંસ્કૃતમા મળે છે'.

શ્રી. દુર્ગાશંકર કે. શાસ્ત્રી. મધ્યકાલીન સાહિત્ય–સંસ્કૃત સાહિત્યનાં આંદોલનો–પૃ. ૬૫

(ब) 'એટલું તો ખરૂં કે તેની (શામળની) પ્રેરણાનું પ્રભવસ્થાન વેદપુરાણાદિ પ્રાચીન સસ્કૃતિના અવશેષો કરતાં એકાદ અંશે જ ઉતરતા એવા હિંદી ને વ્રજભાષાના સાહિત્યભંડારમાં હતુ...... એની આલમમશહુર વાર્તા છેક સ્વતઃ કલ્પિત નહિ. પણ હિંદી ભાષાઓની વાર્તાઓને આધારે યોજેલી માલુમ પડે છે.'

શ્રી. વિજયરાય ક. વૈદ્ય. મધ્યકાલીન સાહિત્ય પૃ. ૩૧

(क) 'આ લોકકથા સાહિત્ય જૈનો મૂળથી ખેડતા આવ્યા છે. ...... આ પરથી અઢારમા શતકમાં થયેલ શામળ ભટ્ટ લોકકથાનો આદિપ્રવર્તક છે એમ હવે નહિ કહી શકાય'

શ્રી. મોહનલાલ દ. દેસાઈ. મધ્યકાલીન સાહિત્ય પૃ. ૧૪૦

(ड) 'Samal at one time was appraised as a great writer of original fiction and a peer of Premanand; but materials wich are now available necessitate a reestimate of his works ...... He took all his stories from early gujarati fiction.'

–K. M. Munshi. Guja. and its Lit. p. 203

૪ –રખીદાસ વિષે શામળકૃત દોહા.

એવો જોગ જોઇ એક, બ્રાહ્મણ કે ભાટ આવ્યો,
ગુણ ગાવા લાગ્યો ઝટ, કવિતા નાખી કરી.
શિબિ સમ દાનેશ્વરી, નૃપ અમે ટેક રાખી,
દા કનેથી દાન લેવું, ખલું લેઉં ના જરી.[૫]

વસ્તુ–વિધાન

પરંતુ એ પ્રશ્ન બાજુએ મૂકી, આપણે શામળની વાર્તાઓની વસ્તુ વિધાનની કલા જોઇએ. 'મદન મોહના' એની ઉત્તમ વાર્તા ગણાતી હોવા છતાં, એમાં એની બીજી વાર્તાઓથી–વાર્તા તત્ત્વમાં તો– ખાસ જૂદી તરી આવે એવી વિશિષ્ટતા નથી. નાયક અને નાયિકાની પ્રથમ દૃષ્ટાદૃષ્ટ મળે છે ને મોહના મદનના પ્રેમમાં પડે છે એ આ વાર્તાની વસ્તુનું બીજ છે. રાજકુંવરી મોહનાને શિક્ષણ આપવા એક પંડિતને રોકવામા આવે છે ને બન્ને વચ્ચે 'પડદો બાંધ્યો પટકૂળનો, કોને ન દેખે કોય': મોહનાના શિક્ષણ માટે પંડિતને રોકવો વગેરે શરૂઆતનો ભાગ સંસ્કૃત बिल्हण काव्य–જેનું ગુજરાતી ભાષાંતર જ્ઞાનાચાર્યે ઘણા ભાગે સોળમા સૈકામાં કર્યું છે, ને એનું બીજું ભાષાંતર સં. ૧૫૫૨ માં જૈન કવિ સારંગે કર્યું છે–ને હૂબહૂ મળતો આવે છે. પંડિત અને રાજકુંવરી વચ્ચે વિદ્યા સંબધી એક સમશ્યામાં તકરાર થાય છે ને બરાબર તે જ સમયે પ્રધાન પુત્ર મદન આવી ચઢે છે. રાજકુંવરી તેના પર મોહિત થાય છે. પંડિત બન્ને વચ્ચે 'ગાંધર્વ વિવાહ' કરી આપે છે. રાજાને (એટલે કુંવરીના પિતાને) ખબર પડતાં

મોઢું નવ દેખાડશો, જાવ ગમે મન જ્યાંય,
રે'શો માં તમો રોખમાં, મારી અવનિ માંય,

કહી ત્રણેને હદપાર કરે છે. મોહના પુરુષવેષમાં મદન સાથે જાય છે: પણ વચમાં ગુણકાના પંઝામાં ફસાય છે ને માંડ માંડ છૂટે છે: બળતા નાગને બચાવવાથી પાંચ ગુણવાળો મણિ પ્રાપ્ત કરે છે: પુરુષવેશમાં જ તે મણિના જોરે બીજી રાજકુંવરીઓ પરણે છે; ને છેવટ મદનને શોધી કાઢવા એક દેરામાં પૂતળીઓ મૂકાવે છે ને એ પ્રમાણે છેવટ મોહનાના પિતા મદનને 'પ્રધાનસુત તું પ્રાક્રમી, જોગ તું છે જામાત્ર' કહી આવકારે છે. મોહના પુરુષવેશે પોતાના પતિ માટે સ્ત્રીઓ પરણી લાવે છે ન પતિને શોધવા દેરામાં પૂતળીઓ મૂકાવે છે વગેરે પ્રસંગો, પ્રેમાનંદના એક શિષ્ય વીરજીએ સં. ૧૭૨૫ મા રચેલ 'કામાવતીની વાર્તા'ના એવા જ પ્રસંગો સાથે ખૂબ મળતાં આવે છે. વાર્તાનું વસ્તુ–જે શામળની સર્વોત્તમ કૃતિ છે ને કવિ જેની 'કડી કડી રસાળ' ગણે છે તે સંક્ષિપ્તમાં ઉપર પ્રમાણે છે. પરંતુ વાર્તાની અદર હિતોપદેશ, કાદંબરી, એરેબિયન નાઇટ્સ વગેરેના માફક આવતી આંતરવાર્તાઓ; દૃષ્ટાંત લેખે મૂકાયેલ આડકથાઓ, કલ્પનાના ચમત્કારથી પ્રકાશિત સમશ્યાઓ, સાંસારિક ડહાપણના નમૂનાઓ જેવા છપ્પાઓ મોટો ભાગ રોકે છે. વસ્તુ–વિધાનની કારીગીરી પર આથી ઘણાં વિકૃત ટાંકા ટોચા પડે છે. આપણે એ પર દૃષ્ટિપાત કરીએ

૫ વલ્લભકૃત કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાન, છંદ ૨૦૨–પૃ. ૧૨૩

તે પહેલાં, શ્રી. ડોલરરાય ર. માંકડ વાર્તાની વસ્તુમાં અસંભવિતતા ને અસંગતતાના જે દોષો બતાવે છે તે જોઈ લઇએ:[૬]–

૧, અદેખો રાજા દીકરીને જુવાનીમાં ભણાવે? ભણવાની વય જ નાની.

૨, પ્રધાનપુત્રને ત્યાં આવવાની શી જરૂર?

૩, છાનાં પરણવું સારું?

શ્રી. ડોલરરાય ર. માંકડના આ પ્રશ્નોનું નિરાકરણ જોઈતું હોય તો આપણને મળે છે ખરૂં. એ રાજા અદેખો હતો તે સાચું: પણ તે પોતાની પુત્રી માટે 'ઘર જમાઈ કરી રાખીએ' એવો વર શોધતો હતો: ને રાજકન્યાને ભણાવવા માટે 'પુર પારખો' પ્રધાન જ સલાહ આપે છે–'પંડિત એક આવ્યો બારણે, મૂકો એને ભણવા કારણે'–ને આ ઉપરાંત રાજા, મોહનાને તથા પંડિતને ઊંધું સમજાવીને 'કોને ન દેખે કોય' તેવા સાવચેતીનાં ડગલાં તો ભરે છે જ. પ્રધાનપુત્ર પંડિત અને મોહના વચ્ચે વાદવિવાદ ચાલતો હતો ત્યારે જ કેમ આવે છે એના ઉત્તરમાં તો એ અકસ્માત કૃત્રિમ ન લાગવો જોઇએ. એમ તો પ્રખ્યાત ઓથેલો નાટકમાં, નાયિકા ડેસ્ડીમોના, અમુક જ સમયે તેને ઓથેલોએ આપેલ રૂમાલ ગુમાવી બેસે છે: શાકુંતલમાં શકુંતલા કે શકુન્તલાની સખીઓ પહેલેથી દુષ્યન્તને વીંટી નથી મોકલતી અને અમુક જ સમયે શચીતીર્થ આગળ ખોઈ નાખે છે એનો શો ખુલાસો આપણે આગળ કરી શકીએ? 'રાઈના પર્વતનું' વસ્તુ પણ એક જ અકસ્માત પર ટકી રહ્યું છે તેનું કેમ? અકસ્માત કૃત્રિમ ન લાગે તો, મને લાગે છે કે. એની સામે આપણે વાંધો હોવો જોઇએ નહિં. છાના પરણવા સંબંધે, અલબત્ત તે સારૂં નથી; પણ અહીં તો મોહના એની માતાને 'જો કો' તો સાચું કહું, તુજ મુજ વચ્ચે ઇશ' કહી શ્રી. ડોલરરાય માંકડ કહે છે તેમ 'પાપછૂટી' વાત કહી દે છે: અને વધુમાં મોહનાને 'પર મુલક તજી ચાલશું, (ત્યારે) વીરો વર કરેશ' કહી દૃઢ મનોવૃત્તિ ધારણ કરતી, કવિએ બતાવી છે તે આપણે નોંધવું ઘટે છે.

શામળની વાર્તાના વસ્તુ–વિધાનને પાંખું બનાવનાર એક મુખ્ય કારણ, આપણે ઉપર કહ્યું તેમ, તેની આડકથાઓ છે. 'મદનમોહના'માં બધાં મળીને છએક દૃષ્ટાંતો આવે છે: આ દૃષ્ટાંતો પોતે એક વાર્તા લેખે સુંદર કહી શકીએ તેવી વસ્તુરચનાવાળા હોય છે; પણ અહીં તો મુખ્ય વાર્તાપ્રવાહને રૂંધે છે. મુખ્ય વસ્તુનો તાંતણો આ આડ કથાઓના જાળામાં ગૂંચાઈ જાય છે. ચંદ્રાવતીથી મદન અને મોહના નીકળે છે ત્યારે એમને વાટમાં શકુન થાય છે; ને તે પરથી સારાં નરસાં શુકનનું, કવિ લાંબુ વર્ણન કરે છે. આ પ્રકારના વર્ણનો વસ્તુમાં અસમપ્રમાણતાનો દોષ આણે છે ને એમ વસ્તુવિધાન શિથિલ બને છે. શામળની મુખ્ય વિશિષ્ટતા શ્રી. ડોલરરાય કહે છે તેમ તેની સરળતા છે. અખાની જેમ એ પણ ભાષાના બાહ્ય અંગ પર ભાર મૂકતો નથી, પણ 'સાદી ભાષા સાદી કડી, સાદી વાત વિવેક' કહે છે. એનું સંસ્કૃત જ્ઞાન પણ અલ્પ છે. એ પોતે જ કહે છે:–

૬ પ્રોફેસર શ્રી. ડોલરરાય ર. માંકડનો લેખ 'શામળની કૃતિઓ'–કૌમુદી ત્રૈમાસિક પુ. ૨. અં ૧

શામળ કહે સંસ્કૃતમાં, સમજાય નહિં સમર્થ,
વિવેક નહિ કો વેદમાં, અક્કલ ન આવે અર્થ.[૭]

ને તે પ્રમાણે એની ભાષા, અલંકારના ઠાઠઠારા વિનાની ને સરળ, વાર્તાની વસ્તુ સરળ, તેની લખાવટ સરળ, વાર્તાપ્રવાહ આડોઅવળો અટવાતો છતાં છેવટ સાદો સીધો ને મોટે અંશે એકધારી બની જતી કેડીમાં વહે તેવો હોય છે. એ વાર્તારસ પણ સામાન્ય જનતાને અસર કરે તેવો, ગમે તેવો. એમાં ઊર્મિના તરવરાટ કે લાગણીના ઘેરાં રંગો નહિ; અંતઃક્ષોભ કે મનોમંથનના ધબકારા પણ નહિ. શામળ નાયિકાનું વર્ણન કરે તો પણ નોંધ જેવું, એકધારૂં (Stereotyped) વર્ણન જ. 'મદનમોહના'માં નાયિકા મોહનાનું વર્ણનઃ–

રૂપે રંભા સરીખડી, સતીમાંય સરદાર,
હામ કામ મૃગલોચની, દીલ ઘણી દાતાર.
નખશિખ શોભા નિરખતાં, અંબુજ દલશાં નેણ,
હંસગતિ ગજગામિની, અમૃતવદને વેણ.

એ પંક્તિઓમાં પ્રેમાનંદની

ભૂપ મેં દીઠી ગર્વઘેલડી, સખી બે મધ્ય ઉભી અલબેલડી,
કદળી સ્થંભ જુગલ સાહેલડી, વચ્ચે વૈદર્ભી કનકની વેલડી.

એ પંક્તિઓમાં જણાય છે તેવી, શામળમાં, મનુષ્ય અને પ્રકૃતિ વચ્ચેના એક અને અવિનાભાવ સંબંધ દર્શાવતી તાદૃશતા નથી.

રંગદર્શી વાતાવરણ

પણ શામળમાં છે તે પ્રેમાનંદમાં નથી. શ્રી. ક. મા. મુનશી જેને 'romantic atomsphere of early fiction, and thereby providing a valuable literature of escape from the morbid influences of his times'[૯] કહે છે તે શામળમાં ઘણા મોટા પ્રમાણમાં છે. વૈતાળની સહાયથી અંધાર પછેડો ઓઢીને, હારૂન અલ રશીદ પેઠે ફરતો, એની અનેક વાર્તાઓનો નાયક 'ઉજેણ નગરી'નો રાજા વીર વિક્રમ; 'મદનમોહના'માં બને છે તેમ સ્ત્રી એ 'ઘડા જેવડું રત્ન' હોવા છતાં પુરુષ વેશે ફરતી મોહના; ગુણકાના પંજામાંથી એનું છટકવું; રાજપુત્રીઓ પરણવી; મદનને શોધી કાઢવો; 'ભદ્રાભામની'માં હંસ પીઠ પર નાયક કસ્તુરને બેસાડી ઊડે છે ને ભદ્રા પાસે લઈ જાય છે તે પ્રસંગ; કે તે જ વાર્તામાં મૃત દેહ જીવતો થાય છે તે વર્ણન; 'પંચદંડ'ની વાર્તામાં દેવદમની ઘાંચણ વિક્રમ રાજાની 'અસ્વારી' આગળ દંડવતી ત્રણ રેખા દોરી 'ન ખોદી ખોદાય, ન પાડી પડે' એવી ભીંત ઉભી કરે છે તે; 'વૈતાલપચ્ચીસી'માં શબ વિધ વિધ કથાઓ કહી સંભળાવે છે તે; અગ્નિ અને સમુદ્રમાંથી વગર દાઝયે અને ભીંજાયે પસાર થવાની વિદ્યા; 'પરકાયા પ્રવેશ'; મનુષ્યને પોપટ બનાવવાની આવડત; ઉડણ દંડ કે ઉડણ પાવડીનો ચમત્કાર; જન્મજન્માંતરની કથાની

---

૭ બૃહત્ કાવ્ય દોહન ભા. ૨ ભદ્રાભામની–પૃ૦ ૪૭૨
૮ પ્રેમાનદ–નળાખ્યાન–કડવું ૧૫ મું
૯ *Guj. and its Lit.* Page 204

યાદદાસ્ત; મૃત દેહને સજીવન કરવાનો મંત્ર; દેવદેવીઓની આરાધના કરવા કમળપૂજા કરવાનો રિવાજ:—વગેરે પ્રસંગો ને બનાવો રંગદર્શી વાતાવરણનું પટકૂળ વણવામાં તાણાવાણા પેઠે વપરાય છે. રંગદર્શી સાહિત્યની વિશિષ્ટતા પણ એજ છે. એમાં રોજંદા બનાવોનું વર્ણન ન હોય—એમાં તો રોજંદા બનાવોના ઊંબરેથી આંખને ઉઠાવીને કલ્પનાતીત ક્ષેત્રો ખૂંદવાના હોય, વાતાવરણમાં માદકતા હોય, સૌન્દર્ય અને રંગને એમાં વાણી મળે, સ્વર અને માધુર્યને આકાર મળે, કાંઈક અદીઠું અવનવું, અકલ્પ્યું, અવ્યક્ત, કલાકાર પાસે, એના ટાંકણે ટોચાઇ ટોચાઇને ચોક્કસ દેહ અને સ્વરૂપ માંગી રહ્યું હોય અને તલસાટનો કંપ અનુભવી રહ્યું હોય......આ બધું—જેને શ્રી. મુનશી 'Literature of escape' કહે છે તે—શામળમાં પુષ્કળ પ્રમાણમાં મળી રહે છે.[१०]

પાત્રાલેખન

'મદનમોહના'માં મુખ્ય પાત્રો તો બે જ છે: મદન અને મોહના. પણ પાત્રાલેખનની કલામાં શામળ, પ્રેમાનંદની સરખામણીમાં ક્યાંય ઉતરતો છે. પ્રસંગો પાત્રને ઘડે, પાત્રો પ્રસંગોને ઘડે ને એમ પાત્રનો ક્રમિક વિકાસ સધાતો આવે; પાત્રોના હૃદયમાં ભાવ સંઘર્ષણ જાગે, મનોમંથન ઊમટે: એ બધું શામળને મન અજાણી વસ્તુ છે. છતાં શ્રી દેશાઈ એના પાત્રાલેખનની કલા માટે 'પાત્રોના અંતરમાં ઉતરી અંતરની ગુંચો ઉકેલવામાં અને ગુણો પારખવામાં શામળ પ્રેમાનંદથી ચડે તેમ છે'[११] કહે છે તે મારે મન તો આશ્ચર્યનો જ વિષય છે. શામળને વાંચતાં એનું પાત્રાલેખન અને વસ્તુવિધાન બન્ને ઝાંખું લાગે છે. અલબત શામળ સંસારનો જ્ઞાતા અને માનવ સ્વભાવથી પૂરેપૂરો પરિચિત હતો. અને તે નેગે 'નંદબત્રીસી'માં કામાતુર રાજાને પ્રતિહારી લાંચ લઇને પ્રવેશ કરાવે છે તે, કે 'અંગદવિષ્ટિ'માં અંગદ પાસે લંકાનો પ્રતિહારી 'મુજ આપે છે મુજને, વાત પહોંચાડું હેક' કહી રુશ્વત માંગે છે તે પ્રસંગદ્વારા અને 'રાવણમંદોદરી સંવાદ'માં સીતા રામને પાછી સ્વાધીન કરવી કે નહિ તે બાબત પરત્વે જુદા જુદા વર્ણના વૈશ્ય, વિપ્ર, દરજી, ઘાંચી, કણબી, વૈદ્ય વગેરે પ્રતિનિધિઓના મોંમા જે ઉક્તિઓ મૂકી છે તે દ્વારા અચ્છી રીતે બતાવ્યું છે. એ પ્રસંગો ને ઉક્તિઓથી, શામળનું માનવસ્વભાવની નબળાઈઓ ને મર્યાદા વગેરેનું ઊંડુ જ્ઞાન છતું થાય છે; પરંતુ તેને પોતાની કૃતિઓ માટે પાત્રનિરૂપણની દૃષ્ટિ કે પાત્રવિકાસની કલા લાધી નથી તે તો ચોક્કસ. પાત્રોમાં સળંગ સાતત્ય (Consistency) હોવું જોઇએ તે પણ તે જાળવતો નથી. 'દમયંતી નળથી દશ ગણી, માધવા નળથી મેર' જેવા મદનને, ગુણકા ભીવરાવે છે ત્યારે એને શામળે જે રીતે વર્તતો વર્ણવ્યો છે તે પાત્રમાં અસંગતતાનો દોષ આણે

१० રંગદર્શી સાહિત્ય પરત્વે પ્રા. લગવી અને કઝામીયા કૃત *A History of Eng. Lit.* માં (પૃ. १०३०) એક સુંદર ટીકા મળે છે તે અહીં નોધવા જેવી છે.—

'The 'wonder' of Romanticists is the enthralling discovery, the progressive lighting-up of an inner horizon, which extends beyond the limits of clear consciousness; it is the perception of objects in the magic garb with which our fresher vision invested them of yore, and which our tired eyes had forgotten.

११ બૃહત્ કાવ્ય દોહન, ભાગ ૮, પ્રસ્તાવના—પૃ. ११

છે. વધુમાં નાયિકાના પાત્ર પાસે નાયક ઘણો ઝાંખો લાગે છે. 'ભદ્રાભામની'ની વાર્તામાં અને 'પદ્માવતી'માં પણ કસ્તુર કે પુષ્પસેનના પાત્રો કરતાં ભદ્રા અને પદ્માવતીનું પાત્રાલેખન વધારે ઉદાત્ત છે. એ રીતે જોઈએ તો રા. ગોવર્ધનરામ કહે છે તેમ 'શામળ ભટ્ટનો સ્ત્રી વર્ગ, પુરુષ વર્ગ કરતાં વિશેષ જાજવલ્યમાન છે. એના ચિત્રપટનો મોટો ભાગ સ્ત્રીઓ જ રોકે છે.'[૧૨] ગુણકાની સંસ્થાને પણ શામળના ગ્રંથોમાં આદરભર્યું સ્થાન છે. નાયક નાયિકાને ગુણકા ક્યારેક મદદરૂપ થાય છે તો ક્યારેક ફસાવે પણ છે. 'પદ્માવતીની વાર્તા'માં નાયિકા પદ્માવતીને ગુણકા ચંદ્રાવળિ મદદ કરે છે; તો 'ભદ્રાભામની'માં ને 'મદનમોહના'માં ગુણકા નાયિકાને ફસાવે છેઃ 'ઉદ્યમકર્મ સંવાદ'માં તો 'ઉદ્યમવાદી કામકળા'નું નાયિકાના પ્રતિષ્ઠિતસ્થાને પ્રસ્થાપન કરે છે; ને એમ શામળ એ સંસ્થાના સારાં નરસાં બન્ને તત્ત્વોનું નિરૂપણ કરે છે. માત્ર ગુણકાની સંસ્થા વિષે જ નહિ, સમગ્ર સ્ત્રીજાતિ વિષે –

જશ જીવ જર સમર્પતાં, તન મન ધન દે હેતઃ
(પણ) પ્રમદા પોતાની નહિ, કબહુક તો જીવ લેતઃ

અને

છે નીચ કોઇજ નારિઓ, સ્વભાવે સઉ નહિ સરખી.

કે

પાકે ધાન સતી (ને) સતે, અર્ણવ રે' મર્જાદ,
સતી આધારે મેદિની, શીદ કરે છે વાદ?

જેવા વિરોધી દૃષ્ટિબિંદુઓ પણ આપણને શામળમાં મળે છે. શામળ દુરાચારી સ્ત્રીઓને પણ મારવાની વિરૂદ્ધ હોય તેમ તેની ઉક્તિ 'સ્ત્રીના વાંક શતસહસ્ર, તોય તેને નવ હણવી' પરથી લાગે છે. દયારામમાં પણ સ્ત્રીઓ વિષેની ભાવના સંબંધેની આવી વિરોધી ભાવવાળી પંક્તિઓ નજરે ચઢે છે.[૧૩] આ બન્ને વિરોધી દૃષ્ટિબિન્દુમાં શામળનો સાચો અભિપ્રાય કયો હશે તે તો કેમ ખબર પડે? પણ શામળ પોતે આ પરત્વે ઉદાસીન હોય; અને ખરૂં દૃષ્ટિબિંદુ તો વાચકની યોગ્યતા અયોગ્યતા પર આધાર રાખે છે તેમ સૂચવતો હોય તે પ્રમાણે 'સૂડા બોતેરી'ના ઉપસંહારમાં તે લખે છેઃ -

પાપીને પથ્થર જડે, હરિજનને હીરો હાથ.
સતવાદીને સોનું જડે, કર્મહીણને કથીર.

છપ્પા અને સમસ્યાઓ

શામળની બીજી વાર્તાઓમાં બને છે તેમ 'મદનમોહના'માં પણ છપ્પાઓ અહીં તહીં છુટે હાથે વેરાયલાં છે. આ છપ્પાઓમાંની કેટલીક પંક્તિઓ કહેવતરૂપ બની

---

૧૨ *Classical poets of Gujarat* p. 5?

૧૩ દયારામ સ્ત્રીને એક જગ્યાએ 'દુઃખ દુષ્ટ નરકની ખાણ' કહે છે ને આગળ ઉપર લખે છે –

તરવાર સરખી તરૂણી, શણગારી દીસે સારી.
ઉપર અનુપમ રૂપ મનોહર, અંતરમાં હત્યારી
પચરંગી પ્રફુલ્લી પુષ્પ સરખી, મોહન નિરખે નારઃ
મસળ્યા પછી ગ્લાનિ ઉપજે, ચતુર ચિત્ત વિચાર.

અને એ જ પંક્તિઓ ઉચ્ચારનાર દયારામની સ્ત્રીઓ પાછળની ઘેલછા એના કૃષ્ણગોપીના શૃંગારકાવ્યોમાં બતાવી છે તે જાણીતી છે.

૧.૩.૧૧.

ગઈ છેઃ કેટલીક પંક્તિઓ તો સંસારના ગાઢ અરણ્યમાં રોશનીનું કામ સારે તેવી હોય છે. 'જીવતો નર ભદ્રા પામશે' 'વેળુમાં વાણ ક્યમ ખેડાય?'; 'ટાળી તો ટળતી નથી ફુડી ભૂડી રેખ'; 'પેટ કરાવે વેઠ'; 'લક્ષ્મી તેને લીલા લ્હેર'; 'ગરજે ગોથાં ખાય'; 'ગાજ્યા મેહ વરસે નહિ'; અને

ઉજ્જડ ખેડાં ફરી વસે, નિર્ધનિયાં ધન હોય,
ગયાં જોબન આવે નહિ; મૂવા ન જીવે કોય;

વગેરે અનેક ઉક્તિઓ ઉપરોક્ત વિધાનના સબળ ઉદાહરણ લેખે રજૂ કરી શકાય.

શામળના છપ્પાઓમાં બોધ અને નીતિ મોટો ભાગ રોકે છે તે આપણે ઉપર જોયું. હવે એ છપ્પાઓનો, અખાના છપ્પા સાથે એને સરખાવીને, એક બીજીરીતે વિચાર કરીએ. શામળના છપ્પાની રચના વૃત્તવિચાર (metrical scheme) પ્રમાણે - પહેલાં ચાર ચરણ કાવ્યમાં (કાવ્ય એક છંદ છે) ને પછી બે દોહરાના – છે; જ્યારે અખો તેના છપ્પા પીંગળશાસ્ત્ર પ્રમાણે નથી લખતોઃ અખાના છપ્પા છ ચરણની ચોપાઇઓ છે ને ક્યારેક ('અખાની વાણી'માં છે તેમ) ચોપાઈની બે પંક્તિને એક સાથે છાપીને, છપ્પામાં છ ને બદલે ત્રણ પંક્તિઓ હોય છે.

છન્દોરચનાએ, એ બન્નેમાં જેમ તફાવત છે તેમ, વસ્તુઘટનાએ પણ બન્નેમાં મોટો તફાવત છે. અખાના છપ્પામાં જીવનની સમીક્ષા મળે છે; ને તે જીવનના વધારે ઉંડા રહસ્યોમાંથી ધાર્મિક જીવન તરફ વળે છેઃ ત્યારે શામળ જીવનની ઉપલી સપાટીને જ સ્પર્શતો લાગે છે. અખામાં ધાર્મિક વલણને લીધે, સમાજના દૂષણો પ્રતિ વેધક કટાક્ષ વૃત્તિ છેઃ જ્યારે શામળ કોઈ કોઈ વખત તટસ્થતા જાળવતો હોય છે – સ્ત્રીઓ વિષેની સારીનરસી બન્ને બાજુ રજૂ કરી છે તે આ વિધાનના ઉદાહરણ લેખે રજૂ કરી શકાય. અખો દુર્ગુણો તરફ સ્વાભાવિક ઘૃણાથી ને ધ્યેયની નિશ્ચિતતાથી (એનું ધ્યેય વેદાન્ત હતું) ઘણીવાર પક્ષપાતી બની જાય છે ને તેની ઉક્તિ ઘણી તીવ્ર બની રહે છે. શામળ અને અખાના છપ્પા વાંચતા એમ પણ પ્રતીત થાય છે કે શામળ સંસારમાં રહી રાચે છેઃ નવલરામભાઈ કહે છે તેમ તે 'વાણિયાનો કવિ' છે; લોકરંજન કરે છે; તે ઉર્મિથી તરવરે છે. કવિ નર્મદાશંકર એની કવિતાનું મૂલ્યાંકન કરે છે તે પ્રમાણે તેની કવિતા 'ગુર્જરી સ્થિતિપ્રદેશમાં એક રંગમંડપ હોયની શું તેવી શોભે છે કે જેમાં ગુજરાતી સ્ત્રીપુરુષો અનીતિ, મૂર્ખાઈ વગેરેનુ હાસ્યરસ નાટક જોઈ અને દ્રષ્ટાંતકથન સાંભળી સુબોધશિક્ષા ગ્રહણ કરે છે'[૧૪] જ્યારે અખો 'જ્ઞાની' છે ને 'એની કવિતા બોધક'[૧૫] છે; એને જીવન પ્રતિ તીવ્ર વૈરાગ્ય અને તિરસ્કાર છે. અને એની કૃતિમાં આ તિરસ્કારની માત્રા કેમ વધારે છે તેનું કારણ રા. અંબાલાલ બુ. જાની કહે છે તે પ્રમાણે 'અખા ભક્તની કૃતિ ઘણે અંશે દોષ પરિહાર અને શુદ્ધિસંપાદનને અર્થે યોજાયલા વિનાશક પક્ષને અનુસરનારી છે ...... વાંછિત ઉચ્ચગ્રાહને પ્રાપ્ત કરવાના પ્રયત્ન સારૂ કવિને દુર્ગમ કંટકમય અરણ્યમાં પ્રયાણ કરવું પડ્યું હતું'[૧૬] તે છે.

---

૧૪ નર્મદનું મંદિર – ગદ્ય વિભાગ, પૃ. ૧૮૮
૧૫ " " પૃ. ૧૮૧
૧૬ અખા ભક્ત અને તેમની કવિતા – બીજી ગુ. સા. પ. રિપોર્ટ પૃ. ૫

બન્નેના છપ્પા ધ્યાનમાં લેતાં એમની કથનશૈલી જીવનના અનુભવથી રંગાયલી ને તેથી વેધક અને સચોટ બનેલી જણાય છે. બન્નેના નિદર્શનો ઘરગથ્થુ અને વ્યવહારમાંથી અપાયલા છે. પરંતુ શામળના દૃષ્ટાન્તો સાદા અને સરળ છે; જ્યારે અખાના દૃષ્ટાંતો ખરબચડા, ગ્રામ્ય ને ક્યારેક અશ્લીલ છતાં બળશાળી છે: રા. અંબાલાલ જાની કહે છે તેમ 'અખા ભક્તે જ્ઞાનવિષય સ્ફુટ અને સરલ કરવા માટે દૃષ્ટાન્તનું તિગ્મ શસ્ત્ર લીધું છે'; પણ એ શસ્ત્ર ઘણીવાર સુરૂચિનો પણ છેદ કરે છે તે આપણે યાદ રાખવું ઘટે છે! શામળની ભાષા સાદી, સરલ, પારદર્શક અને પ્રમાણમાં પાતળી, માંસલ સ્વરૂપ વગરની છે. અખો તો 'સાહિત્યનાં એરણ હથોડો લઇને બેઠેલો' છે અને 'હેની સામે કવિતા દેવી, પોતાના વિલાસ તજીને, દીપ્તિમય આભૂષણો ફેંકી દઇને સાદાં વસ્ત્ર પહેરી, કમ્પમાન દેહથી ઉભી છે'[૧૮] ને અખો પોતે પણ 'ભાષાને શું વળગે ભૂર, જે રણમાં જીતે તે શૂર' એમ જ ઉચ્ચારે છે. એના છપ્પાની ભાષા કઠિન, કર્કશ, સ્નાયુબદ્ધ દેહવાળી, આવેગભરી ને સચોટ છે.

'મદનમોહના'માં મોહના ગુણકાના પંજામાંથી છૂટીને બળતા વનમાંથી 'મૂકી ઢાલ અગનમાં ઠેક, પગ મૂકી પન્નગ'ને બચાવે છે તેમાં, પ્રેમાનંદના નળાખ્યાનમાં નળ કર્કોટગ નાગને બળતો બચાવે છે તેનું આંધળું અને અધકચરૂં અનુકરણ છે તે પણ આપણે નોંધી લેવું ઘટે છે. 'નળાખ્યાન'માં એ બળતા નાગનો પ્રસંગ, આખ્યાનના ઉત્તરાર્ધમાં ચક્રિયારા (Pivot) જેવો પ્રસંગ બની રહે છે; જ્યારે અહીં તો મોહના નાગ પાસેથી મણિ મેળવી કેટલીક રાજકુમારીઓ પરણે છે, જે કથામાં કશો મહત્વનો ભાગ ભજવતું નથી. સમસ્યાઓ પણ ડગલે પગલે નડે છે; ને એ સમસ્યાઓ કેટલીક વખત તો ઘણી સરળ હોય છે, ને સંખ્યામાં પણ ઘણી હોય છે.

આ બધું હોવા છતાં શામળ કવિ છે—મોટો કે નાનો તે જૂદો પ્રશ્ન—; પણ તેના જમાનાનો તે લોકપ્રિય કવિ છે: એની રીતે એ સાચો કવિ છે. તેના વાર્તાકાવ્યમાં રંગદર્શી વાતાવરણના ઘેઘૂર રંગો છે; મસ્ત કલ્પનાના ભવ્ય વીંઝાટ છે; કથનમાં ઝમઝમતી પ્રવાહિતા ને સરળતા છે: બોધક કહેવતો ને છપ્પાઓનું તેમાં ઘટ્ટ વણાટ છે; ચાતુર્ય અને ડહાપણની એમાં ઝીણી ઝીણી મનોરમ નકશી કંડારેલી છે; દુનિયાદારીના ડાવકાં મર્માળાં સૂચનોનાં 'જનમનરંજિત' કરે તેવાં એમાં રંગીન છાંટણાં છે; આજના ગુજરાતના સ્ત્રીજીવનના પાંગરતાં યૌવનનું એમાં દર્શન છે: વાણીના પડિયામાં જાણે આ બધાં કૌતુકપ્રિય તત્ત્વો (romantic elements) ઝીલાયાં, ન ઝીલાયાં, ને છલકાય છે: ને એ જ શામળની વાર્તાની—'મદનમોહના'ની—વિશિષ્ટતા કહો તો વિશિષ્ટતા, ને સફળતા કહો તો સફળતા છે. આટલું હોય પછી કવિ પોતે પણ, બેપરવા બનીને, 'સૂડા બોતેરી'ના ઉપસંહારમાં ઉચ્ચારે છે તે લીટી કેમ ન ઉચ્ચારે ?

"વંદો, નંદો, તજો ભજો, કવિતાને શું કામ ?"

*

---

૧૭ અખા ભક્ત અને તેમની કવિતા—બીજી ગુ. સા. પ. રિપોર્ટ. પૃ. ૧૦

૧૮ નરસિંહરાવ ભો. દિવેટીયા, ગ્રંથ અને ગ્રંથકાર પુ. ૨ પૃ. ૧૭૮

मध्यकालीन गूजरातमां नाटक

लेο श्रीयुत भोगीलाल ज. सांडेसरा

*

'મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં નાટક' એ પરત્વે ચર્ચા કરતાં વિષયનિરૂપણને આપણે ચાર વિભાગોમાં વહેંચી દઈશું: (૧) મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં રચાયેલાં અને ભજવાયેલાં નાટકો અર્થાત્ મધ્યકાલીન ગૂજરાતનું નાટકસાહિત્ય અને તેનું મૂલ્યાંકન (૨) નાટકો અને જનતા, (૩) ભવાઈ, તથા (૪) મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં રંગભૂમિનાં અસ્તિત્વ–અનસ્તિત્વ વિષેની ચર્ચા.

[૧]

ગૂજરાતનું સંસ્કૃત સાહિત્ય તો ઘણા પ્રાચીન કાળથી મળે છે. શ્રીકૃષ્ણના પુત્ર સાંબને નામે ચડેલી 'સાંબપંચાશિકા' પાછળના કાળની કૃતિ માનવામાં આવે તો પણ વલભી રાજ્યકાળથી તો સંસ્કૃત સાહિત્ય સારા પ્રમાણમાં પ્રાપ્ત થાય છે. વલભીપુર પછી ગૂજરાતનું પાટનગર શ્રીમાળ. શ્રીમાળમાં રચાયેલું સંસ્કૃત સાહિત્ય આજે પણ ગૂજરાતને મગરૂર બનાવે એવું છે. પરન્તુ વલભીપુર કે શ્રીમાળમાં લખાયેલું એક નાટક આજે તો આપણને પ્રાપ્ત થતું નથી. અત્યારે મળતાં સાધનો ઉપરથી જ નિર્ણય કરતાં, ગૂજરાતનું પહેલું સંસ્કૃત નાટક કાશ્મીરી કવિ બિલ્હણનું 'કર્ણસુન્દરી' માનવું જોઈએ.† પોતાની માતૃભૂમિ ત્યજીને અનેક દેશમાં ફરતાં ફરતાં બિલ્હણ પાટણમાં કર્ણ સોલંકીના અમાત્ય શાન્તૂ–સંપત્કર–ના આશ્રયે આવીને રહ્યો અને ત્યાં એણે આ નાટક લખ્યું. 'કર્ણસુંદરી'ની નાયિકા કર્ણસુન્દરી વિદ્યાધરી છે. કર્ણરાજા સાથેના તેના પ્રેમપ્રસંગ અને અંતે લગ્નનું આ નાટિકામાં નિરૂપણ છે. નાયિકા કર્ણસુન્દરી તે બીજી કોઈ નહીં, પણ સિદ્ધરાજની માતા અને કર્ણાટકની રાજપુત્રી મયણલ્લા છે. નાટિકાનું વસ્તુ કવિએ કાલિદાસ કૃત 'માલવિકાગ્નિમિત્ર' અને હર્ષકૃત 'રત્નાવલી'ના આધારે જ ઘડી કાઢ્યું છે. અમાત્ય સંપત્કર માત્ર તે મત્રી યૌગંધરાયણનું અનુકરણ છે, અને આ લગ્નસંબંધ વડે કર્ણને ચક્રવર્તી બનાવવાનો તેનો આશય છે. નાટકનો રચનાકાળ સ્પષ્ટ રીતે વિક્રમના બારમા શતકનો પૂર્વાર્ધ છે. શાન્તૂ મહેતાની આજ્ઞાથી પાટણમાં આદિનાથના યાત્રામહોત્સવ વખતે તે ભજવાયેલું, એવો તેની પ્રસ્તાવનામાં ઉલ્લેખ છે.

ત્યારપછી, સિદ્ધરાજની સભામાં દિગમ્બર કુમુદચન્દ્ર અને શ્વેતામ્બર વાદી દેવસૂરિ વચ્ચે થયેલો સોળ દિવસનો વાદવિવાદ, અંતે કુમુદચન્દ્રનો પરાજય, અને પરિણામે દિગમ્બરોનું ગૂજરાતમાંથી ચાલી જવું–એ વિષયનું નાટકરૂપે નિરૂપણ કરતું, સપાદલક્ષના રાજાના આશ્રિત યશશ્ચન્દ્રનું 'મુદ્રિતકુમુદચન્દ્રપ્રકરણ' નાટક આવે છે. સિદ્ધરાજની રાજસભાનું સરસ વર્ણન આ નાટકમાંથી આપણને મળે છે. યશશ્ચન્દ્રનું બીજું નાટક તે 'રાજીમતીપ્રબોધ.' નેમિનાથ–રાજીમતીનું સુપ્રસિદ્ધ કથાનક એ જ

---

† શીલાચાર્ય કે શીલાંકસૂરિ નામના જૈન આચાર્યે महापुरिसचरियं નામના પોતાના પ્રાકૃત ગ્રંથમાં વિબુધાનન્દ નામનું એકાંકી નાટક ગ્રથિત કર્યું છે જેનો સમય ઘણું કરીને વિક્રમના ૧૦ મા સૈકાના પ્રારંભમાં જાય છે. – સંપાદક

આ નાટકને વિષય છે. તેની પ્રસ્તાવનામાં સૂત્રધારના કથન ઉપરથી જણાય છે કે યશશ્ચન્દ્રે બે મહાકાવ્યો તથા ચાર નાટકો લખ્યાં હતાં, પરન્તુ આ બીજાં બે નાટકોનો તથા મહાકાવ્યોનો હાલમાં પત્તો લાગતો નથી.

કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમચન્દ્ર સિદ્ધરાજના સમકાલીન જ છે. 'મુદ્રિતકુમુદચન્દ્રપ્રકરણ'માં સિદ્ધરાજના સભાજનો પૈકી એક સોમચન્દ્રનું નામ આવે છે તે તથા હેમચન્દ્ર અનન્ય હશે એમ મનાય છે, કેમ કે હેમચન્દ્રનું સૂરિપદ પહેલાંનું નામ સોમચન્દ્ર હતું. હેમચન્દ્રે પોતાના સુપ્રસિદ્ધ અલંકારગ્રન્થ 'કાવ્યાનુશાસન'માં નાટ્યાલંકારો વિષે લખ્યું છે, પરન્તુ તેમણે કોઈ નાટક લખ્યું હોય એમ જાણવામાં નથી. સંખ્યાબંધ લૌકિક વિષયો ઉપર અગિયાર ઉત્તમ નાટકો લખવાનો યશ તેમના પટ્ટશિષ્ય રામચન્દ્રને ફાળે જાય છે. રામચન્દ્ર તો નાટ્યશાસ્ત્રના પણ સારા જ્ઞાતા હતા. સંસ્કૃત નાટ્યશાસ્ત્રના ગણતર ગ્રન્થોમાં તેમનું 'નાટ્યદર્પણ' સારો ઉમેરો કરી જાય છે, એટલું જ નહીં પણ રસ અને અભિનય વિષે જે નૂતન વિધાનો એ ગ્રન્થમાં રામચન્દ્રે કર્યાં છે તે પરંપરાથી જકડાયેલા યુગમાં તેમની સ્વતંત્ર વિચારશક્તિ માટે ખરેખર માન પેદા કરાવે તેવાં છે. 'રઘુવિલાસ' 'નલવિલાસ' 'યદુવિલાસ' 'સત્યહરિશ્ચન્દ્ર' 'નિર્ભયભીમવ્યાયોગ' 'મલ્લિકામકરન્દપ્રકરણ' 'રાઘવાભ્યુદય' 'રોહિણીમૃગાંકપ્રકરણ' 'વનમાલા નાટિકા' 'કૌમુદીમિત્રાનન્દ' અને 'યાદવાભ્યુદય' એ પ્રમાણે રામચન્દ્રનાં અગિયાર નાટકો અત્યાર સુધી જાણવામાં આવ્યાં છે. ગૂજરાતનાં નાટકસાહિત્યમાં રામચન્દ્રની કૃતિઓનું એક વિશિષ્ટ સ્થાન છે. નાટ્યશાસ્ત્રનો કવિનો અભ્યાસ, ભાષા પરનું પ્રભુત્વ, નાટકમાં છટાયેલો મર્માળો વિનોદ, સરળ વિશદ અને મધુર સૂક્તિઓ, કથાનકના પ્રસંગોને નાટ્યાનુરૂપ બનાવવાની આવડત—એ બધું સંસ્કૃત નાટક લેખકોના ભલે પહેલા વર્ગમાં નહીં, તોપણ બીજા વર્ગમાં તો રામચન્દ્રને સહેજે સ્થાન અપાવે તેમ છે.

હેમચન્દ્રના બીજા એક શિષ્ય દેવચન્દ્રનું 'ચન્દ્રલેખાવિજયપ્રકરણ' નાટક મળી આવે છે. એની નાયિકા ચન્દ્રલેખા વિદ્યાધરી છે, પરન્તુ સપાદલક્ષના રાજા આર્ણોરાજને કુમારપાલે જીત્યો તે પ્રસંગને વર્ણવતું એ નાટક છે. નાટકની નાયિકા ચન્દ્રલેખા વિદ્યાધરી તે આર્ણોરાજની બહેન જલ્હણાદેવી—જેનું કુમારપાલ સાથે લગ્ન કરવામાં આવ્યું હતું તે—હોવાનું મારું અનુમાન છે.[1] કુમારપાલે આર્ણોરાજ ઉપર મેળવેલા વિજયનો સમય સં. ૧૨૦૭ની આસપાસનો છે, એટલે નાટક પણ એ જ અરસામાં લખાયું હશે. કુમારપાલની આજ્ઞાથી પાટણમાં કુમારવિહારમાં અજિતનાથના વસન્તોત્સવ વખતે તે ભજવાયું હતું, એવો ઉલ્લેખ પ્રસ્તાવનામાં છે.

આ પછી, કુમારપાલના એક મંત્રી યશઃપાલે રચેલું 'મોહરાજપરાજય' નાટક આવે છે. આ નાટક સં. ૧૨૨૯ અને સં. ૧૨૩૨ની વચ્ચે રચાયું હોવાનું મનાય છે.

૧ નાટકની નાયિકાઓને કોઈ લોકોત્તર વનિતા પાત્ર તરીકે વર્ણવવાના સંસ્કૃત લેખકોને શોખ જાણીતો છે. 'કર્ણસુન્દરી' નાટિકાની નાયિકા મયણલ્લાને બિલ્હણે વિદ્યાધરી બનાવી છે. ધારાના રાજા અર્જુનવર્મદેવે ગૂજરાતના રાજા અભિનવ જયસિંહને હરાવી તેની પુત્રી સાથે લગ્ન કર્યું હતું, તેનું ધારાના રાજગુરુ મદને લખેલા 'પારિજાતમંજરી' નાટિકામાં—અર્જુનવર્મના ગળા પર પારિજાતની માળા—વિજયમાળા—પડી તે એક કન્યા બની ગઇ, રાજાએ તે કન્યા કંચુકીને સોંપી અર્થાત્ અંતઃપુરમાં મોકલી—એવું રૂપકાત્મક વર્ણન છે. એટલે અહીં પણ ચન્દ્રલેખા વિદ્યાધરી તે જલ્હણાદેવી હોવાનો પૂરો સંભવ છે.

કુમારપાલના જૈનધર્મસ્વીકારને આલેખતું એ રૂપકાત્મક નાટક છે. એમાં કુમારપાલ વિનયદ્વારા મોહ ઉપર કેવી રીતે વિજય મેળવે છે તે બતાવ્યું છે, તથા ધર્મરાજા અને વિરતિ દેવીની પુત્રી કૃપાસુન્દરીનું કુમારપાલ સાથે મહાવીર તથા હેમાચાર્ય સમક્ષ પાણિગ્રહણ કરાવ્યું છે. એની તિથિ નાટકમાં સં. ૧૨૧૬ના માગશર સુદ બીજ આપવામાં આવી છે. કુમારપાલે ખરેખર જૈન ધર્મનો સ્વીકાર કરેલો કે કેમ, એ સંબંધમાં વિદ્વાનોમાં હમણાં મતભેદ થયો છે. એ વિષે સત્યના શોધન માટે આ નાટકનો સૂક્ષ્મ અભ્યાસ જરૂરી છે. 'મોહરાજપરાજય' નાટક થરાદમાં કુમારપાલે બંધાવેલા કુમારવિહારમાં મહાવીર સ્વામીના યાત્રામહોત્સવ વખતે ભજવાયું હતું.

આબુના પરમાર ધારાવર્ષના ભાઈ પ્રલ્હાદનદેવે સં. ૧૨૨૯ આસપાસમાં વિરાટનગરમાં અર્જુનનાં પરાક્રમનું નિરૂપણ કરતો 'પાર્થપરાક્રમવ્યાયોગ' લખ્યો હતો અને તે આબુ ઉપર શ્રીઅચલેશ્વરના પવિત્રકારોપણ પર્વમાં ધારાવર્ષની આજ્ઞાથી ભજવાયો હતો. પ્રલ્હાદન ત્યારે યુવરાજપદે હતો, એમ નાટક ઉપરથી જણાય છે. મત્સ્યવેધના સુપ્રસિદ્ધ પૌરાણિક પ્રસંગને વર્ણવતું વિજયપાલનું 'દ્રૌપદીસ્વયંવર' નાટક પાટણમાં ત્રિપુરુષપ્રાસાદમાં વસન્તોત્સવ પ્રસંગે ભીમદેવ બીજાની આજ્ઞાથી ભજવાયું હતું.

જૈનમુનિ રામભદ્રનું 'પ્રબુદ્ધરૌહિણેય' નાટક સં. ૧૨૫૦ના અરસામાં જાલોરમાં યશોવીર અને અજયપાલ એ બે વણિક ભાઈઓએ બંધાવેલા આદીશ્વરના મન્દિરનાં યાત્રોત્સવ પ્રસંગે ભજવાયું હતું. મહાવીર અને બુદ્ધના સમકાલીન એક પ્રસંગનું એમાં નિરૂપણ છે. રૌહિણેય નામનો ચોર રાજગૃહમાં ચોરી કરે છે, પણ પકડાતો નથી. શ્રેણિકનો પુત્ર અભયકુમાર પોતાના બુદ્ધિબળથી એને પકડે છે અને કરેલી ચોરીઓ કબુલાવવા માટે એક યુક્તિ રચે છે. એક ઓરડો ઇન્દ્રભુવન જેવો શણગારી તેમાં અપ્સરાઓને સ્થાને વેશ્યાઓ મોકલે છે. અને પછી ઉંઘતા ચોરને ત્યાં મૂકી દે છે. રૌહિણેય જાગે છે, એટલે વેશ્યાઓ તેને પૂછે છે કે, "પૂર્વજન્મમાં તમે કેવાં સત્કૃત્યો કર્યાં હતાં, જેથી આ સ્વર્ગ તમને મળ્યું?" હવે, રૌહિણેયના બાપે રૌહિણેયને શિખામણ આપી હતી કે મહાવીરનું વચન કદિ સાંભળવું નહીં; પરન્તુ એકવાર પગમાં વાગેલો કાંટો કાઢતાં મહાવીરની દેશનાના કેટલાક શબ્દો અકસ્માત્ તેને સંભળાયા હતા. તેમાં 'દેવતાઓની આંખો મીંચાતી નથી, તથા પગ ભોંયપર અડતા નથી' એવું સાંભળ્યું હતું. મહાવીરના આ એક જ વચનના પ્રભાવથી ચોર કૃત્રિમ સ્વર્ગભુવનની યુક્તિ પામી ગયો. મહાવીરના એક જ વચનનો જો આટલો પ્રભાવ, તો તેમના અનુયાયી બનવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ કેમ નહીં થાય? આમ વિચારી રૌહિણેય ચોર મહાવીરને શરણે ગયો. આ નાટકનું કથાનક લોકવાર્તાના તુલનાત્મક અભ્યાસની દૃષ્ટિએ પણ ઉપયોગી છે, એ જોઈ શકાશે.

ધોળકાના રાણા વીરધવલના સુપ્રસિદ્ધ મંત્રી વસ્તુપાલના આશ્રિત કવિ બાલચન્દ્રનું 'કરુણાવજ્રાયુધનાટક' સં. ૧૨૭૭ માં શત્રુંજય ઉપર ઋષભનાથના યાત્રામહોત્સવ પ્રસંગે ભજવાયું હતું. વજ્રાયુધ ચક્રવર્તીએ પ્રાણના ભોગે પણ પારેવાનું રક્ષણ કર્યું હતું, એ પ્રસિદ્ધ વસ્તુને અનુલક્ષીને તે લખાયું છે.

વીરધવલના પુરોહિત તથા વસ્તુપાલના ઇષ્ટમિત્ર, 'કીર્તિકૌમુદી' તથા 'સુરથોત્સવ'ના કર્તા કવિ સોમેશ્વરનું 'ઉલ્લાઘરાઘવ' નાટક દ્વારિકાના જગત્મન્દિરમાં પ્રબોધિની એકાદશીના દિવસે ભજવાયું હતું. 'સુરથોત્સવ'ની પ્રશસ્તિમાં એવો ઉલ્લેખ મળે છે કે સોમેશ્વરે ભીમની સભાને યામાર્ધમાં એક નાટક બનાવીને હર્ષિત કરી હતી. એ નાટક 'ઉલ્લાઘરાઘવ'થી તો ભિન્ન જ, કેમકે 'ઉલ્લાઘરાઘવ' તો સોમેશ્વરે પોતાના પુત્ર ભલ્લશર્માની પ્રાર્થનાથી લખ્યું હતું, એવી તેમાં સ્પષ્ટ નોંધ છે.

ગૂજરાત ઉપર દક્ષિણથી ચઢી આવેલા યાદવ રાજા સિંહણ અને ઉત્તરેથી ચઢી આવેલા મીલચ્છીકાર (સુલતાન અલ્તમશ)[1]નો વસ્તુપાલે એકસાથે પરાજય કર્યો હતો એ વિષય પરનું જયસિંહસૂરિનું 'હમ્મીરમદમર્દન' નાટક ખંભાતમાં વસ્તુપાલના પુત્ર જયંતસિંહની આજ્ઞાથી ભીમેશ્વરદેવના યાત્રામહોત્સવ પ્રસંગે ભજવાયું હતું. આ નાટક સં. ૧૨૭૯ અને સં. ૧૨૮૫ની વચ્ચે લખાયુ હતું, એમ માનવાને સબળ કારણ છે.

અંગદવિષ્ટિના પૌરાણિક પ્રસંગને લગતું સુભટનું 'દૂતાંગદ' નાટક ત્રિભુવનપાલની સભાની આજ્ઞાથી પાટણમાં કુમારપાલે પધરાવેલી શિવની મૂર્તિના દોલોત્સવ પ્રસંગે ભજવાયું હતું. ત્રિભુવનપાલનો રાજ્યકાળ સં. ૧૨૯૮થી ૧૩૦૦નો છે, એટલે આ નાટક પણ તેજ અરસામાં લખાયું હશે. દશાર્ણભદ્ર રાજર્ષિના ચરિત્રને અવલંબીને લખાયેલું મેઘપ્રભાચાર્યનું 'ધર્માભ્યુદય' નાટક પણ સંઘની આજ્ઞાથી ભજવાયું હતું.

સં. ૧૩૫૦માં કરણ વાઘેલાનો પરાભવ થયો: ગૂજરાતનું છેલ્લું સ્વતંત્ર હિંદુ રાજ્ય નાશ પામ્યું, અને મુસ્લીમ સત્તાનો પ્રારંભિક દોર સારાયે ગૂજરાત ઉપર ગાજી રહ્યો. વિદ્વાને મળતો રાજાશ્રય બંધ થયો, રાજદરબારોમાંથી વિદ્વદ્‌ગોષ્ઠિ અને શાસ્ત્રચર્ચાઓને દેશવટો મળ્યો. છતાં ગૂજરાત કાઠિયાવાડના અન્ય હિંદુ રાજાઓ અને ધનિકોએ વિદ્વાને યથાશક્તિ પોષણ આપ્યાં કર્યું છે. પરિણામે મુસ્લીમ સત્તાની સ્થાપના પછી પણ ગૂજરાતમાં સંસ્કૃતના સારસ્વતપ્રવાહનું સાતત્ય જળવાઈ રહ્યું છે.

સં. ૧૫૦૫ આસપાસમાં આપણને 'ગંગાદાસ પ્રતાપવિલાસ' નામનું નવાંકી નાટક મળે છે. ચાંપાનેરના રાજા ગંગાદાસે અમદાવાદના સુલ્તાન મહમ્મદ તથા તેના આશ્રિત ઇડરના રાજાને હરાવ્યા, તે પ્રસંગને અનુલક્ષીને લખાયેલું એ વીરરસપ્રધાન નાટક છે. ચાંપાનેરનો રાજકવિ ગંગાધર તેનો કર્તા છે. પાવાગઢ અને ચાંપાનેરની સમૃદ્ધિ, પ્રજાની મહાકાળી પ્રત્યેની ભક્તિ અને ગંગાદાસનો અડગ ટેક એ બધાંનો એમાંથી સારો ખ્યાલ મળે છે. મહાકાળીના મંદિરના સભાગૃહમાં એ નાટક ભજવાયું હતું.

---

૧ 'હમ્મીરમદમર્દન'નો મીલચ્છીકાર તથા 'પ્રબન્ધકોશ'નો મોજદીન બન્ને એક જ છે પરન્તુ મીલચ્છીકાર અથવા મોજદીન નામનો કોઈ પાદશાહ દિલ્હીની ગાદી ઉપર આવી ગયો નથી. મોજદીન તો બીજો કોઈ નહીં, પણ ગુલામ વંશનો પાદશાહ શમ્સુદ્દીન અલ્તમશ છે, એવી મારી માન્યતા છે (જુઓ 'ગુજરાતી'ના ૧૯૩૪ના દીપોત્સવી અંકમાં મારો લેખ "પ્રબન્ધકોશનો મુઇઝુદ્દીન કોણ?") શ્રી. દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રીનો પણ આ જ મત છે. (ગુજરાતનો મધ્યકાલીન રાજપૂત ઇતિહાસ, ભાગ ૨ પૃ. ૩૮૧) બીજી બાજુ શ્રી. રસિકલાલ પરીખ આ મોજદીન તે મહમ્મદ ઘોરી છે, એમ માને છે (જુઓ "જૈનસાહિત્યસંશોધક," ખંડ ૩, અંક ૧માં તેમનો લેખ "એક ઐતિહાસિક અનુશ્રુતિ અને તેની સમીક્ષા").

'ધર્મવિજયનાટક' નામનું પંચાંકી નાટક દિલ્લીપતિના દાનવેતનાધ્યક્ષ કાયસ્થ કેશવદાસ માટે લખાયેલું. તેનો કર્તા ભૂદેવ શુક્લ છે. 'સ્માર્ત આચારોથી યુક્ત જીવનના પારલૌકિક ફાયદાઓ'' દર્શાવતું એ રૂપક છે. એની હાથપ્રત સં. ૧૮૩૨ની મળે છે, એટલે ત્યાર પહેલાં એ લખાયેલું હોવું જોઇએ.

રવિદાસનું 'પાખંડખંડનનાટક' પણ દંભ અને પાખંડનું ખંડન કરી વેદધર્મનું પ્રતિપાદન કરતું રૂપક છે. નાન્દીમાં શ્રીદેવી, સૂર્ય, પાર્વતી, વાગ્દેવી, રામ, શિવ અને ગણેશનું આવાહન કર્યું છે. નેપથ્યમાંથી વેદધ્વનિ અને સરસ્વતીની વીણાનો ઝણકાર સંભળાય છે. વેદ અને સરસ્વતી વૈદિક ધર્મનું વિપ્લાવન થયું હોવાની ફરિયાદ કરે છે. ધાર્મિક દંભો તથા પાખંડીઓએ વૈદિક ધર્મની કેવી અવદશા કરી મૂકી હતી તે આમાંથી જણાય છે. કર્તાએ આમાં સરસ્વતી અને વેદો ઉપરાંત વિષ્ણુભક્તિ, ન્યાય, મીમાંસા, વેદાન્ત, પ્રશસ્ત પૌરાણિક, વિટાવતંસ વગેરે પાત્રો કલ્પીને વૈદિક ધર્મની સત્યતા પ્રતિપાદિત કરી છે. અંતમાં પ્રશસ્ત પૌરાણિકના પ્રયત્નોથી પાખંડી ધૂર્તો નાસી જાય છે. તથા નાસ્તિકો આસ્તિક બને છે. કર્તાએ આ નાટક ''દ્વારવતી યતિના પ્રિયને માટે લખ્યું છે'' એવો તેમાં ઉલ્લેખ છે, પરંતુ તે ક્યારે રચાયું તે વિષે કંઈ જાણવા મળતું નથી. અલબત, એ ઘણું પ્રાચીન તો નથી જ.

રામકૃષ્ણ દેવજીનું 'ગોપાલકેલિચન્દ્રિકા' નામે નાટક શ્રીકૃષ્ણની વૃન્દાવનલીલાઓનું ભક્તિભાવપૂર્ણ નિરૂપણ કરે છે તથા પ્રશ્નોરા કવિ જગન્નાથે સં. ૧૮૫૨માં લખેલુ 'ભાગ્યમહોદય' જુદા જુદા અલંકારો ને પાત્રો કલ્પીને ભાવનગરના મહારાજા વખતસિંહ તથા તેમની સભાનું વર્ણન કરે છે.[2]

હવે પ્રશ્ન એ થશે કે, આ બધાં નાટકોનું સાહિત્યદૃષ્ટિએ મૂલ્યાંકન શું? કહેવું જોઇએ કે હેમચન્દ્રના શિષ્ય રામચન્દ્રનાં નાટકોના અપવાદને બાદ કરીએ તો, શુદ્ધ સાહિત્ય દૃષ્ટિએ આ બધાં નાટકોની કિંમત ઝાઝી નથી. પરંતુ માઘ અને બાણની પછી સાચું સર્જન સંસ્કૃત સાહિત્યમાંથી લગભગ આથમી ગયું હતું, એટલે મધ્યકાળમાં તો હિન્દના બધા જ પ્રાંતોમાં આ સ્થિતિ છે. આપણાં નાટકોનો ઉદ્દેશ પાત્રોના બાહ્ય કે આંતરિક સંઘર્ષણનું નિરૂપણ કરવાનો નહીં, પણ પ્રેક્ષકના મનમાં રસની નિષ્પત્તિ કરવાનો હતો. અર્થાત् काव्येषु नाटकं रम्यम् એ ઉક્તિ દર્શાવે છે તેમ, નાટક એ કાવ્યનો જ એક પ્રકાર હતો. સઘળી કવિતાનો હેતુ ભાવ સૂચવવાનો છે; એટલે એ હેતુને સાનુકૂળ ન હોય તે બધા પ્રત્યે નાટકકારે દુર્લક્ષ્ય કરવું—એવા કોઈ વલણને પરિણામે સંસ્કૃત નાટકની અવનતિ થઈ છે આપણું પ્રાચીન નાટક શુદ્ધ ભાવનાવાદી છે. નાટકમાં વસ્તુ એ ગૌણ તત્ત્વ છે. હકીકતો પ્રત્યે બેદરકારી, વ્યક્તિનું નહીં પણ આદર્શનું જ આલેખન, વાસ્તવિકતા પ્રત્યેનો અભાન અણગમો, કર્મના સિદ્ધાન્ત પ્રત્યેની વફાદારીને કારણે નાટકમાં અચિન્ત્ય વિઘ્નોનો અભાવ, શાસ્ત્રોની સજ્જડ પ્રણાલિકાઓ—એ બધાં

---

૨ આ પછી પણ ગુજરાતમાં સંસ્કૃત નાટકો નથી લખાયાં એમ નહીં. પચાસ-સાઠ વર્ષ પર લખાયેલાં શાસ્ત્રી શંકરલાલ મહેશ્વરનાં 'સાવિત્રી ચરિત' આદિ તથા હેઠ હમણાં નડિયાદવાળા શ્રી. મૂળશંકર માણેકલાલ યાજ્ઞિકનાં 'સંયોગિતાસ્વયંવરમ્' ઇત્યાદિ સંસ્કૃત નાટ્યશાસ્ત્રના સિદ્ધાન્તોને અનુસરીને લખાયેલાં નાટકો તેના ઉદાહરણરૂપ છે પરન્તુ એ બધાંનું વિવરણ આ લેખમાં અપ્રસ્તુત છે.

કારણોએ, પૂર્વકાલીન તેજસ્વી સર્જકતા જ્યારે આથમવા આવી હતી તે પાંડિત્યયુગમાં, નાટકની અવનતિ કરવામાં ફાળો આપ્યો. વ્યક્તિ પ્રત્યેની ઉદાસીનતાને કારણે સંવાદો ફીકા બનતા ગયા, અને આદર્શો પ્રત્યેની વફાદારીને કારણે શ્લોકો મુક્તકો જેવા—વધુને વધુ લાલિત્યપૂર્ણ બનતા ગયા. લેખકોનું ધ્યાન આવાં મુક્તિકો લખવા ઉપર જ કેન્દ્રસ્થ થતું ગયું, અને નાટકનાં બીજાં અંગો ભૂખે મરવા લાગ્યાં.

ગૂજરાતનાં સંસ્કૃત નાટકો એ અવનતિકાળનાં નાટકો છે, એની કોઈથી ના પાડી શકાય તેમ નથી. પરંતુ ઇતિહાસ અને સમાજશાસ્ત્રના અભ્યાસની દૃષ્ટિએ એ સર્વે નાટકોનું મૂલ્ય ઘણું મોટું છે. એ નાટકો પૈકીનાં કેટલાંક તત્કાલીન ઐતિહાસિક પ્રસંગો ઉપરથી લખાયાં છે, કેટલાંક ધાર્મિક પ્રચારાર્થે લખાયાં છે, અને ઘણાં ખરાં સાર્વજનિક ઉત્સવ પ્રસંગે ખાસ યોજનાથી ભજવાયાં છે. ગૂજરાતના મધ્યકાલીન ઇતિહાસ અને જીવનને સમજવામાં નાટક પણ ઘણે અંશે સહાયભૂત થાય છે.

[૨]

મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં નાટક સાધારણ રીતે રાજાશ્રિત અથવા ધનિકાધીન હતું. રાજાની આજ્ઞાથી જેમ વખતોવખત નાટકો ભજવાતાં તેમ ધનિક લોકો પણ નાટક કરાવતા. ઉપર નોંધેલાં નાટકો પૈકી ઘણાંક રાજાજ્ઞાથી ભજવાયાં હતાં, એ આપણે જોઈ ગયા. રામભદ્રનું 'પ્રબુદ્ધરૌહિણેય' નાટક જાલોરમાં બે વણિક ભાઈઓની સૂચનાથી ભજવાયું હતું. 'પ્રબન્ધચિન્તામણિ'માં ભોજરાજપ્રબન્ધમાં એવો એક પ્રસંગ આવે છે કે—ભોજરાજા નગરચર્યા જોવા ગયો હતો, ત્યાં એક સ્થળે શિવમંદિરમાં એક વાણિયાએ નાટક કરાવ્યું હતું, તેની સમૃદ્ધિ જોઈને વાણિયાને લુંટી લેવાનો રાજાને વિચાર થયો. આ કથાનકમાં ભલે સત્યાંશ ન હોય. પરંતુ દેવમંદિરોમાં સામાન્ય લોકો પણ નાટકો કરાવતા, એટલી ઉપયોગી માહિતી તેમાંથી મળે છે. દેવમન્દિરોમાં દેવોની વર્ષગાંઠ, યાત્રામહોત્સવ, વસંતોત્સવ ઇત્યાદિ પ્રસંગોએ ખાસ નાટકો ભજવાતાં. બંગાળમાં હજી પણ 'જાત્રા'ના પ્રયોગો થાય છે.

પૂર્વકાળમાં નાટક માત્ર ઉચ્ચ વર્ગના—રાજા અને તેના દરબારીઓના—આનંદ વિનોદનું સાધન હતું. પણ મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં ધાર્મિક પ્રચારાર્થે પણ નાટકનો ઉપયોગ થતો આપણે જોઈએ છીએ. એ રીતે નાટક જનસમૂહનો સ્પર્શ કરતું પણ બન્યું. 'મોહરાજપરાજય' 'પ્રબુદ્ધરૌહિણેય', 'કરુણાવજ્રાયુધ' અને 'ધર્માભ્યુદય' જૈન ધર્મના પ્રચારાર્થે જ લખાયાં તથા ભજવાયાં હતાં. 'કરુણાવજ્રાયુધ' તો યાત્રાધામ શત્રુંજયમાં વસ્તુપાલે કાઢેલા સંઘના પરિતોષ અર્થે ભજવાયું હતું, એ પણ ઓછું સૂચક નથી. 'ધર્મવિજય' 'મિથ્યાજ્ઞાનખંડન' ઇત્યાદિ નાટકો એવી જ રીતે વૈદિક ધર્મના પ્રચારાર્થે લખાયાં હતાં.

નાટકો સામાન્યતઃ મન્દિરના પટાંગણમાં ભજવાતાં હતાં, કારણ કે પ્રાચીન કાળનું મન્દિર એ સાર્વજનિક સંમેલનનું એકમાત્ર સ્થાન હતું. લોકો નાટકો જોવા ખૂબ ઉત્સાહથી જતા, અને नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् । એ કવિકુલગુરુની ઉક્તિને સાર્થક કરતાં, એમ પ્રબન્ધો વાંચતાં જણાય છે. સમાજનો મધ્યમ અને ધનિક

વર્ગ સામાન્ય સંવાદો પૂરતું સંસ્કૃત તો સમજી શકતો હશે–જેમ અત્યારે અંગ્રેજી સમજે છે–એમ માનવાને પૂરતાં કારણો છે. આજે પણ મલબારમાં 'આશ્ચર્યમંજરી' 'પ્રતિજ્ઞાયૌગંધરાયણ' અને 'નાગાનંદ' નાટકો ભજવાય છે અને જોનારા તે સમજે છે. જો કે કેટલીકવાર રાજાઓ વગેરે પ્રતિષ્ઠાને ખાતર લલિત કળાઓના જ્ઞાતા હોવાનો ડોળ કરતા–આજે પણ ધનિકવર્ગમાં ક્યાં એવું નથી ચાલતું?

[3]

ભાંડ અને કૌતુકી વિષેના ઘણા ઉલ્લેખો પ્રબન્ધોમાંથી મળે છે. અજયપાલને જૈન દેવાલયોના વિનાશના કામમાંથી વારનાર સીલણ ભાંડનો પ્રસંગ પ્રસિદ્ધ છે. ભાંડ લોકો વાક્ચાતુરી, હાથચાલાકી અને નજરબંધીના ખેલો કરતા હશે. એ લોકોની એક જુદી જ્ઞાતિ જ હોવી જોઇએ.[1] ઉપલા વર્ગ માટે જો સંસ્કૃત નાટક હોય તો નીચલા વર્ગો માટે ભવાઈ કે એવો નાટ્યપ્રકાર હોવો જોઇએ. પરન્તુ એ વિષયમાં કોઈ મંડનાત્મક પ્રમાણો પ્રાચીન ગ્રન્થોમાંથી મળતાં નથી. સ્વ. હરિલાલ ધ્રુવે 'ભવાઈ'ની વ્યુત્પત્તિ સંસ્કૃત ભાવમાંથી સિદ્ધ કરી છે. તે વાજબી લાગે છે.

ભવાઈ સંબંધી જાણીતા નટ શ્રી. જયશંકર 'સુન્દરી'એ અમદાવાદની રંગભૂમિ પરિષદ સમક્ષ રજુ કરેલા પોતાના એક નિબંધમાં આપેલી દંતકથા નોંધપાત્ર છે–

ઉંઝાના હેમાળા નામના એક પાટીદારની સ્વરૂપવાન કન્યા ગંગાને મુસ્લીમ સુબો ઉપાડી ગયો હતો. પાટીદારના એક બ્રાહ્મણ સ્નેહી આસાયતે પોતાની ગાયન, વાદન અને અભિનયકળાથી સુબાને પ્રસન્ન કરી, 'આ તો મારી પુત્રી છે' એમ કહી ગંગાને છોડાવી. સુબાએ પરીક્ષા લેવા બન્નેને એક થાળીમાં જમાડ્યાં. આથી આસાયતને બ્રાહ્મણોએ નાતબહાર મૂક્યો, પણ પાટીદારોએ તેને અમુક હક્કો આપ્યા, જે તેના વંશજો હજી સુધી ભોગવે છે. આ પછી આસાયતે ભવાઈના ૩૬૦ વેશો લખ્યા. પોતે તો કવિ, વક્તા અને ગાયક હતો જ એટલે પોતાના ત્રણ દિકરાઓની મદદથી આ વેશો તેણે ભજવવા માંડ્યા. તેઓ 'ત્રણઘરા'–તરગાળા તરીકે ઓળખાયા. જૈનધર્મી બનેલા શ્રીમાળી બ્રાહ્મણો–ભોજકોએ તેમની સાથે બેટીવ્યવહાર બાંધ્યો, એટલે તેમની એક નાત બની ગઈ. આ પ્રમાણે આસાયત એ અત્યારની નાયક જ્ઞાતિનો પૂર્વજ છે.

આ આસાયત ઐતિહાસિક વ્યક્તિ છે એમાં શક નથી, કેમકે તેણે સં. ૧૪૧૦માં લખેલી 'હંસવત્સકથા' મળી આવે છે. તેના એ કાવ્યની હાથપ્રત સં. ૧૭૨૦માં એક છબીલદાસ નાયકને માટે ઉતારવામાં આવી હતી. એ પણ એ જ્ઞાતિમાં એની લોકપ્રિયતાનું સૂચન છે. તેણે ભવાઈના વેશો નવા ન લખ્યા હોય, પણ જૂના વેશોનું સંપાદન–સંસ્કરણ કર્યું હોય, એમ બનવાનો સંભવ વધારે છે. ભવાઈમાં અત્યારે જે અશ્લીલ તત્ત્વો જોવામાં આવે છે, તેમાં ભાણ, પ્રહસન વગેરે સંસ્કૃત નાટિકાપ્રકારોની અસર હોય. અલબત, ભવાઈ એ તો લોકસમાજના મનોરંજનનો પ્રયોગ છે, એટલે બીજી પણ ઘણી અસરો તેમાં ભેગી થઈ છે. વિકૃત હાસ્યનું સર્વપ્રથમ ઊગમસ્થાન ગ્રામ્યતા–

---

૧ મહેસાણા પાસે ભાંડુ નામનું ગામ આવેલું છે, ત્યાં અગાઉ ભાંડ લોકો જ વસતા એમ કહેવાય છે. અત્યારે પણ ભાટ લોકોની વસ્તી ત્યાં સારા પ્રમાણમાં છે.

અશ્લીલતા છે; પછી અજ્ઞાન નટોને તેવા જ અજ્ઞાન પ્રેક્ષકોનું મનરંજન કરવાનું હોય ત્યાં અશ્લીલતાનો આશ્રય લેવાય એમાં શી નવાઈ?[૨]

[૪]

હવે મધ્યકાલીન ગૂજરાતમાં રંગભૂમિના અસ્તિત્વ–અનસ્તિત્વનો પ્રશ્ન ચર્ચવાનો બાકી રહે છે. હિન્દુ રાજ્યકાળમાં એટલે કે સં. ૧૩૬૦ પહેલાં તો રંગભૂમિ હતી જ, એ બતાવવાને આગળ દર્શાવેલાં સંખ્યાબંધ નાટકોની પ્રસ્તાવનાઓ જ બસ છે. પણ હિન્દુ રાજ્યકાળ પછી–સોળમી, સત્તરમી, અઢારમી સદીમાં ગૂજરાતમાં રીતસરની રંગભૂમિ હતી કે કેમ, એ વિચારવા જેવું છે. 'પ્રેમાનંદના નાટકો'ના કર્તૃત્વ સંબંધી ચર્ચા કરતાં સદ્‌ગત સાક્ષર શ્રી. નરસિંહરાવે એક ખંડનાત્મક દલીલ એ પણ કરી હતી કે એ કાળમાં અથવા તે પહેલાં ઘણા કાળસુધી ગૂજરાતમાં કોઈ પણ સ્વરૂપમાં રંગભૂમિ ન હોતી. 'પ્રેમાનંદનાં નાટકો'ના કર્તૃત્વ સાથે આપણને અહીં સંબંધ નથી–સો વસા તો એ નાટકો પ્રેમાનંદનાં નથી જ–પરન્તુ પ્રેમાનંદ અને તેની પૂર્વેના કાળમાં રંગભૂમિનું અનસ્તિત્વ પ્રતિપાદન કરતી શ્રી. નરસિંહરાવભાઈની દલીલ હવે તો થોડુંક પરીક્ષણ માગી લે છે.

હિન્દુ રાજ્યકાળમાં જે રંગભૂમિનું અસ્તિત્વ હતું, અને જેના ઉપર ઓછામાં ઓછાં બે ડઝન નાટકો ભજવાયાના પૂરાવા તો આજે પણ આપણી પાસે મોજુદ છે, તે રંગભૂમિ મુસ્લીમ રાજ્યઅમલની સ્થાપના થતાં જ એકાએક નાશ પામી જાય એ અસંભવિત હતું. મુસ્લીમ કાળમાં જ રચાયેલાં નાટકો પૈકી, 'ગંગાદાસપ્રતાપવિલાસ' નાટક સં. ૧૫૦૫ ના અરસામાં ચાંપાનેરમાં મહાકાલીના મન્દિરમાં ભજવાયું હતું. સત્તરમા અથવા અઢારમા સૈકામાં લખાયેલું 'ધર્મવિજય' નાટક પણ ભજવાયું હતું. એ સિવાયનાં બીજાં નાટકો ભજવાયાં હતાં કે કેમ એ કહી શકાય નહી, પરન્તુ ઉપરનાં બે ઉદાહરણો શ્રી. નરસિંહરાવના કથનનું ઝનૂન ઓછું કરી શકે એમ છે. કહેવાનો આશય એટલો જ છે કે રામલીલા કે ભવાઈથી જુદા પ્રકારની રંગભૂમિ ગૂજરાતમાં અસ્તિત્વમાં હતી એમ માનવાને પ્રેરે એવા પૂરાવા આપણી સમક્ષ પડેલા છે. રાજાઓ કે ધનિકોની ખાસ સૂચનાથી લખાયેલાં નાટકોનો પ્રયોગ પણ નાટ્યશાસ્ત્રની રીતે જ થતો હોવો જોઇએ.

વિક્રમના ઓગણીસમા શતકમાં કે ત્યાર પહેલાં ગૂજરાતી ભાષામાં કોઈ નાટક લખાયેલું હજી જણાયું નથી. નાટકની સૌથી વધુ નજદીકનો સાહિત્યપ્રકાર તે 'મનમતિસંવાદ', 'સંપલક્ષ્મીસંવાદ', 'લોચનમનનો ઝઘડો' કે 'રાવણમંદોદરી સંવાદ' જેવા પદ્યાત્મક સંવાદોનો છે.

---

૨ ભવાઈઓમાંની અશ્લીલતા ઠીક ઠીક અળખામણી અને કુપ્રસિદ્ધ બની ગઇ હતી. "ભાંડ–ભવૈયા"ને લગતી અનેક ગૂજરાતી કહેવતો તથા "ગાળા દેવી" એ અર્થનો "ભાંડવું" શબ્દ એના ઉદાહરણરૂપ છે 'કાલકાચાર્યકથા'નું સોળમાં શતકમા લખાયેલું એક ગૂજરાતી પ્રતીક મને પાટણમાથી પ્રાપ્ત થયું હતું. તેમાં ગર્દભિલ્લ રાજા કાલકાચાર્યની બ્હેન સરસ્વતીને ઉપાડી જાય છે તે પ્રસંગે ઉદ્ધૃત થયેલું એક સંસ્કૃત સુભાષિત પણ નોંધપાત્ર છે–

यत्रास्ति राजा स्वयमेव चोरो भाण्डीवहो यत्र पुरोहितश्च ।
वनं भजध्वं ननु नागरा भो यतः शरण्याद्भयमत्र जातम् ॥

૨૧. મહીપતરાય નીલકંઠે ભવાઇનાં અશ્લીલ તત્ત્વો દૂર કરી તેને સુધારવાનો પ્રયત્ન કર્યો હતો, પણ તે નિષ્ફળ ગયો. અને હવે તો ભવાઈ પોતે જ છેલ્લા શ્વાસ ખાઈ રહી છે.

हिंदनुं इतिहास-साहित्यः—एक दृष्टि*

श्रीयुत कनैयालाल मा. मुनशी बी. ए., एलएल्. बी.

[संस्थापक-अध्यक्ष, भारतीय विद्या भवन; निवृत्त गृहमंत्री, मुंबईप्रान्त]

* १ *

સન્નારીઓ અને સદ્‌ગૃહસ્થો,

આજે 'ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટી' માટે વાર્ષિક વ્યાખ્યાન આપવાને તમે મને નિમંત્ર્યો તે માટે હું તમારો આભાર માનું છું.

હાલની મારી પ્રવૃત્તિઓને ધ્યાનમાં લેતાં ધારું તે વિષય પર મારાથી વ્યાખ્યાન આપવાનું શક્ય ન હતું એટલે હાલ હિન્દના ઇતિહાસ વિષે જે કંઈ થોડો અભ્યાસ કરી રહ્યો છું તેને લીધે જે દૃષ્ટિબિન્દુ મને સૂઝયું છે ને અહીં રજુ કરું છું.

આ લેખમાંનાં નિર્ણયો પરત્વેના આધારો મે અહીં ટાંક્યા નથી, પણ જિજ્ઞાસુઓને તે માટે 'ભારતીય વિદ્યા'માં આવતા મારા લેખો જોઈ જવાની ભલામણ કરું છું.

હિન્દના 'ઇતિહાસો' જોઈએ તેટલા છે. એના ખાસ વિષયો પર પણ પુસ્તકો પુષ્કળ છે. ઘણું ખરું એ સાહિત્ય પરદેશીની દૃષ્ટિએ લખાયું છે. હિન્દની દૃષ્ટિએ હિન્દનો સળંગ ઇતિહાસ હજી લખાવાનો રહ્યો છે, જો કે એનો સમય તો ક્યારનો આવી ચૂક્યો છે. હિન્દનો આત્મા જે ઓળખતો હોય તે જ એ ઇતિહાસ લખી શકે.

* २

'હિન્દ'નો ઇતિહાસ એટલે કોનો ઇતિહાસ? હિન્દુસ્થાનનો? એક જાતિનો? એક વિજય પામેલી સંસ્થાનો? વધતીઘટતી રાજકીય સીમામાં રહેલા પ્રદેશોનો?

ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ જે પ્રદેશમાં અંગ્રેજી હકુમત આજે પ્રસરી છે તેને હિન્દ નહીં કહેવાય. મુસ્લિમ તવારીખકારોનું 'હિન્દોસ્તાન', યવન લેખકોનું 'ઇંડોઈ,' પુરાણકારોનું 'આર્યાવર્ત' તે પણ હિન્દ ન કહી શકાય.

હિન્દનો ઇતિહાસ એટલે હિન્દ દેશનો ઇતિહાસ. પણ દેશ એટલે શું? ભૌગોલિક સીમાઓથી સંવૃત્ત એક પૃથ્વીના વિભાગને ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ દેશ ન કહી શકાય. તેમ જ એવો વિભાગ ન હોય તેને પણ દેશ ન કહી શકાય. દેશ એટલે ભૌગોલિક સીમાઓમાં રહેલો વિસ્તાર અને તે ઉપરાંત બીજું ઘણું. એ 'બીજું ઘણું' શું તેનો નિર્ણય દરેક ઇતિહાસકારે કરવો જ રહ્યો.

હિન્દ એ વિશિષ્ટ પ્રદેશ છે. હિમાલય ને હિન્દુકુશ, વિન્ધ્યાચલ ને પશ્ચિમ–પૂર્વના ઘાટ અને કરાંચીથી કલકત્તા સુધીનો સાગર કિનારો એને ભૌગોલિક વ્યક્તિત્ત્વ આપે છે. હિમાચલથી સમુદ્ર સુધીનો ભારતખંડ એ જૂની કલ્પના. એ ખંડ હિન્દની મર્યાદા

---

* અમદાવાદની ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટીના વાર્ષિક સભા સમક્ષ તા. ૨૫–૮–૪૦ ના દિવસે આપેલું વ્યાખ્યાન.

બાંધી શકે છે. એનાં પ્રાકૃતિક તત્ત્વો એને આસપાસના પ્રદેશોથી નિરાળો બનાવે છે. એ જ વિશિષ્ટતાઓ એમાં રહેતાં સ્ત્રી–પુરુષોના શરીર, દૃષ્ટિ, જીવન ને સંસ્કાર ઘડે છે, અને એમને એક તરફ અફઘાનો ને ઈરાનીઓથી અને બીજી તરફ ચીનાઓથી જૂદા પાડે છે.

ભૌગોલિક વિશિષ્ટતાના નિર્ણયાત્મક તત્ત્વોથી એક પ્રદેશના લોકોમાં નીરાળાપણું આવે છે છતાં એનાથી જ લોકોનું જીવન ઘડાય છે એમ કહીએ તો તે યોગ્ય નથી. એ તત્ત્વોનું બળ બીજાં બળો કમી કરી શકે છે ને નાબૂદ પણ કરી શકે છે. માત્ર એટલું કહી શકાય કે કેટલાંક ભૌગોલિક તત્ત્વો લોકજીવન પર એક પ્રકારની અસર કરી શકે છે. પણ એ તત્ત્વો જ્યાં હોય ત્યાં એ અસર ન જણાય તો બીજાં બળોની શોધ કરવાની રહે છે.

ગુજરાતમાં ફળદ્રુપ જમીન છે, ને બિહારમાં પણ છે. છતાં બન્ને પ્રાન્તના લોકો નિરાળા છે. દક્ષીણ ગુજરાત, સાતપૂડા અને ઘાટને લીધે, મહારાષ્ટ્રથી જૂદું છે. છતાં મુંબાઈની દક્ષિણે પર્વતની બન્ને બાજુ મહારાષ્ટ્ર છે. સાગરતીરે વસતી પ્રજા પ્રવૃત્તિમય ને સમૃદ્ધશાળી બને છે, તો પણ આપણે ઘણાય સમુદ્ર-કિનારા શક્તિ ને સમૃદ્ધિ-વિહીન જોઈએ છીએ.

એટલું તો નિઃસંદેહ છે કે હિન્દ દેશ છે, કારણ કે એ ભૌગોલિક વિશિષ્ટતાવાળો પ્રદેશ છે. એ પ્રદેશમાં વસતા લોકોમાં એકતાનતા ન હોય તો તે દેશ ન ગણાય. એ એકતાનતા માત્ર ભૂગોલઘડી નથી. એ ઘડનાર તો આપણા ઇતિહાસ-પ્રસંગો ને આપણી સંસ્થાઓને સર્જનાર બળો છે.

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ થાય છે કે 'હિન્દ'નો ઇતિહાસ એટલે 'હિન્દ' પ્રદેશનો નહી. પ્રદેશ પરાક્રમ કરતો નથી. અનાવૃષ્ટિ ને ભૂકંપ સિવાય પ્રદેશ પર ઝાઝી વિપત્તિઓ પડતી નથી. પ્રદેશમાં થયેલા ફેરફારો તો ભૂસ્તરશાસ્ત્રનો વિષય છે.

અમુક પ્રદેશમાં વસતા લોકોના વિશિષ્ટ સંસ્કારોને લીધે એ પ્રદેશને અવલંબીને જે પ્રવૃત્તિઓ યુગે યુગે યોજાય તેનાથી ઉદ્ભવેલી–પ્રદેશથી નોખી નહીં છતા પ્રદેશથી નિરાળી–જીવંત વ્યક્તિ, તે દેશ.

: 3 :

હિન્દના કહેવાતા 'ઇતિહાસો' માં ઘણુંખરું કોઈ એક પ્રાન્ત કે કોઈ એક રાજકુલનો ઇતિહાસ હોય છે. કોઈકમાં દિલ્હીની સલ્તનતની તવારીખો હોય છે, તો કોઈમાં મોગલ ને અંગ્રેજ સામ્રાજ્યની કથા હોય છે. પણ એ બધાનો વિષય હિન્દનો ઇતિહાસ છે એમ ન જ કહી શકાય.

ઇતિહાસ એ રાજાઓ ને વિજેતાઓના પરાક્રમોની કથા નથી. ખરું જોતાં ઐતિહાસિક નવલકથાકારો કે દરબારી સાહિત્યકારોની કીર્તિગાથાનો એ વિષય છે. આ કથાઓનો ખરો ઉપયોગ લોકના સ્મરણભંડારને સમૃદ્ધ કરી તેમને સામુદાયિક પ્રવૃત્તિ

તરફ દોરવાનો છે. જેટલે અંશે એ ઉપયોગ થાય તેટલે જ અંશે એક પરાક્રમકથાનું ઇતિહાસમાં સ્થાન હોઈ શકે.

એક દેશમાં રાજ્યો ઊગે ને આથમે, પણ જો તેમની અસર લોકોના જીવન ને ભાવી પર ન થાય તો તેનું સ્થાન ઇતિહાસમાં ન જ હોય. સાહિત્ય, વિચાર ને સંસ્કાર જે લોકજીવનનાં અંગ છે, તેનું સ્થાન તો ઇતિહાસમાં હોવું જ જોઈએ. સામાજિક ને રાજકીય સંસ્થાનું સ્થાન પણ અવશ્યનું છે. એ બધાં લોકજીવનનાં કલેવર છે.

લોકજીવનની સળંગ કથા તે ઇતિહાસ. જીવનપ્રણાલીના આદર્શરૂપ બને તેવા મહાપુરુષોનાં જીવન ને પરાક્રમોનો એમાં સમાવેશ થવો જોઈએ. ભૌગોલિક ને આર્થિક પરિસ્થિતિએ લોકો પર જે વિશિષ્ટ અસર કરી હોય તેનું પણ દર્શન એમાં થવું જોઈએ. લોકજીવન પર અસર કરનારાં બળો ને સંજોગો; તેના નિર્માતારૂપ રાજકીય ફેરફારો ને વિપત્તિઓ; લાક્ષણિક સામાજિક સંસ્થાઓ, માન્યતાઓ ને ઘટનાઓ; સાહિત્ય ને કલાના ક્ષેત્રમાં મેળવેલી સિદ્ધિ: આ બધાં પણ અગત્યના અંગ છે. પણ ઇતિહાસ તો દેશના લોકનો; એટલે કે લોકસમૂહની એકતાનતા સર્જનાર ને સમૃદ્ધ કરનાર વિચારો, આદર્શો ને સંસ્કારનો.

ઇતિહાસ એટલે લોકો એકતાનતા પ્રાપ્ત કરવા માટે જે સામુદાયિક ઇચ્છાશક્તિ વ્યક્ત કરે તેનો, અને તે શક્તિને સર્જનાર મૂલ્યોનો.

આ મૂલ્યોની તપાસ, આંકણી ને વર્ણન: એ મૂલ્યો વડે પ્રગટતી સામુદાયિક ઇચ્છાશક્તિની દિશાનું સંશોધન ને પૃથક્કરણ; અને એ ઇચ્છા-શક્તિ કેવી રીતે જીવનની અનેકવિધ પ્રવૃત્તિઓ મારફત વ્યક્ત થાય છે તેનું દિગ્દર્શન—તે ઇતિહાસ.

હિન્દનો આવો ઇતિહાસ હજી લખાવાનો છે.

૪

આપણા ઘણાખરા ઇતિહાસોમાં આ દૃષ્ટિ હોતી જ નથી. એમાં કેટલાક પ્રસંગો કે કેટલાક યુગોનું વર્ણન આવે છે, પણ ઉપર દર્શાવેલ હિન્દની દૃષ્ટિએ નહીં. ઘણે ભાગે એ ઇતિહાસકારોની દૃષ્ટિ તો પરદેશી સામગ્રી વડે ઘડાઈ હોય છે, હિન્દી કરતાં હિન્દેતર વધારે હોય છે. પરિણામે કેટલાક પ્રસંગો પર વધુ પડતો ભાર મુકાય છે અને આખો ઇતિહાસ વિકૃત બને છે.

દૃષ્ટાંત તરીકે ડોડવેલનો કમ્બ્રિજનો ટૂંકો હિન્દી ઇતિહાસ લઈએ. આપણા સારામાં સારા ગણાતા ઇતિહાસોમાંનો તે એક છે. એનો પહેલો ભાગ ૨૦૧ પાનાં રોકે છે. એમાં ઈ. પૂ. ૨૦૦૦ થી માંડી ઈ. સ. ૧૦૦૦ એટલે ૩૦૦૦ વર્ષનો ઇતિહાસ સમાયો છે. એમાં લોકોનો ખરો ઇતિહાસ નથી, તેમની સામુદાયિક પ્રવૃત્તિની કથા નથી. એમાં સમગ્ર જીવન જોડે અસંબદ્ધ એવી થોડા રાજાઓના પરાક્રમોની કથા માત્ર છે.

કૅમ્બ્રિજના આ ટૂંકા ઇતિહાસમાં, ૨૭ પાનામાં મગધના પહેલા હિન્દી સામ્રાજ્યનો ઇતિહાસ છે. તેનો કાલ ઈ. પૂ. ૭૦૦ થી ઈ. પૂ. ૧૪૯ સુધી વિસ્તરે છે; એટલે કે ૫૫૧ વર્ષ. તે ૨૭ પાનાંમાંથી ૭ પાનાં તો યવન વિજેતા, જેનું આક્રમણ થોડા મહિના

ચાલ્યું ને જેણે માંડમાંડ પંજાબનો એક ટૂકડો જીત્યો અને જેને થાકી હારી પાછાં જવું પડ્યું, તેને વિશે રોક્યાં છે.

એમ કહી શકાય કે હિન્દના ઇતિહાસના બધા સમયને સળંગ ન્યાય આપી શકાય એવાં સાધનો નથી. સિકંદર સંબંધી ગ્રીક સાહિત્યમાં ઘણું લખાયું છે ને ગ્રીક લોકોને હાંકી કાઢનાર ચંદ્રગુપ્ત વિશે કંઈ મળતું જ નથી. તો વાસ્તવિક માર્ગ તો એ છે કે એ સાધનોને માટે જુદા પુસ્તકો લખાય. એનો માર્ગ એ નથી કે આખા હિન્દનો ઇતિહાસ એવા એકપક્ષી સાધનોથી વિકૃત બને.

બીજા ભાગમાં તો હિન્દનો ઇતિહાસ મુદ્દલ જ નથી. એમાં પ્રશંસાત્મક મુસ્લિમ તવારીખોએ પૂરી પાડેલી સામગ્રી પર રચાયલી મુસ્લિમ વિજેતાઓની વાતો છે. આ કંઈ હિન્દનો ઇતિહાસ ન કહેવાય. એ ઇતિહાસમાં તો આ દેશના લોકોનો ઇતિહાસ આવે: જેમણે પરદેશી આક્રમણનો પ્રતિરોધ કર્યો અને પર-સંસ્કારો ઓગાળી તેમને પોતાના કર્યા તેમનો.

૧૧૮૬ થી ૧૮૦૦ સુધી લોકો પર પડેલી વિપત્તિઓને લીધે તેમણે શું સહ્યું, શું વિચાર્યું, શું ફેરવ્યું, શું શું ઘડ્યુ ને ભાંગ્યું તેનો એમાં ઇતિહાસ નથી. મુસ્લિમ રાજ્ય-સત્તાઓના સ્પર્શથી જે પુનર્ઘટના થઈ તેની રૂપરેખા પણ એમાં નથી.

ત્રીજા ભાગનું શીર્ષક બ્રિટિશ હિન્દ છે. તે ૪૨૧ પાનાં રોકે છે: એટલે કે પુસ્તકનો લગભગ અડધો ભાગ. અને ખરું જોતાં એનું નામ તો 'યુરોપીય દિગ્વિજય આખ્યાન' જ આપી શકાય. પુસ્તકના ૯૦૮ પાનાંમાંથી ૩૮૬ પાનાં ૧૭૪૦ થી ૧૯૨૦ સુધીનાં બ્રિટિશ લોકોનાં પરાક્રમોની વાતોથી ભર્યાં છે આ ૧૮૦ વર્ષમાં 'હિન્દ' શું હતું તેની કથા એમાં નથી. આપણા લોકોએ શું જોયું, શુ સહ્યું ને શું અનુભવ્યું તે એમાં નથી. એ સમયમાં લોકો પર શું અસર થઈ અને પરદેશી સત્તા અને સંસ્કારને સાનુકૂલ કે પ્રતિકૂલ થવા તેમણે શું કર્યુ તેનો ઇતિહાસ પણ નથી. બ્રિટિશ સંપર્કથી શી શી વ્યવસ્થાઓ લોકોએ રચી, મૂલ્યોનાં શાં પરિવર્તન કર્યાં તે પણ એમાં નથી.

૧૮૫૮ થી ૧૯૧૯ સુધીનાં છેલ્લાં ૧૭૫ પાનાં તો અંગ્રેજી સરકારી Administration Reports ના જેવાં લાગે છે, જેમાં સ્વ. દાદાભાઈ નવરોજીનું નામ એક વાર આવે છે, અને મહાત્મા ગાંધી માત્ર એકવાર શોભે છે, પણ તે એમ. આર. ગાંધી તરીકે!

ઇતિહાસકાર હિન્દની બહાર ઊભો છે. બીજાઓએ હિન્દ પર શી વિધિઓ કરી તેનું પ્રશંસામુગ્ધ દાસ્તાન તે આપ્યે જાય છે. હિન્દ બહારનાઓ પ્રત્યે કેમ વર્ત્યું, તેની એને ઝાઝી પરવા નથી. આને હિન્દનો ઇતિહાસ કહેવાય!

આ પરિણામ આવ્યું તેનું કારણ એ કે ઇતિહાસકારની દૃષ્ટિ આગળથી તેનું મુખ્ય ધ્યેય ખસી ગયું. હિન્દનો ઇતિહાસ લખવાને બદલે પરદેશીઓએ હિન્દમાં શું શું કર્યું એ લખવા તે બેસી ગયો. વળી પરદેશીઓએ સારી રીતે જાળવી રાખેલી સામગ્રી-ઓનો એ ભોગ બની ગયો અને તેથી પરદેશી વિજેતાઓની કીર્તિગાથાનો સારાંશ કાઢવામાં જ એ નિમગ્ન બન્યો.

* ૫ *

હિન્દનો ઇતિહાસ યુરોપીય વિદ્વાનોએ લખવો શરૂ કર્યો. તેમને મન હિન્દ એક જંગલી દેશ હતો. એના પર તેઓ રાજ્ય કરતા હતા. આને લીધે આપણા ઇતિહાસમાં એક ભયંકર વિકારદૃષ્ટિ પેસી ગઈ. પરિણામે હિન્દનો ઇતિહાસ પરદેશી આક્રમણની કીર્તિગાથા બની ગયો.

આર્યોનું જૂનામાં જૂનું શાસ્ત્ર ભલે હિન્દમાં રચાયું હોય. ભલે ઋગ્વેદસંહિતામાં આર્યો પરદેશી છે, એવું નામનિશાન પણ ન હોય. ભલે પુરાણોમાં સંઘરેલાં સ્મરણો પ્રમાણે આર્યો અહીંયાં વસતા હોય. પણ આર્યોનો મૂલ વસવાટ અહીંયાં સંભવે જ નહીં!

પરિણામે પહેલાં સરસ્વતીને તીરે અસલી આર્યાવર્ત હતું, તે ઓક્સસને કિનારે ગયું. પછી તિગ્રિસ ને યુફ્રેતિસને કિનારે પહોંચી ગયું.

મોનીયર વિલિયમ્સ તેને પામીરમાં લઈ આવ્યો. ૧૮૫૧ માં લેથામ આર્યાવર્તને યૂરોપમાં ખેંચી ગયો. ગેગર તેને જર્મનીમાં લઈ ગયો. પેન્કા સ્વીડનમાં ધકેલી ગયો. શ્રેડરે તેને રશિયામાં ઘસડયું. ડી મોરગન સઇબીરિયા ઉપાડી ગયો. લોકમાન્ય તિલક ઉત્તર ધ્રુવ પહોંચી ગયા! પરદેશથી ન આવ્યા હોય તો હિન્દમાં આર્યો વિજય કેમ કરત!

હજી કેટલાક ઇતિહાસકારો ઈરાની સમ્રાટ દારાયૂષે હિન્દ જીત્યું તેની નોંધ કરે છે. ખરી વાત એટલી જ કે ઈ. પૂ. ૫૧૬ પછી સિંધુના પશ્ચિમ તીર સુધી ઈરાની લશ્કર આવ્યું હતું ને થોડાં વર્ષ સુધી એક નાનકડો પ્રદેશ તાબે રાખ્યો હતો. આખું હિન્દ સ્વતંત્ર પડયું હતું તેની ક્યાં કોઈને પરવા હતી?

સિકંદરના આક્રમણની પણ એ જ કથા. ગાંધારના આર્ય રાજાને મદદ કરવા એ યવન વિજેતા આવ્યો. એણે પંજાબના થોડાક નાના રાજાઓને હરાવ્યા. નન્દોની સાથે બાથડવા કરતાં ઝપાટાબંધ એ પાછો ચાલ્યો ગયો. પુરુ ને આંભી સ્વતંત્ર રાજા બની ગયા અને પાછળ રહેલા યવન સૈન્યને જુવાન ચંદ્રગુપ્તે હાંકી કાઢયું. અને ત્રણસો વર્ષથી મગધમાં શૈશુનાગે ને નન્દોએ જે સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું હતું, તેની મહત્તા તો સિકંદરના દિગ્વિજયનો એક ઉપસંહાર બની રહે છે! આ નાનકડા આક્રમણની શી મહત્તા!

તે જ પ્રમાણે ૭૧૨ માં મહમૂદે સિંધનો થોડો ભાગ લીધો એટલે મુસ્લિમ આક્રમણો શરૂ થયાં. ત્રણસો વર્ષ પછી મહમૂદ ગઝનીએ વીશ વાર હુમલા કર્યા ત્યારથી તો ઇતિહાસકાર હિન્દનો ઇતિહાસ લખવાનું છોડી ગઝનીનો ચારણ બની બેસે છે.

સોમનાથના આક્રમણને પણ કેટલી મહત્તા અપાય છે! મુસ્લિમ તવારીખોની અતિશયોક્તિભરી કહાણીઓમાં તથ્ય કેટલું છે એ હજુ તપાસાયું નથી. ખરું જોતાં આટલી જ હકીકતો સત્ય લાગે છે:

(૧) આશરે ૧૦૨૫ માં મહમૂદે ગુજરાત પર આક્રમણ કર્યું ત્યારે તેને હિન્દી રાજાઓની બીકે રણમાંથી આવવું પડયું.

(૨) ગુર્જરેશ્વર ભીમે તેને સતાવ્યો હોવાથી એને કચ્છના રણને વાટે પાછું જવું પડયું.

(૩) એણે સોમનાથનું મન્દિર તોડયું.

(૪) એ આવ્યો ને ગયો તો પણ ગુજરાતનું રાજકીય, સામાજિક ને ધાર્મિક જીવન અભંગ જ રહ્યું. એ આક્રમણ એવું ભયજનક નહોતું કે હેમચંદ્ર, સોમેશ્વર કે મેરુતુંગ જેવા આપણા ઇતિહાસકારોને તેની નોંધ લેવી પડે.

(૫) ગુજરાતની સત્તા કે સમૃદ્ધિમાં ફેર પડ્યો નહોતો. ૧૦૩૦ માં ભીમ કચ્છ પર રાજ્ય કરતો હતો અને ૧૦૩૨ માં એનો મંત્રી વિમલ આબુ પર આદિનાથનું મંદિર બંધાવતો નજરે પડે છે.

(૬) ત્યાર પછી મહમૂદે હિન્દ જીતવાનાં સ્વપ્નાં છોડી દીધાં, અને ૧૬૦ વર્ષ સુધી ફરી પરદેશી હુમલો ન આવ્યો.

મહમૂદના સોમનાથ પરના આક્રમણ અને નેપોલિયનના મોસ્કો પરના આક્રમણમાં ઘણું સામ્ય છે. બંને મહત્ત્વાકાંક્ષી આક્રમણો હતાં; બન્ને પરાજયમાં પરિણમ્યાં. નેપોલિયન પ્રકૃતિનો થકવ્યો પાછો હઠ્યો. મહમૂદે રૂઠેલા દુશ્મનોની સામે થવા કરતાં પ્રકૃતિના ભોગ થવાનું પસંદ કર્યું. પણ મોસ્કોનું આક્રમણ વર્ણવતાં રશિયન ઇતિહાસકાર ફ્રેન્ચદૃષ્ટિ કેળવે એ યુરોપમાં તો અસ્વાભાવિક. હિન્દમાં ઇતિહાસકારો પરદેશી આક્રમણકારના પ્રશંસકોની દૃષ્ટિએ એ આક્રમણ વર્ણવે એમાં આપણને નવાઈ પણ નથી લાગતી.

તે જ પ્રમાણે ૧૧૮૬ થી ૧૪૦૦ સુધીના સંઘર્ષણકાલનો ઇતિહાસ લખાયો છે. ઐબક, ઇલ્તુતમિશ, અલ્લાઉદ્દીન ખીલજી ને મહમદ તઘલખે દિલ્હીની સલ્તનતને સામ્રાજ્યનું કેન્દ્ર બનાવવાના પ્રયાસો કર્યા. પણ એ દરેક વિજેતા વિદેહી થતાં દિલ્હી માત્ર એક નાનું રાજ્ય જ બની રહ્યું. ઈ. સ. ૧૩૯૯ માં તૈમૂરે દિલ્હી લૂંટયું ત્યારે દિલ્હીની સલ્તનત પરવારી ગઈ. આ પરિણામ આવ્યું તે હિન્દીઓના જ્વલંત સ્વાતંત્ર્યપ્રેમથી. ખરું જોતાં એ સમયનાં દિને દિન હિન્દી વીરતાના પુનિત રુધિરથી છંટાયા છે.

ઘણા ઇતિહાસોમાં એ વિજેતાઓએ કેટલું જીત્યું તેના નકશા આપવામાં આવે છે; પણ એમના મરણ પછી એમનું રાજ્ય કેટલુ રહ્યું તેના નકશા હજી આપણે દોરવાના છે. એ દોરવાથી જ માલમ પડશે કે દિલ્હી સામે જે સતત વિરોધ થતો તેને કેટલી સફળતા મળી.

આ વિરોધના બે મુખ્ય અંગો: એક તો સતત સેવેલાં યુદ્ધો અને બીજું સામાજિક ને સાંસ્કારિક પ્રતિરોધ.

દિલ્હીની સલ્તનત એ પરદેશી રાજ્ય ન હતું. પરદેશીઓના આખા લોકસમૂહે આવીને એ રાજ્ય નહોતું સ્થાપ્યું. દિલ્હી, બંગાળ, ગુજરાત ને સિંધના રાજકર્તાઓ પરદેશી નહોતા અને પોતાની જાતને પરદેશી ગણતા નહોતા. એ અસલ રાજકર્તાઓમાં પરદેશીઓ ગણ્યાગાંઠ્યા હતા. એમના રાજ્યોમાં હિંદુ અને મુસ્લિમો વચ્ચે

સંબંધ પણ જેવો આપણને શીખવવામાં આવે છે એવો કડવો નહોતો. એ સંબંધનો ઇતિહાસ હજી આપણે લખવાનો છે.

મુગલ સમ્રાટોએ તો હિંદુ–મુસ્લિમ સંસ્કારોનો સમન્વય આરંભ્યો હતો, અને એમની સત્તા પણ બન્ને કોમો પર અવલંબતી હતી. એ તો હિંદુ–મુસ્લિમ એકતાનો કબીર ને ચૈતન્યની પ્રેરણાનો યુગ. એમાં પ્રાંતેપ્રાંતે બે સંસ્કાર ને બે ધર્મે મૈત્રી સાધી હતી. પણ તે સમયના ઇતિહાસમાં સમન્વય શોધવા કરતાં વૈમનસ્ય શોધવામાં આપણા ઇતિહાસકારો મોજ માને છે.

ઈ. સ. ૧૬૭૫ થી તો હિન્દુઓએ સામ્રાજ્ય સ્થાપવાના પ્રયત્નો આદર્યા. અને પરદેશીઓ અને તેમની વચ્ચે ૧૮૫૭ સુધી વિગ્રહ ચાલ્યો. ઘણાખરા ઇતિહાસોમાં આ સમયનો ઇતિહાસ ઈસ્ટ ઇંડિયા કંપનીની કારકિર્દીનું સ્વરૂપ લે છે; આ દેશની પ્રજાનું શું થયું એ જરાય જણાતું નથી. અને ૧૮૫૭ માં પરદેશી સામ્રાજ્ય સ્થપાયું ત્યારથી પ્રજાનો ઇતિહાસ તો ઇતિહાસ સિવાયના બીજા સાહિત્યમાંથી શોધવો પડે છે.

હિન્દુના ઇતિહાસમાં હિન્દુનું જ દૃષ્ટિબિંદુ રાખવું જોઈએ એ સૂત્ર આપણા લેખકોના ધ્યાનમાં નથી.

* ૬ *

હિન્દના ખરા ઇતિહાસકારને નવા સિદ્ધાંતો શીખવા પડશે. જે સાધનો મળતાં હોય તેના તરફ પહેલાં ધ્યાન આપવું પડશે. પરદેશી સાધનોને ઝીણવટથી તપાસી હિન્દી સાધનની કસોટીએ ચઢાવવાં પડશે. પરદેશી સાધનો વધારે મળે છે માટે કોઈ એક પ્રસંગને પ્રમાણ વિનાનું સ્થાન આપતાં અચકાવું પડશે.

આપણા ઇતિહાસોમાં યુગો પાડવામાં આવે છે એ પણ અસ્વાભાવિક હોય છે. રાજકુલ બદલાય તેથી યુગ નથી બદલાતો. યુગ તો કાલનો એક વિભાગ છે. નવાં બળો ને નવી પરિસ્થિતિને લીધે યુગ જન્મે છે. એ પ્રચલે ત્યાં સુધી તે જ બળો ને પરિસ્થિતિની અસર પહોંચે છે. અને જ્યારે તેમની અસર નષ્ટ થાય અને નવાં બળો ઉદ્ભવે ત્યારે તે સંકેલાઈ જાય છે. એ યુગના ટૂકડા કરે ઇતિહાસકારની દૃષ્ટિ અંધારી બને છે.

આપણા ઇતિહાસના એવા યુગો સહેલાઈથી પાડી શકાય.

પહેલો યુગ આર્યોના વિજયથી અને હિન્દી સંસ્કારના જન્મથી શરૂ થાય છે. દિવોદાસથી જનમેજય પારિક્ષિત સુધી એ ગણી શકાય.

બીજો યુગ શિશુનાગે (ઈ. પૂ. ૭૦૦) મગધમાં પહેલું હિન્દી સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું ત્યારથી શરૂ થઈ એ સામ્રાજ્ય ઈ. પૂ. ૧૪૯ માં પુષ્યમિત્ર પછી ક્ષીણ થઈ ગયું ત્યાં સુધી વિસ્તરે છે. આખા દેશની વ્યવસ્થા આ યુગમાં થઈ.

ત્રીજો યુગ આંતરરાષ્ટ્રીય સમાગમનો અને સાંસ્કારિક વિસ્તારનો. તે ઈ. પૂ. ૧૫૦ થી શરૂ થાય છે અને ઈ. સ. ૩૦૦ ના અરસામાં ચંદ્રગુપ્તે ગુપ્ત સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું ત્યારે આથમે છે.

ચોથો યુગ હિન્દનો સુવર્ણયુગ છે. બીજું એમાં હિન્દી સામ્રાજ્યની કથા છે. ઈ. સ. ૩૦૦ થી ૬૫૦ સુધી તે પ્રચલે છે. એમાં હિન્દી શક્તિ ને સંસ્કારનો મધ્યાહ્ન નજરે ચઢે છે.

પાંચમો યુગ ૬૫૦માં, એટલે શ્રીહર્ષના અવસાન પછી શરૂ થાય છે ને ૧૧૮૬માં, મહમૂદ ઘોરીનાં આક્રમણ શરૂ થયાં ત્યાં સુધી, પ્રવર્તે છે. મધ્યસ્થ સામ્રાજ્યનો અભાવ, પ્રાંતીય અસ્મિતાનો ઉદય અને પ્રાંતીય રાજ્યોના સંઘર્ષણોથી સુવર્ણયુગનાં બળો જુદાં સ્વરૂપ લે છે ને પરિસ્થિતિમાં ફેરફાર કરે છે. પણ સાંસ્કારિક એકતાનતા વધે છે.

છઠ્ઠો યુગ ૧૧૮૬ થી ૧૪૦૦ સુધીનો. એ પ્રતિરોધ-કાલ છે. કાન્હડદે પ્રબંધમાં એનું અદ્ભુત ચિત્ર છે. એમાં જૂનાં બળોનો અને નવી ઘટનાનો ઉદય જોવામાં આવે છે.

સાતમો યુગ ઈ. સ. ૧૪૦૦ થી ૧૭૦૦ સુધી વિસ્તરે છે. એ હિન્દુ-મુસ્લિમના સહકાર પર રચાયલા મુગલ સામ્રાજ્યની જાહોજલાલીનો સમય છે. સાંસ્કારિક પુનર્ઘટના પણ આ જ યુગમાં. ભક્તિ કે પ્રાંતીય સાહિત્યોનો ઉદય પણ આ જ યુગમાં. રાજકીય બળોને નાના ક્ષેત્રોમાં અલગ રાખી સાંસ્કારિક ક્ષેત્રનો સફળ વિકાસ લોકોએ આ જ યુગમાં સાધ્યો.

સાતમો યુગ ૧૭૦૦ થી ૧૮૫૭ સુધીનો છે. એ અંધાધુંધીનો સમય. એનું મુખ્ય વસ્તુ તો હિન્દુ અને અંગ્રેજો વચ્ચે હિન્દનાં સામ્રાજ્ય માટે જે વિગ્રહ થયો તે છે. ૧૬૭૪ માં શીવાજી ગાદીનશીન થયા. ૧૬૭૫ માં ગુરુ ગોવિંદસિંહે ખાલસા સ્થાપ્યું. ૧૬૮૧ માં રજપૂતો મુગલ સામ્રાજ્યના વિરોધી થયા ત્યારથી હિન્દુ સામ્રાજ્ય સ્થાપવાના પ્રયત્નો થયા, અને ૧૮૫૭માં તે નિષ્ફળ ગયા.

આઠમો યુગ ૧૮૫૭ થી અત્યાર સુધીનો; એ છેલ્લો યુગ. પરદેશી સત્તાને બળે પ્રસરેલી આંતર-શાંતિ, પરાધીનતા, સંસ્કાર-સંઘર્ષણ અને રાષ્ટ્રત્વના ઉદયનો યુગ.

આ દરેક યુગમાં સામુદાયિક પ્રવૃત્તિ હતી. એ પ્રવૃત્તિ પાછળ એકાગ્ર બનેલી સામુદાયિક ઇચ્છાશક્તિ હતી, જેને પ્રતાપે સામુદાયિક વ્યવસ્થા રચાઈ ને સર્વવ્યાપી સંસ્થાઓ ઊભી થઈ. અને યુગેયુગે મૂલ્યો ઉદ્ભવ્યાં ને પ્રેરણા વડે જીવન ઉત્કૃષ્ટ કરી ગયાં.

આ બધાની કથા ક્યારે લખાશે? ભારતીની આવી આત્મકથા ક્યારે આપણાં બાળકોની કલ્પના પોષશે? તેણે દીધેલી પ્રેરણાથી ક્યારે આપણી દૃષ્ટિ નિર્મલ બનશે? પરદેશીઓના દૃષ્ટિવિકારથી આપણું ઇતિહાસ-સાહિત્ય વિમુક્ત થશે ત્યારે તે માના દૂધસમું જીવનદાતા થશે. ત્યારે આપણા પૂર્વજો વિશેના સાહાનુભૂતિપૂર્ણ જ્ઞાનથી આપણું આત્મજ્ઞાન વિશુદ્ધ ને સમૃદ્ધ થશે. ત્યારે આપણા ઇતિહાસનાં પુસ્તકોમાંથી તરી આવશે સાગરકન્યા સમી ભારતમાતા -યુગે યુગે ઉજ્જ્વલ, પ્રેરણાના પયથી ભાવીને પોષતી, ઘડતી ને સુવર્ણકાન્તિ કરતી.

*

ग्रन्थावलोकन

अकलंकग्रन्थत्रयम् – संपादक, न्यायाचार्य पं. महेन्द्रकुमार शास्त्री

[प्रका० सिंघी जैन ग्रन्थमाला – पृष्ठ ६+७+११६+१८२+६० किंमत रु. पांच]

*

આર્યસંસ્કૃતિના સુરેખ ખ્યાલ અને ઉચિત મૂલ્યાંકન માટે જૈન અને બૌદ્ધ વાઙ્મયનો તલસ્પર્શી અભ્યાસ આવશ્યક છે એ સત્ય હવે સ્વીકારાવા અને સમજાવા લાગ્યું છે. એના ફલસ્વરૂપ, અનેકાનેક ગ્રંથમાલાઓ સ્થપાઈ છે જેમાં સિંઘી જૈન ગ્રંથમાલા, માણિકચંદ્ર દિગંબર જૈન ગ્રન્થમાલા, પરમશ્રુત પ્રભાવક મંડળ, કારંજા જૈન સીરીઝ અને પાલી ટેક્સ્ટ સોસાયટી મુખ્ય છે. મુનિશ્રી જિનવિજયજી, પંડિત પ્રેમી અને પં. જુગલકિશોરજીએ ઇતિહાસની ગંભીર ગવેષણા અને નિષ્પક્ષ સંશોધન કરી, પંડિત સુખલાલજી, પં. મહેન્દ્રકુમારજી અને પં. દલસુખભાઈએ જૈન તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક પાંડિત્યપૂર્ણ સંપાદન કરી, અને પં. બેચરદાસજી, પ્રો. ડૉ. એ. એન. ઉપાધ્યે અને પ્રો. હિરાલાલ જૈને, જૈનસાહિત્યના અપ્રકટ ગ્રંથોનું સૂક્ષ્મ દ્રષ્ટિથી–તુલનાપૂર્વક–વિદ્વત્તાયુક્ત સંપાદન કરી, તેમ જ પં. બેચરદાસજીએ વ્યાકરણ લખી, પં. હરગોવિંદદાસે પ્રાકૃત કોષ રચી અને પં. લાલચંદ્રજીએ અપભ્રંશ કાવ્યત્રયી જેવા ગ્રંથનું સંપાદન કરી સાહિત્યપ્રિય જનતા ઉપર જે ઉપકાર કર્યો છે તે વસ્તુતઃ અત્યંત પ્રશંસનીય છે.

સિંઘી જૈન ગ્રન્થમાલાના પ્રબંધચિંતામણ્યાદિ, માણિકચંદ્ર દિગંબર જૈન ગ્રન્થમાલાના વરાંગચરિત, પરમશ્રુત પ્રભાવક મંડળના પ્રવચનસાર, કારંજા જૈન સીરીઝના કરકંડુચરિઉ વગેરે ગ્રંથોએ જૈન સંસ્કૃતિને સમગ્રપણે સમજવાની એક જૂદી જ અને જરૂરની દિશા ખોલી છે એ હવે ભાગ્યેજ કહેવાની જરૂર હોય.

શ્રીમદ્ ભટ્ટ અકલંકદેવની ત્રણ અપૂર્વ કૃતિઓના સંગ્રહરૂપ પ્રસ્તુત ગ્રન્થ "અકલંકગ્રન્થત્રયમ્" સિંઘી જૈન ગ્રન્થમાલાનું જાજવલ્યમાન, બહુમૂલું બારમું મણિ છે. "અકલંકગ્રન્થત્રયમ્" એટલે લઘીયસ્ત્રયમ્, ન્યાયવિનિશ્ચય અને પ્રમાણસંગ્રહ. સિંઘી જૈન ગ્રંથમાલાના બહુશ્રુત સંચાલક શ્રી મુનિ જિનવિજયજીનું પ્રાસ્તાવિક, પાંડિત્યની સાક્ષાત્ મૂર્ત્તિ પ્રજ્ઞાચક્ષુ પં. સુખલાલજીનું પ્રાક્કથન, ગ્રન્થ–મણિના પ્રકાશને સર્વવ્યાપી સર્વભોગ્ય બનાવે છે. ગ્રન્થસમ્પાદકની પાંડિત્યથી છલબલતી પ્રસ્તાવના, સંસ્કૃત ભાષામાં લખેલાં તાત્પર્ય, ઐતિહ્ય અને તુલનાયુક્ત ટિપ્પણો અને નવ પારશિષ્ટોમાં ગ્રન્થકાર અને ગ્રન્થ વિષે જે કાંઈ કહેવા જેવું છે તે બધું આવી જાય છે.

"લઘીયસ્ત્રય" માં ૭૮ ગાથા છે અને પ્રમાણપ્રવેશ, નયપ્રવેશ અને પ્રવચનપ્રવેશ એવા ત્રણ પ્રવેશો છે. "ન્યાયવિનિશ્ચય" માં ૪૮૦ ગાથાઓ છે. તથા પ્રત્યક્ષ પ્રસ્તાવ, અનુમાન પ્રસ્તાવ, અને પ્રવચન પ્રસ્તાવ એવા ત્રણ પ્રસ્તાવો છે. "પ્રમાણસંગ્રહ" નવ પ્રસ્તાવમાં વિભક્ત ૮૭ ગાથાનો બનેલો પ્રકરણગ્રંથ છે. પ્રસ્તુત ગ્રંથ-

ત્રયમાં લઘીયસ્ત્રય અકલંકદેવની પ્રથમ કૃતિ છે અને પ્રમાણસંગ્રહ અંતિમ કૃતિ છે. લઘીયસ્ત્રયમાં પાંડિત્યપ્રવાહ ધીરો ચાલે છે જે પ્રમાણસંગ્રહમાં ગંભીર અને પ્રૌઢ બને છે. અકલંકદેવનાં વાક્યવિન્યાસ અને પ્રતિપાદનશૈલી એટલાં દુર્બોધ અને જટિલ છે કે સિદ્ધહસ્ત ન્યાયશાસ્ત્રમર્મજ્ઞ પણ ટીકારૂપી આલંબન વિના સીધી રીતે તો પ્રવેશ જ ન કરી શકે. સ્વોપજ્ઞવૃત્તિયુક્ત ૭૮ ગાથાના બનેલા નાનકડા લઘીયસ્ત્રય ઉપર પ્રભાચંદ્રાચાર્યને અર્થસ્ફોટ માટે ૧૮ હજાર શ્લોકપ્રમાણ મહાકાય ટીકા લખવી પડી હતી એ જ વસ્તુ અકલંકદેવની સંસ્કૃત વ્યુત્પત્તિ, ન્યાયશાસ્ત્રપારંગતતા અને અજોડ પ્રતિભા બતાવવા પૂરતી છે. ટુંકામાં, એમના ગ્રંથોનાં શાબ્દિક અને આર્થિક શિલાધાર ઉપર ઉત્તરકાલીન આચાર્યોએ જૈનન્યાયનો મહાપ્રસાદ કર્યો હોય એમ જણાય છે.

આવા પ્રકાંડ વિદ્વાન અકલંકદેવની જીવનગાથા એમણે કે એમની પછી તરત જ થએલા કોઈ આચાર્યે લખી નથી એ અત્યંત ખેદજનક છે. એમના જીવન, કવન, દેશ અને સમય જાણવા જે કાંઈ સાધન આપણી પાસે ઉપલબ્ધ છે તેમાં પ્રભાચંદ્રાચાર્યકૃત કથાકોશ અને નેમિચંદ્રાચાર્યકૃત આરાધનાકથાકોશ મુખ્ય છે. ઉક્ત ગ્રંથાનુસાર તેઓ માન્યખેટના રાજા શુભતુંગના મંત્રી પુરુષોત્તમના જ્યેષ્ઠ પુત્ર હતા. તત્ત્વાર્થ રાજવાર્તિકના પ્રથમ અધ્યાયસ્થ અંતિમ શ્લોકાનુસાર તો તેઓ લઘુહવ્વ રાજાના જ્યેષ્ઠ પુત્ર હતા એમ નીકળી આવે છે. અકલંક દેવનો સમય, નિષ્પક્ષ પર્યાલોચના અને પરામર્શ પછી સંપાદક મહાશયે ૭૨૦ ઈ. સ. થી ૭૮૦ ઈ. સ. સુધીનો નિયત કર્યો છે તે અમને લગભગ મંજૂર છે. પણ આ સમય નક્કી કરતી વખતે જિનદાસગણિ મહત્તરના નંદીચૂર્ણિકર્તૃત્વના સંબંધમાં સંપાદકે પ્રસ્તાવનામાં (પૃષ્ઠ ૧૫) કરેલ વિધાન અમને ગ્રાહ્ય નથી. અમે તો ગ્રંથમાલાના સંચાલક મહોદયે કરેલ પ્રાસ્તાવિકગત (પૃષ્ઠ ૪-૫) સપ્રમાણ નિદર્શન સાથે સર્વથા સંમત છીએ. નિશીથચૂર્ણિ, નંદીચૂર્ણિ, અને આવશ્યકચૂર્ણિના કર્તા જિનદાસગણિ મહત્તર જ છે. નિશીથચૂર્ણિમાં આવતો સિદ્ધિવિનિશ્ચયવાળો ઉલ્લેખ અકલંકદેવને નિશીથચૂર્ણિકારના પૂરોગામી ઠરાવે છે અને તેથી કથાકોશગત ઉલ્લેખ તથા મલ્લિષેણ પ્રશસ્તિગત ઉલ્લેખને તથા બીજી બાબતોને ઘટાવવામાં પૂરી આપત્તિ આવે છે એમ સંપાદક માને છે. જો કે એ આપત્તિઓને સંચાલક મહાશય પ્રાસ્તાવિકમાં જે રીતે ટાળવા પ્રયાસ કરે છે તે રીતે તે આપત્તિએ જરૂર ટાળી શકાય.

અમારું આ દ્રઢપણે માનવું છે કે પુષ્પદંતની ગ્રંથત્રયી આ બાબતમાં જરૂર નિર્ણાયક પ્રકાશ નાખી શકે. પુરાણપુરુષોને યાદ કરતી વખતે મહાપુરાણમાં પુષ્પદંત કવિએ અકલંકને પહેલા યાદ કર્યા છે આ અકલંક તે પ્રસ્તુત લઘીયસ્ત્રયાદિના રચયિતા અકલંકદેવ જ છે એ નિર્વિવાદ છે. કૃષ્ણરાજ ત્રીજાના મહામાત્ર ભરતની પ્રેરણા અને પ્રોત્સાહનથી પુષ્પદંતે મહાપુરાણનું નિર્માણ કર્યું હતું. ભરતના અવસાન પછી તેના ત્રીજા પુત્ર નન્ને પણ કવિને ઉચિત સન્માન આપી 'જસહરચરિઉ' રચાવ્યું હતું. કૃષ્ણ ત્રીજાના તુડીગ, શુભતુંગરાય અને વલ્લભનૃપ વગેરે ઉપનામો હતા. મહાપુરાણની ૪૫ સંધિમાં ભરતના વંશને "મહામાત્રાદ્વવંશઃ" તરીકે ઓળખાવે છે. ભરતના

પિતાનું નામ “ઐયણુ” અને પિતામહનું નામ “અન્નય્ય” હતું. ઉપરાંત ભરતનું ગોત્ર કૌંડિન્ય હતું. આ બધા ઉલ્લેખો મહાપુરાણમાં છે. હરિવંશપુરાણની પ્રશસ્તિમાં પણ કૃષ્ણ પહેલાના પુત્રને જિનસેન શ્રી વલ્લભનૃપના ઉપનામથી ઓળખાવે છે (पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपतौ श्रीवल्लभे दक्षिणाम्) શ્રવણ બેલ્ગોલા ઇન્સ્ક્રીપ્શન નં. ૬૭ પ્રમાણે અકલંકદેવ સાહસતુંગના સમકાલીન સિદ્ધ થાય છે. પીટર્સન્સ રીપોર્ટ નં. ૨, પૃ. ૭૯ અનુસાર કૃષ્ણ પહેલાના તેઓ પુત્ર હતા એમ ઠરે છે. સાહસતુંગ, શુભતુંગ, વલ્લભ વગેરે રાષ્ટ્રકૂટવંશીય રાજાઓના સામાન્ય બિરુદો હશે? અને સાહસતુંગ તે જ દંતિદૂર્ગ દ્વિતીય હશે? અને કૃષ્ણ પહેલો અને લઘુહવ્વ એકવ્યક્તિસૂચક નામો હશે? વળી કથાકોશના આધારે તો તેઓ શુભતુંગ રાજાના મંત્રીના જ્યેષ્ઠ પુત્ર હતા. આ બધા ઉપરથી એટલું કાંઈક જણાય છે—જો કે અસ્પષ્ટપણે—કે અકલંક ચાહે રાજપુત્ર હો કે મંત્રીપુત્ર હો કે બન્ને હો—રાષ્ટ્રકૂટ વંશીય રાજા દંતિદૂર્ગ દ્વિતીય તથા કૃષ્ણ પહેલાના સમકાલીન હોવા જોઇએ. કૃષ્ણરાજ પ્રથમ લગભગ—ઈ. સ. ૭૫૬ માં ગાદી ઉપર હતો. આ રીતે સંપાદકમહાશયે અકલંકનો નિયત કરેલો સમય (ઈ. સ. ૭૨૦ થી ૭૮૦ ઈ. સ.) ઠીક લાગે છે. પુષ્પદંતના મહાપુરાણમાં વર્ણવેલ ભરત મંત્રીના કુળમાં પણ અકલંક થયા હોય એમ પણ બની આવે—સાહસતુંગ અને શુભતુંગ એ બન્ને બિરુદો દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ના પણ હોવા સંભવ છે. કારણ તે સાહસિક તેમ જ શુભશીળ હતો. કૃષ્ણરાજ પ્રથમને પોતે ગાદી ઉપર નાની જ વયે આવેલો તેથી મંત્રીપદે મૂક્યા હોય એ સંભવિત લાગે છે. કર્ણાટકમાં “હવ્વ” બાપાના અર્થમાં વપરાય જ છે એ રીતે જોતાં “લઘુહવ્વ” એટલે નાના બાપા અર્થાત્ કાકા એ અર્થ વિશેષ ઉપયુક્ત દેખાય છે. અને દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ના મૃત્યુબાદ કૃષ્ણરાજ પ્રથમ ગાદીએ આવ્યો હતો અને રાજાધિરાજનું બિરૂદ પણ મેળવ્યું હતું. અર્થાત્ તે “નૃપતિવર” થયો હતો. એટલે કૃષ્ણરાજ પ્રથમ એ જ લઘુહવ્વ અને એ જ નૃપતિવર. તેમના પુત્ર તે અકલંક, કૃષ્ણરાજ દંતીદૂર્ગના મંત્રી હતા તેથી અકલંક મંત્રીપુત્ર પણ સિદ્ધ થઈ શકે. આ રીતે તપાસતાં પ્રશસ્તિગત ઉલ્લેખ, કથાકોશગત ઉલ્લેખ, પીટર્સનના બીજા રીપોર્ટવાળી બાબત, રાજવાર્ત્તિક ગત શ્લોક અને અકલંકરચિત ગ્રંથોનું અંતરંગ પરીક્ષણ વગેરે બધી બાબતનો સુમેળ સાધી શકાય. રાજવાર્ત્તિકગત શ્લોકના અર્થની બાબતમાં અમે સંપાદક મહાશયથી ઉપર્યુક્ત રીતે જુદા પડીએ છીએ. જો કે એક જ સમય—નિર્ણય ઉપર આવીએ છીએ. આ જ વિચારસરણી ઉપર અવલંબિત અકલંકદેવના સમય-નિર્ણય વિષે એક ટુંકો લેખ આ પત્રના આવતા અંકમાં પ્રસિદ્ધ કરવા માગીએ છીએ જે જિજ્ઞાસુએ જોઈ લેવો.

સંપાદકમહાશયે ટિપ્પણો હિંદીમાં લખ્યા હોત તો તે વિશેષ આવકારદાયક થઈ પડત. સંસ્કૃતભાષાની સ્વાભાવિક જટિલતા દૂર કરવા માટે ભાષાનું અવલંબન હાલના જમાના માટે લગભગ અનિવાર્ય છે. ટિપ્પણો જોતાં સંપાદકમહાશયે લીધેલ શ્રમની ખરી ઝાંખી થાય છે. એકસો પાંસઠ જેટલા ગહન પુસ્તકોનું અવગાહન કરી તુલનાત્મક દૃષ્ટિએ ઐતિહ્ય તથા તાત્પર્યનો બોધ કરાવ્યો છે એ જોતાં અમે સંપાદકમહાશયને ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

અંતમાં જણાવવાનું કે, અકલંકના આ અદ્ભુત ગ્રન્થત્રયને પુનરૂજ્જીવિત કરવા માટે ગ્રન્થમાલાના મુખ્ય સંપાદક તથા ગ્રન્થના સંપાદક મહાશયને સહર્ષ અભિનંદન આપીએ છીએ. ગ્રન્થના પાંડિત્ય આગળ પાંચ રૂપીઆની કિંમત નહિવત્ છે. તર્ક અને ન્યાયશાસ્ત્રના અભ્યાસી માટે આ ગ્રન્થ સંગ્રહણીય છે. કારણ કે એમાં સ્થળે સ્થળે પ્રાચીન અને અર્વાચીન દ્રષ્ટિબિંદુઓનો સમન્વય થયેલો દેખાય છે. ન્યાયશાસ્ત્રની ઉત્પત્તિ અને વિકાસ જાણવા માટે પણ આ ગ્રન્થ એક સર્વાંગસંપૂર્ણ સાધન છે કારણ કે તેમાં ૧૯૫ જેટલા ગ્રન્થોનું નવનીત સંગ્રહવામાં આવ્યું છે. ઇત્યલમ્.

અમૃતલાલ સ૦ ગોપાણિ, એમ્. એ.

*

पृथ्वीराज रासामां एक भ्रष्टपाठवाली प्राकृत गाथा

*

પૃથ્વીરાજરાસાના સમય અને કર્તૃત્વ વિષે પુરાતત્ત્વવેત્તાઓમાં કેટલોક પ્રબળ મતભેદ ચાલ્યો આવે છે. કર્નલ ટૉડ જેવા કેટલાક જૂની પેઢીના વિદ્વાનો એને એક વિશ્વસનીય ઐતિહાસિક કાવ્ય તરીકે માનતા હતા; પણ પાછળથી ડૉ૦ બ્યુહલર જેવાએ એની પ્રામાણિકતા વિષે ભારે શંકા પ્રદર્શિત કરી અને તે અનુસાર બીજા અનેક વિદ્વાનોએ એની આલોચના-પ્રત્યાલોચના કરી, એ એક સત્તરમા સૈકાની અપ્રામાણિક કૃતિ છે એમ ઘણે ભાગે સિદ્ધ કર્યું. सिंघी जैन ग्रन्थमाला માં पुरातन प्रबन्ध संग्रह નામનો જે, ઐતિહાસિક એવા જૂના સંસ્કૃત પ્રબંધોનો, પ્રકીર્ણ સંગ્રહ અમે પ્રકાશિત કર્યો છે તેમાં પૃથ્વીરાજ રાસામાનાં ૩-૪ પદ્યો ઉપલબ્ધ થઈ આવવાથી એ રાસાની પ્રાચીનતા વિષે અમને કેટલીક નવી સ્ફુરણા મળી આવી અને તેથી એ વિષે કેટલોક વિચારવા લાયક ઊહાપોહ અમે એ સંગ્રહની પ્રસ્તાવનામાં કર્યો છે. એ ઉલ્લેખના આધારે કેટલાક અભ્યાસી વિદ્વાનો હવે એ રાસાને બીજી દૃષ્ટિએ વિચારવા અને અવલોકવા પ્રયત્નવાન્ થયા છે. કલકત્તાથી પ્રકટ થતા 'રાજસ્થાની' નામના પુરાતત્ત્વવિષયક ત્રૈમાસિક પત્રના તાજા અંકોમાં શ્રીયુત દશરથ શર્મા એમ. એ. અને શ્રીયુત અગરચંદજી નાહટા વિગેરે વિદ્વાનોના ગવેષણાપૂર્ણ મૌલિક લેખો પ્રકટ થયા છે.

અમે ઉક્ત पुरातन प्रबंध संग्रहની પ્રસ્તાવનામાં એ વસ્તુ તરફ વિદ્વાનોનું ધ્યાન ખેંચવા પ્રયત્ન કર્યો હતો કે એ રાસાને જે આકારમાં અને જે સ્વરૂપમાં કાશીની નાગરી પ્રચારિણી સભાએ છપાવ્યો છે તે આકાર અને તે સ્વરૂપમાં તો એ ભ્રષ્ટ જ છે અને અતિશય વિકૃત અને ક્ષેપક રચનાથી પરિપૂર્ણ છે; પરંતુ એમાંનો કેટલોક ભાગ જરૂર પ્રાચીન છે એમાં શંકા નથી. એ રાસાની મૂળ ભાષાને, પાછળના લહિયાઓએ કે ભાટ-ચારણોએ પોતાની ભ્રષ્ટ બોલીમાં એટલી બધી ફેરવી નાંખી છે કે જેથી આપણને

એના અસલીરૂપની વાસ્તવિક ઝાંખી પણ ન થઈ શકે. એના ઉદાહરણરૂપે આજે એક અન્ય પ્રાકૃત ગાથાની અહિં નોંધ આપીએ છીએ, જેથી વિદ્વાનોને એ કથનની યોગ્ય પ્રતીતિ થાય.

પૃથ્વીરાજરાસાની ઉક્ત છાપેલી પ્રતિના પૃષ્ઠ ૧૬૫૨ ઉપર, વિવિધ દેશોમાં ફરવાથી મનુષ્યને શા શા લાભો થાય છે તે બતાવનારી એક ગાથા આપેલી છે, જેનો પાઠ આ પ્રમાણે છે–

गाथा ॥ दीसै विविह चरियं जानिज्जै सज्जन दुज्जनं ।
अप्पानं चक लिज्जै हिंडिज्जै तेन पुहवीए ॥

આ એક પ્રાચીન સુભાષિત–સ્વરૂપની શુદ્ધ પ્રાકૃત ગાથા છે જે અનેક સંસ્કૃત, પ્રાકૃત અને દેશ્યભાષાના જૂના જૈન ગ્રંથોમાં મળી આવે છે. પણ અહિ આ ગાથા એવા વિકૃત રૂપમાં આપવામાં આવી છે કે જેથી આપણને એ એક કોઈ પ્રાચીન ગાથા છે એની કલ્પના પણ બરાબર ન આવી શકે. ખરી રીતે એ ગાથાનો શુદ્ધ પાઠ આ પ્રમાણે છે–

दीसइ विविहचरिअं जाणिज्जइ सज्जणदुज्जणविसेसो ।
अप्पाणं च कलिज्जइ हिंडिज्जइ तेण पुहवीए ॥*

રાસામાં दीसइ, जाणिज्जइ, कलिज्जइ અને हिंडिज्जइ એ ક્રિયાપદના જૂના – એટલે અસલ પ્રાકૃત રૂપોને दीसै, जाणिज्जै, कलिज्जै, અને हिंडिज्जै એવા અર્વાચીન દેશીભાષાના રૂપોમાં ફેરવી નાંખવામાં આવ્યાં છે. ગાથાનો બીજો પાદ તો ત્રુટિત અને અપૂર્ણ જ છે. ત્રીજો પાદ સંપાદક મહાશયે अप्पानं चक लीज्जै આવી રીતે પદચ્છેદ કરીને છપાવ્યો છે જેથી चक लिज्जै એનો શો અર્થ બેસાડવો તે માટે મોટી શોધ કરવી પડે તેમ છે.

આ ઉદાહરણ ઉપરથી વિદ્વાનો સમજી શકે કે રાસાની ભાષા કેટલી વિકૃત થએલી છે અને તેના સંશોધનની કેટલી આવશ્યકતા છે.

આજે તો આ એક જ ઉદાહરણ નમૂનારૂપે અમે અહિ આપ્યું છે. ભવિષ્યમાં આ બાબતની કેટલીક ઉપયુક્ત અને વિચારણીય સામગ્રી યથાવસરે અમે આપવા ઇચ્છીએ છીએ.

–સંપાદક

*

* જુઓ, ગૂજરાત વિદ્યાપીઠ તરફથી પ્રકાશિત થએલ અમારું સંપાદિત प्राचीन गुजराती गद्यसंदर्भ નામનું પુસ્તક, પૃષ્ઠ ૧૬૮

भारतीय विद्या भवन

अध्यापक मण्डल

*

संस्कृत वाङ्मय और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

१. डॉ० मणिलाल पटेल, पीएच्. डी. नियामकः तथा श्रीमुंगालाल गोएनका अध्यापक, संस्कृत साहित्य और तुलनात्मक भाषाशास्त्र

२. पं० मोतीराम शास्त्री, मुख्याध्यापक मुम्बादेवी संस्कृत पाठशाला

प्राकृत भाषावर्ग और हिन्दी वाङ्मय

श्री जिन विजयजी मुनि

भागवत धर्मशास्त्र

१. श्रीयुत दुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री
अवैतनिक अध्यापक भागवत धर्मसाहित्य

२. श्री ए० डी० पुसालकर, एम. ए. एलएल. बी.
श्रीस्वामीनारायण व्याख्याता, भागवत धर्म

३. श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम. ए. एलएल. बी.
श्रीगोवर्धनदास सुन्दरदास भागवतधर्म रिसर्च फेलो

जैन वाङ्मय

श्री अ० स० गोपाणी, एम. ए.
सर् कीकाभाई प्रेमचंद अध्यापक - जैनशास्त्र

भारतीय इतिहास

श्री शिवदत्त ज्ञानी, एम. ए.
श्रीरामेश्वरदास बिडला अध्यापक, भारतीय इतिहास

ग्रन्थ प्रकाशनकार्य

*

भारतीय विद्या – ग्रन्थावली

*

प्रकाशित

१. विसुद्धिमग्ग [बुद्धघोषकृत पालीभाषाग्रंथ] सं० श्री धर्मानन्द कोसंबी



उक्तिव्यक्तिप्रकरण [संस्कृत] पं० दामोदरकृत – सं० श्री जिन विजयजी मुनि

प्राचीन गुजराती गद्यनिदर्शन -:- तरुणप्रभाचार्यग्रन्थोद्धृत ,,

ऋग्वेद-संहिता, षष्ठ मण्डल; सं० डॉ० मणिलाल पटेल

नाणपंचमीकहा [महेश्वरसूरिकृत प्राकृत भाषामय] } सं० श्री
रिष्टसमुच्चय [दुर्गदेवकृत ,, ,,] } अ० म० गोपाणी

भारतीय विद्या [हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका] सं० श्री जि० वि० मुनि

*

BHARATIYA VIDYA (JOURNAL OF THE B. V. B.)
Editor Dr Manilal Patel Ph. D.

JACOBI'S ESSAYS ON THE APABHRAMSHA
by Dr. Manilal Patel

VAISHNAVISM: A HISTORICAL RETROSPECT
by Shri Durgashanker K. Shastri
assisted by Miss Sushila Mehta, M. A., LL. B.

COMPARATIVE STUDIES IN THE PURANAS
by Shri A. D. Pusalkar



Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press, 26-28, Kolbhat Street Bombay

Published by Dr. Manilal Patel, Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Andheri, Bombay

भारतीय विद्या

[बम्बईस्थित, भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित
संशोधनविषयक त्रैमासिक पत्रिका]

वर्ष १] मार्च, ई० स० १९४१ * फाल्गुन, संवत् १९९७ [अंक ४



संपादक

श्री जिन विजय मुनि

*

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय विद्या भवन

अंधेरी, बंबई

प्रति अंक मूल्य १-८-० * वार्षिक मूल्य ५-०-०

भारतीय विद्या

हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक] ❀ [इंग्रेजी षाण्मासिक

*

निवेदन

संकल्पित योजना प्रमाणे, भारतीय विद्यानो प्रस्तुत अंक गत कार्तिक मासमां प्रकाशित थवो जोईतो हतो, अने आ समये २ जा वर्षनो प्रथम अंक प्रकाशमां आववो अपेक्षित हतो; परंतु मुख्य संपादक श्री मुनि जिन विजयजीनुं स्वास्थ्य छेल्ला केटलाक मासथी बराबर न होवाथी, तेम ज, तेमना हाथे 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' अने 'भारतीय विद्या ग्रन्थावलि' ना केटलाक महत्त्वना ग्रन्थोनुं संपादन कार्य पण साथे साथे ज सतत चालू होवाथी, आ अंक एक चातुर्मास जेटलो समय विलंबथी प्रकाशित थाय छे; अने कदाच आ पछीनो २ जा वर्षनो प्रथम अंक पण ए ज रीते कांईक विलंबथी प्रकट थाय तो ते विषे वाचको दरगुजर करशे एवी आशा छे. आगामी अवसरे एक-बे विशेष अंको प्रकाशित करी अमे एनी पूर्ति करवा प्रयत्न करीशुं.

फाल्गुण पूर्णिमा
वि. सं. १९९७

मंत्री, भारतीय विद्या

भारतीय विद्या

वर्ष १] फाल्गुन, सं० १९९७ [अंक ४

लेखानुक्रम

भारतीय विद्या

[हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिका]

नियमावली

(अ) 'भारतीय विद्या' त्रैमासिकके वर्षभरमें ४ अंक प्रकाशित होते हैं। उनका प्रकाशन क्रमशः, माघ, वैशाख, श्रावण और कार्त्तिक मासके अन्तमें होता है।

(आ) 'भारतीय विद्या' में हिन्दी और गुजराती दोनों भाषामें लिखे हुए लेख-निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं। गुजराती लेख, लेखकोंकी इच्छानुसार गुजराती लिपि अगर देवनागरी लिपिमें भी छापे जा सकते हैं।

(इ) 'भारतीय विद्या' में भारत वर्षके प्राचीन इतिहास, साहित्य, स्थापत्य, तत्त्वज्ञान इत्यादि सभी विषयोंके परिचायक और विवेचक लेख-निबन्ध-टीका-टिप्पणी आदि प्रकाशित किये जाते हैं।

(ई) 'भारतीय विद्या' की अनुपूर्तिके रूपमें प्राकृत, संस्कृत, पाली, अपभ्रंश और प्राचीन देश्य भाषामें ग्रथित कुछ प्रकीर्णक कृतियोंके मूलरूपमें भी प्रकाशित किये जानेकी योजना है।

(उ) 'भारतीय विद्या' में प्रकाशित होनेके लिये लेखादि भेजने वाले लेखक-विद्वानोंको, उनके लेखकी (यदि वह लेख कमसे कम ४ पृष्ठसे छोटा न हो तो) २५ प्रतियां अधिक छपवा कर उन्हें भेट दी जायगी।

(ऊ) लेखके साथ यदि कोई चित्रादि देनेकी योजना होगी तो उसके दिये जानेका भी प्रबन्ध किया जायगा; पर उन चित्रादिके भेजनेका कार्य लेखकको करना होगा।

(ए) विद्वानोंको विज्ञप्ति है कि-'भारतीय विद्या' में प्रकट होनेके लिये जो लेखादि भेजे जायें वे स्पष्ट और सुवाच्य लिपिमें लिखे होने चाहिए। कागजके एक ही पार्श्वमें लिखान रहना चाहिए। टिप्पणी आदिके संकेत सुबोध्य और सुव्यवस्थित हों।

(ऐ) छपनेके लिये भेजे हुए लेखोंकी योग्यायोग्यताका निर्णय करनेका अधिकार संपादकको है।

(ओ) संपादनकार्यके साथ संबन्ध रखने वाला सब प्रकारका पत्र-व्यवहार-'संपादक-भारतीय विद्या' इस नामसे करना चाहिए और ग्राहक वगैरह होनेके विषयका पत्र-व्यवहार-'**मंत्री, भारतीय विद्या भवन**' इस नामसे करना चाहिए।

(औ) 'भारतीय विद्या'-**BHARATIYA VIDYA**-इसी नामका एक पत्र, इंग्रेजी भाषामें भी भवन प्रकाशित करता है जो षाण्मासिक है। उसके वर्षमें दो अंक प्रकाशित होते हैं। उसका वार्षिक मूल्य ४-०-० है।

भारतीय विद्या भवन

कार्यप्रवृत्ति

*

[ભવનના ડિરેક્ટર તરફથી, ભવને કરેલી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓની ટૂંકી સત્રવાર નોંધ]

ચતુર્થ સત્ર, જૂન–ઑક્ટોબર ૧૯૪૦

મુંબઈના પ્રિન્સ ઑફ વેલ્સ મ્યુઝિયમના આર્કિઓલૉજી વિભાગના ક્યુરેટર શ્રી. રણછોડલાલ જ્ઞાની. એમ. એ. અને કલાવિભાગના ક્યુરેટર ડૉ. મોતીચંદ એમ. એ., પીએચ. ડી. એ ભવનના હિંદી ઇતિહાસ વિભાગના અવૈતનિક પ્રાધ્યાપકો થવાનું સ્વીકાર્યું છે.

*

શ્રી જયંત રાવળ એમ. એ. (ફર્સ્ટક્લાસ) ને સંસ્કૃત વિભાગના રિસર્ચ ફેલો નિમવામાં આવ્યા હતા; તેમને રાજકોટ કૉલેજમાં મુખ્ય સંસ્કૃત પ્રાધ્યાપકની જગા મળતાં, એઓ ભવન છોડી ત્યાં જોડાયા છે.

શ્રી પ્રેમશંકર હ. ભટ્ટ એમ. એ. ને ગુજરાતી રિસર્ચ ફેલો નિમવામાં આવ્યા છે. ભવનના ગુજરાતી વિભાગનું કામ હાલ એમના હાથમાં છે. એ પોતે હમણાં પ્રાધ્યાપક શ્રી રા. વિ. પાઠકના હાથ નીચે પીએચ. ડી. માટે પરીક્ષેય વિશિષ્ટ નિબંધ માટેની તૈયારી કરી રહ્યા છે.

ગયે વર્ષે નિમવામાં આવેલા બે સંસ્કૃત રિસર્ચ સ્કૉલરોમાંથી શ્રીમુકુન્દરાય ત્રિવેદી બી. એ. આ સત્રના પ્રારંભમાં ભવન છોડી ગયા છે. શ્રી હરિવલ્લભ ભાયાણી બી. એ. આ વર્ષે એમ. એ. ની પરીક્ષામાં બેસશે.

આ સત્રની શરૂઆતમાં ગુજરાતી વિભાગમાં ત્રણ રિસર્ચ સ્કૉલર નિમવામાં આવ્યા છે. શ્રી હરિવલ્લભ પંડ્યા બી. એ., જે આ વર્ષે પરીક્ષામાં બેસવાના છે; શ્રી બિપિન છ. ઝવેરી બી. એ. અને માહનલાલ શી. સૂચક બી. એ. (ફર્સ્ટક્લાસ) છે. એ બંનેની પરીક્ષા આવતે વર્ષે છે.

શ્રી ઝવેરીએ સત્રાન્ત અવકાશમાં આચાર્ય અત્રેના એક રુચિર મરાઠી નાટકનું ભાષાન્તર કર્યું છે.

*

હંમેશના જેમ આ સત્રમાં પણ ભવનના પ્રાધ્યાપકોએ યુનિવર્સિટીના સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, પ્રાચીન હિંદી સંસ્કૃતિ અને ગુજરાતીના વર્ગોમાં વ્યાખ્યાનો આપ્યાં હતાં.

*

ભવનના આશ્રય હેઠળ આ સત્રમાં સાત જ્ઞાનવર્ધક વ્યાખ્યાનો નીચેના ક્રમે અપાયાં હતાં.

ભાગવતપુરાણ—ગુજરાતી—(શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રી)
આજીવક સંપ્રદાય—અંગ્રેજી—(પ્રા૦ શ્રી ગોપાણી)
કવિ શામળની સર્વોત્તમ કૃતિ—ગુજરાતી—(શ્રી પ્રેમશંકર ભટ્ટ)
શકો અને હિંદી સંસ્કૃતિને તેમણે શું આપ્યું?—અંગ્રેજીમાં—(શ્રી જ્ઞાની)
શ્રી ચૈતન્ય અને તેમનો સંપ્રદાય—ગુજરાતી—(શ્રી સુશીલા મહેતા)
પુરાણની સૃષ્ટિ વિદ્યા—અંગ્રેજી—(શ્રી પુસાલકર)
ઉપનિષદ્‌ની દૃષ્ટિએ આત્મા—અંગ્રેજી—(ડૉ. મણિલાલ પટેલ)

*

પં. શાનભોગ ૩૧ મી ઑગસ્ટથી ભવનની સેવા છોડી ચાલ્યા ગયા હતા.

*

મુંબાદેવી સંસ્કૃત પાઠશાળાએ સંતોષજનક પ્રગતિ કરી હતી. પં. ગૌતમલાલ ભાનુદત્ત દવે, જ્યોતિષશાસ્ત્રી, જ્યોતિષરત્ન, જ્યોતિષાલંકારની, 'શેઠ નાગરદાસ રઘુનાથદાસ જ્યોતિષ શિક્ષાપીઠ' એ નામે ચાલતા જ્યોતિષ વિભાગના શિક્ષક તરીકે નિમણૂંક કરવામાં આવી હતી. બે વિદ્યાર્થીઓ કલકત્તાની બંગાલ એસોશિયેશનની પરીક્ષામાં બેઠા હતા. બંને સારા ગુણ લાવી ઉત્તીર્ણ થયા છે.

*

૧૭ મી ઑગસ્ટને દિવસે જૂની હિંદુ વિધિપ્રમાણે શ્રાવણીનો ઉત્સવ ભવનના મકાનમાં ઉજવાયો હતો, જે વખતે પ્રમુખશ્રી અને વ્યવસ્થાપક સમિતિના સભ્યો વગેરેએ હાજરી આપી હતી.

*

આચાર્ય ધર્માનંદ કોસંબીએ સંપાદિત કરેલો '**विसुद्धिमग्ग**' નામનો મહાન બૌદ્ધ ગ્રંથ – ભારતીય વિદ્યા ગ્રંથાવલિના – પ્રથમ ગ્રંથ તરીકે બહાર પડી ગયો છે. પ્રા૦ ગોપાણીએ અંગ્રેજી ભાષાન્તર સાથે સંપાદિત કરેલું 'रिष्टसमुच्चय' અંગ્રેજી ભારતીય વિદ્યામાં પૂરવણી રૂપે પ્રસિદ્ધ થાય છે. યાકોબીના 'એસેઝ ઑન અપભ્રંશ' નામના મહાન્ જર્મન ગ્રંથના અંગ્રેજી ભાષાંતરની છપાવવાની વ્યવસ્થા થઈ ચૂકી છે, અને શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રીના 'વૈષ્ણવધર્મનો ઇતિહાસ'નું શ્રી સુશીલા મહેતાએ કરેલું અંગ્રેજી ભાષાન્તર થોડા વખતમાં પ્રેસમાં જશે.

ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ્ વતી ભવને એના બે રિપોર્ટો, પરિષદ પ્રમુખોના ભાષણોનો સંગ્રહ અને શ્રી દુર્ગાશંકરના ઐતિહાસિક સંશોધનને લગતા લેખો છપાવી પ્રસિદ્ધ કરવાનું માથે લીધું છે, અને ભવનના રિસર્ચ સ્કોલર શ્રી મોહનલાલ સૂચક બી. એ એ કામ સંભાળે છે.

*

પ્રા. શ્રી ગોપાણી – 'જ્ઞાનપંચમી કથા' પર, શ્રી સુશીલા મહેતા 'ભાગવત પુરાણ' પર, ને શ્રી જ્ઞાની 'પુરાણોમાં પ્રતિબિંબિત થતું હિંદ' પર, પીએચ. ડી માટે પરીક્ષ્યેય વિશિષ્ટનિબંધ લખી રહ્યા છે. આ સૌ ડૉ. મણિલાલ પટેલની દોરવણી નીચે પોતાના નિબંધ તૈયાર કરે છે. શ્રી પ્રેમશંકર ભટ્ટ 'ગૂજરાતી સાહિત્યમાં આખ્યાનો અને રાસા' એ ઉપર પ્રા. પાઠકની દોરવણી હેઠળ પોતાનો નિબંધ તૈયાર કરી રહ્યા છે.

*

ભવનના મકાનનો પાયો પ્રમુખ શ્રી કનૈયાલાલ મુનશીના વરદ હસ્તે તા૦ ૧૪ મી સપ્ટેમ્બરે નંખાયો હતો. આ મકાન આવતા ઓગસ્ટ લગભગ તૈયાર થઈ જવાની વકી છે. મકાનનો પાયો નાખવાનો ઉત્સવ બહુ ઠાઠમાઠથી ઉજવાયો હતો, અને અનેક સંભાવિત ગૃહસ્થોએ એમાં હાજરી આપી હતી. આ પ્રસંગે હંસરાજ મોરારજી પબ્લિક સ્કૂલે ભવનના મહેમાનોની સારી સગવડ સાચવી હતી. આ મકાનના ગ્રંથગૃહને "હેમચંદ્ર સ્મારક મંદિર" કહેવામાં આવશે અને એનો ખર્ચ એ માટે ખાસ ઊભા કરવામાં આવેલા એક ભંડોળમાંથી કરવામાં આવશે. ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદની કચેરી કાયમ માટે હેમચંદ્ર સ્મારકમાં લઈ જવામાં આવશે.

*

લીમડીના ઠાકોરસાહેબ શ્રી દૌલતસિંહજીનું અવસાન થતાં વ્યવસ્થાપક સમિતિએ શોકનો ઠરાવ પસાર કર્યો હતો. એઓ ભવનના એક સ્થાપક સભ્ય હતા, અને એમણે ભવનને સહાનુભૂતિ અને દ્રવ્ય, બંને વડે સહાય કરી હતી, એ બાબતનો એ ઠરાવમાં ખાસ ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો હતો.

*

ભવનના પ્રમુખશ્રી કનૈયાલાલ મુનશીને અમદાવાદની ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટીએ પોતાના વાર્ષિક વ્યાખ્યાન માટે નિમંત્ર્યા હતા. એમનું ખૂબ વખણાયેલું એ વ્યાખ્યાન ગયા 'ભારતીય વિદ્યા' વર્ષ ૧ અંક ૩ માં પ્રસિદ્ધ થઈ ચૂક્યું છે.

દિ૦ બા૦ કૃષ્ણલાલ ઝવેરીએ ૧૭ મી જૂને પૂનામાં મહાભારતની 'ક્રિટિકલ એડિશન'ના ઉદ્યોગપર્વની પ્રસિદ્ધિ પ્રસંગે પોતાનું પ્રમુખ તરીકેનું ભાષણ આપ્યું હતું. એમાંનો કેટલાક ભાગ અંગ્રેજી 'ભારતીય વિદ્યા'ના ૨ વર્ષ ૧ અંકમાં છપાયો છે.

૭, ૮, ૯ ઓક્ટોબરે ઉદેપુરમાં મળેવા 'રાજસ્થાની હિંદી સાહિત્ય સમ્મેલન'ના પ્રથમ અધિવેશનનું પ્રમુખ સ્થાન મુનિશ્રી જિનવિજયજીએ લીધું હતું.

મુંબઈ યુનિવર્સિટીએ ડૉ. મણિલાલ પટેલને મુંબઈ અનુસ્નાતક સમિતિના સભ્ય નીમ્યા છે.

*

ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદનું ચૌદમું અધિવેશન ૧૯૪૦ ની આખરે અંધેરીમાં ભરવાનું પરિષદે ઠરાવ્યું હતું, અને એનું આખું કાર્યાલય ભવનના મકાનમાં રાખવામાં આવ્યું હતું. ડૉ. પટેલ એના મંત્રીઓમાંના એક તરીકે એની બધી પ્રવૃત્તિઓ ચલાવતા હતા. પરિષદનું આખું દફતર ભવનના રિસર્ચ સ્કોલર શ્રી બિપિન ઝવેરી બી. એ. સંભાળતા હતા.

રાજકીય કારણોને અંગે પરિષદનું અધિવેશન હાલ મુલતવી રહ્યું છે.

*

ચાલુ સત્ર

આ સત્રમા ભવનમાંથી બે રિસર્ચ સ્કોલરો – શ્રી હરિવલ્લભ ભાયાણી બી. એ. (ફર્સ્ટક્લાસ) અને શ્રી હરિલાલ પંડ્યા બી. એ (ઑનર્સ) અનુક્રમે સંસ્કૃત અને ગુજરાતીના વિષયોમાં એમ. એ. ની પરીક્ષા આપશે.

*

પાઠશાળામાથી ખુદ પં૦ ગૌતમલાલ દવે, અને એક વિદ્યાર્થી શ્રી ભાસ્કરરાય દિક્ષિત ઊંચી પરીક્ષાઓ આપવા માટે કાશી તરફ રવાના થઈ ગયા છે. પં૦ શ્રી ગૌતમલાલ જ્યોતિષ આચાર્યની પ્રથમ ખંડની પરીક્ષામાં બેસશે. જ્યારે ભાસ્કરરાય સાહિત્ય આચાર્ય, પ્રથમ ખંડની પરીક્ષા આપશે. આ ઉપરાંત બીજા ત્રણ વિદ્યાર્થીઓ શ્રી પન્નાલાલ વ્યાસ, શ્રી હરિશંકર શુકલ અને શ્રી ઉમિયાશંકર ઉપાધ્યાય મુંબઈમાં જ ઉંચી પરીક્ષાઓ આપશે. શ્રી પન્નાલાલ સંપૂર્ણ વ્યાકરણ–મધ્યમા, શ્રી હરિશંકર વ્યાકરણ મધ્યમા, ત્રીજા ખંડની અને ઉમિયાશંકર વ્યાકરણ મધ્યમા પ્રથમ ખંડની પરીક્ષા આપશે.

ઉપર્યુક્ત વિદ્યાર્થીઓ પાઠશાળાના સ્થાયી (resident) વિદ્યાર્થીઓ છે. શ્રી હરિનારાયણ પંડિત પણ સંપૂર્ણ વ્યાકરણ–મધ્યમામાં બેસવાના છે. એઓ બહારથી હમેશાં પાઠશાળામાં ભણવા આવનાર વિદ્યાર્થી છે. ભવન અને પાઠશાળા આ ચારે વિદ્યાર્થીઓ માટે ઉંચી આશા સેવે છે.

*

૧૯ મી નવેમ્બરે ભવનનો સ્થાપના દિન – સમારંભ ઉજવાયો હતો, જે પ્રસગે પ્રમુખ શ્રી કનૈયાલાલ મુનશી, શ્રી લીલાવતી મુનશી અને અનેક સંભાવિત ગૃહસ્થો હાજર રહ્યા હતા. પ્રમુખશ્રીએ આપેલા ભાષણની ભવનના રિસર્ચ સ્કોલર શ્રી બિપિન ઝવેરી બી. એ. એ લીધેલી ટૂંકી નોંધ આ પ્રમાણે છે:–

સદ્‌ગૃહસ્થો અને સન્નારીઓ

આપણે આજે અહીં શા માટે ભેગા મળ્યા છીએ એ આપ સૌ જાણો છો. આજે ભારતીય વિદ્યા ભવનની સ્થાપનાને બે વર્ષ પૂરાં થઈ ત્રીજું શરૂ થાય છે અને એનો આ ઉત્સવ છે.

હું પહેલેથી જ સ્વપ્નદ્રષ્ટા છું. ગુજરાતી વાઙ્‌મય અને સાહિત્યના ઉત્કર્ષનાં જે સ્વપ્ન મે સેવેલાં એને પરિણામે સાહિત્ય સંસદને જન્મ આપ્યો. ૧૯૨૨ પછીનાં મારાં એ વર્ષો બહુ વ્યવસાયમય બન્યાં છે. સંસદ સ્થપાઈ, અને એણે ગુજરાત શરૂ કર્યું. એ જન્મ્યું, મર્યું, જન્મ્યું મર્યું, ફરી જન્મ્યું ને ફરી મર્યું. સાહિત્ય પ્રકાશક કંપની સ્થપાઈ, અને લુપ્ત પણ થઈ ગઈ. પણ એ વર્ષોમાં સંસદે અને એના સંચાલકોએ અનેક પ્રવૃત્તિઓ આદરી, અને અનેક આદર્શો પાર પાડ્યા.

સંસદને અનેક સહાયકો અને પરિષદના કાર્યકર્તાઓની હાર્દિક સહાય ન હોત તો મારી એ પ્રવૃત્તિઓને સફળતા ન વરત, એ મારે કબૂલ કરવું જોઈએ.

એ રીતે ઘણા વખતથી મારા સંકલ્પો સિદ્ધ થતા આવ્યા છે. છેલ્લા ચારેક વર્ષોથી તો મારા સંકલ્પોની સિદ્ધિ અનેકગણી વધી ગઈ છે.

અલબત્ત, મારી એ બધી સંકલ્પસિદ્ધિઓ માટે હું જરાય અભિમાન નથી લેતો. ભક્ત જે નમ્રભાવે પોતાનું સર્વસ્વ કૃષ્ણાર્પણ કરે, તે જ વિનમ્ર ભાવે હું એ સર્વ ઈશ્વરાર્પણ કરું છું, અને એની સહાયતા યાદ કરી અભિમાની નહિ પણ આર્દ્ર બનું છું.

આર્ય સંસ્કૃતિને જ્યાં પુનર્જન્મ મળે, જ્યાંથી એ પ્રસરે ને ફેલાય ને દિશાઓને ભરી દે, એવું એક આર્ય સંસ્કૃતિકેન્દ્ર સ્થાપવાનાં સ્વપ્નાં મે વીસવીસ વરસથી સેવ્યાં છે. આજથી બે વર્ષ પર મારાં એ સ્વપ્નોએ મૂર્ત સ્વરૂપ લીધું—બે વર્ષ પહેલાં ભારતીય વિદ્યા ભવનની સ્થાપના થઈ

ભારતીય વિદ્યા ભવન એટલે આજની અને આવતી કાલની ઓરિએન્ટલ કૉલેજ—આર્ય સંસ્કારપીઠ. બે વર્ષમાં એના એ આદર્શની દિશામાં ભવન ઠીક ઠીક આગળ વધ્યું છે. છતાં, મારી મુરાદો હજી બહુ મોટી છે. મારી ઇચ્છા ભવન સ્થપાયું ત્યારથી એને પોસ્ટ ગ્રેજ્યુએટ કૉલેજ બનાવવાની રહી છે. મારું એ સ્વપ્ન જો સિદ્ધ થાય તો, સો અનુસ્નાતકોનો એમાં સમાવેશ થાય, અને એ સર્વે આર્યસંસ્કાર ને આર્યવિદ્યાના જ્યોતિર્ધર જેવા થઈ રહે. પણ, સંસ્થામાં એટલો સમાવેશ થઈ શકે એ માટે પૈસાની મદદ જોઈએ. મને આશા છે કે ભવનને આટલા સારા દાનવીરો મળ્યા છે, શ્રી વસંતભાઈ, પ્રભાશંકરભાઈ અને નાનાલાલભાઈ જેવાનું એને પીઠબળ છે, એટલે એઓ મન પર લેશે તો મારું એ સ્વપ્ન પણ સિદ્ધ થશે.

મને લાગે છે કે જતે દહાડે અંધેરી આર્ય વિદ્યાનું કેન્દ્ર થઈ પડશે. ભારતીય વિદ્યા ભવન તો ત્યાં છે જ. પબ્લિક સ્કૂલમાં પણ પાંચસો વિદ્યાર્થીઓના સમાવેશ કરવાની મારી મુરાદ છે, અને કોઈ દાનવીર મળી જશે તો એ પણ બર આવશે. આ ઉપરાંત એ જ સ્થળે કાનજી ખેતસી બાલિકા છાત્રાલય પણ ટૂંક સમયમાં આવી જશે.

હું ઇચ્છુ છું કે કોઈના હૃદયમાં રામ વસે, કોઈ મારી તુંબડીમાં પાંચ લાખ રૂપિયા નાખે, અને ભવનની સાથે આર્ટ્સ કૉલેજ ઊભી કરવાનું મારું સ્વપ્ન મૂર્તિમંત બને.

અને આ પબ્લિક સ્કૂલ, આ બાલિકા છાત્રાલય, આ પોસ્ટ ગ્રેજ્યુએટ હોસ્ટેલ અને સંસ્કૃત પાઠશાળા આર્ય સંસ્કારોની પુનર્ઘટના કરશે.

આર્ય સંસ્કૃતિના આદર્શો આજે ભૂલાઈ જવા આવ્યા છે. પાશ્ચાત્ય સંસ્કૃતિનું આક્રમણ એટલું જબરું છે કે આર્ય સંસ્કૃતિ સાચવવાને આવો ઉપાય નહીં કરવામાં આવે તો એક દિવસ એ એની ભીંસમાં કચડાઈ નષ્ટ થઈ જશે. હિંદમાંથી આર્યતા જવા બેઠી છે, જગત્‌માંથી એ ચાલી ગઈ છે. દુનિયાની આજની પરિસ્થિતિનો જ વિચાર કરીએ. આજે યૂરોપમાં શું ચાલી રહ્યું છે એના તરફ નજર નાંખશો તો મારા આ પ્રયત્નની આવશ્યકતા તમને

સ્પષ્ટ સમજાશે. પાશ્ચિમાત્ય દેશો વ્યવસ્થિત વિનાશકતા આદરી બેઠા છે. સ્વાર્થ અને જડવાદ એમનો મંત્ર બની બેઠો છે, અને એને અનુસરી એઓ આખી માનવ સંસ્કૃતિનો, સમસ્ત માનવતાનો ધ્વંસ કરી રહ્યા છે.

હિંદનો દાવો છે કે એ માનવતા પિછાને છે. એ કહે છે કે આર્ય સંસ્કૃતિ જગત્‌ના પાપ અને દુઃખો નિર્મૂળ કરવા સરજાઈ છે. હિંદનો એ દાવો પૂરવાર કરી બતાવવાનો વખત આજે આવી પહોંચ્યો છે. છ છ હજાર વર્ષ જૂની ભગવાન્ વેદવ્યાસની સંસ્કૃતિ આજે જગત્‌ને જડવાદ, સ્વાર્થ અને વિનાશકતાના વમળમાંથી પણ નહીં બચાવી શકે ?

છ હજાર વર્ષનો આપણો એ દાવો ને આપણા લાખો સાધુઓની આજ સુધીની સાધનાને મૂર્તિમંત કરવાના આર્યસંસ્કૃતિકેન્દ્રની સ્થાપના સિવાય બીજો કોઈ ઉપાય નથી.

હિંદને ભવન માત્ર પચીસ ભેખધારીઓ આપશે તો આપણે આપણી એ સંસ્કૃતિને પુનર્જિવિત કરી શકાશું. એ હિંદુસ્તાનના ખૂણે ખૂણામાં ફેલાઈ જશે, અને ત્યાં ભવનના અંગ તરીકે આર્ય ભાવના ફેલાવશે, જે પોતાના સ્વતંત્ર ભવનો – medical foundation જેવાં – સ્થાપી આર્ય સંસ્કૃતિના પરમ મંત્રને વિશ્વવ્યાપી કરશે.

આજે મને સાતસો – આઠસો વર્ષ પહેલાનું હિંદ ને ગુજરાત યાદ આવે છે. ઈ. સ. ૧૧૮૭માં મુસલમાનોએ કરેલા આક્રમણ સામે રાજપૂતાના અને ગુજરાત કેમ ઝૂઝ્યા હતા તેનો ઇતિહાસ મારી આંખ સમક્ષ ખડો થાય છે. બુંદી તે વખતે રાજપૂતાનાના કાશીરૂપ હતું. એ કેન્દ્રમાંથી પ્રેરણા લઈ અને બ્રાહ્મણોએ ગામે ગામ અને નગરે નગર પોતાનાં સંસ્કારકેન્દ્રો સ્થાપ્યાં હતાં. ત્યારે આર્યસંસ્કૃતિ રક્ષવા માટે રાજાઓ હતા, જૌહર માટે તત્પર એવી રાજપૂતાણીઓ હતી; પોતાની સંસ્કૃતિ માટે પ્રાણની પણ પરવા ન કરે એવા સૈન્યો હતાં, આજે આપણે નિરાધાર થઈ ગયા છીએ. એ ચારમાંનું એક પણ સાધન આપણી પાસે મોજુદ નથી. કાન્હડદેના ગોરની જેમ, આપણા બ્રાહ્મણો સરકાર માટે પ્રાણ ત્યાગવાની શક્તિ ખોઈ બેઠા છે. કયો બ્રાહ્મણ આજે પ્રાણ ત્યાગવાને તૈયાર થશે?

*

એ વૃત્તિની આજે આપણે મશ્કરી કરી રહ્યા છીએ, પણ 'સ્વધર્મે નિધનં શ્રેયઃ' એ ભાવના વિના આપણી મુક્તિ નથી. સંસ્કૃતિમાં' કાવ્યમાં કે કલામાં જે એ ભાવનાથી પતિત થશે એનું નૈતિક પતન થશે, જે એ ભાવનાને વળગી રહેશે એ પોતાના ધ્યેયને ફના થઈને પણ પ્રાપ્ત કરશે.

જૂની આદર્શમયતા સાથે નવી કાર્યદક્ષતા અને વિશાલ દૃષ્ટિનો આપણે સમન્વય સાધવો છે. ભારતીય વિદ્યા ભવન જેવાં સંસ્કૃતિકેન્દ્રો જ એ સમન્વય સાધી આર્યત્વ અને આર્ય ભાવનાઓને ફરી જીવંત કરી શકશે.

*

ગાંધીજીએ વ્યક્તિગત સત્યાગ્રહની ઘોષણા કરતાં પ્રમુખશ્રી કનૈયાલાલ મુનશી અને શુભેચ્છક શ્રીમતી લીલાવતી મુનશીએ જેલ જવાની તૈયારીઓ કરવા માંડી હતી અને એમના અનેક મિત્રો અને આશ્રિત સંસ્થાઓને અનુસરી ભવને પણ એમને મુનિશ્રી જિનવિજયજીના વરદ હસ્તે હારતોરા અને વિદાયમાન આપ્યું હતું.

પાઠશાળાના વિદ્યાર્થીઓના આશીર્વચનોથી એ પ્રસંગ પવિત્ર થઈ રહ્યો હતો. ડિરેક્ટર અને એમના સહકાર્યકર્તાઓ તેમજ સ્કોલરોનો પ્રેમ જોઈ શ્રી મુનશી ગળગળા થઈ ગયા હતા, અને એમણે દરેક જોડે હાથ મિલાવી એમની પાછળ ભવન સંભાળવાની જવાબદારી ન ભૂલવાની વિનંતી કરી હતી.

*

BHĀRATĪYA VIDYĀ

Journal of the Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.

[Publised twice a Year]

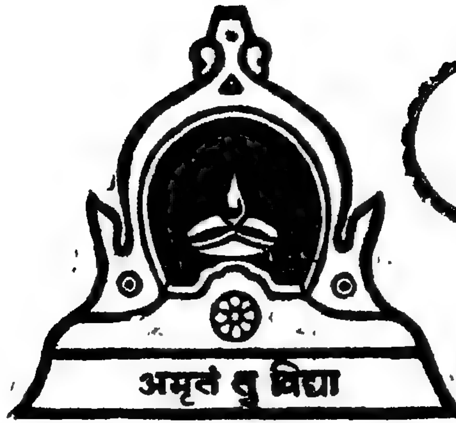
Editor—Manilal Patel, Ph. D. (Marburg)

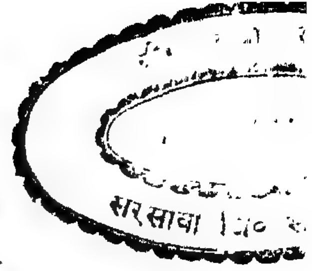
Vol. II, Part I November 1940



CONTENTS

ARTICLES:





भारतीय विद्या

प्रथम वर्ष, चतुर्थ अंक] ❀ [कार्तिक, वि० सं० १९९७

श्रीरामानुजाचार्य अने तेमनो सम्प्रदाय

લે૦ – श्रीमती कुमारी सुशीला महेता, एम्., ए. एलएल्. बी.



જેમ ગુજરાતમાં સૌથી વધુ પ્રચાર પામેલો વૈષ્ણવ સમ્પ્રદાય વલ્લભાચાર્યનો છે, તેમ દક્ષિણમાં રામાનુજાચાર્યનો છે. એ સમ્પ્રદાયની શરૂઆત પહેલવહેલી દક્ષિણમાં દ્રાવિડદેશમાં – થઈ. વૈષ્ણવસમ્પ્રદાયની પહેલી શાખા તે રામાનુજાચાર્યનો "શ્રીસમ્પ્રદાય"; પણ એમનો મત સમ્પ્રદાયમાં પરિણમ્યો તે પહેલાં એ મત, દ્રાવિડ વૈષ્ણવ સંતોએ, જે "આલવાર"ને નામે ઓળખાય છે, તેમણે ઉપદેશ્યો હતો.

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥[1]



ગીતાના આ શ્લોક મુજબ વિષ્ણુએ અધર્મમાં અટવાતી માનવતાને ધર્મને ચીલે ચઢાવવા, માત્ર પોતે જ નહીં પણ પોતાના પરિવારમાંથી ઘણાંને પૃથ્વી પર, અનેક સ્થળે, જુદે જુદે સમયે અને જુદા જુદા વર્ણોમાં જન્મ ધારણ કરાવ્યો. તેના પરિવારમાંના જે અવતારો તે જ આ "આલવારો".

(૧) ભગવદ્ગીતા, ૪–૭

શ્રીમદ્‌ભાગવતમાં[1] કહ્યું છે કે–

> कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥
> क्वचित् क्वचिन् महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ।
> ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥
> कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।
> ये पिबन्ति जलं तेषां मनुजा मनुजेश्वर ।
> प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥

એટલે કે "કલિયુગમાં ક્યાંક ક્યાંક નારાયણપરાયણ મનુષ્યો થશે, પણ દ્રાવિડમાં ઘણા થશે, જ્યાં તામ્રપર્ણી, કૃતમાલા, પયસ્વિની, કાવેરી અને મહાનદી વહે છે. જે મનુષ્યો તે નદીઓનું પાણી પીએ છે, તેઓ ઘણુંખરૂં પવિત્ર હૃદયવાળા અને ભગવાન્ વાસુદેવમાં ભક્તિ રાખનારા હોય છે."

આ જ નદીઓના પ્રદેશમાં, શ્રીકૃષ્ણસ્વામી આયંગરના મત પ્રમાણે, આલવારોનો જન્મ રામાનુજ પહેલાં થયેલો. ભાગવતનો સમય ઈ. સ. ૮૦૦–૮૫૦નો માન્ય રાખીએ તો દ્રાવિડ દેશમાં સાતમા–આઠમા શતકમાં વૈષ્ણવભક્તિનો પ્રચાર ચાલુ હોય એમ સહજ પ્રતીત થાય છે.

દ્રાવિડ પરમ્પરા આવા બાર વૈષ્ણવ મહાભક્તો ગણાવે છે. તેઓ વર્ણ કે જાતિભેદમાં માનતા ન હતા એમ કહેવામાં જરાપણ વાંધો નથી. કારણ કે આ બારમાંથી બે શૂદ્ર, એક સ્ત્રી, એક ક્ષત્રિય અને એક પનાર જાતિના અન્ત્યજ હતા. એટલે કે ભક્તિનો પરવાનો માત્ર બ્રાહ્મણોનો જ ન હતો. 'ગુરુપરમ્પરા' નામથી પ્રસિદ્ધ દ્રાવિડવૈષ્ણવ ભક્તોના કથાગ્રન્થો બાર આલવારોનાં તામિલ તેમ જ સંસ્કૃત નામ નીચેના ક્રમમાં આપે છે:–

(૧) સરોયોગી (પોઈવિગઈ આલવાર), (૨) ભૂતયોગી (ભૂતાલવાર), (૩) મહદ્‌યોગી કે ભ્રાન્તયોગી (પૈય આલવાર), (૪) ભક્તિસાર (તિરૂમલ્લી સઈ આલવાર), (૫) શઠકોપ (નામ આલવાર), (૬) મધુર કવિ, (૭) કુલશેખર, (૮) વિષ્ણુચિત્ત (પેરીય આલવાર), (૯) ગોડા–(આન્ડાલ–વિષ્ણુચિત્તનાં પુત્રી), (૧૦) ભક્તાંઘ્રિરેણુ (તોંડરપોડી આલવાર), (૧૧) યોગીવાહ (તિરૂપન આલવાર) અને (૧૨) પરાંતક (તિરૂમંગઈ આલવાર).

'ગુરુપરમ્પરા' પ્રમાણે સૌથી પહેલા આલવાર–સરોયોગી–ઈ. સ. પૂર્વે ૪૨૦૩માં થયેલા અને છેલ્લા–પરાંતક–ઈ. સ. પૂર્વે ૨૭૦૬માં થઈ ગયા. આ હકીકતમાં ઐતિહાસિક સત્ય નથી એ દેખીતું જ છે. છતાં આ બધા સંતો રામાનુજ પહેલાં થયા એ બાબત તો સંશય નથી. કારણ કે 'ગુરુપરમ્પરા'નો જૂનામાં જૂનો ગ્રન્થ રામાનુજના સમયમાં જ લખાયો છે અને તેમાં પણ આ બધા આલવારોનાં નામો મળે છે. ડૉ. સર રામકૃષ્ણ ભાંડારકર જો કે રામાનુજ પહેલાં આ સર્વેનું અસ્તિત્વ સ્વીકારવા તૈયાર નથી પણ ગોપીનાથ રાવ અને કૃષ્ણસ્વામી આયંગર જેવા ઇતિહાસવિદો

(૧) ભાગવતપુરાણ, ૧૧. ૫. ૩૮–૪૦

ડૉ. ભાંડારકરના આ મતને અસત્ય ઠેરવી આલવારો ઈ. સ. સાતમાથી નવમા શતક સુધીમાં થઈ ગયા હોવાનું સિદ્ધ કરે છે. આ સર્વ આલવારો વિષ્ણુના શંખ, ચક્ર, ગદા, નંદક વગેરેના અવતારો હતા એમ મનાય છે. દાખલા તરીકે, સરોયોગી ગદાના, ભૂતયોગી શંખના, ભ્રાન્તયોગી નંદકના અને ભક્તિસાર ચક્રનાઃ—એમ દરેક વિષ્ણુના કોઈક ચિહ્નના અવતાર હતા. તેઓએ તામિલમાં, અને કવચિત્ સંસ્કૃતમાં, ભક્તિરસથી ભરપૂર સ્તોત્રો રચ્યાં છે, અને તેમનામાં ત્રણ દ્રાવિડપ્રબંધના રચનાર હતા. 'ગુરુ-પરમ્પરા'માં તેમને વિષે ઘણી અતિશયોક્તિભરી વાતો છે, જે આપણને ઉપયોગી નથી. આલવારોનો આટલો વૃત્તાન્ત આપણને પ્રસ્તાવના તરીકે જરૂરી હતો, કારણ કે તેમણે ગાયેલી અને ઉપદેશેલી ભક્તિમાં રામાનુજસમ્પ્રદાયનાં બીજ રહેલાં છે.

રામાનુજ પહેલાં બે આચાર્યો થઈ ગયા. તેમાં પહેલા શ્રીનાથમુનિ—(આશરે ઈ. સ. ૮૭૫—૮૦થી ૯૫૦—૬૦). તેમણે એક વખત શઠકોપમુનિના "સહસ્રગીતિ" નામના તામિલ ગ્રન્થના અમુક દશ શ્લોકો એક યાત્રાળુ પાસેથી સાંભળ્યા, અને એ આખોય ગ્રંથ જાણવાની એમને તીવ્ર ઇચ્છા થઈ. શઠકોપના જન્મસ્થાનમાં જઈ ત્યાં રહેતા તેમના શિષ્યો પાસેથી તે ગ્રન્થ હસ્તગત કરવાના મંત્ર શીખ્યા, અને એ શ્લોકોના બાર હજાર જપ કરી સાક્ષાત્ શઠકોપ આગળથી માત્ર તેનો જ નહીં પણ બધા આલવારોના પ્રબંધો મેળવ્યા. વળી તેમણે છૂટાંછવાયાં સ્તોત્રો એકઠાં કરી "નાલાયીર પ્રબંધ" નામે એક સંગ્રહ તૈયાર કર્યો. ત્યાંના મંદિરોમાં દ્રાવિડપ્રબંધો ગાવાની પ્રથા શ્રીનાથમુનિથી જ પડી છે. ઐતિહાસિક અગત્યની વાત એ જ છે કે 'શ્રીસમ્પ્રદાય'ના પહેલા આચાર્ય પણ ભક્તિતત્ત્વના જ્ઞાન માટે આલવારોના જ ઋણી હતા.

નાથમુનિ પછી તેમના પૌત્ર યામુનમુનિ આચાર્યપદે આવ્યા (ઈ. સ. ૯૫૦—૬૦થી ૧૦૪૫). ચોલરાજાના અક્કીયાલ્વાન નામના રાજપુરોહિતને વાદવિવાદમાં હરાવી, રાણી પાસેથી "આલ્વાન્દાર" (મુક્તિ આપનાર)નું બિરૂદ મેળવ્યું. તેમનાં જ્ઞાનના પ્રભાવથી તેમણે રાજ્યમાં મુખ્ય સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું, પણ ઉતરતી અવસ્થામાં તેમણે સંન્યાસ લીધો અને શ્રીરંગમ્‌માં જીંદગીનો અવશેષ ગાળ્યો.

સિદ્ધિત્રય, આગમપ્રામાણ્ય અને ગીતાર્થસંગ્રહ આ એમના ત્રણ પ્રખ્યાત ગ્રન્થોમાં રામાનુજના વિશિષ્ટાદ્વૈત સિદ્ધાન્તના અંકુર દૃશ્યમાન થાય છે.

રામાનુજનો જન્મ શક સંવત્ ૯૩૯ એટલે કે ઈ. સ. ૧૦૨૭માં શ્રીપેરૂમ્બુદૂરમા થયો હતો. તેમના જન્મ સમયે નક્ષત્રના સ્થાન વગેરેનું વર્ણન તેમના સૌથી પહેલાં ચરિત્રલેખક શ્રીઆન્ધ્રપૂર્ણે તેમની 'યતિરાજવૈભવમ્' નામની નાનકડી પુસ્તિકામાં આપ્યું છે. તેઓ વર્ણવે છે કેઃ—

> ततो जगन्मङ्गलपिङ्गलाब्दे चैत्रार्ध्यशुक्लच्छदपञ्चमीके ।
> आर्द्राभिधर्क्षेण युते च वारे बृहस्पतेस्सन्मृगराजलग्ने ॥ ६ ॥
> वेदान्तसिद्धान्तसमर्थनाय बाह्यान्तरभ्रान्तमतापनुत्त्यै ।
> शेषांशकः केशवयज्व देव्यां तेजोनिधिः कश्चिदिहाविरासीत् ॥ ७ ॥

અર્થાત્ "જગન્મંગલકારી પિંગલ સંવત્સરના ચૈત્ર માસમાં શુક્લપંચમી અને

ગુરુવારને દિને આર્દ્રા નક્ષત્ર, સિંહલગ્નમાં, વેદાંતસિદ્ધાન્તનાસમર્થનાર્થે અને બ્રાહ્મમત તથા વૈદિક મતોની ભ્રાન્તિ દૂર કરવા માટે, શેષ ભગવાનના અંશાવતારરૂપ તથા તેજોના અંબાર એવા રામાનુજનો કેશવસોમયાજી (કિંવા આસુરી કેશવ પેરૂમાલ)ને ત્યાં (એની ભાર્યા ભૂમિપિરાટ્ટિયારથી) જન્મ થયો."

તેનું નામ લક્ષ્મણ અથવા તામિલમાં ઇલિયપેરૂમલ પાડવામાં આવ્યું. બાલપણની પ્રાથમિક કેળવણી આપ્યા પછી તેમના પિતાએ તેમને કાંચી કે કોન્જીવરમ્‌માં યાદવપ્રકાશ નામે અદ્વૈતવાદી ગુરુપાસે વેદાન્તના અભ્યાસ માટે મોકલ્યા. તેમની કુશાગ્રબુદ્ધિ અને તીવ્ર ગ્રહણશક્તિને લીધે તેઓ પોતાના આચાર્ય યાદવપ્રકાશના પણ ઈર્ષ્યાપાત્ર થઈ પડ્યા. 'ગુરુપરમ્પરા'માં લખ્યું છે કે એક વખત યાદવપ્રકાશે રામાનુજને ગંગા નદીમાં ડુબાડી દેવાનો ગુપ્ત સંકેત કર્યો. અને એ મતલબથી તેમના બધા શિષ્યો સહિત યાત્રામિષે નીકળ્યા. પણ રામાનુજના પિતરાઈ ભાઈ ગોવિન્દ, જે તેમના અભ્યાસસહચર હતા, તેમણે તેને ચેતવ્યા, અને રામાનુજ ત્યાંથી છટકી ઘેર આવ્યા. ત્યારથી તેમની માતાની સલાહથી તેમણે કોઈની સહાય વિના પોતાનો અભ્યાસ જારી રાખ્યો. કદાચ આ ઐતિહાસિક સત્ય ન હોય છતાં ગુરુ–શિષ્ય વચ્ચે મતાન્તર તથા વિરોધ બહુ થતા એ વાત તો નિઃસંશય છે. કારણકે વૈષ્ણવવૃત્તિના રામાનુજને અદ્વૈતવાદી ગુરુના વ્યાખ્યાનમાં સંતોષ સાંપડ્યો નહીં, અને તેમણે કરેલા શ્રુતિઓના અર્થ તેમને અવારનવાર અનુચિત લાગ્યા કરતા. વળી રામાનુજની અભ્યાસસમાપ્તિ વિષે એવી પણ એક કથા ચાલુ છે કે એક વખત યાદવપ્રકાશે કરેલા એક શ્રુતિના અર્થથી રામાનુજને એટલું તો ખોટું લાગ્યું કે તેમની આંખમાં આંસુ આવી ગયાં. આનું કારણ પૂછતાં રામાનુજે શ્રુતિનો અર્થ કરી બતાવ્યો, જે સાંભળી ગુરુને શિષ્યની ઈર્ષ્યા થઈ અને પોતાની પાઠશાળામાંથી તેને રજા આપી. અહીં રામાનુજનો અભ્યાસકાળ પૂર્ણ થયો અને તેમણે ગૃહસ્થાશ્રમમાં પ્રવેશ કર્યો. ત્યારપછી તેઓ કાંચીમાં જ દેવરાજ મન્દિરના પૂજારી તરીકે રહ્યા. રામાનુજની વધતી જતી કીર્તિ શ્રીરંગમ્‌માં યામુનમુનિ પાસે પહોંચી અને રામાનુજ તેમનું ખાલી પડેલું સ્થાન સાચવે એવી આશા એ મૃત્યુને આરે બેઠેલા વૃદ્ધ આચાર્યને થવા લાગી. રામાનુજ સાથે છેલ્લા એકવાર ખુલ્લે હૃદયે વાત કરવાની ઇચ્છાથી તેમણે પોતાના મુખ્ય શિષ્ય પેરીયાનમ્બીને કાંચી મોકલ્યા. પણ દુર્ભાગ્યે રામાનુજના પહોંચતાં પહેલાં યામુનમુનિએ દેહત્યાગ કર્યો. કહેવાય છે કે આચાર્યના મૃતશરીરે જમણા હાથની ત્રણ આંગળીઓ વાળી તેમની અપૂર્ણ રહેલી ત્રણ ઇચ્છાઓ દર્શાવી. યામુનમુનિના શિષ્યો આગળથી–એક બ્રહ્મસૂત્ર પર સ્વમતનું ભાષ્ય, અને શઠકોપ તથા પરાશરનાં નામ અમર કરવા–આ ત્રણ ઇચ્છાઓ જાણી, તે પરિપૂર્ણ કરવાનું પણ લીધું. અને આચાર્યની ઉત્તરક્રિયા કરી પોતે કાંચી પાછા ફર્યા. થોડાં વર્ષો સુધી તેમણે એકલાજ અભ્યાસ કર્યો પણ પછી યામુનમુનિના શિષ્ય પેરીયાનમ્બીના શિષ્ય થવાનું ઉચિત ધારી, ત્રીસમે કે બત્રીસમે વર્ષે તેમણે તેમની પાસે દીક્ષા લીધી, અને કાંચીમાં રહી તેમની પાસે પ્રબંધોનો અભ્યાસ શરૂ કર્યો. આવામાં આ બન્નેની પત્ની વચ્ચે કંઈ વિરોધ ઉત્પન્ન થતાં પેરીયાનમ્બી કાંચી છોડી શ્રીરંગમ્ જઈ રહ્યા.

પોતાની પત્નીનાં અનેક ક્ષુલ્લક કૃત્યોથી કંટાળી, રામાનુજે સંન્યાસ લીધો, અને 'યતિરાજ'ને નામે ઓળખાવા લાગ્યા. પછી તેઓ શ્રીરંગમ્ ગયા. ત્યાં તેમના બે શિષ્યો હતા,—એક તેમના ભાણેજ, મુદાલીયાન્ડાન કે દાશરથી સ્વામી અને બીજા કુરૂથ્થાલ્વાન કે કુરેશ. એક દિવસ રામાનુજને તેમના પ્રથમ ગુરુ યાદવપ્રકાશ સાથે 'તપ્તમુદ્રા'ના ઉપયોગ વિષે વાદવિવાદમાં ઉતરવાનો પ્રસંગ આવ્યો, જેમાં યાદવપ્રકાશની સંપૂર્ણ હાર થઈ અને તે ગોવિન્દાજીયારનું નામ ધારણ કરી રામાનુજના શિષ્ય તરીકે રહ્યા. તેમણે 'યતિધર્મસમુચ્ચય' નામનો શ્રીવૈષ્ણવસંન્યાસીઓના ધર્મનો એક ગ્રન્થ લખ્યો.

હવે રામાનુજને વૈષ્ણવોના ૧૦૮ પવિત્ર તીર્થસ્થળોની યાત્રા કરવાની ઉત્કણ્ઠા જાગી. દક્ષિણપ્રાંતના લગભગ દરેક મુખ્ય તીર્થસ્થાનમાં તેઓ ફર્યા હોવાનું કહેવાય છે. ઉપરાન્ત 'ગુરુપરમ્પરા' તો તેઓ કાશ્મીર પોતાના મતનું સ્થાપન તેમ જ પ્રચાર કરવા તેમ જ બાદરાયણના 'બ્રહ્મસૂત્ર' પર બોધાયનની વૃત્તિ મેળવવા ગયા હોવાનું જણાવે છે. કારણ પોતે લીધેલી પ્રતિજ્ઞા મુજબ અને તેમની અવસ્થા થતી હોવાથી તે બ્રહ્મસૂત્ર પર ભાષ્ય લખવા ખૂબ આતુર હતા. કાશ્મીરથી થોડા સમય માટે તેમણે બોધાયનવૃત્તિ પ્રાપ્ત કરી, જે દરમીઆનમાં, રામાનુજના બે શિષ્યો, કુરૂથ્થાલ્વાને અને મુદાલીયાન્ડાને તેમની અજબ ગ્રહણશક્તિ વડે તેનો મુખપાઠ કરવાનું અતિકઠણ કામ કર્યું. તેમની યાદશક્તિની સહાયથી રામાનુજે 'શ્રીભાષ્ય' જેવો મહાન્ ગ્રન્થ જગત્ સમક્ષ ધર્યો. આ પ્રમાણે યામુનાચાર્યને આપેલું પહેલું વચન પાર પડ્યું. પછી પોતાના શિષ્ય કુરૂથ્થાલ્વાન્‌ના એક પુત્રનું નામ પરાશર પાડી, તે જ્યારે મોટો થયો ત્યારે તેની પાસે "વિષ્ણુસહસ્રનામ" પર ટીકા લખાવી. આ એમનું બીજું વચન. આ પરાશરભટ્ટ જ રામાનુજના મરણ પછી તેમના માર્ગના આચાર્ય બન્યા. તેમના ત્રીજા વચન માટે શઠકોપમુનિએ કરેલા "તીરૂવાયમોલી" નામના પ્રબંધ પર પીલાન નામના પોતાના એક શિષ્ય પાસે ૬૦૦૦ શ્લોકની ટીકા લખાવી. આમ પરાશર તેમ જ શઠકોપમુનિ, બંનેનાં નામ અમર કર્યાં—કરાવ્યાં.

આચાર્યઋણમાંથી મુક્ત થયા પછી ઉપદેશ કરવામાં તેમ જ શ્રીરંગની સેવામાં રામાનુજ પોતાનો કાળ વ્યતીત કરવા લાગ્યા. એવામાં એમના પર એક મોટી આફત આવી પડી. એ અરસામાં ચોલ રાજાઓ રાજ્ય હતા, જેઓ ચુસ્ત શૈવધર્મી હતા અને પોતાની પ્રજા પર શૈવધર્મનો અંગીકાર કરવાની ફરજ પાડતા. આ ચોલ રાજાઓમાં કુલોત્તુંગ પહેલાએ રામાનુજને પોતાની સભામાં બોલાવવા દૂતો મોકલ્યા. જ્યારે તેઓ શ્રીરંગમ્ પ્હોંચ્યા ત્યારે રામાનુજ સ્નાનાર્થે ગયા હતા અને કુરૂથ્થાલ્વાને ગુરુની જીંદગી જોખમમાં માની રામાનુજનાં કાષાયવસ્ત્ર ધારણ કરી તેને બદલે ગુરુવેષમાં રાજ્યસભામાં હાજર થયા. ત્યાં તેને "શિવ કરતાં કોઈ ઉચ્ચતર દેવ નથી" એ અર્થનું એક પત્રક સહી કરવા આપવામાં આવ્યું. કુરૂથ્થાલ્વાને "શિવ કરતાં દ્રોણ[1] વધુ મોટા છે" એવો જવાબ વાળ્યો. આ ઉદ્ધત જવાબ સાંભળી રાજાએ તેની આંખો ફોડી નખાવી.

---

૧ "દ્રોણ" શબ્દ આયુર્વેદમાં માપના નામ તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. દ્રોણ લગભગ ૧૦૨૪ તોલાનું માપ છે, જ્યારે "શિવ" માપના નામ માટે સંસ્કૃતસાહિત્યમાં અવિદિત છે. કદાચ તામિલમાં પ્રસિદ્ધ હશે.

કુરૂથ્થાલ્વાન સાથે પેરીયાનમ્બી પણ હતા, અને એને પણ એ જ સજા ફરમાવવામાં આવી હતી. વૃદ્ધ પેરીયાનમ્બી પાછા ફરતાં રસ્તામાં જ મરણ પામ્યા. કુરૂથ્થાલ્વાન્ ધૈર્ય ધરી કાંચીમાં જ રહ્યા.

બીજી તરફ, રામાનુજે તેમના શિષ્યોની સલાહથી ચોલની રાજધાનીમાંથી ભાગી જવાનું નક્કી કર્યું અને ઈ. સ. ૧૦૯૬ માં મહીસૂરની હોઇસાલ રાજધાનીમાં ગયા ને કાવેરીને કાંઠે શાલિગ્રામમાં બાર વર્ષ સુધી વાસ કર્યો. ઈ. સ. ૧૦૯૮ માં હોઇસાલના રાજા બલ્લાલના ભાઈ, સીમાડા દેશના હાકેમ, વીઠ્ઠીદેવ (વિઠ્ઠલદેવ) ને પોતાના શિષ્ય કર્યો અને યાદવાદ્રિમાં તિરૂનારાયણનું મંદિર બંધાવ્યું તથા તિરૂમલસાગર નામે તોણૂર પાસે મોટું તલાવ ખોદાવ્યું.

થોડા વખત પછી ચોલ રાજા પાઠાના દરદથી મરણ પામ્યો. રામાનુજ શ્રીરંગમ્ પાછા આવ્યા અને ત્યાં શઠકોપમુનિની પ્રતિમા પધરાવી. તે ઉપરાંત ૪૦૦૦ પ્રબંધોનો સંગ્રહ કરાવ્યો અને બીજા વૈષ્ણવમંદિરોમાં પણ આલવારોની પ્રતિમાઓનું સ્થાપન કર્યું. તિરૂપતિમાં ગોવિન્દરાજનું મંદિર બંધાવ્યું.

આવી રીતે, પોતાના મતનું સ્થાપન કરી, કુરૂથ્થાલ્વાનના પુત્ર પરાશરની પોતાના વારસ તરીકે નિમણુક કરી, ૧૨૦ વર્ષનાં લાંબાં અને અતિમહત્ત્વનાં જીવન પછી રામાનુજે ઈ. સ. ૧૧૩૭માં સ્વર્ગવાસ કર્યો. શેષના અવતાર તરીકે પૂજાતા આ મહાન્ આચાર્યની પ્રતિમા દક્ષિણનાં વૈષ્ણવમંદિરોમાં આલવારોની પ્રતિમા સાથે જ બેસાડેલી હોય છે.

તેમના મુખ્ય ગ્રન્થો "વેદાન્તસાર," "વેદાન્તદીપ," "વેદાન્તાર્થસંગ્રહ," "બ્રહ્મ-સૂત્રપરભાષ્ય – જે "શ્રીભાષ્ય"ને નામે પ્રસિદ્ધ છે, – અને "ગીતાભાષ્ય" ગણાય છે.

હવે આપણે રામાનુજે ઉપદેશેલા વિશિષ્ટાદ્વૈત સિદ્ધાંતનું ટુંકમાં વિવેચન કરીએ.

રામાનુજ પોતાનું લક્ષ્ય જગત્ ને ઈશ્વરના સંબંધ ઉપર રાખે છે. ઈશ્વર સત્ય છે તેમ સ્વતંત્ર છે, છતાંય દુનિયાના જીવો પણ સત્ય છે; જો કે તેની સત્યતા ઈશ્વર પર અવલંબે છે. જગતની પાછળ કોઈ આધ્યાત્મિક તત્ત્વ, જે માયાથી ભિન્ન છે તેના અસ્તિત્વમાં રામાનુજને અથાગ શ્રદ્ધા છે. તે મુક્ત જીવોના અસ્ખલિત અસ્તિત્વમાં પણ માને છે. ચિતતત્ત્વો એટલે કે જીવો તેમ જ અચિતતત્ત્વો અર્થાત્ જડમાત્રને પોતાનું સ્વતંત્ર જીવન હોવા છતાં તેઓ બ્રહ્મ નથી, કારણ જ્યારે બ્રહ્મ સદાય અપૂર્ણુ-તાથી મુક્ત છે ત્યારે જડમાત્ર ચેતનરહિત, અંધકારમય છે, અને જીવો અજ્ઞાન અને વ્યાધિમાં સડે છે. છતાં તે સર્વેનું એકત્વ સ્વીકારવા રામાનુજ તૈયાર છે. કારણ જીવો તેમજ જડમાત્ર ઈશ્વરના – બ્રહ્મના – શરીરરૂપ છે. એટલે કે તેમનું અસ્તિત્વ તેમ જ વર્તમાન સ્થિતિ સંભવે છે માત્ર એક જ કારણે કે બ્રહ્મ તેમનો આત્મા છે, અંતર્યામી છે. બ્રહ્મથી ભિન્ન તે કંઈ નથી; સ્વભાવથી જીવ તેમજ જડ ઈશ્વરથી જુદાં છે, જો કે તેની સેવા સિવાય, તેનો કે તેના અસ્તિત્વનો હેતુ નથી. આજ રામાનુજનું અદ્વૈત, દ્વૈત નહીં તે, અને તે પણ વિશેષસહિત, કારણ કે તે બહુત્વને સ્વીકારે છે. ઈશતત્ત્વ જીવ અને જડરૂપી રૂપબહુત્વમાં પરિણમે છે, આ વિશેષ, અને તેથી જ તે વિશિષ્ટાદ્વૈત

કે ચિદચિદ્વિશિષ્ટાદ્વૈત. ચિદચિદ્વિશિષ્ટ ઈશિતત્ત્વ એ જ બ્રહ્મ, વાસુદેવ, વિષ્ણુ કે નારાયણ જે કહો તે. નારાયણની પ્રાપ્તિ અને ભક્તિ તેમ જ પ્રપત્તિથી જીતેલી નારાયણની પ્રસન્નતા તે જીવનનું ધ્યેય.

જગત્‌ના પદાર્થમાત્રનો પ્રમાણ અને પ્રમેય બેમાં સમાસ થાય છે. રામાનુજ ત્રણ પ્રમાણ સ્વીકારે છે, પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને શબ્દ. પ્રત્યક્ષ દ્વિવિધ છે, સવિકલ્પ તેમ જ નિર્વિકલ્પ. યૌગિક પ્રત્યક્ષને તેઓ સ્વતંત્ર પ્રમાણમાં ગણતા નથી, કારણ કે જો તે ઇન્દ્રિયો દ્વારા તેનું કર્ત્તવ્ય કરે છે તો તેને ઇન્દ્રિયોથી જુદું પ્રત્યક્ષપ્રમાણ ગણવાની આવશ્યકતા નથી, અને જો તે સર્વ અનુભવથી સ્વતંત્ર હોય તો તે અસત્ય છે.

સામાન્યસિદ્ધાન્ત ઉપરથી પ્રાપ્ત કરેલું જ્ઞાન તે અનુમાન. ઘણુંખરૂં એકાદ દૃષ્ટાન્ત સામાન્યસિદ્ધાન્ત સૂચવે છે. ઘણાં દૃષ્ટાન્તો સંશયનિવારક તરીકે ઉપયોગી છે. તર્ક અને વાસ્તવિક કે અવાસ્તવિક પ્રસંગોના ઉપયોગથી આપણે અનુપયોગી તત્ત્વો દૂર કરી, સામાન્યસિદ્ધાન્ત સ્થાપીએ છીએ. આ જ પ્રમાણે અર્થાપત્તિ અને સંભવ, અનુમાનના પ્રકાર ગણાય છે.

રામાનુજ શ્રુતિ કે શબ્દને પ્રમાણ માને છે. જગતકારણરૂપ પરમતત્ત્વને જાણવા માટે આપણી પાસે એકેય સાધન નથી, સિવાય કે શાસ્ત્રો. બ્રહ્મ નથી પ્રત્યક્ષનો વિષય કે નથી તેનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થતું અનુમાનથી. ઇન્દ્રિયજન્યથી પર વસ્તુઓમાં એક શાસ્ત્રનો જ આધાર છે. બુદ્ધિનો ઉપયોગ શાસ્ત્રાર્થના સમર્થન પૂરતો હોઈ શકે. દુનિયાની શરૂઆત વખતે ઈશ્વરમુખેથી નીકળેલા ઉદ્ગારો—વેદો સનાતન છે અને તેથી પવિત્ર છે, પ્રમાણ છે. તેવી જ રીતે શ્રુતિથી અવિરુદ્ધ સ્મૃતિ ને ઇતિહાસપુરાણનો પણ શબ્દપ્રમાણમાં સમાવેશ થાય છે. તદુપરાંત, પાંચરાત્રઆગમ તેમ જ વૈખાનસાગમ પણ ભગવાન્ વાસુદેવની કૃતિઓ હોઈ પ્રમાણભૂત છે.

હવે પ્રમેયના બે ભેદ છે, દ્રવ્ય અને અદ્રવ્ય. દ્રવ્ય બે જાતનું હોઈ શકે, જડ અને અજડ. જડના વળી અવ્યક્ત કે પ્રકૃતિ અને કાળ એમ બે ભેદ છે. પ્રકૃતિ સાંખ્યમાં વર્ણવેલા ચોવીશ તત્ત્વોની બનેલી છે; કાળ ઉપાધિભેદથી ત્રિવિધ છે.

આ તો થઈ જડની વ્યવસ્થા. અજડના બે ભેદ છે. પરાક્ (બાહ્ય) અને પ્રત્યક્ (આન્તર). બાહ્ય અજડના બે પ્રકાર છે, નિત્યવિભૂતિ એટલે કે કાર્યાકારમાં પરિણામ પામવાની ક્રિયાશક્તિ, અને ધર્મભૂતજ્ઞાન કે બુદ્ધિશક્તિ અથવા જ્ઞાનાકારમાં પરિણામ પામવાની શક્તિ. આન્તર અજડ પણ દ્વિવિધ છેઃ જીવ અને ઈશ્વર. તેમાં જીવના ત્રણ પ્રકાર છેઃ બદ્ધ, મુક્ત અને નિત્ય. બદ્ધ જીવો બે જાતના હોઈ શકે, બુભુક્ષુ કે ભોગ ભોગવવા ઇચ્છનાર અને મુમુક્ષુ અથવા સંસારમાંથી મુક્તિની અભિલાષા રાખનાર. બુભુક્ષુ અર્થકામપરાયણ હોય ને ધર્મપરાયણ પણ હોય. ધર્મપરાયણ બુભુક્ષુઓ વળી બીજા દેવોની આરાધના કરે કાં તો ભગવત્સેવામાં લીન રહે. વળી મુમુક્ષુઓ પણ બે જાતના હોય છે, કૈવલ્યપરાયણ અને મોક્ષપરાયણ. મોક્ષપરાયણ મુમુક્ષુઓ કાંતો ભક્ત કે કાંતો પ્રપન્ન હોય. પ્રપન્નમુમુક્ષુ વળી એકાન્તી કે પરમૈકાન્તી હોઈ શકે. પરમૈકાન્તીના પણ બે ભેદ છે—દૃપ્ત અને આર્ત (એટલે પરમાત્મા પરના પ્રેમથી દુઃખી). આ પ્રમાણે જીવની શ્રેણી સમાપ્ત થઈ. હવે ઈશ્વરશ્રેણી તરફ દૃષ્ટિપાત કરીએ. ઈશ્વરના

પાંચ વ્યૂહ છેઃ (૧) પર, (૨) વ્યૂહ, (૩) વિભવ, (૪) અંતર્યામી અને (૫) અર્ચા. પર તો એક જ છે. વ્યૂહ ચાર છેઃ વાસુદેવ, સંકર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન અને અનિરૂદ્ધ. વળી, કેશવ, નારાયણ, માધવ, ગોવિંદ, વિષ્ણુ, મધુસૂદન, ત્રિવિક્રમ, વામન, શ્રીધર, હૃષીકેશ, પદ્મનાભ અને દામોદર, આ બાર ઉપવ્યૂહો છે. મત્સ્ય, કૂર્મ વગેરે વિભવો કે અવતારો અનન્ત છે. અન્તર્યામીરૂપે ઈશ્વર દરેકના શરીરમાં રહે છે અને અર્ચાવતારરૂપે શ્રીરંગમ્, વેંકટ વિગેરે મંદિરોની મૂર્તિમાં વિરાજે છે.

હવે, અદ્રવ્ય દશ પ્રકારનું છેઃ સત્ત્વ, રજસ્, તમસ્, શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગન્ધ, સંયોગ અને શક્તિ.

આ પ્રમાણે રામાનુજમતમાં પદાર્થમાત્રની વ્યવસ્થા થઈ.

સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ વિષે રામાનુજને શું કહેવાનું છે તે હવે જોઈએ. સાંખ્યમતની જેમ વિશિષ્ટાદ્વૈતમતમાં પણ પ્રકૃતિ સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ એ ત્રણ ગુણયુક્ત, નિત્ય તેમ જ અક્ષર છે, જે શંકરાચાર્યના અદ્વૈતવાદમાં માયા કે અવિદ્યાને નામે ઓળખાય છે. સાંખ્યની પ્રકૃતિની જેમ આ પ્રકૃતિ સ્વતંત્ર નથી પણ ભગવાનના સંકલ્પથી તેનાં ગુણોમાં વૈષમ્ય ઉત્પન્ન થાય છે, અને તેમાં પ્રકૃતિસૃષ્ટિનો ઉદ્ભવ છે, ત્યારે અવ્યક્ત-માંથી મહત્, મહત્‌માંથી અહંકાર—જેનાં સાત્ત્વિક, રાજસ અને તામસ એવા ત્રણ પ્રકાર છે—અને એ ત્રિવિધ અહંકારમાંથી પાંચ ભૂતો, અગિયાર ઇન્દ્રિયો અને પાંચ તન્માત્રાઓ ઉત્પન્ન થાય છે. ઈશ્વરની માયારૂપ પ્રકૃતિ એ સૃષ્ટિનું ઉપાદાનકારણ અને તેનો સંકલ્પ એ નિમિત્તકારણ. આમ ઈશ્વર જ—કેમકે પ્રકૃતિ ઈશ્વરથી સ્વતંત્ર નથી—જગત્‌નું ઉપાદાન તથા નિમિત્તકારણ બન્ને છે. તત્ત્વજ્ઞાનની પરિભાષામાં કહીએ તો સૂક્ષ્મચિત્ અને સૂક્ષ્મ અચિત્ વેષમાં ઉપાદાનકારણ અને સંકલ્પ વેષમાં નિમિત્ત કારણ ઈશ્વર છે.

ઈશ્વરનું સ્વરૂપઃ—જગત્‌ના કારણરૂપ ઈશ્વરમાં સર્વકલ્યાણમય ગુણો દૃશ્યમાન થાય છે. શંકરના નિર્ગુણ બ્રહ્મ, જે આપણી નિઃસ્વાર્થ ભક્તિ અને મૂક સેવા પ્રત્યે માત્ર થીજી ગયેલી નજરે જોયાં કરે છે, તે રામાનુજના મતે ઈશ્વર નથી. અનંતમાં અંત સમાઈ જાય છે. સ્વગત ભેદ છતાં બ્રહ્મન્ એક છે; ચિત્ અને અચિત્ તેની ક્ષણો માત્ર છે. સત્, ચિત્ અને આનંદ એ ત્રણ ગુણો એને વ્યક્તિત્વ અર્પે છે તેનું જ્ઞાન ઇન્દ્રિયો પર અવલંબતું નથી. બ્રહ્મન્ સઘળું જાણે છે અને પરમ પુરુષ છે, જ્યારે જીવોનું વ્યક્તિત્વ અપૂર્ણ છે. ઈશ્વરનું વ્યક્તિત્વ સંપૂર્ણ છે કારણ કે જગત્‌ના સઘળા અનુભવ તેનામાં સમાય છે, અને કોઈ પણ બાહ્યવસ્તુ પર આધાર રાખતા નથી. વ્યક્તિત્વ માટે આવશ્યક ભિન્નાંશો પણ તેના પોતાનામાં જ રહેલા છે. ઈશ્વરના મુખ્ય ગુણો જ્ઞાન, સત્તા અને કરૂણા છે. આ કરૂણાને લીધે ઈશ્વરે આ સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરી, નિયમો ઠેરવ્યા અને સદા ય સંપૂર્ણતાને શોધતા મનુષ્યને સહાય કરે છે એ પણ કરુણા જ. આ ગુણો એકબીજાથી ભિન્ન હોવા છતાં, તેઓ એકમાં જ રહેલા છે અને તેના એકત્વમાં ભાગ પડાવતા નથી. ઈશ્વરનો તેની સાથેનો સંબંધ સ્વાભાવિક છે, સનાતન છે. ઈશ્વર આ સ્વગુણોનો અને ઈશ્વર પર અવલંબેલી વસ્તુઓના ગુણોનો આધાર છે. ઈશ્વરનું રૂપ દૈવી છે, જેનાથી પ્રકૃતિરૂપ જુદું જ છે, અને તે દૈવી રૂપ કર્મથી

સંભવ્યું નથી. ઈશ્વર કવચિત્ શરીરી હોવા છતાંય, દુઃખ તેને અડકી શકતું નથી. કેમકે દુઃખનું કારણ કર્મ છે, શારીરત્વ નથી. દુનિયામાં દૃષ્ટિએ પડતાં દુઃખ કે વ્યાધિ માટે ઈશ્વર જોખમદાર નથી. જીવોનાં પૂર્વકર્મો જ તેનો સંભવ શક્ય બનાવે છે.

"જગતના કારણરૂપ ઈશિતત્ત્વમાં સર્વેશ્વરપણું, સર્વકર્મથી આરાધ્યપણું, સર્વફલ-પ્રદપણું અને સર્વકાર્યોનું ઉત્પાદકપણું છે. તે અનન્ત છે, વિભુ છે અને એનામાં જ્ઞાન, શક્તિ, બલ, ઐશ્વર્ય, વીર્ય, તેજ, સૌશીલ્ય, વાત્સલ્ય, આર્જવ, સૌહાર્દ, સ્થૈર્ય, સામ્ય, કારૂણ્ય, માધુર્ય, ગાંભીર્ય, ઔદાર્ય, શૌર્ય, પરાક્રમ વિગેરે અનન્ત કલ્યાણગુણો નિરતિશય રૂપમાં રહ્યા છે. જ્ઞાન એટલે સર્વનો સાક્ષાત્કાર અને શક્તિ એટલે અઘટિત ઘટનાનું સામર્થ્ય." ઉપર વર્ણવેલા ગુણો ઈશ્વરનું સત્ય સ્વરૂપ સમજાવે છે. એમાંના કેટલાક સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ માટે યોગ્ય છે તો કેટલાક એને વિશ્વસનીય આશ્રયસ્થાન તરીકે સિદ્ધ કરે છે. સર્વકલ્યાણમય દિવ્યગુણોના અધિષ્ઠાન આ ઈશ્વરને પાંચ રૂપે ગણાવેલા છે.

પહેલું પર રૂપ:–અસંખ્ય દ્વારપાલો યુક્ત, ધર્મ વગેરે આઠ પાયાવાળા સિંહાસને, શેષશય્યા પર, શ્રી, ભૂ, વગેરે અનેક પત્નીઓ સહિત, શંખ, ચક્ર આદિ આયુધવાન્, દિવ્ય આભૂષણો ધારી, અનન્તગુણોવાળા, દિવ્યદેહધારી, ચતુર્ભુજ ભગવાન વૈકુણ્ઠના દિવ્યધામમાં વિરાજે છે. એ ભગવાન્ નારાયણ, પરબ્રહ્મ અથવા પરવાસુદેવને નામે પણ ઓળખાય છે.

બીજું વ્યૂહરૂપ:–તેમાં વાસુદેવ, જ્ઞાન, બલ, ઐશ્વર્ય, વીર્ય, તેજ અને શક્તિ એ ષડ્ગુણયુક્ત; સંકર્ષણ જ્ઞાન અને બલ યુક્ત, પ્રદ્યુમ્ન ઐશ્વર્ય અને વીર્યથી યુક્ત અને અનિરુદ્ધ શક્તિ ને તેજથી યુક્ત છે.

ત્રીજું વિભવ રૂપ:–પુરાણોક્ત વિભવ કે અવતારો રામાનુજે માન્ય રાખ્યાં છે. અવતારો ૩૬ કે અહિર્બુધ્ન્યસંહિતા પ્રમાણે ઓગણચાલીસ છે.

ચોથું અંતર્યામી રૂપ:–જીવાત્માની કોઈપણ અનુભવની દશામાં પણ તે તેના સખારૂપ, હૃદયમાં વસેલા, જેને યોગીમુનિઓ અનાદિકાળથી ઢુંઢતા આવ્યા છે, તે અન્તર્યામીરૂપ. આ રૂપમાં ઈશ્વર જીવની સાથે હોવા છતાં તેનાં દોષ દુઃખ વિગેરેથી અલિપ્ત છે.

પાંચમું અર્ચા રૂપ:–મંદિરમાં મૂર્તિમંત થતા, પૂજારીની ભક્તિ ને સેવાને વશ, સ્નાન, ભોજન વગેરે માનુષિક સગવડો સ્વીકારતા દેવ, તે અર્ચારૂપ. એના ચાર ભેદ છે; સ્વયંવ્યક્ત (જાતે પ્રકટ થયેલા), દૈવ (દેવોએ સ્થાપેલા), સૈદ્ધ (સિદ્ધોએ સ્થાપેલા) અને માનુષ (મનુષ્યોએ સ્થાપેલા).

આ પાંચે અવસ્થામાં ભગવાન લક્ષ્મીની સાન્નિધ્યમાં જ હોય છે.

જીવનું સ્વરૂપ:–રામાનુજે ઈશ્વરનુ કૈવલ્ય એવું વિશિષ્ટ માન્યું છે કે સૃષ્ટિની પ્રવૃત્તિમાં સ્વતંત્ર જીવોનું અસ્તિત્વ સ્વીકાર્યા વિના છૂટકો જ નથી. તેઓ જે છે તે ઈશ્વરને લઈને જ છે, છતાં પણ તેમનું ભિન્ન વ્યક્તિત્વ માન્ય રાખવું પડે તેમ છે. જીવ, પરમતત્ત્વનો એક પ્રકાર હોઈ, સત્ય છે, અપૂર્વ છે, નિત્ય છે, નિષ્કલ છે, અદૃશ્ય તેમ જ અણુ છે. તે શરીર, ઇન્દ્રિયો, પ્રાણ અને બુદ્ધિથી ભિન્ન છે. તે જ્ઞાતા, કર્તા અને

ભોક્તા છે. અણુજીવ હૃત્પદ્મમાં વસેલો છે અને સુષુપ્તાવસ્થામાં તે હૃદય અને પરમ-તત્ત્વમાં આરામ મેળવે છે. જીવ અણુ હોવા છતાં, જ્ઞાનગુણયુક્ત હોઈ, આખા ય શરીરનાં સુખ અને દુઃખ તેને સ્પર્શી શકે છે. તે પ્રતિશરીર ભિન્ન હોઈ, બહુ છે અને તેથી દરેક શરીરનાં સુખદુઃખ તે તે જીવનાં જ છે. મોક્ષપર્યન્ત તેઓ પ્રકૃતિ સાથે બંધાયલા છે, જે જીવનું વાહન છે. તે વારંવાર જન્મે છે તેમ મરણ પામે છે, પણ એક જીંદગીમાં તે પોતાનું સ્વત્વ ગુમાવતો નથી. પ્રલય વખતે પણ તે પોતાની પૂર્વજીંદગીનાં કર્મોમાંથી છટકી શકતો નથી અને તેથી નવી સૃષ્ટિ વખતે યથાકર્મ જન્મ મેળવે છે.

જીવનું મુખ્ય લક્ષણ તેની અહંબુદ્ધિ છે. બદ્ધ તેમ જ મુક્તાવસ્થામાં પણ તે તેનું જ્ઞાતાપણું ખોતો નથી. તે કર્તા પણ છે છતાં તે હંમેશ કર્મ કરે જ છે એવું કંઈ નથી. કારણ જ્યાંસુધી કર્મને અંગે ઉદ્ભવેલા શરીર સાથે તે સંબંધ ધરાવે છે ત્યાંસુધી તેના કર્મો પૂર્વનિયત છે, માત્ર શરીરથી વિખૂટાં થતાં જ તેઓ પોતાના સંકલ્પથી મનોકામના પરિપૂર્ણ કરવાની શક્તિનો ઉપયોગ કરી શકે છે.

તે બ્રહ્મનો અંશ છે, ને ઇશ્વરના વિશેષણો કિંવા પ્રકાર છે. તેઓ ઈશ્વરના કાર્યરૂપ માનવામાં આવે છે; કારણ તેનાથી ભિન્ન તેમનું અસ્તિત્વ નથી, છતાં આકાશ, વગેરેની પેઠે તેઓની કાર્યરૂપે ઉત્પત્તિ નથી.

જીવના ત્રણ ભેદ છે. (૧) નિત્ય, એટલે જે વૈકુંઠમાં વસે છે અને અનન્ત આનંદ અનુભવે છે. તેઓ પ્રકૃતિ અને કર્મથી રહિત છે. (૨) મુક્ત જીવો, જેઓએ પોતાના જ્ઞાન, ગુણ અને ભક્તિથી મોક્ષ મેળવ્યો છે. અને (૩) બદ્ધ કે જે તેમનાં અજ્ઞાન અને સ્વાર્થમાં સંસારની ઘટમાળમાં આંટા માર્યા કરે છે. સંસારમાં રચીપચી રહેલા જીવો ચાર જાતના છેઃ દૈવી, માનુષી, પાશવ અને સ્થાવર.

"આ જીવોમાં સ્મૃતિ, સંશય, વિપર્યય, ભ્રમ, વિવેક, મોહ, રાગ, દ્વેષ, મદ, માત્સર્ય ધૈર્ય, ચાપલ્ય, દમ્ભ, લોભ, ક્રોધ, નિર્વેદ, આનન્દ, શાંતિ, વિરક્તિ, રતિ, શ્રદ્ધા, ભક્તિ, પ્રપત્તિ વગેરે ગુણો રહેલા છે."

શરીર:—રામાનુજના મતમાં શરીર બે જાતનાં માન્યા છે—નિત્ય અને અનિત્ય. ઈશ્વરનું શરીર જે ત્રિગુણાપ્રકૃતિ, કાળ, જીવ, વિગેરેનું બનેલું છે તે નિત્ય છે, જ્યારે જીવનું આ દેખાતું સ્થૂળ શરીર અનિત્ય છે.

રામાનુજના કહેવા પ્રમાણે શાંકરમતનો મોક્ષ, એટલે આત્માનો તિરોભાવ તેમને માન્ય નથી, પણ તેની ઉપાધિમાંથી મુક્તિ એ જ તેમનો મોક્ષ છે. મુક્ત જીવ બ્રહ્મભાવ પ્રાપ્ત કરે છે, નહીં કે બ્રહ્મનું સ્વરૂપ. "**ब्रह्मणो भावः न तु स्वारूपैक्यम् ।**" તેને બીજા કશાની અભિલાષા નથી અને તેથી તે સંસારચક્રમાં ફરી પડતો નથી. અહંભાવ મોક્ષથી વિરોધી છે, વ્યક્તિત્વ નહીં. મોક્ષાવસ્થા એટલે ચિત્ અને આનન્દ એ સ્વાભાવિક ગુણોનો આવિર્ભાવ રામાનુજ માટે જીવન્મુક્તિ જેવી વસ્તુ નથી. સર્વ કર્મના નાશ અને સ્થૂળ શરીરના ત્યાગ પછી જીવ ઈશ્વર સાથે સામ્ય પ્રાપ્ત કરે છે. બધા મુક્ત જીવો એકસરખાં છે, ત્યાં મનુષ્ય, પશુ કે વનસ્પતિના ભેદ નથી. જ્યારે સંસારમાં આ ભેદ અર્થવાન્ છે.

મુક્તાવસ્થામાં જીવો બે સિવાય ઈશ્વરની દરેક સંપૂર્ણતામાં ભાગીદાર થાય છે. તેઓ અણુ જ રહે છે, જ્યારે ઈશતત્ત્વ વિભુ છે. બીજું, તેઓ અનેક શરીરમાં પ્રવેશી જુદી જુદી દુનિયાનાં અનુભવો માણી શકે છે, પણ દુનિયાના સ્રષ્ટૃત્વમાં તેમનો બિલકુલ હિસ્સો નથી, જે ફક્ત બ્રહ્મનનો જ અધિકાર છે.

વિશિષ્ટાદ્વૈત બે જાતના મુક્ત જીવો ગણાવે છેઃ એક તો જે પૃથ્વીપર ઈશ્વરસેવાની ઉત્કણ્ઠાવાળા હોઈ, તે ઇચ્છા સ્વર્ગમાં પૂરી પાડે છે; અને બીજા કેવલિન્, જે બાકી-નાથી જુદા છે, કારણ તેઓએ પોતાનું ધ્યેય જીવના સ્વરૂપનું સતત મનન કરીને સાધ્યું છે.

મુક્ત જીવો જ્યાં વાસ કરે છે તે સ્વર્ગનું વર્ણન બધા પુરાણોમાં મળે છે તેવું જ છે. દરેક જાતના સુખસગવડમાં રહેતા જીવો ત્યાં અપૂર્વ, અનહદ આનંદ અનુભવે છે. આવું સ્વર્ગનું વર્ણન કદાચ કોઈ યોગી જે પોતાનું વ્યક્તિત્વ ઈશ્વરમાં ભેળવી દેવા તલપતો હોય તેને પસંદ પડે એવું નથી. પણ રામાનુજને તો ઈશ્વરમાં લીન થઈ જવાની વાત અશક્ય લાગે છે; કારણ તે કહે છે કે જે ઈશ્વર બની ગયો હોય તે તેનો અનુભવ કહેવા અહીં ફરી આવતો નથી; અને જે તેની વાતો કરે છે તે તો ઈશ્વર નથી જ બન્યો !

ઉપર વર્ણવેલાં મોક્ષ મેળવવા બે વસ્તુઓ ઉપયોગી છે—ભક્તિ અને પ્રપત્તિ. કર્મ, જ્ઞાન કે સંન્યાસ મોક્ષના સાધન તરીકે ઉપયોગી ખરાં, પણ તે ભક્તિદ્વારા જ. એટલે એ બધાં ગૌણ સાધન માની શકાય. મુખ્ય તો ભક્તિ અને પ્રપત્તિ જ.

ભક્તિ:—રામાનુજની ભક્તિ એટલે શાંતિથી અને ધ્યાનપૂર્વક ઈશ્વરના અધિકતર જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ. ભક્તિના સાધનો તરીકે તેમણે નીચેના ગુણો કહ્યા છે. વિવેક કે ખાદ્ય-વસ્તુમાં સારાસારની પસંદગી; વિમોક કે બીજાં બધામાંથી મુક્તિ અને ઈશ્વર પર અનુ-રાગ; અભ્યાસ અથવા ઈશ્વરનું અખંડિત ધ્યાન; ક્રિયા અથવા અન્યનું હિત; કલ્યાણ અથવા સર્વનું ભલું વાંછવું; સત્ય, આર્જવ, દયા, અહિંસા, દાન, અનવસાદ, પોતાનામાં દીનતાનો અભાવ અને અનુદ્ધર્ષ કે કર્તવ્યમાં અસંતોષ. ભક્તિ તે માત્ર અન્ધશ્રદ્ધા નહીં, પણ ઈશ્વરના ગુણ જાણ્યા પછી જે અનુરક્તિ તે ભક્તિ. **ज्ञानकर्मानुगृहीतं भक्तियोगम्** । ઈશ્વરનું જ્ઞાન અને તેની ઇચ્છાને આધીનતા તે ભક્તિ.

ભક્તિ એ મોક્ષનું પગથીયું છે, અને બીજાં સાધનો કરતાં વધુ ઉચ્ચ છે, કારણ તે તેનું પોતાનું ફળ છે. ભક્તિથી જીવ તેનો ઈશ્વર સાથેનો સંબંધ વધુને વધુ જાણે છે અને અંતે તે આત્માના આત્મા ઈશ્વરને શરણ જાય છે. ત્યાર પછી ત્યાં આત્માનુરક્તિ કે આત્માની શોધને સ્થાન નથી, કારણ ઈશ્વરે જાતે જ જીવને બદલે વાસ કર્યો છે.

વૈધી અને મુખ્યા એવા ભક્તિના બે પ્રકાર છે. પ્રાર્થના, મૂર્તિપૂજા તેમ જ ઉત્સવો એ પહેલી અને શરૂઆતની ભક્તિ. તે જીવનો ઉચ્ચ કોટિમાટે તૈયાર કરે છે ખરાં પણ એટલાથી જ જીવનો ઉદ્ધાર શક્ય નથી. પરમતત્ત્વનું પૂજન એ જ ખરી ભક્તિ છે, કારણ તે ગહનતત્ત્વ વિના મુખ્યા ભક્તિમાં બીજું એકે ય ધ્યાનનું પાત્ર બની શકે નહીં, કારણ રામાનુજ એક ગુરુનું વાક્ય ટાંકે છે કે:—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ता जगदन्तर्व्यवस्थिताः ।
प्राणिनः कर्मजनितसंसारवशवर्तिनः ॥
यतस्ततो न ते ध्याने ध्यानिनामुपकारकाः ।
अविद्यान्तर्गतास्सर्वे ते हि संसारगोचराः ॥

અર્થાત્ "બ્રહ્મથી માંડીને તે ઘાસનાં તણખલાં સુધી દરેક વસ્તુઓ જે જગત્માં વસે છે તે કર્મને અંગે સંસારને વશ છે, તેથી તેઓ ધ્યાનના પાત્ર તરીકે ઉપયોગી થઈ શકે નહીં, કારણ કે તેઓ સર્વે અજ્ઞાનથી ભરપૂર અને સંસારમાં જકડાયલા છે.

પ્રપત્તિઃ–ભક્તિનું એક અંગ તે પ્રપત્તિ છે. ઈશ્વરને સંપૂર્ણ નિવેદન તે પ્રપત્તિ. એનાં ૭ અંગો આવશ્યક છે. (૧) ઈશ્વરને અર્પણ કરવાયોગ્ય ગુણોની પ્રાપ્તિ (आनुकूल्यस्य संपत्तिः ।), ઈશ્વરને પ્રતિકૂળ આચારનો ત્યાગ (प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।), ઈશ્વર સર્વથા રક્ષણ કરશે જ એવી શ્રદ્ધા (रक्षिष्यतीति विश्वासः ।), રક્ષણ માટે પ્રાર્થના (गोप्तृत्व-वर्णनम् ।), પોતાની ક્ષુદ્રતાનો ખ્યાલ (कार्पण्यम्), અને આત્મસમર્પણ. આને ન્યાસ અને શરણાગતિ પણ કહે છે. પ્રપત્તિ ચારે ય વર્ણોને સુગમ છે, જ્યારે ભક્તિમાં જ્ઞાન અને કર્મની આવશ્યકતા હોઈ, પહેલા ત્રણ વર્ણો જ તેના અધિકારી થઈ શકે છે. કોઈ પણ મનુષ્ય ગુરુને શરણે જઈ, ઈશ્વરના ચરણમાં પોતાનું સર્વસ્વ મૂકી શકે છે અને ઈશ્વર તેની અવશ્ય રક્ષા કરે છે.

રામાનુજ મતાનુયાયીઓ વિષ્ણુની પૂજાના સોળ પ્રકાર બતાવે છે, જેમાં ભાગવતોક્ત નવધા ભક્તિમાંથી 'સખ્ય' સિવાયના આઠ છે. બીજા આઠ નીચે પ્રમાણે છેઃ–

(૧) શરીર ઉપર શંખ, ચક્ર વગેરે વિષ્ણુના આયુધોના ચિહ્ન ધારણ કરવાં, (૨) કપાળ ઉપર વિષ્ણુના વાહનનું ચિહ્ન ધારણ કરવું, (૩) અવકાશના વખતમાં ગુરુએ આપેલા મંત્રનો જપ કરવો, (૪) હરિચરણામૃત પીવું, (૫) નૈવેદ્ય ખાવું, (૬) વિષ્ણુભક્તોની સેવા કરવી, (૭) એકાદશીનું વ્રત કરવું, તથા (૮) હરિની મૂર્તિની ફુલતુલશી ધરી પૂજા કરવી.

પૂજાના પ્રકારમાં, કપાળ પર વિષ્ણુના વાહનનાં પ્રતીક તરીકે કપાળમાં ધોળી માટીના બે લીટા કરી, તેની નીચે એ બેને જોડનારો લીટો કરી, ઉભા બે લીટા વચ્ચે હળદરનો ત્રીજો લીટો કરવાનું કહ્યું છે.

રામાનુજમતનો પ્રચારઃ–રામાનુજે ચલાવેલા શ્રીસમ્પ્રદાયના અનુયાયીઓ ઉત્તર હિન્દુસ્તાનમાં જવલ્લે જ મળી આવે છે, પણ દક્ષિણમાં એ સમ્પ્રદાયનો પ્રચાર ખૂબ છે. રામાનુજના અનુયાયીઓમાં બે વર્ગ છે, (૧) વદગલઈ કે ઉત્તરજ્ઞાની અને (૨) તેનગલઈ અથવા દક્ષિણ જ્ઞાની. રામાનુજ પછી લગભગ બસો વર્ષે આ બે ફાંટાઓ પડ્યા છે. તેમાંનો પહેલો વર્ગ પ્રપત્તિને મોક્ષ સાધન માને છે પણ તે એક જ સાધન છે તેમ કબુલ રાખતો નથી. પ્રયત્ન મોક્ષ મેળવવા આવશ્યક છે. 'મર્કટન્યાય' પ્રમાણે જેમ વાંદરીનું બચ્ચું મહેનત કરીને પણ માને વળગી રહે છે, તેમ ભક્તને પણ ઈશ્વરને વળગી રહેવા પ્રયત્નની જરૂર છે. બીજા વર્ગના અનુયાયીઓ 'માર્જારન્યાય'માં

માને છે. જેમ બચ્ચાને કંઈ પણ શ્રમ વિના બિલાડી પોતાના મોઢામાં લઈ આમ તેમ ફેરવે છે અને તેનું રક્ષણ કરે છે, તેવી જ રીતે ઈશ્વર પણ ભક્તને મોક્ષપથે દોરી જાય છે; અર્થાત્ વદગલઈમાર્ગી એમ માને છે કે ભક્ત ઈશ્વરને શરણે જાય છે ત્યારે તેનગલઈની માન્યતા મુજબ ઈશ્વર જ ભક્તને પોતાને શરણે લે છે.

આ બે માર્ગમાં બીજો તફાવત એ છે કે ઉત્તરજ્ઞાનીઓ શૂદ્રાદિ સાથે ફક્ત વાતચીતમાં જ સમાનતા રાખવાનું કહે છે, જ્યારે દક્ષિણ જ્ઞાનીઓ દરેક બાબતમાં તેમની સાથે સમાનભાવ જ ઉપદેશે છે. ॐ नमो नारायणाय મંત્રનો શૂદ્રને ઉપદેશ કરતાં પહેલા વર્ગ મુજબ ॐ શબ્દ છોડી દેવાનું કહ્યું છે જ્યારે બીજા પ્રમાણે આખોય મંત્ર ઉપદેશાય છે.

રામાનુજની વિષ્ણુપૂજાનું મૂળ જૂની પાંચરાત્રસંહિતાઓ છે. દક્ષિણમાં જુદા જુદા મંદિરોમાં જુદી જુદી સંહિતાઓ વપરાય છે. દાખલા તરીકે, કાંચીમાં અને તિરૂપતિમાં વૈખાનસ સંહિતાનો ઉપયોગ થાય છે. શ્રીસમ્પ્રદાયના ગ્રન્થોમાં પરમાત્માના મુખ્ય નામ તરીકે વિષ્ણુ કે વાસુદેવ કરતાં નારાયણ નામનો વધુ ઉપયોગ થયો છે. વ્યૂહમાં જો કે વાસુદેવનું નામ છે, છતાં વ્યૂહથી પરતત્ત્વને પરવાસુદેવ કે નારાયણને નામે ઓળખવામાં આવે છે. રામાનુજની ભક્તિ પ્રેમલક્ષણા કરતાં ધ્યાન કે ઉપાસના પ્રધાન કહી શકાય છતાં ઉપાસનામાં સ્નેહ તો અવશ્ય હોય છે. એનો ભક્તિમાર્ગ ખાસ કરીને વૈદિક જ છે છતાં તેમાંથી નીકળતા ફાંટાઓએ એને સર્વગ્રાહી લૌકિકરૂપ આપ્યું છે.

આ સમ્પ્રદાયમાં વર્ણભેદનો આગ્રહ રાખ્યો નથી. છતાં અનુયાયીઓ ઘણુંખરૂં બ્રાહ્મણો હોઈ, અન્નાદિની પવિત્રતાના નિયમો સખ્ત રીતે પળાય છે; સ્પર્શાસ્પર્શમાં પણ શિથિલતા નથી છતાં મંદિરોમાં અંત્યજોને અમુક દિવસે દર્શનાર્થે જવાની છૂટ રામાનુજે આપી છે.

રામાનુજે તેના સિદ્ધાન્તમાં વિશુદ્ધહૃદયની તત્પરતાથી અને તર્કથી ધર્મ અને ફીલસુફીના દેખાતા વિરોધીતત્ત્વોનું સમાધાન કરવાનો પ્રયાસ કર્યો છે. આત્માની અગાધતા વિનાના કોઈ આછી બુદ્ધિવાળા મનુષ્યે ઈશ્વરના આશ્ચર્યભર્યા માર્ગો ન સમજી, તેનું સાદું નિરાકરણ આપવા પ્રયત્ન કર્યો હોત, પણ રામાનુજ એવાથી ઉચ્ચ કક્ષાએ છે, અને સ્વાભાવિકતાભર્યા એકેશ્વરવાદનો શ્રેષ્ઠ નમૂનો એ મહાન્ આચાર્યે આપણી સમક્ષ ધર્યો છે.

*

लक्ष्मीदासकृत 'अमृतरसपचीसी'

(वृत्तबद्ध प्राचीन काव्य)

संपादक — श्रीयुत भोगीलाल ज. सांडेसरा

*

છવ્વીસ કડીનું આ નાનકડું પ્રાચીન કાવ્ય ગૂ. વ. સો. ના હસ્તલિખિત પુસ્તકસંગ્રહના નં. ૪૮૬ ના ગુટકામાં, પાન ૨૧૯ થી ૨૨૨ સુધીમાં, લખાયેલું મળી આવ્યું છે. એ જ ગુટકામાં આ કાવ્યની પહેલાં શિવદાસકૃત 'જાલંધરઆખ્યાન,' વસ્તાકૃત 'શુકદેવઆખ્યાન,' હરિદાસકૃત 'નરસિંહ મહેતાના પુત્રનો વિવાહ' તથા વલ્લભ ભટ કૃત 'રેવા માહાત્મ્ય' એટલી કૃતિઓની નકલ કરવામાં આવેલી છે, અને એમાંની પ્રત્યેકની સાથે સં. ૧૭૭૪ ની ઉતાર્યા સાલ આપેલી છે. વળી આખો ગુટકો એક જ હસ્તાક્ષરમાં લખાયેલો છે, એટલે પ્રસ્તુત 'અમૃતપચીસી' ની નકલપણ સં. ૧૭૭૪ ના અરસામાં જ કરવામાં આવી હશે, એવું સહજ અનુમાન થઈ શકે છે.

પ્રત્યેક કડીના અંતે આ કાવ્યનાં કર્તા લક્ષ્મીદાસે પોતાના નામની છાપ લગાવી છે. પરન્તુ એના વ્યક્તિજીવનની બીજી કોઈ હકીકત આપણને એમાંથી મળતી નથી. આ જ લક્ષ્મીદાસે 'રામરક્ષાસ્તુતિ' નામનું બીજું એક કાવ્ય આખું ભુજંગપ્રયાત વૃત્તમાં લખેલું છે,[1] પણ તેમાંથી આ પ્રશ્ન ઉપર કંઈ પ્રકાશ પડતો નથી. હવે, કેટલાંક આખ્યાનકાવ્યોનો કર્તા લક્ષ્મીદાસ નામનો એક કવિ વિક્રમના સત્તરમાં શતકમાં થઈ ગયો છે. એણે સં. ૧૬૩૯માં 'જ્ઞાનબોધ', ૧૬૪૭માં 'ચંદ્રહાસનું આખ્યાન', ૧૬૬૦ માં 'લક્ષ્મણાહરણ,' ૧૬૭૨ માં 'જ્ઞાનબોધ' અને ૧૬૭૪ માં 'દશમસ્કન્ધ' લખેલ છે, જે સર્વે કૃતિઓ હજી સુધી અપ્રસિદ્ધ છે.[2] આ 'ખોખાસુત લક્ષ્મીદાસ' જ્ઞાતિએ વાલ્મીક બ્રાહ્મણ હતો, અને મહેમદાવાદનો વતની હતો. આ લક્ષ્મીદાસ અને 'અમૃતરસપચીસી'નો કર્તા અનન્ય હોવાનો સંભવ છે. જો તેમ હોય તો આપણા કવિના સમયનિર્ણયનો કોયડો બહુ સરળ રીતે ઉકલી જાય છે.

'અમૃતરસપચીસી'ની ઉપર જણાવી તે સિવાય બીજી કોઈ હાથપ્રત જાણવામાં નથી, એટલે તે એક જ પ્રત ઉપરથી કાવ્યનું સંપાદન કરવામાં આવ્યું છે. જે સ્થળે મૂળ પાઠમાં મેં કંઈ ફેરફાર કે સુધારો કર્યો છે ત્યાં એ સુધારેલો પાઠ મુખ્ય પાઠ તરીકે રાખીને મૂળ પાઠ પાદટિપ્પણરૂપે નોંધ્યો છે. સુધારાઓ મુખ્યત્વે અર્થ, જોડણી અને વૃત્તબંધની દૃષ્ટિએ કર્યા છે. અક્ષરમેળ વૃત્તોનો અશિથિલ બંધ શબ્દોના માત્રામૂલ્યનું પરિવર્તન માત્રામેળ છન્દોને મુકાબલે ઘણું ઓછું થવા દે છે. આ કારણથી—હાથપ્રત સં. ૧૭૭૪ માં લખાયેલી એટલે કે મુકાબલે અર્વાચીન હોઈ તેમાં જૂનાં શબ્દરૂપોનો પ્રાયઃ અભાવ હોવા છતાં—વૃત્તબંધની દૃષ્ટિએ કેટલેક સ્થળે જૂનાં રૂપોને

---

૧. ગૂજરાતી હાથપ્રતોની સંકલિત યાદી, પૃ. ૧૮૬.

૨. એજન, પૃ. ૧૮૫—૮૬

સ્થાન આપવું પડયું છે. ઉદાહરણ તરીકે, સજ્યાંઈ (કડી ૬), જિ (કડી ૯), કુણિ (કડી ૧૦), ભિહુ, ક્યાહૃરિ (કડી ૧૧), જાસિ (કડી ૧૨), ગલિ (કડી ૧૩), પ્રેમિ, તિ, અંતિ (કડી ૨૬) ઇત્યાદિ. આ વસ્તુ પણ બતાવે છે કે કવિ સોળમા સૈકાના ઉત્તરાર્ધમાં થયેલો, અને મધ્યકાલીન ગૂજરાતીની ચોથી ભૂમિકામાં તેણે પોતાનું કાવ્ય લખેલું. પરન્તુ આવી ધારણા બાંધીને, વૃત્તબંધ જ્યાં અર્વાચીન રૂપોને પણ ચલાવી લે છે ત્યાં કાવ્યના પાઠમાં સુધારો કરવાને બદલે હું હાથપ્રતને જ વધારે વફાદાર રહ્યો છું, તે વાચક જોઈ શકશે. વળી આપણી શિષ્ટ જોડણી અનુસાર હાથ-પ્રતોમાં 'કાંએ,' 'તાહારે,' 'મેહેલો,' લખાવા છતાં તેનો ઉચ્ચાર 'કાંય,' 'ત્હારે,' 'મ્હેલો' એવો લગભગ થતો; પણ ઉચ્ચારણશાસ્ત્રના અભ્યાસની દૃષ્ટિએ 'કાંએ' ઇત્યાદિ રૂપો અગત્યનાં હોવાથી તેમને મુખ્ય પાઠમાં જ સ્થાન આપીને, તેમનો ઉચ્ચાર વ્યવહારમાં 'કાંય' થતો એમ ટિપ્પણમાં દર્શાવ્યું છે.

કાવ્યત્વની દૃષ્ટિએ 'અમૃતરસપચીસી' માં કોઈ વિશિષ્ટતા નથી. એનો વિષય પણ કંઈ નવો નથી. સંસારની નિઃસારતા અને વિષયોની ક્ષણભંગુરતા, નામસ્મરણની મહત્તા અને ભક્તિથી ભવસાગર તરવાની આવશ્યકતા—જે આપણાં બીજાં સેંકડો પ્રાચીન કાવ્યોમાં બતાવી છે, તે એમાં પણ બતાવી છે. માત્ર વચમાં વિષ્ણુના અવતારોનું વર્ણન કરીને કવિએ જરા વિવિધતા આણવાનો પ્રયાસ કર્યો છે. પણ આ કૃતિની બહિરંગની એક વિશિષ્ટતા છે—તે આખીયે માલિની વૃત્તમાં છે.[૩] આ વિશિષ્ટતાયે જ તેનું સંપાદન હાથ ધરવા મને પ્રેર્યો છે.

ગૂજરાતીભાષાના આરંભકાળથી માંડી વિક્રમની ઓગણીસમી સદીના અંતસુધી—દયારામયુગ સુધી ગૂજરાતી ભાષામાં અનેક વૃત્તબદ્ધ કાવ્યો લખાયાં છે. અત્યાર સુધીમાં એવાં લગભગ બાવીસ કાવ્યો મળ્યાં છે, અને પ્રકીર્ણ વૃત્તો પણ બીજાં અનેકમાં મળે છે. અલબત, દેશીબદ્ધ આખ્યાનો કે છન્દોબદ્ધ વાર્તાઓની જેમ આવાં કાવ્યોની પરંપારબંધાયેલી નહીં. એ તો દલપત—નર્મદના કાળ પછી જ બંધાઈ. દયારામયુગ સુધીનાં ગૂજરાતી વૃત્તબદ્ધ કાવ્યોની સવિસ્તર આલોચના 'પ્રાચીન ગૂજરાતી સાહિત્યમાં વૃત્તરચના' એ નામના નજદીકના ભવિષ્યમાં બહાર પડનાર મારા નિબંધમાં કરી છે, એટલે એ સંબંધી વિશેષ ઊહાપોહ અહીં કર્યો નથી.

*

૩. આ રીતે સોળમાં સૈકામાં થઈ ગયેલા, 'વિમલપ્રબંધ'ના કર્તા જૈન કવિ લાવણ્યસમયકૃત 'ચતુર્વિંશતિજિનસ્તુતિ' સાથે આ કાવ્યની તુલના કરવા જેવી છે. બન્ને કાવ્યો માલિનીમાં છે, લક્ષ્મીદાસનું કાવ્ય ૨૬ કડીનું છે, જ્યારે લાવણ્યસમયનું ૨૫ નું છે, બન્ને પોતાના નિરૂપ્ય વિષયને, કૃતિઓનાં નામ જ સૂચવે છે તે પ્રમાણે, અનુક્રમે ૨૫ અને ૨૪ કડીએ સમાપ્ત કરી ઉપસંહાર એક એક કડીનો ઉમેરે છે. આટલું સામ્ય બહિરંગનું, પણ કાવ્યત્વની દૃષ્ટિએ લાવણ્યસમયની કૃતિ લક્ષ્મીદાસ કરતાં ઘણી ચઢિયાતી છે.

अमृतरसपचीसी

श्री गणेशाय नमः ॥ श्री रामजी सत् छे ॥

(मालिनी)[1]

रघुपतिपदसेवा[2] मूल ए धर्म ताहारे,[3]
कमलनयण मूकी कांए[4] बीजुं[5] विचारे[6] ?
तनधनसुतदारा[7] ए नही दूत[8] वारे,
हरि[9] भज लखमींदाशा,[10] पाम संसारपारे. १

जनमरुचिरकारी[11] कांए[12] मेहेलो[13] विशारी[14] ?
धिक धिक[15] मँदभागी मोहिओ[16] रूप नारी;
अनेंक जतन पोषी देह नोहे ताहारी,[17]
हरि[18] भज लखमींदाशा पादजुग्मं मुरारि.[19] २

अभिनवघनसामं[20] सामवर्णं[21] क्रिपालं,[22]
कनकरुचिरकांतं राजवैदेहीं बालं;
नव निधि रिधि[23] ताहारे[24] अन्य ते मोहजालं,
हरि[25] भज लखमींदाशा मारुदेश मरालं.[26] ३

जय जय रघुनाथा,[27] नाम संसारसारं,[28]
मम मन रुचिआणं[29] छांड बीजु विचारं,[30]
जननीजठरकेरा दूखनो[31] आण पारं,
हरि[32] भज लखमींदाशा जांनकीकंठहारं. ४

---

1 હાથપ્રતમાં છંદનું નામ નથી. 2 રઘૂપતીપદસેવા. 3 છંદ માગે છે તે મુજબ, ઉચ્ચાર 'ત્હારે' કર-વાનો છે. 4 ઉચ્ચાર 'કાંય' કરવાનો છે. સરખાવો–'સોહો છો શું ગમે તે ચટચટ કરતા, લાઓ કૂડે ભર્યા છો' ('રૂપસુન્દરકથા' કડી ૫૪). આમાં 'લાઓ'નો ઉચ્ચાર 'લાવ' કરવાનો છે. 5 બીજું 6 વીચારે. 7 °સૂત° 8 દુત. 9 હરી. 10 લક્ષ્મીદાશા. કવિનું આ નામ દરેક કડીમાં આવે છે. અને તે સર્વત્ર આમ એક જ રીતે જ લખાયેલું છે. સુધારેલા પાઠમાં પણ છંદોભંગ થાય છે, છતાં વૃત્તબંધની દૃષ્ટિએ મૂળ પાઠ કરતાં તે વધુ ગ્રાહ્ય છે. 11 °રુચીર°. 12 ઉચ્ચાર 'કાંય' 13 ઉચ્ચાર 'મ્હેલો'. 14 વીશારી. 15 ધીક ધીક. 16 મોહીઓ. 17 'તા'માં રહેલા 'આ'કારનું ઉચ્ચારણ ઝડપથી બોલતાં કંઈક 'અ'કાર જેવું થતું હશે–'ત્હારે'માંના 'ત'ને સહેજ લંબાવીને બોલીએ તેવું. 18 હરી. 19 મોરારિ. 20 °શામં. 21 °વર્ણં. 22 ક્રીપાલં. 23 નીધીરીધી. 24 ઉચ્ચાર 'ત્હારે'. 25 હરી. 26 'મારુદેશમરાલં' એટલે શું ? પાઠ ભ્રષ્ટ લાગે છે. 27 રઘૂનાથા 28 સંસારસારં. 29 રુચીરઆણં. 30 વીચારં. 31 દુખનો. 32 હરી.

वदनकमलशोभा को कवी जाए[33] बोली ?
तृषित[34] अलक राजे मांनुनी भंग टोली;
मुरली मधुर नादे मोहीआ[35] चंद्रमौली,
हरि भज लखमींदाशा[36] दानवा रंगरोली. ५
जनम प्रथम ताहारे[37] जांण को साथ[38] हूतो ?
वसन वचन हीणो भोमि[39] सज्याइं[40] सूतो;
अशुचि[41] रुधिरमध्ये देह ताहारो[42] वगूतो,[43]
हरि भज लखमींदाशा काढसे पंकखूतो.[44] ६
जनक जननीं माता स्त्री सुता पुत्र काया,
धन गृह[45] गज वाजी दास संसार माया;
अनेंक जनम भोगी साथ[46] को नाहि[47] आया,
हरि भज लखमींदाशा जानकीनाथराया.[48] ७
मनसिजमदहारी[49] रासलीलाविहारी,[50]
सुखितसकलनारी[51] नंदआनंदकारी;
गिरिवर[52] कर धारी मेघधारा निवारी[53]
हरि भज लखमींदाशा कृष्णनाथा मुरारि.[54] ८
धरी हरि[55] मन ध्याने पूर्ण[56] प्रेमे जि[57] गाए,[58]
निगम[59] रुचिर[60] वांणी ब्रह्म[61] आनंद थाए;
चरणस्रवित[62] गंगा, बोलतां पाप जाए,
हरि भज लखमींदाशा कृष्ण श्रीकृष्ण राये.[63] ९
धरम करम छांडी मूढ तू कुंणि[64] वाह्यो[65] ?
कुण[66] जतन प्रमाणे[67] मूकसे[68] दूत साह्यो[69] ?
फरीं फरीं पसताशे,[70] तू समो[71] कोण डाह्यो[72] ?
हरि भज लखमींदाशा छोड ए नाग ग्राह्यो. १०

---

33 ઉચ્ચાર 'જાય'. 34 ત્રુષીત. 35 મોહીઆં. 36 હવે પછી પચીસમી કડી સુધી 'હરિ......દાશા' એ આખો વાક્યખંડ 'હરી૰ લ૰' એ પ્રમાણે ટુંકમાં લખેલો છે. 37 ઉચ્ચાર 'ત્હારે'. 38 સાથ. 39 ભોમી. 40 સજ્યાએ. 41 અસૂચી. 42 ઉચ્ચાર 'ત્હારો'. 43 વગુતો. 44 કુંપ°. 45 ગ્રહ. 46 સાથ. 47 નહી. 48 °રાઆં. 49 મનસીજ°. 50 રાસલીલાવીહારી. 51 સુખીત°. 52 ગીરીવર. 53 નીવારી. 54 મોરારી. 55 હરી. 56 પૂરણ. 57 જે. 58 ગાહે. 59 નીગમ. 60 રુચીર. 61 બ્રંહ્મ. 62 સ્રવીત. 63 રાય. 64 કોણે. 65 વાહો. 66 કોણ. 67 પમાંણે. 68 મુકસો. 69 સાહો. 70 મન પસ્તાસો. 71 સમો. 72 ડાહો.

૧.૪.રે.

निशिदिन[73] बिहु[74] ताहारे[75] आयु[76] संख्यानि[77] आणे,
निमिष निमिष[78] खूटे[79] श्वास[80] केरे प्रमाणे,
प्रगट नयण ताहारे[81] फूटियां[82] क्याहरि[83] जाणे ?
हरि भज लखमींदाशा वेद जेहने[84] वखाणे.[85] ११

मदनजलधिमध्ये झीलतां आंख फूटी,
तरुणीमकरग्रास्यो[86] भक्षियो[87] सर्व लूटी;
क्षण क्षण गणनाए जाए[88] छे आय खूटी,
हरि भज लखमींदाशा जासि[89] मोहजाल[90] त्रूटी. १२

कपट अनेक कीधां पोषियां[91] पुत्र नारी,
बुँद बुँद गलि[92] लागे[93] तर्स[94] आ आस ताहारी;[95]
अनेक जनम हार्यो,[96] हारियो[97] स्नेह वारी,
हरि भज लखमींदाशा, कांए[98] मेहेल्यो[99] विसारी.[100] ? १३

निगम[101] अभय देवा मीन रूपी[102] मुरारि,
धरम करम थाप्यां[103] दानवा शंख[104] मारी;
त्रिभुवनजनकेरां[105] शोकसंतापहारी,[106]
हरि भज लखमींदाशा विश्व आनंदकारी.[107] १४

सुरपति[108] सुख[109] दीधां कूर्मरूपे[110] अपारं,
जलधिमथन[111] काजे मेदिनी[112] पृष्ठधारं;[113]
चतुरदश सुरत्न काढियां[114] दूखहारं,[115]
हरि भज लखमींदाशा, भक्त आनंदकारं.[116] १५

अवनि[117] जलनिमग्ना दानवाभार त्राहासी,[118]
जय जय रघुनाथा, शर्ण[119] ते आवीं नाहाशी;[120]

---

73 નીશીદીન. 74 બેહુ. 75 ઉચ્ચાર 'ત્હારે'. 76 આયૂ. 77 સંક્ષાને. 78 નીમીષ નીમીષ. 79 ખુટે. 80 સ્વાસ. 81 ચાહારે, સુધારેલા પાઠમાં પણ ઉચ્ચાર 'ત્હારે' કરવાનો છે. 82 ફૂટ્યાં. 83 ક્યારે. 84 જેહને. 85 વખાંણે. 86 °ગ્રાસો. 87 ભક્ષ્યો. 88 ઉચ્ચાર 'જાય'. 89 જાસે. 90 ઉચ્ચાર 'મ્હો'જાલ. 91 પોષ્યાં. 92 ગલે. 93 વલગે. 94 તરસ. 95 ઉચ્ચાર 'ત્હારે'. 96 હારો. 97 હારીયો. 98 ઉચ્ચાર 'કાંય'. 99 ઉચ્ચાર 'મ્હેલ્યો'. 100 વીસારી. 101 નીગમ. 102 રુપી. 103 થાપ્યા. 104 સંખ. 105 ત્રિભોવન°. 106 સોક°. 107 વિસ્વ°. 108 સુરપતી. 109 સૂખ. 110 રુપે. 111 જલનિધિ°. 112 મેદિની. 113 પ્રષ્ટધારં. 114 કાઢ્યાં. 115 દુખહારં. 116 ભગત°. 117 અવની. 118 ઉચ્ચાર 'ત્હાસી'. 119 સરણ. 120 ઉચ્ચાર 'ન્હાશી'.

धरनीं धरीं डॉढाग्रे शूकरादेहवाशी,[121]
हरि भज लखमींदाशा कंप लीलाविलाशी.[122] १६
असुरकुंअर काजे रूप नृसिंह[123] राजे,
मुख[124] वपु[125] विकरालं,[126] हाक त्रैलोक्य गाजे;
कर नख रुदें फाडी आंत्र कंठे विराजे,[127]
हरि भज लखमींदाशा नामनीशाण वाजे. १७
द्विजवरवपुधारी[128] कुब्जरूपी[129] मुरारि[130]
बलिमख छलकारी,[131] शुक्र[132] एकाक्षहारी;[133]
पदनखजलधारा[134] धीर ब्रह्मा[135] विहारी,[136]
हरि भज लखमींदाशा जाह्नवी[137] ब्रह्मचारी.[138] १८
अखिल भुवन केरां दूखनाशावतारं,[139]
अवनि[140] रुधिर[141] पोपी, क्षत्रियावंशहारं,[142]
ग्रही जल कुश[143] आपी मेदिनी[144] विप्र सारं[145]
हरि भज लखमींदाशा, कूर्मधारी[146] मुरारं.[147] १९
रविकुल[148] रविजोरां[149] राम श्रीराम श्यामं,
त्रिभुवनजनकंठे[150] हार श्री रामनामं,
सुखद सुखद[151] प्राणी बोलतां रामनामं,
हरि भज लखमींदाशा राम श्रीराम नामं. २०
नटवरवपुधारी ब्रह्म[152] साक्षात श्यामं,
अवनि[153] सुखद[154] स्वामी, गोपिका[155] पूर्णकामं;[156]
अघदुखमृग[157] त्रासे[158] सिंघ श्रीकृष्णनामं,
हरि भज लखमींदाशा, कृष्ण श्रीकृष्णधामं. २१
हृदयकमल जाणी घोर निद्रा[159] विसारो,[160]
फरीं फरीं पसताशो,[161] दोह्यलो[162] एह वारो;

---

121 સૂકરા°. 122 'કુંપલીલા' એટલે? [पंकलीला હોય એમ લાગે છે–સંપાદક]. 123 નરસેહ. 124 મૂખ. 125 વપૂ. 126 વીકરાલાં. 127 વીરાજે. 128 દ્વીજવરવપૂ°. 129 કુબ્જરૂપી. 130 મોરારી. !31 બલીમખ°. 132 સુક. 133 એકચક્ષ.° 134. °નખ°. 135 બ્રહ્મા. 136 વીહારી. 137 જાંનવી. 138 બ્રહ્મ. 139 દુખ°. 140 અવની. 141 રુધીર. 142 ક્ષત્રીઆવંસ°. 143 કુશાગ્ર. 144 મેદીની. 145 શારં. 146 કૂરમ°. 147 મોરારં. 148 રવી°. 149 રવીબીજોરાં. 150 ત્રીભુવન°. 151 સુખદ સુખદ. 152 બ્રંહ્મ. 153 અવની. 154 સુખદ. 155 ગોપીકા. 156 પૂરણ°. 157 °મ્રગ. 158 ત્રારો. 159 નીદ્રા. 160 વીસારો. 161 મન પ્રસ્તાશો, 162 દોહેલો.

नरकसदनमांहे को नथी साथ[163] ताहारो,[164]
हरि भज लखमींदाशा, काम तृष्णा[165] विडारो.[166] २२

नरकसदनकेरू द्वार स्त्रीसंग जाणे,
कहु छौ[167] चरण लागी, भ्रांत मा[168] मंन[169] आणे;
निशिदिन[170] हरि[171] केरुं नाम जिह्वा[172] वखाणे,[173]
हरि भज लखमींदाशा, राखसे[174] साहीँ पाणे. २३

चरणकमल केरू ध्यान तू मंन[175] राखे,[176]
मनसि[177] वचन काये शुद्ध[178] तू सत्य भाखे;[179]
कपट कठिण[180] वाणी मेहेल[181] तू[182] दूर[183] नाखी,
हरि भज लखमींदाशा, सत्य[184] ए वेद साखी.[185] २४

पतित अधम केरो राम श्रीराम त्राता,
जनक जननीँ स्वामी राम श्रीराम भ्राता;
भगतवछल बीजो को नथी रे वीँखाता,[186]
हरि भज लखमींदाशा राखसे[187] नर्क[188] जाता. २५

अमृतरसपच्चीसी[189] दास जे प्रेमि[190] गाअे,
अनेक सुख ति[191] पामे अंति[192] वैकुंठ जाअे;
ललित मधुरीँ वाणी सर्व[193] आनंद थाअे,
हरि भज **लखमींदाशा** जानकीनाथ राये.[194] २६

इति श्रीअमृतपचीसीरस संपूर्ण ॥ शुभं भवतु ॥

---

163 સાત. 164 ઉચ્ચાર 'ત્હારો'. 165 કામસૂત્ર. 166 વીડારો. 167 અહીં 'છો'માંના 'ઓ'નો ઉચ્ચાર હ્રસ્વ તરીકે કરવાનો છે; તેમ જ વૃત્તબંધમાં પણ તેની ગણના લઘુ તરીકે કરવાની છે. પ્રાકૃત પિંગલમાં 'એ' 'ઓ' ઇત્યાદિ સ્વરો ગુરુ તેમજ લઘુ, બન્ને પ્રકારના છે, એ સુપ્રસિદ્ધ છે. 168 માં. 169 મન. 170 નીશીદીન. 171 હરી. 172 જીહીવા. 173 વખાણે. 174 રાખસે. 175 મન. 176 રાખે. 177 મનસી. 178 સુધ. 179 ભાખે. 180 કઠીણ. 181 ઉચ્ચાર 'મ્હેલ'. 182 તુ. 183 દુર. 184 સત. 185 સાખી. 186 વીખાતા. 187 રાખસે. 188 નરક. 189 અમૃત". 190 પ્રેમે. 191 તે. 192 અંતે. 193 સરવ. 194 રાય.

वल्लभनां आख्यानो

ले०—श्रीयुत प्रेमशंकर ह. भट्ट, एम्. ए.

*

વલ્લભ પોતાની જાતને 'ફાંકડો'[1] કહે છે: અને તેણે પોતાના માટે વાપરેલા આ વિશેષણને આપણા વિદ્વાનો પણ માન્ય રાખે છે.[2] પરંતુ વલ્લભની આ ફક્કડાઈ 'છેલછબીલો વરણાગીઓ નટવર નાવલીઓ'[3] ગણાતા દયારામથી, કે 'કોઈવાર ચાર દોસ્તમાં મને કોઈ દારૂ પીવાને કહે છે તો હું પીઉં છું...... મેં કેફની નિંદા કીધી છે તે વ્યસનીઓને માટે, પ્રસંગે કેફ કીધો ને તે જીરવાયો તો હરકત નથી...... મને તો મજા જ પડી છે'[4] કહેનારા, કેફી, રંગીલા, મજાશોખી નર્મદથી જૂદા પ્રકારની છે. સાચું પૂછાવો તો એ ફાંકડો નથી, પણ અભિમાની છે; સ્વચ્છંદી, મિજાજી, ગર્વીલો ને તે પોતે જ કહે છે તેમ 'વસમો'[5] અને 'હઠીલો'[6] છે. પોતાની જાતને એ સ્થળે સ્થળે 'કવિભૂપ', 'કવિમણિ' અને 'કવીશ્વર'[7] કહે છે; જે પોતાની કવિતાને એ કેટલી બધી વધારે પડતી ઉચ્ચ કોટિની ગણતો તે પ્રત્યક્ષ કરે છે. બિચારા શામળ ભટ્ટને તો

---

૧ યક્ષપ્રશ્નોત્તરમાં પોતાના જેવા ફક્કડ માણસને કરૂણ રસ વર્ણવવો પડે છે તેથી તે દુઃખ અનુભવે છે ને કહે છેઃ—

અક્કડપણું ગુમાવ્યું, ફક્કડનું આજ જેણે,
છક્કડ લગાવી છોડું, લક્કડ લોઢું લઈું.

ચક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૧૮, પૃ. ૧૬.

અને આવો જ 'અક્કડ', 'ફક્કડ', 'છક્કડ'ને 'લક્કડ' શબ્દનો અર્થહીન પ્રયોગ દુઃશાસનરૂધિરપાનાખ્યાનમાં પણ મળે છેઃ—

ફક્કડનું વેણ સુણી, અક્કડ હતો તે ટળ્યો,
છક્કડ ખાધી ત્યાં છેક, લક્કડ લાડુ જમ્યો.

દુઃશાસનરૂધિરપાનાખ્યાન, છં. ૧૬, પૃ. ૧૩.

૨ જુઓ 'વલ્લભ ફાંકડો' નામક શ્રી અતિસુખશંકર કમળાશંકર ત્રિવેદીનો લેખ—સાતમી ગુ. સા. પ. રિપોર્ટ, પૃ. ૯૫ (સાહિત્ય વિભાગ).

૩ શ્રી ક. મા. મુનશી—થોડાંક રસદર્શનો પૃ. ૨૩૮

૪ ઉત્તર નર્મદ ચરિત્ર પૃ. ૧૧, ૧૫.

૫ સુણી રહું બાપ ધારી, બીજાને લગાવું લાત,
વસમો છે વલ્લભ આ, પેમ કરો ચેરો છે.

યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૧૫, પૃ. ૧૩.

૬ નામના છે નવ ખંડે હઠીલા થવાની ચાંપ.

યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૨૦, પૃ. ૧૭.

૭ એવું કપટ સ્વરૂપ, નમે તેને કવિભૂપ,
કવિમણિ કવીશ્વર, એનો સદા ઉંચો કર.

યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૫૩૦, પૃ. ૨૦૧.

તે 'શામ લક્ષણવંતા' ને 'ગુજરાતને કલંક'[8] રૂપ એવું બિરુદ આપે છે. વાંકદેખા (cynic) માનવીની પેઠે એને કોઈને માટે આદર નથી, એ બધાને ધિક્કારે છે. પોતાના પિતાની કવિતાને 'પ્રેમાનંદની કવિતા, સવિતા શી પેખીયે' કહી વખાણવા છતાં, ને તેની કવિતા આગળ 'ચંદ મંદ દેખીયે'[9] તેમ કહેવા છતાં, તે તેની; અરે ખુદ દેવોની પણ ક્રૂર વિડંબના ને ઠેકડી કરે છે. આવો વલ્લભ–એને ફાંકડો અને ફક્કડ કહેવો જોઈએ કે ડોળી અને અભિમાની? સમજુ અને સ્વતંત્ર ગણવો જોઈએ કે ઉદ્ધત અને ઉછાંછળો?

આખ્યાનોનું સ્વરૂપ

વલ્લભે જૂદા જૂદા રસના જૂદા જૂદા આખ્યાનો લખ્યાં છે. એને માટે એમ કહેવાય છે કે એણે પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે 'શૃંગારાદિ નવે રસનાં નવ પુસ્તકો લખવાં અને પ્રત્યેક પુસ્તકમાં પ્રતિજ્ઞાત રસ અવ્યભિચારીપણે વર્ણવવો'[10] અને તેની તે પ્રતિજ્ઞાનુસાર તેણે 'દુઃશાસનરૂધિરપાનાખ્યાન' માં વીર, 'કુંતિપ્રસન્નાખ્યાન' માં અદ્‌ભુત, 'યક્ષપ્રશ્નોત્તર' માં કરુણ, 'યુધિષ્ઠિર વૃકોદર સંવાદાખ્યાન' માં રૌદ્ર, 'ધૃતરાષ્ટ્ર કુરૂક્ષેત્ર દર્શન' માં બીભત્સ (આ પુસ્તક વલ્લભના પુસ્તકોની યાદીમાં છે, પ્રગટ થયું જણાતું નથી) વગેરે રસોને બહલાવ્યા છે. 'મિત્રધર્માખ્યાન' નામક સામાજિક કથાવસ્તુ લઈને પણ તેણે એક આખ્યાન રચેલ છે.

ગુજરાતી સાહિત્યમાં આખ્યાનના શ્રીગણેશ આદ્ય કવિ નરસિંહ મહેતાના (સમય વિ. સં. ૧૪૭૦ થી ૧૫૩૬ લગભગ) ભાગવત પરથી લખાયલા સુદામાચરિત્રથી મંડાય છે. પછીથી ભાલણ (વિ. સં. ૧૪૯૦ થી ૧૫૭૦), કર્મણમંત્રી, નાકર (સં. ૧૫૫૦ થી ૧૬૩૦), તુલસી (સં. ૧૬૧૪), વસ્તો (સં. ૧૬૨૪) વગેરેએ સાહિત્યના આ પ્રકારને ખેડેલ છે. આ અંગની ઉચ્ચોચ્ચ કક્ષા આપણને મહાકવિ પ્રેમાનંદમાં, અને તે પણ આખ્યાનસાહિત્યનાં શિરોબિંદુ જેવા 'નળાખ્યાન' માં જોવા મળે છે. ત્યાર પછી વલ્લભ, શોભે ભક્ત, અને દયારામ વગેરેએ આ પ્રકારને ખેડેલ છે. વલ્લભ પ્રેમાનંદનો જ્યેષ્ઠ પુત્ર હતો. એણે આપણે ઉપર જોયું તેમ જૂદા જૂદા રસના જૂદા જૂદા આખ્યાનો લખ્યાં છે.

---

૮ કવીશ્વર પ્રેમ જેવા, કોક તો અમારા જેવા;
શામ લક્ષણવંતા કો, રાયરંક સેવતા.
અજાચક વ્રત તજી, માગણની રીત ભજી,
ભજવાનું તે ન ભજી, બને મોટા દેવતા.
દ્વિજધર્મ ભૂલનારા, વાસ વસ્યા તેણે કરી,
ગૂજરાતને કલંક, રૈણ વિના રેવતા.

મિત્રધર્માખ્યાન, છં. ૮, પૃ. ૬.

૯ કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાન, છં. ૧, પૃ. ૧.

૧૦ યક્ષપ્રશ્નોત્તર, ગ્રંથવિવેચન, પૃ. ૧

વલ્લભે આખ્યાનો સિવાય 'મારુતિવિજય' નામક નાટક લખ્યાનું કહેવાય છે ને તેનો થોડો ભાગ 'પ્રેમાનંદનાં જ નાટકો' નામક 'ગ્ર'ના પુસ્તકમાં, પરિશિષ્ટ ૪ માં પૃ. ૧૪૯–૧૬૩, 'વલ્લભકૃત મારુતિવિજય' શીર્ષક તળે છપાયેલ છે. તેમાં ખૂટતો ભાગ હજુસુધી બહાર પડ્યો નથી.

આખ્યાનનું ક્ષેત્ર આટલું ખેડાયું હોવા છતાં અને મધ્યકાલીન ગુજરાતી સાહિત્યનું તો એ જ એકમાત્ર સાહિત્યધન હોવા છતાં, હજુ સુધી આપણે ત્યાં એનું ચોક્કસ સ્વરૂપ બંધાયું નથી. શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રી કહે છે તેમ 'સાહિત્યના એક પ્રકાર તરીકે આખ્યાન એટલે શું એ કહેવું પણ મુશ્કેલ છે.'[11] સંસ્કૃત સાહિત્યનાં અને આપણા આખ્યાનોમાં આગળ પડતું લક્ષણ તો વર્ણનની ઝમક, કથન પ્રધાન શૈલી, પ્રસાદ, સુવાચ્યતા ને સરળતા છે. સંસ્કૃત આખ્યાનોમાં વિન્ટરનિટ્ઝ જેવા વિદ્વાનો મુખ્ય આટલાં લક્ષણો તારવે છેઃ[12] – ૧, સંવાદના સ્વરૂપમાં વાર્તા કે દેવકથા ૨, વિચ્છિન્ન પાત્રાલેખન ૩, અર્ધ મહાકાવ્યાત્મક – અર્ધ નાટ્યાત્મક આલેખન ૪, લોકકથાથી સંકલિત ('The cycle of ballads means Akhyān'), ૫, ક્રિયાત્મક (Full of dramatic movement – Morey Miller જેને 'Ballad – Plays' કહે છે તે). આ તત્ત્વોમાંથી થોડાં ઘણાં તત્ત્વો આપણને કદાચ પ્રેમાનંદમાંથી મળે; વલ્લભનાં આખ્યાનોમાંથી એ તત્ત્વો પ્રાપ્ત કરવાની આશા અસ્થાને છે.

જૂના સમયમાં લેખકો સ્વતંત્ર આખ્યાનો લખતા નહિ, પરંતુ સંસ્કૃતમાંથી અનુવાદો કરતા. એની શરૂઆત ભાલણથી થઈ અને પછી તો મૂળમાં લેખક તરફથી નવું ઉમેરણ મળીને પણ આખ્યાનો રચાયાં છે. શ્રી દુર્ગાશંકરભાઈ પ્રેમાનંદના નળાખ્યાનને 'સ્વતંત્ર આખ્યાન કૃતિ'[13] કહે છે તે આવા, લેખક તરફથી થયેલા ઉમેરણ પ્રત્યે આંગળી ચીંધવા ને ભાર મૂકવા અર્થે જ. આવી રીતે મધ્યકાલીન આખ્યાન પ્રવાહ અનુવાદ અને ઉમેરણ એ બે કાંઠા વચ્ચે વહી રહ્યો છે; ને તેમાં પહેલા વહેલા મૌલિક સર્જનનો દીપ તરતો મૂકવાનું માન વલ્લભને – જો તેના આખ્યાનોના કર્તૃત્વ વિશે શંકા ન લાવીએ તો – મળે છે.[14]

આખ્યાનોનું કર્તૃત્વ

પરંતુ આખ્યાનોના કર્તૃત્વ વિશે શંકા કેમ ન આવે? ભાષાની દૃષ્ટિ, આખ્યાનોમાં વ્યક્ત થયેલા વિચારોની દૃષ્ટિ, તેની રજુઆત, શબ્દોની ભાંગફોડ, અંગ્રેજી સાહિત્યની તેના પર પડેલી અસર, ગ્રામ્ય કહેવતો ને શબ્દો પ્રત્યે વધુ પડતો પક્ષપાત, ફારસી શબ્દોનો અતિરેક, એ જમાનાના ભક્તિભીના વાતાવરણમાં આખ્યાનોમાં થતી બ્રાહ્મણોની અને અશ્લીલતાની હદે પ્હોંચતી દેવોની ઠેકડી અને કટાક્ષ: – આખ્યાનોના હરકોઈ તટસ્થ વાચકને તેના કર્તૃત્વ સંબંધે સાશંક કરે તે સાવ સ્વાભાવિક છે. તે જમાનાના વાતાવરણને લક્ષમાં લઈએ, અને એ દૃષ્ટિએ વલ્લભનાં આખ્યાનો જોઈએ તો સ્હેજે જ લાગે કે ગુજરાતી સાહિત્ય સરિતામાં પ્રેમાનંદે તરતા મૂકેલાં સૌમ્ય શીતળ

---

૧૧ ગુજરાતી મધ્યકાલીન સાહિત્ય, ખંડ ૫ મો, પ્રકરણ ૭, પૃ. ૫૮.

૧૨ M. Winternitz, Some problems of Indian Literature, Page 41–58.

૧૩ 'પ્રેમાનંદના નળાખ્યાનમાં એટલું બધું નવું ઉમેરેલું છે કે એ અનુવાદ નહીં પણ સ્વતંત્ર આખ્યાન કૃતિ જ ગણાય' – ગુજરાતી મધ્યકાલીન સાહિત્ય, ખંડ ૫ મો, પૃ. ૫૨.

૧૪ શ્રી ક. મા. મુનશીના વચનો 'If this work (મિત્રધર્માખ્યાન) is not a forgery, Akhyān for the first time drops its borrowed sanskritic frame work and becomes a story of real life' (Guj. and its Lit., P. 202) પણ ઉપરોક્ત કથનને પુષ્ટિ આપે છે.

પ્રભાવંતા ભક્તિરસભર્યાં અનેક આખ્યાનદીપોને બૂઝવતો આવા ઉછાંછળા પવનનો સૂસવાટો ક્યાંથી ? આ વિરોધાભાસ સમજવો કઠણ છે. જો કે સ્વ. કેશવ હર્ષદ ધ્રુવ જેવા તો વલ્લભ વગેરેની આ કૃતિઓને તે સમયની સાહિત્યની શુષ્ક ભૂમિમાં 'કાળે ઊન્હાળે પૂર' જેવી ગણે છે ને આવકારે છે; ને વલ્લભે 'નવ રસનાં નવ કાવ્યો રચી સાહિત્યની સમૃદ્ધિમાં વધારો કરવા ઉપરાંત દુરારાધ્ય પ્રેમાનંદને પણ કૃષ્ણવિષ્ટિ કાવ્યથી રંજિત' કર્યાનું માને છે.[15] પ્રાચીન કાવ્યમાળાના સંપાદકો સ્વ. કાંટાવાળા અને નાથાશંકર શાસ્ત્રી વગેરેનો આવા પ્રકારના મતનું પ્રતિસ્થાપન કરવામાં મોટો હિસ્સો છે તે જાણીતું છે.

પરંતુ આ આખ્યાનોનો ઝીણવટથી અભ્યાસ કરતાં તેના કર્તૃત્વ વિશેની શંકા દૃઢતર બને છે. 'ઘણુંક વણ્યું ભાંગવું વણ ઉઠાવ મારી ભૂલ'[16] એ અર્વાચીન યુગની સમાજવાદી ભાવનાથી પ્રેરાયો હોય તેમ વલ્લભ, તે સમયના લોકોની ધાર્મિક માન્યતાઓ પર અનેક અસત્ય ઘા કરે છે. પવિત્ર ને ઉપાસ્ય બ્રાહ્મણની, મહાભારતના પૂજ્ય પાત્રોની અને દેવોની, અર્વાચીન યુગનેજ અનુરૂપ એવી નિંદા કરે છે. યક્ષપ્રશ્નોત્તરમાં બ્રાહ્મણનું જે વર્ણન છે તે જુઓઃ–

બ્રાહ્મણભાઈ બિચારા, તેમાં વળી કર્મકાંડી,
હારી છૂટ્યા નાશી છૂટ્યા, એક મૃગલા થકી.[17]

અને આટલી મશ્કરી કર્યા પછી તે બ્રાહ્મણને 'માગણ' ને 'તુંબી'ના ઉપનામે (બ્રાહ્મણને તિરસ્કારમાં તુંબડા કહે છે તે વ્યંગ્યાર્થ) નવાજે છે!

કહે માગણ તે વાર, જરઠ તું બેશી રહે,
તારે બાપે ધર્મ કેરી, કોઈ તુંબી ઓઈતી ?[18]

મિત્રધર્માખ્યાનમાં તો વલ્લભે સ્થળે સ્થળે બ્રાહ્મણ પ્રત્યે તિરસ્કાર, ઘૃણા ને કટાક્ષનાં વચનો વ્યક્ત કરેલ છે. યક્ષપ્રશ્નોત્તરમાં ધૌમ્ય જેવા ઋષિઓને વેદિયા ને બીકણ કહ્યા છે. વલ્લભ દેવો માટે જે ઘૃણા ને તિરસ્કાર દર્શાવે છે તે વિસ્મયકારક છે. વલ્લભના મતે દેવો પણ સામાન્ય મનુષ્યની માફક લઢકણા હોય છેઃ–

ભય લાગ્યો રક્ષકને આ તો વળી જોગ મળ્યા,
લઢ્યા માંહોમાંહી આજ, દેવ તો નઠારૂ છે![19]

તેઓ મનુષ્યના સુખ અને વૈભવની અદેખાઈ કરે છેઃ કોઇનો રોષ કોઈપર ઠાલવે છેઃ–

પખાલીને વાંકે ડામે, પાડાને તો આડા લોક,
ભલા દેવના ભવાડા, એવા ત્યાં શરૂ થયા.[20]

---

૧૫ આ સંબંધે વિસ્તૃત ચર્ચા માટે જુઓઃ–

વસંત સંવત ૧૯૫૧, શ્રાવણ–ભાદ્રપદ–આસો એ અંકોમાં પૃ. ૨૫૧, ૨૮૯, ૩૨૯, પરનો 'પ્રેમાનંદ' નામક સ્વ. કે. હ. ધ્રુવનો લેખ.

૧૬ સુન્દરમ્–વસુધા. પૃ. ૭૨.

૧૭ યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૯૯, પૃ. ૬૩.

૧૮ યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૧૧૦, પૃ. ૭૦.

૧૯ યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૭૯, પૃ. ૫૨.

૨૦ કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાન, છં. ૧૨૪, પૃ. ૮૮.

અને આટલું અધૂરું હોય તેમ દેવો જુલ્મી છે ને તેમના કરતાં માનવ વધારે ઉચ્ચ છે તેવું તે સ્પષ્ટતાથી વ્યક્ત કરે છે:-

અજામુખા વ્યાઘ્રમુખા, ત્રિષટાદિમુખા દેવ,
કુરૂપા લાગે અપાર, કે'વા દેવ તેહને !
તેથી ઇન્દ્રપ્રસ્થ મધ્ય, નરની શોભા અધિક,
....
પુરજનો કષ્ટો વળી, રક્ષણ તેનું કરે
બે મગનો માર એવો, સત્વર ચલાવો સર્વ.[21]

દેવોનું આવું ચિત્ર સત્તરમા કે અઢારમા સૈકાના શ્રદ્ધા અને ભક્તિભર્યાં વાતાવરણમાં સંભવિત હોય ? આ પરત્વેનું પ્રોફેસર શ્રી રવિશંકર મ. જોષીનું વિધાન 'આવો પ્રણાલિકા ભંગ મુનશીયુગમાં સંભવે; પ્રેમાનંદયુગમાં નહિં'[22] યથાર્થ જ છે. પરંતુ આ બધાના શિરટોચ જેવો એક પ્રસંગ:-

દેવ કર્યાં ટોળે તર્ત, ભાગી નાખી ભેદને,
પાણિમાં પાષાણ ગ્રહી, વાણીમાં વિરોધ કહી,
પાણીમાં પલાળી દઈ, શિર ઊભો એવને.[23]

વલ્લભ દેવોની મૂર્તિઓને પાણીમાં નાખી તે પર ઊભો રહે છે તે પ્રસંગ આપણને શું સૂચવે છે ? દેવો સામે બંડની પરાકાષ્ઠાની આવી ઉગ્ર ઝાળ એ જમાનાના ભક્તિરસલીલા વાતાવરણમાં ક્યાંથી પ્રગટી ? મહાભારતના પૂજ્ય પાત્રો–પાંડવો–ની ઉત્પત્તિનો એણે જે ઇતિહાસ આપ્યો છે તે પણ એ દૃષ્ટિએ ચમકાવે એવો છે.[24] અત્યારના વિલાસી રાજા-મહારાજાઓને એમના પાશવાનો પોતાના હિતાર્થે જે રીતે સુરા અને સુંદરી તરફ વાળે છે તે રીતે, ઐરાવત ન દેવો પડે તે ખાતર ઇંદ્ર, ભીમ અને અર્જુનને –અને અર્જુન તો ઇંદ્રનો પુત્ર હતો–જે ઉક્તિઓ કહે છે તે જુઓ:-

અપ્સરાઓ આવી નવ સુખ કેરો સ્વાદ છે,
કે'વાય ન મારા થકી અધિક હવે તો કાંઈ;
સ્વર્ગમાંહી લજ્જા કશી માનવ પ્રમાદ છે !![25]

એનું પાત્રાલેખન પણ વિચિત્ર છે. કુંતીપ્રસન્નાખ્યાનમાં કુંતીને ઝઘડાખોર ને અદેખી સાસુ બનાવી છે; દુઃશાસનરૂધિરપાનાખ્યાનમાં દ્રૌપદીને, પતિને આકરા મેણાં ટોણાં મારતી, ડામતી, ને ઉશ્કેરતી, 'કષ્ટદેણ'[26] નાર આલેખી છે. બન્ને આખ્યાનોમાં ભીમ,

---

૨૧ કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાન, છં. ૧૦૫, પૃ ૭૭.

૨૨ પ્રોફેસર શ્રી ર. મ. જોષીનો 'વલ્લભનાં આખ્યાનોનું કર્તૃત્વ' નામક લેખ, શારદા, ઓગસ્ટ ૧૯૩૯ પૃ. ૪૨૪.

૨૩ કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાન, છં. ૧૯, પૃ. ૨૪.

૨૪ લંબાણ ભયે પંક્તિઓ ટાંકતો નથી: જુઓ કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાન, છં. ૨૬, ૨૭, ૨૮, પૃ. ૨૮, ૨૯.

૨૫ કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાન, છં. ૧૪૩, પૃ. ૧૦૦.

૨૬ ભીમ દ્રૌપદીના વચનો સાંભળી ક્રોધથી સળગી ઉઠે છે ને કહે છે:-

અરે ! નારી નીચ વેણ, કથી કેમ કષ્ટદેણ

–દુઃશાસનરૂધિરપાનાખ્યાન, છં. ૧૦૮, પૃ. ૮૨.

યુધિષ્ઠિર અને અન્ય દેવોના પણ અતિ ઉપહાસમય ચિત્રો દોર્યાં છે. યુધિષ્ઠિરવૃકોદર-સંવાદાખ્યાનમાં, ભીમ ક્રોધે ભરાઈને યુધિષ્ઠિરને 'બકધ્યાન', ને 'બોબડો' કહે છે ને પછીથી

બૂચટ ! ન બોલ હજી, બુદ્ધિહીન ! બેશી રહો,
અવજ્ઞા કરે શું અલ્યા ! નીચપણું આ નર્યું ! !

અને છેવટે ઉશ્કેરાઈ જઈને યુધિષ્ઠિરને મારવા દોડે છેઃ–

મૃગ પર સિંહ જેમ, તરાપ મારીને પડે,
તેમ સાહ્યો યુધિષ્ઠિર, ક્રોધે મૂઢ થૈ મતિ.
કૃષ્ણ કૃષ્ણ દોડી આવ્યાં, જ્યાં ત્યાં કરી ઝાલ્યો ભીમ,
ક્ષમા કરો કરો કહે, ક્રૂર કર્મ આ અતિ ![૨૭]

ભીમનું યુધિષ્ઠિર પ્રત્યેનું આ વર્તન એ પાત્રના ગૌરવને ખંડિત કરે છે. મહાભારતના મૂળ કથા પ્રસંગમાં, સભાપર્વમાં દ્રૌપદીના વસ્ત્રાહરણસમયે જ્યારે ભીમને વધારેમાં વધારે ઉશ્કેરાઈ જવા પૂરતું કારણ હતું ત્યારે–પણ ભીમ, યુધિષ્ઠિર પ્રતિ આટલો ઉશ્કેરાયલો નથી.[૨૮] આ આખ્યાનમાં જ દ્રૌપદી યુધિષ્ઠિરને યુદ્ધ માટે ઉશ્કેરવા મેણાં ટોણાં મારે છે, ને છેવટ ન બોલવાના વચનો બોલવા માટે, પોતાની જાતને કૂતરી સાથે ને પોતાના બોલવાને કૂતરીની લવારી સાથે સરખાવે છે.[૨૯] સાચું પૂછાવો તો વલ્લભને પાત્રગૌરવ કે પાત્રપ્રતિષ્ઠાની ગતાગમ જ નથી.

વલ્લભનાં આખ્યાનોને આધુનિક ઠરાવનાર બીજું તત્ત્વ તેમાં વપરાયલી શિકાર અંગેની કહેવતનો ઉલ્લેખ છે. પ્રેમાનંદનાં નાટકોમાં 'એક કાંકરે બે પક્ષી પડે' કે 'કાગડો કામઠીને ન ધીરે'[૩૦] જેવી કહેવતો, નરસિંહરાવભાઈના મત પ્રમાણે અંગ્રેજી સાહિત્યની અસર નીચે લખાયલી છે. આનો ખુલાસો રા. જ્ઞ. 'એ વખતે દેશી રાજ્યની રાજધાની-ઓમાં ને બંદરોમાં ઘણા ગોરા લોક રહેતા હતા તેથી પણ પ્રેમાનંદને કાને એ કહેવત આવવાનો સંભવ છે'[૩૧] કહીને કરે છે પણ આ ખુલાસો લૂલોપાંગળો, રા. નરસિંહરાવે કહેલું તેમ 'અદ્ભુત અસંભવ પરંપરાની વાત'[૩૨] છે. વલ્લભમાં પણ આવી કહેવતોઃ–

---

૨૭ યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, છં. ૧૯૩–૯૪, પૃ. ૧૦૨.

૨૮ મહાભારતમાં અર્જુન કહે છે તે પ્રમાણે ભીમ આ પ્હેલાં આટલો કયારેય ઉશ્કેરાયલો નથીઃ તે છતાં મહાભારતકારે એને યુધિષ્ઠિર ઉપર 'મૃગ પર સિંહ જેમ' તૂટી પડતાં નથી બતાવ્યો, પરંતુ સહદેવ પાસે યુધિષ્ઠિરના હાથ બાળવા અગ્નિ માંગતો બતાવ્યો છે. જુઓઃ–

अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन्निपात्यते ।
बाहू ते संप्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय ॥ ६ ॥

Nirnaya-sagar edition Sabha parva II P. 136.

૨૯ નમું ગજ રૂપધારી, લેખો નવ શુની ભસ્યું

યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, છં. ૯૪, પૃ. ૫૩.

૩૦ આને મળતી એક કહેવત 'અરે કાગડો છેતરાઈ ગયો તો !' છોટાલાલ નરભેરામ ભટ્ટના 'બ્રહ્મ-રાક્ષસ' નામક પુસ્તકમાં (પૃ. ૧૦૫) મળે છેઃ પરંતુ હું વિસ્તારથી આગળ ઉપર લખવાનો છું.

૩૧ વસન્ત, સં. ૧૯૬૧ કાર્તિક, 'પ્રેમાનંદના નાટકો', પૃ. ૪૮૩.

૩૨ વસન્ત, સં. ૧૯૭૦ આષાઢ, 'પ્રેમાનંદનાં નાટકોનાં પક્ષકારો', પૃ. ૪૦૨.

‘કોકિલા ઉપર બાજ’[33]

અને ‘પતિ શય્યા સૂતા હંસ પીછમાં
અરર શું સૂતા પાદ રીંછમાં !’[34]

મળી આવે છે. હંસના પીંછાનો આવો–શય્યા બનાવવાનો રિવાજ તે જમાનામાં હતો ? વલ્લભનો સમય વિ. સં. ૧૭૮૦ એટલે ઇ. સ. ૧૭૨૪ : એ સમયમાં અંગ્રેજોની ગુજરાતમાં આટલી અસર પડે ખરી કે એમને ટોપામાં હંસને પીંછા ખોસતાં જોઈને આપણે એને કવિતામાં કે કહેવતના રૂપે ચલણી સિક્કો બનાવી દઈએ ?

વલ્લભની ભાષાભક્તિ–ભક્તિ કરતાં વિશેષ અંશે ભાષાભિમાન અને બડાઈ–અદ્ભુત છે. પ્રેમાનંદને ગૂર્જર ગિરા વિશે ભક્તિ હતી; પણ એણે પોતાના કાવ્યોમાં એ સંબંધે મૌન જ પાળ્યું છે;[35] જ્યારે વલ્લભ તો સ્થળે સ્થળે એ સંબંધે બડાઇ મારે છે એટલું જ નહિ પણ ગુજરાતીની સરખામણીમાં મરાઠી અને હિંદી ભાષાને ‘સારો શબ્દ રૂપી નર’ ઝડપી લેતી વ્યભિચારિણી સ્ત્રી સાથે સરખાવે છે, નીચી કક્ષાની ‘ભ્રષ્ટ ભાષા દેવી’ ને ‘લોભીઅણુ’ ગણે છે અને મરાઠીને ‘મલિન’ કહે છે,[36] ને મારવાડી વગેરે બીજી ભાષા માટે લખે છેઃ–

અબે તબે અઠે કઠે, ઇકડં ને તિકડં,
શું શાં થકી ચઢે કેમ, જૂઠી વાત જેની છે.
કાનપટી સાહી કર, બિનારસ સભા મધ્ય,
ખેંચી બાઊં ખંત ધરી, ઝલેમલે કેની છે ?[37]

અને ગુજરાતી માટે તો

કોમળતા કમળથી, અધિક દેખાય જેમાં,
મધુસુધા મિષ્ટપણે, હારી હારી જાય છે;
અમલતા એના જેવી, નથી કોઈ ભાષા મધ્ય,
પ્રાચીનપણું તો જેનું, મોટેરૂં મનાય છે.

---

૩૩ યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૮૮, પૃ. ૫૮.

૩૪ યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૪૧૧, પૃ. ૨૧૫.

૩૫ આ પરત્વે વિસ્તૃત નોંધ માટે જુઓ–રા. નરસિંહરાવનો ‘પ્રેમાનંદના નાટકો’ નામક નિબંધ, પૃ. ૧૯.

૩૬ સારો શબ્દ રૂપી નર, ઝડપી લે જોતા મહીં,
– –   – –   – –
એવી ભ્રષ્ટ ભાષા દેવી, સેવી હિંદુસ્તાની તમે,
લોભીઅણુ તણું મન, લોભમાં લોલુપ રહે.
– –   – –   – –
કોક ભાષાદેવી દીન, મલિન ને માલવની,
કરે માલવાળી તેને, સાજ શો સજાવિયો.
યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, છં. ૧૦, ૧૨, ૧૩. પૃ. ૭–૯.

૩૭ યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, છં. ૮, પૃ. ૫.

નવરસની નાયકા, સુખદાયકા છે સિદ્ધ,
જાણે નહિ તેહ એના, ખોટા ગુણ ગાય છે.
કર્ડકણાપણું કે' છે, નથી એના મહીં રજ,
વીર ગ્રંથ ભાળ્યા નહિ, ખત્તા તેણે ખાય છે.[38]

– – – – – – – –

ગુર્જર ગિરાની તુલ્ય, ઉપમા ઉર્વીમાં નથી,
સર્વગુણસંપન્ન છે, ઉચ્ચાર રસાળ શો.[39]

– – – – – –

પિતા જેટલું આયુષ્ય, સુત જો સપુત પામ્યો,
તો ગિર્વાણ ગભરાશે, શું હિંદી સ્વરૂપમાં.[40]

ગુજરાતી ભાષાભક્તિનો આ અતિશય ઉત્સાહ અને બીજી ભાષાઓને હલકી પાડવાનો આ પ્રયાસ – તે બન્નેનો તે સમયના વાતાવરણમાં મેળ બેસારવો અઘરો છે. ગુજરાતી સાહિત્યની સમૃદ્ધિને ખાતર પાઘડી ન પહેરવાની પ્રતિજ્ઞા પ્રેમાનંદે લીધી હતી તેવી લોકોક્તિ છેઃ પ્રેમાનંદના કાવ્યોમાંથી આ સંબંધે નોંધપાત્ર ઉલ્લેખ કે આ માન્યતાને અનુમોદન મળતું નથી; જ્યારે વલ્લભના આખ્યાનોમાં, વલ્લભે પોતાની રચનાઓ એટલી ઉત્તમ કોટિની બનાવી હતી કે પ્રેમાનંદે ક્ષણભર તો પોતાની પ્રતિજ્ઞા વિસારીને ટપ દઈને પાઘડી માથે મૂકીને વલ્લભને બિરદાવ્યો તેવું કથન છેઃ–

માગ માગ મારા સુત, મુખ માગ્યું આપ્યું તને,
કવીશ્વરે એવી ઘડી, એકવાર આણીતી.

– – – – – – – –

પાઘ પે'રાવી કવિએ, કવિતા વખાણીતી,
વીરજીએ પાછી આપી, પ્રેમથી પ્રમાણીતી.[41]

પ્રેમાનંદનું પોતાનું, પોતાની ભાષાભક્તિ વિષેનું સંપૂર્ણ મૌન અને વલ્લભની અર્થહીન આવી અનેકાનેક ઉક્તિઓ, એ બેને કેમ ઘટાવવી? ભાષાભિમાની વૃત્તિથી ઉભરાઈ જતાં કોઈ આધુનિક લેખકે આ પ્રસંગ કલ્પ્યો ને અક્ષરાંકિત કર્યો એ સિવાય એનો બીજો શો અર્થ?

બીજી એક વાત પણ લક્ષમાં રાખવા જેવી છે. પ્રેમાનંદ અને શામળના ઝગડા વિષે પણ પ્રેમાનંદના કાવ્યોમાં ખાસ ઉલ્લેખ મળતો નથી. શામળ પણ આ સંબંધે બહુધા[42]

૩૮ યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, છં. ૧૬, પૃ. ૧૧.

૩૯ યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, છં. ૧૭, પૃ. ૧૨.

૪૦ યુધિષ્ઠિરવૃકોદરસંવાદાખ્યાન, છં. ૧૮, પૃ. ૧૩.

૪૧ યક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૫૨૧, પૃ. ૨૬૫.

૪૨ બહુધા લખવાનું પ્રયોજન એકે કવચિત અપવાદરૂપે શામળમાં, પ્રેમાનંદ કે વલ્લભ પ્રત્યે કટાક્ષની નીચેની પંક્તિઓ મળી આવે છેઃ–

ઘર ઘર રાગ તાણું નહિં, પુત્ર ન મુજ ગુણ ગાય,
રાજદરબારે રઝળવું, મેળવી નથી પસાય.
ભાટ બ્રાહ્મણને ભાંડવા, લાંબી મૂકી પોક,
વીઝી ભલા ભલા કહે, તેથી થાયે શોક.

મૌન પાળે છે. પરંતુ વલ્લભના આખ્યાનોમાં આ વિશેનો ઉલ્લેખ અપરંપાર મળે છે; (આ લેખની શરૂઆતમાં પણ મેં તે સંબંધે ઇશારો કરેલ છે) ને પ્રાચીન કાવ્યમાળાના સંપાદકો કહે છે તેને પ્રમાણભૂત ગણીએ તો તો 'શામળ વલ્લભ ઝગડો' પણ વલ્લભે રચી કાઢયો છે ! પરંતુ અહીં એ નોંધવું ઘટે છે કે 'વલ્લભ ઝઘડો' જે વલ્લભે રચ્યો હોવાનું સંપાદકો કહે છે તે, સ્વ. કેશવ હ. ધ્રુવે, સંપાદકો પાસેથી પુસ્તકોની ટીપ માંગતાં તેઓએ જણાવ્યું તે પ્રમાણે, બુદ્ધિપ્રકાશ, જાન્યુઆરી ૧૯૧૧ ના અંકમાં, પ્રેમાનંદના નામે ચઢાવેલ છે ! એક જ પુસ્તકના કર્તૃત્વની આવી અવળાસવળી સમણાસમણી કૃતિ રચાયા હોવા વિશે પણ આપણને શંકાશીલ ન બનાવે ?

એક બીજી વાતઃ શામળની 'અંગદવિષ્ટિ'ની હરીફાઇમાં વલ્લભે 'કૃષ્ણવિષ્ટિ' રચ્યાનું પ્રાચીન કાવ્યમાળાના સંપાદકો કહે છે; ને તેમાંથી વલ્લભનાં વાક્યો ટાંકે છે કે 'સામળ ! વાનરાને વિષ્ટિકાર બનાવીને રાજકાજના દાવપેચ વર્ણવી શકાતા નથી, તે પણ તું સમજી શકતો નથી, છતાં તું કવિપદ ધારણ કરી બેઠો છે ! પણ દાવપેચની મૂર્તિરૂપ કૃષ્ણને વિષ્ટિકાર વર્ણવીને હું તારા કાવ્યને છક્કડ ખવરાવું છું તે તું જો !'[૪૩] અને આ કાવ્ય રચીને તેણે પ્રેમાનંદને બતાવ્યું; પ્રસન્ન કર્યા અને પાઘડી પહેરાવી તેવો ઉલ્લેખ આપણને દુઃશાસનરૂધિરપાનાખ્યાનમાં (છંદ ૫૨૧, પૃ. ૨૬૫) મળે છે; કવિચરિત્રમાં પણ સંપાદકો તે પ્રમાણે નોંધે છે. અહીં આ ઉલ્લેખોથી 'કૃષ્ણવિષ્ટિ' વલ્લભે 'અંગદવિષ્ટિ'ની હરિફાઇમાં રચ્યું છે તે સંપાદકોનું કથન ખોટું ઠરાવી શકાય છે. 'અંગદવિષ્ટિ' રચાયું સં૦ ૧૮૦૮ માં એટલે 'કૃષ્ણવિષ્ટિ' તે પછી જ રચાયલું હોવું ઘટે. પ્રેમાનંદની મૃત્યુતિથિ નર્મદાશંકર સં. ૧૭૯૨ માં ગણે છેઃ[૪૪] અહીં પ્રશ્ન એ ઉપસ્થિત થાય છે કે સં. ૧૮૦૮ પછી રચાયલી કૃતિ વલ્લભ પ્રેમાનંદને સં. ૧૭૯૨ પહેલાં કેવી રીતે બતાવી શકે ને તેને પ્રસન્ન કરી શકે ? પ્રેમાનંદ અને શામળ એ બન્ને પ્રતિસ્પર્ધીઓનું પરસ્પરની ભલીબૂરી લાગણી વિષેનું મૌન અને એના પડછે વલ્લભનો (એણે 'વલ્લભ ઝગડો' રચ્યો એમ ન માની શકાય, છતાં ઘડીભર માનીએ તો;) શામળના દૂબળા પાતળા યશદેહને ડગલે પગલે પીંખી નાંખતો હૂમલો પણ અમુક અંશે સૂચક છે.

---

૪૩ દુઃશાસનરૂધિરપાનાખ્યાન, કવિચરિત્ર, પૃ. ૫.

૪૪ 'દશમસ્કન્ધના ૯૦ અધ્યાયમાંથી ૫૨ અધ્યાય પ્રેમાનંદના પોતાના કરેલા છે, ને વ્યાસજી ભટો કહે છે કે પ્રેમાનંદને દશમસ્કન્ધ પૂરો કરવાનું ઘણું કોડ હતું ને મરતી વેળા શિષ્યને કહી ગયો કે જેમ બને તેમ તાકીદથી એ ગ્રંથ પૂરો કરજે—એ ઉપરથી જણાય છે કે એના મુઆ પછી ૩૮ અધ્યાય પૂરા કરતાં સુંદરને ઘણામાં ઘણાં ૪ વરસ લાગ્યાં હશે ને એ ઉપરથી જણાય છે કે પ્રેમાનંદે ૧૭૯૨ માં દેહ છોડેલી......'

જૂનું નર્મગદ્ય—'પ્રેમાનંદ'—પૃ. ૪૬૨.

અને આ પ્રેમાનંદના મૃત્યુની તિથિ સાચી છે, કારણ દશમસ્કન્ધ પૂરો કર્યાની તિથિ સુંદર મેવાડાએ ૧૭૯૬ આપેલી છેઃ—

સંવત સત્તર છ નેઉએ વસન્ત પંચમી દિન
અધ્યાય બાવનથી અધૂરો, તે થયો હરિકૃપાથી સંપૂર્ણ.

દશમસ્કન્ધ, અધ્યાય ૯૦, કડવું ૨૦૩.

નરસિંહરાવભાઈ પ્રેમાનંદના નાટકોમાં 'સંસ્કૃત છંદશાસ્ત્ર વગેરેમાં સ્વીકારાયલાં શુદ્ધ વૃત્તો તથા છન્દો વાપર્યાં છે તેથી વળી નાટકના કર્તૃત્વ વિષે સંશયમાં યથાબળ ઉમેરો'[૪૫] થયેલો ગણે છે. એ દૃષ્ટિએ જોઈએ તો વલ્લભના દુઃશાસનરૂધિરપાનાખ્યાનમાં શંકરસ્તુત્યષ્ટક શુદ્ધ શિખરિણી વૃત્તમાં રચાયલું માલમ પડે છે. યક્ષપ્રશ્નોત્તરમાં દ્રૌપદીના વિલાપમાં લલિત છંદની યોજના કરવામાં આવી છે. પ્રેમાનંદની કવિતામાં સંસ્કૃત છંદનો ઉપયોગ નથી થયો—જે એકાદ શ્લોક સંસ્કૃત વૃત્તમાં રચાયલો મળે છે તે ક્ષેપક છે.[૪૬] તો પછી વલ્લભના આ વૃત્તોનું શું? જો કે આવા બાહ્ય પ્રમાણ અને પૂરાવાઓ કેટલીકવાર સત્યનિર્ણયમાં બાધકર્તા પણ નીવડે છે. દાખલા તરીકે આ સંસ્કૃત વૃત્તોની જ વાત કરીએ તો 'ગુજરાતી સાહિત્યનો ઇતિહાસ જોતાં સંસ્કૃત વૃત્તોને નવો ઉદય આધુનિક કવિતામાં જ—પાછલા પચાસ વર્ષની અંદર—થયો છે'[૪૭] એ વિધાન સામે જૈન સાધુ શાલિસૂરિકૃત 'વિરાટ પર્વ' આપણે રજૂ કરી શકીએ છીએ. 'વિરાટપર્વ' આખું, એ સમયની જૂની ગુજરાતીમાં રચાયલું છતાં, અક્ષરમેળ વૃત્તોમાં જ રચાયલું છે. ભાષાની દૃષ્ટિએ એ પંદરમા સૈકાના અંત સમયની રચના ગણાય છે. ગુજરાતીમાં—જૂની કે નવી—સંસ્કૃત વૃત્તોના વપરાશનો પ્રશ્ન અને તેને અવલંબીને લેખકનો નક્કી કરવાનો સમય, એ ગણત્રી બરાબર નથી; છતાં પરંપરાની દૃષ્ટિએ યોગ્ય ભૂમિકા વગર પરાપૂર્વથી ચાલી આવતી ઘાટીને ફંગોળી દેવાના કે તેમાં યોગ્ય પરિવર્તન કે સુધારા દાખલ કરવાના સબળ કારણો સિવાયના પ્રયાસો અભ્યાસકને વિચારમાં તો જરૂર નાંખી દે જ.

આખ્યાનોનું વસ્તુ

વલ્લભે એનું એક આખ્યાન—મિત્રધર્માખ્યાન—બાદ કરતાં, બધાં આખ્યાનોનું વસ્તુ મહાભારતમાંથી લીધું છે; એમાં ઘટતા અઘટતા ફેરફારો ને ઉમેરણ કરેલ છે—શ્રી. ગજેન્દ્રશંકર પંડ્યાના શબ્દોમાં કહું તો 'વલ્લભે પિતાના મતને અનુસરીને મહાભારતના કોઠારમાંથી સીધું લીધું, પણ એ સીધામાંથી એણે નવીન તરેહની, નવીન ઢબની અને નવીન સ્વાદની જ વાનીઓ બનાવી છે.'[૪૮] કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાનમાં અર્જુન બાણુપર

---

૪૫ ત્રીજી સાહિત્ય પરિષદ રિપોર્ટ—કવિ પ્રેમાનંદનાં નાટકો પૃ. ૨૧.

૪૬ જે ચક્રવાક દિવસે વહુ સાથ રાખે,
તે સંગરંગ રમતાં રવિતાપ સાંખે;
રાતે વિયોગ થકી ચન્દ્રપ્રકાશ ખૂંચે,
જો હોય દુઃખ દિલમાં કશુંએ ન રૂચે.

ઉપરોક્ત વસન્તતિલકા વૃત્તમાં રચાયલો શ્લોક પ્રેમાનંદના નળાખ્યાનમાં છે; પણ તે કવિ દલપતરામે સંસ્કૃત શ્લોકને ભાષાંતરિત કરીને મૂકેલો તે હવે સાબિત થયું છે. જુઓ ત્રીજી સા. પ રિપોર્ટમાં કવિ પ્રેમાનંદના નાટકો નામક, ન. ભો. દિ. નો લેખ—પૃ. ૨૧—'કવિ દલપતરામને મ્હેં શોલાપુરથી કાગળ લખી આ વિષે પ્રશ્ન પૂછ્યો હતો; ત્હેના ઉત્તરમાં એઓએ લખ્યું હતુ કે હસ્તલેખમાં એ શ્લોકનું ભાષાન્તર મૂકેલું ન્હોતું તેથી મ્હારા મનમાં થયું કે ભાષાન્તર પણ મૂક્યું હોય તો ઠીક, એમ કરીને આ વસંન્તતિલકા મ્હેં મૂકયો છે.'

૪૭ ત્રીજી સાહિત્ય પરિષદ રિપોર્ટ—ન. ભો. દિ.—કવિ પ્રેમાનંદનાં નાટકો પૃ.— ૨૬.

૪૮ વલ્લભ, પ્રકરણ સાતમું, પૃ. ૩૮.

ઇંદ્રને સ્વર્ગમાં પત્ર મોકલે છે તે બનાવ મહાભારતમાં નથી, પરંતુ મહારાષ્ટ્રના અનંત કવિના ગજગૌરી વ્રતને (કડી ૧૭–૨૦) આબેહૂબ મળતો આવે છે. બન્ને સમકાલીન કવિઓ હતા છતાં આ સામ્ય સંબંધે નરસિંહરાવભાઈને, અનંત કવિએ વલ્લભમાંની એ વસ્તુનું અનુકરણ કર્યું તેવી સંભાવના નથી જણાતી. ઉલટ પક્ષે વલ્લભે પણ અનંત કવિનું અનુકરણ નથી કર્યું પરંતુ કોઈએક સામાન્ય મૂળમાંથી બન્નેએ આ વસ્તુ લીધી તેમ તેઓ કહે છે.[૪૯] પરંતુ હું અહીં એક એવું જ બીજું ઉદાહરણ ટાંકી આ મતથી થોડો જૂદો પડવાનું સાહસ કરૂં છું.

મિત્રધર્માખ્યાન અને બ્રહ્મરાક્ષસ

વલ્લભના મિત્રધર્માખ્યાનનું આખું વસ્તુ મને છોટાલાલ નરભેરામ ભટ્ટના બ્રહ્મરાક્ષસના વસ્તુ સાથે હૂબહૂ મળતું લાગે છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં આવે છે તે બે બ્રાહ્મણમિત્રો ઇંદુ ને બિંદુ, બ્રહ્મરાક્ષસના વિદ્યારામ ને લક્ષ્મીરામનાં જ રૂપાંતરો છે. બન્નેમાં નામ પ્રમાણે ગુણ છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં બિંદુ ઇંદુને મારી નાસી જાય છે તો બ્રહ્મરાક્ષસમાં લક્ષ્મીરામ વિદ્યારામને છરો ઘોંચી નાસી જાય છે. બિંદુ ઇંદુને મારતાં પહેલાં શોચે છેઃ–

મહામોટા મુનિઓએ આવાં કૃત્ય કર્યાં ઘણાં,
પાપ નથી રજ એમાં, ઘાટ બેઠો શે ઘડું ?[૫૦]

બ્રહ્મરાક્ષસમાં લક્ષ્મીરામના મનમાં ચાલતાં વિચારોઃ–

'તેનું હૃદય કંપે છે, અંતરાત્મા ના કહે છે, લોભવૃત્તિ હવે તેનો ધિક્કાર કરે છે. અરે બાયલા ! અરે નામર્દ ! પાપ શું ? પુણ્ય શું ? નરક શું ? સ્વર્ગ શું ? ધન વડે ધર્મ કરજે......મૂળરાજની હત્યા દૂર ન્હોતી થઈ? બળરામે હત્યા ન્હોતી કરી ? સ્વાર્થને માટે ઇંદ્રે વૃત્રને નથી હણ્યો ? દધિચિની હત્યા નથી કરી ? પરશુરામનો કયો છોકરો કુંવારો હતો કે તેણે આબાલવૃદ્ધ ક્ષત્રિયોનો નિર્વંશ કાઢ્યો !......વિશ્વામિત્રે વસિષ્ઠના સો પુત્ર ન્હોતા માર્યા ?'[૫૧]

ઇંદુને મારીને બિંદુ નાસી જાય છે ને તે કલ્પિત ભયથી ડરે છે, એમાં મેકબેથમાં ડંકનના ખૂન પછી લેડી મેકબેથ ભ્રમિત થાય છે એનું અનુકરણ તો જણાય જ છે; પરંતુ મિત્રધર્માખ્યાનની બિંદુના મનોભાવ નિરૂપતી પંક્તિ 'ડર નથી હવે કશો જાણે નવ કોઈ પણ'[૫૨] ને હૂબહૂ મળતી આવતી લક્ષ્મીરામના મનોભાવ આલેખતી કંડિકા બ્રહ્મરાક્ષસમાં આ પ્રમાણે છેઃ–

'હવે તેને લાગ્યું કે મારી પાછળ કોઈ આવતું નથી તથા મને કોઈ પાપકર્મી જાણતું નથી ત્યારે તે માર્ગ શોધી કાઢી ગૂજરાતને માર્ગે પળ્યો.'[૫૩]

---

૪૯ Gujarati Languge and Literature Vol. II, P. 251.

૫૦ મિત્રધર્માખ્યાન, છં. ૭૬, પૃ. ૩૯.

૫૧ બ્રહ્મરાક્ષસ, પ્રકરણ બીજું, પૃ ૨૨.

૫૨ મિત્રધર્માખ્યાન, છં. ૮૪, પૃ. ૪૨.

૫૩ બ્રહ્મરાક્ષસ, પ્રકરણ ત્રીજું, પૃ. ૨૭.

મિત્રધર્માખ્યાનમાં ઇંદુના વૃદ્ધ પિતા સમાચાર જાણવા મિંદુ પાસે આવે છે તે મિંદુ તેણે તેને મારેલો (ગર્દન પર પાટુ મૂકી, પત્થર મારી) છતાં પોતાનાથી, તે મહીકાંઠે લૂંટાયા પછી, વિખૂટા પડ્યાની વાત કહે છે; બ્રહ્મરાક્ષસમાં પણ વિદ્યારામના વૃદ્ધ પિતા લક્ષ્મીરામ પાસે સમાચાર મેળવવા આવે છે ને તેને પોતે છરો ઘોંચ્યો હતો છતાં તે મણિકર્ણિકાના ઘાટ પર ડૂબી ગયાનું જણાવે છે.

બ્રહ્મરાક્ષસમાં વિદ્યારામને છરો ઘોંચ્યા પછી લક્ષ્મીરામને વળગેલા બ્રહ્મરાક્ષસ વગેરેનું લંબાણથી વર્ણન આવે છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં પણ મિંદુ ઇંદુને મારી પોતાના ગામમાં વિદ્વાન ગણાય છે, તેની પોલ પકડાય છે વગેરે લંબાણ વર્ણન મળે છે. બંનેમાં વિદ્યારામ અને ઇંદુ વિષે આ લંબાણ ચર્ચા ને કથન પછી જ નિર્દેશ મળે છે તે સામ્ય પણ અદ્દ્ભુત છે! બ્રહ્મરાક્ષસમાં વિદ્યારામ સંન્યાસી રૂપે લક્ષ્મીરામને મળે છે; મિત્રધર્માખ્યાનમાં ઇંદુ મહંત સ્વરૂપે મિંદુને મળે છે: બ્રહ્મરાક્ષસમાં વિદ્યારામ લક્ષ્મીરામને સંન્યાસી સ્વરૂપે મળે છે ત્યારે 'લક્ષ્મીરામને પોતાનો જૂનો મિત્ર મળ્યો અને જેણે તેનો આવો મોટો અપરાધ કર્યો છે તે પોતાના તરફ આવી પ્રીતિ બનાવે છે તે જોઈ ને તેને અતિ આનંદ થયો'[૫૪] તેવો ઉલ્લેખ છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં ઇંદુ મિંદુને મારવા આવતા લોકોમાંથી બચાવે છે—અપકાર પર ઉપકાર કરે છે ત્યારે

મિંદુ માર્ગમાંહી વદે, ભાઈ રાખ્યો જીવતો તેં;
ઉપકાર તારો અતિ, ધરૂં ધ્યાન ધારણે.[૫૫]

એ પંક્તિઓ મળે છે.

મિત્રધર્માખ્યાનમાં ઇંદુને મહંત લેખી, મુખી પૂજે છે, તેનો શિષ્ય બને છે, તેની પાછળ પાછળ આવે છે; બ્રહ્મરાક્ષસમાં વિદ્યારામને આવી રીતે શિવલાલ શેઠ પૂજે છે, સહાય કરે છે, પાછળ પાછળ આવે છે.

બ્રહ્મરાક્ષસ અને મિત્રધર્માખ્યાનના વસ્તુના આ સામ્ય ઉપરાંત બન્ને પુસ્તકોની લેખન શૈલીમાં પણ મને સામ્ય જણાય છે. વલ્લભમાં ગ્રામ્ય ને અપરિચિત શબ્દો અને વાક્યો પુષ્કળ મળે છે તે આપણે આગળ ઉપર જોઇશું. બ્રહ્મરાક્ષસના લેખકની 'શૈલીમાં પણ આવા શબ્દો ને વાક્યો મળે છે: શબ્દો:—'ખાયે' (બ્રહ્મ. પૃ. ૫) 'વગ્ર કારા' (પૃ. ૫), 'લખલખવા' (પૃ. ૨૫), 'બામા' (પૃ. ૯૧), 'કાઠમાળ' (પૃ. ૩૮) શીષાવીયા' (પૃ. ૧૦૧): વાક્યો:—

૧, 'મૂક તારૂં બિલાડીનું બચોવીયું ઠેકાણે' (પૃ. ૧૪)
૨, 'કહીં સુબાગિરિનું કામઆમ કર્યું હશે ખરૂં,
ઠાઠ તો એનો જણાય છે.' (પૃ. ૯૫)
૩, 'એકને પાપે બધાને હેડમાં ખોશી ઘાલશે' (પૃ. ૧૦૧)
૪, 'રૂઝાયલો ઘા ઉખળે છે, !' (પૃ. ૧૧૪)
૫, 'મેલ ચાળા! એવો કાંઈ ઠાલી લોક દેખાડો કરીશ નહિ (પૃ. ૧૧૭)

---

૫૪ બ્રહ્મરાક્ષસ, પ્રકરણ સાતમું, પૃ. ૮૮.
૫૫ મિત્રધર્માખ્યાન, છં. ૧૦૬, પૃ. ૮૨.

૬, 'અરે કાગડો છેતરાઈ ગયો તો ! (પૃ. ૧૦૫)

૭, 'કોઈ રાજાઓના દરબારમાં માથામારૂં સંસ્કૃત ભાષાના પંડિતો કે હિંદી ભાષાનું સાહિત્ય જાણનાર ભાટચારણો અડી ગયા હતા'

૮, 'ખજો ખાડમાં કૂટી ગયું !' (પૃ. ૮૯)

વલ્લભમાં ફારસી શબ્દો અપરંપાર મળે છે (જેની ટીપ હું આગળ ઉપર આપું છું): બ્રહ્મરાક્ષસના લેખક પણ બ્રહ્મરાક્ષસમાં ફારસી શબ્દોનો અતિરેક થાય તેટલો ઉપયોગ કરે છે. જુઓ:–

'કાસદ' (પૃ. ૪), 'હકીમ' (પૃ. ૮), 'ટંડેલ' (પૃ. ૯), 'બડી' (પૃ. ૧૧) 'જંદ' (પૃ. ૪૦), 'જીન' (પૃ. ૪૭), 'ગુનેહગાર' (પૃ. ૮૯), 'ઇલિમી' (પૃ. ૫૦), 'હાદીસ' (પૃ. ૫૦), 'કીમીઓ' (પૃ. ૫૦), 'હેડ' (પૃ. ૧૦૧), 'તીરંદાજી' (પૃ. ૧૦૧), 'પદવી' (પૃ. ૧૧૦), 'સ્વારી–અસ્વારી' (પૃ. ૧૧૪–૧૧૫), 'છડીદાર' (પૃ. ૧૧૪) વગેરે.

વલ્લભનાં બધાં આખ્યાનો આધુનિક હોય તેમ તો મેં ઉપર કહ્યું જ છે, પરંતુ વલ્લભના મિત્રધર્માખ્યાન અને છોટાલાલ નરભેરામ ભટ્ટના બ્રહ્મરાક્ષસની વસ્તુઘટનાના આવા અદ્‌ભુત સામ્યથી, અને બન્ને કૃતિની રચનાપરંપરા, ભાષા, શૈલી, માંડણી, ફારસી શબ્દોનો ઉપયોગ, ગ્રામ્ય શબ્દો ને કહેવતો પરનો વધુ પડતો પક્ષપાત વગેરે તત્ત્વોના મળતાપણાથી હું તો એવા અનુમાન પર આવવાની હિંમત કરું છું કે મિત્રધર્માખ્યાનના લેખક કદાચ છોટાલાલ નરભેરામ ભટ્ટ પણ હોય ! વલ્લભનાં આખ્યાનોના સંપાદનકાર્ય માટે છોટાલાલ ભટ્ટને રોકવામાં આવ્યા હતા. આખ્યાનોની ટીકા એમણે લખી છે પરંતુ વલ્લભની પંક્તિઓનો ટીકાકારે બેસાડેલો અર્થ (જે કેટલીક વાર આખ્યાનમાંથી તારવવો મુશ્કેલ હોય છે) પણ ટીકાકાર અને આખ્યાનલેખક એક હોવા વિષેના અનુમાનને પુષ્ટિ આપે છે. પરંતુ હું મારું કથન માત્ર વલ્લભના એક જ આખ્યાન – મિત્રધર્માખ્યાન – પૂરતું મર્યાદિત કરું છું તે ફરીથી અહીં સ્પષ્ટ કરી લઉં.

હવે આપણે વલ્લભનાં આખ્યાનોમાંથી છતા થતા વલ્લભના વ્યક્તિત્વને અને એની કથનશૈલીને જોઈ લઈએ.

વલ્લભનું વ્યક્તિત્વ

લેખકોની કૃતિઓ પરથી લેખકોનું વ્યક્તિત્વ વરતાઈ આવે છે. અલબત્ત, પોતાના વ્યક્તિત્વને પરખાવા ન દેવું કે વ્યક્તિત્વને કૃતિની વિશ્વ જેવી વિશાળતામાં સંક્રાન્ત કરવું એમાં લેખકની કલાની ફતેહ છે પણ દરેક લેખકને આ સાધ્ય નથી. પ્રેમાનંદ કે ગોવર્ધનરામનું વ્યક્તિત્વ ઝટ દઈને એમની કૃતિઓમાંથી ન મળી આવે, કલાપી કે નર્મદાશંકર વિષે આમ ન કહી શકાય.

વલ્લભની કૃતિઓ વાંચતાં જ આપણી સમક્ષ એક મૂર્તિ તરવરે છે. ચહેરા પર ઉગ્રતા અને રોષની કરચલીઓ પડેલી છે, ક્ષણે ક્ષણે માનસિક વ્યગ્રતા એના બોલવાના ઢંગ પરથી પરખાઈ આવે છે. વાણીમાં સંસ્કારિતા નથી, માધુર્ય, માર્દવ, કોમળતા કે લાલિત્ય નથી; અવાજ તરડાયલો, તીખો, રુક્ષ ને ખરબચડો છે. નેત્રો પર ખેંચાયલી

ઘાઢી કાળી ભમ્મરમાંથી તિરસ્કાર અને ઘૃણા ઝરે છે. ટૂંકા, જાડા, બળવાન ને માંસલ બે હાથો જાણે પાસે પડેલી ચીજને મસળવા ઉત્સુક હોય તેમ ઘડીએ ઘડીએ ઊંચા-નીચા થયા કરે છે. એના ચહેરાને વિરૂપ બનાવતા મોટા લાંબા કાન કોઈની કૂથલી સાંભળવા ઉત્સુક છે; એના વિશાળ ને રોષથી લાલઘૂમ એવા નેત્રોમાંથી મિત્રો અને વેરીને સમાનભાવે ડામતો, ઊભા ને ઊભા બાળી મૂકે એવો અગ્નિની ધાર જેવો દાહક તેજપ્રવાહ રેલાવે છે. મોટાને પહોળા કાળા નાકના ઘડીએ ઘડીએ ફૂલાતા ફોયણાં, એને કોઈ પ્રસન્ન કરી ન શકે, એ કોઈને પ્રસન્ન કરવાની પરવા ન કરે—એમ સૂચવે છે. એની ટૂંકી જાડી ગરદન અભિમાનથી અક્કડ અને ફૂલેલી છે. સમગ્ર ચહેરો વ્યર્થ અભિમાન, બડાશ, કજિયો, કૂથલી, અતડાઈ, નિરર્થક બંડખોરપણું, ઉદ્ધતાઈ, ઉછાંછળાપણું અને અસંસ્કારિતાની છાપ આપણા પર પાડી જાય છે. વલ્લભનું કોઈ ચિત્રકાર આવું ચિત્ર દોરે તો તેમાં જરાય અતિશયોક્તિ ન થાય. એ કલ્પનાવિલાસ પણ ન બને. વલ્લભની કૃતિઓ વાંચતાં મારા મન પર જે છાપ પડી એને મેં અક્ષરાંકિત કરવાનો પ્રયાસ માત્ર કર્યો છે. એની શૈલીને આપણે આ દૃષ્ટિએ નિહાળીએ તો આપણને સર્વત્ર સંપૂર્ણપણે ટેકો જ મળે છે.

વલ્લભની શૈલી

એ શબ્દોની બહુ ભાંગફોડ કરે છે. ચંદને માટે એ જે પંક્તિ લખે છે તે હૂબહૂ એને જ લાગુ પડે છેઃ—'તોડ્યા શબ્દ છોડ્યા નહિ, જોડ્યા કર તોય ઝુડ્યા!'[૫૬]—એ 'સ્મરણ' નું 'સ્મર્ણુ' (મિત્રધ. પૃ. ૫૦), 'ફરતા' નું 'ફર્તા' (મિત્રધ. પૃ. ૧૧૧) કરે છે, તો ક્યારેક 'સાર્થક'નું 'સારથક' (મિત્રધ. પૃ. ૯૧) ને 'સન્માન'નું 'સનમાન' (મિત્રધ. પૃ. ૯૩) કરે છે. 'ગુરૂકિલ્લી' (મિત્રધ. પૃ. ૨૦), 'હેલા' (મિત્રધ. પૃ. ૭૦ 'રાક્ષ્ય' (મિત્રધ. પૃ. ૧૦૩), 'અરૂપરૂ' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૧૦૦), 'રૂખ' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૪૦) 'ઢુંકિયે' (મિત્રધ. પૃ. ૮૧), 'સોંઢી' (મિત્રધ. પૃ. ૯૦) 'પાઘડી' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૧૮) 'બિલ્લરુ' (=વેંત, યુધિ.વૃકો. પૃ. ૩૭), 'સવાકવા' (યુધિ.વૃકો. પૃ. ૮૯), 'મીચધર' (=મૃત્યુને ધારણ કરનારો, યુધિ.વૃકો. પૃ. ૮૫), જેવા અપરંપાર અપ્રચલિત, જૂના ને દેશ્ય શબ્દોનો વલ્લભ ઉપયોગ કરે છે.

વલ્લભ ક્યારેક શબ્દશ્લેષ (Punning) નો પણ ઉપયોગ કરે છેઃ—

વલ્લભ વલ્લભ વલ્લભ જે અતિ
વલ્લભ લાવી મૃગમંદ મેરૂ (દુઃશાસનરુધિર. પૃ. ૬૮)

કે

ઉરવશી વશી ઉર આપને,
ઉર **વશી** ખશી જાપું જાપને!! (યક્ષપ્ર. પૃ. ૨૦૭)

એ પંક્તિઓ ઉદાહરણાર્થ રજૂ કરી શકાય. વલ્લભ એક શબ્દને બે ભાગમાં વહેંચી નાખે છે કે વિભક્તિને છૂટ્ટી પાડી દે છેઃ—

તે થકી ધારૂં હું ના તરૂણી નજ—
દીક વસો પ્રિય હે રતનાળી. (દુઃશાસન. પૃ. ૬૬)

---

૫૬. કુન્તીપ્રસન્નાખ્યાન, છં. ૫, પૃ. ૧૪.

આરેક એ પ્રત્યયોનું કે વિભક્તિનું નિરર્થક પુનરાવર્તન પણ કરે છે: જુઓ:—

તોય અર્થ સધાયો ન, કાષ્ઠલાભ લધાયો ન,
શિવ! શિવ! તૂટ્યાં તાન, મૃગલાં તણાં તણાં!!
(યક્ષપ્ર. છં. ૧૨૦, પૃ. ૭૫)

વલ્લભનાં આખ્યાનોમાં ફારસી શબ્દો પણ પુષ્કળ જડે છે—પ્રાચીન કાવ્યમાળાના સંપાદકો કહે છે તેમ તેણે 'શબ્દો ધર્યા યાવની ઠાય ઠાય'[૫૭] 'ઈશારત' (મિત્રધ. પૃ. ૧૦૮), 'ગુન્હો', 'દુશ્મિન' (મિત્રધ. પૃ. ૧૧૭), 'આજીગર' (મિત્રધ. પૃ. ૮૦), 'જીવજાન', 'બેહક' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૪૮), 'દરિયાવ' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૭૮), 'પીર' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૨૪૬), 'સાંઈ' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૨૬૯), 'ઈતેખાપ', 'બૂત' (દુ. રુ. પા. પૃ. ૭), 'માતબર' (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૪૩), 'રોફદાર' (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૪૩), 'ખલક' (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૫૨), 'કરામત' (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૭૩), 'ઇજ્જત' (યુધિ. વૃકો. પૃ. ૪૯) વગેરે જેવા અનેક શુદ્ધ ફારસી શબ્દો ઉદાહરણ લેખે આપણે રજૂ કરી શકીએ. પ્રેમાનંદમાં ફારસી શબ્દોનું મિશ્રણ ભાગ્યે જ માલૂમ પડશે; ને એની કચાશ ભાંગી નાખવાનો નિર્ણય કરીને બેઠો હોય એમ વલ્લભ એનો બ્હોળા હાથે ઉપયોગ કરે છે; જે તે જમાનામાં હોવો અસંભવિત એવા ફારસી સાહિત્યના અભ્યાસનો ગાઢ સંપર્ક સૂચવે છે.

આપણી ગ્રામ્ય કહેવતોનો ઉપયોગ પણ વલ્લભે કર્યો છે. કેટલીકવાર લોકોક્તિ કે કહેવત લેખકની કલમે ચઢી આવે ને અર્થાન્તરન્યાસની ગરજ સારે; પણ વલ્લભ તો સ્થાને અસ્થાને કહેવતોને, અતિરેક થાય તે રીતે પોતાના કથાપથમાં ગૂંથતો ગયો છે: નમૂના દાખલ થોડીક કહેવતો સાંભળો:—

૧, 'ગુરૂ થકી ચઢ્યા ચેલા' (મિત્રધ. પૃ. ૧૭)
૨, 'ઉંધા ઘડા પર પાણી' (મિત્રધ. પૃ. ૧૯)[૫૮]
૩, 'ન મામાથી કે'ણુ મામા' (મિત્રધ. પૃ. ૩૩)
૪, 'ભણ્યા પણ ગણ્યા નહિ' (મિત્રધ. પૃ. ૭૦)
૫, 'પય પાઈ સાપ ઉછેરવો' (મિત્રધ. પૃ. ૮૦)
૬, 'વાંકા હોય વાળંદના, દિવસ તો જ્યારે ત્યારે,
કોથળી મધ્યેથી આવે, સર્પ ચાલી રૂખમાં'
(યક્ષપ્ર. પૃ. ૬૧)
૭, 'સુખે સોનીડાનું અને, દુ:ખે નામ રામનું!' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૧૯૦)
૮, 'ઓલામાંથી નીકળીને, પડે ચૂલામાંહી જેમ' (યક્ષપ્ર. પૃ. ૮૧)
૯, 'પખાલીને વાંકે ડામે પાડાને તો આડા લોક' (કુન્તીપ્ર. પૃ. ૮૮)
૧૦, 'વાઘને વળાવવા તણી ગર્જે નવ હોય કદી' (કુન્તીપ્ર. પૃ. ૯૫)
૧૧, 'ફૂલ નહિ ત્યારે પ્રભુ, પાંખડી અર્પું હું તેની' (યુધિ.વૃકો. પૃ. ૫૩)

---

૫૭ દુ:શાસનરુધિરપાનાખ્યાન, કાવ્યવિવેચન, પૃ. ૧૪.

૫૮ આ કહેવત મરાઠી ભાષાની છે ને મહારાષ્ટ્રમાં બહુજ પ્રચલિત છે:—'પાલથ્યા ઘડ્યાવર પાણી' વલ્લભમાં મરાઠી ભાષાના શબ્દો પણ મળી આવે છે.

આવી તો અનેક કહેવતો વલ્લભમાંથી આપણને પ્રાપ્ત થાય છે. ક્યારેક એક શબ્દનો લોપ અક્ષર, ક્યારેક વાક્યમાં એકાદ શબ્દ – ઘણું કરીને કર્તા – વલ્લભ અધ્યાહાર રાખે છેઃ એ 'મા'ક્રૂર' (મિત્રધ. પૃ. ૩૯) કહે ત્યારે આપણે 'મહાક્રૂર' સમજવાનું ! ક્યારેક તો એક કડીમાં છેલ્લી લીંટીનો ઉત્તરાર્ધ, શબ્દરચના ને અર્થરચના બન્નેની દૃષ્ટિએ, આગળની લીંટીઓથી સંદર્ભમાં છૂટો પડી લટકતો હોય છે. આવાં એક બે ઉદાહરણો જોઈએઃ–

દુઃખીયાના દુઃખ ટળ્યાં, સુખીયાને દીધાં સુખ,
કવિના મૂકાવ્યાં માન ચણોઠીને દેવતા ૪

(કુન્તીપ્ર. પૃ. ૧૭)

અહીં ચણોઠીને દેવતા 'જૂદાં પાડી બતાવ્યાં' અધ્યાહાર રાખેલ છે.

એમ કહી સાથ ચાલ્યો વિશ્વકર્મા દાનવનો
માનવ મનોર્થ પૂરે, શાપું શાપવાનું જે.

(કુન્તીપ્ર. પૃ. ૩૫)

અહીં 'શાપું શાપવાનું જે' નો અર્થ 'તજવા જેવું તજીશ' તેવો કર્યો છે.

અહીં હું એક ખુલાસો કરી લઉં. વલ્લભની શૈલીનું નિરૂપણ કરવા, ને મારા કથનને ટેકો આપવા મેં જે ઉદાહરણો – જૂના કે ફારસી શબ્દોના, અધ્યાહાર રચનાના કે કહેવતોના – ની ટીપ આપી છે તેને સંપૂર્ણ બનાવવાનો મારો ઇરાદો કે પ્રયાસ નથી. એમ કરવા બેસું તો એ ઉદાહરણોનો જ એક જૂદો લેખ બને ! તેથી લંબાણભયે વધારે દાખલાઓ આપવાનું પ્રલોભન હું ખાળી રાખું છું.

વલ્લભનાં આખ્યાનોની બીજી થોડીક લાક્ષણિક વિશિષ્ટતાઓ જોઈ લઈએ. તેણે જૂદા જૂદા રસનાં સળંગ આખ્યાનો લખવાનો નિર્ણય કર્યો હતો. તે તો આપણે ઉપર જોયું છે. વલ્લભ એક આખ્યાનમાં એક જ રસ વહાવે છે; પ્રેમાનંદની જેમ એક આખ્યાનમાં વિવિધ રસોની ફૂલગૂંથણી કરતો નથી; એની એ પ્રમાણે એક રસમાંથી બીજા રસમાં સંક્રાન્ત થવાની, નવલરામભાઈ કહે છે તેમ 'તાક્યું તીર' મારવાની શક્તિ પણ નથી. બધા રસોમાંથી કયો રસ એના મને શ્રેષ્ઠ હતો, કયા રસમાં એ વધુ રાચતો– એ આપણને ન જણાય; તો કયા રસને એ ધિક્કારતો તે તો સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. એ કરુણરસને 'ઓરમાઈ' અને 'અનાર્ય' ગણે છે ને કરુણરસની કૃતિ (યક્ષપ્રશ્નોત્તર) રચવાના કારણ તરીકે

રાંડ જેવાં રોદણાંને, રડી જાણે નવ ભાઈ
એ લોભે થવું છે રાંડ, પછે કહો દખ શે ![૫૮]

જેવા તિરસ્કાર ને ઘૃણા નિતરતાં વચનો રજૂ કરે છે.

એનાં આખ્યાનોમાં ચરોતરી બોલીનો પડઘો ઠેર ઠેર સંભળાય છે. મિત્રધર્માખ્યાનમાં કોળીઓ બોલે છે તે ભાષા પાત્રાનુરૂપ તો છે જ, પણ એમાં કલાની ઝલક પ્રતિબિંબિત થાય છે. તેથી વધુ તો–

---

૫૮ યક્ષપ્રશ્નોત્તર, કં. ૧૯, પૃ. ૧૬.

આપનો બિચીં'તો આથ, પૂંઠ ભાંપી નાહી ભાઇ
મુચ્ય મુચ્ય વે'હી મુચ્ય, મિંદુ અતિ ત્રાસે છે.[૬૦]

એ કોળીના વચનોમાં કે ઇન્દુ બિન્દુની મુસાફરીમાં મહી નદીના ભયાનક કોતરોનું હૂબહૂ વર્ણન, મહી નદીના ખારા પાણીનો ઉલ્લેખ[૬૧], એ આખ્યાનના લેખકને એ પ્રદેશના ગાઢ સંપર્કમાં આવેલા ભોમિયા તરીકે આપણી સમક્ષ રજૂ કરે છે.

વલ્લભના મતે કવિતા લખવી એ સહેલું કામ નથી. કવિનો સ્વભાવ 'અક્કડ', 'ફક્કડ' ને 'સ્વતંત્ર' જોઇએ. જ્ઞાતિમાં પણ એ દ્વિજ કે છેવટ ક્ષત્રિય હોવો જોઇએ.[૬૨] કવિની બીજી નહિ તો આ લાક્ષણિકતા તો વલ્લભમાં સાંગોપાંગ ને સુરેખપણે ઝીલાઇ છે!

વલ્લભનાં આખ્યાનો પરત્વેનું મારું વક્તવ્ય અહીં પૂરું થાય છે. વલ્લભના આખ્યાનોના કર્તૃત્વનો પ્રશ્ન અત્યારે ડહોળાયલો તો છે જ.[૬૩] આવી પરિસ્થિતિમાં વલ્લભના એક આખ્યાન – મિત્રધર્માખ્યાન – ના કર્તૃત્વની જવાબદારી છોટાલાલ નરભેરામ ભટ્ટ પર ઓઢાડીને હું એક નવું વમળ તો ઊભું નથી કરતોને? અગાઉ એકવાર ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટીએ પત્ર લખી પ્રાચીનકાવ્યમાળાના સંપાદકો પાસે મૂળ હસ્તપ્રતોની માંગણી કરેલી; ને સ્વ. કે. હ. ધ્રુવ નોંધે છે તે પ્રમાણે 'માત્ર એકવાર એક મરજીવાએ દરિયાના કાળા પાણીમાં ગુપ્ત રહેલો કેટલોક ખજાનો કાઢી આપવાની તૈયારી પૂર્વે જણાવી હતી;[૬૪] પરંતુ આજે તો એ ખજાનો દૃષ્ટિપથમાં પડતો નથી; ને એ જ્યાં લગી ન પડે ત્યાં સુધી તે ખોળી કાઢવાના, તેનું મૂલ્યાંકન કરવાના, મારા જેવાના આંખળુકિયા, પણ નિષ્ઠાભર્યા, પ્રયાસો આવશ્યક તો ઠરે છે જ.

---

૬૦ મિત્રધર્માખ્યાન, છં. ૧૨૫, પૃ. ૬૦.

૬૧ જઈ પીએ પાણી જેવો ખારૂં લાગ્યું તેહ
-- -- -- --
મુખમાંહી પેસે નહિ, પીવાય તે પછે કેમ.
મિત્રધર્માખ્યાન, છં. ૫૯, પૃ. ૩૦–૩૧.

૬૨ કવિ કેવો જોઇએ તે, હવે કે'વું છે જ મારે,
અક્કડ ને ફક્કડ તો, કવિ કહેવાય છે.
કવિનું સ્વભાવ કહું એક ચિત્તે સાંભળ્ય તું,
જોઈએ સ્વતંત્ર તેહ, જેહ કવિરાય છે!
-- -- -- --
જાતિ કવિ તણી હવે, રહી બાકી કે'વાની તો,
દ્વિજભાવે ક્ષત્રી ગ્રહો, અન્યથા તજાય છે.
લક્ષપ્રશ્નોત્તર, છં. ૫૦૭, પૃ. ૨૫૮.

૬૩ જુઓ પ્રોફેસર શ્રી ડોલરરાય રં. માંકડનો 'એ ત્રણ નાટકો' નામક લેખ, સાતમી ગુ. સા. પ. રિપોર્ટ, પૃ. ૧૪–૪૩: પ્રોફેસર શ્રી રવિશંકર મ. જોશીનો 'વલ્લભનાં આખ્યાનોનું કર્તૃત્વ' નામક લેખ, શારદા, ઓગસ્ટ, ૧૯૩૯.

૬૪ બુદ્ધિપ્રકાશ, માર્ચ ૧૯૧૧, પૃ. ૯૩.

*

अकलंकना समयनिर्णय विषे एक नोंध

लेο—प्रोο अमृतलाल सο गोपाणि, एम्. ए.

*

[નોંધઃ—"અકલંકગ્રન્થત્રયમ્" ની સમાલોચના કરતી વખતે એ ગ્રન્થને આદ્યંત તપાસી જવાની મને તક મળી. તેમાં સંપાદક મહાશયે અકલંકના સમયનિર્ણય સંબંધમાં જે યુક્તિઓ યોજી છે તેના અનુસંધાનમાં મેં ન્યાયકુમુદચંદ્રની પ્રસ્તાવના વગેરે વાંચ્યું અને અકલંકના સમયનિર્ણયના સંબંધમાં મને જે નવી દિશા સૂઝી તેનું જ આલેખન આ લેખમાં મે કર્યું છે. અર્થાત્ એ બન્ને પુસ્તકોમાં પ્રયુક્ત દલીલોને અહિંઆ મેં બેવડાવી નથી. એ દલીલો, પુરાવા, અને કારણો માટે તે તે પુસ્તકો જોઈ લેવાં અને આ નાની નોંધને એના સંદર્ભમાં તથા ગત અંકમાં પ્રસિદ્ધ થયેલા "અકલંકગ્રન્થત્રયમ્" ના મારા અવલોકનના અનુસંધાનમાં વાંચવા જિજ્ઞાસુને મારી ભલામણ છે.]

અકલંકના સમય માટે બે મતપ્રણાલિકાઓ છે. એકને મતે તેઓ શકસંવત્–૭૦૦ એટલે કે ઈ. સ. ૭૭૮ માં થઈ ગયા. આ મતના આદ્ય આવિષ્કર્ત્તા કૈ. વા. ડૉ. કે. બી. પાઠક છે અને ડૉ. ભાંડારકર, સતીશચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ અને પંડિત પ્રેમી તે મતના સમર્થક છે. મલ્લિષેણપ્રશસ્તિ અને અકલંકચરિત તેમની દલીલોના આધાર છે. અકલંકચરિતસ્થિત "વિક્રમાર્કશકાબ્દ" પદનો અર્થ શક સંવત એવા આ મતના પ્રસ્થાપક અને અનુયાયીઓ કરે છે.[1]

બીજાના મતે તેઓ ૭૦૦ વિ. સં. અર્થાત્ ૬૪૩ ઈ. સ. માં જીવિત હતા. આ મતના આદ્યસ્થાપક શ્રી કંઠશાસ્ત્રી અને જુગલકિશોર મુખ્તાર છે અને પ્રો. ડૉ. ઉપાધ્યે તથા પં. કૈલાસચંદ્રજી આ મતના અનુયાયી છે. અકલંકચરિતગત "વિક્રમાર્કશકાબ્દ"નો અર્થ વિક્રમસંવત થાય છે એ એમનો મુખ્ય આધાર છે.[2]

પ્રથમ મતના પક્ષમાં, અકલંકદ્વારા ધર્મકીર્તિનું ખંડન તેમજ પ્રભાચંદ્રકૃત કથાકોશમાં અકલંકને શુભતુંગના મંત્રીપુત્ર તરીકેનું નિદર્શન વગેરે દલીલો પણ છે. તેમ જ બીજા મતની પુષ્ટિમાં વીરસેનદ્વારા ધવલાટીકામાં રાજવાર્તિકનાં કેટલાંક વાક્યોનાં અવતરણો, હરિભદ્રકૃત "અકલંકન્યાય" પદપ્રયોગ, સિદ્ધસેન ગણિનો સિદ્ધિવિનિશ્ચયવાળો ઉલ્લેખ અને નિશીથચૂર્ણિમાં સિદ્ધિવિનિશ્ચયનો દર્શન પ્રભાવક ગ્રન્થ તરીકે નિર્દેશ વગેરે દલીલો પણ છે.

"અકલંકગ્રન્થત્રયમ્" ના સંપાદક મહાશય શ્રી પંડિત મહેન્દ્રકુમારજીએ પ્રકાંડ પાંડિત્યપૂર્ણ પ્રસ્તાવનામાં ગ્રન્થના અંતરંગ પરીક્ષણનો આધાર લઈ અકલંકનો સમય ઈ. સ. ૭૨૦ થી ૭૮૦ નો[3] ઠરાવ્યો છે તે જ સમય મારે નિમ્નલિખિત ઐતિહાસિક

---

૧ "અકલંકગ્રન્થત્રયમ્", પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૩. સિંઘી જૈન ગ્રન્થમાલા–મણિ ૧૨ (અમદાબાદ કલકત્તા ઈ. સ. ૧૯૩૯).

૨ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, સંપાદકીય પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૩.

૩ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૩૨.

બાબતોથી નિયત કરવાનો છે અને એ જ આ ટૂંકી નોંધનો ઉપક્રમ છે. માટે અંતરંગ પરીક્ષણગર્ભિત યુક્તિઓ વાંચક તદ્ગ્રન્થસ્થ પ્રસ્તાવનામાંથી જોઈ લેશે એવી આશા રાખું છું.

મને પ્રથમ મતપ્રણાલિ ઇષ્ટ છે એટલે બીજી મતપ્રણાલિના અભિપ્રાયનું નિરસન એ આશય પ્રસ્તુત છે.

હરિભદ્રની કૃતિઓમાં અત્યારસુધી એવો કોઈ ઉલ્લેખ મળતો નથી કે જેના ઉપર આધાર રાખી એમ અસંદિગ્ધપણે કહી શકાય કે તેઓ અકલંકની કૃતિઓથી પરિચિત હોય.[૪] હરિભદ્ર "અકલંકન્યાય" પદનો પ્રયોગ કરે છે એ વાત સાચી. પણ અકલંક શબ્દનો અર્થ એ સ્થળે મહાવીર થતો હોય એમ લાગે છે. સન્મતિતર્ક અને અકલંકન્યાય એ બન્ને પદો મારે મન તો સમાનાર્થક કે સમકક્ષ હોય એમ લાગે છે. સન્મતિનો અર્થ મહાવીર છે એ તો હવે પંડિત સુખલાલજીએ "સન્મતિપ્રકરણ"ની પ્રસ્તાવનામાં સિદ્ધ કરી આપ્યું છે.[૫] એ રીતે અકલંક પણ મહાવીરના અર્થમાં જ હરિભદ્રે વાપર્યો હોય એમ કાં ન હોય? કારણ કે અકલંક એટલે અકલંકદેવ એ જ અર્થ હરિભદ્રને અભિપ્રેત હોય તો માત્ર આટલો જ નામોલ્લેખ કરીને એ કાંઈ બેસી ન રહતે. સારાંશ એ કે અકલંકન્યાય પદ મહાવીરન્યાય અર્થાત્ અનેકાંતના લાક્ષણિક અર્થમાં જ ઉપયુક્ત થયું છે એમ મારું માનવું છે.

તત્ત્વાર્થ ભાષ્યવૃત્તિકાર અને ગંધહસ્તી ઉપનામક સિદ્ધસેન ગણિએ પોતાની તત્ત્વાર્થભાષ્યવૃત્તિમાં અકલંકની રચેલી મનાતી સિદ્ધિવિનિશ્ચય નામની કૃતિનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. ઉપરાંત, જિનદાસગણિ મહત્તરે પણ નિશીથચૂર્ણિમાં અકલંકની આ જ કૃતિનો નિર્દેશ દર્શનપ્રભાવક ગ્રન્થ તરીકે કર્યો છે. નંદીચૂર્ણિના પ્રાન્તોલ્લેખથી જિનદાસગણિ મહત્તરનો સમય ઈ. સ. ૬૭૮ – પુરવાર થયો છે.[૬] આ રીતે અકલંક જિનદાસગણિના પૂરોગામી હોઈ ઈ. સ. ૬૭૮ પહેલાં થયા એમ ઠરે. પણ એ કોઈ રીતે બંધબેસતું થતું નથી. એટલે મારી એ સંબંધની વિચારસરણિ આ પ્રમાણે છે. નન્દીચૂર્ણિના કર્ત્તા જિનદાસ ગણિ છે એ પ્રઘોષ માત્ર છે એ તદ્દન ખોટું છે.[૭] હું અવશ્ય એમ માનું છું કે નન્દીચૂર્ણિ – નિશીથચૂર્ણિ અને આવશ્યકચૂર્ણિ એ ત્રણેય ચૂર્ણિના કર્ત્તા જિનદાસગણિ જ છે. પણ એમાં જે "સિદ્ધિવિનિશ્ચય"નો ઉલ્લેખ આવે છે તે "સિદ્ધિવિનિશ્ચય" અકલંકકૃત છે એમ હું નથી માનતો. અકલંક જેવા ધુરંધર દિગંબરાચાર્યના ગ્રન્થનો ઉલ્લેખ દર્શનપ્રભાવક ગ્રન્થ તરીકે ચુસ્ત અને પ્રાભાવિક શ્વેતાંબરાચાર્ય જિનદાસગણિ અને સિદ્ધસેનગણિ કરે એ વસ્તુ મને અઘટનીય લાગે છે. હું તો એમ જ માનવા તૈયાર છું કે કોઈ વિદ્વાન શ્વેતાંબરાચાર્યનો સિદ્ધિવિનિશ્ચય નામનો ગ્રન્થ હોવો જોઈએ જે અત્યારે અનુપલબ્ધ છે અને એને જ અનુલક્ષીને જિનદાસગણિવાળો અને સિદ્ધસેન

---

૪ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પં. સુખલાલજીનું પ્રાક્કથન, પૃષ્ઠ ૧૦.

૫ "સન્મતિતર્ક" (પ્રો. આથવલે અને પ્રો. ગોપાણિનો અંગ્રેજી અનુવાદ) પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૧૭ (મુંબઈ, ૧૯૩૯).

૬ "અકલંકગ્રન્થત્રયમ્"માં, ગ્રન્થમાલાના મુખ્ય સંપાદક મુનિશ્રી જિનવિજયજીએ લખેલ પ્રાસ્તાવિક, પૃષ્ઠ ૪.

૭ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પ્રાસ્તાવિક, પૃષ્ઠ ૪.

સરણિવાળો પણ ઉલ્લેખ હોવો જોઈએ. સાંપ્રદાયિક અભિનિવેશને લઈને લખાયેલા એક નામધારી ગ્રન્થો જેવા કે—સમયસાર, સિદ્ધપાહુડ, નયચક્ર, ધર્મપરીક્ષા વગેરે બન્ને સંપ્રદાયોમાં મળી આવે છે. એકનામધારી ગ્રન્થો તો શું ? પરંતુ એક નામક વિદ્વાનો પણ બન્ને સંપ્રદાયમાં ભિન્ન ભિન્ન સમયે થઈ ગયેલ હોવાના દાખલાઓ મોજૂદ છે.[૮] એટલે આ દૃષ્ટિએ પણ મારી વિચારસરણિને જરાય બાધ આવતો હોય એમ મને લાગતું નથી.

હવે ચોથી દલીલ વિચારીએ. વીરસેનની ધવલા ટીકામાં ઘણાં અવતરણો એવાં આવે છે કે જેમનું અકલંકના રાજવાર્તિકગત વાક્યો સાથે શાબ્દિક સાદૃશ્ય છે એ વાત સાચી છે.[૯] એટલે કે અકલંક વીરસેનના પૂરોગામી હોવા જોઈએ અને એથી મારી વિચારસરણિને બાધ આવે એવી દલીલ થઈ શકે. આ બાબતમાં હું એમ કહેવા માગું છું કે આવું શબ્દ સાદૃશ્ય એટલું સ્વરપ્રકૃતિક હોય છે કે એને જે બાજુ ખેંચવું હોય તે બાજુ ખેંચી શકાય. વીરસેનનો સમય જાણે કે તદ્દન નિયતજ કેમ ન થઈ ગયો હોય એમ માનીને જ આ દલીલ કરવામાં આવે છે. હું તો ઉલટું એમ માનું કે અકલંકના રાજવાર્તિકમાંથી વીરસેને પોતાની ધવલા ટીકામાં અવતરણો લીધાં છે એટલે અકલંક પછી અર્થાત્ ઈ. સ. ૭૨૦ થી ૭૮૦ પછી વીરસેન થયા એમ કેમ ન હોય ? આવી જ દલીલથી હરિભદ્રે અકલંકન્યાય પદ પ્રયોગ કર્યો છે એટલે અને અમુક બાબતમાં સરખી વિચારસરણિ યોજી છે તેથી[૯] અકલંક પછી હરિભદ્ર થયા એમ સિદ્ધ કરવા માગે તો તે ખોટું છે કારણ કે અન્ય પ્રબળતમ પ્રમાણોથી હરિભદ્રને અકલંકના પૂર્વકાલીન જ માનવા પડે છે, તેવું વીરસેનની બાબતમાં, નથી. સારાંશ કે વીરસેને ધવલાટીકામાં રાજવાર્તિકમાંથી અવતરણો લીધાં છે એટલે વીરસેન અકલંક પછી અર્થાત્ ઈ. સ. ૭૨૦ થી ૭૮૦ પછી થયા એમ જ કહી શકાય. તદુપરાંત, હું એમ પણ માનું છું કે આવા સાધારણ અવતરણો ઉપર સમયનિર્ણય જેવી બાબતમાં કશો મદાર બાંધી શકાય નહિ. જે અવતરણો છે તે અવગ્રહ, ઇહા, સત્પ્રરુપણાદિ વિષયોને લગતાં છે. આ વિષયો બન્ને સંપ્રદાયોને એક સરખાં જ ઇષ્ટ છે. બન્ને સંપ્રદાયોને માન્ય એવા કોઈ પ્રમાણભૂત તટસ્થ ગ્રન્થકારની (દા. ત. વાચકઉમાસ્વાતિ) કોઈ કૃતિમાં ઘણી વખત આવા સર્વસાધારણ અવતરણોનું મૂળ મળી આવે છે. જે અવતરણો ધવલા ટીકાકાર વીરસેને રાજવાર્તિકમાંથી લીધેલાં હોવાનું મનાય છે તે સન્મતિટીકામાં અને જૈનતર્કભાષામાં પણ શાબ્દિકસાદશ્ય સાથે મળી આવે છે. એટલું જ નહિ પણ અકલંકના પૂરોગામી પૂજ્યપાદની સર્વાર્થસિદ્ધિમાં પણ મળી આવે છે.[૧૦] રાજવાર્તિક અને વિશેષાવશ્યક ભાષ્યમાં તથા તત્ત્વાર્થાધિગમભાષ્યમાં પણ

---

૮ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પ્રાસ્તાવિક, પૃષ્ઠ ૫–૬.

૯ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, સંપાદકીય પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૧૩.

૯ ર ન્યાયકુમુદચંદ્રની પ્રસ્તાવના, પૃષ્ઠ ૭૮ (મા. દિ. જૈ. ગ્રંથમાલા—નં. ૩૮).

૧૦ ધવલા ટીકા, રાજવાર્તિક, સન્મતિટીકા, જૈનતર્કભાષા, અને સર્વાર્થસિદ્ધિ વગેરેમાં મળી આવતાં અવતરણો વચ્ચે સામ્ય જોવા માટે જુઓઃ—

ધવલા ટીકાની સત્પ્રરૂપણાધિકાર; રાજવાર્તિક, ૧–૧૫; પૃષ્ઠ ૨૦; સન્મતિટીકા પૃષ્ઠ ૫૫૨–૫૫૩; જૈનતર્કભાષા પૃષ્ઠ ૫; સર્વાર્થસિદ્ધિ, ૧–૧૫.

અલ્પાધિક શાબ્દિક સાદૃશ્યવાળા ઉલ્લેખો મળી આવે છે એ ઉપરથી આપણે શું સમજવું ?[11] કયા ગ્રન્થકારના કયા પુસ્તકમાંથી અમુક અવતરણ લેવામાં આવ્યું છે એ બાબતનું સ્પષ્ટ વિધાન ગ્રન્થકર્તાના નામ સાથે ન હોય ત્યારે તો સર્વસાધારણ અવતરણો માટે કોઈ ત્રીજું જ મૂળ આપણે શોધવાનું રહ્યું. ગ્રન્થના અંતરંગ પરીક્ષણ અને અન્ય સામગ્રીદ્વારા અકલંકનો સમયનિર્ણય સચોટ રીતે થઈ શકતો ન હોત તો વીરસેનની ધવલા ટીકામાં રાજવાર્ત્તિકમાંથી ઉતારેલા અવતરણોના સંબંધમાં આપણે વિશિષ્ટ વિચાર અને ઊહાપોહ કરવાનો રહેત. અસ્તુ.

અકલંકના સમયનિર્ણયમાં ઐતિહાસિક સામગ્રી આપણને ક્યાંસુધી લઈ જઈ શકે તેમ છે તે બાબતનો આપણે હવે વિચાર કરીએ.

(૧) શ્રવણબેલ્ગોલા ઈન્સ્ક્રીપ્શનમાં અકલંકને સાહસતુંગ રાજા પાસે પોતાનું મહત્ત્વ અને વિદ્વત્તા વર્ણવતા ચીતરવામાં આવ્યા છે. આ સાહસતુંગ રાજા દંતીદૂર્ગ હોય એમ અનુમાનવામાં આવે છે.[12]

(૨) પ્રભાચંદ્રકૃત ગદ્યકથાકોશમાં તથા બ્રહ્મચારી નેમિદત્તના આરાધના કથાકોશમાં અકલંકને શુભતુંગ રાજાના મંત્રીપુત્ર તરીકે ઓળખાવવામાં આવ્યા છે અને માન્યખેટને તેમના જન્મસ્થાન તરીકે જણાવેલ છે.

(૩) પીટર્સનનો રિપોર્ટ બીજો તેઓ કૃષ્ણ પહેલાના પુત્ર હતા એવી દન્તકથાનો ઇશારો કરે છે.[13]

(૪) અકલંક રચિત રાજવાર્ત્તિકના પ્રથમ અધ્યાયના અંતમાં નીચે લખેલો શ્લોક આવેલો છે:–

जीयाच्चिरमकलङ्कब्रह्मा लघुहव्वनृपतिवरतनयः ।
अनवरतनिखिलजननुतविद्यः प्रशस्तजनहृद्यः ॥

રાજવાર્તિકગત આ શ્લોક અકલંકનો પોતાનો જ હોઈ એના ઉપર હું સંપૂર્ણ વિશ્વાસ મૂકું છું અને ઉપર્યુક્ત પ્રથમ ત્રણ ઉલ્લેખોને હું તે શ્લોકના અર્થ સાથે બંધબેસતા કરવા માગુ છું. આ શ્લોકનો અર્થ પં. મહેન્દ્રકુમારજી અકલંકગ્રન્થત્રયની પ્રસ્તાવનામાં એવો તારવે છે કે "હવ્વ" એટલે બાપ અને દંતીદૂર્ગદ્વિતીય પોતાના કાકા કૃષ્ણરાજ પ્રથમને "અવ્વ" શબ્દથી બોલાવતા હોય. પુરુષોત્તમ નામનો માણસ કૃષ્ણરાજ પ્રથમનો મૂળથી જ સહકારી રહ્યો હોય અને તેથી દંતીદૂર્ગ તેમને પણ "લઘુહવ્વ" ના ઉપનામથી બોલાવતા હોય. કૃષ્ણરાજ પ્રથમ શુભતુંગના બીજા નામથી ઇતિહાસપ્રસિદ્ધ છે. ઉપરાંત, લઘુહવ્વ અર્થાત્ પુરુષોત્તમ એક સામંત હોઈ રાજમાન્ય હતા અને તેથી તેમને પણ નૃપતિ શબ્દ લગાવવામાં આવ્યો હોય. પુરુષોત્તમ અને કૃષ્ણરાજ પ્રથમ સમવયસ્ક હોઈ પુરુષોત્તમના પુત્ર શ્રી અકલંક ને સાહસતુંગ બિરુદધારી

---

૧૧ જુઓ–તત્ત્વાર્થાધિગમભાષ્ય, ૧–૫; રાજવાર્તિક. પૃષ્ઠ–૨૦: વિશેષાવશ્યક ભાષ્ય, ગા. ૨૬.

૧૨ શ્રવણબેલ્ગોલા ઇન્સ્ક્રીપ્શન નં. ૬૭.

૧૩ પીટર્સનનો રિપોર્ટ ૨, પૃષ્ઠ ૭૯.

દંતીદૂર્ગની સભામાં પોતાના શાસ્ત્રાર્થની વાત કરવાનો પ્રસંગ મળ્યો હોય.[14] આવી રીતે પંડિતજી મલ્લિષેણપ્રશસ્તિ, કથાકોશગત શુભતુંગના મંત્રીપુત્રવાળી બાબત, અને રાજવાર્તિકના શ્લોકાર્થનો સુમેળ સાચવવા મથે છે. મને તે અર્થમાં ત્રણ ક્ષતિઓ દેખાય છે. એક તો એ કે કૃષ્ણરાજ પ્ર૦ કે જે દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ નો કાકો થાય તેને દંતીદૂર્ગ "હવ્વ" અર્થાત્ બાપ શું કામ કહે? તે ઉપરાંત, દંતીદૂર્ગ જેવો પ્રતાપી રાજા પોતાન-કાકાના સહકારીને "લઘુહવ્વ" જેવા માનાર્થક શબ્દપ્રયોગથી શું કામ સંબોધે? પુરુષોત્તમને સામંત શું કામ માનવો? અને વળી સૌથી બેહુદું તો એ છે કે એ સામંત હોય તો પણ "નૃપતિ" શબ્દથી તો વાચ્ય નથી જ. આ બધી રીતે મને પંડિત-જીકૃત ઉક્ત અર્થવિવૃત્તિ જરા ય આકર્ષક અને નિયમબદ્ધ લાગતી નથી. એ શ્લોકનો મારો અર્થ નીચે પ્રમાણે છે.

રાષ્ટ્રકૂટવંશીય રાજાઓ જૈનધર્માનુયાયી અથવા જૈનમતપોષક હતા એ તો હવે નિર્વિવાદ છે. એટલું જ નહિ પણ એમની નીચેના અફસરો અને ખંડિયા રાજાઓ પણ જૈનમત–પ્રેમી હતા[15] એટલે અને અકલંકની જન્મભૂમિ માન્યખેટ હતી[16] એ નિર્દેશના આધારે હું ઉક્ત શ્લોકને રાષ્ટ્રકૂટવંશીય રાજાઓના સંબંધમાં જ ઘટાવવા માગું છું.

સાહસતુંગ, શુભતુંગ, વલ્લભ, અને તુડિગ વગેરે બિરુદો રાષ્ટ્રકૂટવંશીય રાજાઓના હતા.[17] સાહસતુંગને દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ તરીકે ઓળખવવામાં આવે છે.[18] હું તો "લઘુ-હવ્વ" શબ્દને કૃષ્ણરાજ પ્રથમના ઉપનામ તરીકે યોજાએલો માનું છું–કર્ણાટક પ્રાન્તમાં "હવ્વ", "અવ્વ", "અપ્પ", બાપ વગેરે શબ્દો પિતાના અર્થમાં વપરાતા હતા. "લઘુહવ્વ" એટલે નાના બાપા અર્થાત્ બાપાના ભાઈ કે કાકા અને આ ઠેકાણે કૃષ્ણરાજ પ્રથમ. દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ નાની ઊમરે ગાદી ઉપર આવ્યો હતો અને તેથી તેના કાકા કૃષ્ણરાજ પ્રથમ તેના મંત્રી તરીકે કામ કરતા હોય એ સ્વાભાવિક છે. કૃષ્ણરાજ પ્રથમને દંતીદૂર્ગ પ્રેમથી "લઘુહવ્વ" કહે એ તદ્દન સહજ છે. દંતીદૂર્ગ ઘણો જ સાહસિક હતો તેથી કદાચ તેને "સાહસતુંગ" બિરુદ મળ્યું હોય.[19] તેમજ તે ઘણો જ દાનશીલ હતો[20] અને તેથી તે "શુભતુંગ" પણ કહેવાતો હોય. જો કે દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ ને "શુભતુંગ"નું બિરુદ આપ્યાનો ઉલ્લેખ ક્યાંય મળતો નથી. કૃષ્ણરાજ પ્રથમ જ

---

૧૪ "અકલંકગ્રન્થત્રયમ્"–સંપાદકીય પ્રસ્તાવના–પૃષ્ઠ, ૧૨.

૧૫ ડૉ એ એસ. અલ્તેકર લિખિત "ધી રાષ્ટ્રકૂટાઝ ઍન્ડ ધેર ટાઇમ્સ"નું પ્રકરણ–૧૩ (પૂના આરીએન્ટલ સીરીઝ નં ૩૬. પૂના ઈ. સ. ૧૯૩૪).

૧૬ જુઓ–પ્રભાચંદ્રકૃત ગદ્યકથાકોશ તથા બ્રહ્મચારી નેમિદત્તકૃત આરાધના કથાકોશ.

૧૭ ધી રાષ્ટ્રકૂટાઝ ઍન્ડ ધેર ટાઇમ્સ; પૃષ્ઠ ૪૦૬ અને પુષ્પદંત રચિત તથા ડૉ. પી. એલ. વૈદ્ય સંપાદિત "મહાપુરાણ"ની પ્રસ્તાવના; પૃષ્ઠ ૨૯. (માણિકચંદ દિગંબર જૈન ગ્રન્થમાલા–નં. ૩૭ મુંબઈ ઈ. સ. ૧૯૩૭)

૧૮ ધી રાષ્ટ્રકૂટાઝ એન્ડ ધેર ટાઇમ્સ; પૃષ્ઠ ૪૦૯.

૧૯ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ–૪૦

૨૦ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ–૪૧.

"શુભતુંગ" બિરુદધારી હતો.[21] જો કે આ બિરુદ દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ ને પણ મળ્યું હોય એમ માનવા લલચાઉં છું. કૃષ્ણરાજ ત્રીજો શુભતુંગ–તુડિગ–અને વલ્લભ ત્રણે ય બિરુદોથી ઓળખાતો એટલે હું તો એમ માનું છું કે જેમ જેમ જે રાજા જે સિદ્ધિઓ પ્રાપ્ત કરતો ગયો અથવા જે ગુણ–અવગુણનું પ્રાધાન્ય અને પ્રકર્ષ બતાવતો ગયો તે પ્રમાણે તેને બિરુદો–ઉપનામો મળતા ગયા હોય. સારાંશ એ કે દંતીદૂર્ગ દ્વિતીય "સાહસતુંગ" અને "શુભતુંગ" બન્ને બિરુદોનો ધારક હતો. દંતીદૂર્ગનો મંત્રી એટલે કૃષ્ણરાજ પ્રથમ અથવા "લઘુહવ્વ નૃપતિવરતનયઃ" એ પદમાં આવેલ "વર" શબ્દને હું "નૃપતિ"ના વિશેષણ રૂપે લેવા માગું છું એટલે કે નૃપતિવર અર્થાત્ રાજાધિરાજ. હવે કૃષ્ણરાજ પ્રથમ રાજાધિરાજ પરમેશ્વર નામના બિરુદનો ધારક હતો. એ તો ઇતિહાસસિદ્ધ છે.[22] તેમના પુત્ર તે અકલંક. સારાંશ એ કે દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ ના એક વખતના મંત્રી અને પાછળથી તેના મૃત્યુ બાદ રાજ્યના અધિકારી એવા "લઘુહવ્વ"ના વહાલસોયા ઉપનામધારી કાકા કૃષ્ણરાજ પ્રથમ કે જેઓને પોતાની સિદ્ધિના બદલામાં "રાજાધિરાજ" નું બિરૂદ પ્રાપ્ત થયું હતું તેમના પુત્ર તે અકલંક. આ રીતે મલ્લિષેણપ્રશસ્તિગત સાહસતુંગનો ઉલ્લેખ પણ સાર્થક થઈ શકે. કારણ કે અકલંક દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ ના કાકાના દીકરા પિત્રાઈ ભાઈ હોઈ લગભગ સમવયસ્ક હશે. દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ ઈ. સ. ૭૫૪ માં મર્યો ત્યારે લગભગ ત્રીશ વરસનો હતો તેથી તે ઈ. સ. ૭૨૪ લગભગમાં જન્મ્યો હોવો જોઈએ.[23] અર્થાત્ અકલંકનો જન્મસમય પણ ઈ. સ. ૭૨૪ લગભગ આપણે લેવો જોઈએ અને તેમણે સાહસતુંગ–શુભતુંગ બિરુદધારી દંતીદૂર્ગ દ્વિ૦ ની સભામાં પોતાના થનારા વાદની વાત કરી હોય. આરીતે તપાસતાં અને અર્થ બેસાડતાં મલ્લિષેણપ્રશસ્તિગત સાહસતુંગનો ઉલ્લેખ, પીટર્સન રિપોર્ટ બીજાનો કૃષ્ણરાજ પ્રથમના પુત્ર હોવાની કિવદન્તીનો ઇશારો, કથાકોશગત શુભતુંગના મંત્રીપુત્ર હોવાનો, અને રાજવાર્ત્તિકગત શ્લોકનો–બધાનો મેળ બરાબર ઘટાવી શકાય.

ભર્તૃહરિ, કુમારિલ, ધર્મકીર્ત્તિ, પ્રજ્ઞાકર ગુપ્ત, કર્ણકગોમિ, ધર્મોત્તર અને શાંતિરક્ષિત–આમાંના બધાનો અકલંકે નિર્દેશરૂપે, ખંડનરૂપે, સમાલોચનારૂપે પોતાના ગ્રન્થમાં પરિચય કરાવ્યો છે. ભર્તૃહરિના સમાલોચક કુમારિલ, કુમારિલનું નિરસન કરનાર ધર્મકીર્ત્તિ, ધર્મકીર્ત્તિના ટીકાકાર પ્રજ્ઞાકર ગુપ્ત અને પ્રજ્ઞાકર ગુપ્તના વાર્ત્તિકાલંકારની પછી રચાયેલી કર્ણકગોમિની ટીકાની આલોચના કરનાર અકલંક કોઈ હિસાબે કુમારિલ અને ધર્મકીર્તિના સમકાલીન સિદ્ધ થઈ શકતા નથી. અર્થાત્ અકલંક ચરિતાંતર્ગત "વિક્રમાર્કશકાબ્દ" પદનો અર્થ કે. વા. ડૉ. કે. બી. પાઠકે કર્યો છે તેમ શક સંવત્ કરી શક સંવત્–૭૦૦ (ઈ. સ. ૭૭૮ માં) અકલંકનો કાર્યકાળ હતો તે વિસંવાદી બાબતોની એકવાક્યતા કરી ઐતિહાસિક અને અન્ય યુક્તિઓદ્વારા હું ઉપર પ્રમાણે સિદ્ધ કરું છું. ઇત્યલમ્.

*

---

૨૧ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ–૪૭.

૨૨ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ–૪૩.

૨૩ ઉપર્યુક્ત પુસ્તક, પૃષ્ઠ–૪૧.

संस्कृतना कोश साहित्यमां अमरकोशनुं स्थान

लेο—पं० अंबालाल प्रेमचंद शाह, व्याकरणतीर्थ; भारतीय विद्या भवन।

*

કોશનું વૈજ્ઞાનિક મહત્ત્વ નહિ હોવા છતાં તે ભાષાશાસ્ત્રનું એક મહત્ત્વનું અંગ છે. ભાષાના બધા અંગોમાં વ્યાકરણ અને કોશ એ બે અતિ મહત્ત્વનાં અંગો છે, અને તેથી જ કોઈ કે "[1]વ્યાકરણ વિનાનો માનવી આંધળો અને કોશ વિનાનો બહેરો છે" એવી યથાર્થ ઉક્તિ કરી છે. વ્યાકરણ કેવળ યૌગિક શબ્દોની સિદ્ધિ કરી બતાવે છે પણ રૂઢ અને યોગરૂઢ શબ્દો માટે તો આપણે કોશનો જ આશ્રય લેવો પડે છે.

ભારતવર્ષમાં [2]વૈદિકકાળથી જ કોશનું જ્ઞાન અને મહત્ત્વ સ્વીકારાયેલું હતું એ નિઘણ્ટુકોશ ઉપરથી જાણી શકાય છે. વેદ પરના નિરુક્તકાર [3]યાસ્કમુનિ આગળ નિઘણ્ટુના જુદા જુદા પાંચ સંગ્રહો હતા; જેમાં પહેલા ત્રણમાં એક અર્થવાળા જુદા જુદા શબ્દોનો સમૂહ, ચોથામાં અઘરા શબ્દો અને પાંચમામાં વેદના જુદા જુદા દેવતાઓનું વર્ગીકરણ આપવામાં આવેલું હતું. એ નિઘણ્ટુકોશ પાછળના પદ્ધતિસરના લૌકિક શબ્દકોશોથી જુદો પડે છે. નિઘણ્ટુમાં ખાસ કરીને વેદઆદિ સંહિતાગ્રંથોના અસ્પષ્ટ અર્થોને સમજાવવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે જ્યારે લૌકિક કોશોમાં કવિઓ કે અન્ય શાસ્ત્રકારોને તેમના વિષયને ઉપયોગી એવા વિવિધ વિષયોના શબ્દોનો સંચય કરવામાં આવ્યો છે. નિઘણ્ટુમાં કેવળ નામોનો જ સંગ્રહ નથી પણ ધાત્વાદેશોનો પણ સાથે સાથે સંગ્રહ કરેલો છે, જ્યારે લૌકિક કોશોમાં નામ, અવ્યય અને લિંગનો બોધ કરનારા શબ્દોનો સંગ્રહ હોય છે. પહેલો કોશ વૈદિક ગ્રંથોમાંના વિષયની ચર્ચા પૂરતો મર્યાદિત છે; જ્યારે બીજો વાઙ્મય વિષયના સર્વ શબ્દોના અર્થો સમજાવનાર વ્યાપક શબ્દ ભંડારરૂપ છે.

નિઘણ્ટુકોશ પછી યાસ્કના નિરુક્તમાં વિશિષ્ટ શબ્દોનો સંગ્રહ થયેલો મળે છે અને ત્યાર પછી [4]પાણિનિની અષ્ટાધ્યાયીમાં યૌગિક શબ્દોનો વિશાળ સમૂહ કોશની સમૃદ્ધિનો વિકાસ કરતો જણાય છે.

---

૧ "अवैयाकरणस्त्वन्धो बधिरः कोशविवर्जितः।"

૨ પ્રો. યાકોબી વેદોનો રચના-કાળ ઈ. સ. પૂર્વે ૪૦૦૦, મેકડોનલ ૧૫૦૦થી ૨૦૦૦, મેક્સમૂલર ઈ. સ. પૂર્વે ૧૨૦૦ થી ૮૦૦ સુધી, જ્યારે ભારતીય પુરાતત્ત્વવિદ રા. બ. ગૌરીશંકર ઓઝાજી વેદકાળની સમાપ્તિ ઈ. સ. પૂર્વે ૧૪૭૧ માને છે.

૩ યાસ્ક પાણિનિની પહેલાં થયા હશે; કેમકે તેમણે તેમના પૂર્વના વીશેક વૈયાકરણોનાં નામ ઉલ્લેખ્યાં છે; તેમાં શાકટાયન, ગાર્ગ્ય અને શાકલ્ય મહત્ત્વના છે, તેની સાથે પાણિનિનું નામ નથી. એટલે યાસ્કની પાછલી સીમા ઈ. સ. પૂર્વે ૫૦૦ લગભગ ગણાવી શકાય.

૪ પાણિનિનો સમય ઈ. સ. પૂર્વે આશરે ૪૦૦ નો મેકડોનલ વગેરે વિદ્વાનોએ નક્કી કર્યો છે. જુઓ "સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઇતિહાસ" મેકડોનલ (ગૂજરાતી) પૃ. ૧૯.

પાણિનિ સુધીના બધા કોશ જેવા એ ગ્રંથો આપણને ગદ્યમાં જ ઉપલબ્ધ થાય છે; પણ ત્યાર પછીના લૌકિક કોશોની રચના અનુષ્ટુપ્, આર્યા વગેરે વૃત્તોથી પદ્યબદ્ધ કરવામાં આવેલી છે. આ કોશો ખાસ કરીને શબ્દોને કંઠસ્થ કરવાના ઉદ્દેશથી રચાયેલા હોય છે. પણ એમાં શબ્દને શોધી કાઢવાની કોઈ પદ્ધતિ રાખવામાં નથી આવી અને તેથી તેમાં આધુનિક પદ્ધતિ મુજબની અકારાદિ–અનુક્રમણિકા વગેરેની કોઈ ગોઠવણ મળી આવતી નથી. પ્રો. કીથ જેવા વિદ્વાનો અનુમાન કરે છે કે '[૫]આવા પ્રકારની રચનાત્મક પદ્ધતિ કદાચ ધાતુપાઠ અને વ્યાકરણની બીજી સૂચિઓના અસ્તિત્વકાળથી જ વિકસી હશે.'

કોશોમાં ખાસ કરીને બે પ્રકારો અસ્તિત્વ ધરાવે છે. એકાર્થકોશ (Synonymous) અને બીજો અનેકાર્થકોશ (Homonymous). પહેલો કોશ એક જ અર્થના અનેક શબ્દોનું જ્ઞાન કરાવે છે; જ્યારે બીજો એક શબ્દના અનેક અર્થોનું સૂચન કરે છે.

સંસ્કૃત ભાષાના કેટલાક પ્રાચીન કોશકારોનાં નામ આપણને અર્વાચીન કોશકારો અને કાવ્યાદિ ગ્રંથોના ટીકાકારો આપે છે પણ તેમનો સમય, દેશ કે રચના વિષેના ઐતિહાસિક ઉલ્લેખો મળી શકતા નથી. અહીં તો જો કે કોશકારોનો જ નિર્દેશ પ્રસ્તુત છે છતાં કોશ–ઇતર એવા કાવ્યાદિ ગ્રંથોના રચનારાઓ [૬]વાલ્મીકિ, વ્યાસ, [૭]ભાસ, [૮]અશ્વઘોષ, કાલિદાસ, [૯]સિદ્ધસેન, [૧૦]ભારવિ, [૧૧]માઘ, [૧૨]ભવભૂતિ જેવા મહાકવિઓના સમયનિર્ણય કરવાનાં પણ આપણી પાસે યથેષ્ટ પુરતાં અને નિશ્ચયાત્મક સાધન નથી.

---

૫ "A History of sanskrit Literoture" Keith P. 412.

૬ વાલ્મીકિ ના "रामायण" અને વ્યાસના "મહાભારત" માટેનો વિસ્તૃત ઊહાપોહ–જુઓ "સં. સા. ઇ." (ગૂજ.) પૃ. ૩૮૬.

૭ રા. કેશવલાલ હ. ધ્રુવના "સ્વપ્નવાસવદત્તા" માંનો "સાચું સ્વપ્ન" ઉપોદ્ઘાત અને તે પર વિવેચન કરતો રા. આનંદશંકર બા. ધ્રુવનો "કાવ્યતત્ત્વવિચાર" માંનો "સાચું સ્વપ્ન" લેખ.

૮ बुद्धचरितનો કર્તા અશ્વઘોષ કનિષ્કનો સમકાલીન હતો. કનિષ્કનો સમય ઇ. સ. ૧૨૦–જુઓ "भारतके प्राचीन राजवंश" विश्वेश्वरनाथ रेउकृत भा. २ पृ. २१३ અને "Early History of India." P. 257.

૯ सन्मतितर्क, न्यायावतार વગેરેના કર્તા જૈનાચાર્ય સિદ્ધસેન દિવાકર, વિક્રમીય પાંચમી શતાબ્દિમાં થયા. જુઓ "સન્મતિતર્ક" પં. સુખલાલજી અને પં. બહેચરદાસજી કૃત ભા૦ ૬ નો ઉપોદ્ઘાત.

૧૦ किरातार्जुनीय કાવ્યના કર્તા ભારવિનું નામ એહોલના ઇ. સ. ૬૩૪ ના શિલાલેખમાં કાલિદાસ સાથે ઉલ્લેખાયું છે. તેથી ભારવિનો સમય તે પૂર્વનો નિશ્ચિત થાય છે.

૧૧ शिशुपालवध કાવ્યના કર્તા માઘ કવિનો સમય કીલહોર્ને ઇ. સ. ૬૫૦ થી ૭૦૦ સુધીનો નિર્ણીત કર્યો છે. માઘના પિતા દત્તક અને પિતામહ સર્વાશ્રય બન્ને ભિન્નમાલના રાજા વર્મલાતના મંત્રી હતા–એમ કવિ પોતે જ પ્રશસ્તિમાં લખે છે. વર્મલાતનો ઇ. સ. ૬૨૫ નો શિલાલેખ મળી આવેલ છે તેથી તેઓ ઈ. સ. ૭૦૦ પછી તો થયા નહિ હોય. પ્રો. યાકોબી તો માઘને બાણ અને સુબંધુનીયે પહેલાં એટલે છઠ્ઠા સૈકાના મધ્ય કરતાં વધારે અર્વાચીન નથી માનતા.

૧૨ वीरचरित, उत्तरराम અને मालतीमाधव એ ત્રણે નાટકોના કર્તા ભવભૂતિ અને ગૌડવહોના કર્તા વાક્પતિરાજ–એ બંને કાન્યકુબ્જ (કનોજ) ના રાજા યશોવર્માની સભામાં હતા. કાશ્મીર નરેશ લલિતાદિત્યે (મુક્તાપીડે) ઈ. સ. ૭૪૧ લગભગમાં ચડાઈ કરી ત્યારે તે યુદ્ધમાં મરાયો. જુઓ "भा० प्रा० रा०" भा. २ पृ. ३७६.

કાવ્યાદિના ટીકા-ગ્રંથોમાં આવતા કોશ અને કોશકારોના નામોનો ઉલ્લેખ જે આપણને જોવા મળે છે તેમાં કાત્યાયનની नाममाला, વાચસ્પતિનો शब्दार्णव, વિક્રમાદિત્યનો संसारावर्त्त, વ્યાડિનો उत्पलिनी, ભાગુરિનો त्रिकाण्ड, ધન્વંતરિનો निघण्टु વગેરે મુખ્યપણે છે. આ સિવાય [13]બાણ, મયૂર, મુરારિ અને શ્રીહર્ષના નામે ચડેલા કોશોમાં श्लेषार्थपदसंग्रह છે; જે એક જ શબ્દને બે અર્થમાં ઉપયોગ કરવાનું સૂચવે છે. આ કોશગ્રંથો આજે આપણને ઉપલબ્ધ નથી. વેબરના હસ્તલિખિત ગ્રંથોની સૂચિમાં બતાવ્યા પ્રમાણે, કાશ્ગરમાંથી એક કોશનો ત્રુટિત ભાગ તેમને જોવા મળ્યો હતો, પરંતુ તે કયો કોશ હશે તેનો નિર્ણય કરાયો નથી.[14]

ઉપલબ્ધ કોશોમાં અમરસિંહનો नामलिङ्गानुशासन कोश; જે अमरकोश ના અપરનામે પણ ઓળખાય છે; તે જ અત્યારે તો સૌથી પ્રાચીન કોશ માનવામાં આવે છે.

આ કોશનો કર્તા કવિ અને વૈયાકરણ હતો, એવો ઉલ્લેખ આપણને મળે છે; પરંતુ તેનો કવિતાનો કે વ્યાકરણનો કોઈ ગ્રંથ હજી સુધી જ્ઞાત થયો નથી.

પ્રસિદ્ધ આઠ વૈયાકરણોમાં અમરસિંહ પણ એક હતો એવું એક શ્લોક આપણને પ્રમાણ આપે છેઃ–

"इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमर-जैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ॥"

આ સિવાય તેના તરફ કટાક્ષના ઉદ્દેશથી કોઈ બ્રાહ્મણ વિદ્વાને કરેલી નિન્દાવ્યંજક ઉક્તિથી તેનું પ્રૌઢ વૈયાકરણત્વ સૂચિત થયા વિના રહેતું નથી. એ ઉક્તિ તે

"अमरसिंहो हि पापीयान् सर्वं भाष्यमचूचुरत ।"

એ છે. આ પંક્તિથી જાણી શકાય છે કે મહાભાષ્યના તત્ત્વને જાણનારા વિદ્વાનોને તે એક પ્રખર વૈયાકરણ તરીકે પ્રતીત થયેલો હોવો જોઈએ. અને તેથી જ તેણે સંગ્રહેલા શબ્દોથી મહાભાષ્યનું મહત્ત્વ ઘટવાનો ભય લાગતાં તેને પાપી કહી તિરસ્કાર્યો હશે.

અમરકોશ પહેલાંના પ્રાચીન કોશોમાંના કોઈ, ક્યાં તો કેવળ નામાનુશાસન અને અને ક્યાં તો કોઈ કેવળ લિંગાનુશાસન દર્શાવનારા હતા, અને કેટલાક અસ્તવ્યસ્ત કે બહુ વિસ્તૃત હતા તેથી સહજસાધ્ય નહોતા; અને તેથી જ એ કોશોમાંથી પ્રાયઃ કોઈ પણ, ઉપયોગના અભાવે, સુરક્ષિત રહી શક્યા નથી. જ્યારે અમરકોશમાં નામાનુશાસન, લિંગાનુશાસન, અવ્યય અને નાનાર્થનો પણ સમાવેશ કરવામાં આવ્યો છે અને ટુંકાણમાં લગભગ બધા વિષયોના શબ્દોનો ઉત્તમ સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે. તેમાં ત્રણ કાંડો છે અને એ ત્રણ કાંડોમાં અનેકાનેક વિષયોનો સંગ્રહ થયેલો છે. જેમ કે–

પ્રથમ કાંડમાં—(૧) સ્વર્ગ, (૨) વ્યોમ, (૩) દિગ્, (૪) કાલ, (૫) ધી, (૬) શબ્દ, (૭) નાટ્ય, (૮) પાતાલ, (૯) નરક, (૧૦) વારિ.

---

૧૩ कादम्बरी અને हर्षचरित ગ્રંથના કર્તા બાણભટ્ટ છે. મયૂર પણ તેનો સમકાલીન હતો. તેઓ હર્ષવર્ધનના આશ્રિત હતા. પ્રો. એડમ્સ અને ડૉ. બ્રામના ગણિતાનુસાર હર્ષનો રાજ્યારોહણ અને હર્ષ સંવત્ પ્રચલિત કરવાનો સમય ૬૦૬ નક્કી થયો છે. જુઓ "भारतीय प्राचीन लिपिमाला" પૃ. १७७.

૧૪ 'A History of Sanskrit Literature" Keith P. 413.

બીજા કાંડમાં—(૧) ભૂમિ, (૨) પુર, (૩) શૈલ, (૪) વનૌષધિ, (૫) સિંહાદિ, (૬) મનુષ્ય, (૭) બ્રહ્મ, (૮) ક્ષત્રિય, (૯) વૈશ્ય, (૧૦) શુદ્ર.

ત્રીજા કાંડમાં—(૧) વિશેષ્યનિઘ્ન, (૨) સંકીર્ણ, (૩) નાનાર્થ, (૪) અવ્યય, (૫) લિંગાદિસંગ્રહ.

આમ લગભગ ૧૫૦૦ અનુષ્ટુપ્ શ્લોકોનો આ કોશ, શબ્દોનો બહુજ સુંદર સંગ્રહ ધરાવે છે અને કર્તાના નામ પ્રમાણે જ એ કોશ સાહિત્યમાં અમર સ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે. આથી જ કોઈ મુગ્ધ કવિએ અમરને ૨૬ કોશ અને કોશકારોમાં અમર તરીકે વર્ણવ્યો છે—

मेदिन्यमरमाला च त्रिकाण्डो रत्नमालिका ।
रन्तिदेवो भागुरिश्च व्याडिः शब्दार्णवस्तथा ॥
द्विरूपश्च कलिङ्गश्च रभसः पुरुषोत्तमः ।
दुर्गोऽभिधानमाला च संसारावर्त्त-शाश्वतौ ॥
विश्वो वोपालितश्चैव वाचस्पति-हलायुधौ ।
हारावली साहसाङ्को विक्रमादित्य एव च ॥
हेमचन्द्रश्च रुद्रश्चाप्यमरोऽयं सनातनः ।
एते कोशाः समाख्याताः सङ्ख्या षड्विंशति स्मृताः ॥

અમરસિંહે પોતાના પૂર્વના કોશો અને કાવ્યોમાંથી શબ્દોનો સંગ્રહ કર્યો છે; એવું એ કોશના પ્રાસ્તાવિક-કથન-શ્લોકથી જણાઈ આવે છેઃ—

"समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः ।
संपूर्णमुच्यते वर्गैर्नामलिङ्गानुशासनम् ॥"

अमरकोशના પ્રાચીન ટીકાકાર ક્ષીરસ્વામી, જેઓ ૧૧ મી શતાબ્દિમાં થઈ ગયા છે અને વંદ્યગતીય સર્વાનંદ, જેમનો સમય સને ૧૧૫૯ નો છે—તે બંને તેમના પૂર્વવર્તી કોશો અને તેના પ્રણેતાઓનાં નામો નોંધે છે. આથી જણાઈ આવે છે કે, અમરસિંહને પોતાના કોશના રચના સમયે એ બધા કોશો ઉપલબ્ધ હશે અને તેમનો પૂર્ણ રીતે પોતાના કોશમાં તેમણે ઉપયોગ કર્યો હશે.

अमरकोश અભ્યાસીઓને કેટલો બધો પ્રિય થઈ પડ્યો છે તેનું સહજ અનુમાન, પ્રાપ્ત થતી એ કોશની અનેક ટીકાઓ ઉપરથી આપણે બાંધી શકીએ.

(१) अमरकोशोद्घाटनम्—કર્તાઃ ક્ષીરસ્વામી (૧૧મી શતાબ્દિ). આ ટીકામાં [૧૫]ભોજ, [૧૬]રાજશેખર, [૧૭]ભટ્ટિ, માઘ વગેરેનાં નામોનો ઉલ્લેખ છે.

---

૧૫ ભોજનો સમય તેના દાનપત્ર અનુસારે ઇ સ. ૧૦૨૧ (વિ. સં. ૧૦૭૮) નો નક્કી છે.

૧૬ कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण અને प्रचण्डपाण्डव (बालभारत) નો કર્તા રાજશેખર પ્રતિહાર રાજા મહેન્દ્રપાલના ગુરુ હતો. તે ઈ. સ. ૯૦૦ માં થયો.

૧૭ भट्टिकाव्यનો કર્તા ભટ્ટિ, જે મંત્રીશ્વર તરીકે પ્રસિદ્ધ હતો તે વલભી (વળા) ના ચોથા ધરસેનના રાજ્યકાળ ઈ. સ. ૬૪૧ થી ૬૫૧ માં થયો.

(२) अमरदीपिका (?)— કર્તાઃ વંદ્યગતીય સર્વાનંદ (સને ૧૧૫૯)

(३) पदचन्द्रिका — કર્તાઃ રાયમુકુટ (શકાબ્દ ૧૩૫૩+૭૮=સને ૧૪૩૧). આ ટીકામાં આવતા સોળ ગ્રંથકારોનાં નામોનો ઉલ્લેખ ડૉ. ભાંડારકરે કર્યો છે.

(४) बुधमनोहरा — કર્તાઃ સ્વયંપ્રકાશના શિષ્ય વેદાંતી મહાદેવ. આમાં મુકુટનું નામ આવે છે.

(५) पीयूषव्याख्या — કર્તાઃ રામકૃષ્ણ દીક્ષિત. આમાં પણ મુકુટનું નામ આવે છે.

(६) अमरचन्द्रिका — કર્તાઃ પરમાનંદ મૈથિલ. આ ટીકા મુકુટના સારરૂપે છે.

(७) पदविवृत्ति — કર્તાઃ લિંગસૂરિ.

(८) व्याख्यासुधा — કર્તાઃ ભાનુજી દીક્ષિત.

(९) अमरविवेक — કર્તાઃ મહેશ્વર.

આ સિવાય બીજી અર્વાચીન ટીકાઓને જો ગણીએ તો લગભગ તેની સંખ્યા ત્રીશેક જેટલી થવા જાય છે. આ ટીકાકારો અને તેના અભ્યાસીઓની બહુલતાથી જાણી શકાય છે કે આ કોશ આજે પણ કેટલો લોકપ્રિય છે.

અમર નામના અનેક વિદ્વાનો થઈ ગયાના ઉલ્લેખો આપણા સાહિત્યમાંથી મળે છે. અમરસિંહ નામનો એક વિદ્વાન્ વિક્રમની રાજસભાના નવરત્નોમાંનો એક હતો એવું કથન નીચેના શ્લોકમાં મળે છે

"धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंह-शङ्कु-
वेताल-भट्टि-घटखर्प्पर-कालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥"

કાલિદાસના સમય-નિર્ણય માટે જ્યાં ત્યાં આ પદ્યનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવે છે પણ એનું પ્રામાણ્ય સિદ્ધ થઈ શક્યું નથી. કેમકે આમાં [18]વરાહમિહિરને કે જેનો સમય લગભગ છઠ્ઠી શતાબ્દિ છે, તેને વિક્રમ સંવત્ પ્રવર્તક વિક્રમાદિત્યનો સમકાલીન કહેવામાં આવ્યો છે. પણ આ વિક્રમ તે કોણ અને તે ક્યારે થઈ ગયો એ વિષે હજી કશો ચોક્કસ નિર્ણય વિદ્વાનો કરી શક્યા નથી. કારણ કે વિક્રમ નામના અનેક રાજાઓ થઈ ગયા છે. તેથી આ પદ્યમાં જણાવેલો વિદ્વાન્ અમરસિંહ પણ કોણ હતો અને તે ક્યારે થઈ ગયો તે વિષે કશું નિશ્ચિત કહી શકાય તેમ નથી; પરંતુ કેટલાક વિદ્વાનોનું મંતવ્ય છે કે આ જ અમરસિંહ [19]અમરકોશનો કર્તા હોવો જોઈએ.

આ રીતે અમરસિંહ કોણ અને કયા પ્રાંતનો તેમ જ કયા સમયમાં વિદ્યમાન હતો વગેરે પ્રશ્નો પર પ્રકાશ પાડવાને આપણી પાસે કંઈ ખાસ સાધન નથી. કેવળ એ કોશની રચનામાંથી પ્રાપ્ત થતા કેટલાક શબ્દો પરથી જે કાંઈ અનુમાન બાંધી શકાય છે, તે

१८ "इतिहासप्रवेश" जयचंद विद्यालंकार कृत, भा० १, पृ० २२२.

१९ अमरकोश मूलमात्र । (निर्णयसागरप्रेस) पं. ११.

પરથી તેમજ અમરકોશના મંગલાચરણ અને રચના-શૈલી પરથી તે ધર્મે 'બૌદ્ધ' હશે એમ માનવામાં આવે છે. કેમકે તેણે "अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः" એ શ્લોકોથી દેવોનાં નામો ગણાવી તરત જ બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, મહેશ્વરની નામ-ગણના પહેલાં જ [20]"सर्वज्ञो सुगतो बुद्धः"નું વર્ણન કરીને મંગલાચરણમાં વર્ણવેલા [21]"यस्य ज्ञान-दयासिन्धोः" એ અર્થને પ્રસ્ફુટ-વિશદ કર્યો હોય તેમ લાગે છે. બૌદ્ધ ગ્રંથકર્તા પોતાની કૃતિમાં પોતાના ઇષ્ટદેવ બુદ્ધ ભગવાન, જેઓ જ્ઞાન અને દયાના સાગર છે, તેમના ગુણોનું સ્મરણ કરે એ સ્વાભાવિક છે.

ક્ષીરસ્વામી અમરસિંહને જિનધર્માનુયાયી સમજે છે અને જિનમનુસૃત્ય જેવાં પદો જ્યાં ત્યાં ઉલ્લેખે છે, પરંતુ આ જિનનો અર્થ અહિ જૈનધર્માનુયાયી તરીકે અભિપ્રેત ન હોઈ-જેમકે કેટલાક માને છે તેમ-જિન એટલે બુદ્ધ એ અર્થ લેવાનો છે. અને એથી જ કોઈ બ્રાહ્મણ વિદ્વાને તેને

अमरसिंहो हि पापीयान् सर्वं भाष्यमचूचुरत्

એ ઉક્તિથી તેને તિરસ્કાર્યો છે અને તેને 'પાપી' તરીકે સંબોધ્યો છે.

બીજું-"[22]धर्मराजौ जिन-यमौ" એ શ્લોકમાં યમ શબ્દનો પૂર્વનિપાત ન કરતાં જિન શબ્દનો જે પૂર્વનિપાત કરવામાં આવ્યો છે તે પણ કર્તાનું બૌદ્ધ હોવાનું સૂચવે છે. કેમકે વ્યાકરણના નિયમ પ્રમાણે ["[23]लघ्वक्षराऽसखीदूत०" એ સૂત્રથી] અલ્પાક્ષર યમનો પૂર્વનિપાત થાય, પણ અર્ચ્યવાચી-પૂજ્યવાચી શબ્દ હોય તો તેનો અલ્પાક્ષરની પૂર્વમાં પણ નિપાત થાય એ ઉપનિયમના આધારે બૌદ્ધ કર્તા પોતાના ઇષ્ટદેવ બુદ્ધના અપર પર્યાયનો પૂર્વનિપાત કરે છે. અહીં ગ્રંથકર્તા જો વૈદિક હોત તો જિનની અપેક્ષાએ યમનું અલ્પાક્ષરત્વ અને પૂજ્યત્વ ગણીને જિનની પૂર્વમાં તેનો નિપાત કરત.

ત્રીજું-ગ્રંથમાં યોજેલા [24]बोधिद्रुम અને [25]एडूक જેવા અને બીજા એવા શબ્દો

---

૨૦ अ० को० मू० (नि० सा०) पं. २५

૨૧ अ० को० मू० (नि० सा०) पं. १.

૨૨ अ० को० मू० (नि० सा०) पं. २६, ९६.

૨૩ सिद्धहेमशब्दानुशासन-सूत्र ३-१-६०.

૨૪ બોધિદ્રુમ-પીંપળનું વૃક્ષ. બુદ્ધગયામાં ગૌતમબુદ્ધને બુદ્ધત્વની પ્રાપ્તિ પીંપળ નીચે થઈ હતી, તેથી તેને બોધિદ્રુમ કહેવામાં આવે છે.

૨૫ એડૂક-બૌદ્ધ સમાધિસ્તૂપ. બૌદ્ધધર્માવલંબી ત્રિપિટકાચાર્ય જેવા આદરણીય વ્યક્તિઓનાં હાડકાંને જમીનમાં દાટી દઇ, તેના પર ચારે બાજુએ ઊંચી દિવાલો બાંધી દેવામાં આવે છે. અને બૌદ્ધો તેવા સમાધિ-સ્તૂપોની પૂજા કરે છે. આવા સ્તૂપો ભારતવર્ષમાં ઘણે સ્થળેથી મળી આવ્યા છે. મહાભારતના વનપર્વમાં લખ્યું છે કે-

"एडूकान् पूजयिष्यन्ति वर्जयिष्यन्ति देवताः ।" (१९०-६५)

"एडूकचिह्ना पृथ्वी न देवगृहभूषिता ।" (१९०-६७)

અર્થાત્ બૌદ્ધકાળ (કલિયુગ) માં લોકો સ્તૂપોની પૂજા કરશે, ભારતવર્ષમાં દેવતાઓનાં મંદિર નહિ હશે પણ પૃથ્વી સ્તૂપોથી જ વ્યાપ્ત બનશે. જુઓ-Edukas=Buddhist stups. "History of India" K. P. Jayaswal-150 A. D.-350 A. D. P. 47.

જે અંગ્યન્તર કે પ્રકારાન્તરે બૌદ્ધ પરિભાષાને લગતા બની શકે, તેવા શબ્દોથી પણ તેમનું બૌદ્ધપણું સ્પષ્ટ સમજી શકાય છે.

અમરસિંહ ક્યા સમયમાં વિદ્યમાન હશે એનો કાંઈક આભાસ અમરકોશના કેટલાંક અવાન્તર પ્રમાણોથી કરી શકાય તેમ છે.

(૧) અમરકોશનો છઠ્ઠી શતાબ્દિમાં ચીનીભાષામાં અનુવાદ થયો અને તે ઉજ્જૈનીના ગુણરાતે કર્યો હતો, તેથી અમરસિંહ તે પૂર્વમાં થયો હોવો જોઈએ એ નિશ્ચિત છે.

(૨) અમરકોશમાં "[26]द्वौ द्वौ मार्गादिमासौ स्यादृतुः ।" આ ઉલ્લેખથી સ્પષ્ટ થાય છે કે-અમરસિંહના સમયમાં માર્ગશિર માસથી વત્સરારંભ થતો હોવો જોઈએ અને જ્યોતિષશાસ્ત્રની ગણનાનુસાર આ સમય લગભગ ૧૫૦૦–૧૬૦૦ વર્ષ પૂર્વે હતો. તેથી અમરસિંહ ચોથી શતાબ્દિમાં થયેલ હોય એમ માની શકાય.

(૩) પોતાના કોશમાં સાંખ્યમતનો આ રીતે ઉલ્લેખ કરે છે–"[27]क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम्"–કપિલના આ મતમાં વિંધ્યવાસી ઇશ્વરકૃષ્ણે પોતાની सांख्यकारिकाમાં સુધારો કર્યો છે. અમરસિંહ કહે છે કે, "[28]अन्तराभवसत्त्वेऽपि गन्धर्वो दिव्यगायने" આમાંનો अन्तराभव શબ્દ ગંધર્વવાચક છે. જ્યારે–[29]કુમારિલભટ્ટ આનું ખંડન કરતાં કહે છે કે–

"अन्तराभवदेहस्तु नेष्यते विन्ध्यवासिना ।
तदस्तित्वे प्रमाणं हि न किञ्चिदवगम्यते ॥"

અર્થાત્ अन्तराभवसत्त्वનો સિદ્ધાંત વિંધ્યવાસી (ઇશ્વરકૃષ્ણ) સ્વીકારતા નથી. આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ઇશ્વરકૃષ્ણદ્વારા પ્રચાર પામેલા આ સાંખ્યદર્શનનું સુધરેલું સ્વરૂપ અમરસિંહને માલૂમ ન હતું. તેથી અમરસિંહ [30]ઇશ્વરકૃષ્ણની પૂર્વે થયો હોવો જોઈએ. ઇશ્વરકૃષ્ણનો સમય પાંચમી શતાબ્દિનો નિર્ણીત થયો છે.

(૪) જો કે તે બૌદ્ધ હતો છતાં પાણિનિના સૂત્ર "[31]सभा राजा मनुष्यपूर्वा" અનુસારે તેણે "शालाऽर्थापि परा राजा मनुष्यार्थादवाचकात्" એવો અર્થ માન્ય રાખ્યો છે.

---

૨૬ अ० को० मू० (नि० सा०) पं. २४३.

૨૭ अ० को० मू० (नि० सा०) पं. २७२.

૨૮ अ० को० मू० (नि० सा०) पं. २६००.

૨૯ "श्लोकवार्तिक" વગેરે મીમાંસા ગ્રંથોના કર્તા કુમારિલભટ્ટનો સમય ઇ. સ. ૭૦૦–૭૬૦નો કેટલાક વિદ્વાનોએ નક્કી કર્યો છે.

૩૦ "साङ्ख्यकारिका"નો કર્તા ઈશ્વરકૃષ્ણ ઇ. સ. ૫૫૭ થી પૂર્વેમાં થયો છે. કેમ કે ઉક્ત ગ્રંથનો ઈ. સ. ૫૫૭ થી ૫૮૩ સુધીમાં ચીનીભાષામાં અનુવાદ થયો હતો. એટલે તે અમરસિંહનો સમકાલીન કે પછીનો હોવો જોઈએ.

૩૧ "अष्टाध्यायी" पाणिनीय–सूत्र–२–४–२३. જુઓ "सिद्धान्तकौमुदी" भट्टोजि दीक्षित कृत (नि० सा०) पृ. १८९.

પરંતુ બૌદ્ધ વૈયાકરણ ચંદ્રગોમિન્‌ના "ईश्वरार्थादराज्ञः समा" ના અર્થને સ્વીકાર્યો નથી. એથી માની શકાય છે કે અમરસિંહ [32]ચંદ્રગોમિન્‌થી પૂર્વમાં થયો હશે.

ઉપર્યુક્ત પ્રમાણોથી એટલું તો નક્કી થઈ શકે છે કે અમરસિંહ પાંચમી શતાબ્દિ પછી તો નથી થયો. બેશક, એક પ્રમાણ એવું છે કે અમરસિંહને કાલિદાસના પૂર્વનો નહિ તો સમકાલીન માનવાને કારણ આપે છે:–કાલિદાસે [33]રઘુવંશ અને કુમારસંભવ વગેરેમાં दूती શબ્દનો दूति એવો હ્રસ્વ પ્રયોગ જ જ્યાં ત્યાં મૂક્યો છે; જ્યારે અમરસિંહે दूती એવો દીર્ઘ પ્રયોગ નોંધ્યો છે, હ્રસ્વ ઉલ્લેખ્યો નથી. આથી તે કાલિદાસનો પૂર્વવર્તી હોવો જોઈએ, અને જો સમકાલીન હોય તો, પોતાનો સમકક્ષ વિદ્વાન સમજી એ શબ્દ સ્ખલનારૂપ ગણી તેને અવગણ્યો હોય. આવા મોટા કવિને, તેના પછીનો વિદ્વાન ઉપેક્ષવાનું સાહસ ન કરી શકે. છતાં કેટલાક વિદ્વાનો આ दूति પ્રયોગને અશુદ્ધ ગણે છે. સ્વયં ટીકાકાર જ કહે છે કે–छन्दोभङ्गभयाद् ह्रस्वः; છતાં આ પ્રશ્ન વિચારણીય તો ગણાય જ. પણ કાલિદાસ જો, ભાઉ દાજી જેવાના અભિપ્રાય મુજબ, છઠ્ઠી શતાબ્દિનો ઠરે તો પછી આ પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થતો નથી.

કોશની રચના

અમર પછી તો કોશ–સાહિત્યમાં પૂર આવ્યું હોય તેમ લાગે છે. અમરકોશ પર વિશિષ્ટ શબ્દોની અનુપૂર્તિરૂપે રચેલો પુરુષોત્તમદાસનો ત્રિકાંડશેષ; બાર વર્ષના પ્રયત્ન પછી એકાર્થ અને અનેકાર્થનો સંગ્રહ કરતો નાનો હારાવલી કોશ, જે અગત્યના બૌદ્ધ ગ્રંથોમાંના વિશિષ્ટ શબ્દોનો સંગ્રહ આપે છે; શાશ્વતનો अनेकार्थसमुच्चय–જે લગભગ અમરકોશ જેટલો પ્રાચીન હશે–તેમાં અનેકાર્થ શબ્દો આખા, અર્ધા કે પા શ્લોકમાં આપી શકાય તેટલા આપ્યા છે અને તેમાં અવ્યયોનો પણ સમાવેશ કર્યો છે.

બીજા કોશો નિશ્ચયરૂપે પાછળથી રચાયેલા છે. ઈ. સ. ૯૫૦ પછી કવિ અને વૈયાકરણ તરીકે પ્રસિદ્ધિ પામેલા હલાયુધની 'अभिधानरत्नमाला' અને તેથી એક શતાબ્દિ પછી રચાયેલો યાદવપ્રકાશનો વૈજયન્તી–જેમાં શ્રુતિ (Syllable) લિંગ અને આદ્ય વર્ણથી લઈને વ્યંજનાન્ત સુધીની ક્રમપૂર્વકની રચના છે–કોશસાહિત્યનો અનોખો ગ્રંથ ગણાવી શકાય.

એ પછી બારમી સદીમાં આપણને અનેક પ્રકારના કોશોની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેમાં સંસ્કૃત–સાહિત્યના અનેક વિષયના ગ્રંથોની રચનાથી વિદ્વાનોમાં ઉચ્ચતર સ્થાન મેળવનાર ઈ. સ. ૧૦૮૮–૧૧૭૨ માં થયેલા શ્રીહેમચન્દ્રાચાર્યનું કોશ–સાહિત્યમાં પણ મહત્ત્વનું અને નોંધવાયોગ્ય કાર્ય ગણાવી શકાય. તેમણે એકલાએ જ છ કોશગ્રંથો

---

૩૨ "चान्द्रव्याकरण"ના કર્તા બૌદ્ધ ચંદ્રગોમિને પોતાના વ્યાકરણમાં अजयद् गुप्तो हूणान् એવું ઉદાહરણ મૂક્યું છે. તે પરથી જાણી શકાય છે કે સ્કન્દગુપ્તે હૂણો પર જે સામાન્ય વિજય મેળવ્યો તેનો સમય ઇ. સ. ૪૫૫ થી ૪૬૭ લગભગનો છે અને યશોધર્માએ જે સંપૂર્ણ વિજય મેળવ્યો તેનો રાજ્યકાળ ઇ. સ. ૪૯૦ થી ૫૨૦ છે. તેથી ચંદ્રગોમિનનો સમય ઇ. સ. ૪૬૦ પછીનો કલ્પી શકાય.

૩૩ "रघुवंश"નો સર્ગ ૧૯ ના શ્લોકો ૧૮–૨૩–૩૨ અને "कुमारसंभव"નો સર્ગ ૪ નો શ્લોક ૧૬.

રચ્યા છે. તેમાંનો अभिधानचिन्तामणि છ કાંડમાં એકાર્થ શબ્દોનો સંગ્રહ આપે છે. આ કોશને ભિન્ન ભિન્ન ગ્રંથોના ટીકાકારોએ ખૂબ અપનાવ્યો છે એમ અનેક ટીકા-ગ્રંથોમાં મળી આવતા એના વિષેના ઉલ્લેખોથી માલૂમ પડે છે. તેની રચના દેવાધિદેવ-કાંડથી પ્રારંભ થાય છે જેમાં જૈનોના તીર્થંકર દેવો, ગણધરો, તીર્થંકર–અતિશયો, મોક્ષ, શ્રમણ, યમ–નિયમ વગેરે વિષયના શબ્દોથી શરૂઆત થાય છે. અને અંતે ભાવવાચક નામો, વિશેષણો અને નિપાતના શબ્દો આપી પૂર્ણ કરે છે. તેની અનુપૂર્તિ-રૂપે વનસ્પતિશાસ્ત્ર સંબંધી બીજો निघण्टुकोश છે. ત્રીજો કોશ अनेकार्थसंग्रह–જે છ કાંડમાં છે અને એક શ્રુતિ (Syllable) થી શરૂઆત કરી છ શ્રુતિ સુધીના આદ્ય વર્ણથી લઈને વ્યંજનાન્ત સુધીના ક્રમે ગોઠવાયેલા શબ્દો આપે છે. આ કોશનો પણ ટીકાકારો વારંવાર ઉલ્લેખ કરે છે. ચોથો કોશ हैमलिङ्गानुशासन–જેમાં એકાર્થ અને અનેકાર્થ–એ બંને કોશોમાં આવેલા શબ્દોના લિંગભેદની સમજણ ભિન્ન ભિન્ન છંદબદ્ધ પદ્યોમાં સ્વોપજ્ઞ ટીકાસાથે આપેલી છે. તેવો જ પાંચમો કોશ 'उणादिसूत्र'–જે सिद्ध-हेमशब्दानुशासन અન્તર્ગત સૂત્રોની સાધનિકા પૂર્વક વૃત્તિસહિત છે. અને છઠ્ઠો देशी-नाममाला. આ કોશ વાસ્તવિકરીતે દેશી એટલે પ્રાકૃત ભાષાનો છે છતાં તેનું એક યા બીજી રીતે સંસ્કૃત સાથે નિકટ સંબંધ ધરાવતું મહત્ત્વ છે.

देशीनाममालाમાં દેશ્ય શબ્દોનો સંગ્રહ છે અને તે પ્રાકૃતભાષાના શબ્દોના વિકાસ ઉપર અપૂર્વ પ્રકાશ પાડે છે. હેમચંદ્ર પોતાના એ દેશ્ય કોશમાં અભિમાન ચિહ્ન, ગોપાલ, દેવરાજ, દ્રોણ, ધનપાલ, પાદલિપ્તાચાર્ય, રાહુલક અને શીલાંક નામના પુરાતન દેશીકોશકારોનાં નામોનું સ્મરણ કરે છે. છતાં તેમાંના ધનપાલના पाइअलच्छीनाममाला સિવાયનો બીજા કોઈનો કોઈ ગ્રંથ અસ્તિત્વ ધરાવતો નથી. આ કોશની રચના આધુ-નિક પદ્ધતિ મુજબ અકારાદિ ક્રમથી થયેલી છે. તેમાં એક અક્ષર, દ્વિ અક્ષર વગેરેનો ક્રમ છે. જે અક્ષરથી આરંભ થનાર શબ્દ જ્યાં ગણાવામાં આવ્યો છે ત્યાં તેવા નાનાર્થ શબ્દો પણ સંગ્રહ્યા છે. ત્યાં જેટલાં ઉદાહરણ એક ગાથામાં આવી શકે તેટલાંને ઠાંસીને ભરવામાં આવ્યાં છે. આમાંનાં કેટલાક શબ્દો તો તે સમયના રીતરિવાજ અને વિનોદના પણ સૂચક છે.

આ કોશની સ્વોપજ્ઞ–ટીકામાં [૩૪]ધનપાલ કવિની पाइअलच्छीनाममाला–જે તેણે પોતાની બહેન સુંદરી માટે ઈ. સ. ૯૭૨ માં રચેલી છે, તેનો ઉપયોગ શ્રીહેમચંદ્રે ખૂબ કર્યો છે. અને ધનપાલને [૩૫]व्युत्पत्तिर्धनपालतः કહીને ખૂબ સન્માન્યા છે.

એ પછી ધનંજય કવિની नाममाला છે–જે ઈ. સ. ૧૧૨૩ થી ૧૧૪૦ ના અરસામાં રચાયેલી છે. તેમાં એકાર્થના ૨૦૦ અને અનેકાર્થના ૫૦ મળીને ૨૫૦ શ્લોકોમાં અત્યંત પ્રચલિત શબ્દોને સરસ રીતે સંગ્રહવામાં આવ્યા છે.

---

૩૪ "तिलकमञ्जरी" વગેરેના કર્તા ધનપાલ માટે જુઓ–"प्रभावकचरित"માંનો महेन्द्रसूरिप्रबन्ध અને "જૈનસાહિત્ય સંશોધક" ખંડ ૩ નો અંક ૩ પૃ. ૨૫૦.

૩૫ "अभिधानचिन्तामणि" કોશની વિવૃત્તિના મંગલાચરણનો શ્લોક ૩.

એ પછી જૈન વિદ્વાનોએ રચેલા કોશોમાં विश्वलोचन કોશ અને સાધુસુંદરગણિનો शब्दरत्नाकर કોશ પણ ગણાવી શકાય.

ત્યારપછી મહેશ્વરનો विश्वप्रकाश સને ૧૧૧૧, મંખનો સ્વોપજ્ઞટીકાયુક્ત अनेकार्थ कोश સને ૧૧૫૦ નો છે; જેમાં અમર, શાશ્વત, હલાયુધ, અને ધન્વંતરિ વગેરેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. જો કે આ કોશ કંઈક પાછળનો છે. તે પછી કેશવસ્વામીનો नानार्थार्णवसंक्षेप લગભગ સને ૧૨૦૦ માં રચાયેલો છે. અને ચૌદમી સદીના મેદનીકારનો अनेकार्थशब्दकोश અને હરિહર રાજાના અધિકારી વર્ગના વિદ્વાન ઈરુગુપ્તે રચેલી नानार्थरत्नमाला ગણાવી શકાય. આ બંને કોશોનો કાવ્યાદિના ટીકાકારો વારંવાર ઉલ્લેખ કરે છે.

અનિશ્ચિત સમયના, પણ વિવિધ વિષયો પર પ્રકાશ પાડનારા બીજા કોશો પણ રચાયેલા આપણને ઉપલબ્ધ થાય છે. તેમાં એક શ્રુતિવાળા एकाक्षर કોશો અથવા જુદા જુદા રૂપોવાળા શબ્દોના द्विरूप અથવા त्रिरूप કોશો ગણાવી શકાય.

જ્યારથી યુરોપીય વિદ્વાનોએ સંસ્કૃત સાહિત્યનો પરિચય કરવા માંડ્યો ત્યારથી પશ્ચિમની નવી પદ્ધતિ મુજબ શબ્દોને તરત ગોતી કાઢી શકાય તેવા સંસ્કૃત કોશો રચાવા માંડ્યા અને ધીમે ધીમે તેમાં ખૂબ વિકાસ થયો. અને કયો શબ્દ ક્યા કાવ્યાદિ ગ્રંથમાં વપરાયો છે તેના ઉલ્લેખ (Reference) યુક્ત કોશો પણ પ્રકટ થયા. આમ ધીમે ધીમે ભારતવર્ષની પ્રત્યેક પ્રાન્તીય ભાષામા સંસ્કૃત ભાષાના અર્થો સૂચવતા અનેક કોશો બહાર પડ્યા છે અને પડતા જાય છે. પરંતુ એ બધામાં સૌથી પહેલું અમર નામ અને સ્થાન अमरकोषનું રહે છે અને રહેશે એમાં શંકા નથી.

*

भागवत विषेनुं चर्चापत्र

*

[ભારતીય વિદ્યાના ૨ જા અંકમાં પ્રકટ થયેલા, શ્રીમતી કુમારી સુશીલા મહેતાના **'વલ્લભાચાર્ય અને તેમનો સંપ્રદાય'** એ લેખમાંના કેટલાક વિચારો સામે, સંપ્રદાય પ્રેમી કેટલાક સજ્જનોએ પોતાનો વિરોધાત્મક અભિપ્રાય વ્યક્ત કરવા–કરાવવા જે પ્રયત્ન કરેલો તે વિષે એક ખુલાસો અમે ગયા અંકમાં કર્યો છે. એ ખુલાસાને વાંચી અમદાવાદ નિવાસી શ્રીયુત ગોવિંદશરણદાસે, એ મૂળ લેખના વિચારો વિષે એક ચર્ચાપત્ર લખી મોકલ્યું છે અને તેને ભારતીય વિદ્યામાં પ્રકટ કરવાની અમને વિનંતી કરી છે. તેમણે પત્રમાં જણાવ્યું છે કે–"છેલ્લા અંકમાં સંપાદક તરીકે આપે યોગ્ય ન્યાય આપવાની જે પ્રતિજ્ઞા કરી છે એ ધ્યાનમાં રાખી હું મારો પક્ષ એ લેખપરત્વે અહીંયા રજુ કરૂં છું. આપને યોગ્ય લાગે તો એને ચર્ચા તરીકે ભારતીય વિદ્યામાં સ્થાન આપશો. અગર તો ઉક્ત લેખિકા બ્હેનને એ વાંચવા આપશો, કે જેથી એમના ભ્રમનું નિવારણ થાય અને સંપ્રદાય અંગે ગેરવાજબી માહિતી વધુ ફેલાતી અટકે." તેમની એ ઇચ્છાનુસાર અમે તેમની એ નોંધ શ્રીમતી કુમારી સુશીલા બ્હેનને વાંચવા આપી, અને તેમણે વળી ભાગવત આદિ સંપ્રદાયોના વિશિષ્ટ અભ્યાસી અને વિદ્વાન્ લેખક સાક્ષર શ્રી દુર્ગાશંકરભાઈ કે૦ શાસ્ત્રીને પણ એ વાંચવા આપી. શાસ્ત્રીજી ભાગવત શાસ્ત્રના મર્મજ્ઞ વિદ્વાન્ હોઈ, ભારતીય વિદ્યા ભવનના એ વિષયના સંમાન્ય અધ્યાપક છે અને એમની સાથે જ શ્રીમતી કુ૦ સુશીલા મહેતા પોતાનું સંશોધન કાર્ય કરે છે. અમારી વિનંતીથી શાસ્ત્રીજીએ એ આવેલા ચર્ચાપત્ર વિષે પોતાની એક ટુંકી નોંધ લખી આપી છે, જેથી વાચકોને એ વિષયમાં શાસ્ત્રીજીનો શો અભિપ્રાય છે તે પણ જાણવા મળી શકે.

આ નીચે શાસ્ત્રીજીની એ નોંધ અને તે સાથે શ્રીયુત ગોવિંદશરણદાસનું ચર્ચાપત્ર બંને પ્રકટ કરિએ છીએ. આ અંગે હવે પછી, તેવા ચર્ચાપત્રોને, નિરર્થક પિષ્ટપેષણ કરનારા સમજી, ભા૦ વિ૦ માં સ્થાન આપવામાં નહિ આવે, તે લક્ષ્યમાં રાખવા નિવેદન છે. **–સંપાદક**]

શાસ્ત્રીજી શ્રી દુર્ગાશંકર કે૦ ની નોંધ–

શ્રી ગોવિન્દશરણદાસનું ચર્ચાપત્ર અહીં છાપવામાં આવે છે તે તેના લેખકને ન્યાય આપવા ખાતર. બાકી એમણે જે દૃષ્ટિબિન્દુ રજુ કર્યું છે તે સાંપ્રદાયિક છે અને એ સાંપ્રદાયિક મંતવ્ય શ્રી સુશીલા બ્હેનના કે અમારા જાણવામાં નથી એમ નથી. શ્રી વલ્લભાચાર્ય અને પુષ્ટિ સંપ્રદાય એમ જ માને છે કે શ્રીભાગવતનું યથાર્થ રહસ્ય શ્રી વલ્લભાચાર્યે જ દર્શાવ્યું છે. પણ બીજા આચાર્યો અને ટીકાકારોનો એથી જુદો મત છે એ હકીકત જ બતાવે છે કે મતભેદનું કારણ છે. અને અમારી–ભારતીય વિદ્યા ભવનની દૃષ્ટિ સાંપ્રદાયિક નહિ પણ તટસ્થ ઐતિહાસિક છે. એ દૃષ્ટિને અનુસરીને ભાગવત ધર્મના ઇતિહાસની ગવેષણાનું કાર્ય કરતાં શ્રી સુશીલા બ્હેનની તટસ્થ

દૃષ્ટિને કોઈ ઠેકાણે, શ્રી વલ્લભાચાર્ય કરતાં શ્રીધર બોપદેવ ભાગવતના તાત્પર્યની વધારે નિકટ છે, એમ જણાય તો એમાં સાંપ્રદાયિકોએ વાંધો લેવા જેવું કશું જ નથી. એમની દૃષ્ટિ જ સાંપ્રદાયિક નથી. તે તે સંપ્રદાયના અનુયાયીઓ પોતપોતાના સાંપ્રદાયિક મન્તવ્યને જ યથાર્થ માને એમાં અમને—ઐતિહાસિકોને કશો જ વાંધો નથી. આટલા ખુલાસાથી ચર્ચાપત્રના લેખકના મનનું સમાધાન થશે, એવી આશા છે.

*

શ્રીયુત ગોવિંદશરણદાસનું ચર્ચાપત્ર—

ભારતીય વિદ્યાના અંક બીજાના ૧૫૩ મા પાના પર, ચોથા ફકરામાં લેખિકા બહેન લખે છે કે—જો કે વલ્લભે ભક્તિના સિદ્ધાંતો ભાગવતમાંથી તારવ્યા છે, છતાં પણ ભાગવતની ભક્તિ પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન છે. ભાગવત ગોપીઓની ભક્તિને સર્વોત્તમ માનતું નથી. તેમાં તો ગોપીઓના વર્તન માટે બચાવનો પ્રયાસ જોવામાં આવે છે. ત્યારે પુષ્ટિમાર્ગમાં તો ગોપીઓની જ ભક્તિ આદર્શ ગણાય છે.

આ વિચારો સામે હું વાદ રજુ કરૂં છું. હું વલ્લભમતાનુયાયી વૈષ્ણવ છું. સ્વમતના સંસ્થાપન અર્થે શ્રીવલ્લભે શ્રીવ્યાસની સમાધિભાષારૂપ શ્રીમદ્‌ભાગવતને એક પ્રમાણ ગ્રંથ તરીકે સ્વીકાર્યો છે. (જૂઓ તત્ત્વાર્થદીપ નિબંધ) આ જ ગ્રંથમાં એઓ એક વધુ પ્રતિજ્ઞા કરે છે કે—એક શાસ્ત્ર અને તે દેવકીપુત્રનું ગીત છે. દેવકીનો પુત્ર એ જ એક દેવ છે, દેવકીપુત્રનાં નામો એ જ એક મંત્ર છે અને કર્મોમાં કર્મમાત્ર હોય તો તે દેવકીપુત્રની સેવા છે. હું અત્ર એવો આગ્રહ રાખું છું કે દેવકીપુત્ર કૃષ્ણના મહાત્મ્યનું વર્ણન શ્રીમદ્‌ભાગવત સિવાય અન્ય કોઈ પુરાણમાં નથી. લેખિકા બહેન લખે છે કે—'જો કે વલ્લભે ભક્તિના સિદ્ધાંતો ભાગવતમાંથી તારવ્યાં છે, છતાં.—' આનો અર્થ એવો માલૂમ પડે છે કે આગલા ફકરામાં એમણે શ્રી દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રીના એક ગ્રંથનું અવતરણ આપ્યું છે એને જ સ્વીકારી તેઓ પોતાનો વિચાર રજૂ કરે છે. ભાગવતની ભક્તિ પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન હોવાનો વાદ કરતાં એ બહેને પોતાના વિચારને સમર્થ કરનારૂં એક્કેય ઉદાહરણ આપ્યું નથી. હું અત્ર એ કર્તવ્ય હાથ ધરૂં છું.

શ્રીવલ્લભ પોતતાની ભક્તિવ્યાખ્યા રજૂ કરતાં કહે છે—મહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક સુદૃઢ અને સર્વતોઽધિક જે સ્નેહ પ્રભુપ્રત્યે જામે એ જ ભક્તિ. આવી ભક્તિ કરનારાઓને મુક્તિની કોઈ ચાહના નથી. શ્રીભાગવતનો દશમસ્કંધ વાંચવામાં આવે તો એટલું સ્પષ્ટ થશે કે વ્રજાંગના અને વ્રજજનોએ આ પ્રકારની ભક્તિનો જ આશ્રય લીધો છે અને એટલે જ શ્રીકૃષ્ણે એ સ્કધના ૨૫મા અધ્યાયના ૧૮ મા શ્લોકમાં પ્રતિજ્ઞા કરતાં કહ્યું છે કે જેમણે મારૂં શરણ ગ્રહી મને નાથ તરીકે સ્વીકાર્યો છે એવાનું રક્ષણ કરવાનું મારૂં વ્રત છે. આ એક શ્લોક એટલું બધું ગોપગોપીઓના સ્નેહનું નિરૂપણ કરે છે કે: ભાગવત ગોપીઓની ભક્તિને સર્વોત્તમ માનતું નથી એમ કહેવું એક ભાગવત ધર્મના રીસર્ચ ફેલો માટે સંપૂર્ણ અજ્ઞાન બતાવનારૂં કહેવાય. મારૂં તો એ વ્રત છેઃ એવી આગ્રહપૂર્વકની પ્રતિજ્ઞા ભાગવતમાં સૂચવાયલા કોઈપણ ભગવદવતાર સ્વરૂપ પાસે ભાગવતકારે કરાવી નથી એમ મને મારૂં નિત્યનું અધ્યયન અને પઠન અનુમાન બાંધવા પ્રેરે છેઃ એટલું ચોક્કસ કે હું શ્રદ્ધાળુ છું—રીસર્ચ ફેલો નથી.

વાટ આડી ફંટાઈ પણ, દશમસ્કન્ધના પૂર્વાર્ધના શરૂઆતના અધ્યાયોમાં શ્રીકૃષ્ણની જે વ્રજલીલાઓનું નિરૂપણ છે એ બધીજ લીલાઓને પ્રમાણ તરીકે સ્વીકારી શ્રીવલ્લભસૂચિત ભક્તિમાર્ગની કૃષ્ણસેવાપ્રણાલિ રચાયેલી છે. વલ્લભસૂચિત ભક્તિમાર્ગની સેવાપ્રણાલિમાં દિવસના આઠેય પ્હોર વ્રજજનનો નિત્યનો કાર્યક્રમ સૂચવનારાં રહ્યાં છે. એ માર્ગનાં વ્રતોત્સવો પણ વ્રજજનોના વ્રતોત્સવો જ છે. શ્રીકૃષ્ણને ગૂંજા – ચણોઠી જેવાં ધાન્યનાં શૃંગાર અને કાચનાં આભરણ જેવાં ગ્રામજનોનાં શૃંગારનો ઉલ્લેખ પણ ભાગવતમાં છે. કુંડવારો, નવધાન્યનો ઉત્સવ વગેરે ઉત્સવો પણ ગોપજનોના જ ઉત્સવો છે અને દશમસ્કંધમાં એનું સર્વત્ર નિરૂપણ કરવામાં આવેલું છે. શ્રીભાગવતના ઇતર સ્કંધોમાં ભગવત્સ્નેહ પ્રાપ્તિ માટે આટલો સરળ એકેય માર્ગ નિરૂપવામાં નથી આવ્યો અને એટલે જ નવધાભક્તિથી આ ગોપીજન સૂચિત સેવામાર્ગને શ્રીવલ્લભે નિજ સેવ્ય ભક્તિમાર્ગ સ્વીકાર્યો અને પ્રબોધ્યો.

શ્રીવલ્લભે કૃષ્ણના જેટજેટલાં લીલાસ્વરૂપને પોતાના ભક્તિમાર્ગમાં અપનાવ્યાં છે એ સર્વ ભાગવત કથિત છે. પંચમસ્કંધમાં પ્રચેતાઓએ પ્રભુની સ્તુતિ કરી અને પ્રભુએ એમને અષ્ટાયુધ સજ્જ સ્વરૂપે જે રાજસસ્વરૂપનું દર્શન આપ્યું એ સ્વરૂપનું પણ સેવાસ્વરૂપ તરીકે એમના ભક્તિમાર્ગમાં સ્થાન છે. ભાગવતમાં સૂચવ્યા ચતુર્ભુજ સ્વરૂપો જ આ સંપ્રદાયમાં ગણાયા છે. ટૂંકમાં સંપ્રદાયનું મૂર્તિવિધાનશાસ્ત્ર પણ શ્રીભાગવતને અનુલક્ષીને જ છે. શ્રીભાગવતના અગીયારમા સ્કંધના ૨૭ મા અધ્યાયમાં આઠ પ્રકારના સાધનો – પદાર્થોમાંથી મૂર્તિ તૈયાર કરવાનું કહ્યું છે અને એ મુજબ જ આ સંપ્રદાયમાં સ્વરૂપો સિદ્ધ કરવામાં આવ્યા છે.

આટલો વાદ રજૂ કર્યા પછી પણ હું એક વસ્તુ તરફ લેખિકા બહેનનું ધ્યાન ખેંચવા માંગું છું. શ્રીબોપદેવ અને શ્રીધરનો ગમે તે મત હોય પણ એઓ શ્રીભાગવતના ચૂસ્ત અભ્યાસી ન હોતા – એમ માનવાને મને કારણ છે. ચોક્કસ ગ્રંથની ટીકા રચવાથી એ ગ્રંથનું હાર્દ પચાવી ગયા હોવાનું આપણે માનવા તૈયાર નથી થતા; પણ શ્રીભાગવતને પ્રાણરૂપ ગણનાર શ્રીવલ્લભની ભાગવતને વફાદાર રહેવાની બીના માટે શંકા નથી રહેતી. એ માર્ગમાં અપાતો બ્રહ્મસંબંધમંત્ર એ એનો પૂરાવો છે. નિત્ય ભાગવતનો અભ્યાસ કરનાર એ આચાર્યો કીટભ્રમર ન્યાયે ભાગવતમાંથી ગદ્યમંત્રરૂપ ફલ મેળવ્યું કહી શકાય. બારેય સ્કંધનો સાર, નવે પ્રકારની ભક્તિ અને જીવ – શિવનો સંબંધ જે મુંડકના પ્રથમ ખંડમાં દર્શાવાયા છે અને જે શ્રીભાગવતના એકાદશ સ્કંધના અગીયારમા અધ્યાયમાં સુપર્ણાવેતૌ સદૃશૌ સખાયૌ – વાળા શ્લોકમાં સ્પષ્ટપણે તારવી બતાવાયા છે – એનું જ હાર્દ આ ગદ્યમંત્ર છે. આમ છે તો શ્રીવલ્લભસૂચવી પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તિ ભાગવતની ભક્તિથી અનેકધા ભિન્ન છે એમ કહેવું એ વધુ પડતું સાહસ નથી શું ?

*

व्युत्पत्तिशास्त्र अने संस्कृत-प्राकृत शब्दो

ले० — अध्यापक, पं० श्री बेचरदास, जी०, दोशी

*

व्युत्पत्तिशास्त्र, भाषाशास्त्रनुं एक महत्त्वनुं अंग छे. ते, शब्दोनुं मूळ शोधी बतावी शब्दना मौलिक अर्थने प्रगट करे छे. जगतमां, व्यवहारमां आवता एवा अनंत पदार्थो — भावो — वस्तुओ — सत्त्वरूप द्रव्यो विद्यमान छे के जेओ पोतपोतानी स्वतंत्र संज्ञा — नाम — आख्या — अभिधा धरावे छे. जेटला पदार्थो छे तेटला वा तेथी य वधारे तेमना व्यवहारनां नामो छे, अने ए नामो साथे तेमनो वाच्य-पदार्थ कोई ने कोई प्रकारे संबंध पण धरावे छे.

जगतमांथी नामोने बाद करिए तो एक ज क्षणमां जगत् आखुं शून्य थई जाय. ए माटे ज केटलाक तत्त्वज्ञानिओ जगतने नामरूप ज माने छे. महान शब्दशास्त्री भर्तृहरि तो त्यांसुधी कहे छे के आ जगत ए तो शब्दोना विवर्तरूप छे — जगतनुं मूळ कारण शब्दो छे. शब्दो खसी जाय तो पछी जगत जेवुं कशुं रहेतुं नथी.

एक रीते विचारिए तो भर्तृहरिनी वात खोटी पण नथी. जगतमांथी भाषाने काढी नाखवामां आवे तो पछी जगत् अने निर्वाण ए बेमां कशो ज भेद नहीं देखाय.

प्राचीन अने अर्वाचीन वैज्ञानिकोए शरीरनुं, मननुं, वृत्तिओनुं, बुद्धिनुं, इंद्रियोनुं अने पंच महाभूतोनुं पृथक्करण करी तेमना गुणदोषो विशे वा तेमना स्वरूप के स्वभाव विशे अमुक निर्णयो करी राख्या छे; तेम वैयाकरणोए पण जगतनी अस्तिताना आधारस्तंभ शब्दोना मूळोनुं पृथक्करण करी, तेमना मूळस्वरूप विशे, मूळ अर्थो विशे, अने शब्दो अने तेमना वाच्य भावो वच्चे कया प्रकारनो संबंध होई शके — एवी अनेक हकीकतो विशे अमुक सिद्धांतो घडी राख्या छे; अने ए सिद्धांतो आपणा ख्यालमां बराबर आवे ए रीते तेओ पोतपोताना शब्दशास्त्रमां नोंधता पण गया छे.

ए बाबतनो रसिक जिज्ञासु उपमन्यु, वार्ष्यायण, यास्क, व्याडि वगेरेनां वचनोने विचारशे तो भारतीय शब्दशास्त्र तरफ जरूर ते गौरवभरी रीते वर्तशे.

१.४.८.

शब्दना स्वरूप विशे प्राचीन विचारको अनेक मतो धरावे छे. तेम शब्द अने अर्थ वच्चेना संबंध बाबत पण तेओनी विविध विचारधाराओ वहेली छे. एमना ए विविध मतो प्रस्तुत लेखमां चर्ची शकाय तेम नथी. ए मतो साथे पौरुषेयवाद अपौरुषेयवाद जेवा विशेष सूक्ष्म सिद्धांतो अने ए सिद्धांतोनो मूळ इतिहास संकळाएलो छे; एटले एवी बधी सूक्ष्म तर्कनी चर्चाओ प्रस्तुतमां अरोचक नीवडे छतां शब्दार्थ-संबंधनी जे हकीकत तद्दन व्यवहारू छे तेने अहीं जणावी दउं छुं.

प्रत्येक शब्दनुं प्रवृत्तिनिमित्त जुदुं जुदुं होय छे अने एटला पूरतो ए शब्द पोत-पोतानो स्वतंत्र एवो जुदो जुदो अर्थ धरावे छे. कोई शब्दनुं प्रवृत्तिनिमित्त 'गुण' छे, बीजा कोई शब्दनुं प्रवृत्तिनिमित्त 'क्रिया' छे; त्यारे वळी एवा पण अनेक शब्दो छे जेमनुं प्रवृत्तिनिमित्त 'अमुक प्रकारनो संबंध' छे.

'महादेव' अर्थ माटे 'नीलकंठ' शब्द प्रचलित छे. जेनो कंठ नीलो छे ते नीलकंठ, ए रीते 'नीलकंठ' शब्दनुं प्रवृत्तिनिमित्त कंठनी नीलता — नीलसर गुण छे. ए ज प्रमाणे 'रावण' माटे 'दशमस्तक' शब्द वपराय छे. तेनुं प्रवृत्तिनिमित्त मस्तकनी दश संख्या — संख्यारूप गुण छे. आवा बधा शब्दो गुणप्रवृत्तिनिमित्तक कहेवाय.

'रसोया' माटे 'पाचक' अने 'देखनार' माटे 'द्रष्टा' शब्द वपराय छे. पच् एटले पकाववुं — रांधवुं अने दृश् एटले दर्शन करवुं — नजरे जोवुं. जे रांधनो होय ते 'पाचक' कहेवाय अने नजरे जोनो होय ते 'द्रष्टा' गणाय. देवनी सेवा करनार माटे 'पूजारी' अने मागी खानार माटे 'भीखारी' शब्द चालु छे. पूजा+कारी — पूजा करे ते पूजारी अने भिक्षा+कारी — भिक्षा करे ते भीखारी. द्यूत+कारी — जुआरी — जुगटुं रमनारो. एम ए बधा शब्दो क्रियाप्रवृत्तिनिमित्तक छे. कुंभ+कार — कुंभार. चर्म+कार — चमार. लोह+कार — लुहार. सुवर्ण+कार — सोनार. कांस्य+कार—कंसारो. आवा क्रियाप्रवृत्तिनिमित्तक शब्दो भाषामां खूब खूब प्रचलित छे.

त्रीजा प्रकारना शब्दोनुं प्रवृत्तिनिमित्त 'संबंध' होय छे — भूपति, मणिधर, दंडी, संन्यासी, वगेरे. भू एटले भों—पृथ्वी, तेनो पति ते भूपति — राजा. भों अने राजा ए बेमां भों 'स्व' छे अने राजा तेनो 'स्वामी' छे, एटले ए बे वच्चेनो स्व-स्वामिभावनो संबंध 'भूपति' शब्दनुं प्रवृत्तिनिमित्त छे. मणिधर एटले मोटो सर्प. मणि

ए धार्य छे अने सर्प तेनो धारक छे एटले मणि अने सर्प वच्चे धार्यधारकभावनो संबंध 'मणिधर' शब्दनुं प्रवृत्तिनिमित्त छे. 'दंडी' शब्दमां पण ए ज प्रमाणे समजवानुं छे.

आवा प्रकारना संबंधो पारविनाना छेः स्वस्वामिभाव (भूपति), जन्यजनकभाव (विश्वविधाता), धार्यधारकभाव (चंद्रशेखर), भोज्यभोजकभाव (मधुपभ्रमर), भर्तृकलत्रभाव (गौरीवर अथवा शिवकान्ता), मित्रताभाव (मधुमित्र—कामदेव अथवा अर्जुनसखा-कृष्ण), वाह्यवाहकभाव (वृषासन — महादेव), सगपणनो भाव (पर्वतपुत्री — पार्वती), आश्रयाश्रयिभाव (शेषशायी — कृष्ण), वध्यघातकभाव (मुरनो अरि — कृष्ण). उक्त संबंधो उपरांत बीजा पण संख्यातीत संबंधो शब्द अने अर्थ वच्चे योजी शकाय एम छे परंतु अहीं ते बधा संबंधो लखी न शकाय.

साधारण रीते उक्त त्रण प्रवृत्तिनिमित्तोमांथी गमे ते एकने आधारे शब्दनी प्रवृत्ति थया करे छे. बोलनार भले ए हकीकत न जाणतो होय तो पण शब्द पोतानी शिस्तनो भंग नथी करतो. जे शब्दो यादृच्छिक छे एटले अर्थदृष्टिए जेमनुं प्रवृत्तिनिमित्त गुण, क्रिया के संबंध नथी होतां तेवा शब्दोना अर्थो माटे केवळ रूढिनो आधार छे — अर्थात् एवा शब्दो उक्त प्रवृत्तिनिमित्तने अनुसरता नथी. कोई व्यक्तिना नाम माटे वपरातो 'रणछोड' शब्द अथवा एवा बीजा 'जगजीवन' 'उमाशंकर' वगेरे शब्दो यादृच्छिक छे.

उक्त प्रवृत्तिनिमित्तोवाळा शब्दो उपरांत बीजा केटलाक शब्दो काळदर्शक छे, तेमनुं प्रवृत्तिनिमित्त काळ छे अने एवा बीजा पण संख्यातीत शब्दो छे जेमनी साधना धातुओद्वारा समजावी शकाय एम छे.

कहेवानुं तात्पर्य ए के शब्दोनी व्युत्पत्तिओ बतावतां आपणा प्राचीन वैयाकरणोए उक्त साधनोमांथी गमे ते एकने मुख्य राखी शब्दोनुं पृथक्करण करी बताव्युं छे; परंतु ज्यां तेओने उक्त साधनोमांनुं एके निमित्त जड्युं नथी त्यां तेओए आदेशो, निपातो अने कल्पित प्रत्ययोनो आधार लई शब्दोनी निष्पत्ति समजावी छे.

हमणां हमणां भाषानुं शास्त्र ठीक ठीक खेडातुं आवे छे; अने एक बीजी भाषाओ वच्चेनी तुलनात्मकदृष्टिने प्रधानपणुं आपनारो अभ्यास वधवा लाग्यो छे.

तेथी केटलीक एवी तर्कणाओ सूझी आवी छे के जेमनो आधार लईए तो आदेश, निपात के प्रत्ययोनी बनावटी कल्पना कर्या विना पण शब्दोनी व्युत्पत्ति समजी शकाय एम छे.

आ नीचे केटलाक एवा शब्दोनी व्युत्पत्ति चर्चवानी छे के जे शब्दो माटे वैयाकरणोए आदेश, निपात के प्रत्ययोनी बनावटी कल्पना करी राखी छे.

संस्कृत भाषामां, परेद्यवि अद्य पूर्वेद्युः अन्येद्युः अन्यतरेद्युः इतरेद्युः अपरेद्युः अधरेद्युः उभयेद्युः उभयद्युः अने उत्तरेद्युः – वगेरे शब्दो काळदर्शक छे. परेद्यवि – परम दिवसे अथवा तेनाथी पण आगळना दिवसे. अद्य – आ दिवसे – आज. पूर्वेद्युः – पूर्व दिवसे – आगला दिवसे. अन्येद्युः – अन्य दिवसे – बीजे दिवसे. अन्यतरेद्युः – बीजा – बेमांना – गमे ते एक दिवसे. इतरेद्युः – इतर – बीजे – दिवसे. अपरेद्युः – अपर – बीजे – दिवसे. अधरेद्युः – अधर–बीजे – दिवसे. उभयेद्युः के उभयद्युः – उभय – बन्ने – दिवसे. उत्तरेद्युः – उत्तर – पछीना – दिवसे.

उक्त अर्थो जोतां परेद्यवि वगेरे शब्दोमांना आगला पर पूर्व अन्य वगेरे शब्दो 'परम' 'पूर्व' 'अन्य'ना अर्थने सूचवे छे अने पाछलो द्य, द्युः के एद्युः शब्द दिवसना अर्थनो वाहक छे.

ए बधा शब्दोनी निष्पत्ति माटे वैयाकरण पाणिनि कहे छे के "सद्यः – परुत् परारि – ऐषमः – परेद्यवि – अद्य – पूर्वेद्युः – अन्येद्युः – इतरेद्युः – अपरेद्युः – अधरेद्युः – उभयेद्युः – उत्तरेद्युः – (५–३–२२ काशिका) सप्तम्याः काल इति वर्तते। सद्यः प्रभृतयः शब्दाः निपात्यन्ते। प्रकृति-प्रत्यय-आदेशः कालविशेषः इति सर्वमेतद् निपातनाद् लभ्यते" – (काशिकावृत्ति) अर्थात् 'सद्यः' थी मांडीने 'उत्तरेद्युः' सुधी बधा शब्दो अमुक काळ विशेषना सूचक छे अने ते बधानी सिद्धि निपात द्वारा थाय छे.

ए शब्दोमां पाणिनिने क्यां य 'द्य' 'एद्युस्' के 'द्युस्' एम जुदा जुदा त्रण प्रत्ययोनी कल्पना करवी पडी छे. 'अद्य'नो अ+द्य, 'पूर्वेद्युः'नो पूर्व+एद्युस्, अने 'उभयद्युः'नो उभय+द्युः एवो विभाग कल्पेलो छे.

अहीं विचारणीय तो ए छे के आ, पूर्व, पर वगेरे अर्थोना वाहक 'अ' 'पूर्व' 'पर' वगेरे शब्दो सुप्रतीत छे, परंतु 'द्य' 'एद्युस्'के 'द्युस्' प्रत्ययनो 'दिवस' अर्थ शी रीते समजवो ?

व्युत्पत्तिशास्त्रनो आश्रय लई विचार करीशुं तो स्पष्ट जणाशे के ए बधा 'अद्य' वगेरे शब्दोमां अमुक भाग प्रकृति छे अने अमुक भाग प्रत्यय छे — एवो विभाग करवा करतां ए शब्दो बे पदोना समासद्वारा बनेला छे एम कहेवुं वधारे युक्तिसंगत छे — अर्थात् ए शब्दो कोई अखंडपदरूप नथी परंतु जुदा जुदा बे स्वतंत्र शब्दना बनेला एवा सामासिक शब्दो छे.

जेम 'राजपुरुष' के 'नीलोत्पल' शब्दो कोई अखंडपदरूप नथी परंतु 'राज' अने 'पुरुष' तथा 'नील' अने 'उत्पल' एवा बे जुदां जुदां पदोना समासद्वारा राजपुरुष अने नीलोत्पल शब्दो बनेला छे, ते ज रीते पूर्वे अने द्युः, उभय अने द्युः, अपर अने द्युः एवा बे जुदां जुदां पदोना समासद्वारा पूर्वेद्युः उभयद्युः अने अपरेद्युः वगेरे शब्दो नीपजेला छे. पूर्वे वगेरे छेडे एकारवाळां पदो सप्तमी विभक्तिवाळां छे अने तेमनो 'द्युस्' साथे समास थतां पण ते विभक्ति कायम रही छे. जेम भस्मनि+हुतम्, कण्ठे+कालः, वने+वासी वगेरे शब्दोमां पूर्वपदनी सातमी विभक्ति कायम रहे तेम अहीं 'पूर्वेद्युः' वगेरेमां पण पूर्वपदनी विभक्ति कायम रहे तेमां कोई बाध आवतो नथी.

निरुक्तकार यास्काचार्ये पोताना निरुक्तमां ज्यां 'दिवस'ना समानार्थक शब्दो आप्या छे त्यां 'द्यु' शब्दने पण 'दिवस' वाची तरीके स्पष्टपणे बतावेलो छे.

"अथ अहर्-नामानि — वस्तोः द्युः भानुः वासरम् स्वसराणि घ्रंसः धर्मः घृणः दिनम् दिवा दिवेदिवे द्यविद्यवि इति द्वादश अहर्-नामानि" — (पृ. १५२ अ. २ खं. २१ वेंकटेश्वर प्रेस)

आचार्य हेमचंद्र पण 'द्युः'ने 'दिवस'नो समानार्थक कही नीचे प्रमाणे जणावे छे. "द्युर् दिने वह्नौ" — (अनेकार्थसंग्रह कांड १० श्लो. ११)

तथा

"तत्र अहर् दिवसः दिनम्, दिवं द्युर् वासरो घस्रः ।"

(हैम-अभिधानचिंतामणि, कां० २, श्लो० ५२)

उपर जणाव्या प्रमाणे 'दिवस'नो वाचक 'द्युः' शब्द उपलब्ध छे अने तेनी साथे 'पूर्व' वगेरे शब्दोनो समास करतां 'पूर्वेद्युः' 'उभयद्युः' वगेरे बधां पदो नीपजी जाय छे, तेथी करीने द्य, द्युस् के एद्युस् एवा कोई प्रत्ययने कल्पवानी जरूर नथी.

'अद्य'मां ए 'द्यु' शब्द 'द्य' रूपे बोलायो छे. ए संबंधे यास्काचार्य पोते ज कहे छे के — 'अद्य अस्मिन् द्यवि । 'द्युः' इति अह्नो नामधेयम्' — (निरुक्त पृ. ४०) अर्थात् 'द्यु' ए 'दिवस'नो पर्याय छे अने 'आ' अर्थवाळा 'इदम्' शब्द साथे तेनो समास करतां 'अद्य' पद बने छे.

संस्कृतमां अमुक विभक्तिओमां — अयम् अनेन अस्मै अस्मात् अस्य अस्मिन् आभ्याम् एभिः — वगेरे रूपोमां 'इदम्' शब्द 'अ' ध्वनिने धारण करे छे; त्यारे अपभ्रंश भाषामां तो सर्व विभक्तिओमां 'इदम्'नो पर्याय 'आय' शब्द वपराय छे. प्रस्तुत 'अद्य'मां 'इदम्'नो 'अ' ध्वनि घटाववा करतां 'आय'नो 'अ' ध्वनि घटाववानी रीत विशेष पासेनी छे. अथवा इदम् अ अने आय ए त्रणे समानार्थक शब्दो घणा प्राचीन समयथी चाल्या आवता होय अने तेथी उक्त 'अद्य' माटे यास्के 'इदम्'ना पर्याय 'अ' ने गोठवेलो होय. जेवो आधार इदम् अने आयना अस्तित्वमाटे उपलब्ध छे तेवो आधार 'अ' माटे शोधवानो छे.

तात्पर्य ए के अद्य, पूर्वेद्युः, उभयद्युः वगेरे शब्दो माटे द्य, एद्युस् के द्युस् प्रत्ययने कल्पवानी जरूर नथी. परंतु ए बधा शब्दो सामासिक छे अने अ+द्यु, पूर्वे+द्यु, उभय+द्यु, ए प्रकारे तेमनो संयोग थवाथी ए अखंड जेवा बनेला छे.

हवे पछीना बीजा लेखमां वैयाकरणोए जे पदोने प्रत्ययरूपे कल्पेलां छे ते पदो खरेखरा प्रत्ययो छे के विशेष प्रकारनां नामो छे ए विशे विचारणा करवानी छे. वैयाकरणोनी दृष्टिए 'गोष्ठ', 'गोयुग', 'षड्गव', 'तैल', अने 'ठ' वगेरे प्रत्ययो छे त्यारे मारी दृष्टिए ए बधां विशेष प्रकारनां नामो छे; अने ए विशेष प्रकारनां नामो ज जते दिवसे प्रत्यय रूप थई गयां छे. ए संबंधे सविस्तर विचारणा हवे पछीना लेखमां करवामां आवशे.

*

केटलीक व्युत्पत्ति विषयक चर्चा

લે૦ — श्रीयुत हरिवल्लभ भायाणी, बी. ए.; रीसर्च स्कॉलर, भारतीय विद्या भवन

*

૧–'પરોણો'

કેટલાક વિદ્વાનોએ[1] ગુજરાતી 'પરોણો' સંસ્કૃત 'प्रहरणक०' માંથી સાધવા પ્રયાસ કર્યો છે. તેમનો સાધનક્રમ આ પ્રમાણે છેઃ प्रहरणक>पहरणउ>प्हरणउ>'પરોણો'. આમાં રહેલી, अ> વિવૃત ओ એ અસામાન્ય પ્રક્રિયા માટે, प्हरणउ ના र् પછી ह् નો પ્રક્ષેપ થઈ પરિણામે र નો 'રો' થયો હોય એવું તેઓ માને છે, અને આને મળતા ઉદાહરણ તરીકે प्रहर>पहरु>'પ્હોર' શબ્દ આપે છે.

પણ પં૦ બેચરદાસજીએ સૂચવ્યું છે તેમ 'પરોણો'ના મૂળ ઊગમસ્થાન તરીકે સં૦ *प्रतोदनक સ્વીકારવો એ વધારે ઉચિત લાગે છે. (૧) *प्रतोदनकं>*पडोअणअं (સર૦ પ્રા. पडि<सं. प्रति–)>*परोअणअं (સર૦ પા. પ્રા. सत्तरस<*सत्तडरा<सं. सप्तदश)>*परोअणउ>*परोणउ (સર૦ 'થોડું'<*थोडउं<*थोअडउं<*थोवडअं<*स्तोकटकम्)>'પરોણો': આ ક્રમ આગળના ક્રમ કરતાં વધારે શુદ્ધ છે. (૨) આમાં 'રો'ના 'ઓ'ની વિવૃતતા સમજાવવી પણ મુશ્કેલ નથી. શબ્દમાં, પૂર્વવર્તી 'એ,' 'ઓ' ઉપર તેમના અનુગામી નાસિક્ય ધ્વનિનું વજન પડતું હોય તો તેમનું વિવૃત ઉચ્ચારણ થાય છે એ ગૂજરાતીના ધ્વનિ-તંત્રનો એક જાણીતો નિયમ છે.[2] એટલે 'રો'ના 'ઓ'ની વિવૃતતા તેના અનુગામી ણકારને આભારી છે. (૩) 'પરોણો' એવું 'હ' શ્રુતિ વિનાનું સ્વરૂપ જ સાચું છે. 'હ' શ્રુતિવાળું સ્વરૂપ સં. प्राघुर्णकः માંથી ઉતરી આવેલા મહેમાન-વાચક શબ્દ માટે જ વપરાય છે. કોઈ સ્થળે લાકડી-વાચક 'પરોણો', હશ્રુતિ સહિત ઉચ્ચારાતો હોય તો તે મહેમાન-વાચક હશ્રુતિવાળા 'પરોણો'ના સામ્યને લીધે જ. એટલે હકાર સમજાવવાની જરુર રહેતી નથી. આમ ધ્વનિ-દૃષ્ટિએ *प्रतोदनक મૂળસ્વરૂપ તરીકે નિર્દોષ છે. બીજું, પ્રાચીનમાંથી મધ્યકાલીન ભૂમિકામાં કે મધ્યકાલીનમાંથી અર્વાચીન ભૂમિકામાં આવતાં કેટલાક ભારતીય-આર્ય ('ઇન્ડો-આર્યન') શબ્દોનાં લિંગ ફરી જાય છે એ પણ જાણીતી બિના છે.[3] એટલે વ્યાકરણની દૃષ્ટિએ પણ મૂળ નપુંસકલિંગી *प्रतोदनकम् માંથી પુલ્લિંગી 'પરોણો' થાય એ દોષયુક્ત ન ગણાય. છેલ્લે, મૂળ અને સાધિત સ્વરૂ-

---

૧ ચતુરભાઈ પુ. પટેલ "જૂની ગુજરાતી ભાષા" પા. ૩૪૮. કાન્તિલાલ બ. વ્યાસ "જર્નલ ઑફ ધ ગુજરાત રિસર્ચ સોસાયટી" એપ્રિલ, ૧૯૪૦.

૨ કેશવલાલ હ. ધ્રુવ: 'વાગ્વ્યાપાર'. નરસિંહરાવ આનો અસ્વીકાર કરે છે. ('ગુ. લે. એન્ડ લિ.' વો. ૧ પા. ૧૫૮–૬૧). પણ ચુનીલાલ વર્ધમાન શાહનું સમર્થનપ્રતીતિ-જનક છે. ('બુદ્ધિપ્રકાશ' એપ્રિલ, જૂન, ૧૯૩૪). તેમજ જુઓ 'જૂની ગુજરાતી ભાષા' પા. ૩૪૦.

૩ સરખાવો, હેમચંદ્ર–लिङ्गमतन्त्रम् (૮. ૪. ૪૪૫)

પોના અર્થ વચ્ચેનો સંબંધ તપાસતાં 'પરોણો' (='આરવાળી કે આર વિનાની લાંબી લાકડી') *प्रतोदनकथी (સર૦ સં. प्रतोदः, प्रतुदः "લાંબો ચાબુક, અંકુશ, ઘોંચવાનું હથિયાર") ખાસ ભિન્ન હોય એવું નથી લાગતું; જ્યારે તે प्रहरणक થી (='હથિયાર') પ્રમાણમાં વધારે દૂર છે.

ટર્નર ("નેપાલી ડિક્શનરી") પણ 'પરોણો'ના મૂળ-સ્વરૂપ તરીકે *प्रतोदन० આપે છે.

'પરોણો'નું સ્વરૂપાન્તર 'પરાણો' (સ્ત્રી. 'પરાણી') સમજાવવું બાકી રહે છે.

૨–'ચૌટું'

નરસિંહરાવ चतुर्वर्त्मकं>चउव्वट्टउं>चऊवटउं>"ચોટું" એવો ક્રમ આપે છે.[૪] આ વ્યુત્પત્તિ સ્વીકારવામાં મુશ્કેલી એ છે કે તેનાથી "ચૌટું"ના ચકાર પછી કોઈ કોઈ સ્થળે ઉચ્ચારાતી હશ્રુતિ સમજાવી શકાતી નથી. આ હકાર સજાતીય હિં. चौहट्टा માં સ્પષ્ટ સંભળાય છે. એટલે चतुर्+हट्टकम् ("બજાર") એ સમાસદ્વારા चउहट्टअं-यं> *चउहट्टउं>*चहुअट्टउं (વ્યત્યય)>*चहुट्टउं>*चहुटउं>चहुटुं>'ચ્હોટું'>'ચૌટું' એ સાધના સ્વીકારાવી જોઈએ. चउहट्ट–चउहट्टय એ પ્રાકૃત સાહિત્યમાં સામાન્ય શબ્દ તરીકે મળે છે. (દા. ત. સોમપ્રભકૃત "કુમારપાલ-પ્રતિબોધ" પા. ૧૯૨.) ચતુરભાઈને પણ આ જ વ્યુત્પત્તિ માન્ય છે. ('જૂની ગુજરાતી ભાષા', પા. ૪૯).

૩–'બગડવું'

વિદ્વાનોનો મત છે કે સંસ્કૃત, પ્રાકૃત વગેરે દ્વારા ગુજરાતીમાં ઊતરી આવેલા શબ્દોમાં મૂળના આદિ 'વ'નો 'બ' નથી થતો. એટલે, નરસિંહરાવ માને છે તેમ, 'બુઢ્ઢો' 'બત્તી' 'બોલે' 'બુઝાવવું' વગેરે મૂળ આદિ વકારવાળા શબ્દોની જેમ આ 'બગડવું' પણ મૂળે તો હિંદીમાંથી ઉછીતો લેવાયો હોય એમ ગણીને આપણે આગળ વધીએ. ભાણ્ડારકર અને નરસિંહરાવ આ ધાતુના મૂળસ્વરૂપ તરીકે સં. वि+घट्ट સ્વીકારે છે. ટર્નર[૫] અને બ્લોખ (Bloch) પણ એ જ મતના છે. પણ, ટર્નર સૂચવે છે તેમ આ વ્યુત્પત્તિ સામે ધ્વનિદૃષ્ટિએ બે વાંધા છે. એક તો એ કે મૂળનું विघटति ભારતીય-આર્યની મધ્યકાલીન ભૂમિકામાં विहडइ બનતું હોઈ, એ विहडइ માંથી અર્વાચીન ભારતીય-આર્ય ભાષાઓના શબ્દસ્વરૂપોમાં રહેલો 'ગ' કે 'ઘ' (હિં. बिगड़ना, બં. बिगड़ा, મ. बिगडणें, बिघडणें વગેરે) સાધી શકાય નહિ. આ મુશ્કેલીનો તોડ લાવવાનો પ્રયાસ કરતાં બ્લોખ કહે છે કે બીજા શબ્દો સાથે ધ્વનિ-સામ્યને લીધે √घट्‌નો આદિ વ્યંજન બેવડાયો હોય અને એ રીતે સાધિત શબ્દ-સ્વરૂપોમાં તે વ્યંજનની સ્પર્શતા જળવાઈ રહી હોય. બીજી મુશ્કેલી વધારે જટિલ છે. મૂળ घने સ્થાને સાધિત સ્વરૂપોમાં, માત્ર મરાઠીના વૈકલ્પિક बिघडणें ને બાદ કરતાં, સર્વત્ર ग થયો છે. આ મહાપ્રાણતાનો લોપ સમજાવી શકાય તેમ નથી. ટર્નર તર્ક ચલાવે છે કે કદાચ विग्रह જેવા કોઈ શબ્દના સંગ-દોષથી घनो ग થયો હોય.

---

૪ 'ગુ. લે. એન્ડ લિટ.' વો. ૧. પા. ૧૩૫.

૫ 'નેપાલી ડિક્શનરી' बिग्रनु નીચે.

આ ઉપરથી જોઈ શકાશે કે वि+घट् પરથી 'બગડવું' સાધવામાં ધ્વનિ-દૃષ્ટિએ બે ખામી રહેલી છે અને એ ખામીઓને દૂર કરવા માટે ટર્નર અને બ્લોખે કરેલાં સૂચનો સંતોષકારક નથી. વળી અર્થ-દૃષ્ટિએ પણ મને वि+घट् (="ભાંગવું, વિખુટું પડવું") એ 'બગડવું'થી વધારે પડતો દૂર લાગે છે. એટલે મારું સૂચન 'બગડવું' વગેરેને સં. विकृत પરથી અવતારવા માટે છે. विकृतનું પાલિ विकट, પ્રાકૃત विगड બને (સર૦ જૈન અંગ सुयगडंग=सूत्रकृताङ्ग); અને ભૂતકૃદન્ત કે નામ પરથી જ અર્વાચીન ભારતીય-આર્યમાં કેટલાક ધાતુઓ આવ્યા છે એ હકીકત જાણીતી છે.[6] આથી मुक्त>'મૂકવું', जन्म>'જનમવું' વગેરેની હરોળમાં विकृत>बिगडना વગેરે પણ મૂકી શકાય; તેમ ટર્નર વગેરેએ સૂચવેલી વ્યુત્પત્તિમાં ધ્વનિ અને અર્થની દૃષ્ટિએ નડતી મુશ્કેલીઓ આમાં ઉપસ્થિત જ ન થાય.

૪-'વાછરું'

"વાછરું" નો 'વાછ૦' અંશ તો દેખીતી રીતે જ સં. वत्स० નું રૂપાન્તર છે. બાકીના '-રું'નું મૂળ સમજાતું ન હતું. સોમપ્રભકૃત कुमारपालप्रतिबोध થી એ સ્પષ્ટ થયું. તેમાં वच्छरूवाइं પદ વપરાયું છે. એટલે वत्सरूप०>वच्छरूव०>*वाछरूव०> (જૂ. પ. રા.) *वाछरू० (જુઓ, ટેસીટરી, 'નોટ્સ', પરિચ્છેદ. ૩૫)>'વાછરું' એવો ક્રમ બાંધી શકાય. મૂળ वत्स० ને પ્રશંસાર્થે -रूप० લાગતાં (જુઓ, पाणिनि, अष्टाध्यायी ૫, ૩, ૬૬) वत्सरूप (="પ્રશંસાપાત્ર વાછડું") સધાયો. એટલે वत्सरूप० ને "વાછરું" વચ્ચે અર્થ-દૃષ્ટિએ પણ સંગતિ રહેલી છે. આ પ્રકારના ધ્વનિ-વિકાસના એક બીજા ઉદાહરણ તરીકે સં. कामरूप० માંથી નિષ્પન્ન થયેલ 'કામરુ-('કામરુદેશ') ટાંકી શકાય. વળી ડૉ. નૉર્મન બ્રાઉન સ્વસંપાદિત "મહીપાલ-ચરિત્ર"માં આવતો गोरू० શબ્દ (>હિ. गोरू, गोरूआ, गोरूवा) સં. गोरूप०માંથી જ સાધે છે.[7]

*

---

૬ સરખાવો "જૂની ગુજરાતી ભાષા" પા. ૧૮૫-૨૦૦.

૭ જુઓ 'भारतीय अनुशीलन', પા. ૬૨૮.

† वच्छरूवाइं જેવો જ પાડા (ભેંસના બચ્ચા) માટે पड्डुरूआइं શબ્દ મળે છે. જુઓ-પ્રબંધચિન્તામણિ, મારી આવૃત્તિના પૃ. ૨૪; તેમ જ પુરાતન પ્રબંધ સંગ્રહ, પૃ. ૧૪. -संपादक

प्राचीन देशीभाषाग्रथित प्रकीर्ण साहित्य

[१] मीरांके दो मधुर पद

पुरातन ग्रन्थ भण्डारोंका निरीक्षण करते समय हमें ऐसे सेंकडो ही कवियोंके रचे हुए गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी और पंजाबी आदि प्राचीन देशीभाषामें ग्रथित दोहा, सोरठा, छप्पय, सवैया, ख्याल, ठप्पे, ध्रुपद और भिन्न भिन्न राग-रागिणीमें बने हुए गीत और पदरूप पद्यों और काव्योंके दर्शन हुए जो अद्यावधि अप्रकाशित और अज्ञातप्राय हैं और जिनकी संख्या हजारोंकी हैं। हमारे पास इस प्रकारके साहित्यका जो विशाल संग्रह संचित किया हुआ है उसमेंसे कुछ कुछ यथावकाश हम **भारतीय विद्यामें** प्रकाशित करनेका मनोरथ कर रहे हैं। आज हम यहां पर मंगलरूपमें भक्त शिरोमणि बाई मीरांके दो मधुर पद देते हैं जो शायद अभी तक अप्रसिद्ध हैं। —**संपादक भा० वि०।**

पद १. राग सोरठ।

कैसै लिखुं लिखीयो न जाय, पतीयां; कैसै लि०।
कलम भरत मेरो कर कंपत है,
हिवडो रह्यौ थरराय; प०। १
बात करुं तो मुझे बात न आवे,
नैण रह्या झरराय; प०। २
मीरांके प्रभु गिरधर नागर,
रही हूं मधु पर छाय; प०। ३

पद २. राग सोरठ।

कां गया नेह लगाय, प्रभुजी; कां०।
ब्रह्म समुद्र छोउ चले हो,
ग्यांनकी नाव बणाय; प्र०। १
छोड चले हो विसवास संगाती,
प्रेमकी बात बणाय; प्र०। २
मीरांके प्रभु गिरधर नागर,
हर चरणां चित लाय; प्र०। ३

*

आपणा स्वरो विषे कंईक

ले० — श्रीयुत नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल.

*

[पंदरेक वर्ष उपर आ विषय उपर लखाएलो मारो एक लेख वडोदराना 'साहित्य' मासिकमां छपाएलो, त्यार पछी मारा संशोधनथी ते विषयमां थएला सुधारावधारा करीने आ लेख नवेसरथी लख्यो छे. — न. ई. प.]

मने आपणा स्वरो विषे केटलीक शंकाओ छे ते नीचे प्रकट करूं छुं :

§ १. प्रथम तो नीचेना कोष्ठक उपर ध्यान देईए :

मूळ		गुण	वृद्धि
√अ	√अ॒	अ	आ
इ	ई	ए	ऐ
उ	ऊ	ओ	औ
ऋ	ॠ	ऋ[२]	ॠ[३]
ऌ	ॡ	ल[२]	ॡ[३]

भगवान् पाणिनिए **अदेङ्गुणः** (१ : १ : २) अने **वृद्धिरादैच्** (१ : १ : १) ए बे सूत्रोने पोताना **अष्टाध्यायी** व्याकरणनी शरुआतमां ज मूकीने मान्युं छे के **अ** गुण-स्वर अने **आ** वृद्धि-स्वर छे; छतां ए गुण अने वृद्धि कया मूळ स्वरनी छे ते विषे एमणे कशो उल्लेख कर्यो नथी. ए मूळ स्वरनुं स्थान पूरवा में कल्पित √अ अने √अ॒ उपरना कोष्ठकमां मूक्या छे.

शान्तिनिकेतन — विश्वभारतीमां, हुं ग्रीक व्याकरण साथे तुलनात्मक भाषा-शास्त्रनुं अध्ययन करतो हतो त्यारे, अमारा ते वखतना अध्यापक, पण मूळे तो प्राग (Prague) विद्यापीठना चेक (Czeck) विभागना अध्यापक मि. लेस्नीए (Lesney) कहेलुं के प्राग्वैदिक भाषामां आजना **अनो** सजातीय मूळ स्वर हतो, पण काळे करीने ते लोप पामी गयो छे. ए वखते तो ए वात मने गळे नहोती ऊतरी; पण पछी वधारे अध्ययन करतां अने गुण-स्वर **अ** अने वृद्धि-स्वर **आ** तरफ नजर नाखतां ए वात आजे साची लागे छे, एटलुं ज नहि पण लागे छे के उपरनुं कोष्ठक संपूर्ण थवाने माटे ह्रस्व अने दीर्घ एम बे स्वर लोप पामी गया होवा जोईए. अने ए लुप्तता पामी गएला स्वरनुं स्थान आजे ते समयना

गुण-स्वर अए अने वृद्धि-स्वर आए लीधुं छे. बाकी साची रीते तो अ ह्रस्व अने आ दीर्घ स्वर तो नथी ज. बीजा ह्रस्व अने दीर्घ स्वरोमां काळमान सिवाय उच्चारणमां तो कंई भेद नथी, त्यारे आ बे स्वरोमां तो बीजा गुण अने वृद्धि स्वरोना जेवो उच्चारणमां पण भेद छे.

पण **अकः सवर्णे दीर्घः** (६: १: १०१), ए सूत्र प्रमाणे **अ, इ, उ, ऋ** अने **ऌ** ए स्वरो पछी सवर्ण स्वर आवे तो ए बे मळीने दीर्घस्वर थाय. पण उपर आपेलां बे सूत्रो प्रमाणे तो **अ** गुण-स्वर अने **आ** वृद्धि-स्वर छे, एटले आ सूत्र उपरनां बे सूत्रो विरुद्ध जतां मने देखाय छे; जो के आजे तो **अ** अने **आ** पछी सवर्ण स्वर **अ** अने **आ** आवतां दीर्घ **आ** थाय छे.

वळी **आद् गुणः** (६: १: ८७), ए सूत्र उपर लघुकौमुदीमां वृत्ति छे, के **अवर्णात् अचि परे पूर्वपरयोः एकः गुणादेशः स्यात्** (अकार अथवा आकारनी पछी स्वर आवे तो ए बन्ने मळीने एक गुण थाय). पण अकार के आकारनी पछी अकार के आकार आवे तो आजे तो **आ** थाय छे, एटले के उपर जणावेला ६: १: १०१ सूत्र प्रमाणे मात्र दीर्घ थाय छे. अथवा **आने** पाणिनी वृद्धि कहे छे ते प्रमाणे वृद्धि थाय छे. आनो शो खुलासो थई शके !

§ **२.** हवे नीचेना प्रचलित व्याकरणना कोष्ठक तरफ ध्यान देईए:

(**क**) गुण वा वृद्धि + मूळ = गुण;	(**ख**) गुण वा वृद्धि + गुण = वृद्धि
अ वा **आ** + **इ** = **ए**;	**अ** वा **आ** + **ए** = **ऐ**
अ वा **आ** + **उ** = **ओ**;	**अ** वा **आ** + **ओ** = **औ**

उपरना प्रचलित व्याकरणना विधिमां फेरफार करीने नीचे प्रमाणे हवे गोठवुं छुं:

गुण + मूळ = गुण; गुण + गुण अथवा वृद्धि + मूळ = वृद्धि

अ + **इ** = **ए**; **अ** + **ए**, अथवा **आ** + **इ** = **ऐ**

अ + **उ** = **औ**; **अ** + **ओ**, अथवा **आ** + **उ** = **औ**

गुणनी बाबतमां उपरनुं समीकरण प्रचलित अने स्पष्ट छे, पण वृद्धिनी बाबतमां नीचेनां समीकरण स्पष्ट थशे:

(१) **अ** + (**अ** + **इ** =) **ए** = **ऐ**; **अ** + **अ** + **इ** = **आ** + **इ** = **ऐ**

(२) **ए** + **अ** = **अय**; **ऐ** + **अ** = **आय**

त्यारे अय = अ + य　(= इ + अ) =　अ + इ + अ = ए + अ; आमांथी समान अ काढी लेईए तो अ + इ = ए थाय.

पण आय = आ + य (= इ + अ) = आ + इ + अ = ऐ + अ = आमांथी समान अ काढी लेईए तो आ + इ = ऐ थाय.

त्यारे प्रचलित व्याकरणना कोष्ठक कमां जणाव्या प्रमाणे तो वृद्धिमां मूळ उमेर्ये (आ + इ) गुण (ए) थाय छे, एटले के वृद्धिमां घटाडो थईने गुण थाय छे ! पण कंईक उमेर्ये घटाडो तो थाय ज केम ?

सारांश के अ + इ = ए अने अ + उ = ओ थाय ए तो खरूं; पण आ + इ = ऐ अने आ + उ = औ थवा जोईए. प्रचलित व्याकरणमां एम शाथी नथी थतुं ए कोई समजावशे ?

§ ३. हवे नीचेना कोष्ठक तरफ नजर करीए :

अ + इ = ए, आ + इ = ऐ, इ + अ = य, ए + अ = अय, ऐ + अ = आय; तेम ज अ + ऋ = ऋ[२], आ + ऋ[३], ऋ + अ = र, ऋ[२] + अ = अर, ऋ[३] + अ = आर

उपरना कोष्ठकमां ऋ[३] + अ = अर थाय छे ते तो जाणे बराबर छे, पण प्रचलित व्याकरणमां ऋनो गुण अर थाय छे ते बराबर नथी; ऋना तेम ज ऌना गुण अने वृद्धि स्वरनो लोप थयो लागे छे, तेथी ज में उपरना कोष्ठकमां ते स्वरोने स्थाने ऋ[२] अने ऋ[३] मूकी खाली पडतां खानां पूरां कर्यां छे; तथा ए गुण-स्वरमां अ उमेरीने अर अने वृद्धि-स्वरमां अ उमेरीने आर मूक्या छे, ए तो प्रचलित व्याकरण प्रमाणे बराबर छे अने उपरनां खानांमां ए + अ = अय अने ऐ + अ = आय एने पण समरूप छे.

आना आधारनी मारी कल्पना आ प्रमाणे छे :

(१) जसि च (७ : ३ : १०९) सूत्र प्रमाणे ह्रस्व स्वरान्त नामनुं बहुवचन करतां बहुवचननो प्रत्यय (जस्) अस उमेरतां ए ह्रस्व स्वरनो गुण थया पछी तेमां अस् प्रत्यय उमेराय छे. ते प्रमाणे मुनि अने साधु शब्दोनुं बहुवचन करतां प्रथम मुने अने साधो थया पछी तेमां अस् प्रत्यय उमेराय, एटले मुनयः अने साधवः थाय छे.

तेवी ज रीते **पितृ** शब्दमां छेवटना **ऋ** नो गुण थवो जोईए; पण ते तो लोप पामी गएलो होवाथी बारोबार **ऋ + अस् = अरः** बारोबार मूकी **पितरः** करी देवाय छे. आ उपरथी स्पष्ट थाय छे के **ऋ** नो अने **ॠ** नो लोप थयो छे ज, अने तेथी तेमने बदले **अर्** अने **आर्** मूकी तेमनी भीड भागी छे. एम तो **इ** नो गुण **अय्** अने वृद्धि **आय्** पण मूकीने तेवे प्रसंगे चलावी लेवाय.

वळी (२) नीचेना कोष्ठक तरफ नजर करतां ए वात वधारे स्पष्ट थशे :

१	२	३	४	५	६
नी	**नीति**	**नेता**	**नैतिक**	**नयन**	**नायक**
श्रु	**श्रुति**	**श्रोता**	**श्रौत**	**श्रवण**	**श्रावक**
कृ	**कृति**	**कर्ता**	**कार्य**	**करण**	**कारक**

उपरना कोष्ठकमां प्रथमनी उभी लीटीमां अनुक्रमे **ई**कारान्त, उकारान्त अने **ऋ**कारान्त धातु छे. बीजीमां **क्तिन्** प्रत्यय लाग्ये धातुओ मूळ रूपे ज रह्या छे. त्रीजीमां ने चोथीमां स्वरना अनुक्रमे गुण अने वृद्धि स्वर थया छे. पांचमी अने छठ्ठीमां अनुक्रमे गुणमां अने वृद्धिमां **अ** उमेरायो छे. **नी** अने **श्रु**नां ए बधां रूप जोयाथी ए नियम बराबर सचवायो देखाय छे; **ऋ**कारान्त **कृ** धातुनां प्रथमनां बे रूप बराबर सचवायां छे, पण त्रीजा अने चोथा खाना तरफ नजर करतां जणाशे के तेना गुण अने वृद्धि स्वरने बदले ते गुण-स्वरमां अने वृद्धि-स्वरमां **अ** उमेराएलां (पण व्याकरणना प्रचलित नियमे मानी लीधेला गुण-स्वर अने वृद्धि-स्वरनां) रूप मूकी देवामां आव्यां छे ने तेथी तेनुं त्रीजा अने चोथा खानानुं रूप अनुक्रमे पांचमा अने छठ्ठा खानाना रूप जेवुं बनी गयुं छे; उपरना धातुओमां जेवां ए रूपोमां भेद पड्यो छे, एवो आ रूपोमां नथी पड्यो. **ऋ**नां गुण अने वृद्धिनां साचां रूप लोप पाम्याथी ज, तेमां **अ** अने **आ** उमेरतां थतां **अर्** अने **आर्** रूपोने आजे गुण अने वृद्धि मानी लेवायां छे.

(३) **इ** अने **उ** स्वरनो गुण **ए** ने अने **ओ** ने तेम ज वृद्धि **ऐ** ने अने **औ** ने आपणी प्रचलित स्वरमाळामां स्थान मळ्युं छे, पण **ऋ** अने **ऌ** स्वरना गुणने अने वृद्धिने आजे स्थान नथी, एनो अर्थ ज ए के ते स्वरोनो लोप थयो छे.

उपरनां त्रणे कारणो एवुं साबित करवा पूरतां छे के **ऋ** अने **ऌ** स्वरना गुण अने वृद्धि स्वरोनो लोप थयो छे.

त्यारे हवे प्राग्वैदिक भाषामां नीचे प्रमाणे स्वरो होवानुं अनुमान करी शकाय

स्थान	मूळ		गुण	वृद्धि
	ह्रस्व	दीर्घ		
कंठ	√अ	√अ	अ	आ
तालु	इ	ई	ए	ऐ
ओष्ठ	उ	ऊ	ओ	औ
मूर्द्धा	ऋ	ॠ	ऋ[२]	ऋ[३]
दन्त	ऌ	ॡ	ऌ[२]	ऌ[३]

आचार्य पाणिनि आदि अने अन्य वैयाकरणो दीर्घ ॡ ने स्वीकारता नथी, पण **मुग्धबोध**ना कर्ता वोपदेव आदि केटलाक वैयाकरणो स्वीकारे छे, तेथी ज ते स्वानुं पूरवा में एनो स्वीकार कर्यो छे; प्राग्वैदिक भाषामां ए स्वर होय पण खरो.

§ ४. आचार्ये स्वरोनो क्रम पोताना अष्टाध्यायी व्याकरणनी शरुआतमां ज माहेश्वर सूत्रोमां नीचे प्रमाणे मूक्यो छे: **अ इ उ ण् । ऋ ऌ क् । ए ओ ङ् । ऐ औ च् ।** पहेला अने बीजा सूत्रमां मूळ स्वर छे, त्रीजामां अने चोथामां पहेला सूत्रना पछीना बे स्वरोना गुण अने वृद्धि स्वर आप्या छे; पण बीजा सूत्रमांना स्वरोना गुण अने वृद्धि स्वरोनो लोप थयाथी ते आप्या नथी. तेम ज **अ** गुण-स्वर होवा छतां तेनो मूळ स्वर लोप थयाथी एने ज मूळ स्वर मानी मूळस्वरोनी पंक्तिमां मूक्यो छे.

कंठ	तालु	ओष्ठ	मूर्द्धा	दन्त
अ	इ	उ	ऋ	ऌ
+अ=आ	य	व	र	ल

पाणिनिए ज आपेलो स्वरनो क्रम आजे प्रचलित छे, अने ए स्वरोने अनु-रूप अंतःस्थोनो क्रम पण आचार्ये तो **ह य व र ट् । ल ण् ।** ए बे सूत्रोमां ए स्वरो प्रमाणे ज मूक्यो छे. पण कोण जाणे केम ए अंतःस्थोनो क्रम बदलाईने **य र ल व** ए प्रमाणे थई गयो छे. ए क्रम शाथी, क्यारे अने कोणे बदल्यो हशे ?

बेशक, **य र ल व** ए क्रम ज स्वाभाविक छे, कारण के वर्णोच्चार करवानां कंठ, तालु, मूर्द्धा, दंत अने ओष्ठ ए जे पांच स्थान छे ते मुखनी अंदर ए ज क्रमे गोठवाएलां छे, अने आपणी प्रचलित व्यंजनमाळानो पण ए ज क्रम छे. **अ** अने **क** वर्गना व्यंजन कंठस्थानी; इ, **च** वर्ग अने **य** तालुस्थानी; **ऋ, ट**

वर्ग अने र् मूर्द्धस्थानी; लृ, त वर्ग अने ल दंत्यस्थानी अने उ, प वर्ग अने व ओष्ठस्थानी छे. पण त्यारे ए क्रमे तो आपणा स्वरोनो क्रम इ, ऋ, लृ अने उ ए प्रमाणे होवो जोईए; पणे पाणिनिए आपेलो क्रम हजी चालु छे. स्वर ए ज क्रमे रह्या अने अंतःस्थ बदलाईने स्वाभाविक क्रमे गोठवाया ए केम अने क्यारे बन्युं हशे? पाणिनिने तो पोताना व्याकरणमां संधि वगेरेनां सूत्रो रचवा माटे वर्णोनो क्रम फेरव्या विना छूटको नहोतो, पण त्यां आ लौकिक स्वाभाविक क्रममां फेर शाथी थयो हशे?

§ ५. उपरना अंतःस्थो उपर नजर नाखतां जणाय छे के ते चार छे. तथा ते इ, उ, ऋ अने लृने अनुरूप छे, त्यारे अ ने अनुरूप प्रथम वर्गनो अंतःस्थ केम नहि हशे? अथवा अ तो गुणस्वर छे, एनो मूळस्वर लोप पाम्यो तेनी साथे तेनो अंतःस्थ पण लोप पाम्यो हशे? वळी ए नो अने तेम ज उ नो अनुरूप उष्मवर्ण पण केम नथी? कारण के आजे तो इ, ऋ अने लृ ए त्रणने ज अनुरूप उष्मवर्ण श ष स छे, शुं उष्मवर्ण पण प्राग्वैदिक भाषामां हशे अने पछी लोप पाम्या हशे? अथवा शुं ह ते अ नो उष्मवर्ण हशे?

§ ६. अने एम लोप पामेला जेमने आपणे मानी लेईए छीए, ए बधानां स्थान पूरतां आपणी वर्णमाला नीचे प्रमाणे बने :

	स्वर				व्यंजन					अंतःस्थ	उष्म
	ह्रस्व	दीर्घ	गुण	वृद्धि							
कंठ	√अ	√आ	अ	आ	क	ख	ग	घ	ङ	?	? (ह?)
तालु	इ	ई	ए	ऐ	च	छ	ज	झ	ञ	य	श
मूर्द्धा	ऋ	ॠ	ऋ२	ऋ३	ट	ठ	ड	ढ	ण	र	ष
दंत	लृ	ॡ	लृ२	लृ३	त	थ	द	ध	न	ल	स
ओष्ठ	उ	ऊ	ओ	औ	प	फ	ब	भ	म	व	?

अमुक वर्णो लोप पाम्या छे एवी मारी कल्पना विरुद्ध एवी दलील करवामां आवशे के ए लुप्त मानेला वर्णोने आपणे उच्चारता नथी के उच्चारवानी कल्पना पण करी शकाती नथी, ए ज साबित करे छे के ए कदी हता ज नहि. आना जवाबमां मारे जणाववानुं के जेम बार गाउए बोली बदलाय छे तेम ज बार वर्षे पण बोली बदलाय छे. अने तेथी केटलांक उच्चारणो करवानी माणसनी शक्ति

पण, अनभ्यासने कारणे नाश पामी जाय छे. ॠ नो उच्चार तो आपणे करीए ज छीए, छतां ए वर्ण गुजराती वर्णमालामांथी लुप्त थतो जाय छे, ए तो प्रत्यक्ष प्रमाण छे. प्राकृत भाषाओमां ऐ नो अने औ नो लोप थयो छे, तेम ज विवर्ण युक्ताक्षरनो उच्चार अशक्य थई पड्याथी ए बे युक्ताक्षरोने सवर्ण युक्ताक्षर बनावी देवायो छे. आजे पण बंगाळीओ **महात्माने** स्थाने **महात्ता** ज बोले छे.

§ ७. व्यंजनो स्वयंसंपूर्ण नथी, एटले एमां स्वर मेळवीने संपूर्ण बनावाय छे, अने एम मेळववा माटे स्वरोनी विशिष्ट संज्ञाओ बनाववामां आवी छेः **अ** मेळवतां व्यंजननी संज्ञा उठावी देवामां आवे छे; आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, ए स्वरो माटे अनुक्रमे ा, ि, ी, ु, ू, ृ, े, ै, ो, ौ, ए संज्ञाओ व्यंजनने लगाडाय छे.

स्वरो तो पोते ज स्वयंसंपूर्ण छे, एटले एमने तो आवी कोई संज्ञा लागी शके ज नहि; एमनां पोताना उच्चारनां स्थान स्पष्ट रीते विशिष्ट अने जुदां छे अने तेथी तेमनी संज्ञाओ पण स्पष्ट रीते विशिष्ट अने जुदी ज होवी घटे, एमां ज शास्त्रीयता छे. आ वात आपणा प्राचीन वैयाकरणो सारी रीते समजता हता अने तेथी ज तेमणे सौ स्वरोनी विशिष्ट अने जुदी संज्ञाओ योजी छे.

पण हाल केटलाक लिपिसुधारको व्यंजनोने लगाडवानी स्वरोनी संज्ञाओ स्वरोने पण लगाडे छे अने इ, ई, उ, ऊ अने ऋ ए स्वरोने बदले अि, अी, अु, अू, अने अृ लखे छे तथा छपावे छे. आम करवामां मने शास्त्रीय दोष देखाय छे. कारण के क् वगेरे व्यंजनोनी साथे ए स्वरो जोडातां, हलनी संज्ञा ऊडी जईने, तेने बदले ि वगेरे संज्ञाओ लागे छे, पण अ साथे ए चार स्वरो जोडातां ते ते स्वरना गुण-स्वर थाय छे. **क् + इ = कि** ए बराबर; पण **अ + इ = अि** नहि, पण **ए** ज थाय. आम ए मूळस्वरनी संज्ञाओ व्यंजननी पेठे **अ** ने न ज लगाडी शकाय. गुण अने वृद्धि मूळस्वर नहि, पण **अ** नी साथे मळेला मूळस्वरथी बनेला होवाथी **अ** नी साथे तेमनी विशेष संज्ञाओ लगाडवानी योजना प्राचीन वैयाकरणोए करी छे.

कोई दावो करशे के लेखननी सरळताने हेतुए आ सुधारो करवामां आव्यो छे; पण हुं पूछुं छुं के इ, ई, उ, ऊ अने ऋ एमने बदले अि, अी, अु, अू अने अृ लखवामां कई सरळता थई ? लेखनमां सरळतानो प्रथम नियम ए छे के अक्षरो

ने शब्दो पण लखतां कलम वगर उपाड्ये सरळताए चाले, कलम बने तेटली ओछीवार उपाडवी पडे. ए नियमे युरोपनी तमाम भाषाओ लखवामां सरळ छे. मरहाईने तैयार थएली मोडी कहेवाती मराठी लिपि पण एटली ज सरळ छे. गुजराती लिपिनां छापखानां थतां पहेलां, देवनागरी लिपिनां माथांने सरळतायी, कलम उपाड्या विना, लखवाने माटे ए ज नियमे जुदां माथां एक सळंग लीटीना स्वरूपमां दोरी देवातां. अने ए दृष्टिए अत्यारे लखाता मूळस्वरो, सुधारेली लिपिना स्वरो करतां, लखवामां वधारे सरळ छे.

अने वळी सुधारेली लिपिना स्वरो लखवामां सरळ होय, तोपण तेटला ज खातर शास्त्रीयतानो भोग तो ना ज अपाय. अंग्रेजी Knowledge शब्दनो उच्चार 'नोलेज' थाय छे, तेमांना K नो उच्चार घसाईने ऊडी गयो छे अने ते अक्षर आजे अजागलस्तन पेठे निरर्थक थई पड्यो छे; छतां ए शब्दने संस्कृत ज्ञा शब्द साथे धातुसंबंध छे, ए ऐतिहासिक शास्त्रीयता (जाणे के) साचवी राखवा माटे ए निरर्थक K अक्षरनो संग्रह अंग्रेज वैयाकरणोए करी राख्यो छे, सरळता राखवा खातर एने हडसेली दीधो नथी.

शास्त्रीयतानो भोग न अपातो होय त्यां सरळता साधवी ए इष्ट छे. देवनागरी अक्षरोनां माथांनी एक सळंग लीटी, सरळताने माटे, आपणा पूर्वजोए बनावी दीधी छे, तेम ज जी, जु अने जू एमने कलम उपाड्या विना सळंग रीते लखाय, ए सरळता माटे तेमने बदले ॐ, ॐु ॐू बनाव्या छे. पण आ लिपिसुधारको एकरूपताने माटे के कोण जाणे कये हेतुए आ अक्षरोनी सरळता तोडीने पाछा मूळ रूपे लखवानुं योजे छे !

§ ८. आ विषे अभ्यासीओ चर्चा करशे अने मारी शंकाओनुं निवारण करशे अथवा मारी आ विचारश्रेणीमां कंई दोष होय तो देखाडशे एवी आशा छे.

'पाटीदार' मंदिर, आणंद.

सु० १४ : ३ : १९९७.

*

खरतरगच्छ-गुर्वावलीका ऐतिहासिक महत्त्व

लेo — श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा — संपादक 'राजस्थानी'

*

[सिंघी जैन ग्रन्थमालामें **खरतरगच्छ-युगप्रधानाचार्य-गुर्वावली** नामक एक संस्कृत गद्य ग्रन्थ छप रहा है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इस ग्रन्थमें विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके प्रारंभमें होनेवाले आचार्य वर्द्धमान सूरिसे लेकर १४ वीं शताब्दीके अन्तमें होनेवाले जिनपद्म सूरि तकके खरतर गच्छके मुख्य आचार्योंका विस्तृत चरितवर्णन है। गुर्वावली अर्थात् गुरुपरम्पराका इतना विस्तृत और विश्वस्त चरितवर्णन करनेवाला ऐसा कोई और ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। प्रायः ४००० श्लोक परिमाण यह ग्रन्थ है और इसमें प्रत्येक आचार्यका जीवनचरित्र इतने विस्तारके साथ दिया गया है कि जैसा अन्यत्र किसी ग्रन्थमें, किसी भी आचार्यका नहीं मिलता। पिछले कई आचार्योंका चरित्र तो प्रायः वर्षवारके क्रमसे दिया गया है और उनके विहार-क्रमका तथा वर्षा-निवासका क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। किस आचार्यने कब दीक्षा ली, कब आचार्य पद्वी प्राप्त की, किस किस प्रदेशमें विहार किया, कहां कहां चातुर्मास किये, किस जगह कैसा धर्मप्रचार किया, कितने शिष्य-शिष्याएं आदि दीक्षित किये, कहांपर किस विद्वानके साथ शास्त्रार्थ या वादविवाद किया, किस राजाकी सभामें कैसा सम्मान आदि प्राप्त किया — इत्यादि बहुत ही ज्ञातव्य और तथ्य-पूर्ण बातोंका इस ग्रन्थमें बडी विशद रीतिसे वर्णन किया गया है। गुजरात, मेवाड, मारवाड, सिन्ध, वागड, पंजाब, और बिहार आदि अनेक देशोंके, अनेक गांवोंमें होनेवाले सेंकडों ही धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओंके कुटुंबोंका और व्यक्तियोंका नामोल्लेख इसमें मिलता है और उन्होंने कहांपर, कैसे पूजा-प्रतिष्ठा, और संघोत्सव आदि धर्मकार्य किये इसका निश्चित विधान मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह ग्रन्थ, अपने ढंगकी एक अनोखी कृति जैसा है। हम इसका हिन्दी अनुवादके साथ संपादन कर रहे हैं। इस ग्रन्थके आविष्कारक बीकानेर निवासी साहित्योपासक श्रीयुत अगर चन्दजी नाहटा हैं और इन्होंहीने हमें इस ग्रन्थके संपादनकी सादर प्रेरणा की है। नीचे दिये गये लेखमें नाहटाजीने, इस ग्रन्थका ऐतिहासिक महत्त्व क्या है और सार्वजनिक दृष्टिसे भी किन किन ऐतिहासिक बातोंका ज्ञातव्य इसमें प्राप्त होता है, यह संक्षेपमें बतानेका प्रयत्न किया है। — **संपादक भा० वि०**]

ऐतिहासिक साहित्यकी दृष्टिसे खरतरगच्छ गुर्वावली एक अत्यन्त महत्त्वका और अपने ढंगका अद्वितीय ग्रन्थ है। कुछ वर्ष पूर्व, बीकानेरके प्राचीन जैन ज्ञान भंडारोंका अन्वेषण करते हुए हमें यह निधि उपलब्ध हुई थी। इसमें विक्रमकी ग्याहरवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धसे लेकर वि० सं० १३९३ तकके खरतरगच्छीय जैनाचार्योंका विस्तृत और विश्वसनीय इतिवृत्त लिखा हुआ है। इस वृत्तान्तसे तत्कालीन भारतीय इतिहासकी और और बातोंपर भी अच्छा प्रकाश पडता है। जो लोग कहते हैं कि भारतमें संवतानुक्रमसे शृंखलाबद्ध इतिहास लिखनेकी प्रणाली सर्वथा नहीं थी उन्हें निरुत्तर करनेके लिये यह ग्रन्थ एक पर्याप्त उदाहरणरूप है।

यह ग्रन्थ दो तरहकी शैलीमें संकलित किया हुआ है। श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे श्रीजिनदत्त सूरिजीके स्वर्गवास सं० १२११ तकका वृत्तान्त तो, सं० १२९५ में सुमतिगणि द्वारा रचित 'गणधरसार्द्धशतक–बृहद्वृत्ति' के अनुसार ही प्राचीन शैलीका है। पर इसके पश्चात्की प्रत्येक घटना संवतानुक्रम और शृंखलाबद्ध रूपसे लिखी गई है, जो घटनाओंके साथ साथ लिखी हुई डायरीसी प्रतीत होती है। जैनाचार्योंका विहारानुक्रम, मार्गवर्ती ग्राम-नगर, दीक्षाएं, प्रतिष्ठाएं, तत्तत् ग्रामवासी श्रावकोंके नाम, राजसभाओंमें किये गये शास्त्रार्थ, तीर्थयात्रा वर्णन–इत्यादि सभी बातें इतनी विशदताके साथ लिखी गईं हैं कि तत्कालीन परिस्थिति आंखोंके सामने आजाती है। भ्रमणशील जैनाचार्योंके प्रवासमार्गका वर्णन तो भारतीय साहित्यमें एक नवीन वस्तु है। क्यों कि भारतके साहित्यमें प्रायः इसका अभाव ही है। हमारे पास, जो कुछ विदेशी विद्वानोंने भ्रमणवृत्तान्त लिखे, वे ही उपलब्ध हैं; पर उनमें स्थानोंके नामादिमें कई भूलें हुई हैं; किन्तु इसमें विशुद्ध भौगोलिक वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत निबन्धमें हम, इस गुर्वावलीमें उपलब्ध राजकीय इतिहास सामग्री और भौगोलिक बातोंका संक्षिप्त परिचय देना चाहते हैं। आशा है, विद्वानोंको इससे कुछ नवीन ज्ञातव्य मिलेगा† ।

---

† गुर्वावलीके आधार पर, पं० दशरथजी शर्मा एम्. ए. ने, इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, वॉ० ११, नं० ४, और पूना ऑरिएन्टलिस्ट वॉ० २, पृ० ७५ में, संक्षिप्त नोट लिखे थे जिनमें भी इसके ऐतिहासिक महत्त्वका अतिसंक्षेपसे दिग्दर्शन कराया था। यहां पर हम यथावश्यक पूर्ण ज्ञातव्य प्रकाशित करते हैं।

राजकीय इतिहास-सामग्री

पाटणके दुर्लभराज चौलुक्यका उल्लेख।

श्रीवर्द्धमान सूरिके शिष्य श्रीजिनेश्वर सूरिने अणहिल्ल पत्तनमें गूर्जरेश्वर दुर्लभराजकी सभामें चैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ कर उनको जीता जिसका विस्तृत वर्णन इस पट्टावलिमें दिया गया है।

धारानरेश नरवर्मका निर्देश।

श्रीजिनवल्लभ सूरि [स्वर्ग सं० ११६७] जब चित्तौड़में थे तब, धाराधीश नरवर्मकी सभामें दो दक्षिणी पण्डितोंने "कण्ठे कुठारः कमठे ठकारः" यह समस्यापद रखा। स्थानीय विद्वानों व राजपण्डितोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार समस्यापूर्ति की; पर उससे उन दक्षिणी विद्वानोंको सन्तोष नहीं हुआ। तब किसीसे श्रीजिनवल्लभ सूरिजीकी प्रतिभाका परिचय पाकर राजाने यह समस्यापद उनके पास भेजा। सूरिजीने तत्काल ही सुन्दरताके साथ उसकी पूर्त्ति कर दी, जिससे समग्र विद्वान संतुष्ट हुए। फिर जब सूरिजी चित्तौड़से विहार कर धारा पधारे, तब नृपतिने उन्हें अपने प्रासादोंमें बुलाकर उनसे धर्मोपदेश श्रवण किया। राजा सूरिजीका भक्त हो गया और उसने ३ लाख रुपये और ३ ग्राम उन्हें भेंट किये। परन्तु सूरिजी निरीह थे। उन्होंने उस दानका ग्रहण करना अस्वीकार किया, तब उनके उपदेशानुसार उसने चित्तौड़के दो जैन मन्दिरोंमें २ लाख रूपयोंसे पूजाके लिये मण्डपिकाएं बनवा दीं।

—प्रस्तुत गुर्वावलीमें सं० १३०५ आषाढ सु० १० तकका वृत्तान्त तो श्रीजिनपति सूरिजीके विद्वान् शिष्य श्रीजिनपालोपाध्यायने दिल्ली निवासी सेठ साहुलीके पुत्र हेमचंद्रकी अभ्यर्थनासे संकलित किया है। इसके पश्चात्का वर्णन भी पट्टधर आचार्योंके साथमें रहने वाले व दफ्तर रखनेवाले विद्वान् मुनियों द्वारा लिखा गया प्रतीत होता है। यह प्रति पत्र ८६ की है और प्रायः पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दीमें लिखी होकर बीकानेरस्थ श्रीक्षमाकल्याण ज्ञानभंडारमें विद्यमान है। इसमें सं० १३९३ तकका इतिवृत्त है। इसके पीछेका इतिहास जाननेके लिये हमें कोई भी इस कोटिकी गुर्वावली उपलब्ध नहीं है, परन्तु शृंखलाबद्ध इतिहास लिखनेकी प्रणाली तो पीछे भी बराबर रही है। सं० १८६०की एक सूचीके अनुसार, जेसलमेरके सुप्रसिद्ध ज्ञानभंडारमें, उस समय ३१२ पत्र जितनी विस्तृत एक गुर्वावली वहां विद्यमान थी। यदि यह गुर्वावली प्राप्त हो जाय तो अनेकों नवीन ज्ञातव्य मिले, खेद है कि अभीतक तो वर्तमान श्रीपूज्योंके पास प्राचीन दफ्तर भी नहीं मिलते। पाठकोंको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इसका सम्पादन पुरातत्त्वाचार्य श्री जिनविजयजी जैसे विद्वान् द्वारा हो रहा है।

अजमेरके अर्णोराजका उल्लेख ।

श्रीजिनदत्त सूरिजी जब अजमेरमें पधारे तो वहांका राजा अर्णोराज स्वयं दर्शनार्थ आया और उनके उपदेशसे अतीव प्रसन्न होकर उन्हें सर्वदा अजमेरमें ही रहनेकी विज्ञप्ति की। परन्तु सूरिजीने साध्वाचारका स्वरूप बतलाया और समय समय पर वहां आते रहनेका कह कर राजाको सन्तुष्ट किया। इस नृपतिने अजमेरके दक्षिणी भागमें पहाडीके नीचे श्रावकोंको मन्दिर व निवासगृह बनानेके लिये यथेच्छ भूमि दी ।

त्रिभुवनगिरिका राजा कुमारपाल ।

श्रीजिनदत्त सूरिजीने त्रिभुवनगिरि पधार कर वहांके महाराजा कुमारपालको प्रतिबोध दिया। श्रीशान्तिनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा की और उधरके प्रदेशमें प्रचुरताके साथ अपने शिष्योंको विहार कराया।

दिल्लीके महाराजा मदनपाल ।

सं० १२२३ में श्रीजिनदत्त सूरिजीके शिष्य श्रीजिनचंद्र सूरिजी दिल्लीके निकटवर्ती ग्राममें पधारे। उनको वन्दनार्थ जाते हुए श्रावक-समुदायको राज-प्रासादस्थित महाराजा मदनपालने देखा और मंत्रियोंसे सूरिजीके पधारनेकी खबर पाकर महाराजाने समस्त मुसाहिबों और सेनाको एकत्र किया और बडे समारोह पूर्वक सूरिजीके पास गया। उनसे धर्मोपदेश श्रवण कर महाराजा अत्यन्त प्रमुदित हुआ और उनको अपने नगरमें पधारनेकी अत्यन्त आग्रहपूर्वक वीनति की। सूरिजी अनिच्छाके होते हुए भी राजाग्रहसे दिल्ली पधारे। बडे भारी समारोहसे उनका प्रवेशोत्सव हुआ। महाराजा मदनपाल स्वयं सूरि-जीका हाथ पकडे हुए उनकी पेशवाईमें चल रहा था। राजाकी प्रार्थनासे उन्होंने वहीं चातुर्मास किया और दुर्भाग्यवश उनका वहीं स्वर्गवास हो गया।

आशिकानरेश भीमसिंह ।

श्रीजिनपति सूरिजी सं० १२२८ में बब्बेर नगरको पधारे। संवाद पाकर आशिकाके श्रावक लोग राजा भीमसिंहके साथ सूरिजीके दर्शनार्थ आए। सूरिजीके उपदेशसे प्रसन्न होकर उन्हें आशिका पधारनेकी वीनति की। राजाके विशेष अनुरोधसे पूज्यश्री आशिका आए। भूपति भीमसिंहके साथ पूर्वोक्त दिल्लीके प्रवेशकी भांति आशिकामें प्रवेशोत्सव हुआ। सूरिजीने स्थानीय दिगम्बरा-

चार्यके साथ शास्त्रार्थ किया और उसमें सूरिजीका विजय हुआ। इससे आशिका (हांसी) नरेश बहुत प्रसन्न होकर सूरिजीके प्रति श्रद्धालु बना।

सं० १२३२ में मन्दिरकी प्रतिष्ठा करनेके हेतु सूरिजी फिर आशिका पधारे। उस समय आशिकाका वैभव दर्शनीय था। नगरके बाहर राजा भीमसिंहके आज्ञावर्त्ती राजाओंके तंबू-डेरे लगे हुए थे, राजकीय फौज-पल्टनका जमघट लगा हुआ था। राजप्रासादों और बाग-बगीचोंके मनोहर दृश्यसे आशिका नगरी चक्रवर्तीकी राजधानीसी प्रतीत होती थी।

अजमेरका महाराजा पृथ्वीराज चौहान।

श्रीजिनपति सूरिजी सं० १२३९ में अजमेर पधारे। राजसभामें चैत्यवासी उपकेशगच्छीय पं० पद्मप्रभके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें सूरिजीकी विजय हुई। महाराजा पृथ्वीराजने स्वयं नरानयनके राजप्रासादोंसे अजमेर आ कर सूरिजीको "जयपत्र" समर्पण किया। इस वर्णनमें यह भी बताया गया है कि उसी वर्षमें महाराजाने भादानक देशको जीता था। इस शास्त्रार्थका वृत्तान्त बडे विस्तारके साथ इस गुर्वावलीमें दिया गया है जिसमें बहुत सी अन्य ऐतिहासिक बातें भी हैं। विशेष जानने के लिये 'हिन्दुस्तानी' नामक त्रैमासिक पत्रिकामें प्रकाशित "पृथ्वीराजकी सभामें जैनाचार्योंका शास्त्रार्थ" नामक हमारा विस्तृत निबन्ध पढ़ना चाहिये।

अणहिल्लपुर (पाटण) का राजा भीमदेव।

सं० १२४४ में, अणहिल्लपुरका कोट्याधिपति श्रावक अभयकुमार तीर्थयात्राके हेतु संघ निकालनेकी इच्छासे महाराजाधिराज भीमदेव और प्रधान मंत्री जगदेव पड़िहारके पास गया और उनसे अरज करके स्वयं राजाके हाथसे अजमेर निवासी खरतर संघके नामका आज्ञापत्र लिखवा लाया। फिर एक वीनतिपत्र अपनी ओरसे श्रीजिनपति सूरिजीको लिख कर अजमेर भेजा। सूरिजीने निमन्त्रण पाकर अजमेरी संघके साथ विहार कर दिया। तीर्थयात्राके अनन्तर वापस लौटते हुए सूरिजी आशापल्ली पधारे। वहां चैत्यवासी प्रद्युम्नाचार्यसे उनका शास्त्रार्थ हुआ जिसमें विजयलक्ष्मी सूरिजीको मिली। इससे प्रतिपक्षीके भक्त अभयड़ दण्डनायकने कुटिलतासे संघको यह कह कर अटका लिया कि— 'महाराजाधिराज भीमदेवकी आज्ञा है कि आप लोग हमारी आज्ञा बिना यहाँसे

नहीं जा सकेंगे।' इतना ही नहीं उसने संघकी चौकीके लिये १०० सैनिकोंकी गारद डाल दी। इस प्रकार १४ दिन संघ अटके रहा।

इधर अपने बचावके लिये अभयड दंडनायकने प्रतिहार जगदेवके पास, (जो उस समय गूर्जर कटकके साथ मालव देशमें गया हुआ था) पत्रके साथ, अपना सेवक भेज कर कहलाया—'यहां सपादलक्ष—अजमेरका एक विशाल और वैभवशाली संघ आया हुआ है; यदि आपकी आज्ञा हो तो सरकारी घोडोंके लिये दाल-दानेका प्रबन्ध करलूं—अर्थात् लूट कर या तंग कर द्रव्य एकत्र करूं।' जगदेव अपने कर्मचारीसे पत्र सुनकर आगबबूला हो गया, और उसी क्षण अपने आज्ञाकारी व्यक्तिके हाथसे एक आज्ञापत्र लिखा भेजा कि—'मैंने बडे कष्टसे अजमेर नरेश पृथ्वीराजके साथ सन्धि की है; यह संघ भी वहीं का है; अतः इस संघकी तनिक भी छेडछाड मत करना। यदि करोगे तो तुम्हें गधेकी खाल्में सिला दिया जायगा।' जब अभयडको यह आज्ञा मिली तो उसने फौरन संघसे क्षमा मांग कर उसे रवाने किया।

लवणखेड़का राणा केल्हण।

सं० १२४९ में श्रीजिनपति सूरिजी लवणखेडासे विहार करके पुष्करिणी, विक्रमपुर आदिमें विचरते हुए सं० १२५१ में अजमेर गये। दो मास वहां पर मुसलमानोंके उपद्रवके कारण बडे कष्टसे वीते। फिर पाटण, भीमपल्ली, कुहियप होकर पुनः राणा केल्हणके आग्रहसे लवणखेटक पधारे। वहां 'दक्षिणावर्त्तआरात्रिकावतारणोत्सव' बडी धूमधामसे मनाया।

नगरकोटका राजा पृथ्वीचन्द्र।

सं० १२७३ में बृहद्द्वार (हरिद्वार) में गंगादशहरे पर गंगास्नानके लिये बहुतसे राणाओंके साथ महाराजाधिराज श्रीपृथ्वीचंद्र नगरकोटसे आया। उसके साथ पं० मनोनानन्द नामक एक काश्मीरी पण्डित भी था। उसने श्री जिनपति सूरिके उपाश्रय पर शास्त्रार्थके चैलैञ्जका नोटिश लगा दिया। तब सूरिजीके शिष्य जिनपालोपाध्याय आदि शास्त्रार्थके लिये महाराजा पृथ्वीचन्द्रकी सभामें आये, और वाद-विवादमें उक्त पण्डितको परास्त कर दिया। महाराजाने पण्डितके चैलैञ्जको फाड़ कर उपाध्यायजीको जयपत्र दिया।

पालनपुरका राजकुमार जगसिंह।

सं० १२८८ में पालनपुरके सेठ भुवनपालने, राजकुमार जगसिंहकी उपस्थितिमें ध्वजारोपणका उत्सव बड़े समारोहसे मनाया।

जावालिपुरका राजा उदयसिंह।

सं० १३१० वैशाख सुदि १३ शनिवार स्वाति नक्षत्रके दिन, श्रीमहावीर विधिचैत्यमें, राजा व प्रधान पुरुषोंकी उपस्थितिमें राजमान्य महामन्त्री जैत्रसिंहके तत्त्वावधानमें, पालनपुर, वागडदेश आदिके श्रावकोंके एकत्र होनेपर श्रीचौवीस जिनालय आदिकी प्रतिष्ठा, दीक्षादि महामहोत्सवपूर्वक हुई।

सं० १३१४ में माघ शु० १३ को राजा उदयसिंहके प्रमोदपूर्ण सान्निध्यसे कनकगिरिके मुख्य मन्दिर पर ध्वजारोप हुआ।

स्वर्णगिरिका चाचिगदेव।

सं० १३१६ के माघ सुदि ६ को, राजा चाचिगदेवके राजत्वकालमें स्वर्णगिरिके शान्तिनाथ मन्दिर पर स्वर्णमय ध्वजदंड व कलश स्थापित किये गये।

भीमपल्लीका राजा माण्डलिक।

सं० १३१७ वैशाख सुदि १० सोमवारको, भीमपल्लीमें राजा माण्डलिकके राजत्वकालमें दण्डनायक श्रीमीलगण (?) के सान्निध्यसे महावीर जिनालय पर स्वर्णदण्ड-कलशादि चढाये गये।

चित्तौड़का महाराजा समरसिंह।

सं० १३३५ फा० कृ० ५ को, महाराजा समरसिंहके रामराज्यमें, चित्तौड के चौरासी मुहल्लेमें जलयात्रापूर्वक स्थानीय ११ मन्दिरोंके ११ छत्र व मुनिसुव्रत, आदिनाथ, अजितनाथ, वासुपूज्य प्रभुकी प्रतिमाएं स्थापित की गईं।

चित्तौड़के युवराज अरिसिंह।

सं० १३३५ फाल्गुन शुक्ल ५ को, सकलराज्यधुराको धारण करनेवाले राजकुमार अरिसिंहके सान्निध्यसे आदिनाथ मन्दिरपर ध्वजारोप हुआ।

बीजापुर नरेश सारंगदेव।

सं० १३३७ ज्येष्ठ कृष्ण ४ शुक्रवारको, महाराजाधिराज सारंगदेवके रामराज्यमें, महामात्य मल्लदेव व उपमंत्री विन्ध्यादित्यके कार्यकालमें, बीजापुरमें श्रीजिनप्रबोध सूरिजीका नगरप्रवेश बड़े समारोहसे हुआ। मं० विन्ध्यादित्य सूरिजीकी स्तुति करता था।

१.४.११.

शम्यानयन (सिवाना) का राजा श्रीसोम ।

श्रीजिनप्रबोध सूरिजीने (सं० १३४० में) सन्मुख आये हुए श्रीसोममहाराजाकी बीनति स्वीकार कर शम्यानयनमें चातुर्मास किया ।

जेसलमेर नरेश कर्णदेव ।

सं० १३४० के फाल्गुनमें श्रीजिनप्रबोध सूरिजी जेसलमेर पधारे। नगर प्रवेश बड़े समारोहसे हुआ । राजा कर्ण ससैन्य दर्शनार्थ सामने आया । महाराजाके आग्रहसे चातुर्मास भी उन्होंने वहीं किया ।

जावालिपुरका राजा सामन्तसिंह ।

सं० १३४२ ज्येष्ठ कृष्णा ९ को, जालौरमें, सुप्रसन्न महाराजा सामन्तसिंहके सांनिध्यसे अनेक जिनप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा और इन्द्रमहोत्सव सम्पन्न हुआ ।

शम्यानयनका महाराजा सोमेश्वर चौहान ।

सं० १३४६ फाल्गुन शुक्ल ८ को, महाराजा सोमेश्वरकारित विस्तृत प्रवेशोत्सवसे श्रीजिनचन्द्र सूरिजी शम्यानयन पधारे । सा० बाहड, भां० भीमा, जगसिंह, खेतसिंह सुश्रावकोंके बनवाए हुए प्रासादमें उन्होंने शान्तिनाथ प्रभुकी स्थापना की ।

जेसलमेर नरेश जैत्रसिंह ।

सं० १३५६ में राजाधिराज जैत्रसिंहकी प्रार्थनाको मान दे कर, श्रीजिनचंद्र सूरिजी, मार्गशीर्ष शुक्ला ४ को, जैसलमेर पधारे । पूज्यश्रीके स्वागतार्थ महाराजा ८ कोश सन्मुख गया था । सं० १३५७ मार्गशीर्ष कृष्णा ९ को, महाराजा जैत्रसिंहके भेजे हुए वाजित्रोंकी ध्वनिके साथ मालारोपण व दीक्षा महोत्सव संपन्न हुआ ।

शम्यानयन नरेश शीतलदेव ।

संवत् १३६० में महाराजा शीतलदेवकी वीनति और मन्त्री नाणचन्द्र आदिकी अभ्यर्थनासे श्रीजिनचन्द्र सूरिजी शम्यानयन पधारे और शान्तिनाथ भगवानके दर्शन किये ।

सुलतान कुतुबुद्दीन ।

सं० १३७४ में, मन्त्रिदलीय ठक्कुर अचलसिंहने बादशाह कुतुबुद्दीनसे सर्वत्र निर्विघ्नतया यात्रा करनेके लिये फरमान प्राप्त कर नागौरसे संघ निकाला । जब

मारवाड़ और वागड़ देशके नाना नगरोंको पार कर, संघ दिल्लीके समीपवर्त्ती तिलपंथ नामक स्थानमें पहुंचा तो इर्ष्यालु द्रमकपुरीय आचार्य (चैत्यवासी)ने यह कह कर उकसाया कि – 'जिनचन्द्र सूरि नामक साधु स्वर्णका छत्र सिंहासन धारण करता है।' बादशाहने संघको रोक लिया और ठक्कुर अचलसिंहादिके साथ सूरिजीको अपने पास बुलाया। सूरिजीकी शान्त मुद्रा देख कर सम्राट् अत्यन्त प्रभावित हुआ और बातचीत होने पर उसे पूर्ण विश्वास होगया कि द्रमकपुरीय आचार्य मिथ्याभाषी है। अलाउद्दीनके पुत्र सुलतान कुतुबुद्दीन ने कहा – 'इन श्वेताम्बर मुनियोंमें उसके कथनानुसार एक भी बात नहीं पाई जाती' – अतः दिवानको हुक्म दिया कि इनके आचार व्यवहारकी अच्छी तरह परीक्षा कर अन्यायीको दण्ड दिया जाय। राज्याधिकारियोंने सूरिजीको निर्दोष पाकर द्रमकपुरीय आचार्यको गिरफ्तार कर लिया। दयालु सूरिजीने श्रावकोंसे कह कर उसे छुड़वा दिया। सूरिजीने दिल्लीकी खण्डासरायमें चातुर्मास किया। पश्चात् सुलतान व संघके कथनसे प्राचीन तीर्थस्थान मथुराकी यात्रा करने पधारे।

मेडताका राणा मालदेव चौहान।

सं० १३७६ में राणा मालदेवकी प्रार्थनासे श्रीजिनचन्द्र सूरिजी मेड़ता पधारे और वहां राणा व संघकी प्रार्थनासे २४ दिन ठहरे।

दिल्लीपति गयासुद्दीन बादशाह।

सं० १३८० में दिल्लीनिवासी सेठ रयपतिके पुत्र सा० धर्मसिंहने प्रधान मन्त्री नेब साहबकी सहायतासे सम्राट् गयासुद्दीन द्वारा तीर्थयात्राका फरमान निकलवाया, और श्रीजिनकुशल सूरिजीके नेतृत्वमें शत्रुंजयादि तीर्थोंका संघ निकाला।

सं० १३८१ में भीमपल्लीके सेठ वीरदेवने भी सम्राट्से तीर्थयात्राका फरमान प्राप्त कर श्रीजिनकुशल सूरिजीके उपदेशसे शत्रुंजयादि तीर्थोंके लिये संघ निकाला। विशेष जाननेके लिए हमारी '**दादा जिनकुशलसूरि**' नामक पुस्तक देखना चाहिये।

सौराष्ट्रनरेश महीपालदेव।

सं० १३८० में शत्रुंजय यात्राके प्रसंगमें, सेठ मोखदेवको, सौराष्ट्रमही-मंडनभूपाल महीपालदेवकी दूसरी देह सदृश अर्थात् अत्यंत प्रभावशाली लिखा है।

बाहड़मेरनरेश राणा शिखरसिंह।

सं० १३९१ में श्रीजिनपद्म सूरिजी वाग्भटमेरु पधारे। उस समय चौहान-कुलप्रदीप राणा शिखरसिंह, राजपुरुष व नागरिक जनोंके साथ, सूरिजीके सन्मुख गया और महोत्सवपूर्वक उनका नगरप्रवेश कराया।

साचोर (सत्यपुर) का राणा हरिपालदेव।

सं० १३९१ में श्रीजिनपद्म सूरिजी बाहड़मेरसे सत्यपुर पधारे उस समय राणा हरिपालदेव आदि उनके स्वागतार्थ सन्मुख गये।

आशोटाका राजा रुद्रनन्दन।

सं० १३९३ में पाटणसे नारउद्र होते हुए श्रीजिनपद्म सूरिजी आशोटा पधारे। उस समय वहांका राजा रुद्रनन्दन, [अपने पुत्र ?] राज० गोधा सामन्त-सिंहादिके साथ स्वागतार्थ पूज्यश्रीके सन्मुख आया।

बूजद्रीका राजा उदयसिंह।

सं० १३९३ में श्रीजिनपद्म सूरिजी बूजद्री पधारे। वहां सुश्रावक मोखदेवने राजा उदयसिंह एवं समस्त नागरिकोंके साथ सूरिजीका बड़े समारोहसे नगर प्रवेश कराया। इसके बाद अन्यत्र विहार करके सूरिजी फिर वहां पधारे तब भी राजा उदयसिंह प्रवेशोत्सवमें सम्मीलित हुआ था।

त्रिशृङ्गम नरेश रामदेव।

संवत् १३९३ में, श्रीजिनपद्म सूरिजी त्रिशृङ्गम पधारे। मन्त्रीश्वर सांगणके पुत्र मण्डलिकादिकने, महाराजा महीपालके अंगज महाराजा रामदेवकी आज्ञासे राजकीय वाजित्रोंके साथ बड़े समारोहपूर्वक प्रवेशोत्सव किया। सूरिजीको संघके साथ चैत्यपरिपाटी करते समय उनकी प्रशंसा सुनकर महाराजाके चित्तमें उनके दर्शनकी उत्कण्ठा जागृत हुई। महाराजाने सेठ मोखदेव और मन्त्री मण्डलिक आदिको कहा—'छोटी उम्रवाले होते हुए भी आपके गुरु बड़े चमत्कारी सुने जाते हैं, मुझे उनके दर्शनोंकी अभिलाषा है। आप कहें तो मैं उनके पास चलूं या वे कृपा कर मेरी सभामें पधारें!'

श्रावकोंकी प्रार्थनासे सूरिजी राजसभामें पधारे। नृपतिने उन्हें आते देख कर, राजसिंहासनसे नीचे उतर कर, उनकी चरणवन्दना की। पूज्यश्री आशीर्वाद देकर चौकीपर विराजे। महाराजा सारंगदेवके व्यासने अपनी रचना पढ कर सुनाई, जिसमें श्री लब्धिनिधानोपाध्यायजीने कई त्रुटियां बतलाई। महाराजा

रामदेव कहने लगे—'उपाध्यायजीका वचनचातुर्य और शास्त्रीय ज्ञान असाधारण है। इन्होंने तो हमारे व्यासजीकी भी त्रुटियां बतलाईं!' इसी प्रकार अन्य सभासदोंने उपाध्यायजीकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

सूरिजीने तात्कालिक कवितामें राजा रामदेवका वर्णनात्मक श्लोक कहा। जिसे सुन कर राजसभामें उपस्थित सभ्यगण आश्चर्य निमग्न हो गये। राजा रामदेवने सिद्धसेन आदि पण्डितोंसे उस श्लोकको विकटाक्षरोंमें लिखवाया। सूरिजीने नानार्थक नाममाला कोषके बलसे उसके अनेक अर्थ कह सुनाये, जिससे सब लोग एक नजर होकर पूज्य श्रीके मुखकमलकी ओर निहारने लगे। इसके बाद सूरिजीने लहियोंसे प्रत्येक श्लोकके एक एक अक्षरको भिन्न भिन्न लिखवा कर और उन्हें मिला कर तीसरी बार तीन श्लोकोंको सम्पूर्ण करवा दिया। फिर उन तीनों श्लोकोंको एक पट्टी पर लिखवा कर नृपतिके मनोरञ्जनार्थ राजहंस-मय चित्रकाव्यकी रचना की। सूरिजीकी इस प्रतिभा और बुद्धिवैभवको देख कर राजा और सभाके सारे लोगोंके चित्तमें चमत्कृति उत्पन्न हुई।

महामन्त्री वस्तुपालका उल्लेख।

सं० १२८९ में श्रीजिनेश्वर सूरिजीके खंभात पधारने पर महामात्य वस्तु-पालने बड़े समारोहसे उनका नगर प्रवेशोत्सव किया था। गुर्वावलीमें, श्रीजिन-कुशल सूरिजीके खंभात पधारने पर भी इस उत्सवकी याद दिलाई गई है।

राजकीय हलचलें और उपद्रव।

म्लेच्छोपद्रव होनेका उल्लेख।

सं० १२२२ में श्रीजिनचन्द्र सूरिजीने रुद्रपल्लीसे विहार कर बोरसिदा ग्रामके पास संघके साथ पड़ाव डाला। सूरिजीने साथ वालोंको आकुल व्याकुल देख कर पूछा—'आप लोग भयभीत क्यों हो रहे हैं?' उन लोगोंने कहा—'भग-वन्! देखिये न इस ओर आकाश धूलिसे आच्छादित हो गया है—मालूम देता है समीप ही में कोई म्लेच्छ कटक है।' सूरिजीने कहा—'महानुभावो! धैर्य्य रखो, अपने बैल आदि चतुष्पदोंको एकत्र कर लो; प्रभु श्रीजिनदत्त सूरिजी सबका भला करेंगे।' पूज्यश्रीने मन्त्र ध्यान पूर्वक अपने दण्डेसे संघके पड़ावके चारों तरफ कोटके आकार वाली रेखा खींच दी। सब लोग उसमें छिप गये। संघके लोगोंने आस-पाससे जाते हुए हजारों म्लेच्छोंको देखा पर सूरिजीके प्रभावसे वे लोग संघको न देख सके; केवल कोटको देखते दूर चले गये, जिससे सब लोग निर्भय हुए।

सं० १२५१ में माण्डव्यपुरसे अजमेरके लिये श्रीजिनपति सूरिजीने विहार किया। वहां म्लेच्छोंका उपद्रव होनेसे २ मास बडे कष्टसे बीते।

सं० १२५३ में मुसलमानोंने पाटणका भंग कर दिया। गुर्वावलीमें "पत्तनभंगानन्तरं धाटीग्रामे चतुर्मासी कृता" लिखा है।

सं० १३७१ ज्येष्ठ वदि १० को, जावालिपुरमें कलिकाल-केवली श्रीजिन-चन्द्र सूरिजीकी विद्यमानतामें दीक्षा, मालारोपणादि उत्सव हुए। फिर म्लेच्छोंने उस नगरका भंग कर दिया – "ततो म्लेच्छकृतो भंगः श्रीजाबालपुरे जातः।"

सं० १३७७ में, पाटणको "म्लेच्छबहुलेऽपि समग्रजनपदे" लिखा है और सं० १३८० के वर्णनमें "प्रभूतम्लेच्छव्यवहारीसमूहसंकुले श्रीपत्तने श्री-महाराजाधिराजसैन्यलीलायमान आवासितः" लिखा है।

सं० १३८४ में श्रीजिनकुशल सूरिजीने सिन्ध प्रांतमें विहार किया। उस समय सिन्ध देशको "महाम्लेच्छकुलाकुलगुरुतरश्रीसिन्धुमण्डलोपरि" लिखा है। उच्च नगरके प्रवेशोत्सवके समयमें "हिन्दूराज्यकालमें श्रीजिनपति सूरिजी पधारे थे" लिखा है, इससे निश्चित है कि उस समय वहां मुसलमानोंका शासन हो चुका था।

पाटणमें भीषण दुष्काल।

सं० १३७७ में श्रीजिनकुशल सूरिजीके महोत्सवके समय पाटणमें महा-दुर्भिक्ष था। लिखा है कि – "श्रीपत्तने समागताः, तत्र च विषमकाले महादुर्भिक्ष-प्रवर्त्तमानेऽपि"।

भौगोलिक नामावलि

इस गुर्वावलीमें बहुतसे नगर और ग्रामोंके नाम आये हैं जिनकी सूची यहां क्रमानुसार दी जाती है। जिन ग्राम नगरोंका नाम कई वार आया है उनको हमने एक ही वार लिखा है। अधिकांश स्थान अपने प्राचीन नामोंसे व कुछ परिवर्तित नामोंसे अब भी प्रसिद्ध है। जो स्थान हमें अज्ञात हैं उनके आगे * ऐसा चिह्न कर दिया है; जिन महाशयको ज्ञात हो हमें सूचित करनेकी कृपा करें।

अम्भोहर देश	उच्चनगर	नागह्रद
दिल्ली, योगिनीपुर	व्याघ्रपुर	दारिद्रेरक
वादली	त्रिभुवनगिरि*	बृहद्द्वार

पाली	उज्जयिनी	पालणपुर
अणहिल्लपाटण	गणपद*	कणपीठ*
आशापल्ली	मथुरा	श्रीमालपुर
आबू	मेवाड	वाग्भटमेरु
डिंडियाणा	सागरपाडा*	बीजापुर
गिरनार (उज्जयन्त)	बब्बेरक	नगरकोट
जावालिपुर (स्वर्णगिरि)	महावन	भीमपल्ली
शंभाण*	इन्द्रपुर	शान्तनपुर
स्तंभनपुर (खंभात)	तगला	तारणतीर्थ
पाल्हउद	नरपालपुर*	देवपत्तन
आशिका	बोरसिदा*	भृगुकच्छ
मरुकोट	पुष्करिणी	पूर्णगिरि*
माइयडग्राम	धनपाली*	बद्रदहा*
चित्तौड	फलवर्द्धि	जाहोड़ा*
प्रल्हादनपुर	डेड़ा नगर	वरडिया स्थान*
वागड़देश	शत्रुंजय	रामशयन
धारानगरी	जेसलमेर	शम्यानयन
नागपुर	माण्डव्यपुर	रत्नपुरी
नरवर	चन्द्रावती	खदिरालुका
विक्रमपुर	कासहृद	वटपद्र
धवलक	मांडवी	थीरापल्ली*
अजमेर	लवणखेटक	करहटा
सपादलक्ष	श्रीपत्तन (पाटण ?)	बनारस
रुद्रपल्ली*	धाटीग्राम*	कौशाम्बी
राजगृह(वैभारगिरि)	कुहियपग्राम*	काकिन्दी
खण्डासराय (दिल्लीमें)	देवगिरि	अयोध्या
पावापुरी	भीमपुर*	लूणीवड़ी
नालिन्दा	त्रिशृंगम*	द्रमकपुर
क्षत्रियकुण्ड	आरासण	तिलपथ

रत्नपुर	खाटू	यमुनापार*
हस्तिनापुर	गुड्हा*	धामहना*
सत्यपुर	कोरण्टक	रोहतक, रोहद
संखेश्वरपुर	हम्मीरपुर	मुद्गस्थला
रूणापुर*	काठियावाड़	झुंझणु
सिरियाणक*	खंगारगढ	नाणा
शेरीषक	मंगलपुर	नवहा*
पीपलाउली	पीथोथा	बूजद्री*
श्रीराणुकोट*	वेलाकुल	भूधराज*
पाटला*	सिरसा	आदित्यपाटक*
वायड़	धांधूका	मारुवत्रा*
देवराजपुर	पाडल	जीरापल्ली
व्यासपुर*	लाटह्रद	मेड़ता
कन्यानयन	वहिरामपुर*	नारऊद*
नरभट	मलिकपुर*	कडुयारी*
डालामऊ*	सिलारवाहण*	आशोटा*
कोशवाणा	खोजावाहण*	

*

दो राजस्थानी-हिन्दी गजलें

*

संशोधनप्रेमी **मुनि श्री कान्तिसागरजी**ने भारतीय विद्यामें प्रकाशित करनेके लिये दो गजलें हमें भेजी हैं जो इसके नीचे दी जातीं हैं। ये दोनों गजलें स्थलवर्णनात्मक हैं। पहली गजलमें बंगालकी और उसमें भी उसके मुख्य स्थान मुर्शिदाबादका वर्णन है; दूसरीमें मेवाडकी राजधानी उदयपुरका वर्णन है।

इस प्रकारके स्थलोंके वर्णनकी पद्धति भारतमें बहुत प्राचीन कालसे चली आ रही है। पुराणकारोंने इसका माहात्म्यके नामसे व्यवहार किया है और जैन ग्रन्थकारोंने इसका कल्प नामसे व्यवहार किया है। काशीमाहात्म्य, प्रयागमाहात्म्य, गयामाहात्म्य, श्रीस्थलमाहात्म्य – इत्यादि नामसे सेंकडों ही स्थानोंके ऐसे माहात्म्य वर्णन पुराणोंमें लिखे हुए मिलते हैं। पुराणोंकी दृष्टि धार्मिक है इसलिये उनके वर्णनमें प्रधानतया स्थानका दैवी माहात्म्य और पावित्र्य बतलाया गया है और उसके अंगभूत जो नदी, सरोवर, देवस्थान और पूजनीय वृक्षादि हैं उनका ही विशेष वर्णन किया गया है। इस माहात्म्यवर्णनमें, कहीं कहीं कुछ प्राकृतिक वर्णन और कुछ ऐतिहासिक स्मरणका भी यथातथा उल्लेख किया हुआ मिल जाता है। जैन ग्रन्थकारोंके कल्पात्मक स्थानवर्णन भी प्रायः इसी धार्मिक दृष्टिको सामने रख कर लिखे हुए होते हैं और उनमें भी विशेषतया स्थान या तीर्थका माहात्म्य बतलाया गया होता है। परंतु साथमें उनमें कुछ ऐतिहासिक उल्लेखोंकी उपलब्धि भी अधिक परिमाणमें पाई जाती है। जिनप्रभ सूरिका **विविध तीर्थकल्प** नामका ग्रन्थ इस विषयका मुख्य उदाहरणभूत है। पुराणोंकी और कल्पग्रन्थोंकी पद्धतिका अनुसरण पिछले देशीभाषाके कवियोंने भी किया और उन्होंने भी लोकभाषामें ऐसे स्थलवर्णनात्मक और तीर्थमाहात्म्यविषयक अनेक रचनाएं कीं। इन्हीं रचनाओंके जैसी ये गजलात्मक कृतियां समझनी चाहिए। फरक इनमें इतना है कि ये कृतियां माहात्म्यकी दृष्टिसे नहीं किन्तु केवल मनोरंजन और स्थलपरिचयकी दृष्टिसे बनाई गई हैं। जैन अजैन ऐसे अनेक कवियोंकी अनेक कृतियां पुराने पुस्तक संग्रहोंमें उपलब्ध होतीं हैं।

पिछली कई शताब्दियोंसे भारतमें, मुसलमानोंका प्राबल्य बढ जानेके कारण और उनके निकट सहवासमें अधिकाधिक आनेके कारण हिन्दू लेखकोंका भी

उनकी भाषा और संस्कृतिके साथ बहुत कुछ परिचय बढ गया था और इसलिये उनमें अधिक प्रचलित ऐसे रेखता और गजल आदि पद्यबन्ध हिन्दुओंको भी बडे प्रिय लगने लगे थे। इसलिये उन्होंने भी ये कृतियां अपने पुराने ढंगके दोहा, चोपाई, छप्पय और सवैया आदि प्रचलित छन्दोंमें न बना कर रेखता और गजलकी चाल-ढालमें बनाई मालूम देती है। भाषा भी प्रायः इनकी उर्दूमिश्रित हिन्दी है। यद्यपि भाषा या साहित्यकी दृष्टिसे ये कोई उत्तम प्रकारकी रचनाएं नहीं कही जा सकतीं; तथापि लोकसाहित्य और ऐतिह्य साधनकी दृष्टिसे इनका संग्रह और संशोधन अवश्य उपयुक्त है।

नीचे दी हुई गजलोंमेंसे पहली गजलका कर्ता कोई **निहाल** नामका जैन यति है। इसने अपना और कोई परिचय नहीं दिया। इसलिये यह नहीं जाना जाता कि यह किस गच्छ या समुदायका था और कब इसने इसकी रचना की। पर गजलके वर्णनसे मालूम होता है, कि वि० सं० १७८२–९५ के बीचमें कभी इसने इस गजलको बनाया होना चाहिए। इसमें मुख्यतया बंगालके मुर्शिदाबादका वर्णन किया गया है और उस समय वहां पर नवाब **सुजासाह** राज्य कर रहा था। यह सुजासाह और कोई नहीं पर इतिहासोंमें जिसे **शुजाखान** या **शुजा-उद्-दौला** कहा गया है वही है। बंगाल प्रांतके इतिहाससे ज्ञात होता है कि शुजाखानने ई० स० १७२६ से १७३९ तक मुर्शिदाबादकी नवाबी की। यह शुजाखान, मुर्शिदाबादको वसानेवाले मुर्शिदकुलीखान – जिसका मूल नाम जाफरखान था – का दामाद था और उसके पीछे उसकी गद्दी पर यही नवाब बना था। इस गजलमें, इसके राज्यकारभारकी बडी प्रशंसा की गई है और इसके राज्यको **रामराज्य**सा लोकप्रिय बताया गया है। कवि कहता है कि – इसके राज्यमें सब लोक बडे सुखसे रह रहे हैं और वे इसे अवलीया, पीर, जींद और परदुःख हरनेवाला आदि कहते रहते हैं। इसकी रैयत दिलसे इसे यह आशीष देती रहती है कि – इसका राज्य जुगानजुग तक अटल बना रहो, यह धनदौलत और पुत्र परिवारसे वढता रहो और इसकी उम्र एक हजार वरसकी हो। एक मुसलमान नवाबके बारेमें एक हिन्दू कविका यह कथन अवश्य बडा औदार्यद्योतक है और साथमें वास्तविकताका ज्ञापक है।

इस गजलमें, बंगाल और उसकी राजधानीकी तत्कालीन परिस्थितिका अच्छा रेखाचित्र है। इसके पढनेसे पता लगता है कि उस समय मुर्शिदाबादकी आबादी और समृद्धि कैसी बढी चढी थी, लोक कैसे सुखी थे, देशका मालिक मुसलमान नवाब था, लेकिन क्या हिंदू और क्या मुसलमान—सारी प्रजा उससे कैसी संतुष्ट थी, वह अपनी रैयतको किस तरह चाहता था और किस तरह सबको समानदृष्टिसे देखता था। उसके राज्यमें न कोई दुःखी था और न कोई त्रस्त था। न कहीं चोर-लुटेरोंका डर था और न कहीं राज्यकर्मचारियोंका जुल्म था। जिनको बंगालके उस समयके इतिहासका अच्छा ज्ञान है उनको ये सब बातें अच्छी तरहसे ज्ञात हैं।

बंगालकी इस सुख-शान्ति भरी हुई दशाका परिवर्तन होना, शुजाखानकी मृत्युके साथ ही शुरू हो गया था। जो अंगरेज सौदागर अपनी कोठी डाल कर व्यापारके बहाने मुर्शिदाबादमें बैठे हुए थे उनके कुटिल कारनामे देशके और और भागोंमें बडे जोरजोरसे चल रहे थे। अपनी कुटिल चालोंसे ये देशमें चलती हुई दुर्बल नीतिका पूरा पूरा फायदा उठा रहे थे। शुजाखानके बाद उसका लडका **सर्फराजखान** उसका उत्तराधिकारी बना लेकिन उसकी शासननीति ठीक नहीं रही और उसने अपने बापके मर्जीवाले बडे आदमियोंमेंसे—जिनमें जगत्सेठ भी शामिल थे—कुछके साथ अन्यायाचरण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक वर्षके भीतर ही सर्फराजखान मारा गया और उसके स्थान पर अलिवर्दिखान नामका एक सुबेदार बना—जो शुजासाहका बडा प्रियमित्र था और जिसका उत्तराधिकारी इतिहासप्रसिद्ध **शिराज-उद्-दौला** हुआ। इसी समयमें धूर्त अंगरेज मुत्सद्दी **क्लाइव** अपनी कुटिल नीतिका जाल देशमें फैला रहा था जिसके परिणाममें बंगालका वह स्वातंत्र्य और स्वराज्य सदाके लिये लुप्त हो गया। हमारे देशके इतिहासके इन गहरे घावोंकी अधिक चर्चा करनेका यहां कोई उपयुक्त अवसर नहीं है इसलिये 'इत्यलं प्रसंगेन' कह कर हम संक्षेपमें इस गजलमें कही गई बातोंका सार लिख देते हैं।

१. बंगाल देशकी गजलका सार

सद्गुरु, शारदा और गौरीपुत्र (गणपति)को नमस्कार करके कवि बंगाल देशकी सरस गजल बनानेका उपक्रम करता हुआ कहता है कि—बंगाल एक

अव्वल दर्जेका देश है जिसमें बहुतसे नदी-नाले और जंगल रहे हुए हैं। इसके रास्ते सकडी गलियोंसे हैं। इसके आखिरमें नवलख कामरु (आसाम) देश है जिसमेंसे आनेका एक ही रास्ता है और बिना दस्कत लिये देशके अंदर नहीं आने दिया जाता। इस रास्तेमें बांई ओर गंगा बहती है और दाहिनी ओर ऊंचे ऊंचे पर्वत खडे हैं।

पहले राजमहल स्थान मिलता है जिसे राजा मानने बसाया था। यहां पर बहुतसे बाडी – बाग हैं और अच्छे अच्छे मंदिर और महल हैं। गुदरी, चौक और बाजार आदि देखने लायक हैं। गोलागंज जगहमें मच्छीभवन स्थान है जहां सुजासाह रहा करते हैं। पडवा नामक जगहमें हजरत कुतुबका मकान है जहां पर बडा मेला लगता है और लोग यात्राके लिये आया करते हैं। उसके बाद गौडका किला है जिसके पास गंगा बह रही है। इसका मैदान १२ कोसके घेरेमें है जिसमें बीच बीचमें कई कमठान (मकानात आदि) बने हुए हैं। हुसैन नामका पहले एक बादशाह हो गया है जिसने इसका कोट बनाया है – ऐसा बुजर्ग लोग जिक्र किया करते हैं। फिर मालदह नामक शहर मिलता है जो एक बडी जगह है। यहां पर तरह तरहके ऐसे कपडे बनते हैं जिनकी तारीफ करना मुश्किल है। मसरू, खार, सक्कर, अतलस, इलायची आदि बहुत चीजें यहां बिकती हैं और सौदागर माल खरीदते रहते हैं। उनके साथ दलाल भी बहुत फिरते रहते हैं।

इसी बंगला देशके बीचमें प्रसिद्ध शहर मकसूदाबाद (मुर्शिदाबाद) है जिसको जाफरखानने आबाद किया है। इसके पास गंगा बह रही है जिसमें स्नान करनेसे पाप दूर हो जाते हैं। इस नदीमें तरह तरहकी बनी हुई बहुत नावें चलती रहतीं हैं। इनमें कोसे, परंदे और लाल किस्मकी जो नावें हैं उनके बनानेमें खूब दाम लगते हैं। बजरे और महलगिरी नामकी नावें होतीं हैं उनमें अच्छी कारीगिरीका काम किया हुआ होता है। बादशाही जो नावें हैं उनकी तो तारीफ ही क्या की जाय। वे तो देवविमान जैसी माछ्म देती हैं।

शहरका बाजार देखो तो उसमें अठारहों वर्णके लोक रहते दिखाई देते हैं। बडी बडी कोठियां बनी हुई हैं। कई कटला, कोठ और टंकशाल आदि हैं जिनमें बडे बडे व्यापारी, शाह, सर्राफ आदि बैठे रहते हैं और वे रूपया, महोर

और दामोंकी परीक्षा करते रहते हैं। ये देश-देशावरोंकी हुंडियां लेते देते हैं। बडे बडे बजाज बनठन कर बैठे रहते हैं और खूब कपडोंका व्यापार करते हैं। ये मलमल, डोरीया, चौतार, बाफता, गढवार, जरी, जरब, मखमल, खीम-खाप, फताक आदि तरह तरहके कपडे बेचते हैं। जवहरी (जौहरी) लोक बैठे बैठे लाल, हीरा, चूनी, मोती, पंना, मणि आदि अनेक प्रकारका जवाहिर परखते हैं और लेते देते हैं। महाजनोंकी खूब टोलियां बनी हुई हैं और वे बडे मजेमें रहते हैं। ब्राह्मण, बनिया, क्षत्रिय और शूद्र सब जातिके लोग; तथा, गंधी, मसारी, अत्तार, सुंखडीगर, सुनार, ठठार, सोनी, सालवी, सुतार, कांदू, कागदी, कुंभार, नाई, नायता, नट्टुवा, छींपी, छापगर, पटुवा, तेली, तंबोली, तुनिया, धोबी, धनकुटे, धुनिया, माली, मलमोजे, सूचिगर, हलवाई आदि सब पेशोंके लोक अपना अपना कामधंधा करनेमें मशगुल है।

शहरमें, अच्छे अच्छे मन्दिर, मस्जीद, धर्मशाला और मिनारे आदि बडी कारीगिरीके बने हुए हैं। जोगी, जती, नाथ, अलेख, जंगम, भगत, दंडी, कन-फटे, मस्तान आदि अनेक भेखवाले इधर उधर घूमते फिरते दिखाई देते हैं।

शहरका वह भाग जो बाळूचर कहलाता है उसमें खास कर कसेराहाट देखने लायक है जिसमें लोटा, थाल, झारी, गगरी, चरी, दीवट आदि खूब अच्छे घाटवाले नाना प्रकारके वासन-वर्तन बिकते रहते हैं। वहां तांती लोक (कपडा बुननेवाले) भी बहुत रहते हैं जो जामे आदिका बडा कीमती कपडा बुनते हैं।

महिमापुर नामक बस्तीमें जैनधर्मका बडा मन्दिर है और जहां जगत्सेठ रहते हैं। इन सेठके दरवाजे पर सारे खलकके लोक भेंट करनेके लिये खडे रहते हैं। याचक लोक जय जय किया करते हैं और उन्हें यथायोग्य खूब दान दिया जाता है।

कासमबजार और सैदाबाद आदि बस्तीमें गुजराती लोक रहते हैं और उनके साथ ही जितने टोपीवालोंकी जातिके (विदेशी) लोक हैं वे रहते हैं। इन टोपीवालोंमें – आरब, आरमनी, अंगरेज, हबसी, हुरमजी, उलंदाज, सीदी, फरासीस, अलेमान, मुगल, पठान आदि सब तरहके सौदागर हैं। कंपनीकी कोठी बडी भारी बनी है और उसमें लाखों रूपये लगे हैं। ये लोक दूर दूरके

बंदरोंसे अपना अपना माल लाते हैं और यहां पर रीझा रीझा कर लोकोंको बेचते हैं। करोडों रूपयेका ये व्यापार करते हैं और यहांसे रेशमका कपडा खरीदते हैं।

बंगाली लोक भी यहां वैसे ही रहते हैं और जिनके घर घर पर बाग और बाडी होते हैं। ये लोक बहुत नियम और आचार रखते हैं पर इनके दिलमें दया नहीं होती (—बंगालियोंके लिये यह ऐसा कटाक्षमय कथन इस गजल-वालेने क्यों किया सो समझमें नहीं आता। शायद बंगाली लोग मछली बहुत खाते हैं और वे अपने घरके बाग-बगीचेके तालावमेंसे उन्हें रोज पकडते रहते हैं, जिसे देख कर, इस जैन यतिको घृणा आई हो और इसलिये बंगालियोंके दिलमें दयाका नहीं होना इसने कहा हो।)

इसके बाद शहरके उस भागका जिक्र है जहां पर बादशाही लश्कर रहता है। यह जगह दिल्लीके बाजारके जैसी गुलजार है। इसमें शेख, मुगल, पठान आदि लश्करी पेशेके लोक रहते हैं और साथ ही में ब्राह्मण, बनिये, कायस्थ आदि भी, जो इनके साथ सम्बन्ध रखते हैं वे सब बडी तादादमें बसते हैं। घुडदोडके मैदानमें घोडे दोडते रहते हैं और वहां अव्वल दरजेका गुदरीका बाजार लगता है।

इस तरह यह शहर बडा आबाद है। इसमें **सुजावर्दि महमद** शाहका राज्य है जिसका नाम सारा खलक आठों प्रहर लिये करता है। रामके जैसा इसका राज्य है और यह सब राजाओंका शिरताज जैसा माना जाता है। इसकी आज्ञा समुद्र तक मानी जाती है। इसने अपने दुश्मनोंको जेर करके अपना विकट रास्ता साफ किया है। इसके पास बडे शूर और सच्चे सिपाहियोंकी खडी फोजें रहती हैं। सिपाहियोंको अच्छा दरमाहा दिया जाता है और वे बडे ताजे बने रहते हैं। इसके राज्यकी सीमा बडी लंबी चौडी है। कहते हैं कि कोई आदमी रोज बारह कोस चलता रहे तो पूरे चार महिनेके बाद वह इसके राज्यकी हदको पार कर सकता है।

इस नवाबके रहनेके जो महल बने हुए हैं उनकी तो तारीफ ही क्या की जाय। उनके पास ही गंगा बहती है और उसके ऊपर अच्छे कोटसे घिरा हुआ बडा भारी बाग है। इस बागमें सेंकडों ही प्रकारके फूल और फलवाले

झाड-पौधे लगे हुए हैं। बीच-बीचमें पानीके बडे बडे होज बने हुए हैं। कहीं कहीं ऐन प्रकारके आईने जडे हुए हैं और उनके इर्द-गिर्द अच्छे तबक मढे हुए हैं। कहीं मजेदार तंबू तने हुए हैं।

नवाब जब कभी यहां पर आ कर बैठता है तो मानों इंद्रकीसी सभाका ठाठ लगता है। बडे बडे खान-खानान, मीर, मुगल, पठान, सेठ, साहुकार, मुत्सद्दी, हुद्देदार, चोपदार आदि खडे रहते हैं। रक्षक लोक हाथमें गोल गुर्ज ले कर खडे रहते हैं। फोज अपने हथियारोंसे सज्ज हो कर, समुद्रकी लहरोंकी तरह उमड आती है। हाथी और घोडोंकी ठट्ठ लग जाती है। किसी महत्त्वके कामका फैसला नवाब खुद अपने ही मुंहसे सुनाता है। इसके राज्यमें न कहीं तूफान और जुल्म है, न कहीं चोर-चरटेका डर है और न कहीं रास्तेमें लुट जानेका भय है। मुसाफिर रास्तेमें कहीं भी चला जाय—कहीं कोई कुछ नहीं पूछता। इस प्रकार सारी रैयत सुखी है—कोई कहीं दुःखी नहीं दिखाई देता।

नवाबके महलोंके दरवाजे पर हरहमेश नौबत बजती रहती है और याचक लोक जय-जय-कार करते रहते हैं। नवाब रोज उन याचकोंको बक्षिस दिया करता है जिसमें हाथी, घोडे, सिरपाव आदि सब तरहकी मूल्यवान वस्तुएं होती हैं। ब्राह्मण और भाट आदि भी इन याचकोंमें शामिल होते हैं।

सब जगह इसने अपनी सरहद पर सूबे भेज रखे हैं और वे सब राज्यकी मर्यादाका पालन करते हैं। इन सूबोंके नाम इस प्रकार हैं—हाजीपुर और अजीमाबाद उडीया (ओरिसा)की सरहद तरफ है। ढाका, रंगपुर, चटगांव, सिलहट, रंगामाटी, हुगली, वीरभूमि, पचेट, हिजली, विसनपुर, अकबर नगर और कोचविहार—ये सब बंगालकी हदके स्थान हैं।

इस देशमें बहुत रेशम होता है—ऐसा रेशम दूसरी किसी जगह नहीं सुना गया। अवल तरहके कपडेकी यहां पैदायश होती है। बादशाही पोशाकें यहीं बनती हैं।

नवाबका जो बाग है वह खास देखने लायक चीज है। उसमें क्यारों ओर फूल खिल रहे हैं और जोरसे पानीकी नहरें बह रही हैं।

सेठ (जगत्सेठ) माणिकचन्दजीके नामका जो विश्रामधाम है वह भी खूब अच्छा बना है। उसमें मंदिर, महल और तालाव बने हुए हैं वे – क्या रंक और क्या राव – सब हीके देखने लायक हैं।

इस तरह इस शहरकी कहां तक तारीफ की जाय। काबुल, कास्मीर, कंधार, अरब, इसफान, अंजार, मरु, मालवा, मेवात, दक्षिण, गुजरात, दिल्ली, आगरा, लाहोर, ठट्ठा, भखर, पटना आदि सब देशोंके लोकोंके थोकके थोक यहां आ कर बडे सुखसे बस रहे हैं और वे सुजावर्दि महमदको करोड वर्ष तक जीते रहनेकी आशीष दे रहे हैं।

गजलके अंतमें कवि बंगाल देशका माहात्म्य बतलाता हुआ कहता है कि – इस देशकी क्या महिमा गाई जाय? – इसमें स्वयं भागीरथी गंगा बह रही है, यहां पर समेतशिखर पहाड है जिस पर पारसनाथ प्रभु है, झाडखंडमें महादेव है, पचेट नगरमें रघुनाथ है, गंगासागर स्नानका स्थान है, और उडीसामें जगन्नाथका धाम है।

इस प्रकार बंगाल देशकी यह गजल **निहाल** नामक जतीने बनाई है। मूर्खके मनमें इसका कुछ महत्त्व नहीं हो, लेकिन पण्डित लोकोंका दिल इससे खुश होगा – ऐसी आशा रखते हुए कविने अपना कथन पूरा किया है।

*

२. उदयपुरकी गजल

दूसरी गजल मेवाडकी राजधानी उदयपुर शहरकी है। इसका कर्ता जती **खेता** नामक है जो अपनेको खरतरगच्छका कहता है। इसने भी अपने गुरु वगैरहका कोई नामनिर्देश नहीं किया जिससे यह नहीं जाना जाता कि यह कहां और कब हुआ। मेवाडमें, इस नामका एक और कवि हो गया है जिसने सं० १७३२ में, मेवाडके वेराट गांवमें **चभारास**की रचना की थी; पर वह अपनेको लोंकागच्छके पूज्य दामोदरजीका शिष्य बतलाता है† इसलिये वह इस खरतर कवि खेतासे भिन्न ही है। संभव है कि यह भी कवि मेवाड ही का हो।

† देखो, श्रीयुत मोहनलाल दलीचंद देसाईकृत, 'जैन गूर्जर कविओ' नामक ग्रन्थ, भाग २, पृ० २८६–८७.

क्यों कि इसकी भाषामें मेवाडीकी झलक स्पष्ट दीखाई दे रही है। समय इसका ठीक तो निश्चित नहीं किया जा सकता किन्तु गजलमें जो उदयपुरके महाराणा **अमरसिंह**का वर्णन किया गया है उससे, उसीके समयमें इसकी रचना हुई होनी चाहिए यह स्वतः सिद्ध है।

उदयपुरकी गद्दी पर अमरसिंह नामके दो राणा हो गये हैं। इनमें पहला तो महाराणा प्रतापका पुत्र था जिसने सं० १६५३ से १६७६ तक राज्य किया था; और दूसरा महाराणा जयसिंहका पुत्र था जिसने सं० १७५५ से १७६७ तक राज्य किया था। इसी दूसरे महाराणा अमरसिंहके समयमें प्रस्तुत गजलकी रचना हुई होनी चाहिए। क्यों कि इसमें ढेबरके पासके **जयसमुद्र** नामक सरोवरका उल्लेख है और यह सरोवर महाराणा जयसिंहने – दूसरे अमरसिंहके पिताने – ही बनवाया था।

इस गजलमें भी, ऊपरवाली बंगाल देशकी गजल हीकी तरह, उदयपुरका स्थानिक वर्णन है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है –

प्रारंभमें कवि एकलिंगजी और नाथदुवारेके श्रीनाथजीको नमन करता हुआ उदयपुरके गुणगान करनेमें संतजनोंसे सहायताकी प्रार्थना करता है। इसके साथ राठसेन गिरिदेव, आंबेरी उमारमण, भुवाणा भोलानाथ और रतनपुर हनुमंतको भी नमस्कार करता है।

फिर उदयपुरके सभी देव-देवताओंका स्मरण करता है जिनमें गणपति, हरसिद्धि, शारदा, हनुमंत वीर, शीतला माता और नीलकंठ आदिका समावेश होता है।

फिर दिवान याने महाराणाके दरबारका वर्णन किया गया है जिसमें राजद्वार और उसके नोबतखाना और निशान स्थानका उल्लेख है। फिर महलोंका वर्णन है जिनके जालीदार झरोखे और गोखडे बडे झांकीदार बतलाये गये हैं। महलोंके आगे बडे बडे दंतावलवाले, सावनके मेघकेसे काले और मदझरने वाले हाथी घूम रहे हैं जिनमेंसे किसीका नाम दिलसिणगार है, किसीका दलसुंदर है और किसीका अंबप्रसाद – इत्यादि है। हाथियोंके बाद घोडोंकी पायगा है जिसमें इराकी, तुरकी, कच्छी, काबूली, कंधारी आदि कई जातिके जातवान् और मूल्यवान् घोडे बंधे हुए हैं।

फिर महाराणा अमरेश याने अमरसिंहका उल्लेख है जो इन हाथी घोडों पर सवार हो कर क्रीडा आदि करनेको राजसवारीके रूपमें जाया करते हैं। इस सवारीमें राणाके साथ सब दल बल चलता है और बाग बगीचेकी सैर की जाती है। वहां पर फोजोंकी लडाई होती है, मल्लोंकी कुस्ती होती है और हाथियोंकी मारामारी होती है।

महलोंके पीछे पीछोला तालाव है जो पानीकी लहरोंसे कल्लोल करता दिखाई देता है। इसमें मोहन मन्दिर और बादर महल नामके बडे अच्छे महल बने हुए हैं। राणा नावमें बैठ कर इस तालावकी सैर किया करते हैं। तालावके पनघट पर पनिहारियां पानी भरती रहती हैं जिनके रूप और शृंगारकी वर्णना कवि बडी दिलचस्पीसे करता है। इश्की लोक इन स्त्रियोंके मुंह देखनेके लिये पाल पर आ कर बेशर्म हो कर बैठे रहते हैं। कोई स्नान करता है तो कोई पानी भरता दिखाई देता है। घननंकार वाली घंटोंकी आवाज करते हुए हाथी भी इसीमें पानी पीने आते हैं।

फिर शहरके मुख्य देवस्थानोंका उल्लेख है जिनमें कृष्णका मन्दिर, धाईका मन्दिर, शीतलनाथका मन्दिर, दिगंबर और भैरवके मन्दिर आदि मुख्य है।

बादमें बाजारका वर्णन किया गया है। यहां पर एक भट्टारककी पोसाल प्रसिद्ध है जिसमें अच्छी चित्रकारी की हुई है। हाटोंमें सबसे पहले हलवाई-योंकी दुकानोका जिक्र हैं जिनमें मीठी मिठाई बनाई जाती है। उनके पास ही गांधी लोक हैं जो अत्तर, तेल, अरगजा आदि बेचते हैं। फिर सराफ और बजाज आते हैं। उसके आगे कोटवालीका चोतरा है जहां शहरका रखवाला रहता है। उसीके पास जकातका चोतरा है जहां सब प्रकारका हांसल अदा किया जाता है। उसके पास मणिहारियोंकी हाटें हैं जिनमें ढेरकी ढेर चीजें रखी हुई रहतीं हैं। जवहरी (जौहरी) लोकोंके पास मोती, लाल, मुंगा मणि आदि सब प्रकारका कीमती माल धरा रहता है। आगे चलने पर पटवा लोक दिखाई देते हैं जो खूब लुंबे लटकाये हुए बैठे रहते हैं। इनके बाद जोडे और जीन आदि बेचनेवाले, तथा बोहरे लोक हैं जो भाले, खड्ग, तलवार, ढाल, बख्तर टोप, बरछी आदि शस्त्रास्त्र बेचा करते हैं।

इस शहरमें च्यार वर्ण और ३६ उपवर्णके लोक बसते हैं जिनमें पुरोहित, पल्लीवाल, महेसरी, ओसवाल आदि सब जातिके लोक हैं। साधक, सिद्ध, संन्यासी, जंगम, जती, जोगी आदि छहों दर्शनोंके अनुयायी यहां पर मिलते हैं। दानी लोक याचक जनोंको दान देते रहते हैं और याचक उनका जय-जय-कार करते रहते हैं। मंदिरोंमें झालर और शंखके झनकार, घंटाके घन-नंकार और तत्ता-थेईके तानारंभ सदा होते रहते हैं। व्यास लोक बैठे बैठे हरिकथा किया करते हैं जिसे श्रोता जन एकसाथ मिल कर सुनते रहते हैं।

अधिक क्या कहा जाय—जैसे मनुष्योंमें राजा मुख्य माना जाता है वैसे नगरोंमें यह शहर नायक समझा जाता है। इसमें सब प्रकारके विलास होते रहते हैं।

इसके बाद शहरके बाग बगीचोंका वर्णन है जिनमें तरह तरहके वृक्ष और पौधे लगे हुए हैं। राजा इनमें समय समय पर आनंदोपभोगके लिये जाया करता है और वहां पर बैठ कर रावत, राव और उमराव आदिकोंका मुजरा लेता है। हुका, चिलमकी लेन-देन होती है। पानबीडा और अत्तरसे मिजबानी की जाती है। पात्रजनोंका नाच होता है और गीत-गानका गुंजारव होता है। राणा रीझ कर उन्हें बक्षिस देता है। वेदपाठी पण्डित, नैयायिक, वैयाकरण और वादी जन शास्त्रोंके बारेमें अनेक तर्क-वितर्क भी करते रहते हैं। तेलंगी, कर्णाटी आदि विद्वान् भी उपस्थित होते हैं। राजाको ये सब करण, विक्रम, भोज आदि बिरुदोंसे बधाते रहते हैं। यह दीवान (राणा) इंद्रके जैसा दानी, भीमके जैसा बलवान् और अर्जुनके जैसा बाणावलि है। चित्तोड इनका मूल वतन है और सारी हिन्दु जातिके यह मोड (मुकुट) समान है।

दसहजार वाला मालवदेश इसके अधिकारमें है और इसके राज्यमें तुर्कोंका कोई प्रवेश नहीं है। सागरके जैसे इसके समुद्र (सरोवर) हैं। ढेबर गांवके पास जयसमंद नामका बडा सरोवर है जिसका पानी १२ गांवके लोक पीते हैं। देबारीका कोट बडा देखने लायक है। रिषभदेवके देवलमें चेतके महिनेमें मेला लगता है जो देखने योग्य है। इसी तरह एकलिंगजी और नवसतियांका मेला लगता है। जगह जगह पर जुदा जुदा वारोंमें (दिनोंमें) हटवाडा भरता है। चतुर्भुज, रूपजी, राणपुर आदिके बडे देवस्थान इस राज्यमें हैं। छप्पनके

पहाडोंमें कई छानी (छिपकर रहनेकी) जगह है जहां राणा अपने हिन्दुपनकी नेक रखनेके लिये चला जाया करता है। राणाका राज्य हिन्दुस्थानकी सरहद जैसा है जहां पर दुश्मनोंके छलबल रद्द किये जाते हैं। इसके राज्यमें बडे बडे गहन गिरिवर हैं तब भी भील और चौरोंका कोई जोर या डर नहीं है। रात और दिन रास्ता चलता रहता है। इसने अवघट घाटोंको सुगम बना दिये हैं। दिलका यह दरियाव जैसा है और षड्भाषाओंसे इसका बडा भाव है। समुद्रके किनारे तक इसकी कीर्ति फैली हुई है और कविजन मनमें उत्कंठाके साथ इसकी स्तुति किया करते हैं।

खरतर जती कवि **खेताने** मौजसे यह इतना कथन किया है। राणा अमर और यह उदयपुरका राज अमर रहो यही इसकी प्रार्थना है।

*

[टिप्पणी–यह लिखनेके बाद, फार्बस गुजराती साहित्य सभा बंबईके त्रैमासिक पत्रमें उक्त मुनि श्री कांतिसागरजीने '**चित्तौडकी गजल**' छपाई है जो शायद इसी कवि खेताकी बनाई हुई है। चित्तौडकी यह गजल सं. १७४८ में, राणा जयसिंहके समय में बनाई गई थी।]

*

१. बंगाल देशकी गजल

*

दूहा

श्रीसद्गुरु सारद प्रणमि, गवरी पुत्र मनाय ।
गजल बंगाला देशकी, कहु सरस बनाय ॥ १

गजल

अवल देस **बंगाला** कि, नदीयां बहुत है नाला कि ।
सकडी गली है जहाँ जोर, जंगल खूब धिरे चहुं ओर ॥ २
नवलख कामरु इक द्वार, दस्तक विना नहि पैसार ।
बांए हाथ वहती गंग, दक्षण ओर परबत तुंग ॥ ३
देखा **राजमहिल** सुथांन, वसती करी राजा **मांन** ।
बाडी बाग है जिहां घने, आछे मेहल मंदिर बने ॥ ४
गुदरी चोक अर बाजार, **गोलागंज** है गुलजार ।
सूजा साह रहते जहाँ, मच्छीभवन देखा तहां ॥ ५
हजरत कुतबका मकांम, **पडवा** खूब देखा थांन ।
आवे लोक जारत करे, मेला खूब अच्छा भरे ॥ ६
किल्ला **गोड**का है खास, जाके वहै गंगा पास ।
बारा कोसका मैदान, बिच बिच खूब है कमठांन ॥ ७
बंगला बादसा **हूसैन,** तिन यह कोट कीना ऐन ।
ताकी रही कहबत तात, बुजरक लोक कहते बात ॥ ८
मोटी **मालदह**की जाय, ऐसी अडंग दूजी नांहि ।
कपडा होत जात जेतीक, कीजै सिफत कहो केतीक ॥ ९
मसरु खार सक्कर सुचंग, अतलस इलायचा बहुरंग ।
सोदागर खरीदै माल, बिच बिच फिरै बहूत दलाल ॥ १०
बंगला देसके दरम्यान, जाहिर सहर देखा आंन ।
जाका नांम **मकसूदाबाद, जाफरखां** किया आबाद ॥ ११
तिह तट वहै गंगा पूर, न्हाए पाप जावै दूर ।
नावां देखीये अति घणी, विध विध भांतसेती वणी ॥ १२

कोसे अर परंदे लाल, लगै खूब दमडे माल ।
बजरे महलगीरी नांम, बिचि बिचि खूब कीन्हां कांम ॥ १३
नावां बादसाही रहै, ताकी सिफत कहो कुन कहै ।
जैसै देवनुंके वास, तेसी बनी नावा खास ॥ १४
देखा सहरका बाजार, वसती वसै बरन अढार ।
कोठी बहुत कोठीवाल, कटला कोट अरु टंकसाल ॥ १५
बैठे सरस साह सराप, लेखा खूब करते आप ।
परखे मोहर रुपैया दाम, हुंडी लिखे ठांमो ठांम ॥ १६
बैठे बहुत आंन बजाज, बेचै खूब कपडा साज ।
मुलमुल डोरीया चौतार, खासे बाफते गढवार ॥ १७
बेचै जरी जरव फताक, मखमल खीमखाप सुखास ।
बैठे जवरी मणिहार, वेचै माल अरज बाजार ॥ १८
परखै लाल हीरा चुनी, मोती सरस पन्नां मणी ।
टोली माहजनांकी खूब, रहते लोक जिहां महबूब ॥ १९
बांभण वाणियै अरु सूद्र, क्षत्रीय वसै जात अछुद्र ।
गंधी पसारी अतार, सुंखडीगर सुनार ठंठार ॥ २०
सोनी सालवी सूतार, कांदू कागदी कूंभार ।
नाइ नायता नटुवा कि, छीपी छापगर पटुवा कि ॥ २१
तेली तंबोली तुनिया कि, धोबी धनकटे धूनिया कि ।
माली मलमोजे साज, सूचिगर हलवाइ वाज ॥ २२
अच्छे देहरे पोसाल, सिवकै धाम अरु ध्रमसाल ।
महजिद मुनारे मकांम, क्या क्या बने है कमठांन ॥ २३
जोगी जती नाथ अलेख, जंगम भगत नाना भेख ।
दंडी कनफटे मसतांन, रहते भेख [भजे] भगवांन ॥ २४
वालूचर कसेरा हाट, बासन बिकै बहुत सुघाट ।
लोटा थाल गगरा चरी, झारी दीवटा बहुधरी ॥ २५
तांतीलोक रहते घने, जामै वार चीवली बुणै ।
महिमापुर महाअबाद, जिहां जिनधरमका परसाद ॥ २६

जिहां जगतसेठजी सेठ, आवे खलक जाकी भेट ।
दीजे दांन जाके द्वार, जाचिक करै जै जै कार ॥ २७

वसती कासमा बाजार, सैदाबाद खगडा सार ।
रहते लोक गुजरातीक, टोपीवाल जेती जातीक ॥ २८

आरब आरमनी अंगरेज, हबसी हुरमजी उलंदेज ।
सीदी फरासीस अलेमांन, सोदागर मुगल पठांन ॥ २९

कोठी कुंपनीकी जोर, दमडे लगे लाख किरोर ।
क्या क्या बने है कमठान, बाडी बाग महिल मंडान ॥ ३०

ल्यावै बंदरोंकी चीझ, वेचै माल अपना रीझ ।
करते कोडका व्यापार, रेसम जिनस कपडा सार ॥ ३१

वसते लोक बंगालीक, घरघर बाग अरु बाडीक ।
करतै बहुत नियमाचार, दिलमै दया नांहि लगार ॥ ३२

सब ही नगरके सिर मोड़, देखा खूब लसकर ठौर ।
जैसा दिल्लीका बाजार, तैसा चोक है गुलजार ॥ ३३

बसै सेख मुगल पठांन, मनसबदार थांनापती थांन ।
बांभण वांणीयै सब थोक, कायस्थ............ ॥ ३४

गुदरी लगै अवलन खास, घोडे फैर कीजे रास ।
ऐसा मुलक है आबाद, ...द ॥ ३५

सुजावर्दी महमद नाम, गावे खलक आठौं जाम ।
जाका राम जैसा राज, सब ही भूपत्यों सिरताज ॥ ३६

जाकी आंन चिहुं दिसि फिरी, सागर सीम लौं हद करी ।
लीन्है विकट ...., दुसमन जेर कीन्हे खास ॥ ३७

निसदिन रहै फोजां बनी, सावंत सूर साची अनी ।
पावै दादना दरमाह, ताजे रहै बोहत सिपाह ॥ ३८

जिनकै राजकी हदमांहि, बारह कोस जो नित जाहि ।
चौथे मास पावे और, एता हद है चिहुं ओर ॥ ३९

ताके महिल है कैसेक, कीजै सिफत है जैसेक ।
जिनकै वहै गंगा ओट, उपर बने अच्छे कोट ॥ ४०

तां मध बनी आछी ठोर, देखी सुनी नाहि न और ।
फूलै फूल गुल गुलजार, विच विच करै भंवर गुंजार ॥ ४१
चहल सेतूतकी सोभा कि, देखै नैन भी लोभा कि ।
आछे भरे जलके हौज, छूटै समंदकैसी मोज ॥ ४२
अवल ऐन ऐने जडै, तिनमै तबक अच्छे मढे ।
परदेका रचोबी बने, उपर खूब तंबू तने ॥ ४३
बैठे आप आय नब्बाब, जैसे इंद्रकैसी आब ।
ठाढे खान अरु खानान, ठाढे मीर मुगल पठांन ॥ ४४
ठाढे साह साहुकार, ठाढे मुसद्दी हुद्देदार ।
ठाढें जालमी जासोल, करमै लीयै गुरजां गोल ॥ ४५
ठाढे चोपदार अनेक, ठाढे घने बांके पैक ।
ठाढी पट्टाबांधे फोज, उमडै समुदकीसी मौज ॥ ४६
ठाढे मत्त मैगल गोल, ज्यौं हिमवंतकैसे टोल ।
हैवर हीसते बहु खडे, जिनके जीन ज्यौंहार जडै ॥ ४७
श्रीमुख करै आप निबाब, आदिल आदिलहक की साब ।
नांहि तुंतीया तोफांन, नांहि जोर अर जुलम्यांन ॥ ४८
नांहि वाटमै वटपार, नांहि चोर चेटक वार ।
पंथी चलै निसदिन जांहि, कोउ बात पूछै नांहि ॥ ४९
इहविध रहै रेयत सुखी, देखा कोउ नांहि न दुखी ।
नोबत घुरे निसदिन द्वार, जाचिक करै जै जै कार ॥ ५०
बैठै करै नित बकसीस, ताकी करै कहो कुन रीस ।
बकसै मत्त मैगल वाट, ले ले जात बांभण भाट ॥ ५१
बकसैस करै घोडे घणै, गिणती जात कापै गिणै ।
बकसै जरकसी सिरपाव, रीझै देख राणां राव ॥ ५२
सूबे भेज दीन्हैं जिहां, सरैहद बादस्याही तिहां ।
हाजीपुर अजीमाबाद, उडीया देसकी मरज्याद ॥ ५३
ढाका रंगपुर चटगांव, सिल्हट रंगामाटी ठांव ।
हुगली वीरभूमी पचेट, हिजरी बिसनपुर लों ठेट ॥ ५४

अकबनगर कोचविहार, बंगला देसका बिसतार।
रेसम होत है इहां घणा, दूजा देसमै नहि सुणा ॥ ५५
कपडै अवलकी पैदास, पोषाख बादस्याही खास।
लहकै हांथीयांकी वेस, देखा ऊपजता इह देस ॥ ५६
श्रीनबाबजीका बाग, जागा देखवेके लाग।
क(फ?)रहाबाद है आबाद, देखै होत दिल खुस्याल ॥ ५७
फूले च्यमन च्यारुं ओर, पंती नहरकी भी जोर।
मंदिर महिल और तलाव, देखै रंक राजा राव ॥ ५८
अच्छा बना विसरांम धांम, **माणिकचंदजी**के नाम।
ताकी कहुं क्या तारीफ, जगह बनी अति बारीक ॥ ५९
काबिल कासमीर खंधार, आरब इसफां अंजार।
मारु मालवा मेवात, दक्षणदेश अरु गुजरात ॥ ६०
दिली आगरा लाहोर, ठट्ठा भखर पटना ठोर।
इन इन देसके सबलोक, सुखसौं बसै थोकाथोक ॥ ६१
ऐसा अवलीया जिंद पीर, पर दुख हरन गुहिर गंभीर।
जाको अटल जुग जुग राज, दिन दिन वधो सुख समाज ॥ ६२
वाधो पुत्र धन परिवार, उमर होउ वरस हजार।
रेयत देत है आसीस, जीवो **सुजावर्दि महमद** कोट वरिस ॥ ६३

रेखता

यारो देस **बंगाला** खूब है रे जिहां वहत भागीरथी आप गंगा,
जिहां सिखर समे[त]पर नाथ पारस प्रभू झाडखंडी महादेव चंगा।
नगर पचेटमें रघुनाथका बडा न्हाण है गंगासागर सुसंगा,
देस उडीस जगनाथ अरु वा कुंडके न्हात सुध होत अंगा ॥ १

दूहा

गजल बंगाला देसकी, भाषित जती **निहाल**।
मूरखके मन ना वसें, पंडित होत खुस्याल ॥ ६४

*

१.४.१४.

२. उदयपुरकी गजल

दूहा

जपूं आदि इकलिंगजी, नाथदुवारै नाथ ।
गुण उदयापुर गावतां, संतां करो सनाथ ॥ १
सघन अंब गिरिवर सघन, शिखर रमै सुरराय ।
राठसेन सुप्रसन रही, प्रथम नमंतां पाय ॥ २
आंबेरी उमयारमण, भुवांणै भोलानाथ ।
रतनपुरै हनमंत रिघु, सो सुप्रसन सनाथ ॥ ३

गजल

समरुं देवता सगला कू, गणपति आदि दस अगला कू ।
हाजर मात हरसिद्धी कू, सारदमात वरसिद्धी कू ॥ ४
हनुमंत वीर है हाजर कू, जैसी सीतलाजी हरकू ।
नीलकंठ चाठीयां निरभीकू, ठवीय पूज मन करि ठीकू ॥ ५
जागै स्वर्ग लहै जूना कू, देखत होत दिल दूहना कू ।
पलीवालका पूजा कू, देवल ओर भी दूजा कू ॥ ६
दांनी रायका दरसन, पूज्या मन लहे परसन ।
कर दोय जोडीयां कैसा कू, आगै गुरुडजी ऐसा कू ॥ ७
श्री दीवांनका दरबार, दीसै पोल राजद्वार ।
ग्वासा उर कारखाना कू, नोबत घुरत नीसाना कू ॥ ८
आगै महिल अति उत्तंग, नवनव रावटी नवरंग ।
झांखी खूब झरोखा कू, जालीदार दिल जोखा कू ॥ ९
श्रावण मेघकै साथी कू, मद झर घूमते हाथी कू ।
दिल सिणगार दंताला कू, बीजू सार मतवाला कू ॥ १०
दलअर दलसुंदर गज्ज, लंगर लोह जडीया लज्ज ।
गाढे गव गज गंजन्, अंबप्रसाद गज अंजन् ॥ ११
पोहपलदंत है परचंड, गज गोपा लक्षित नवखंड ।
गैवर गरजतै उभा कू, श्री दीवानकी सोभा कू ॥ १२

सोवन सागती घोडा कू, सनमुख रहित स जोडा कू ।
अबलखघाट ऐराकी कू, तुरंगम उर है बाकी कू ॥ १३
तुरकी कच्छी के ताजी कू, देखत होत दिल राजी कू ।
काबल सिंधू खंधारी कू, करतै आप असावारी कू ॥ १४
है बगसीस पर बगसीस, जलधर जलध ज्यू जगदीस ।
उपम इंद्र ज्युं **अमरेस**, नमनै चरन सकल नरेस ॥ १५
रसतर सरस है रंगराग, निकलंक खाग त्याग सोभाग ।
सबजी करत बागां शैल, लख दल चढत जिसके गैल ॥ १६
कब ही मल्ल आखाढा कू, पाइक लडन है गाढा कू ।
हस्ती लडत चढि चौगान, देखत आप श्री दीवांन ॥ १७
पीछै तलाव **पीछोला** कू, करता लहिर किल्लोला कू ।
मोहन मंदर बादर महिल, अंदर खूब उजल अहल ॥ १८
माहै रहिन मगरमच्छ, कूरम कमछ दादुर कच्छ ।
सारस हंस बनका सोर, मधुरे मोरके झिंगोर ॥ १९
नरपति बैठकर नावा कू, देखत सैल दरीयावा कू ।
छकसु देखीइं छतरी कू, पलकां बीच ज्युं पुतरी कू ॥ २०
पनघट प्रकट पनिहारी कू, निरमल नीर भरि झारी कू ।
गोरी सीस करि गागर कू, चशमुं डार कै काजर कू ॥ २१
कैसा रंग है केसर कू, नीकी नथ नकवेसर कू ।
पाईक पायमै ठमकै कू, झांझर नेवरां झमके कू ॥ २२
भर सिर कुंभ बींदली भाल, चलती मस्त मदझर चाल ।
मुखसुं दूर कर चादर कू, निकस्यां चंद ज्युं बादर कू ॥ २३
अपछर रंभसी ऐसी कू, परतिख पदमनी जैसी कू ।
दंपत दीप ज्युं दामन कू, केहरलंकसी कामन कू ॥ २४
मोहन वेल मृगनैनी कू, वल्लभरूप पिक वैनी कू ।
खजन चस्म है पैनी कू, दाडमदंत सुख देंनी कू ॥ २५
क्या गुलवदन है महिरी कू, निज वस करित है सहरी कू ।
चीर रूप घाट परिवारी कू, सूरत देख बैसारी कू ॥ २६

बैठै आइ कर इसकी कू, करत है सरम नही किसकी कू ।
केइ असनांनकुं करनै कू, आवत नीर कै भरनै कू ॥ २७
घननंकार होइ घंटा कू, थननंकार होइ थटा कू ।
हस्ती डोर पटहस्ती कू, मदझर करत है मस्ती कू ॥ २८
पीवन आवते पानी कू, महावत करत है फानी कू ।
धूआ धोरसुं धत्ता कू, मैगल बहुत मदमत्ता कू ॥ २९
अस्थल मठ ध्रमसाला कू, मुनीजन जपत है माला कू ।
दीसै कृष्ण कै द्वारा कू, जप तप वेद विध सारा कू ॥ ३०
देवल धाईका दीठा कू, शीतलनाथ भी बैठा कू ।
डिगंबर देहर भेरू कू, कर तर सूरा अर डेरू कू ॥ ३१
फनि सुपास देवाला कू, पातिक दूर पै माला कू ।
देवल ओर भी अनेक, अब बाजारकी कहुं टेक ॥ ३२
परगट एक है पोसाल, भट्टारक मन धर आल ।
चिहुं दिस महि चित्रसाली कू, कुल आराससै ढाली कू ॥ ३३
हाटां प्रथम हलवाई कू, मीठी करत मिठाई कू ।
गांधी करत है गज्जा कू, अतर तेल अरगज्जा कू ॥ ३४
बहुत सराफ अरु बज्जाज, बेचै कपडा सिरताज ।
आगै चोतरा कुटवाल, करता सहिरकी रखपाल ॥ ३५
जिहां चोतरा जगात, हासल की ज्युं क्या क्या बात ।
माल्म हाट मणिहारी कू, वसनां ढेर विसतारी कू ॥ ३६
मोती लाल मणि मुंगा कू, जवहर बाब सब चंगा कू ।
पटवा बेचते आगे कू, डूंबा खूब छिब लागे कू ॥ ३७
जोडा जीनगर बैचे कू, ग्राहक आवनै खैचे कू ।
बहुरै मंडते व्यापार, बैचे कुंत खग तरवार ॥ ३८
बगतर टोप अर जीन शाल, बरछी शेल जमधर ढाल ।
छविसुं पवन जिहां छत्तीस, वरण च्यार बिसवाबीस ॥ ३९
प्रोहित न्यात पल्लीवाल, वाणीया महेसरी ओसवाल ।
छाये पवन छत्तीसे कू, दरसण षट जिहां दीसे कू ॥ ४०
साधक सिद्ध सन्यासी कू, ब्रह्मा विष्णु मठवासी कू ।
जंगम जती अरु जोगी कू, साहुकार के सत्ती कू ॥ ४१

दोलत खैराद देदै कार, जिहां तिहां होत जै जै कार ।
झालर संखके झनकार, घंटा शबद घननंकार ॥ ४२
तानारंभ तत्ता थेई कू, कीरत होत है केई कू ।
ध्वनि मृदंगके धोंकार, करते रातदिन ततकार ॥ ४३
कहते व्यास हरिकथा कू, सुरता सुनत इकसथा कू ।
वाडी बागका बणाव, भाषित सरस राखत भाव ॥ ४४

दूहा

ज्युं नायक नरमै नृपति, सबविध पूरन आस ।
त्युं नाईक इह नगरमै, विचि सर्वत्र विलास ॥ ४५

गजल

तो सर्वत्र है विलास, रसता खूब दरखत खास ।
केसै फूल गुलक्यारी कू, पेखत चूप तैय्यारी कू ॥ ४६
छविसुं खूब अंबराइ कू, बहु रुत रहत हे अंब छाई कू ।
तोता कोईल टहके कू, चंपा मोगरा महके कू ॥ ४७
वउलश्री जूइवेली कू, चंदन जाइ चंबेली कू ।
कहांइ केवडा करना कू, दुमप्रसाद अरु दौना कू ॥ ४८
सुयरा गुल सेवंती कू, वासै खूब वासंती कू ।
बहन रोस हे वडी कू, महिलाइत जिहां मंडी कू ॥ ४९
बंगला रावटी बागी कू, ठावी गोट मजलस ठीकू ।
कब ही खुलत है कारंज, नलकै जोरसू नारंज ॥ ५०
कमल भुरज है कैसा कू, आसन इंद्रका ऐसा कू ।
पंकत कवल पारेवानी कू, परिमल विमल है पानी कू ॥ ५१
सोभत मान ज्युं सरवर कू, तैसे सघन है तरवर कू ।
समला नाव है समर कू, निरखै रंग भर नागर कू ॥ ५२
हींदूपति अति हौसी कू, रमते रंग बहु रौसी कू ।
कब कारंज भी छूटे कू, जालम हस्ति भी जूटे कू ॥ ५३
गैवर डोर सिणगारी कू, बर्ना है खूब अंबारी कू ।
मेघाडंबर मंडाणा कू, श्री अमरेस जू राणा कू ॥ ५४
कब ही मौज कैराम्र कू, हाजर होत सौदाम्र कू ।
घूघर मालसै घोडा कू, दे मैदान फिर दोडा कू ॥ ५५

फकड कंघसे केकांण, पन्नाजडत नग पल्लांण ।
कूंदण जडत जोटरु जवाल, फाला देत वहै मृगफाल ॥ ५६
दोलत निजर कर देखे कू, लख्या कोड कै लेखे कू ।
सिंघलदीपमै धुरकू, झरतै दांतसुं मदझर कू ॥ ५७
पट झर चूवते पटा कू, गति घनघोर गजघटा कू ।
मुजरा करत माहाराजा कू, तब सनमांन दै ताजा कू ॥ ५८
रावत राव के उमराव, पावत रीझ नित सिरपाव ।
बीडा पांन दै बहुमांन, सोभा रागसुं गलतान ॥ ५९
कर ताजीम अनमी कंध, बलवंत भीमसेन गजबंध ।
महुली लेत कब ही मोज, फरहर धजर डंबर फोज ॥ ६०
हुकादारु हुसीयारी कू, ताजा तुरत तइयारी कू ।
चिलमां जडत नग चुंनी कू, दीपत देत दिल दूनी कू ॥ ६१
नगसुं जडत है नैहचा कू, खुच कारि भारि चलम खिचा कू ।
जरदा जोर सुरती कू, पीवे आप छत्रपत्ती कू ॥ ६२
क्या घनसार कस्तूरी कू, अत्तर गुलाबसुं चूरी कू ।
सूंघा अगरकी सोरंभ, लुंबत आई मधुकरलंभ ॥ ६३
चोवा अरगजा चंदन, लावत अंग फुनि लेपन ।
बांधत पाघ जरकसू पेच, किलिगी रूप शिरपर पेच ॥ ६४
नव ही राग तानादंभ, नाचत पात्र रूपै रंभ ।
धकरी आलाप सुर ततकार, मुखसुं गीन घनि उच्चार ॥ ६५
सुनकर रीझते राना कू, दारद दूर ही जाना कू ।
पाठी वेदकै पंडित, नेयाईक चावा नित ॥ ६६
वेईयाकर्ण के वादी कू, विद्या मन उनमादी कू ।
भाषै तरक षटभाषा कू, ले ले शास्त्रकी साखा कू ॥ ६७
पंचाख्यान परिपाटी कू, केई तेलिंग कर्णाटी कू ।
विक्रम भोज सम वरणाव, राजा करण जैसो राव ॥ ६८
दांनी इन्द्रसो दीवान, बलवंत भीम, अर्जुन बान ।
चावा उतन है चीतोड, महि सकल हींदू मोड ॥ ६९

दिढ दस सहस **मालव देस**, नही तुरकांणका परवेस ।
सागरराजसे समंद, नीपजे शाल साकर कंद ॥ ७०
देबर गांम अछै ढांग, **जयसमंद** तिहां अति सांग ।
बारे गांमकी सीवे कु, पानी होदका पीवे कु ॥ ७१
दीपत कोट **दहबारी** कु, मालमश्रेष्ठ मैसारी कु ।
रिषभदेवसै देवल्ल, मेला चेत मिलत अवल्ल ॥ ७२
इकलिंग आवतै हैला कु, मिलते नवसती मेला कु ।
बारोवार हटवाडा कु, तिहां चोधार आखाढा कु ॥ ७३
देवल रूपजी चत्रभुज, राणपुर सादडी इक रज्ज ।
छपन्न पर्वतां छांना कु, रहैतै आप जिहां राना कु ॥ ७४
दल्लीपतिसुं याकी कु, राखन हींदू ही नाकी कु ।
हींदूस्थानकी सरहद्द, रिपुदल कीन छलबल रद ॥ ७५
गिरवर गहन जालम जोर, चावा भील न लगै चोर ।
वहति रहत निसदिन वाट, अवघट सुगम कीने घाट ॥ ७६
दिलका जोर है दरीयाव, भाषा षटसुं है बहुभाव ।
कीरत पसरी समद्दां कंठ, कविजन धरत मन उतकंठ ॥ ७७
खरतरजती कवि **खेता** कु, आखै मोजसूं एता कु ।
राणा **अमर** कायमराज, लायक सुन जस मुखलाज ॥ ७८

कलस

लायक जस मुख लाज सुनहु तारीफ सहिरकी,
गुनियन सुनके गजल निजर कर नेक मेहरकी ।
फतै जु गरुर फजर रिघु **अमरसिंह** जू राना,
उदयापुर जू अनूप अजब कायम कमठांना ।
वाडी तलाव गिर बाग वन चक्रवर्ति ढलतै चमर,
अनभंग जंग कीरत अमर **अमरसिंह** जुग जुग अमर ॥ ७९

इति **श्रीउदैपुररी गजल संपूर्ण । लिखतं पं० नेतसी पं० प्रभुदत्त-जीरे लिखी छै । पांचपदरा मध्ये । संवत १८५० जेठ सुद ७ दिने ।**

पुस्तक परिचय

*

श्रीजिनप्रभसूरि अने सुलतान महमद – ले० पं० लालचन्द्र भगवान गान्धी

प्रकाशक, श्रीजिनहरिसागरसूरि–ज्ञानभंडार, लोहावट (मारवाड)

विक्रमना १४ मा सैकानी अंतमां श्रीजिनप्रभ सूरि नामना एक समर्थ विद्वान्, ग्रन्थकार, और प्रभावशाली जैनाचार्य थई गया छे जेमणे पोताना पाण्डित्य अने चारित्र्य-तेजथी, दिल्लीपति मुस्लीम सुलतान महमद तुगलक ऊपर अपूर्व प्रभाव पाड्यो हतो अने ए सुलतान पासेथी एमणे विशिष्ट सन्मान प्राप्त करी तेनी पासेथी पोताना धर्म अने समाजना हितकर एवां केटलांक कार्यो सिद्ध कराव्यां हतां। जिनप्रभ सूरिए अला-उद्-दीननो शासनकाल पण प्रत्यक्ष जोयो हतो अने तेणे जे रीते हिन्दुओ अने जैनोनां असंख्य देवस्थानोनो ध्वंस कर्यो-कराव्यो ते पण तेमणे प्रत्यक्ष निहाळ्युं हतुं. एज अला-उद्-दीनना उत्तराधिकारीना दरबारमां ए जैन सूरिए कई रीते उत्तम सन्मान अने स्वधर्मसंरक्षण प्राप्त कर्युं तेनो विस्तृत परिचय, ए पुस्तकमां पं० लालचन्द्रजी गान्धीए ऐतिहासिक प्रमाणोना ऊहापोह साथे, सुन्दर रीते आलेख्यो छे. जिनप्रभ सूरिना ए परिचयमां, पंडितजीए, खुद ए आचार्यनी पोतानी कृतियोमांथी तेम ज एमना शिष्य अने बीजा तेवा उत्तरकालीन ग्रन्थकारोना उल्लेखोमांथी, एमना परिचायक जे जे प्रमाणो अने अवतरणो मळी आवे छे ते बधांनो सारो उपयोग कर्यो छे अने ए सर्वने आधारे ए महान् आचार्यना चरित्रनुं उत्तम दिग्दर्शन कराव्युं छे. अल्बत्त चरित्रमां अनेक चमत्कारिक घटनाओनुं पण केटलुंक संमिश्रण रहेलुं छे जे विशुद्ध इतिहासनी दृष्टिए वास्तविक न कही शकाय. पण ए तो ए वखतना ग्रन्थकारोए जे कांई लखी राख्युं छे तेना ज सार अने आधार रूपे लखवामां आवेलुं होवाथी, तेनी सारासारतानी योग्य कल्पना वाचकोए ज करी लेवानी रहे छे. पंडितजीनी खास शैली ए छे के **'नामूलं लिख्यते किंचित्'** जे दरेक संशोधनप्रेमी अने इतिहास-रसिक जनने ध्यानमां राखवा जेवी छे.

– जि. वि.